उत्तराध्ययन सूत्र

उत्थानिका : संस्कृत छाया-हिन्दी अन्वयार्थ-भावार्थ एवं सूक्ति सारांश युक्त

अनुवादक-सम्पादक

शान्ति मुनि

☐ उत्तराध्ययन सूत्र

☐ सम्पादक-अनुवादक
महास्थविर श्री शान्ति मुनि जी म सा

☐ प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन श्रावक सघ
10, सत्यनारायण मार्ग, अमल का काटा
उदयपुर (राज) 313 001
फोन न 0294-423689, फैक्स 520171

☐ मुद्रक
गरिमा ऑफसेट
रीको सैकण्ड, गायत्री नगर
अजमेर रोड, ब्यावर (राज)
फोन 50456, 58550

☐ मूल्य
100/-

☐ अर्थ सहयोगी
शान्तिलाल जी साखला
मुम्बई

☐ प्रथम अनावरण
2001

संयम साधना के

सजग प्रहरी

संयम क्रांति के

पुरोधा

क्रियोद्धारक

इतिहास पुरुष

आचार्य श्री

हुक्मीचन्द जी म.सा.

की

महामहनीय चेतना

एवं

अनन्त-अनन्त उपकृति के

केन्द्र

आचार्य श्री नानेश

की

महिमा मण्डित आध्यात्म

चेतना

को

-शान्ति मुनि

अन्तर्दर्शन

जैन आगम साहित्य में उत्तराध्ययन सूत्र का कितना अधिक महत्त्व है यह लिखना इसलिए आवश्यक नहीं है कि यह स्वत ही सिद्ध है। स्वत सिद्ध को सिद्ध करना पिष्ट पेषण ही होगा। तथापि यहा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यद्यपि जैनागमो में द्वादशागी गणिपिट्टक का सर्वाधिक महत्त्व माना जाता है, उन्हें जैन वाङ्मय की धुरी या आधारशिला माना जाता है। मूल वीतराग वाणी भी उन्हें ही माना जाता है। शेष आगमों को द्वादशागी के आधार पर आचार्यों द्वारा निर्मित रचना के रूप में माना जाता है तथापि आज तक जितनी चूर्णिया, टीकाए, टब्बे, अवचूरी, वृत्तिया एव व्याख्याए उत्तराध्ययन सूत्र पर लिखी गई हैं उतनी और किसी भी आगम पर नहीं लिखी गई।

एक बहुमान्य अवधारणा कल्प सूत्रकार आदि के अनुसार उत्तराध्ययन सूत्र का महत्त्व इसलिए भी अधिक बढ जाता है कि इसे प्रभु महावीर की चरम-देशना ''अपुट्ठ वागरणा'' के रूप मे माना जाता है।

यद्यपि यह कुछ विद्वानो की दृष्टि मे इसलिए विवाद का विषय है कि केशी गौतमीय अध्ययन में प्रभु महावीर का जो गौरवपूर्ण विवेचन है, वह स्वय महावीर के श्रीमुख से कहा जाना सगत नहीं बैठता है। इसी प्रकार सम्यक्त्व पराक्रम नामक उन्तीसवा अध्ययन प्रश्नोत्तर शैली से आबद्ध है, जिसे अपुट्ठ वागरणा कहना सगत नहीं बैठता है। किन्तु यह विवाद इसलिए अधिक महत्त्व नहीं रखता है कि द्वादशागी गणिपिट्टक, जो प्रभु महावीर की अथवा तीर्थंकरो की मूल वाणी मानी जाती है, उसमे भी सूत्र कृताग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के छठे अध्ययन 'वीर स्तुति' मे महावीर की ही अत्यधिक गौरवास्पद स्तुति की गई है, उसे भी प्रक्षिप्त मानना पडेगा या फिर सूत्र कृताग सूत्र को भी महावीर की देशना नहीं मानना पडेगा।

इस विवाद का मेरी दृष्टि में सहज समाधान यह हो सकता है कि ''अत्थ भासइ अरहा सुत्तं गथंति गणहरा निउण'' के अनुसार आगमो का अर्थ रूप मे प्रतिपादन तीर्थंकरो द्वारा हुआ है और उनका सूत्र रूप म ग्रन्थन गणधरो द्वारा हुआ है। आज की शैली में जिसे हम यो भी कह सकते हैं कि आगमो के मूल प्रवक्ता तीर्थंकर प्रभु रहे हैं किन्तु उनका सकलन-सम्पादन गणधरों द्वारा हुआ है, उस सम्पादन में गणधरों ने उपकार्य भाव के अहो भाव से भर कर भक्ति प्रवणता की दृष्टि से यथा स्थान अपने आराध्य की स्तुति गुणानुवाद को भी निबद्ध कर दिया है अथवा सुगमावबोध की दृष्टि से सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन को प्रश्नोत्तर शैली में निबद्ध किया है।

जैसा कि वर्तमान साहित्य रचना के क्षेत्र में देखा जाता है कि सपादन-सकलन करने वाला प्रस्ताव आमुख आदि के माध्यम से ग्रन्थकार का गुणानुवाद अथवा उसकी महत्ता का प्रशस्ति गान कर देता है।

अस्तु, महावीर के गुणानुवाद अथवा प्रश्नोत्तर शैली के कारण उत्तराध्ययन सूत्र की देशना के अपुट्ठ वागरणा

*1 आचाराग, 2 सूत्रकृताग, 3 स्थानाग 4 समवायाग, 5 व्याख्याप्रज्ञप्ति 6 ज्ञातृधर्मकथाग 7 उपासक दशाग, 8 अन्तकृद्दशाग 9 अनुत्तरौपपातिक दशाग, 10 प्रश्न व्याकरण 11 विपाक, 12 दृष्टिवाद

के रूप मे सदेह को अधिक अवकाश नहीं रह जाता है।

इसके अतिरिक्त उत्तराध्ययन सूत्र के अतिम 36वे अध्ययन की अन्तिम गाथा-

"इय पाउकरे बुद्धे, णायए परिणिव्वुए।
छत्तीस उत्तरज्झाए, भवसिद्धिय सवुडे॥'

यह स्पष्ट सिद्ध करती है कि यह प्रभु महावीर की अन्तिम देशना है, जिसे कहते-कहते ही प्रभु महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए थे।

अपुट्ठ वागरणा होने के कारण भी उत्तराध्ययन का महत्त्व बढ जाता है। अपुट्ठ वागरणा का सीधा-सा अर्थ होता है बिना पूछे कहा जाना। जैसे एक पिता अपने पुत्रो को अपने अतिम समय मे बिना कुछ पूछे हित शिक्षा देता है, उसका जो महत्त्व होता है वह जीवनभर पूछी गई बातो के उत्तर का नहीं होता। उसी प्रकार प्रभु महावीर की यह देशना अमृत के तुल्य मानी गयी है।

इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि अन्य आगमो का महत्त्व कम हो जाता है। सब आगमो का अपने स्थान पर अपना-अपना महत्त्व है। सभी मे मुक्ति मार्ग का यथोचित विवेचन उपलब्ध है, किन्तु उत्तराध्ययन सूत्र को हम निष्कर्षात्मक शास्त्र या साराश ग्रन्थ कह सकते हैं।

यही कारण है कि मुमुक्षु साधको को पहले आचाराग सूत्र सर्वप्रथम पढाने की परम्परा थी, उसके बाद उत्तराध्ययन सूत्र को वह स्थान प्राप्त हुआ। सक्षिप्तिकरण की दृष्टि से अब वही स्थान दशवैकालिक सूत्र को प्राप्त है।

जैनागम-साहित्य एक अथाह सागर के तुल्य है। उसमे उत्तराध्ययन सूत्र को एक बहुमूल्य रत्नकोष कहा जा सकता है।

यद्यपि आगमों की प्रमाणिकता के विषय मे जैन धर्म की विभिन्न परपराओ में पर्याप्त मतभेद हैं। दिगम्बर परम्परा मे द्वादशागी को स्वीकार अवश्य किया है, किन्तु वर्तमान में उपलब्ध द्वादशागी को वह महावीर की वाणी के रूप मे स्वीकार नहीं करती है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा द्वादशागी को प्रमाण मानती है। उसमें भी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा वर्तमान मे 11 अग 12 उपाग 4 मूल सूत्र 2 चूलिका और दस प्रकीर्णक इस प्रकार 45 आगमो को तथा टीका, चूर्णि, निर्युक्ति और भाष्य को भी प्रमाण मानती हैं।

इसके विपरीत श्वेताम्बर तेरहपथी एव श्वेताम्बर स्थानकवासी साधुमार्गी जैन परम्परा प्रमुख रूप से 11 अगों को महावीर वाणी के रूप मे आगम प्रमाण के रूप में स्वीकार करती है किन्तु वह 12 उपाग 4 मूल सूत्र 4 छेद सूत्र एव एक आवश्यक सूत्र इस प्रकार 21 आगमो को भी 11 अगो से अविरुद्ध होने के कारण प्रमाण मानती है। यही नहीं यह परम्परा उसी टीका, निर्युक्ति, चूर्णि या भाष्य को प्रमाण मानती है जो 11 अगो से अविरुद्ध हो।

जैनागमों का अग सूत्र और अग बाह्य सूत्र के रूप जो विवेचन नन्दी सूत्र आदि आगमों में उपलब्ध होता है, उसके आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि अग साहित्य ही सर्वथा प्रमाणिकता की कोटि में आता है। चूकि अग बाह्य आगमो की रचना अग शास्त्रो को आधार मानकर पश्चात्वर्ती आचार्यों के द्वारा हुई है, अत उन्हें अग

शास्त्रा के संवादी के रूप में ही प्रमाणिक माना जा सकता है।

इस पर्याप्त मतभेद के होते हुए भी एवं अंग बाह्य होते हुए भी उत्तराध्ययन सूत्र की प्रमाणिकता सम्पूर्ण श्वेताम्बर परम्परा में निर्विवाद है, यही नहीं कुछ आचार्यों ने इस अपुष्ट यागरण के रूप में आग शास्त्र से भी अधिक महत्त्व प्रदान किया है। इसी दृष्टि से इस पर टीका, चूर्णि, भाष्य आदि लिखने के सार्वाधिक प्रयास हुए हैं।

यथार्थ में आगमो के सर्वांगीण अध्ययन से यह लगता भी है कि उत्तराध्ययन सूत्र एक निष्कर्षात्मक आगम है। जैनागमो को एक अपेक्षा से जो द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग एवं चरण करणानुयोग के रूप में चार भागों में विभक्त किया है, उनमें भिन्न-भिन्न आगम भिन्न-भिन्न अनुयोगो में समाहित होते हैं, जबकि उत्तराध्ययन सूत्र में न्यूनाधिक रूप से लगभग चारों अनुयोगो की विषय वस्तु उपलब्ध होती है। इसी अपेक्षा से इस आगम को हम जैनागम क्षीर-सागर का नवनीत कह सकते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र की विषय वस्तु पर दृष्टिपात करने पर हमें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ सभी अनुयोगो का निष्यन्द या समुच्चय रूप आकर ग्रन्थ है।

इस आगम में कुल 36 अध्ययन हैं

(1) विनयश्रुत, (2) परीषह प्रविभक्ति, (3) चतुरंगीय, (4) असंस्कृत, (5) अकाममरणीय, (6) क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय, (7) उरभ्रीय, (8) कापिलीय, (9) नमिप्रव्रज्या, (10) द्रुमपत्रक, (11) बहुश्रुत, (12) हरिकेशीय, (13) चित्त सम्भूतीय, (14) इषुकारीय, (15) सभिक्षुक, (16) ब्रह्मचर्य समाधि स्थान, (17) पाप श्रमणीय, (18) संजतीय, (19) मृगापुत्रीय (20) महानिग्रन्थीय, (21) समुद्रपालीय, (22) रथनेमीय, (23) केशि-गौतमीय, (24) प्रवचनमाता, (25) यज्ञीय, (26) समाचारी, (27) खलुंकीय, (28) मोक्षमार्ग-गति, (29) सम्यक्त्व पराक्रम, (30) तपोमार्ग-गति, (31) चरण-विधि, (32) अप्रमाद-स्थान, (33) कर्मप्रकृति, (34) लेश्याध्ययन, (35) अनगार-मार्ग-गति, (36) जीवा-जीव-विभक्ति।

इन 36 अध्ययनो में न्यूनाधिक रूप में चारो अनुयोगो का समावेश है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि उत्तराध्ययन सूत्र शास्त्रो का शास्त्र है अथवा आगमो का "की बोर्ड" है। इसके द्वारा अध्यात्म को ही नहीं, जीवन दर्शन को सर्वांगीण रूप से समझने एवं यथा तथ्य रूप से जीने की मौलिक दृष्टि प्राप्त होती है।

उत्तराध्ययन सूत्र में जहा वैराग्य-साधना एवं आत्म सिद्धि का विमल दर्शन प्राप्त होता है, वहाँ व्यावहारिक जीवन को सुव्यवस्थित एवं शालीन बनाने के निर्देश भी स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिष्टाचार के सामान्य नियमो का भी प्राय लोप होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में उत्तराध्ययन सूत्र के दिशा निर्देश जीवनशैली में बदलाव ला सकते हैं। आवश्यकता है इन निर्देशों के अनुशीलन की। उदाहरण के लिए एक-दो ही गाथांश लें-

"णापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा णालीयं वए " उत्त अ 1/4

"... पियं करे पियं वाई, से सिक्खं लद्धु मरिहई" उत्तर अ 11/14

अर्थात् "व्यक्ति बिना पूछे न बोले, पूछने पर भी असत्य न बोले।"

''सदेव प्रिय बोलने वाला एव प्रिय करने वाला ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी होता ह।''

ऐसे एक नहीं अनेक सूक्त हैं जो जीवन शैली को स्वस्थ दिशा प्रदान कर सकते हैं और इन अर्थों मे हम उत्तराध्ययन सूत्र के सार्वत्रिक एव सार्वकालिक महत्त्व को अच्छी तरह समझ सकते है।

इसी आधार पर वैदिक वाङ्मम मे गीता को जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान जैन वाङ्मय म उत्तराध्ययन सूत्र को प्राप्त हुआ है। उत्तराध्ययन सूत्र का स्वाध्याय जीवन दर्शन का स्वाध्याय माना जा सकता है।

या उत्तराध्ययन सूत्र पर अनेकानेक टीकाए-व्याख्या-विवेचनाए हुई ह तथापि अच्छाईयों का जितना प्रसार फलाव हो उतना श्रेष्ठ हे, इसी आधार पर प्रस्तुत सम्पादन को लिया जा सकता है। क्योकि मै यह कहने की धृष्टता नहीं कर सकता कि मैंने इसमे कुछ नवीन सयोजन किया है।

अ भा साधुमार्गी परीक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम मे उत्तराध्ययन सूत्र का समावेश है ओर कार्यकर्ताओ को अपने अनुकूल सस्करण की कमी खटक रही थी, जिसम सस्कृत छाया, शब्दार्थ, भावार्थ एव टिप्पणिया आदि का समुचित सयोजन हो।

लगभग 9 वर्ष पूर्व मुझे आचार्य देव का निर्देश मिला कि उत्तराध्ययन सूत्र का शब्दार्थ, भावार्थ विद्यार्थियो के अनुकूल तैयार हो सके तो श्रेष्ठ रहेगा और मैंने लगभग 6 वर्ष पूर्व चित्तौडगढ के वर्षावास मे उत्तराध्ययन सूत्र की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि तैयार कर दी थी। आज वह कृति आपके हाथो मे है। आप इस महत्तम ग्रन्थ द्वारा जीवन जीने की कला सीखे एव आत्म कल्याण की दिशा मे जीवन को सार्थकता प्रदान कर। यही मगल मनीषा है।

इसके शब्दार्थ की पाण्डुलिपि तैयार करने मे एव प्रूफ सशोधन मे ब्यावर निवासी श्री ज्ञानचन्द जी ललवानी की पतिभा सपन्न सुपुत्री सुश्री सगीता ललवानी ने काफी श्रम किया, अत उनके सहयोग को भी भुलाया नहीं जा सकता।

इस प्रसग पर मैं आचार्य देव के मगल आशीर्वाद एव दिशा निर्देश को तो स्वीकार करूगा ही साथ ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोगिया का आभार भी नहीं भुलाया जा सकता है।

दिनाक 13-01-96
उदयपुर, पौषधशाला

शान्ति मुनि

◆ ◆ ◆

प्रकाशकीय

"पणया वीरा महावीहिं" वीर पुरुष महानता के पथ के प्रति प्रणत समर्पित होते हैं। सयम वीरता का पथ है, इसलिए वह महान् है, महत् है। इस पथ पर चरण न्यास करने वाले वीर हैं, विज्ञ हैं।

इस पथ पर समारूढ होने वाले विज्ञ, जब आगम-पिटकों के गहन अध्ययन, मनन, अनुशीलन में डुबकिया लगाते हैं, तब वे कबीरजी की "डूबो सो तिरि गयो" की उक्ति को चरितार्थ कर दिखाते हैं। ऐसा ही कुछ घटित हुआ आचार्य श्री नानेश के सुशिष्य महास्थविर श्री शान्ति मुनि जी म सा के जीवन में, जिन्होंने आगम-पिटकों, टीका-चूर्णि, भाष्य, न्याय, दर्शन आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर सुविज्ञता, दक्षता को प्रकट कर साहित्य के क्षेत्र में एक अनूठा कीतिमान स्थापित किया है। अब तक आपकी प्रवचन, लिखित, सम्पादित 90 से अधिक रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपके प्रवचनो मे एक विशेषता है कि वे उच्च कोटि के विद्वानो के लिए जितने बोधगम्य होते हैं, उससे भी कहीं अधिक बालको व छात्रो के लिए हृदयग्राही, सुरुचिपूर्ण होते हैं। आपके प्रवचनो से एक ओर सामाजिक, आध्यात्मिक उत्क्राति हुई है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय चरित्र निर्माण मे अनूठी प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई है। आपके प्रभावोत्पादक उपदेशो का ही परिणाम है कि दाता में राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के उद्देश्य पूर्वक नानेश शिक्षण सस्थान की स्थापना हुई।

अ भा साधुमार्गी जैन श्रावक सघ एव श्री हुक्मगच्छीय साधुमार्गी शान्त क्रान्ति सघ पर महास्थविर मुनि श्री का अनल्प उपकार है। या यो कह सकते हैं कि यह सघ उन्हीं की कर्मठता का सुपरिणाम है। अस्तु महास्थविर श्री जी के साहित्य के बढते हुए आकर्षण को देख कर सघ ने अपनी आर्थिक क्षमताओ की सीमा से अलग हट कर सन् 1997 तक के साहित्य को प्रकाशित करने का साहस पाठको के हितार्थ जुटाया है।

मुनिश्री की लेखनी किसी एक विषय का ही स्पर्श नहीं करती है, वह चिन्तन, कथा, काव्य, उपन्यास, प्रवचन, गीता, तत्त्वविवेचन आदि विभिन्न विषयो का स्पर्श करते हुए आगे गतिशील है। मुनिश्री ने लगभग सभी विषयो पर अपना स्वतत्र एव सशक्त चिन्तन प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत विशाल ग्रन्थ श्री उत्तराध्ययन सूत्र का सम्पादन-अनुवाद महास्थविर जी म सा ने आचार्य श्री नानेश की उपस्थिति में ही कर लिया था और सम्पूर्ण पाण्डुलिपि आचार्य श्री नानेश के करकमलो मे समर्पित भी कर दी थी, किन्तु किन्हीं अपरिहार्य कारणो से इसका मुद्रण नहीं हो पाया।

हमारे नवोदित सघ का यह सौभाग्य है कि सम्पूर्ण आगमा के निष्यन्द रूप इस आगम को प्रकाशित करने का सुअवसर हमें प्राप्त हो रहा है। प्रस्तुत आगम के सम्पादन-अनुवादन में महास्थविर जी म सा ने जो श्रम किया है वह बेजोड़ है। सघ उनका अत्यधिक आभार एव उपकार मानता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन म मुम्बई के लब्ध प्रतिष्ठित रत्न व्यवसायी उदारमना श्री शान्तिलाल जी सांखला के द्वारा अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ एतदर्थ सघ उनका आभार व्यक्त करता है तथा हमारा सघ अपेक्षा करता है कि श्रीयुत् सांखला साहब का उदार हृदय सघ को मुक्त-हस्त सहयोग करता रहेगा।

अध्यक्ष — **गेहरीलाल बया**

महामत्री — **धर्मीचन्द कोठारी**

◆ ◆ ◆

श्रीमान् शांतिलालजी सांखला

रत्न उद्योग व्यवसायी



शातिलालजी साखला



82 वर्षीय पिता दानवीर सेठ श्री माणकचन्दजी साखला



79 वर्षीय माता सेठानी श्रीमती भवर कवर साखला



श्रीमती कमला देवी पत्नी श्री शान्तिलालजी साखला

आप एक प्रतिभाशाली, मिलनसार, धर्मालु एव साहसी उद्योगपति है। आप अपनी कर्मठता, ईमानदारी एव व्यवसाय निष्ठा के लिए लोकप्रिय है। आपका जन्म जेठाना ग्राम जिला अजमेर (राज) मे हुआ है। आप 48 वर्ष के है। आप पिछले 20 वर्षो से मुम्बई मे विराज रहे है। मुम्बई मे 125 पचरत्न ओपेरा हाउस पर आपका ऑफिस है। एक्सपोर्ट इम्पोर्ट का हीरो का व्यवसाय है।

काम ही पूजा आपके जीवन का मूल मत्र है। आप स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति है। स्वावलम्बन एव आत्म निर्भरता के आप पोषक है। अल्प आयु मे ही आपने जैन समाज मेजो स्तुत्य स्थान प्राप्त कर लिया है वह अत्यन्त सराहनीय एव प्रशसनीय है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी उम्र 46 वर्ष आपके जीवन प्रगति मे सक्रिय सहभागी है। आपने शालीनता विनम्रता एव उदारता से पारिवारिक जीवन को सरस एव मधुर बनाया है। आपके तीन पुत्र संजय कुमार अमित कुमार व मनीष कुमार साखला है। सभी पुत्र व्यवसाय मे निपुण है एव सुचारु रूप से सहयोग दे रहे है। एकमात्र पुत्री सरोज कुमारी पत्नी पंकज कुमार बागरेचा जयपुर निवासी है।

आपके सद प्रयत्नो एवं उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग से ही सघ श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन श्रावक संघ के अन्तर्गत उत्तराध्ययन सूत्र का प्रकाशन सम्भव हो पाया है जो एक अमूल्य निधि है।

सघ आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

विनय श्रुत-प्रथम अध्ययन

उत्थानिका

प्रभु महावीर की धर्म देशना मे एक बात पुन -पुन स्पष्ट हुई है, वह है धर्म के मूल के सन्दर्भ मे। प्रभु महावीर ने विनय को धर्म का मूल कहा है। अपनी प्रथम देशना से लेकर अन्तिम देशना तक अनेक बार प्रभु ने विनय धर्म का प्रतिपादन किया है। जिसे श्रुति परम्परा ने "अपुट्ठवागरणा" सज्ञा दी है उस चरम देशना मे तो प्रभु ने दु ख और सुख के कारण पुण्य-पाप के फल निर्देशा का अनेक घटना प्रसगो के द्वारा उल्लेख करने के पश्चात् धर्म तत्त्व के प्रतिपादन का प्रारम्भ ही विनयाध्ययन के रूप मे किया है। वही विनयाध्ययन उत्तराध्ययन सूत्र का "विनय-श्रुत" नामक प्रथम अध्ययन है।

४६८ विक्रम पूर्व वर्षावास की वेला मे अपापापुर के महाराजा हस्तिपाल की राजसभा-धर्म सभा के रूप मे सुशोभित हो रही थी। उस धर्मसभा के नायक थे इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर प्रभु महावीर।

कार्तिक अमावस्या की वह धर्मसभा ही उनकी अन्तिम धर्मसभा अथवा धर्म देशना थी। उस धर्म देशना में धम के मूल विनय के सन्दर्भ मे जो कहा और उनके पट्ट शिष्य आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने आराध्य प्रभु से जो कुछ सुना, उसे ही उन्हाने उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन के रूप में अपने प्रिय शिष्य आर्य जम्बू को समझाने का प्रयास किया है।

विनय क्या है? इस जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत अध्ययन म पारिभाषिक सन्दर्भ मे न देकर उसकी फलश्रुति अर्थात् विनीत एव अविनीत विनेय-शिष्य के व्यवहारो के आधार पर दिया है। विनीत और अविनीत शिष्य के आचरण ही विनय और अविनय की परिभाषा को स्पष्ट कर देते हैं।

सही अर्थों मे विनय किंवा अविनय चेतना की भावात्मक स्थितिया अथवा भाव तरगे हैं। अत उन भाव तरगा से उत्पन्न व्यवहारो के द्वारा, जो कि उन्हीं के प्रतिबिम्ब होते हैं, विनय और अविनय को समझा जा सकता है और यही प्रयत्न यहा प्रस्तुत हुआ है।

विनीत और अविनीत के व्यवहारो को स्पष्ट करते हुए इस अध्ययन में कहा गया है कि ज्ञान प्राप्ति म जिस चित्त दशा की अपेक्षा होती है वही चित्त दशा विनय कहलाती है और वह चित्त दशा है अक्रोध, विनम्र, सरल, अहकार रहित, अनाग्रही। इससे विपरीत जिस चित्त दशा में कुटिलता, क्रूरता और अहकार सव्याप्त है, उसे अविनी कहा जाता है। ऐसी चित्त दशा वाला व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति का अथवा आत्मज्ञान के प्रवेश द्वार तक पहुचने अधिकारी तो नहीं होता है प्रत्युत स्थान स्थान पर अपमानित प्रताडित भी होता है। परिणामत उसकी समस्त सृजनात्मक शक्ति का विध्वस की दिशा में उपयोग होने लग जाता है। इस अपभ्राजन के कारण

बन जाता है और अपने स्वय के जीवन का ही अहित करता रहता है। वह अपने जीवन मे उच्च आदशात्मक जैसा कोई भी कार्य निष्पन्न नहीं कर सकता है।

इस अध्ययन में जिस गहन तथ्य को अभिव्यक्त किया गया है, वह तथ्य है गुरु-शिष्य का सेव्य-सेवक भाव या आराध्य-आराधक भाव। जब शिष्य गुरु को सेव्य अथवा आराध्य पद पर प्रतिष्ठित करता है तभी वह अपने अन्तरग में विनय गुण को प्रतिष्ठित कर सकता है। गुरु के प्रति सम्पूर्ण समर्पणा ही शिष्यत्व की सार्थकता है या विनय की प्राण प्रतिष्ठा है। जहा गुरु के इगितों पर ही जीवन की प्रत्येक गतिविधि स्पन्दित होती है वहीं विनीत शिष्यत्व का भाव बोध जागृत होता है।

किन्तु इस समर्पणा का अर्थ दासत्व अथवा स्वार्थ पोषण कथमपि नहीं है। यह समर्पण किसी प्रकार की गुलामी नहीं है, जिसमें गुरु को प्रसन्न करके उनसे कुछ ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करने की छद्म आकाक्षाए छिपी हो। एसे स्वार्थ पोषी छद्म पूर्ण व्यवहार को आर्य सुधर्मा विनय नहीं, विनय का ढोग कहते हैं।

विनय तो अपने परमोपकारी, भवतारक गुरु के प्रति अनौपचारिक अनारोपित भाव से समर्पित होकर उनके समस्त गुण परिकर एव आगमिक अनुभूति मूलक ज्ञान को आत्मसात कर लेना है।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि शिष्य मे जितनी मात्रा मे समर्पण होता है, गुरुत्व उतनी ही मात्रा मे पिघल कर अपनी ज्ञान धारा को शिष्य के भीतर उण्डेलता है। अत प्रस्तुत अध्ययन मे यह स्पष्ट किया गया है कि दुर्गुणी, अविनीत शिष्य गुरु से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता है और ऐसी स्थिति में वह गुरु को ही कोसने, सताने अथवा अपने मार्ग से विचलित करने का प्रयास करता है।

इसके विपरीत विनयी शिष्य विना किसी स्वार्थ लिप्सा अथवा दिखावे के गुरु के प्रति समर्पित होता है। उसका समर्पण गुरु के अगाध ज्ञान एव उनके गुणो के प्रति होता है। ज्ञान और गुणो के प्रति यह समर्पण भाव एव तदनुरूप आचरण ही गुरु को प्रमुदित-सन्तुष्ट कर देता है और परिणामत गुरु की निष्कारण कृपा उस शिष्य के प्रति बरसने लगती है। वह गुरु शिष्य के अन्तरग मे छिपी हुई आध्यात्मिक शक्तिया के जागरण मे निमित्त का कार्य करता है। गुरु वह कलाकार होता है जो शिष्य की अनघड आत्मा को अपने अनुरूप ही नहीं उससे भी अधिक परमात्मरूप में रूपायित करने का महान् कार्य करता है।

इस अध्ययन का मूल शिक्षा बोध इतना ही है कि परम ज्ञान की उपलब्धि के लिये विनीत बनकर गुरु के प्रति समर्पित होना आवश्यक है और अविनय के समस्त आचरणो से अपने आपको बचाना भी आवश्यक है।

साथ ही गुरु की सन्निधि में शिष्य के आसन शयनादि के व्यवहार कैसे होने चाहिये, ये निर्देश भी प्रस्तुत अध्ययन में दिये गए हैं। आज के सयति-विनेयो के लिये ही नहीं आम विद्यार्थी शिष्यों के लिये भी प्रस्तुत अध्ययन का चिन्तन मनन एव अनुशीलन अति उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

□□□

विनय श्रुत-प्रथम अध्ययन

सूक्ति साराश •

ममता-ससार, अनासक्ति साधना।
वस्तु निष्ठ परिभाषा-गृह-ममत्व का त्यागी अनगार ही पूर्ण साधक की कोटि मे आता है।

सुख-त्याग, विनय-स्वीकार-साधना
प्राप्त सयोग-सुख सुविधा का त्याग करने वाला ही विनय धर्म का आराधक बन सकता है।

भय व प्रलोभन जन्य प्रवृत्ति विनय नहीं वह विनय धर्म का उपहास है।
भय अथवा प्रलोभन से की गई वैयक्तिक प्रतिपत्ति विनय नहीं गुलामी है,
गुलामी मे अहोभाव नहीं क्षुद्रता होती है, सम्मान नहीं प्रदर्शन होता है।

गुणो का समादर-विनय है।
ज्ञान-दर्शन चारित्र व तप एव तद्वान् के प्रति अहोभाव पूर्वक समादरता का भाव या व्यवहार विनय है।

समर्पण-शिष्यत्व, वात्सल्य गुरुत्व है।
शिष्य का समर्पण व गुरु का वात्सल्य जब प्रगाढता मे रूपान्तरित होता है,
तब शब्द प्रयोग निरर्थक-सा हो जाता है, केवल इगित-सकेत ही पर्याप्त होते हैं।

ज्ञान-शील का अनुशीलन है, अज्ञान-दु शील मे रमणता है।
ज्ञानी-शील-सदाचार को स्वस्थ जीवन का आधार मानता है,
अज्ञानी कदाचार-दु शील मे रमण करता है।

विनय-समादर, अविनय-तिरस्कार।
सदाचार युक्त विनयी सर्वत्र समादरणीय होता है,
अविनीत सडे कान की कुत्तिया की तरह सर्वत्र अनादृत-तिरस्कृत होता है।

सार्थक-आत्मा, निरर्थक-ससार।
विनीत सार्थक को ग्रहण करता है, निरर्थक का परित्याग।

केवल शरीर का चिन्तन-क्षुद्रता है।
आत्मा का चिन्तन-विराटता।
शरीर को ही जीवन मानकर उसी के लिये जीना, चिन्ता करना एव उसी की पोषणता में धन्यता का अनुभव करना क्षुद्र चिन्तन का द्योतक है, ऐसा चिन्तन वासना की गुलामी प्रदान करता है।

आवेश-आवग-चाण्डालिक कम है, सवेग-साधना।
आवेश-आवेग म किया गया कम चाण्डालिक कम है।
अत आवेश-आवेग में नहीं, सवेग में स्थिर रहना साधना है।

अपराध की स्वीकृति आराधना, अपराध का छिपाव विराधना।
चाण्डालिक कर्म द्रव्य-भाव दोनों दृष्टि से अपराध है।
सरलता पूर्वक अपराध स्वीकृति आराधना है।

दुष्ट अश्व चाबुक की मार चाहता है, अविनीत शिष्य पुन पुन डाट चाहता है।
दु शिक्षित अश्व की तरह पुन पुन प्रेरणा की अपेक्षा मत रखो।
सकत मात्र से समझने का प्रयास करो।

आत्म नियन्त्रण-सुख का आधार है।
स्वय पर, इन्द्रिया व मन पर नियन्त्रण साधने वाला ही उभय लोक में सुख पाता है।

हम स्वय अपने मित्र है, स्वय स्वय के शत्रु है।
आत्म नियन्त्रण स्वमैत्री है, स्वच्छन्दता स्वशत्रुत्व है। जो स्वय का मित्र है उसका कोई शत्रु हो ही नहीं सकता। जो स्वय का मित्र नहीं उसका कोई मित्र नहीं हाता।

स्वाधीनता मे सुख है, पराधीनता दु ख।
ज्ञानी स्वनियन्त्रण को स्वीकार करता है, अज्ञानी पर-दमन को।
आत्म नियत्रण स्वाधीनता है, पर दमन पराधीनता।

कटु वचन-विराधना, सम्यग् वचन आराधना।
पाप कृत्या के प्रेरक, मम भेदक व अनर्थक वचनों का प्रयोग विनय धर्म को विनष्ट कर देता है।

यथार्थ अनुशासन आत्महित कारक है, उसे सदैव स्वीकार करो।
विनयी अनुशासन को हितप्रद मानता है, अविनयी परतन्त्रता मानता है।

छिद्रान्वेषी मत बनो, स्वदोष देखो।
परदोष दर्शन अशान्ति है, स्वदोष दर्शन शान्ति का मूल है।

□□□

विणयसुयं पढमं अज्झयणं

विनयश्रुतं प्रथममध्ययनम्

विनय-श्रुत

1 विनय प्ररूपण की प्रतिज्ञा

मूल गाथा- सजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणय पाउकरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे॥1॥

सस्कृत छाया- सयोगाद् विप्रमुक्तस्य, अनगारस्य भिक्षो ।
विनय प्रादु करिष्यामि, आनुपूर्व्या श्रृणुत मे॥१॥

अन्वयार्थ-सजोगा-सयोग से, विप्पमुक्कस्स-विप्रमुक्त-रहित, अणगारस्स-अनगार, भिक्खुणो-भिक्षु के, विणय-विनय धर्म को, पाउकरिस्सामि-प्रकट करूगा, आणुपुव्वि-अनुक्रम से, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद- आर्य सुधर्मा स्वामी आर्य जम्बू को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं- समस्त सयोगा-आभ्यन्तर रागादि और बाह्य परिवारादि से मुक्त अनगार-गृह त्यागी भिक्षु के विनय-धर्म को मैं अनुक्रम से प्रकट करूगा, तुम मुझसे ध्यान पूर्वक सुनो।

2 विनीत शिष्य का लक्षण

मूल गाथा- आणाणिद्देसकरे, गुरुणमुववायकारए।
इगियागारसपण्णे, से विणीए त्ति वुच्चई॥2॥

सस्कृत छाया- आज्ञानिर्देशकर , गुरूणामुपपातकारक ।
इगिताकारसपन्न , स विनयीत्युच्युते॥२॥

अन्वयार्थ-आणा-आज्ञा का, णिद्देसकरे-निर्देशानुसार करने वाला, गुरुण-गुरुओ के, उववायकारए-समीप रहने वाला, (तथा उनके कार्य को करने वाला) इगियागार-गुरुओं के इंगित और आकार को, सपण्णे-भली भाति जानने वाला, से-वह, विणीए-विनीत है, त्ति-इस प्रकार से, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो गुरु-निर्देशो का अनुसरण करता है, सदा गुरु की सन्निधि में वास करता है, गुरु के इंगित-आकार अर्थात् सकेतो एव मुखाकृति के भावो को समझता है, वह "विनीत" कहलाता है।

3 अविनीत शिष्य का लक्षण

मूल गाथा- आणाऽणिद्देसकरे, गुरुणमणुववायकारए।
पडिणीए असबुद्धे, अविणीए त्ति वुच्चइ॥3॥

सस्कृत छाया- आज्ञाऽनिर्देशकर, गुरूणामनुपपातकारक ।
प्रत्यनीकोऽसबुद्ध, अविनीतरयुच्यते ॥३॥

अन्वयार्थ-आणा-आज्ञा को, अणिद्देसकरे-अस्वीकार करने वाला, गुरुण-गुरुओ के, अणुववायकारए-समीप न बैठने वाला, पडिणीए-प्रतिकूल आचरण करने वाला, असबुद्धे-बोध रहित, अविणीए-अविनीत है, त्ति-इस प्रकार से, वुच्चइ-कहा जाता है।

भावानुवाद- जो गुरु-आज्ञाओ का उल्लघन करता है, गुरु के समीप नहीं रहता, गुरु-निर्देशो के प्रतिकूल आचरण करता है, असबुद्ध-सम्बन्धित तत्त्व ज्ञान से रहित है, वह "अविनीत" कहलाता है।

4 अविनीत दु शील शिष्य का अनिष्कासन

मूल गाथा- जहा सुणी पूइकण्णी, णिक्कसिज्जइ सव्वसो।
एव दुस्सीलपडिणीए, मुहरी णिक्कसिज्जइ॥4॥

सस्कृत छाया- यथा शुनी पूतिकर्णी, निष्कास्यते सर्वत ।
एव दु शील प्रत्यनीक, मुखरि निष्कास्यते ॥४॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, पूइकण्णी-सडे कानों वाली, सुणी-कुत्ती, सव्वसो-सभी स्थानों से, णिक्कसिज्जइ-निकाली जाती है, एव-इसी तरह, दुस्सील-दु शील, पडिणीए-प्रतिकूल आचरण करने वाला, मुहरी-वाचाल शिष्य, णिक्कसिज्जइ-(सभी स्थानों से) निकाला जाता है।

भावानुवाद-जैसे-सडे कान वाली कुतिया को सभी स्थानो से घृणापूर्वक निकाला जाता है, उसी प्रकार से गुरु के प्रतिकूल आचरण करने वाले दु शील-वाचाल शिष्य को भी सभी जगहों से निकाल दिया जाता है।

5 दु शील शिष्य का व्यवहार

मूल गाथा- कणकुंडगं चइत्ताण, विट्ठ भुंजइ सूयरो।
एव सील चइत्ताण, दुस्सीले रमइ मिए॥5॥

सस्कृत छाया- कणकुण्डक त्यक्त्वा, विष्ठा भुङ्क्ते शूकर ।
एव शील त्यक्त्वा, दु शीले रमते मृग ॥५॥

अन्वयार्थ-सूयरो-(जैसे) सूअर, कण-चावल के, कुंडगं-कुण्डे को, चइत्ताणं-छोड़कर, विट्ठं-विष्ठा को, भुंजइ-खाता है, एवं-इसी प्रकार, मिए-मृग के समान अज्ञानी शिष्य, सीलं-शील सुन्दर आचार को, चइत्ताणं-छोड़कर, दुस्सीले-दुराचार में, रमइ-रमण करता है।

भावानुवाद- जिस प्रकार सूअर चावलो की कुट्टी को छोडकर विष्ठा-अशुचि खाता है, उसी प्रकार मृग अर्थात् पशु-बुद्धि अज्ञानी शिष्य शील-सदाचार को छोडकर दु शील-दुराचार मे रमण करता है।

6 विनयाचरण का उपदेश

मूल गाथा- सुणियाभाव साणस्स, सूयरस्स णरस्स य।
विणए ठवेज्ज अप्पाण, इच्छतो हियमप्पणो॥६॥

सस्कृत छाया- श्रुत्वाऽभाव शुन , शूकरस्य नरस्य च।
विनये स्थापयेदात्मानम्, इच्छन् हितमात्मन ॥६॥

अन्वयार्थ-साणस्स-कुतिया के, सूयरस्स-सूअर के, य-और, णरस्स-मनुष्य के, अभाव-कटुफल को, सुणिया-सुनकर, अप्पणो-आत्मा के, हिय-हित को, इच्छतो-चाहते हुए, अप्पाण-अपनी आत्मा को, विणए-विनय धर्म मे, ठवेज्ज-स्थापित करना चाहिए।

भावानुवाद-सडे कान वाली कुतिया एव विष्ठा खाने वाले सूअर के अभाव-अपमान जनक दृष्टान्तो को सुनकर अर्थात् कदाचार से होने वाले अपमान जनक व्यवहार को जानकर आत्महितार्थी मुनि को अपनी आत्मा को विनय धर्म मे स्थापित करना चाहिये।

7 विनयाचार का परिणाम

मूल गाथा- तम्हा विणयमेसिज्जा, सील पडिलभेज्जओ।
बुद्धपुत्त णियागट्ठी, ण णिक्कसिज्जइ कण्हुई॥७॥

सस्कृत छाया- तस्माद् विनयमेषयेत्, शील प्रतिलभेत यत ।
बुद्धपुत्रो नियागार्थी, न नि कास्यते कुतश्चित्॥७॥

अन्वयार्थ-तम्हा-इसलिए, विणय-विनय का, एसिज्जा-आचरण करे, जओ-जिससे कि, सील-शील को, पडिलभे-प्राप्त करे, णियागट्ठी-मोक्ष को चाहने वाला, बुद्धपुत्त-बुद्ध-आचार्य पुत्र (शिष्य), कण्हुई-किसी स्थान से भी, ण-नहीं, णिक्कसिज्जइ-निकाला जाता है।

भावानुवाद-इसलिये विनय धर्म का अनुशीलन करना चाहिये, जिससे कि शील-सदाचार की प्राप्ति हो। बुद्ध पुत्र अर्थात् विचक्षण गुरु का पुत्र के समान प्रिय मोक्षार्थी शिष्य कहीं से भी नहीं निकाला जाता है।

8 प्रशान्त और विनीत होकर सार्थक पदो की शिक्षा लेना

मूल गाथा- णिसते सियाऽमुहरी, बुद्धाण अतिए सया।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, णिरट्ठाणि उ वज्जए॥८॥

सस्कृत छाया- नि शान्त स्यादमुखरि , बुद्धानामन्तिके सदा।
अर्थयुक्तानि शिक्षेत, निरर्थानि तु वर्जयेत्॥८॥

अन्वयार्थ-शिष्य, बुद्धाण-गुरुजनों के, अतिए-समीप मे, णिसते-प्रशान्त, सिया-होवे, अमुहरी-परिमित भाषी होवे (तथा), अट्ठजुत्ताणि-अर्थयुक्त पदों को, सिक्खिज्जा-सीखे, णिरट्ठाणि-निरर्थक पदा को, वज्जए-छाड दे।

भावानुवाद-शिष्य को प्रबुद्ध गुरुजना के समीप सदैव शान्त भाव से अमुखर अर्थात् वाचालता रहित होकर रहना चाहिये (वहा) अर्थ युक्त पदो को अर्थात् सार भूत तत्त्वो को सीखे, निरर्थक चर्चा का छाड दे।

9 अनुशासनात्मक विनय के सूत्र

मूल गाथा- अणुसासिओ ण कुप्पिज्जा, खंतिं सेविज्ज पडिए।
खुड्डेहिं सह ससग्गिं, हासं कीडं च वज्जए॥९॥

सस्कृत छाया- अनुशासितो न कुप्येत्, क्षाति सेवेत पण्डित ।
क्षुद्रै सह ससर्ग , हास्य क्रीडा च वर्जयेत्॥९॥

अन्वयार्थ-अणुसासिओ-अनुशासित शिष्य, ण कुप्पिज्जा-क्राध न कर, खंति-क्षमा को, सेविज्ज-सेवन करे, पडिए-विद्वान् साधु, खुड्डेहिं-क्षुद्रो के, सह-साथ, ससग्गि-ससर्ग को, हास-हास्य को, च-और, कीड-क्रीडा को, वज्जए-छोड देवे।

भावानुवाद-गुरु के द्वारा अनुशासन-शिक्षा दिये जाने पर विचक्षण शिष्य क्रोध न करे, क्षमा धारण करे। क्षुद्र वृत्ति अर्थात् तुच्छ बुद्धि व्यक्तियो के ससर्ग-सम्पर्क से दूर रहे और उनके साथ हसी-मजाक आदि किसी प्रकार की क्रीडा न करे।

10 अनुशासन प्रिय शिष्य की क्रिया

मूल गाथा- मा य चडालियं कासी, बहुयं मा य आलवे।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगओ॥१०॥

सस्कृत छाया- मा च चाण्डालिक कार्षी , बहुक मा चालपेत्।
कालेण च अधिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगओ॥१०॥

अन्वयार्थ-शिष्य, चडालिय-क्रोध वश असत्य भाषा (चाण्डालिक कर्म), मा कासी-न बोल (न करे), य-और, बहुय-बहुत अधिक, मा-नहीं, आलवे-बोले, य-और, कालेण-काल के समय म, अहिज्जित्ता-अध्ययन करके, तओ-इसके परचात्, एगओ-अकेले में (एकाकी), झाइज्ज-ध्यान (चिन्तन) करे।

भावानुवाद-विनीत शिष्य को चाहिये कि वह चाण्डालिक-क्रोधावेश में भी असत्य भाषण न करे। बहुत अधिक न बोले। अध्ययन के समय मे अध्ययन करे और उसक परचात् एकाकी ध्यान साधना म रमण करे।

11 सत्य का समावेश

मूल गाथा- आहच्च चडालियं कट्टु, ण णिण्हविज्ज कयाइवि।
कड कडे ति भासेज्जा, अकड णो कडे ति य॥११॥

संस्कृत छाया- आहत्य चाण्डालिकं कृत्वा, न निह्नुवीत कदापि च।
कृतं कृतमिति भाषेत्, अकृतं नो कृतमिति च॥११॥

अन्वयार्थ-आहच्च-कदाचित्, चडालिय-क्रोधादि वश असत्य (चाडालिक कर्म) कट्टु-बोले तो, कयाइवि-कभी भी, ण-नहीं, णिण्हविज्ज-छिपाए कड-किये हुए को, कडे-किया है, त्ति-इस प्रकार, य-और, अकड-नहीं किये हुए को, णो-नहीं, कडे-किया है, त्ति-इस प्रकार, भासेज्जा-भाषण करे (कहे)।

भावानुवाद-कदाचित् क्रोधावेश मे कोई असत्य भाषण या असत्कार्य कर लिया हो तो उसे भी छिपाए नहीं, किया हो तो "किया" कहे, और नहीं किया हो तो "नहीं किया" ऐसा कहे।

12 विनीत शिष्य की प्रवृत्ति और निवृत्ति

मूल गाथा- मा गलियस्सेव कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो।
कसं व दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए॥१२॥

संस्कृत छाया- मा गलिताश्व इव कशं, वचनमिच्छेत् पुनः पुनः।
कशमिव दृष्ट्वाऽऽकीर्णः, पापकं परिवर्जयेत्॥१२॥

अन्वयार्थ-जैसे, गलियस्स-गलित घोडा (अडियल), पुणो-पुणो-बार-बार, कस-चाबुक को चाहता है, इव-वैसे (शिष्य), वयण-गुरुओ के वचन को, मा-नहीं, इच्छे-चाहे, (किन्तु) आइण्णे-आकीर्ण-विनयवान् घोडा, कस-चाबुक को, दट्ठु-देखकर उन्मार्ग को छोडता है, व-वैसे (शिष्य गुरु के सकेत देखते ही), पावग-पाप कर्म को, परिवज्जए-छोड दे।

भावानुवाद-गलियार-अडियल घोडे के समान व्यवहार न करे। जैसे अडियल अश्व बार-बार चाबुक की अपेक्षा करता है, वैसे ही शिष्य गुरु वचनो की उपेक्षा करके उन्हे बार-बार शिक्षा देने को बाध्य न करे, अपितु आकीर्ण जाति के सुशिक्षित अश्व के समान चाबुक देखते ही उन्मार्ग छोड देने के समान, गुरु के सकेत मात्र से पाप-पथ असदाचरण का परित्याग कर दे।

13. प्रसन्नता-अप्रसन्नता का मूलाधार

मूल गाथा- अणासवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकरंति सीसा।
चित्ताणुया लहुदक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयंपि॥१३॥

संस्कृत छाया- अनाश्रवा स्थूलवचसः कुशीलाः, मृदुमपि चण्डं प्रकुर्वते शिष्याः।
चित्तानुगा लघुदाक्ष्योपपेताः, प्रसादयेयुस्ते खलु दुराश्रयमपि॥१३॥

अन्वयार्थ-अणासवा-गुरु आज्ञा न मानने वाले थूलवया-बिना विचारे बोलने वाले, कुसीला-कुत्सित आचार वाले, सीसा-शिष्य, मिउंपि-मृदु स्वभाव वाले गुरु को भी, चंड-क्रोधी, पकरंति-बना देते हैं, (जबकि गुरु के) चित्ताणुया-चित्त के अनुसार चलने वाले, दक्खोववेया-कार्य दक्षता से सम्पन्न ते-वे विनीत शिष्य, हु-अवश्य ही, दुरासयंपि-अति क्रोधी गुरु को भी, लहु-शीघ्र, पसायए-प्रसन्न करते हैं।

19 अविनय का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **णेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजए।**
पाए पसारिए वा वि, ण चिट्ठे गुरुणंतिए॥१९॥

संस्कृत छाया- **नैव पर्यस्तिकां कुर्यात्, पक्षपिण्डं च संयतः।**
पादौ प्रसार्य वापि, न तिष्ठेद् गुरूणामन्तिके॥१९॥

अन्वयार्थ-संजए-संयमी साधु, गुरूण-गुरुओं के, अंतिए-समीप में, पल्हत्थियं-पालथी लगाकर, णेव-नहीं बैठ, च-और, पक्ख-पिंड (दोनों भुजाओं से घुटनों को आवेष्टित)-पक्ष पिण्ड, कुज्जा-करके, वा-अथवा पाए-पैरों को पसारिए-फैलाकर, वि-भी, ण-नहीं, चिट्ठे-बैठे।

भावानुवाद-विनीत संयति, गुरु के समक्ष पालथी लगाकर तथा दोनों हाथों से घुटनों को बांध कर न बैठे। पैर फैलाकर भी नहीं बैठना चाहिए।

20 वाग्विनय का स्वरूप

मूल गाथा- **आयरिएहिं वाहितो, तुसिणीओ ण कयाइ वि।**
पसायपेही णियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरु सया॥२०॥

संस्कृत छाया- **आचार्यैर्व्याहृतः, तूष्णीको न कदापि च।**
प्रसादप्रेक्षी नियागार्थी, उपतिष्ठेद् गुरुं सदा॥२०॥

अन्वयार्थ-आयरिएहिं-आचार्यों के द्वारा, वाहितो-बुलाया हुआ (शिष्य), कयाइ-कदाचित्, वि-भी, तुसिणीओ-मौन (चुपचाप), ण-न होवे (किन्तु), पसाय पेही-(गुरु का) प्रसाद प्रेक्षी (कृपाकांक्षी), णियागट्ठी मोक्ष की इच्छा रखने वाला (शिष्य), सया-सदा, गुरु-गुरु के समीप, उवचिट्ठे-उपस्थित रहे (ठहरे)।

भावानुवाद-प्रसाद प्रेक्षी अर्थात् गुरु की कृपा का आकांक्षी मुमुक्षु-मोक्षार्थी शिष्य आचार्यों द्वारा बुलाए जाने पर किसी भी स्थिति में मौन होकर चुपचाप बैठा न रहे, अपितु सदा गुरु की सन्निधि में उपस्थित रहे।

21 गुरु वचन की ग्रहणता

मूल गाथा- **आलवंते लवंते वा, ण णिसीएज्ज कयाइ वि।**
चइऊणमासणं धीरो, जओ जुत्तं पडिस्सुणे॥२१॥

संस्कृत छाया- **आलपति लपति वा, न निषीदेत् कदापि च।**
त्यक्त्वासनं धीरः, यतो युक्तं प्रतिश्रृणुयात्॥२१॥

अन्वयार्थ-(गुरु के द्वारा) आलवंते-एक बार बुलाने पर वा-अथवा [illegible] -बार [illegible]
कदाचित् भी, ण-नहीं, णिसीएज्ज-बैठा रहे (किन्तु), धीरो- [illegible] शिष्य,
चइऊण-छोड़कर, जओ जुत्तं-गुरु के वचनों को यत्नपूर्वक [illegible]

भावानुवाद-गुरु के द्वारा एक बार अथवा बार-बार आवाज देने पर, बुलाने पर बुद्धिमान शिष्य कभी भी बैठा न रहे, अपितु आसन का परित्याग करके उनके निर्देशो को सजगता पूर्वक सुने-स्वीकार करे।

22 विनय के साथ पृच्छा

मूल गाथा- **आसणगओ ण पुच्छेज्जा, णेव सेज्जागओ कयाइ वि।**
आगम्मुक्कुडुओ सतो, पुच्छिज्जा पजलीउडो॥२२॥

सस्कृत छाया- **आसनगतो न पृच्छेत, नैव शय्यागत कदापि।**
आगम्योत्कटिक सन्, पृच्छेत् प्राञ्जलिपुट ॥२२॥

अन्वयार्थ-(सुशिष्य) आसणगओ-आसन पर बैठा, ण-नहीं, पुच्छेज्जा-पूछे, णेव-न ही, सेज्जा-गओ-शय्या पर बैठा हुआ, कयाइ वि-कभी पूछे (किन्तु), आगम्म-समीप मे आकर, उक्कुडुओ सतो-उत्कुटुक आसन से बैठता हुआ, पजलीउडो-(विनयपूर्वक) हाथ जोडकर, पुच्छिज्जा-पूछे।

भावानुवाद-यदि शिष्य को गुरु से कुछ पूछना हो तो वह अपने आसन से अथवा शय्या पर बैठा-बैठा कभी भी गुरु से कुछ नहीं पूछे। उसे जो कुछ पूछना हो, गुरु के समीप पहुच कर उत्कुटुक-उकडू आसन से बेठकर अजलिवद्ध होकर पूछे।

23 गुरुजनो का कर्त्तव्य

मूल गाथा- **एव विणयजुत्तस्स, सुत्त अत्थ च तदुभय।**
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुय॥२३॥

सस्कृत छाया- **एव विनययुक्तस्य, सूत्रमर्थं च तदुभयम्।**
पृच्छत शिष्यस्य, व्यागृणीयाद् यथाश्रुतम्॥२३॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, विणय जुत्तस्स-विनय युक्त शिष्य के द्वारा, पुच्छमाणस्स-पूछने पर, (गुरु) सुत्त-सूत्र, अत्थ-अर्थ, च-और, तदुभय-दोनो को, जहासुय-जैसा सुना, जाना (वैसे), वागरिज्ज-कहे (वताए)।

भावानुवाद-गुरु के कर्त्तव्य का निर्देश करते हुए कहा गया है कि विनीत विनेय के द्वारा इस प्रकार विनय पूर्वक पूछने पर गुरु, यथाश्रुत अर्थात् जैसा उसने सुना-जाना हो, सूत्र, अर्थ और तदुभय-दोनो का शिष्य के समक्ष प्रतिपादन करे।

24 वचन विनय

मूल गाथा- **मुस परिहरे भिक्खू, ण य ओहारिणी वए।**
भासादोस परिहरे, माय च वज्जए सया॥२४॥

सस्कृत छाया- **मृषा परिहरेद् भिक्षु, न चावधारिणी वदेत्।**
भाषादोष परिहरेत्, मायां च वर्जयेत् सदा॥२४॥

19 अविनय का दिग्दर्शन

मूल गाथा- णेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंडं च संजए।
पाए पसारिए वा वि, ण चिट्ठे गुरुणंतिए॥१९॥

संस्कृत छाया- नैव पर्यस्तिकां कुर्यात्, पक्षपिण्डं च संयतः।
पादौ प्रसार्य वापि, न तिष्ठेद् गुरूणामन्तिके॥१९॥

अन्वयार्थ-संजए-संयमी साधु, गुरूण-गुरुओं के, अंतिए-समीप में, पल्हत्थियं-पालथी लगाकर, णेव-नहीं बैठे, च-और, पक्ख-पिंड (दोनों भुजाओं से घुटनों को आवेष्टित)-पक्ष पिण्ड, कुज्जा-करके, वा-अथवा पाए-पैरों को, पसारिए-फैलाकर, वि-भी, ण-नहीं, चिट्ठ-बैठे।

भावानुवाद-विनीत संयति, गुरु के समक्ष पालथी लगाकर तथा दोनों हाथों से घुटनों को बांध कर न बैठे। पैर फैलाकर भी नहीं बैठना चाहिए।

20 वाग्विनय का स्वरूप

मूल गाथा- आयरिएहिं वाहिंतो, तुसिणीओ ण कयाइ वि।
पसायपेही णियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया॥२०॥

संस्कृत छाया- आचार्यैर्व्याहृतः, तूष्णिको न कदापि च।
प्रसादप्रेक्षी नियागार्थी, उपतिष्ठेद् गुरुं सदा॥२०॥

अन्वयार्थ-आयरिएहि-आचार्यों के द्वारा, वाहिंतो-बुलाया हुआ (शिष्य), कयाइ-कदाचित्, वि-भी तुसिणीओ-मौन (चुपचाप) ण-न होवे (किन्तु), पसाय पेही-(गुरु का) प्रसाद प्रेक्षी (कृपाकांक्षी), णियागट्ठी-मोक्ष की इच्छा रखने वाला (शिष्य), सया-सदा, गुरुं-गुरु के समीप, उवचिट्ठे-उपस्थित रहे (ठहरे)।

भावानुवाद-प्रसाद प्रेक्षी अर्थात् गुरु की कृपा का आकांक्षी मुमुक्षु-मोक्षार्थी शिष्य आचार्यों द्वारा बुलाए जाने पर किसी भी स्थिति में मौन होकर चुपचाप बैठा न रहे, अपितु सदा गुरु की सन्निधि में उपस्थित रहे।

21 गुरु वचन की ग्रहणता

मूल गाथा- आलवंते लवंते वा, ण णिसीएज्ज कयाइ वि।
चइऊणमासणं धीरो, जओ जुत्तं पडिसुणे॥२१॥

संस्कृत छाया- आलपति लपति वा, न निषीदेत् कदापि च।
त्यक्त्वासनं धीरः, यतो युक्तं प्रतिश्रृणुयात्॥२१॥

अन्वयार्थ-(गुरु के द्वारा) आलवंते-एक बार बुलाने पर, वा-अथवा, लवंते-बार-बार बुलाने पर कयाइ वि कदाचित् भी, ण-नहीं णिसीएज्ज-बैठा रहे (किन्तु), धीरो-धैर्यवान (बुद्धिमान) शिष्य, आसणं-आसन को चइऊण-छोड़कर, जओ जुत्तं-गुरु के वचन को यत्नपूर्वक, पडिसुणे-स्वीकार करे।

भावानुवाद-गुरु के द्वारा एक वार अथवा बार-वार आवाज देने पर, बुलाने पर बुद्धिमान शिष्य कभी भी बैठा न रहे अपितु आसन का परित्याग करके उनके निर्देशो को सजगता पूर्वक सुने-स्वीकार करे।

22 विनय के साथ पृच्छा

मूल गाथा- **आसणगओ ण पुच्छेज्जा, णेव सेज्जागओ कयाइ वि।**
आगम्मुक्कुडुओ सतो, पुच्छिज्जा पजलीउडो॥२२॥

सस्कृत छाया- **आसनगतो न पृच्छेत, नैव शय्यागत कदापि।**
आगम्योत्कटिक सन्, पृच्छेत् प्राञ्जलिपुट ॥२२॥

अन्वयार्थ-(सुशिष्य) आसणगओ-आसन पर बैठा, ण-नहीं, पुच्छेज्जा-पूछे, णेव-न ही, सेज्जा-गओ-शय्या पर बैठा हुआ, कयाइ वि-कभी पूछे (किन्तु), आगम्म-समीप मे आकर, उक्कुडुओ सतो-उत्कुटुक आसन से बैठता हुआ, पजलीउडो-(विनयपूर्वक) हाथ जोडकर, पुच्छिज्जा-पूछे।

भावानुवाद-यदि शिष्य को गुरु से कुछ पूछना हो तो वह अपने आसन से अथवा शय्या पर बैठा-बैठा कभी भी गुरु से कुछ नहीं पूछे। उसे जो कुछ पूछना हो, गुरु के समीप पहुच कर उत्कुटुक-उकडू आसन से बैठकर अजलिवद्ध होकर पूछे।

23 गुरुजना का कर्त्तव्य

मूल गाथा- **एव विणयजुत्तस्स, सुत्त अत्थ च तदुभय।**
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुय॥२३॥

सस्कृत छाया- **एव विनययुक्तस्य, सूत्रमर्थ च तदुभयम्।**
पृच्छत शिष्यस्य, व्यागृणीयाद् यथाश्रुतम्॥२३॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, विणय जुत्तस्स-विनय युक्त शिष्य के द्वारा, पुच्छमाणस्स-पूछने पर, (गुर) सुत्त-सूत्र, अत्थ-अर्थ, च-और, तदुभय-दोना को, जहासुय-जैसा सुना, जाना (वैसे), वागरिज्ज-कहे (वताए)।

भावानुवाद-गुरु के कर्त्तव्य का निर्देश करते हुए कहा गया है कि विनीत विनेय के द्वारा इस प्रकार विनय पूर्वक पूछने पर गुरु, यथाश्रुत अर्थात् जैसा उसने सुना-जाना हो, सूत्र अर्थ और तदुभय-दोनो का शिष्य के समक्ष प्रतिपादन करे।

24 वचन विनय

मूल गाथा- **मुस परिहरे भिक्खू, ण य ओहारिणी वए।**
भासादोस परिहरे, माय च वज्जए सया॥२४॥

सस्कृत छाया- **मृषा परिहरेद् भिक्षु, न चावधारिणी वदेत्।**
भाषादोष परिहरेत्, माया च वर्जयेत् सदा॥२४॥

अन्वयार्थ-भिक्खु-भिक्षाजीवी साधु, मुस-असत्य को, परिहरे-त्याग दे, य-और, ओहारिणीं-निश्चयात्मक भाषा, ण-नहीं, वए-कहे, भासादोस-भाषा के/दोष को, परिहर-दूर कर, च-और, माय-माया को सया-सदा ही वज्जए-त्याग देवे।

भावानुवाद-मुमुक्षु भिक्षु मृषावाद-असत्य का परित्याग कर दे, निश्चय कारी भाषा भी न बोले। भाषा के मिश्रित, संशय, हास्यादि दोषों का भी त्याग कर तथा छल कपट का सर्वदा के लिए छोड दे।

25 विनीत शिष्य के लिए आवश्यक कर्त्तव्य

मूल गाथा- ण लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, ण णिरट्ठं ण मम्मयं।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्सतरेण वा॥२५॥

संस्कृत छाया- न लपेत् पृष्ट सावद्य, न निरर्थं न मर्मकम्।
आत्मार्थं परार्थं वा, उभयस्यान्तरेण वा॥२५॥

अन्वयार्थ-(विनयवान् साधु) पुट्ठो-पूछा पर अप्पणट्ठा-अपने लिए, वा-अथवा, परट्ठा-दूसरा के लिए उभयस्स-दोनो के प्रयोजन से, वा-अथवा, अतरेण-निष्प्रयोजन, सावज्जं-सावद्य भाषा, ण-नहीं, लवेज्ज-बोने, ण-न, णिरट्ठ-निरर्थक बोले, मम्मय-मर्म युक्त वचन भी, ण-नहीं बोले।

भावानुवाद-किसी के पूछे जाने पर भी अपने लिए, दूसरो के लिए अथवा दोनों में से किसी के लिए भी सावद्य अर्थात् पापकारी भाषा का प्रयोग न करे, निरर्थक एव मर्मभेदी अथवा अस्पष्ट वचनो का प्रयोग न करे।

26 चारित्र विनय

मूल गाथा- समरेसु आगारेसु, सधीसु य महापहे।
एगो एगत्थिए सद्धिं, णेव चिट्ठे ण सलवे॥२६॥

संस्कृत छाया- समरेषु अगारेषु, सन्धिषु च महापथे।
एक एकस्त्रिया सार्धं, नैव तिष्ठेन्न संलपेत्॥२६॥

अन्वयार्थ-समरेसु-लोहार शाला में, आगारेसु-घरो में सधीसु-दो घरों की सन्धियो मे य-और महापहे-राजमार्ग मे, एगो-अकेला साधु एगत्थिए-अकेली स्त्री के, सद्धिं-साथ, णेव-नहीं, चिट्ठ-खडा रहे (और) ण-नहीं, सलवे-बोले।

भावानुवाद-लुहार की कर्मशाला में, गृहस्थों के सूने आवास मे, दो घरो के मध्यवर्ती सन्धि स्थानो मे और राज पथो पर भी एकाकी मुनि एकाकी स्त्री के साथ न खडा रहे और न बातचीत ही करे।

27 गुरु का अनुशासन

मूल गाथा- ज मे बुद्धाणुसासति, सीएण फरुसेण वा।
मम लाभो ति पेहाए, पयओ त पडिस्सुणे॥२७॥

सस्कृत छाया- यन्मा बुद्धा अनुशासन्ति, शीतेन परुषेण वा।
मम लाभ इति प्रेक्ष्य, प्रयतस्तत् प्रतिश्रृणुयात्॥२७॥

अन्वयार्थ-सीएण-शीतल वचनो से, वा-अथवा, फरुसेण-कठोर वचनो से, बुद्धा-प्रबुद्ध आचार्य, मे-मुझ पर, ज-जो, अणुसासति-अनुशासन करते हैं (उसमे), मम-मेरा, लाभो-लाभ है, त्ति-इस प्रकार, पेहाए-विचार करके, पयओ-प्रयत्न पूर्वक, त-उस (अनुशासन) को, पडिस्सुणे-स्वीकार करे।

भावानुवाद-आचार्य प्रिय अथवा कठोर शव्दो से जो मुझ पर अनुशासन करते है, वह मेरे हित के लिए है एसा विचार करके उनके अनुशासन अर्थात् शिक्षा वचनो का सयत्न प्रतिश्रुत अर्थात् स्वीकार करे।

28 कठोर अनुशासन भी हितकर

मूल गाथा- अणुसासणमोवाय, दुक्कडस्स य चोयण।
हिय त मण्णई पण्णो, वेस होइ असाहुणो॥२८॥

सस्कृत छाया- अनुशासनमौपाय, दुष्कृतस्य च चोदनम्।
हित तन्मन्यते प्राज्ञ, द्वेष्य भवत्यसाधो॥२८॥

अन्वयार्थ-अणुसासण-(कठोर) अनुशासन, दुक्कडस्स-दुष्कर्म का, चोयण-निवारक, य-और, ओवाय-(सद्गुण बुद्धि का) उपाय है, पण्णो-बुद्धिमान शिष्य, त-उस (अनुशासन) को, हिय-हितकर, मण्णई-मानता है (किन्तु), त-वही, असाहुणो-अयोग्य शिष्यो के लिए, वेस-द्वेष का कारण, होइ-होता है।

भावानुवाद-आचार्य प्रसगानुसार मृदु अथवा कठोर शब्दो से शिष्य को उसके दुष्कृत्यो के प्रति सतर्क करते है उस अनुशासन को प्रज्ञावान् शिष्य अपने लिए हितप्रद मानता है। जबकि असाधु अर्थात् अविनीत शिष्य को उसी अनुशासन से द्वेष उत्पन्न हो जाता है।

29 आत्महित का कारण-अनुशासन

मूल गाथा- हिय विगयभया बुद्धा, फरुसपि अणुसासण।
वेस त होइ मूढाण, खतिसोहिकर पय॥२९॥

सस्कृत छाया- हित विगतभया बुद्धा, परुषमप्यनुशासनम्।
द्वेष्य तद् भवति मूढाना, क्षान्तिशुद्धिकर पदम्॥२९॥

-अन्वयार्थ-भया-भय से, विगय-रहित, बुद्धा-तत्त्वज्ञ शिष्य, फरुस-गुरु के कठोर, अणुसासण-अनुशासन का, हिय-हितकर मानते हैं (किन्तु), त-वही, खति-क्षमा, (और) सोहिकर-आत्मशुद्धि करन वाला, पय-पद, मूढाण-मूर्ख शिष्यो के लिए, वस-द्वेष का कारण, होइ-होता है।

प्रज्ञावान्, मेधावी, भयमुक्त शिष्य गुरु के कठोर अनुशासन का भी आत्म हितार्थ मानता है-स्वीकार कि वही क्षमा भाव जगाने वाला और चित्त विशुद्दि करने वाला गुर का अनुशासन अनों-मूर्खों क लिए जाता है।

30 गुरु के समक्ष बैठने की विधि

मूल गाथा- आसणे उवचिट्ठेज्जा, अणुच्चे अकुए थिरे।
अप्पुट्ठाई, णिरुट्ठाई, णिसीएज्जाप्पकुक्कुए॥३०॥

स्कृत छाया- आसने उपतिष्ठेत्, अनुच्चे अकुचे स्थिरे।
अल्पोत्थायी निरुत्थायी, निषीदेदल्पकुक्कुच॥३०॥

अन्वयार्थ-(विनीत शिष्य) ऐसे, आसणे-आसन पर, उवचिट्ठेज्जा-बैठे, (जो) अणुच्चे-(गुरु के आसन से) ऊंचा न हो अकुए-अस्पदमान (आवाज न करने वाले) हो, थिरे-स्थिर हो (तथा वह), णिरुट्ठाइ-निष्प्रयोजन न उठे अप्पुट्ठाई-प्रयोजन होने पर भी बार-बार न उठे, अप्प कुक्कुए-हाथ पैर न चलाते हुए, णिसीएज्ज-बैठे।

भावानुवाद-गुरु के समक्ष शिष्य गुरु से नीचे आसन पर बैठे, वह आसन चर-चर आदि किसी प्रकार की आवाज नहीं करता हो और स्थिर हो। आसन से निष्प्रयोजन बार-बार नहीं उठे तथा प्रयोजन होने पर भी कम ही उठे। स्थिर शांत एव चपलता रहित होकर बैठे।

31 यथा काल चर्या का निर्देश

मूल गाथा- कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकाल च विवज्जित्ता, काले काल समायरे॥३१॥

सस्कृत छाया- कालेन निष्क्रमेद् भिक्षु, कालेन च प्रतिक्रमेत्।
अकाल च विवर्ज्य, काले काल समाचरेत्॥३१॥

अन्वयार्थ-भिक्खू-भिक्षाजीवी साधु, कालेण-योग्य समय पर, णिक्खमे-(भिक्षा के लिए) निकले य-और, कालेण-समय पर, पडिक्कमे-वापस लौट आए, च-तथा, अकाल-अकाल समय को, विवज्जित्ता-छोड़कर, काले-नियत समय पर, काल-(प्रतिलेखनादि) नियत कार्य को, समायरे-आचरित करे।

भावानुवाद भिक्षु साधक भिक्षा के समय पर ही भिक्षावृत्ति के लिए जाए और यथा समय लौट आए। असमय म अथात् कालातिक्रान्त स्थिति में कोई कार्य न करे। प्रत्येक कार्य यथोचित समय में ही करे।

32 एषणा समिति

मूल गाथा- परिवाडीए ण चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसण चरे।
पडिरूवेण एसित्ता, मिय कालेण भक्खए॥३२॥

सस्कृत छाया- परिपाट्या न तिष्ठेत् भिक्षुर्दत्तैषणा चरेत्।
प्रतिरूपेणैषयित्वा, मित कालेन भक्षयेत्॥३२॥

अन्वयार्थ-भिक्खू-भिक्षार्थी साधु, परिवाडीए-पंक्ति में, ण-नहीं, चिट्ठेज्जा-खड़ा रहे, पडिरूवेण साधु के नियमानुसार, एसित्ता-गवेषणा करके, दत्तेसण-गृहस्थ के द्वारा दिया हुआ आहार, चरे-ग्रहण करे (और), कालेण-शास्त्रोक्त काल मे, मिय-प्रमाण पूर्वक (परिमित), भक्खए-भक्षण करे।

भावानुवाद-भिक्षार्थ भ्रमणशील साधक खाने के लिए पक्तिबद्ध बैठे हुए जनसमूह के मध्य खडा न रहे। मुनि मर्यादा के अनुसार गवेषणा करके गृहस्थ द्वारा प्रदत्त आहार स्वीकार करे और आगमोक्त काल मे आवश्यकतानुसार परिमित आहार करे।

33 भिक्षा ग्रहण की विधि

मूल गाथा- **णाइदूरमणासण्णे, णाण्णेसि चक्खुफासओ।**
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लघित्ता त णाइक्कमे ॥३३॥

सस्कृत छाया- **नातिदूरमनासन्न , नान्येषा चक्षु स्पर्शत ।**
एकस्तिष्ठेद् भक्तार्थ, लघयित्वा त नातिक्रमेत् ॥३३॥

अन्वयार्थ-साधु, (गृहस्थ के द्वार पर) अण्णेसि-अन्य, याचको-भिक्षुआ के, चक्खुफासओ-दृष्टिगत होने पर, णाइदूर-न अति दूर मे, अणासण्णे-अति निकट ही, ण-नहीं खडा रहे (किन्तु) एगो-एकान्त मे (अकेला), चिट्ठेज्ज-खडा रहे, भत्तट्ठा-आहारादि के लिए, त-उस याचक वर्ग को, लघित्ता-लाघकर, णाइक्कमे-आगे न जावे।

भावानुवाद-यदि अन्य कोई भिक्षु पहले से ही गृही द्वार पर खडे हों तो उनसे न अति दूर खडा रहे और न अति समीप ही, आहार देने वाले गृहस्थ की दृष्टि के सामने भी खडा न रहे, किन्तु एकान्त मे अकेला खडा रहे। पूर्व समुपस्थित भिक्षु को लाघकर भिक्षार्थ घर मे प्रवेश न करे।

34 पिडेषणा के विषय मे सकेत

मूल गाथा- **णाइउच्चे व णीए वा, णासण्णे णाइदूरओ।**
फासुय परकड पिंड, पडिगाहेज्ज सजए ॥३४॥

सस्कृत छाया- **नात्युच्चैर्नीचैर्वा, नासन्ने नातिदूरत ।**
प्रासुक परकृत पिण्ड, प्रतिगृहणीयात् सयत ॥३४॥

अन्वयार्थ-णाइ-न अति, उच्चे-ऊँचे से, वा-अथवा, णीए-नीचे से, वा-अथवा, णासण्णे-न अधिक समीप से, णाइदूरओ-न अति दूर से, फासुय-प्रासुक (अचित्त), परकड-दूसरा के लिए बनाया हुआ, पिड-आहार, सजए-सयमी साधु, पडिगाहेज्ज-ग्रहण करे।

भावानुवाद-साधना शील सयति-मुनि प्रासुक अर्थात् अचित्त एव परकृत-गृहस्थ द्वारा स्वय के लिए बनाया हुआ आहार ग्रहण करे किन्तु अति उच्च अथवा अति निम्न स्थान स लाया हुआ एव अति निकट अति दूर से दिया जाने वाला आहार ग्रहण न करे।

35 ग्रासेषणा का विषय

मूल गाथा- **अप्पपाणेऽप्पबीयम्मि, पडिच्छण्णम्मि संवुडे।**
समय सजए भुजे, जय अपरिसाडिय ॥३५॥

संस्कृत छाया- अल्पप्राणेऽल्पबीजे, प्रतिच्छन्ने संवृते।
समकं संयतो भुञ्जीत, यतमपरिशाटिकम्॥३५॥

अन्वयार्थ-संजए-संयमी साधु, अप्पपाणे-प्राणी रहित (तथा) अप्पबीयम्मि-बीज रहित, पडिच्छण्णम्मि-चारों ओर से ढके हुए, संवुडे-दोनों ओर दीवारों से संवृत स्थान में, (अथवा इन्द्रियों को संवृत करके), समय-समभाव पूर्वक, जय-यतना पूर्वक, अपरिसाडिय-भूमि पर न गिराता हुआ, भुंज-आहार करे।

भावानुवाद-संयमी साधक त्रसादि प्राणी एवं सचित्त बीजादि से रहित ऊपर से आवृत-छतादि से ढके हुए तथा चारों ओर दीवार आदि से परिवृत मकान में अपने सहयोगी मुनियों के साथ भूमि पर अन्नादि के कण न गिराता हुआ यतना-विवेक पूर्वक आहार करे।

36 सावद्य वचनों का निषेध

मूल गाथा- सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे।
सुणिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी॥३६॥

संस्कृत छाया- सुकृतमिति सुपक्वमिति, सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम्।
सुनिष्ठितं सुलष्टमिति, सावद्यं वर्जयेन्मुनिः॥३६॥

अन्वयार्थ-(आहार करते समय भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में) सुक्कडित्ति-(यह पदार्थ) अच्छा बनाया है, सुपक्कित्ति-अच्छा पकाया है, सुच्छिण्णे-अच्छा काटा है, सुहडे-इसका (कडवापन) अच्छी तरह से हट (मिट) गया है, मडे-अच्छा मरण हुआ (अच्छा प्रासुक हो गया), सुणिट्ठिए-अच्छी तरह से (रसादि से) निष्पन्न है, सुलट्ठित्ति-बहुत ही सुन्दर है, त्ति-इस प्रकार, मुणी-मुनि, सावज्जं-सावद्य (पाप युक्त) वचनों का, वज्जए-त्याग।

भावानुवाद-आहार करते समय साधु, भोज्य सामग्री के सम्बन्ध में अच्छा बना है, सुन्दर ढंग से पकाया है, अच्छी तरह से काटा है, इस स्वभाव से कटु सब्जी का कडुआपन अच्छी तरह से मिटा दिया गया है, अच्छा निष्ठित प्रासुक हो गया है, अथवा इन पदार्थों में घृतादि अच्छी तरह से भर दिया गया है-यह इनमें एकमेक हो गया है इसमें बहुत स्वादिष्ट रस उत्पन्न हो गया है, यह बहुत ही सुन्दर सुस्वादु है-ऐसे सावद्य युक्त वचनों का प्रयोग न करे।

37 गुरु की प्रसन्नता व अप्रसन्नता

मूल गाथा- रमए पंडिए सासं, हयं भद्दं व वाहए।
बालं सम्मइ सासंतो, गलियस्सं व वाहए॥३७॥

संस्कृत छाया- रमते पण्डितान् शासत्, हयं भद्रमिव वाहकः।
बालं श्राम्यति शासत्, गलिताश्वमिव वाहकः॥३७॥

अन्वयार्थ-पंडिए-बुद्धिमान् शिष्य को, सासं-शिक्षा देते हुए गुरु (वैसे ही) रमए-आनन्द पाते हैं, व-जैसे कि वाहए-वाहक (अश्व शिक्षक), भद्दं हयं-अच्छे घोड़े को (शिक्षा देता हुआ प्रसन्न होता है), किन्तु बालं-अज्ञानी को, सासंतो-शिक्षा देते हुए वैसे ही, सम्मइ-खिन्न होता है, व-जैसे कि गलियस्सं-गलित (अविनीत) घोड़े को (हाँकता हुआ) वाहए-वाहक (खिन्न होता है)।

भावानुवाद-जैसे सुशिक्षित अश्व को चलाता हुआ अश्वारोही प्रसन्न होता है, उसी प्रकार प्रवुद्ध शिष्य को शिक्षा देते हुए आचार्य आनन्द का अनुभव करते हैं। अबोध अज्ञानी शिष्य को शिक्षा देते हुए गुरु वैसे ही खेदित होता हे, जैसे दुष्ट घोडे को हाकता हुआ अश्वारोही।

38 गुरुजनो का हित शासन

मूल गाथा- खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे।
कल्लाणमणुसासतो, पावदिट्ठिति मण्णई॥३८॥

सस्कृत छाया- खड्डुका मे चपेटा मे, आक्रोशाश्च वधाश्च मे।
कल्याणमनुशिष्यमाण , पापदृष्टिरिति मन्यते॥३८॥

अन्वयार्थ-पावदिट्ठि-पाप दृष्टि शिष्य, कल्लाणमणुसासतो-(गुर के) कल्याणकारी अनुशासन को, त्ति-इम प्रकार, मण्णई-मानता है कि मे-ये मुझे, खड्डुया-ठाकर (लात) मारते हैं, मे-मुझे, चवेडा-चपेटा मारते हैं, य-तथा अक्कोसा-मुझे गाली देते (डाटते) हैं, य-और, मे-मुझे, वहा-मारते-पीटते हैं।

भावानुवाद-पाप दृष्टि अर्थात् दु शील शिष्य गुरु के परम कल्याणप्रद अनुशासन को ऐसा मानते हैं कि जैसे ये मुझे ठोकर मार रहे हैं, चाटा लगा रहे हैं, गाली दे रहे हैं अथवा प्रहार कर रहे हैं। अर्थात् दुष्ट स्वभावी शिष्य गुरु के हित वचनो का पीडा दायक मानता है।

39 नम्र शिष्य एव कुशिष्य मे अन्तर

मूल गाथा- पुत्तो मे भाय णाइ ति, साहू कल्लाण मण्णई।
पावदिट्ठि उ अप्पाण, सास दासि ति मण्णई॥३९॥

सस्कृत छाया- पुत्रो मे भ्राता ज्ञातिरिति, साधु कल्याण मन्यते।
पापदृष्टिस्त्वात्मान, शिष्यमाणो दास इति मन्यते॥३९॥

अन्वयार्थ-(गुरुदेव) मे-मुझे पुत्तो-पुत्र के समान, भाय-भाई के समान (तथा), णाइ-ज्ञाति (स्वजन) के समान, (समझकर शिक्षा देते हैं) त्ति-ऐसा विचार कर साहू-साधु (उनके अनुशासन को), कल्लाण-कल्याणकारी, मण्णइ-मानता है, उ-किन्तु, पावदिट्ठि-पाप दृष्टि वाला कुशिष्य, सास-अनुशासन से, अप्पाण-अपने आपका, दासित्ति-दास की तरह, हीन, मण्णइ-मानता है।

भावानुवाद-इसके विपरीत विनीत शिष्य गुरु के कल्याणकारी उपदेश को यह मानकर ग्रहण करता है कि गुर मुझे अपना पुत्र, भाई अथवा प्रिय-स्वजन मानकर आत्मीयता पूण शिक्षा दे रहे हैं। किन्तु पाप दृष्टि वाला अविनीत शिष्य कल्याणकारी अनुशासन मे दासत्व बुद्धि बना लेता है अर्थात् वह यह मानता है कि गुरु मुझे अपना दास मान रहे हैं।

40 विनीत शिष्य का कर्त्तव्य

मूल गाथा- ण कोवए आयरिय, अप्पाणपि ण कोवए।
बुद्धोवघाई ण सिया, ण सिया तोत्तगवेसए॥४०॥

संस्कृत छाया- न कोपयेदाचार्यम्, आत्मानमपि न कोपयेत्।
बुद्धोपघाती न स्यात्, न स्यात् तोत्रगवेषक ॥४०॥

अन्वयार्थ-(विनीत शिष्य) आयरिय-आचार्य पर, ण कोवए-क्रोध न करे, अप्पाणपि-अपनी आत्मा पर भी, ण कोवए-क्रोध न करे, बुद्धोवघाई-बुद्धों (आचार्यों) का घात करने वाला, ण-नहीं, सिया-होय, तोत्तगवेसए-गुरु का छिद्रान्वेषी, ण-नहीं, सिया-होवे।

भावानुवाद-शिष्य को चाहिए कि वह आचार्य के कठोर अनुशासन से अथवा संरक्षण से न तो स्वयं कुपित, क्रोधित होवे और न आचार्य गुरु को ही कुपित करे। आचार्य के उपघात का भाव भी न आने दे और न उनकी अवमानना करने हेतु उनका छिद्रान्वेषण करे।

41 गुरुजनो की प्रसन्नता हेतु कर्त्तव्य

मूल गाथा- आयरिय कुविय णच्चा, पत्तिएण पसायए।
विज्झवेज्ज पजलीउडो, वएज्ज ण पुणुत्ति य ॥४१॥

संस्कृत छाया- आचार्यं कुपितं ज्ञात्वा, प्रीतिकेन प्रसादयेत्।
विध्यापयेत् प्राञ्जलिपुट, वदेत् न पुन इति च ॥४१॥

अन्वयार्थ-आयरियं-आचार्य को, कुविय-कुपित हुआ, णच्चा-जानकर, पत्तिएण-प्रीतिकारक वचनों से, पसायए-उन्हें प्रसन्न करे, और पजलीउडो-दोनो हाथ जोडकर, विज्झवेज्ज-उन्हें शान्त करे, य-और वएज्ज-कहे कि, ण-नहीं, पुणुत्ति-पुन इस प्रकार (करूँगा)।

भावानुवाद-शिष्य यह जान ले कि मेरे किसी अशुभ व्यवहार से आचार्य नाराज हो गए हैं-अप्रसन्न हो गए हैं तो वह प्रीति उत्पन्न करने वाले वचनों का प्रयोग करके उन्हें प्रसन्न करे। विनम्रता पूर्वक करबद्ध होकर निवेदन करे कि फिर कभी ऐसा अशोभन व्यवहार नहीं करूँगा, इस प्रकार उन्हें शान्त करे।

42 विनीत साधक को लौकिक-लोकोत्तर लाभ

मूल गाथा- धम्मज्जिय च ववहार, बुद्धेहिं आयरिय सया।
तमायरतो ववहार, गरह णाभिगच्छई ॥४२॥

संस्कृत छाया- धर्मार्जित च व्यवहार, बुद्धैराचरित सदा।
तमाचरन् व्यवहार, गर्हा नाभिगच्छति ॥४२॥

अन्वयार्थ-बुद्धेहिं-आचार्यों के, ववहार-व्यवहार को जो, सया-सदा, धम्म-धर्म से, अज्जियं-अर्जित आयरिय-आचरित, तं-उस, ववहार-व्यवहार को, आयरतो-आचरण में लाता हुआ (विनीत शिष्य), गरह-गर्हा (निन्दा) को, णाभिगच्छई-प्राप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो व्यवहार-आचरण धर्मार्जित है, प्रबुद्ध आचार्यों द्वारा आचरित है, उस आचरण विधि में गमन करता साधक मुनि कभी भी गर्हा-निन्दा को प्राप्त नहीं होता है।

43 परम्परागत व्यवहार

मूल गाथा- मणोगय वक्कगय, जाणित्तायरियस्स उ।
त परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥४३॥

सस्कृत छाया- मनोगत वाक्यगत, ज्ञात्वाऽऽचार्यस्य तु।
त परिगृह्य वाचा, कर्मणोपपादयेत्॥४३॥

अन्वयार्थ-(विनीत शिष्य) आयरियस्स-आचार्य के, मणोगय-मनोगत भाव को, वक्कगय-वचनगत भाव को, उ-कायगत भाव को, जाणित्ता-जानकर, त-उस भाव को, वायाए-सर्वप्रथम वाणी से, परिगिज्झ-ग्रहण करके, कम्मुणा-फिर कार्य रूप मे, उववायए-परिणत करे।

भावानुवाद-विनीत शिष्य आचार्य के मनोगत एव वचन गत भावो-अभिप्रायो को जानकर प्रथम उन्हें वाणी द्वारा ग्रहण करके फिर कर्म मे उतारे अर्थात् कार्य रूप मे परिणत करे।

44 विनयभाव से ख्यात शिष्य के लक्षण

मूल गाथा- वित्ते अचोइए णिच्च, खिप्प हवइ सुचोइए।
जहोवइट्ठ सुकय, किच्चाइ कुव्वई सया॥४४।

सस्कृत छाया- वित्तेऽनोदितो नित्य, क्षिप्र भवति सुनोदित ।
यथोपदिष्ट सुकृत, कृत्यानि कुरुते सदा॥४४॥

अन्वयार्थ-वित्ते-(विनयी रूप मे) विख्यात शिष्य, अचोइए-बिना प्रेरित किए (गुरु के द्वारा), णिच्च-सदा, खिप्प-शीघ्र ही, सुचोइए-सुप्रवृत्त (भली भाति प्रवृत्त), हवइ-होता है, जहोवइट्ठ-यथाविधि प्रेरित किये जाने पर तो, सुकय-सुकृत रूप में (अच्छी तरह) किच्चाइ-कृत्यो (गुरु के कार्यों) को, सया-सदा, कुव्वई-करता है।

भावानुवाद-विनीत रूप से प्रसिद्ध शिष्य गुरु की बिना किसी प्रेरणा के ही यथोचित कार्य करने को सदा तत्पर रहता है। प्रेरणा प्राप्त होने पर तो यथा निदिष्ट कार्य अति सुन्दर ढग से सम्पन्न कर देता है।

45 विनय धर्म की फल श्रुति

मूल गाथा- णच्चा णमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए।
हवई किच्चाण सरण, भूयाण जगई जहा॥४५॥

सस्कृत छाया- ज्ञात्वा नमति मेधावी, लोके कीर्तिस्तस्य जायते।
भवति कृत्याना शरण, भूताना जगती यथा॥४५॥

अन्वयार्थ-(जो) मेहावी-बुद्धिमान् शिष्य, णच्चा-(पूर्वोक्त विनय पद्धति) जानकर, णमइ-विनम्र हो जाता है, से-उसकी, लोए-लोक में, कित्ती-कीर्ति, जायए-होती है, जहा-जैसे, जगई-पृथ्वी, भूयाण-वनस्पति आदि भूतो (प्राणियों) के लिए, सरण-आश्रय (आधार), हवई-होती है, वैसे ही विनयवान्, किच्चाण-सुकृत्यो का आधार बन जाता है।

भावानुवाद-जो प्रज्ञावान् मेधावी शिष्य विनय के स्वरूप को समझकर विनीत-विनम्र बन जाता है, उसकी लोक मे सुकीर्ति फैल जाती है। जैसे पृथ्वी समस्त प्राणिवर्ग के लिए आधार भूत होती है, उसी प्रकार सुयोग्य शिष्य भी धर्म श्रद्धालुओं के लिए आधार स्तम्भ बनता है।

46 विनय शीलता से गुरुजन के प्रति समपणा

मूल गाथा- पुज्जा जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्वसंथुया।
पसण्णा लाभइस्संति, विउलं अट्ठियं सुयं ॥४६॥

संस्कृत छाया- पूज्या यस्य प्रसीदन्ति, संबुद्धा पूर्वसंस्तुता।
प्रसन्ना लाभयिष्यन्ति, विपुलमार्थिकं श्रुतम् ॥४६॥

अन्वयार्थ-जस्स-जिन मुनि पर, संबुद्धा-तत्त्वज्ञ, पुव्वसंथुया-पूर्व परिचित, पुज्जा-पूज्य आचार्यादि, पसीयंति-प्रसन्न होते हैं, पसण्णा-प्रसन्न होकर (वे गुरु उसे), विउलं अट्ठियं-विपुल अर्थ वाले, सुयं-श्रुत ज्ञान का, लाभइस्संति-लाभ प्रदान करेंगे।

भावानुवाद-विनीत शिष्य पर शिक्षण के पूर्व ही उसकी विनय वृत्ति से परिचित सम्बुद्ध तत्वज्ञ पूज्य आचार्य प्रसन्न हो जाते है। वे प्रसन्न होकर उसे अर्थ गम्भीर विशाल श्रुत ज्ञान का लाभ प्रदान करते हैं।

47 विनय धर्म का महत्त्व

मूल गाथा- स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए, मणोरुई चिट्ठई कम्मसंपया।
तवोसमायारि समाहिसंवुडे, महज्जुई पंच वयाइं पालिया ॥४७॥

संस्कृत छाया- स पूज्यशास्त्रः सुविनीतसंशयः, मनोरुचिस्तिष्ठति कर्मसंपदा।
तपः समाचारी समाधिसंवृतः, महाद्युतिः पंच व्रतानि पालयित्वा ॥४७॥

अन्वयार्थ-स-वह साधु, पुज्जसत्थे-पूज्य शास्त्रज्ञ होता है, सुविणीय संसए-सर्वथा संदेह रहित, कम्म संपया-दशविध कर्म सम्पदा से, मणोरुई-गुरु के मन को रुचिकर होकर, चिट्ठइ-रहता है (तथा), तवो-समायारि-तप की समाचारी से, समाहि संवुडे-समाधि से संवृत, पंच वयाइं-पंच महाव्रतों का, पालिया-पालन कारक, महज्जुइ-महातेजस्वी होता है।

भावानुवाद-वह विनीत शिष्य पूज्य शास्त्र हो जाता है अर्थात् उसका आगम ज्ञान जनता में समादृत होता है। उसके समस्त संशय समाप्त हो जाते हैं। वह गुरु को मन से प्रिय होता है। वह मुनि कृत्यों से सम्पन्न होता है अर्थात् श्रमण समाचारी का धारक होता है, वह तप समाचारी एवं समाधि से संयुक्त होता है। पंच महाव्रतों की आराधना के द्वारा वह महान् द्युतिमान् तेजस्वी होता है।

48 विनय धर्म की प्रत्यक्ष महिमा (उपसंहार)

मूल गाथा- स देवगंधव्वमणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥४८॥

ति वेमि

इति विणयसुय णाम पढम अज्झयण समत्त ॥१॥

संस्कृत छाया- स देवगन्धर्वमनुष्यपूजित , त्यक्त्वा देह मलपकपूर्वकम्।
सिद्धो वा भवति शाश्वत , देवो वाल्परजो महर्द्धिक ॥४८॥

इति ब्रवीमि

इति विनयश्रुत नाम प्रथममध्ययन समाप्तम्॥१॥

अन्वयार्थ-स-वह विनयवान् शिष्य देव गधव्व मणुस्स पूइए-देवा, गन्धर्वों और मनुष्यो द्वारा पूजित होता हुआ मलपक पुव्वय-मल (रक्त) और पक (वीर्य) से बने हुए, देह-शरीर को, चइत्तु-त्याग कर, वा-या तो, सासए-शाश्वत, सिद्धे-सिद्ध, हवई-होता हे, वा-अथवा, अप्परए-अल्प कर्म वाला, महिड्ढिए-महा ऋद्धि वाला, देवे-देव होता है।

त्ति-इस प्रकार, वेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-वह विनीत शिष्य देव, गन्धर्व और मनुष्या से पूजित होकर मल पक से निर्मित इस शरीर का परित्याग करके शाश्वत सिद्ध हो जाता है अथवा अल्पकर्मा होकर महान् ऋद्धि सम्पन्न देव वन जाता है।

ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ इस प्रकार विनय श्रुत नामक प्रथम अध्ययन समाप्त हुआ॥

❑❑❑

परीषह-प्रविभक्ति - द्वितीय अध्ययन

उत्थानिका

साधना का मार्ग, यदि उसमे रस आ जाए-चित्त रममाण हो जाए, तो पुष्प शय्या पर पदक्रमण करने के समान सुकोमल है। किन्तु यदि साधना मे मन पूर्ण रूप से अनुस्यूत नहीं होता है, तो वही सुकोमल मार्ग कटकाकीर्ण विकट पथ बन जाता है।

यह स्वाभाविक है कि साधना पथ पर पद चरण करते ही सभी साधक उसमें रस उत्पन्न नहीं कर पाते हैं और रस उत्पन्न हुए बिना वह मार्ग उन्हे पहाड की चढाई-सा दुगम लगता है। वे पद-पद पर अनेक कठिनाइयो-परेशानियो का अनुभव करते हैं। अनेक बाधाए उनके समक्ष आ खडी होती हैं, जिन्हें उन्हे हसते-खेलते झेल लेना होता है-पार करना होता है।

साधना मार्ग मे आने वाली उन विपत्तियो किवा बाधाओ-कठिनाईयों को ही आगमिक भाषा में "परीषह" कहा जाता है। परीषह शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र म कहा है-

"मार्गाऽच्यवन निर्जरार्थं परिसोढव्या परिषहा "

तत्त्वार्थ सूत्र 9-8

मार्ग से च्युत न होने एव कर्मों की निर्जरा के लिए जो सहन करने योग्य हैं, वे परीषह हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में आर्य सुधर्मा स्वामी ने साधना मे आने वाले इन कठिन परीक्षात्मक क्षणों को बाइस रूपा म विभक्त-वर्गीकृत करके समझाया है।

मुमुक्षु साधक जब परम नि श्रेयसा की सिद्धि हेतु साधना मार्ग पर गति करता है तो उसे पद-पद पर परीषहा का सामना करना पडता है, किन्तु सच्चा साधक उन्हे बाधक रूप में स्वीकार नहीं करके साधक उपकारक के रूप में ग्रहण करता है। वह उन कठिनाइयो अथवा परीषहा से घबरा कर साधना मार्ग मे विचलित नहीं होता है, अपितु उन्हे साधना में सहयोगी मानकर, समत्व भाव एव आन्तरिक मनोबल से सहन करता जाता है। यह उस मे शक्ति का निर्माण करता है जिसके समक्ष समस्त आपदाए सम्पदाओ के रूप में दिखाई देने लगती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में इस बात पर पूरा बल दिया है कि साधक आने वाले कष्टो से विचलित होकर कभी भी अपनी ग्रहीत प्रतिज्ञाओ से पीछे न हटे, उनमे किसी प्रकार की कोई कटौती न करे, अपितु आत्म जागृति के साथ साधना पथ पर अविराम गति से बढता रहे।

आन्तरिक-भावात्मक एव बाह्याभिव्यञ्जक दोनों प्रकार की विघ्न बाधाओ को समत्व भाव म सहन करने

वाला साधक ही परम नि श्रेयस को प्राप्त हो सकता है। अत साधक को अपनी सयम सुरक्षा के प्रति अनवरत जागृत रहकर जितने भी परीषह उपस्थित हो, शात प्रशात चित्त से सहन करते हुए प्रतिज्ञा पथ पर सुदृढ मानसिकता के साथ गतिशील रहना चाहिए।

परीषह की परिभाषा को सम्यग्रीत्या समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि देह या मन को कष्ट देना अथवा आगत कष्टो को विवशता पूर्वक सहन कर लेना परीषह नहीं है। शरीर को कष्ट देना अथवा मन को नियत्रित करना कायक्लेश एव प्रतिसलीनता नामक तप हो सकते हैं, निर्जरा के हेतु हो सकते हैं, किन्तु परीषह नहीं। परीषह का अर्थ तो है-साधना के प्रतिकूल सभी परिस्थितियो को साधना से विचलित नहीं होते हुए आत्मखुशी से सहन करना। उससे विचलित नहीं होना, साधना मार्ग को छोडना नहीं, और न उनसे बचने के लिए कोई मर्यादाहीन प्रवृत्ति की ओर बढना, प्रत्युत परीषह आने पर साधक को यह चिन्तन करना चाहिये कि यह तो मेरी परीक्षा की घडी है, मुझे इस परीक्षा में विशेष योग्यता से उत्तीर्ण होना है। भले ही इसके लिए मुझे मन पर नियत्रण साधना पडे, कष्टा-सकटो से जूझना पडे।

इस प्रकार परीषहो को प्रचण्ड आत्मवल के द्वारा विजित कर लेने वाला साधक ही आत्म कल्याण के मगल पथ पर गति करता हुआ परम आनद शक्ति के द्वार उद्घाटित कर लेता है, परम नि श्रेयस को प्राप्त हो जाता है।

❑❑❑

परीषह-प्रविभक्ति - द्वितीय अध्ययन

सूक्ति साराश

परीषह सहन-आत्म शत्रु दमन।
परीषह सहन अर्थात् आत्म शत्रु पर विजय के लिए प्रयाण।

परीषह सहन करो-कष्ट सहिष्णु बनो।
महावीर कथन-परीषह पराक्रम-स्वशत्रु पर विजय।

विशुद्ध आराधना-मन का सयमन।
शरीर के कृश हो जाने पर भी मर्यादा भग मत करो।

अपराजेय-कष्ट सहिष्णु बनो।
सग्राम मे अग्र स्थित हाथी की तरह परीषह जय म पराक्रमी बना।

आत्म सुरक्षा-कषाय उपशाति।
आत्म सुरक्षा में अनुरक्त साधक उपशात होता है।

नारी सग चिन्तन परित्याग, श्रमणत्व अनुराग।
पुरुष साधक के लिए नारी सग या नारी चिन्तन भी बन्धन का हेतु है, जिसका ऐसा चिन्तन है उसका श्रमणत्व सुकृत-विशुद्ध है।

सुखशीलता-पराधीनता।
शय्या-सुखशीलता का त्याग सयम से अनुराग।

गृही-परिचय वृद्धि-परिग्रह वृद्धि।
अनासक्त साधक परिग्रह से दूर रहता है।

समभावी साधक-विषमभावी विराधक।
आक्रोश-वध करने वाले पर भी समभाव रखना साधना है।
प्रतिशोध की भावना विराधना है।

मन का सयमन-आत्म शान्ति सवर्धन।
मन से भी द्वेष करना आत्म विघातक है।

जीव अविनाशी-शरीर विनाशी।
आत्म द्रष्टा का चिन्तन होता है-जीव का कभी विनाश नहीं होता ह।

भिक्षार्थ भ्रमण-अहकार विगलन।
भिक्षावृत्ति की साधना-मानापमान मे सम रहने की आराधना।

दीन नहीं, साहसी वनो।
दीनता का त्याग स्वाधीनता पर अनुराग।

मान-अपमान से अप्रभावी रहो।
अभिवन्दन व अपमान म सम रहना साधना है।

❑❑❑

अन्वयार्थ-इमे-ये, खलु-निश्चय से, त-वे, बावीस, परीसहा-परीषह, समणेण-श्रमण, भगवया-भगवान्, महावीरेण-महावीर ने, कासवेण-काश्यप गोत्री ने, पवेइया-बतलाये हैं, जे-जिनको, भिक्खू-साधु (भिक्षाजीवी), सोच्चा-सुनकर णच्चा-जानकर, जिच्चा-परिचित होकर, अभिभूय-जीतकर, भिक्खायरियाए-भिक्षाचर्या के लिए, परिव्वयंतो-पयटन करता हुआ, पुट्ठो-उनसे स्पृष्ट होने पर, विणिहण्णेज्जा-सयम मार्ग में विचलित, णो-नहीं होवे।

त जहा-वे परीषह इस प्रकार हैं, दिगिछा परीसहे-क्षुधा परीषह, पिवासा परीसहे-तृषा परीषह, सीय-परीसहे-शीत परीषह, उसिण परीसहे-उष्ण परीषह, दसमसय परीसहे-दशमशक परीषह, अचेल परीसहे-अचेल परीषह, अरइ परीसहे-अरति परीषह, इत्थी परीसहे-स्त्री परीषह, चरिया परीसहे-चर्या परीषह, णिसीहिया परीसहे-निषद्या परीषह, सेज्जा परीसहे-शय्या परीषह, अक्कोस परीसहे-आक्रोश परीषह, वह परीसहे-वध परीषह, जायणा परीसहे-याचना परीषह, अलाभ परीसहे-अलाभ परीषह, रोग परीसहे-रोग परीषह, तणफास परीसहे-तृणस्पर्श परीषह, जल्ल परीसहे-जल्ल परीषह, सक्कार पुरक्कार परीसहे-सत्कार पुरस्कार परीषह, पण्णा परीसहे-प्रज्ञा परीषह, अण्णाण परीसहे-अज्ञान परीषह (और) दसण परीसहे-दर्शन परीषह।

भावानुवाद-ये बाइस परीषह ये निम्न हैं, जो काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवेदित हुए हैं, जिन्हें सुनकर, जानकर, परिचित होकर पराजित करके भिक्षा हेतु पयटन करता हुआ श्रमण, उनसे स्पृष्ट होने पर विचलित नहीं होवे।

परीषहा के नाम	-	भावानुवाद	परीषहों के नाम	-	भावानुवाद
1 दिगिछा-परीसहे	-	क्षुधा परीषह	12 अक्कोस-परीसहे	-	आक्रोश परीषह
2 पिवासा-परीसहे	-	पिपासा परीषह	13 वह-परीसहे	-	वध-परीषह
3 सीय-परीसहे	-	शीत परीषह	14 जायणा-परीसहे	-	याचना परीषह
4 उसिण-परीसहे	-	उष्ण परीषह	15 अलाभ-परीसहे	-	अलाभ परीषह
5 दस-मसय-परीसहे	-	दश-मशक परीषह	16 रोग-परीसहे	-	रोग परीषह
6 अचेल-परीसहे	-	अचेल परीषह	17 तणफास-परीसहे	-	तृण-स्पर्श परीषह
7 अरइ-परीसहे	-	अरति परीषह	18 जल्ल-परीसहे	-	मैल-जल्ल परीषह
8 इत्थी-परीसहे	-	स्त्री परीषह	19 सक्कार-पुरक्कार-परीसहे	-	सत्कार-पुरस्कार-परीषह
9 चरिया-परीसहे	-	चर्या परीषह	20 पण्णा-परीसहे	-	प्रज्ञा परीषह
10 णिसीहिया-परीसहे	-	निषद्या परीषह	21 अण्णाण-परीसहे	-	अज्ञान परीषह
11 सेज्जा-परीसहे	-	शय्या परीषह	22 दसण-परीसहे	-	दर्शन परीषह

1 परीषह-प्रभेद-कथन-प्रतिज्ञा

मूल गाथा- परीसहाण पविभत्ती, कासवेण पवेइया।
त भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥1॥

सस्कृत छाया- परिषहाण प्रविभवित , काश्यपेन प्रवेदिता।
ता भवतामुदाहरिष्यामि, आनुपूर्व्या श्रृणुत मे ॥१॥

अन्वयार्थ-कासवेण-काश्यप गोत्रीय (श्रमण भगवान् महावीर) ने, परीसहाण-परीषहो का, पविभत्ति-जो विभाग (स्वरूप), पवेइया-वतलाया है, त-उसे, भे-तुम्हे, उदाहरिस्सामि-मैं कहूगा, मे-मुझसे, आणुपुव्वि-अनुक्रम स (तुम), सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-परीषहो का जो विभक्तिकरण भेद-प्रभेद के रूप मे काश्यप गोत्रीय प्रभु महावीर ने निरूपित किया है उसे मैं तुम्हे कहूगा। उसे तुम अनुक्रम से मुझसे सुनो।

2 क्षुधा परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- दिगिछापरिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामव।
ण छिदे ण छिदावए, ण पए ण पयावए॥२॥

सस्कृत छाया- क्षुधापरिगते देहे, तपस्वी भिक्षु स्थामवान्।
न छिन्द्यात् न च्छेदयेत्, न पचेत् न पाचयेत्॥२॥

अन्वयार्थ-देहे-शरीर मे, दिगिछा परिगए-क्षुधा व्याप्त होने पर (भी), तवस्सी-तपस्वी थामव-सयम वल या मनोबल से युक्त, भिक्खू-भिक्षु, ण-नहीं, छिदे-(फलादि का) स्वय छेदन करे (और), ण-नहीं, छिदावए-दूसरो से छेदन कराए, ण-नहीं पए-उन्ह पकाए (और), ण-नहीं, पयावए-न दूसरा से पकवाए।

भावानुवाद-क्षुधा से अत्यधिक पीडित होने पर भी धैर्यवान् तपस्वी श्रमण फल आदि सचित्त पदार्थों का न स्वय छेदन करे, न दूसरो से छेदन करवाए, उन्हे न स्वय पकाए और न दूसरा से पकवाए।

3 क्षुधा परीषह की वेदना

मूल गाथा- कालीपव्वग सकासे, किसे धमणिसतए।
मायण्णे असणपाणस्स, अदीणमणसो चरे॥३॥

सस्कृत छाया- कालीपर्वांग सकाश कृशो धमनिसतत ।
मात्रज्ञोऽशनपानयो अदीनमनास्चरेत्॥३॥

अन्वयार्थ-कालीपव्वग-काक जघा के, सकासे-समान, किसे-कृश (हो जाए), धमणिसतए-धमनियो का जाल (मात्र रह जाए), तो भी, असण-पाणस्स-आहार पानी की, मायण्णे-मात्रा जानने वाला (भिक्षु), अदीण-दीनता रहित, मणसो-मन वाला होकर, चरे-(सयम मार्ग म) विचरण करे।

भावानुवाद-दीर्घकालीन क्षुधा के कारण शरीर के काली पर्व जघा अर्थात् तृण विशेष के समान दुर्बल हो जाने पर कृश हो जाने पर, धमनिया-नाडियो क स्पष्ट दिखाइ देने पर भी अशन-अन्नादि पान-पेयादि की मात्रा का जानकार श्रमण मन मे अदीन भाव रखता हुआ विचरण करे अर्थात् मन मे दीनता नहीं आने दे।

संस्कृत छाया- उष्णाभितप्तो मेधावी, स्नानं नापि प्रार्थयेत्।
गात्रं नो परिसिंचेत्, न वीजयेच्चात्मानम्॥९॥

अन्वयार्थ-उण्हाहितत्तो-उष्णता से तप्त (पीडित), मेहावी-बुद्धिमान् साधु सिणाण-स्नान की, णा-नहीं, वि पत्थए इच्छा करे, गाय-शरीर को, णो परिसिचेज्जा-(जल से) न सींचे, य-और, अप्पय-अपने शरीर पर, णो वीएज्जा-पखादि से हवा नहीं करे।

भावानुवाद-ग्रीष्म प्रकोप से सन्तप्त होने पर भी प्रज्ञाशील मेधावी श्रमण स्नान की कामना न करे। शरीर को जल से सिंचित आर्द्र न करे और पखे आदि से हवा भी न करे।

10 दंश मशक परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- पुट्ठो य दंसमसएहिं, समरे व महामुणी।
णागो संगामसीसे वा, सूरो अभिहणे परं॥10॥

संस्कृत छाया- स्पृष्टश्च दंशमशकैः, सम एव महामुनिः।
नागः संग्रामशीर्ष इव, शूरोऽभिहन्यात् परम्॥10॥

अन्वयार्थ-य-और, दसमसएहिं-डास, मच्छरो के उपद्रव से, पुट्ठो-पीडित होने पर, महामुणी-महामुनि, समरे व-समभाव में ही स्थिर रहे, वा-जिस प्रकार, संगाम-संग्राम मे, सीसे-आगे रहा हुआ, सूरो-शूरवीर, णागो-हाथी पर-शत्रुओ का, अभिहणे-हनन करता है (वैसे ही मुनि दंश मशक परीषह रूप शत्रु सैन्य का हनन करे।)

भावानुवाद-जैसे युद्ध भूमि में मोर्चे पर समुपस्थित हाथी बाणो की परवाह नहीं करता हुआ पराक्रमी बन कर शत्रुओं का हनन करता है, उसी प्रकार साधनारत महामुनि भी डास, मच्छरो का उपद्रव उपस्थित होने पर भी उसे समता पूर्वक सहन करे अर्थात् विकट परीषहो की सेना के उपस्थित होने पर अन्तर में उत्पन्न राग-द्वेष रूप शत्रुओ पर विजय प्राप्त करे।

11 दंश मशक परीषह की वेदना

मूल गाथा- ण संतसे ण वारेज्जा, मणं पि ण पओसए।
उवेहे ण हणे पाणे, भुजंते मंससोणियं॥11॥

संस्कृत छाया- न संत्रसेत् न वारयेत्, मनोऽपि न प्रदूषयेत्।
उपेक्षेत न हन्यात्प्राणिनः, भुञ्जानान्मांसशोणितम्॥11॥

अन्वयार्थ-मस-मास, सोणिय-रक्त, भुजते-खाते हुए (दंश मशकादि को, मुनि) ण संतसे-त्रास न देवे, ण वारेज्जा-न हटावे, मण-मन म, पि-भी, ण पओसए-द्वेष न करे, उवेहे-खाते हुए की उपेक्षा कर, पाणे-प्राणियों को ण हणे-न हने (मारे नहीं)।

भावानुवाद-दंश-मशक परीषह पर विजयी होने वाला मुनि डास मच्छरों के प्रकोप से संत्रस्त न हो, उन्हें हटाए नहीं। यहां तक कि मन में भी उनके प्रति द्वेष भाव न लावे। उनके मांस छेदन एवं रक्त पान करने पर भी उनके प्रति उपेक्षा वृत्ति धारण कर, उन्हें मारे नहीं।

12 अचेल परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए।**
अदुवा सचेलए होक्खामि, इइ भिक्खू ण चिंतए॥१२॥

संस्कृत छाया- **परिजीर्णैर्वस्त्रैर्भविष्यामीत्यचेलकः ।**
अथवा सचेलको भविष्यामि इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्॥१२॥

अन्वयार्थ-वत्थेहिं-वस्त्रों के, परिजुण्णेहिं-जीर्ण होने पर मैं, अचेलए-अचेलक (नग्न), होक्खामि-हो जाऊगा, त्ति-इस प्रकार, अदुवा-अथवा सचेलए-वस्त्र सहित, होक्खामि-हो जाऊगा, इइ-इस प्रकार, भिक्खू-साधु, चिन्तए-चिन्तन, ण-नहीं करे।

भावानुवाद-"वस्त्रो के जीर्ण-शीर्ण हो जाने से अब मैं अचेलक वस्त्र रहित हो जाऊगा अथवा नवीन वस्त्रो की प्राप्ति पर मैं वस्त्र सहित सचेल हो जाऊगा" ऐसा भाषाऽभाषात्मक विचार मुनि न करे।

13 जिन व स्थविर कल्प का आचार

मूल गाथा- **एगयाऽचेलए होइ, सचेले यावि एगया।**
एय धम्म हिय णच्चा, णाणी णो परिदेवए॥१३॥

संस्कृत छाया- **एकदाऽचेलको भवति, सचेलको वाऽपि एकदा।**
एत धर्मं हित ज्ञात्वा, ज्ञानी नो परिदेवेत॥१३॥

अन्वयार्थ-एगया-कभी, अचेलए-वस्त्र रहित (अचेलक), होइ-होता है और, एगया-कभी, सचेले यावि-वस्त्र सहित (सचेलक) भी होता है, एय-ये स्थितिया (दोनो ही), धम्म हिय-धर्म के लिए हितकारक, णच्चा-जानकर, णाणी-ज्ञानी मुनि, णो परिदेवए-खेद न करे।

भावानुवाद-अनेक प्रसगो पर परिस्थिति वश श्रमण कभी अचेलक-अल्प वस्त्री और कभी सचेलक-मर्यादा पूर्ति वस्त्र वाला होता है। दोनो ही स्थितियो में मुनि यह सोचकर खेद न करे कि "ये दोनो प्रसग सयम साधना-धर्म के लिए हितावह है।"

14 अरति परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **गामाणुगाम रीयत, अणगार अकिचण।**
अरई अणुप्पवेसेज्जा, त तितिक्खे परीसह॥१४॥

संस्कृत छाया- **ग्रामानुग्राम रीयमाण, अनगारमकिंचनम्।**
अरतिरनुप्रविशेत्, त तितिक्षेत् परिषहम्॥१४॥

अन्वयार्थ-गामाणुगाम-ग्रामानुग्राम, रीयत-विचरते हुए, अकिचण-अकिचन (परिग्रह रहित), अणगार-अनगार (गृहत्यागी) को अरई-अरति (सयम के प्रति अरुचि), अणुप्पवेसेज्जा-प्रविष्ट (उत्पन्न) हो जाए तो, त-उस, परीसह-परीषह को, तितिक्खे-(समभाव से) सहन करे।

संस्कृत छाया- उष्णाभितप्तो मेधावी, स्नानं नापि प्रार्थयेत्।
गात्रं नो परिसिंचेत्, न वीजयेच्चात्मानम् ॥९॥

अन्वयार्थ-उण्हाहितत्तो-उष्णता से तप्त (पीडित), मेहावी-बुद्धिमान् साधु, सिणाण-स्नान की, णो-नहीं, वि पत्थए-इच्छा करे, गाय-शरीर को, णो परिसिंचेज्जा-(जल से) न सींचे, य-और, अप्पय-अपने शरीर पर, णो वीएज्जा-पखादि से हवा नहीं करे।

भावानुवाद-ग्रीष्म प्रकोप से सन्तप्त होने पर भी प्रज्ञाशील मेधावी श्रमण स्नान की कामना न करे। शरीर को जल से सिंचित आर्द्र न करे और पखे आदि से हवा भी न करे।

10 दश मशक परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- पुट्ठो य दसमसएहिं, समरे व महामुणी।
णागो संगामसीसे वा, सूरो अभिहणे परं॥10॥

संस्कृत छाया- स्पृष्टश्च दंशमशकैः, समः एव महामुनिः।
नागः संग्रामशीर्ष इव, शूरोऽभिहन्यात् परम्॥१०॥

अन्वयार्थ-य-और, दसमसएहि-डास, मच्छरो के उपद्रव से, पुट्ठो-पीडित होने पर, महामुणी-महामुनि, समरे व-समभाव मे ही स्थिर रहे, वा-जिस प्रकार, सगाम-सग्राम मे, सीसे-आगे रहा हुआ, सूरो-शूरवीर, णागो-हाथी, पर-शत्रुओ का, अभिहणे-हनन करता है (वैसे ही मुनि दश मशक परीषह रूप शत्रु सैन्य का हनन करे।)

भावानुवाद-जैसे युद्ध भूमि मे मोर्चे पर समुपस्थित हाथी बाणो की परवाह नहीं करता हुआ पराक्रमी बन कर शत्रुओ का हनन करता है, उसी प्रकार साधनारत महामुनि भी डास, मच्छरा का उपद्रव उपस्थित होने पर भी उसे समता पूर्वक सहन करे अर्थात् विकट परीषहो की सेना के उपस्थित होने पर अन्तर मे उत्पन्न राग-द्वेष रूप शत्रुओ पर विजय प्राप्त करे।

11 दश मशक परीषह की वेदना

मूल गाथा- ण संतसे ण वारेज्जा, मणं पि ण पओसए।
उवेहे ण हणे पाणे, भुंजते मंससोणियं॥11॥

संस्कृत छाया- न संत्रसेत् न वारयेत्, मनोऽपि न प्रदूषयेत्।
उपेक्षेत न हन्यात्प्राणिनः, भुञ्जानान्मांसशोणितम्॥११॥

अन्वयार्थ-मस-मास, सोणिय-रक्त, भुजते-खाते हुए (दश मशकादि को, मुनि) ण सतसे-त्रास न देवे, ण वारेज्जा-न हटावे, मण-मन मे, पि-भी, ण पओसए-द्वेष न करे, उवेहे-खाते हुए की उपेक्षा कर, पाणे-प्राणियों को, ण हणे-न हने (मारे नहीं)।

भावानुवाद-दश-मशक परीषह पर विजयी होने वाला मुनि डास मच्छरो के प्रकोप से सन्त्रस्त न हो, उन्हें हटावे नहीं। यहा तक कि मन मे भी उनके प्रति द्वेष भाव न लावे। उनके मास छेदने एव रक्त पान करने पर भी उन पर उपेक्षा वृत्ति धारण करे उन्हें मारे नहीं।

12 अचेल परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **परिजुण्णेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए।**
अदुवा सचेलए होक्खामि, इइ भिक्खू ण चिंतए॥१२॥

सस्कृत छाया- **परिजीर्णैर्वस्त्रै भविष्यामीत्यचेलक ।**
अथवा सचेलको भविष्यामि इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्॥१२॥

अन्वयार्थ-वत्थेहिं-वस्त्रों के, परिजुण्णेहिं-जीर्ण होने पर मैं, अचेलए-अचेलक (नग्न), होक्खामि-हो जाऊगा, त्ति-इस प्रकार, अदुवा-अथवा, सचेलए-वस्त्र सहित, होक्खामि-हो जाऊगा, इइ-इस प्रकार, भिक्खू-साधु, चिन्तए-चिन्तन, ण-नहीं करे।

भावानुवाद-"वस्त्रो के जीर्ण-शीर्ण हो जाने से अब मैं अचेलक वस्त्र रहित हो जाऊगा अथवा नवीन वस्त्रो की प्राप्ति पर मैं वस्त्र सहित सचेल हो जाऊगा" ऐसा भावाऽभावात्मक विचार मुनि न करे।

13 जिन व स्थविर कल्प का आचार

मूल गाथा- **एगयाऽचेलए होइ, सचेले यावि एगया।**
एय धम्म हिय णच्चा, णाणी णो परिदेवए॥१३॥

सस्कृत छाया- **एकदाऽचेलको भवति, सचेलको वाऽपि एकदा।**
एत धर्मं हित ज्ञात्वा, ज्ञानी नो परिदेवेत॥१३॥

अन्वयार्थ-एगया-कभी, अचेलए-वस्त्र रहित (अचेलक), होइ-होता है और, एगया-कभी, सचेले यावि-वस्त्र सहित (सचेलक) भी होता है, एय-ये स्थितिया (दोनो ही), धम्म हिय-धर्म के लिए हितकारक, णच्चा-जानकर, णाणी-ज्ञानी मुनि, णो परिदेवए-खेद न करे।

भावानुवाद-अनेक प्रसगो पर परिस्थिति वश श्रमण कभी अचेलक-अल्प वस्त्री और कभी सचेलक-मर्यादा पूर्ति वस्त्र वाला होता है। दोनो ही स्थितियो मे मुनि यह सोचकर खेद न करे कि "ये दोनो प्रसग सयम साधना-धर्म के लिए हितावह है।"

14 अरति परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **गामाणुगाम रीयत, अणगार अकिचण।**
अरई अणुप्पवेसेज्जा, त तितिक्खे परीसह॥१४॥

सस्कृत छाया- **ग्रामानुग्राम रीयमाण, अनगारमकिंचनम्।**
अरतिरनुप्रविशेत्, त तितिक्षेत् परिषहम्॥१४॥

अन्वयार्थ-गामाणुगाम-ग्रामानुग्राम, रीयत-विचरते हुए, अकिचण-अकिचन (परिग्रह रहित), अणगार-अनगार (गृहत्यागी) को, अरई-अरति (सयम के प्रति अरुचि), अणुप्पवेसेज्जा-प्रविष्ट (उत्पन्न) हो जाए तो, त-उस, परीसह-परीषह को तितिक्खे-(समभाव से) सहन करे।

भावानुवाद-ग्रामानुग्राम-एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरण करते हुए अकिंचन-अपरिग्रही अनगार साधु के मन मे सयम के प्रति यदि अरुचि (अरति) उत्पन्न हो जाए तो उस अरति परीषह को समभाव से सहन करे।

15 अरति परीषह को सहन करने का उपाय

मूल गाथा- **अरइ पिट्ठओ किच्चा, विरए आयरक्खिए।**
धम्मारामे णिरारंभे, उवसंतो मुणी चरे ॥१५॥

सस्कृत छाया- **अरति पृष्ठत कृत्वा, विरत आत्मरक्षक ।**
धर्मारामे निरारम्भ , उपशान्तो मुनिश्चरेत् ॥१५॥

अन्वयार्थ-विरए-हिसादि से निवृत्त, आयरक्खिए-आत्मा की रक्षा करने वाला, णिरारंभे-आरम्भ से रहित, धम्मारामे-धर्म मे रमण करने वाला (अथवा धर्मरूपा आराम-उद्यान म स्थित), मुणी-मुनि, अरइ-अरति को (सयम मे अरुचि), पिट्ठओ-पीठ पीछे, किच्चा-(दूर) करके, उवसतो-उपशात भाव से, चरे-विचरण करे।

भावानुवाद-समस्त सासारिक कामनाओ से विरत, आत्मभाव की रक्षा मे सलग्न, धर्म ध्यान रूप उद्यान म रमण करने वाला, आरम्भक-हिसाजनक प्रवृत्तियो से दूर-अनारम्भी मुनि "अरति" को पीठ देकर उसका परित्याग करके उपशान्त भाव मे विचरण करे।

16 स्त्री परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **सगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगम्मि इत्थिओ।**
जस्स एया परिण्णाया, सुकड तस्स सामण्ण ॥१६॥

सस्कृत छाया- **सग एष मनुष्याणा, या लोके स्त्रिय ।**
येनैता परिज्ञाता , सुकृत तस्य श्रामण्यम् ॥१६॥

अन्वयार्थ-लोगम्मि-लोक मे, जाओ-जो, इत्थिओ-स्त्रिया हैं, एस-ये, मणुस्साण-पुरुषो के लिए, सगो-सग (बधन रूप) हैं, जस्स-जिसने, एया-इनका (स्त्रियो का) सग, *परिण्णाया-परिज्ञा से (ज्ञ-परिज्ञा से जानकर* प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग) त्याग दिया है, तस्स-उसका, सामण्ण-श्रामण्य (साधुत्व), सुकड-सुकृत-सफल है।

भावानुवाद-जिस मुनि ने यह प्रतिज्ञा कर ली-यह जान लिया "स्त्रियो का सग-सहवास लोक मे पुरुषो के लिए बन्धन रूप है", उसका श्रामण्य साधुत्व सुकृत (सफल) हुआ है।

17 आत्म स्वरूप का गवेषण

मूल गाथा- **एवमादाय मेहावी, पंकभूयाओ इत्थिओ।**
णो ताहिं विणिहण्णेज्जा, चरेज्जऽत्तगवेसए ॥१७॥

सस्कृत छाया- **एवमादाय मेधावी, पकभूता स्त्रिय ।**
नो ताभिर्विहन्येत, चरेदात्मगवेषक ॥१७॥

अन्वयार्थ-(ब्रह्मचारी के लिए) इत्थिओ-स्त्रिया, पकभूयाओ-पक युक्त (दलदल के समान) हैं, मेहावी-बुद्धिमान साधु, एव- इस प्रकार, आदाय-भली भाति जानकर, ताहिं-उनसे, णो विणिहण्णेज्जा-(सयमी जीवन का) विनिघात न होने दे, उ-किन्तु, अत्तगवेसए-आत्म गवेषक होकर, चरेज्ज-विचरण करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचारी साधक के लिए स्त्रियाँ पक-कीचड के समान हैं। ऐसा विचार कर मेधावी मुनि किसी भी प्रकार से उन स्त्रियो के द्वारा अपने सयमी जीवन का विनिघात नहीं करे, अपितु उनसे बचकर आत्मस्वरूप का अन्वेषक बनकर विचरण करे।

18 चर्या परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे।**
गामे वा णगरे वावि, णिगमे वा रायहाणीए॥१८॥

सस्कृत छाया- **एक एव चरेल्लाढ , अभिभूय परिषहान्।**
ग्रामे वा नगरे वापि, निगमे वा राजधान्याम्॥१८॥

अन्वयार्थ-लाढे-प्रासुक आहार से निर्वाह करने वाला, मुनि, एग एव-अकेला ही, परीसहे-परीषहा को, अभिभूय-जीतकर, गामे-ग्राम मे, वा-अथवा, णगरे-नगर मे, वा-अथवा, णिगमे-निगम (व्यापारिक केन्द्र) में, वा-अथवा, रायहाणीए-राजधानी मे, वि-भी, चरे-विचरण करे।

भावानुवाद-विशुद्ध चर्या से लाढ-प्रशसित श्रमण एकाकी ही गाव, नगर, निगम, व्यापारिक केन्द्र अथवा राजधानी मे परीषहो को पराजित करता हुआ विचरण करे।

19 साधु को निस्सग होने की शिक्षा

मूल गाथा- **असमाणो चरे भिक्खू, णेव कुज्जा परिग्गह।**
असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिएओ परिव्वए॥१९॥

सस्कृत छाया- **असमानश्चरेद् भिक्षु , नैव कुर्यात् परिग्रहम्।**
असंसक्तो गृहस्थै , अनिकेतन परिव्रजेत्॥१९॥

अन्वयार्थ-भिक्खू-साधु, असमाणो-असाधारण (अहकार रहित) होकर, चरे-विचरे, परिग्गह-परिग्रह (ममत्व भाव), णेव-नहीं, कुज्जा-करे, गिहत्थेहिं-गृहस्थो से, असंसत्तो-असंसक्त (निर्लिप्त) रहे, अणिएओ-घर स रहित होकर, परिव्वए-परिभमण करे।

भावानुवाद-भिक्षु साधक असमान-गृहस्थादि से विलक्षण भिन्नता लिए हुए विचरण करे, परिग्रह का सचय न कर, गृहस्था के साथ अनासक्त, निर्लिप्त रहे, सर्वत्र अनिकेत होकर अर्थात् गृह बन्धन से मुक्त रहता हुआ विचरण करे।

20 निषद्या परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले व एगओ।**
अकुक्कुओ णिसीएज्जा, ण य वित्तासए पर॥२०॥

सस्कृत छाया- श्मशाने शून्यागारे वा, वृक्षमूले चैकक ।
अकुक्कुच निषीदेत्, न च वित्रासयेत् परम् ॥२०॥

अन्वयार्थ-सुसाणे-श्मशान मे, वा-अथवा, सुण्णगारे-शून्य घरो मे, रुक्खमूले-वृक्ष के मूल मे, एगओ-अकेला, व-ही, अकुक्कुओ-अचपलभाव से (कुचेष्टाओ से रहित), णिसीएज्जा-बैठे, य-और, पर-पर जीवो को, ण वित्तासए-त्रास न देवे।

भावानुवाद-श्मशान भूमि मे, शून्य गृह मे अथवा वृक्षो के मूल मे एकाकी मुनि अशिष्ट चेष्टा रहित स्थिर भाव से बैठे। किसी भी प्राणी को कष्ट न दे, सन्त्रास नहीं पहुचावे।

21 निषद्या परीषह की वेदना सहनता

मूल गाथा- तत्थ से चिट्ठमाणस्स उवसग्गाभिधारए।
सकाभीओ ण गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अण्णमासण ॥२१॥

सस्कृत छाया- तत्र तस्य तिष्ठत, उपसर्गानभिधारयेत्।
शकाभीतो न गच्छेत्, उत्थायान्यदासनम् ॥२१॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहा (श्मशानदि मे), चिट्ठमाणस्स-बैठे हुए (ध्यानादि मे), से-साधु को, उवसग्गा-उपसर्ग आ जाए तो, उन्हे, अभिधारए-सहन करे (धारण करे), किन्तु, सकाभीओ-शका से भयभीत होकर, उट्ठित्ता-(वहा से) उठकर, अण्ण-अन्य, आसण-आसन-स्थान पर, ण गच्छेज्जा-न जावे।

भावानुवाद-वहा पर उपर्युक्त स्थानो पर बैठे हुए यदि कभी कोई परीषह उपसर्ग आ जावे तो उसे समभाव से सहन करे और यह सोचे कि इस उपसर्ग से मेरी आत्मा की कोई क्षति होने वाली नहीं है। किसी भी प्रकार की शका से भयभीत होकर वहा से उठकर अन्य आसन (स्थान) पर नहीं जावे।

22 शय्या परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- उच्चावयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खू थामव।
णाइवेल विहण्णेज्जा, पावदिट्ठी विहण्णई ॥२२॥

सस्कृत छाया- उच्चावचाभि शय्याभि, तपस्वी भिक्षु स्थामवान्।
नातिवेल विहन्यात्, पापदृष्टिर्विहन्यात् ॥२२॥

अन्वयार्थ-उच्चावयाहिं-ऊची व नीची, सेज्जाहिं-शय्याओ से, तवस्सी-तपस्वी, थामव-शक्ति सम्पन्न (शीतादि सहन करने मे समर्थ), भिक्खू-साधु, अइवेल-समय (मर्यादा) का उल्लघन कर, ण विहण्णेज्जा-(सयम का) घात न करे, पावदिट्ठी-पाप दृष्टि वाला साधु, विहण्णई-मर्यादा को तोडता है (समय का उल्लघन करता है)।

भावानुवाद-ऊची-नीची ऊबड-खाबड अथवा अच्छी-बुरी शय्या (उपाश्रय-शयन स्थान) के निमित से तपस्वी सहनशील सक्षम मुनि सयम मर्यादा का अतिक्रमण न करे। पापदृष्टि वाला मुनि अच्छे बुरे शयन स्थान म हर्ष शोक

करके गृहीत मर्यादा से गिर जाता है, शय्या परीषह से अभिभूत हो जाता है।

23 इच्छानुकूल शय्या की प्राप्ति न होने पर करणीयता

मूल गाथा- पइरिक्कमुवस्सय लद्धु, कल्लाणमदुव पावय।
किमेगराइ करिस्सइ, एव तत्थऽहियासए॥२३॥

सस्कृत छाया- प्रतिरिक्तमुपाश्रय लब्ध्वा, कल्याणमथवा पापकम्।
किमेकरात्र करिष्यति, एव तत्राधिसहेत॥२३॥

अन्वयार्थ-(मुनि) पइरिक्क-स्त्री-पशु-नपुसक रहित, उवस्सय-उपाश्रय को, लद्धु-प्राप्त करके, कल्लाण-अच्छा (सुन्दर), अदुव-अथवा, पावय-पापरूप (बुरा) उपाश्रय, एगराइ-एकरात्रि प्रमाण काल म, कि-क्या, करिस्सइ-करेगा, एव-इस प्रकार (सोचकर), तत्थ-वहा (उपाश्रय मे), अहियासए-शय्या परीषह (सुख-दुख) को (समभाव पूर्वक) सहन करे।

भावानुवाद-प्रतिरिक्त-स्त्री पशु आदि की बाधा से रहित एकान्त उपाश्रय, चाहे वह कल्याणकारी-अच्छा हो अथवा पापकारी-बुरा, मुनि उसमे यह सोच कर समभाव पूर्वक रहे कि यह एक रात्रि मे मेरा क्या कर लेगा अर्थात् एक रात मे शीतादि कष्टो से क्या घबराना?

24 आक्रोश परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- अक्कोसेज्जा परे भिक्खु, ण तेसि पडिसजले।
सरिसो होइ बालाण, तम्हा भिक्खू ण सजले॥२४॥

सस्कृत छाया- आक्रोशेत् परो भिक्षु, न तस्मै प्रतिसञ्ज्वलेत्।
सदृशो भवति बालाना, तस्माद् भिक्षुर्न सञ्ज्वलेत्॥२४॥

अन्वयार्थ-(यदि) परे-कोई मनुष्य, भिक्खू-भिक्षु पर, अक्कोसेज्जा-आक्रोश करे, तो, तेसि-उन पर, ण पडिसजले-क्रोध न करे (क्याकि क्रोधी साधु), बालाण-अज्ञानिया क, सरिसो-सदृश (समान), होइ-हो जाता है, तम्हा-इसलिए, भिक्खू-साधु, ण सजले-क्रोध न करे।

भावानुवाद-यदि कोई व्यक्ति मुनि पर आक्रोश करे, उसके प्रति गाली-अपशब्दों का प्रयोग करे तो मुनि उसके प्रति क्रोध न करे, क्योकि क्रोध करने वाला बाल अज्ञानियो के सदृश होता है। अत साधु आक्रोश के प्रसग पर भी कुपित न हो।

25 सयम शील साधु का कुशल व्यवहार

मूल गाथा- सोच्चाण फरुसा भासा, दारुणा गामकटगा।
तुसिणीओ उवेहेज्जा, ण ताओ मणसी करे॥२५॥

सस्कृत छाया- श्रुत्वा परुषा भाषा, दारुणा ग्रामकण्टका।
तूष्णीक उपेक्षेत, न ता मनसि कुर्यात्॥२५॥

अन्वयार्थ-दारुणा-दारुण (असह्य), गामकटगा-ग्रामकटक (कर्णादि इन्द्रियो को काटे की तरह चुभने वाली), फरुसा-कठोर, भासा-भाषा को, सोच्चाण-सुनकर (भिक्षु), तुसिणीओ-मौन रहे, उवेहेज्जा-(उसके प्रति) उपेक्षा भाव रखे, ताओ-उसे, ण-नहीं, मणसी-मन मे, करे-करे।

भावानुवाद-किसी की दारुण असह्य-ग्राम कण्टक-काटो की तरह चुभने वाली कठोर भाषा सुनकर भी मुनि मौन रहे, उस भाषा की उपेक्षा कर दे, प्रयोगकर्त्ता के प्रति मन म भी द्वेष न लाए।

26 वध परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- हओ ण सजले भिक्खू, मण पि ण पओसए।
तितिक्ख परम णच्चा, भिक्खू धम्म विचिंतए॥२६।

सस्कृत छाया- हतो न सज्वलेद् भिक्षु , मनोऽपि न प्रदूषयेत।
तितिक्षा परमा ज्ञात्वा, भिक्षुर्धर्मं विचिन्तयेत् ॥२६॥

अन्वयार्थ-हओ-(लाठी आदि से) मारे जाने पर, भिक्खू-साधु, ण-सजले-क्रोध न करे, मणपि-मन से भी, ण-पओसए-(उस पर) द्वेष न करे, तितिक्ख-क्षमा को, परम-उत्कृष्ट, णच्चा-जानकर, भिक्खु धम्म-मुनि-धर्म का, विचितए-चिन्तन करे।

भावानुवाद-किसी के द्वारा मारे-पीटे जाने पर भी मुनि क्रोध न करे। वचन से तो दूर मन म भी विद्वेष भाव न आने दे। तितिक्षा-सहनशीलता-क्षमा को साधना का मूल आधार मानकर मुनि धर्म का चिन्तन करे।

27 वध परीषह पर विजय

मूल गाथा- समण सजय दत, हणिज्जा कोइ कत्थई।
णत्थि जीवस्स णासु ति, एव पेहेज्ज सजए॥२७॥

सस्कृत छाया- श्रमण सयत दान्त, हन्यात् कोऽपि कुत्रचित्।
नास्ति जीवस्य नाश इति, एव चिन्तयेत् सयत ॥२७॥

अन्वयार्थ-सजय-सयत, दत-दान्त (इन्द्रिय जयी), समण-श्रमण को, कोई-कोई (व्यक्ति), कत्थई-किसी स्थान पर, हणेज्जा-मारे पीटे (तब), सजए-सयत, एव-इस प्रकार, पेहेज्ज-चिन्तन (अनुप्रेक्षण) करे कि, जीवस्स-जीव का, णासुत्ति-नाश, णत्थि-नहीं होता है।

भावानुवाद-सयमी दान्त इन्द्रिय जयी मुनि को कोई प्रताडित करे-शारीरिक कष्ट दे तो उसे यह सोचना चाहिए कि आत्मा का तो नाश नहीं होता है, यह शरीर तो नाशवान ही है।

28 याचना परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- दुक्कर खलु भो णिच्च, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्व से जाइय होइ, णत्थि किंचि अजाइय॥२८॥

सस्कृत छाया- **दुष्कर खलु भो नित्यम्, अनगारस्य भिक्षो ।**
सर्वं तस्य याचित भवति, नास्ति किंचिदयाचितम् ॥२८॥

अन्वयार्थ-भो-हे लोगो। खलु-निश्चय मे, णिच्च-सदा से ही, अणगारस्स भिक्खुणो-अनगार साधु को, दुक्कर-दुष्कर हैं (कठिन है), से-उसका, सव्व-आहारादि सब कुछ, जाइय-मागा हुआ, होइ-होता है, किंचि-किंचिन्मात्र, वि-भी, अजाइय-बिना मागा हुआ, णत्थि-नहीं है।

भावानुवाद-मुनि जीवन की याचना वृत्ति निश्चित ही दुष्कर है, क्योकि उसे वस्त्र, पात्र, भोजनादि सब कुछ सदा ही याचना से ही प्राप्त होता है। बिना याचना के उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। अथात् उसके पास अयाचित कुछ भी नहीं होता है।

29 साधुधर्मोचित भिक्षावृत्ति का पालन

मूल गाथा- **गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी णो सुप्पसारए।**
सेओ अगारवासुत्ति, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥२९॥

सस्कृत छाया- **गोचराग्रप्रविष्टस्य, पाणि न सुप्रसारक ।**
श्रेयानगारवास इति, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥२९॥

अन्वयार्थ-गोयरग्ग पविट्ठस्स-गोचरी के लिए (गृहस्थ के घर मे) प्रविष्ट साधु का, पाणी-हाथ, णो सुप्पसारए-फैलाना सरल नहीं है। अतएव, अगार वासुत्ति-गृहवास (घर मे वसना) ही, सेओ-श्रेष्ठ है, इइ-इस प्रकार, भिक्खू-साधु, ण चिंतए-चिन्तन न करे।

भावानुवाद-मुनि को ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए कि गोचरी के लिए गृहस्थ के घर में प्रविष्ट मुनि के लिए गृहस्थ के समक्ष हाथ फैलाना सरल नहीं है, अत गृहवास ही उत्तम है।

30 अलाभ परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- **परेसु घासमेसेज्जा भोयणे परिणिट्ठिए।**
लद्धे पिंडे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज पडिए ॥३०॥

सस्कृत छाया- **परेषु ग्रासमेषयेत्, भोजने परिनिष्ठिते।**
लब्धे पिण्डे अलब्धे वा, नानुतपेत् पण्डित ॥३०॥

अन्वयार्थ-पडिए-बुद्धिमान साधु परेसु-गृहस्थो के घरों में, भोयणे-भोजन, परिणिट्ठिए-निष्पन्न (तैयार) होने पर, घास-आहार की, एसेज्जा-गवेषणा करे, पिंडे-आहार के, लद्धे-मिलने पर वा-अथवा, अलद्ध-नहीं मिलने पर, अणुतप्पेज्ज-पश्चात्ताप, ण-नहीं करे।

भावानुवाद-सयत मुनि गृहस्थो के यहा भोज्य सामग्री तैयार हो जाने पर आहार की गवेषणा करे। आहार के कम मिलने पर या कभी नहीं मिलने पर भी मुनि उसके लिए अनुताप न करे।

31 अलाभ परीषह पर विजय

मूल गाथा- अज्जेवाह ण लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।
जो एव पडिसचिक्खे, अलाभो त ण तज्जए॥31॥

सस्कृत छाया- अद्यैवाह न लभे, अपि लाभ श्व स्यात्।
य एव प्रतिसमीक्षेत, अलाभस्त न तर्जयेत्॥३१॥

अन्वयार्थ-अज्जेव-आज, अह-मुझे, ण लब्भामि-(आहार) नहीं मिला है, तो अवि-सभव है, कि सुए-कल, लाभो-लाभ, सिया-हो जाए, एव-इस प्रकार, जो-जो, पडिसचिक्खे-विचार करता है, त-उसको, अलाभो-अलाभ परीषह, ण तज्जए-पीडित नहीं करता।

भावानुवाद- आज मुझे कुछ नहीं मिला है तो क्या हुआ सभव है कल मिल जाएगा, जो मुनि ऐसा चिन्तन करता है, उसे अलाभ परीषह कष्ट नहीं देता।

32 रोग परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- णच्चा उप्पइय दुक्ख, वेयणाए दुहट्टिए।
अदीणो ठावए पण्ण, पुट्ठो तत्थऽहियासए॥32॥

सस्कृत छाया- ज्ञात्वोत्पतित दु ख, वेदनया दु खार्दित।
अदीन स्थापयेत् प्रज्ञा, स्पृष्टस्तत्राधिसहेत॥३२॥

अन्वयार्थ-दुक्ख-(रोगादि) दु ख को, उप्पइय-उत्पन्न हुआ, णच्चा-जानकर, वेयणाए-वेदना से, दुहट्टिए-दु खी हुआ साधु, अदीणो-दीनता रहित, पण्ण-प्रज्ञा को, ठावए-स्थिर करे, पुट्ठो-स्पर्श होने पर (रोगादि के), तत्थ-वहा, अहियासए-(दु ख को) सहन करे।

भावानुवाद-मुनि यह सोचकर वेदना से दीन न बने कि कर्मों के उदय से ऐसा रोग उत्पन्न होता है। रोग से विचलित मन स्थिति को अदीन भाव मे स्थिर करे और प्राप्त वेदना को समता पूर्वक सहन करे।

33 चिकित्सा का सर्वथा निषेध है या विधान भी

मूल गाथा- तेगिच्छ णाभिणदेज्जा, सचिक्खऽत्तगवेसए।
एव खु तस्स सामण्ण, ज ण कुज्जा ण कारवे॥33॥

सस्कृत छाया- चिकित्सा नाभिनन्देत्, सतिष्ठेदात्मगवेषक।
एव खलु तस्य श्रामण्य, यन्न कुर्यात् न कारयेत्॥३३॥

अन्वयार्थ-सचिक्ख-समाधि मे रहे, अत्तगवेसए-आत्म गवेषक साधु, तेगिच्छ-चिकित्सा का, णाभिणदेज्जा-अनुमोदन न करे, ज ण-जो (रोगादि का प्रतिकार) नहीं, कुज्जा-करता है, ण कारवे-नहीं कराता है, (उपलक्षण से अनुमोदन न करे), एव-इसी म, तस्स-उसकी, सामण्ण-साधुता (साधु भाव) है।

भावानुवाद-आत्मशोधक मुनि चिकित्सा का अभिनन्दन अनुमोदन न करे अपितु समाधि भाव मे रमण करे। मुनि का यही श्रामण्य है कि वह रोगोत्पत्ति पर न तो स्वय चिकित्सा करे और न किसी से चिकित्सा करवाए।

टिप्पण-यहा यह स्मरणीय है कि चिकित्सा सबधी उपर्युक्त विधान जिनकल्पी अभिग्रहधारी आदि मुनि की अपेक्षा से प्रतिपादित किया गया है। क्योकि स्थविर कल्पी साधु के लिए उपचार और उसके प्रायश्चित्त का विधान निशीथ आदि मे उपलब्ध होता है। अत अपवाद रूप मे स्थविर कल्पी के लिए चिकित्सा का सर्वथा निषेध नहीं किया गया है।

34 तृण-स्पर्श परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- अचेलगस्स लूहस्स, सजयस्स तवस्सिणो।
तणेसु सयमाणस्स, हुज्जा गायविराहणा॥३४॥

सस्कृत छाया- अचेलकस्य रूक्षस्य, सयतस्य तपस्विन ।
तृणेषु शयानस्य, भवेद् गात्रविराधना॥३४॥

अन्वयार्थ-अचेलगस्स-अचेलक (वस्त्र रहित), लूहस्स-रूक्ष शरीर वाले, सजयस्स-सयत, तवस्सिणो-तपस्वी को, तणेसु-तृणो पर, सयमाणस्स-शयन करते समय, गायविराहणा-शरीर की विराधना, हुज्जा-होती है।

भावानुवाद-अचेलक अर्थात् अल्प वस्त्री एव रूक्ष शरीरी सयती, तपस्वी मुनि को घास पर सोने पर गात्र विराधना अर्थात् शारीरिक कष्ट होता है।

35 तृण-स्पर्श परीषह पर विजय

मूल गाथा- आयवस्स णिवाएण, अउला हवइ वेयणा।
एव णच्चा ण सेवति, ततुज तणतज्जिया॥३५॥

सस्कृत छाया- आतपस्य निपातेन, अतुला भवति वेदना।
एव ज्ञात्वा न सेवन्ते, ततुज तृणतर्जिता ॥३५॥

अन्वयार्थ-आयवस्स-आतप (धूप) के, णिवाएण-गिरने से, अउला-बहुत, वेयणा-वेदना, हवइ-होती है, एव-इस प्रकार, णच्चा-जानकर, तण तज्जिया-तृण से पीडित हुए साधु, ततुज-तन्तुओ (ततुओ से बने वस्त्र), ण सेवति-सेवन नहीं करते।

भावानुवाद-ग्रीष्म के प्रकोप से तृण शय्या पर सोने से अत्यधिक वेदना होती है, यह जानकर तृण स्पर्श मे पीडित साधु (अमर्यादित) वस्त्रो का सेवन नहीं करते हैं।

36 मैल-जल्ल परीषह का स्वरूप

मूल गाथा- किलिण्णगाए मेहावी, पकेण व रएण वा।
घिसु वा परियावेण, साय णो परिदेवए॥३६॥

अन्वयार्थ-अणाण फला-अज्ञान फल वाले, कडा-किये हुए, कम्मा-कर्म, अह पच्छा-पकने के पश्चात्, उइज्जति-उदय मे आते हैं, एव-इस प्रकार, कम्म-कर्म के, विवागय-विपाक को, णच्चा-जानकर, अप्पाण-अपनी आत्मा को, अस्सासि-आश्वासन देवे।

भावानुवाद-कर्म के विपाक-फलदायक शक्ति को जानकर मुनि अपनी आत्मा को इस प्रकार आश्वस्त करे कि अज्ञान रूप फल देने वाले पूर्व कृत कर्म कालपरिपाक के बाद उदय मे आते है।

42 अज्ञान परीपह का स्वरूप

मूल गाथा- णिरट्ठगम्मि विरओ, मेहुणाओ सुसवुडो।
जो सक्ख णाभिजाणामि, धम्म कल्लाणपावग ॥४२॥

सस्कृत छाया- निरर्थकमस्मि विरत, मैथुनात्सुसवृत ।
य साक्षान्नाभिजानामि, धर्मं कल्याणपापकम् ॥४२॥

अन्वयार्थ-णिरट्ठग-निरर्थक ही, मि-मेरा, मेहुणाओ-मैथुन से, विरओ-निवृत्त होना, सुसवुडो-इन्द्रियो व मन से सवृत होना हुआ, जो-क्योकि, कल्लाण-कल्याणकारी, पावग-पापकारी, धम्म-धर्म को, सक्ख-साक्षात् (प्रत्यक्ष) से, णाभिजाणामि-मैं नहीं जानता हू।

भावानुवाद-मुनि कभी यह विचार न करे कि मैंने व्यर्थ ही मैथुनादि भौतिक सुखा से निवृत्ति ली, मन और इन्द्रियो को सवृत किया। क्योकि धर्म कल्याणप्रद अथवा पापकारी है, यह मैं साक्षात् प्रत्यक्ष तो देख नहीं पाता हू।

43 फलाकाक्षा विषयक भ्रान्त चिन्तन

मूल गाथा- तवोवहाणमादाय, पडिम पडिवज्जओ।
एवपि विहरओ मे, छउम ण णियट्टई ॥४३॥

सस्कृत छाया- तपउपधानमादाय, प्रतिमा प्रतिपद्यमानस्य।
एवमपि विहरत मे, छदम् न निवर्तते ॥४३॥

अन्वयार्थ-तव-तप, उवहाण-उपधान को, आदाय-ग्रहण करके, पडिम-प्रतिमा को, पडिवज्जओ-अगीकार करके, एवपि-इस प्रकार (विशिष्टचर्या) से भी, विहरओ-विचरने से, मे-मेरा, छउम-छद्मस्थ भाव, णियट्टई-निवृत्त (दूर), ण-नहीं हुआ।

भावानुवाद-तप और उपधान को स्वीकार करके प्रतिमाओ-विशिष्ट प्रतिज्ञाओं को भी धारण किया। इस प्रकार के विशिष्ट साधना मार्ग के स्वीकार करने पर भी मेरा छद्मस्थ भाव अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्मों का आवरण दूर नहीं हो रहा है, मुनि ऐसा चिन्तन न करे।

44 दर्शन परीपह का स्वरूप

मूल गाथा- णत्थि णूण परे लोए, इड्ढी वावि तवस्सिणो।
अदुवा वचिओमित्ति, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥४४॥

संस्कृत छाया- नास्ति नूनं परोलोक, ऋद्धि र्वापि तपस्विन ।
अथवा वंचितोऽस्मि, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥४४ ॥

अन्वयार्थ-णूण-निश्चय से, परे लोए-परलोक, णत्थि-नहीं है, वा-अथवा, तवस्सिणो-तपस्वियो की, इड्डि-ऋद्धि, वि-भी नहीं है, अदुव-अथवा, वचिओमित्ति-मैं ठगा (छला) गया हू। इइ-इस प्रकार, भिक्खू-भिक्षु (साधु), ण चिंतए-चिंतन नहीं करे।

भावानुवाद-निश्चय ही न तो परलोक है और न ही तपस्वी की ऋद्धि ही है, मैं तो धर्म के नाम पर ठगा गया हू, भिक्षु-साधक ऐसा चिन्तन न करे।

45 सयमशील साधु का आत्म चिन्तन

मूल गाथा- अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवा वि भविस्सई।
मुस ते एवमाहसु, इइ भिक्खू ण चिंतए ॥४५ ॥

संस्कृत छाया- अभूवन् जिना सन्ति जिना , अथवाऽपि भविष्यन्ति।
मृषा ते एवमाहु , इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥४५ ॥

अन्वयार्थ-जिणा-जिन, अभू-हुए, अत्थि जिणा-जिन हैं, अदुवा-अथवा (जिन), वि भविस्सइ-भविष्य मे भी होगे, ते-जो, एव-इस प्रकार, आहसु-कहते हैं, (वे) मुस-(वे) झूठ बोलते हैं, इइ-इस प्रकार का, भिक्खू-साधु, ण चिंतए-चिन्तन न करे।

भावानुवाद-भिक्षु यह चिन्तन भी न करे कि पूर्व काल मे जिन हुए हैं, वर्तमान मे जिन हैं और भविष्य में जिन होगे जो ऐसा बोलते हैं वे झूठ बोलते हैं।

46 उपसहार

मूल गाथा- एए परीसहा सव्वे, कासवेण पवेइया।
जे भिक्खू ण विहण्णिज्जा, पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥४६ ॥

त्ति बेमि।

इति दुइअ परिसहज्झयण समत्त ॥२ ॥

संस्कृत छाया- एते परिषहा सर्वे, काश्यपेन प्रवेदिता ।
यान् भिक्षुर्न विहन्येत, स्पृष्ट केनाऽपि कुत्रचित् ॥४६ ॥

इति ब्रवीमि।

द्वितीय परिषहाध्ययन समाप्तम् ॥२ ॥

अन्वयार्थ-एए-ये सव्वे-सभी, परीसहा-परीषह, कासवेणं-काश्यप गोत्रीय (महावीर) के द्वारा, पवेइया-कहे

गये हैं, **जे**-जिनको, **भिक्खू**-साधु (जान करके), **केणइ**-किसी के द्वारा, **कण्हुई**-किसी स्थान पर, **पुट्ठो**-स्पर्शित होने पर, **ण विहण्णिज्जा**-पतित न होवे।

त्ति-इस प्रकार, **बेमि**-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इन सभी परीषहो का वर्णन काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर ने किया है। भिक्षु मुनि इन्हे जान कर कहीं भी किसी भी परीषह से स्पृष्ट-आक्रान्त होने पर इनसे पराजित न हो।

ऐसा मै कहता हू।

इस प्रकार परीषह प्रविभक्ति नामक द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ।

❑❑❑

चतुरंगीय - तृतीय अध्ययन

उत्थानिका

ससार की समस्त आत्माओ की जीवन यात्रा अनादिकाल से चल रही है। इस यात्रा मे अनेक पडाव ऐसे हैं जहा यह आत्मा अनेक प्रकार के विकट दु खो-सघर्षों से झूजती है। अनेक पडाव ऐसे हैं जहा भौतिक शारीरिक सुखो के झूले झूलती है। ऐसे पडाव बहुत कम उपलब्ध होते हैं जहा भौतिक सुख-दु ख से ऊपर उठकर जन्म-मरण की अनादि यात्रा से मुक्त होने का अवसर प्राप्त हो सके। वे प्रमुख अवसर कितने और कौन-कौन से हैं, इस विषय का प्रतिपादन इस तीसरे अध्ययन मे किया गया है।

जन्म-मरण रूप ससार सागर से मुक्ति का मूल सेतु है-मानवीय तन। अनादि कालीन इस जीवन यात्रा मे हम अनेको बार पशु भी बने, पक्षी भी बने, नारकीय यातनाए भी हमने सहन की, निगोद के कष्ट भी देखे और दैविक सुखो का उपभोग भी किया। किन्तु इन सब पडावो मे बधन को प्रगाढ बनाने का ही कार्य विशेष होता रहा। मुक्ति साधना की सुविधा इनमे नहींवत् ही रही।

मुक्ति साधना के लिए प्रथम सुविधा अथवा आवश्यकता है मानवीय तन की। तन तो अन्य योनिया-गतियो मे भी उपलब्ध होते हैं। कुछ तो मानवीय तन से अधिक ऊर्जस्विल, सुन्दर और शक्तिशाली भी होते हैं, किन्तु उनमें मुक्ति साधना की योग्यता नहीं होती है। वह योग्यता मानव देह मे ही होती है। किन्तु यहा यह स्मरणीय है कि केवल मानव तन भी साधना के लिए पर्याप्त नहीं है। मानव तन के साथ मानवता का होना आवश्यक है। इसी दृष्टि से शास्त्रकार ने **'माणुसत्त'** पद दिया है जो मनुष्यत्व-मानवता का द्योतक है। मुक्ति साधना की प्रथम भूमिका है-मानवता। मानवता की समतल-सुडोल भूमिका पर ही साधना की भव्य मजिल खडी की जा सकती है।

मानवता की प्राप्ति भी तब तक अधूरी रहती है जब तक कि श्रुति-सद् धर्म का श्रवण न मिले। अत द्वितीय दुर्लभ अग है-'श्रुति'। वीतराग भगवन्तो द्वारा प्रतिपादित तत्त्व-मार्ग का-मुक्तिमार्ग का श्रवण हुए बिना हेय ज्ञेय और उपादेय का बोध कैसे हो सकता है? अत मनुष्यत्व की उपलब्धियो के उपरान्त भी 'श्रुति' को दुर्लभ कहा है।

श्रवण करने को मिल जाए-हजारो उपदेश सुन लिए जाए, किन्तु वे तब तक अकार्यकारी रहेंगे जब तक कि उन पर प्रगाढ श्रद्धा का जागरण न हो। अत तृतीय दुर्लभ अग है-'श्रद्धा'। वास्तव में तत्त्व को जान लेना-समझ लेना सहज है, किन्तु उस पर सम्यग् श्रद्धा-यथार्थ प्रतीति का हो पाना परम दुर्लभ है। सम्यक् श्रद्धा का अर्थ है-सत्य दृष्टि अथवा शुद्ध आस्था।

अन्तिम और चतुर्थ दुर्लभ अग है-'पुरुषार्थ'। जान लेना और श्रद्धा प्रतीति कर लेने मात्र से भी साधना नहीं हो सकती है। उस पर पराक्रम-आचरण नितान्त आवश्यक है। यथाश्रुत यथा प्रतीति पर पदचरण किया जाए, उसे जीवन में ढाला जाए तो ही मुक्ति साधना की परिपूर्णता बन सकती है। यहीं आकर आ‍ की दुर्लभता समाप्त हो जाती है। मुक्ति के लिए ये चारों अग दुर्लभ माने गए हैं।

□□□

चतुरगीय - तृतीय अध्ययन

सूक्ति साराश

सम्यग् उपयोग साधना, दुरुपयोग-विराधना।
दुलर्भ अगो का सम्यग् उपयोग ही साधना है।
मनुष्यत्व, श्रुति, पुरुषार्थ का सम्यग् नियोजन करो।

जैसा कर्म-वैसी गति।
जीव का परिभ्रमण स्वकर्म प्रेरित है।

अशुभकर्म से बचो, अशान्ति नहीं आयेगी।
सारी वेदना समस्त अशान्ति कर्म जनित है।
कर्म स्वोपार्जित है।

अज्ञान विभाव-ज्ञान स्वभाव।
सुन समझकर भी आचरण नहीं करना मूढता है।
मूढता अज्ञान है। अज्ञान भटकाता है।

सम्यक् पराक्रमी-आत्म विजयी।
कर्म मैल के प्रक्षालन में ऐसे पराक्रमी बनो कि सम्पूर्ण मैल छूट जाए।
आत्मा निर्मल हो जाए।

सरल बनो-धार्मिक बन जाओगे।
शुद्ध ऋजुभूत हृदय मे ही धर्म ठहरता है। ऋजुता धर्म का आश्रय स्थल है।

आत्मा सार है-माया नि सार है।
साधना करो, आकाक्षा नहीं।
साधना सार तत्त्व देने वाली है, आकाक्षा नि सार की होती है।

□□□

अह तइअं चाउरंगिज्जं अज्झयणं

अथ तृतीयं चातुरंगीयमध्ययनं

चतुरंगीय

1 चार दुर्लभ अगो का नामोल्लेख

मूल गाथा- चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो।
माणुसत्त सुइ सद्धा, सजमम्मि य वीरिय ॥१॥

सस्कृत छाया- चत्वारि परमागानि, दुर्लभानीह जन्तो ।
मनुष्यत्व श्रुति श्रद्धा, सयमे च वीर्यम् ॥१॥

अन्वयार्थ-इह-इस ससार म, जतुणो-प्राणिया को, चत्तारि-चार, परमगाणि-प्रधान अग, दुल्लहाणीह-दुर्लभ हैं (वे इस प्रकार हैं), माणुसत्त-मनुष्यत्व, सुई-धर्म श्रवण, सद्धा-श्रद्धा, य-और, सजमम्मि-सयम में, वीरियं-पराक्रम (पुरुपार्थ)।

भावानुवाद-इस ससार में जीव के लिए चार परम अग दुर्लभ हैं-मनुष्यत्व, सद्धर्म का श्रवण, श्रद्धा और सयम साधना मे पुरुपार्थ।

2 मनुष्यत्व प्राप्ति की दुर्लभता

मूल गाथा- समावण्णाण ससारे, णाणागोत्तासु जाइसु।
कम्मा णाणाविहा कट्टु, पुढो विस्सभया पया ॥२॥

सस्कृत छाया- समापन्ना ससारे, नानागोत्रेषु जातिषु।
कर्माणि नानाविधानिकृत्वा, पृथग् विश्वभृत प्रजा ॥२॥

अन्वयार्थ-ससारे-ससार में, पुढो-पृथक्-पृथक् रूप से, पया-जीवा ने, णाणा-नाना प्रकार के, गोत्तासु-गोत्रों में, जाइसु-जातिया में, समावण्णाण-उत्पन्न हुए, णाणा-नाना, विहा-प्रकार के, कम्मा-कर्म, कट्टु-करके, विस्स-सम्पूर्ण विश्व को (जगत् को), भया-भर दिया है।

भावानुवाद-प्रत्येक ससारी आत्मा ने अनेक प्रकार के कर्म करके इस ससार में भिन्न-भिन्न रूप स अनेक गोत्रो और

योनियो मे उत्पन्न होकर इस ससार को भर दिया है अर्थात् सभी जीव अपने जन्म-मरण से समस्त ससार का स्पर्श कर चुके हैं।

3 कर्मों का विपाक

मूल गाथा- एगया देवलोएसु, णरएसु वि एगया।
एगया आसुर काय, अहाकम्मेहिं गच्छई ॥3॥

सस्कृत छाया- एकदा देवलोकेषु, नरकेष्वप्येकदा।
एकदाऽऽसुर काय, यथा कर्मभिर्गच्छति ॥३॥

अन्वयार्थ-अहाकम्मेहिं-यथा कर्मों के अनुसार (जीव), एगया-कभी, देवलोएसु-देवलोको मे, एगया-कभी, णरएसु-नरकों मे, वि-भी, एगया-कभी, आसुर-असुरादि, काय-काय में, गच्छइ-जाता है।

भावानुवाद-जीव अपने कृत कर्मों के अनुसार कभी देवलोक मे, कभी नरक मे और कभी असुर निकाय म जाता है-जन्म ग्रहण करता है।

4 कर्मानुसार योनियो मे उत्पत्ति

मूल गाथा- एगया खत्तिओ होइ, तओ चण्डाल बुक्कसो।
तओ कीडपयगो य, तओ कुथु पिवीलिया ॥4॥

सस्कृत छाया- एकदा क्षत्रियो भवति, ततश्चण्डालो बोक्कस ।
तत कीट पतगश्च, तत कुथु पिपीलिका ॥४॥

अन्वयार्थ-एगया-कभी, (किसी समय) जीव, खत्तिओ-क्षत्रिय, होइ-होता है, तओ-उसके बाद, चडाल-चाण्डाल, बुक्कसो-बुक्कस, तओ-उसके बाद, कीड-कीट, पयगो-पतगा, य-और, तओ-इसके बाद, कुथु-कुन्थू, पिवीलिया-पिपीलिका होता है।

भावानुवाद-यह जीव कभी क्षत्रिय बनता है तो कभी चाण्डाल और बोक्कस-वर्णसकर हो जाता है। वहा से मरकर कभी कीट-पतग और कभी कुथु और चींटी भी बन जाता है अर्थात् यह कर्मानुसार विभिन्न योनियो में जन्म लेता रहता है।

5 निरतर परिभ्रमण से निवृत्ति

मूल गाथा- एवमावट्ट जोणीसु, पाणिणो कम्मकिब्बिसा।
ण णिविज्जति ससारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥5॥

सस्कृत छाया- एवमावर्तयोनिषु, प्राणिन कर्मकिल्बिषा ।
न निर्विद्यन्ते ससारे, सर्वार्थेष्विव क्षत्रिया ॥५॥

अन्वयार्थ- व-जिस प्रकार, खत्तिया-क्षत्रियलोग, सव्वट्ठेसु-सर्व अर्थों म (विषय भोगो म आसक्ति स),

ण णिविज्जति-निवृत्त नहीं होते, एव-इसी प्रकार, कम्म किव्विसा-कर्मों से मलिन (दुष्ट कर्म करने वाले), पाणिणो-प्राणी, जोणीसु-योनियो मे, आवट्ट-आवर्तन करते हुए, ससारे-ससार से (निवृत्त नहीं होते हैं)।

भावानुवाद-जैसे सम्पूर्ण रूप से वान्छित ऐश्वर्य और सुखो की प्राप्ति होने पर भी तृष्णावान् क्षत्रिय-राजा लोगो को तृप्ति नहीं होती, ऐश्वर्य से विरक्ति नहीं होती है, उसी प्रकार कर्म मेल से मलिन जीव भी अनादिकाल से जन्म-मरण के आवर्त रूप योनिया मे भ्रमण करते हुए निर्वेद को प्राप्त नहीं होते हैं। जन्म-मरण के दु खो से मुक्त होने की भावना नहीं करते हैं।

6 शुभाशुभ कर्मों की फल विचित्रता

मूल गाथा- कम्मसगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मति पाणिणो॥६॥

सस्कृत छाया- कर्मसगै सम्मूढा , दु खिता बहुवेदना ।
अमानुषीषु योनिषु, विनिहन्यन्ते प्राणिन ॥६॥

अन्वयार्थ-कम्म सगेहिं-कर्मों के सयोग से, सम्मूढा-मूढ बने हुए, दुक्खिया-दु खित, बहुवेयणा-अति वेदना वाले, पाणिणो-प्राणी अमाणुसासु-मनुष्येतर (मनुष्य को छोड अन्य), जोणीसु-योनियो मे, विणिहम्मति-कष्ट को प्राप्त होते हैं।

भावानुवाद-कर्मों के सयोग से अति मूढ, दु खित और अत्यन्त वेदनाओ से युक्त जीव मनुष्य योनि से भिन्न-इतर-योनियो में जन्म लेकर बार-बार विनिघात-सत्रास को प्राप्त होते हैं। दु ख भोगते हैं।

7 मनुष्य जन्म प्राप्ति का कारण

मूल गाथा- कम्माण तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययति मणुस्सय॥७॥

सस्कृत छाया- कर्मणा तु प्रहाण्या, आनुपूर्व्या कदाचन।
जीवा शुद्धिमनुप्राप्ता , आददते मनुष्यताम्॥७॥

अन्वयार्थ-कयाइ उ-कदाचित्, आणुपुव्वी-अनुक्रम से (शनै शनै), कम्माण-कर्मों के (मनुष्य गति प्रतिबधक), पहाणाए-विनष्ट होने से, जीवा-जीव, सोहिं-शुद्धि को, अणुप्पत्ता-प्राप्त हुए, मणुस्सय-मनुष्यत्व को, आययति-प्राप्त करते हैं।

भावानुवाद-किसी समय कालक्रम के अनुसार मनुष्य गति के बाधक कर्मों के क्षय से जीवो को शुद्धि प्राप्त होती है-उनकी आत्मा शुद्ध होती है, परिणामत उन्हें मनुष्यत्व की प्राप्ति होती है।

8 धर्म श्रवण की दुर्लभता

मूल गाथा- माणुस विग्गह लद्धु, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
ज सोच्चा पडिवज्जति, तव खतिमहिंसय॥८॥

सचित कर, पाढव-पार्थिव, सरीर-शरीर को, हिच्चा-छोडकर, उड्ढ-ऊची, दिस-दिशा को, पक्कमई-प्राप्त करता है।

भावानुवाद-कर्म के हेतुओ को दूर करके क्षमा के द्वारा सयम-यश को सचित कर साधक इस पार्थिव शरीर का परित्याग करके ऊर्ध्व दिशा (स्वर्ग या मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

14 विविध शील आराधना से देवलोको की प्राप्ति

मूल गाथा- विसालिसेहिं सीलेहि, जक्खा उत्तर उत्तरा।
महासुक्का व दिप्पता, मण्णता अपुणच्चव॥१४॥

सस्कृत छाया- विसदृशै शीलै, यक्षा उत्तरोत्तरा।
महाशुक्ला इव दीप्यमाना, मन्यमाना अपुनश्च्यवम्॥१४॥

अन्वयार्थ-विसालिसेहिं-विभिन्न प्रकार के, सीलेहिं-शीलो से, जक्खा-यक्ष देव, उत्तर उत्तरा-प्रधान से प्रधान (उत्तरोत्तर), महासुक्का-महाशुक्ल, व-की तरह, दिप्पता-प्रकाशमान होकर, अपुणच्चव-पुन च्यवन नहीं होता, मण्णता-ऐसा मानते है।

भावानुवाद-जीव अनेक प्रकार के शील व्रता के परिपालन से विशिष्ठ देव बन जाते है। समृद्धि की उत्तरोत्तर वृद्धि के द्वारा महाशुक्ल चन्द्र-सूर्य की भाति दीप्तिमन्त होते हैं।'हमारा च्यवन नहीं होगा' ऐसा मानते हुए वहा रहते हैं।

15 उन देवो की दीर्घकालीन स्थिति

मूल गाथा- अप्पिया देवकामाण, कामरुव विउव्विणो।
उड्ढ कप्पेसु चिट्ठति, पुव्वा वाससया बहू॥१५॥

सस्कृत छाया- अर्पिता देवकामान्, कामरूप वैक्रेयिण।
ऊर्ध्वं कल्पेषु तिष्ठन्ति, पूर्वाणिवर्षशतानि बहूनि॥१५॥

अन्वयार्थ-देव कामाण-देव कामभोगों को, अप्पिया-प्राप्त हुए, कामरुव-इच्छानुसार, विउव्विणो-विकुर्वणा करने वाले, बहू-बहुत, पुव्वा-पूर्वो, वाससया-सौ वर्षों तक, उड्ढ-ऊर्ध्व, कप्पेसु-कल्पों (विमानो) मे, चिट्ठति-ठहरते हैं।

भावानुवाद-वे देव दिव्य भोगों को प्राप्त हुए अथवा अपने आपको उन भोगो के प्रति अर्पित करके अपनी कामनाआ के अनुसार वैक्रिय रूप बनाने मे सक्षम होते हैं। उन ऊर्ध्व कल्पो म सैकडों पूर्वों-असख्य वर्षों तक रहते हैं।

16 मनुष्य भव मे दस अगो सहित उत्पत्ति

मूल गाथा- तत्थ ठिच्चा जहाठाण, जक्खा आउक्खए चुया।
उवेंति माणुस जोणि, से दसगे ऽभिजायए॥१६॥

सस्कृत छाया- तत्र स्थित्वा यथास्थान, यक्षा आयु क्षये च्युता।
उपयान्ति मानुषीं योनिम्, स दशागो ऽभिजायते॥१६॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहा, जहाठाण-यथास्थान, ठिच्चा-(स्थिति करके) रहकर, जक्खा-यक्ष देव, आउक्खए-आयु के क्षय होने पर, चुया-च्यवकर, माणुस-मनुष्य की, जोणि-योनि को, उवेंति-प्राप्त करते हैं, से-वे, दसगे-दश अगो से युक्त, अभिजायए-उत्पन्न होते हैं।

भावानुवाद-वे देव उन देवलोको मे यथास्थान अपनी काल स्थिति तक ठहर कर आयु के क्षय होने पर वहा से लौटते हैं अर्थात् वहा से च्यवकर-मरण प्राप्त कर मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं। वहा उनको मनुष्योचित काम भोगो के दशो अगो की प्राप्ति होती है।

17 जीव उत्पत्ति का स्थान-काम स्कध का वर्णन

मूल गाथा- खेत्त वत्थु हिरण्ण च, पसवो दासपोरुस।
चत्तारि कामखधाणि, तत्थ से उववज्जइ॥१७॥

सस्कृत छाया- क्षेत्र वास्तु हिरण्यञ्च, पशवो दास पौरुषम्।
चत्वार कामस्कन्धा, तत्र स उत्पद्यते॥१७॥

अन्वयार्थ-(दस अग इस प्रकार हैं) खेत्त-क्षेत्र, वत्थु-वास्तु, हिरण्ण-सोना, च-और, पसवो-पशु, दासपोरुस-दास व पुरुष समूह, चत्तारि-ये चार, कामखधाणि-काम स्कन्ध हैं, तत्थ-वहा पर, से-वह जीव, उववज्जइ-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-क्षेत्र-खेती की भूमि, वास्तु-गृह, मकान, स्वर्ण, पशु और दास-पौरुषेय समूह ये चार काम स्कन्ध जहा विद्यमान होते हैं, वहा वे देव मरकर उत्पन्न होते हैं।

18 काम स्कध के अतिरिक्त नव अगो का वर्णन -

मूल गाथा- मित्तव णायव होइ, उच्चागोए य वण्णव।
अप्पायके महापण्णे, अभिजाए जसो बले॥१८॥

सस्कृत छाया- मित्रवाञ्ज्ञातिवान्भवति, उच्चैर्गोत्रो वर्णवान्।
अल्पातक महाप्राज्ञ, अभिजातो यशस्वी बली॥१८॥

अन्वयार्थ-मित्तव-मित्रवान्, णायव-ज्ञातिवान्, उच्चागोए-उच्चगोत्रीय, वण्णव-सुन्दर वर्ण वाला, अप्पायके-आतक रहित (निरोग), महापण्णे-महा प्राज्ञ, अभिजाए-विनयवान्, जसो-यशस्वी, य-और बल-बलवान होइ-होता है।

भावानुवाद-स्वर्ग से आगत वह जीव मनुष्य योनि में सन्मित्रो स युक्त ज्ञातिमान, उच्च गोत्रीय सुन्दर वर्ण वाला नीरोगी, महाप्रान, अभिजात-कुलीन, यशस्वी और बलशाली होता है।

19 विशुद्ध धर्माराधन से केवल बोधि लाभ

मूल गाथा- भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउय।
पुव्वि विसुद्ध सद्धम्मे, केवल बोहिं बुज्झिया॥१९॥

असस्कृत - चतुर्थ अध्ययन

सूक्ति साराश ·

प्रमाद असयम-जागृति सयम।
जीवन असस्कृत है, वृद्धावस्था को रोका नहीं जा सकता
अत प्रमाद का त्याग करो।

धन सचय वैर वृद्धि का कारण है।
वैर दुर्गति का द्वार है।
वैर से अनुबद्ध जीव दुर्गति का मेहमान बनता है।

कर्म ससार-अकर्म मुक्ति।
कृत कर्मों का फल भोग अवश्यभावी है।
अत कर्म-अशुभ कर्म से बचो।

धन रक्षक नहीं, भक्षक है।
धन किसी भी स्थिति मे शरण प्रदाता नहीं बन सकता।

अप्रमत्तता-काल पर विजय।
यह काल भयकर है, सर्वग्रासी है और शरीर निर्बल है
अत भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त बनो।

स्वच्छन्द नहीं, आत्मानुशासित बनो।
स्वच्छन्दता का निरोध मुक्ति का प्रथम सोपान है।

इन्द्रिय जय-आत्म विजय।
इन्द्रिय विषय प्रलोभन पैदा करते हैं।
प्रलोभन-विजयी साधक ही मुक्ति का आराधक होता है।

❑❑❑

अह चउत्थं असंखयं अज्झयणं

अथ चतुर्थम् असंस्कृतमध्ययनं

असखय

1 असस्कृत जीवन मे प्रमाद वर्जन

मूल गाथा- असखय जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताण।
एव विजाणाहि जणे पमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिंति॥१॥

सस्कृत छाया- असस्कृत जीवित मा प्रमादी , जरोपनीतस्य खलु नास्ति त्राणम्।
एव विजानीहि जना प्रमत्ता , किनु विहिस्रा अयता ग्रहीष्यन्ति॥१॥

अन्वयार्थ-जीविय-जीवन, असखय-असस्कृत (सस्कार रहित) है, (इसीलिए), पमायए-प्रमाद, मा-मत करो, जरोवणीयस्स-वृद्धावस्था को प्राप्त हुए (जरा के समीप आने पर), हु-निश्चय ही, ताण-(कोई) रक्षक, णत्थि-नहीं है, एव-इस प्रकार, विजाणाहि-जानो कि, पमत्ते-प्रमादी, विहिंसा-विशिष्ट हिसक, अजया-अजितेन्द्रिय, जणे-जन (मनुष्य), किण्णु-किसकी (शरण), गहिंति-ग्रहण करेगे।

भावानुवाद-यहा साधक के प्रति सम्बोधन है-हे शिष्य! यह जीवितव्य सस्कार रहित है, अत तू प्रमाद मत कर। वृद्धावस्था आने पर कोई भी रक्षक-शरण दाता नहीं है। यह चिन्तन कर कि प्रमादी, हिसक और असयमी मनुष्य किसकी शरण ग्रहण करेंगे?

2 अनासक्ति व वैराणुबद्धता का परिणाम

मूल गाथा- जे पावकम्मेहि धण मणूसा, समाययती अमइ (अमय) गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिए णरे, वेराणुबद्धा णरय उवेंति॥२॥

सस्कृत छाया- ये पापकर्मभि धन मनुष्या, समाददते अमति गृहीत्वा।
प्रहाय ते पाशप्रवर्तिता नरा , वैरानुबद्धा नरकमुपयान्ति॥२॥

अन्वयार्थ-जे-जो, मणूसा-मनुष्य, पावकम्मेहिं-पाप कर्मों से, धण-धन को, अमइ-अमृत के समान (जानकर), गहाय-ग्रहण करके, समाययति-उपार्जित (एकत्र) करते हैं, ते-वे, पास-विषय रूप पाश में, पयट्टिए-प्रवृत्त हुए,

प्रत्याख्यान-परिज्ञा से), मलावधसी-कर्म मल का ध्वस (नाश) करने वाला होवे (सथारा करके रहे)।

भावानुवाद-साधक को चाहिए कि वह दोषो की सभावना को ध्यान में रखता हुआ पद-पद पर आशकित होता हुआ चले अर्थात् कोई दोष मेरे सयम को दूषित न कर दे यह सजगता बनाये रखे, पूर्व मे लगे हुए छोटे से छोटे दोष को भी पाश-बन्धन मानकर सावधान रहे। नित नूतन गुणो की अभिवृद्धि के लिए जीवन को सुरक्षित रखे अर्थात् जब तक गुण वृद्धि रूप साधना हो जीवन को सुरक्षा दे, पश्चात जब लाभ होता हुआ दिखाई न दे तो शरीर का अन्त समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा के द्वारा शरीर का परित्याग कर दे अथवा कर्म मल को नष्ट करने का प्रयास करे।

8 मोक्ष का हेतु-स्वच्छन्दता निरोध

मूल गाथा- **छद णिरोहेण उवेइ मोक्ख, आसे जहा सिक्खिय वम्मधारी।**
पुव्वाइ वासाइ चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्ख॥८॥

सस्कृत छाया- **छदोनिरोधेनोपैति मोक्षम्, अश्वो यथा शिक्षित वर्मधारी।**
पूर्वाणि वर्षाणि चरेदप्रमत्त , तस्मान्मुनि क्षिप्रमुपैति मोक्षम्॥८॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, सिक्खिय-शिक्षित, वम्मधारी-कवच धारी, आसे-घोडा, छद-स्वच्छन्दता को, णिरोहेण-निरोध (त्यागने) से, मोक्ख-मोक्ष को, उवेइ-प्राप्त होता है (उसी प्रकार), मुणी-मुनि, भी, खिप्प-शीघ्र ही, मोक्ख-मोक्ष को (ससार से मुक्त), उवेइ-पाता है (हो जाता है), तम्हा-इसलिए, पुव्वाइ-पूर्वों तक, वासाइ-वर्षों तक, अप्पमत्तो-अप्रमत्त होकर, चरे-विचरे।

भावानुवाद-जैसे सुशिक्षित एव वर्म-कवच युक्त अश्व युद्ध भूमि से पार हो जाता है, उसी प्रकार स्वच्छन्दता-कामनाओ का निरोध करने वाला मुनि ससार से पार हो जाता है। पूर्व जीवन म अथवा पूर्वों तक अप्रमत्त सयम की आराधना म विचरण करने वाला साधक शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

9 शाश्वत वादियो का खण्डन

मूल गाथा- **स पुव्वमेव ण लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासय वाइयाण।**
विसीयई सिढिले आउयम्मि, कालोवणीए सरीरस्स भेए॥९॥

सस्कृत छाया- **स पूर्वमेव न लभते पश्चात्, एषोपमा शाश्वत वादिकानाम्।**
विषीदति शिथिले आयुषि, कालोपनीते शरीरस्य भेदे॥९॥

अन्वयार्थ-पुव्व-पहले (अप्रमत्त नहीं होता), स-वह, एव-पूर्व की तरह, पच्छा-बाद मे भी, ण लभेज्ज-(अप्रमत्त अवस्था को) प्राप्त नहीं कर सकता, एसोवमा-ऐसी उपमा, सासयवाइयाण-शाश्वत वादियो की है (क्योकि), सिढिले-शिथिल, आउयम्मि-आयुष्य के होने पर, कालोवणीए-काल के समीप आने पर, सरीरस्स-शरीर का, भेए-भेद होने पर (जीव), विसीयई-खेद पाता है।

भावानुवाद-जो पूर्व में अर्थात् यौवन काल में प्राप्त हो सकता है वह पीछे-वृद्धावस्था में प्राप्त नहीं हो सकता है। अथवा जो पूर्व जीवन में अप्रमत्त नहीं रहता वह पीछे भी अप्रमत्त नहीं हो पाता है-यह ज्ञानियों का कथन है।

ज्ञानीजना की यह उपमा है। शाश्वत वादियो (अपने को अजर-अमर मानने वालो) का यह कथन है कि (अभी क्या है, बाद म जागृत हो जाएगे)। यह उनकी धारणा मिथ्या है, क्योकि आयु के शिथिल-क्षीण हो जाने पर, काल मृत्यु क निकट आ जाने पर, शरीर के नष्ट होने पर वह जीव खेद को प्राप्त होता है।

10 प्रतिक्षण जागृत रहने का उपदेश

मूल गाथा- **खिप्प ण सक्केइ विवेगमेउ, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे।**
समिच्च लोय समया महेसी, आयाणुरक्खी चरेऽप्पमत्तो॥10॥

सस्कृत छाया- **क्षिप्र न शक्नोति विवेकमेतु, तस्मात्समुत्थाय प्रहाय कामान्।**
समेत्यलोक समया महर्षि , आत्मानुरक्षी चरेदप्रमत्त ॥१०॥

अन्वयार्थ-कोई भी व्यक्ति, खिप्प-शीघ्र ही, विवेग-विवेक को, एउ-प्राप्त करने मे, सक्केइ-समर्थ, ण-नहीं है, तम्हा-इसलिए, कामे-काम भोगो को, पहाय-त्याग कर, समुट्ठाय-(सम्यक् प्रकार से), उद्यत होकर, लोय-लोक का, समया-समभाव से, समिच्च-(सम्यक्) जानकर, महेसी-महर्षि आयाणुरक्खी-आत्मा की रक्षा करता हुआ, अप्पमत्तो-अप्रमत्त होकर, चरे-विचरण करे।

भावानुवाद-विवेक की प्राप्ति सहसा-शीघ्र नहीं हो पाती है, अत अभी से समस्त कामनाओ का परित्याग करके, धर्म मार्ग म समुपस्थित रहना चाहिए। समत्व दृष्टि से लोक (स्वजन-परजन आदि सभी) को अच्छी तरह से जान कर आत्म रक्षक महर्षि सदा अप्रमत्त भाव से विचरण करे।

11 प्रतिकूलता मे भी अद्वेष का सदेश

मूल गाथा- **मुहु मुहु मोहगुणे जयत, अणेगरूवा समण चरत।**
फासा फुसति असमजस च, ण तेसि भिक्खू मणसा पउस्से॥11॥

सस्कृत छाया- **मुहुर्मुहुर्मोहगुणान् जयन्त अनेकरूपा श्रमण चरन्तम्।**
स्पर्शा स्पृशन्त्यसमजस च, न तेषु भिक्षुर्मनसा प्रदुष्येत ॥११॥

अन्वयार्थ-मुहु मुहु-बार बार, मोहगुणे-मोह गुणा को, जयत-जीतते हुए च-और, चरत-(सयम मार्ग में) विचरते हुए, समण-साधु को, अणेगरूवा-अनेक प्रकार के फासा-स्पर्श, असमजस-प्रतिकूल रूप मे, फुसति-स्पर्श करते हैं (अत), तेसि-(विषयादि) उन पर, भिक्खू-साधु, मणसा-मन से (भी), पउस्से-द्वेष, ण-नहीं करे।

भावानुवाद-मोह गुण-राग-द्वेषात्मक वृत्तियो पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील सयम साधना पथ पर गतिशील श्रमण को पुन पुन अनेक प्रकार के प्रतिकूल या अनुकूल स्पर्श अर्थात् शब्दादि विषय स्पर्शित करते हैं-परेशान करते हैं, किन्तु सयम निष्ठ मुनि उन पर मन से भी द्वेष न करे।

12 अनुकूल स्पर्शों पर भी राग विजय का सदेश

मूल गाथा- **मदा य फासा बहुलोहणिज्जा, तहप्पगारेसु मण ण कुज्जा।**
रक्खिज्ज कोह विणएज्ज माण, माय ण सेवेज्ज पहेज्ज लोह॥12॥

अकाम मरणीय - पंचम् अध्ययन

सूक्ति साराश

भय ससार है, जागरण मुक्ति।
मृत्यु अवश्यभावी है, उसके प्रति भयभीत नहीं जागृत बनो।

अज्ञान भय स्थान है, ज्ञान निर्भय बनाता है।
मृत्यु का भय अज्ञानी को होता है, ज्ञानी निर्भय होता है।

कर्म सिद्धान्त का मूल आधार है, लोक परलोक।
यह मत सोचो कि परलोक नहीं है, अन्यथा
ससार की विभिन्नता अमान्य हो जायेगी।

मृत्यु आए तो हसते हुए उसका वरण करो।
अज्ञानी रोते-रोते मरता है, ज्ञानी हसते हुए।
आर्त्त ध्यान अज्ञानता का प्रतीक है, साधना गत प्रसन्नता ज्ञानीत्व का परिचायक है।

अज्ञान क्रूर कर्म करवा देता है, ज्ञान कर्म से बचाता है।
अज्ञानी हिसादि दोषो को जन्म देता है। दुर्गति के द्वार खोलता है।
ज्ञान दोषो से बचाता है।

विषय लोलुपता अज्ञान है, उससे ऊपर उठना ज्ञान है।
अज्ञानी इन्द्रिय सुखो को ही श्रेयस्कर मानता है,
ज्ञानी आत्मगत आनन्द को।

उत्पथ गमन पश्चात्ताप का हेतु है।
अज्ञानी अपने कर्म का उसी तरह पश्चात्ताप करता है।
जैसे गाडीवान सत्पथ छोडकर कुपथ पर चल कर करता है।

श्रेष्ठता का मानदण्ड परिवश नहीं, मर्यादा-साधनागत सजगता है।
मर्यादा मे स्थित गृहस्थ, मर्यादा भग करने वाले साधक से सयम मे श्रेष्ठ होता है।

मोक्ष सिर मुण्डन स नहीं, कषाय मुण्डन से होगा।
दु शील मे रमण करने वाले साधक को किसी प्रकार का परिवेश
अथवा किसी भी प्रकार की साधना मुक्ति-आत्म शान्ति नहीं दे सकती।

अह अकाममरणिज्जं पञ्चमं अज्झयणं

अथाकाममरणीयं पञ्चममध्ययनं

अकाम मरणीय

1 ससार समुद्र से तिरना

मूल गाथा- अण्णवसि महोहसि, एगे तिण्णे दुरुत्तरे।
तत्थ एगे महापण्णे, इम पण्हमुदाहरे ॥1॥

सस्कृत छाया- अर्णवान्महौघात्, एके तीर्णा दुरुत्तरात्।
तत्रैको महाप्रज्ञ , इम प्रश्नमुदाहृतवान् ॥१॥

अन्वयार्थ-महोहसि-महा प्रवाह वाले, दुरुत्तरे-दुस्तर, अण्णवसि-ससार समुद्र से, एगे-(कइ एक) कितने ही, तिण्णे-तिर गए, तत्थ-उनमे से एगे-एक, महापण्णे-महाप्राज्ञ (महावीर ने), इम-यह, पण्ह-प्रश्न का, उदाहरे-उत्तर कहा था।

भावानुवाद-यह ससार एक प्रचण्ड प्रवाह वाले सागर के समान है, उसे तैरकर दूसरे किनारे पर पहुचना अनेको के लिए दुष्कर है। फिर भी अनेको महापुरुष इस दुस्तर ससार सागर से पार हो गए हैं, उनमे से महाप्राज्ञ अतिशय बुद्धि निधान (महावीर) ने निम्न प्रश्ना के स्पष्ट उत्तर इस प्रकार दिये हैं।

2 विविध मरण का निरूपण

मूल गाथा- सतिमे य दुवे ठाणा, अक्खाया मरणतिया।
अकाममरण चेव, सकाममरण तहा ॥2॥

सस्कृत छाया- स्त इमे च द्वे स्थाने, आख्याते मरणान्तिके।
अकाममरण चैव, सकाममरण तथा ॥२॥

अन्वयार्थ-मरणतिया-मरण अवस्था के (मरण क समीप), इम य-ये, दुवे-दो, ठाणा-स्थान अक्खाया-कहे गये हैं, अकाम मरण-अकाम मरण चेव-ही तहा-तथा, सकाम मरण-सकाम-मरण सन्ति-है।

भावानुवाद-मारणान्तिक स्थिति अथवा मृत्यु के दो स्थान-भेद हैं-एक अकाम मरण और दूसरा सकाम मरण।

भूयगाम-प्राणी समूह की, विहिंसई-हिसा करता है।

भावानुवाद-इसके अनन्तर अर्थात् इस सदिग्ध विचारधारा से वह कामी पुरुष त्रस एव स्थावर जीवा के प्रति दण्ड का आरम्भ करता है अर्थात् मन, वचन और काया से जीवा को पीडा देता है। प्रयोजन से अथवा निष्प्रयाजन स ही प्राणी वर्ग की हिसा करता है।

9 कुत्सित आचरणो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुजमाणे सुर मस, सेयमेयं ति मण्णई॥९॥

सस्कृत छाया- हिस्रो बालो मृषावादी, मायी च पिशुन शठ।
भुञ्जान सुरा मास, श्रेयो इदमिति मन्यते॥९॥

अन्वयार्थ-हिंसे-हिसक (हिंसा करने वाला), मुसावाई-मृषावादी (झूठ बोलने वाला), माइल्ले-मायावी (कपटी), पिसुणे-पिशुन-चुगलखोर, सढे-शठ (धूत), सुर-मदिरा, मस-मास को, भुजमाणे-खाता हुआ, वाले-अज्ञानी, एय-यही (उक्त काम), सेय-श्रेष्ठ है, ति-इस प्रकार, मण्णइ-मानता है।

भावानुवाद-जो हिसक, मृषावाद, छलकपट करने वाला, चुगलखोर एव शठ (धूर्त) होता है वह अज्ञानी मद्य-मास का सेवन करता हुआ इसी को श्रेयस्कर मानता है।

10 अज्ञानी जीव की प्रवृत्ति

मूल गाथा- कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु।
दुहओ मल सचिणइ, सिसुणागो व्व मट्टिय॥१०॥

सस्कृत छाया- कायेन वचसा मत्त, वित्ते गृद्धश्च स्त्रीषु।
द्विधा मल सचिनोति, शिशुनाग इव मृत्तिकाम्॥१०॥

अन्वयार्थ-(वह) कायसा-शरीर से (और) वयसा-वाणी से, मत्ते-मत्त (मत वाला) होता है, वित्ते-धन, य-और, इत्थिसु-स्त्रियो मे, गिद्धे-गिद्ध (आसक्त) रहता है, (वह) दुहओ-दोनो (राग द्वेष से), मल-कर्म मल का, सचिणइ-सचय करता है, सिसुणागो-जैसे शिशु नाग (शरीर और मुख दोनो से), व्व-के समान, मट्टियं-मिट्टी को (एकत्रित करता है)।

भावानुवाद-वह शरीर और वाणी से मत्त होता है, धन और स्त्रियो मे आसक्त रहता है। वह राग और द्वेष दोनो स इसी प्रकार कर्म-मल सचय करता है, जिस प्रकार शिशु नाग (अलसिया) मुख और शरीर दोना से मिट्टी सग्रहित करता है।

11 इह पार लौकिक दुष्फल का स्मरण

मूल गाथा- तओ पुट्ठो आयकेण, गिलाणो परितप्पई।
पभीओ परलोगस्स, कम्माणुप्पेहि अप्पणो॥११॥

सस्कृत छाया- तत स्पृष्ट आतकेन, ग्लान परितप्यते।
प्रभीत परलोकात्, कर्मानुप्रेक्ष्य आत्मन ॥११॥

अन्वयार्थ-तओ-इसके बाद, आयकेण-आतक से-रोग से, पुट्ठो-स्पर्शित हुआ, गिलाणो-रोगी हाकर परितप्पई-दु ख (खेद) को पाता है, तथा, अप्पणो-अपने किये हुए, कम्माणुपेहि-कर्मो का, अनुप्रेक्षण (चिन्तन) करके, परलोगस्स-परलोक से, पभीओ-भयभीत होता है।

भावानुवाद-तदनन्तर वह भोगासक्त अज्ञानी आत्मा आतक-राग से आक्रान्त होने पर खिन्न होता हुआ परिताप को प्राप्त होता है। इस प्रकार स्वकृत कर्मो का स्मरण करके परलोक से भयभीत होता है।

12 दुष्कर्मों के फल का स्वरूप

मूल गाथा- सुया मे णरए ठाणा, असीलाण च जा गई।
बालाण कूरकम्माण, पगाढा जत्थ वेयणा॥१२॥

सस्कृत छाया- श्रुतानि मया नरकस्थानानि, अशीलाना च या गति ।
बालाना क्रूर कर्मणाम्, प्रगाढा यत्र वेदना॥१२॥

अन्वयार्थ-(वह सोचता है) मे-मैंने, णरए ठाणा-नारकीय स्थानो, (कुभीपाकादि), च-और, असीलाण-दु शील (तथा), कूर कम्माण-क्रूर कर्म करने वाले, बालाण-अज्ञानिया की, जा-जो, गई-गति है, उसे सुया-सुना है, जत्थ-जहा (उन्हे) पगाढा-प्रगाढ (तीव्र) वेयणा-वेदना होती है।

भावानुवाद-वह चिन्तन करता है-"मैंने उन नारकीय स्थानो कुम्भीपाक आदि के विषय म सुना है, शीलरहित दुष्टजनो की जो गति होती है, उसे भी सुना है, जहा पर क्रूर कर्मी अज्ञानी जीवो को अत्यन्त वदना भागनी पड़ती है।"

13 यथा कर्म-उपपात का वर्णन

मूल गाथा- तत्थोववाइय ठाण, जहा मेयमणुस्सुय।
अहाकम्मेहि गच्छतो, सो पच्छा परितप्पई॥१३॥

सस्कृत छाया- तत्रोपपातिक स्थानम्, यथा मयानुश्रुतम्।
यथाकर्मभिर्गच्छन्, स पश्चात् परितप्यते॥१३॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहा पर, उववाइय-उत्पन्न होन के, ठाण-स्थान का, जहा-जिस प्रकार मए-मैंन अणुस्सुय-सुने हुए, अहाकम्मेहिं-अपने कर्मो क अनुसार गच्छतो-जाता हुआ, सो-वह (अज्ञानी) पच्छा-पीछे म परितप्पई-परिताप (पश्चात्ताप) करता है।

भावानुवाद-मैंने परम्परा से यह सुना है कि-"उन नरका में उत्पन्न हान क स्थान हैं। अपने कर्मो के अनुसार उन स्थाना में-कुम्भी आदि में उत्पन्न होने वाला जीव-अज्ञानी पीछे स पश्चात्ताप अथवा परिताप को प्राप्त करता है।"

वाले, य-और, भिक्खुणो-(बहुत से) भिक्षु भी, विसमसीला-विषम शील वाले होते हैं।

भावानुवाद-यह सकाम मरण न तो सभी भिक्षुओं-साधुओं को प्राप्त होता है और न सभी गृहस्थों को। क्योंकि बहुत से गृहस्थ अनेक प्रकार के शीलव्रतों से सम्पन्न होते हैं, जबकि बहुत से साधु भी विषमशील-विकृत साधना वाले होते हैं।

20 श्रावक भी संयम में श्रेष्ठ?

मूल गाथा- संति एगेहि भिक्खूहि, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा॥२०॥

संस्कृत छाया- सन्त्येकेभ्यो भिक्षुभ्य, गृहस्था संयमोत्तरा।
गारस्थेभ्यश्च सर्वेभ्य, साधव संयमोत्तरा॥२०॥

अन्वयार्थ-एगेहिं भिक्खूहिं-(एक) कुछ भिक्षुओं से, गारत्था-गृहस्थ, संजमुत्तरा-संयम में श्रेष्ठ, संति-होते हैं, य-तथा, सव्वेहिं-सभी, गारत्थेहिं-गृहस्थों से, साहवो-(शुद्धाचारी) साधु, संजमुत्तरा-संयम में प्रधान होते हैं।

भावानुवाद-कुछ साधुओं से अपेक्षा दृष्टि से गृहस्थ संयम में श्रेष्ठ होते हैं, किन्तु शुद्ध आचार निष्ठ साधु सभी गृहस्थों से संयम में श्रेष्ठ होते हैं।

21 विविध वेश भी दुराचारी के रक्षक नहीं

मूल गाथा- चीराजिणं णगिणिणं, जडी संघाडि मुंडिणं।
एयाणि वि ण तायंति, दुस्सीलं परियागयं॥२१॥

संस्कृत छाया- चीराजिनं नाग्न्यं, जटित्वं साघाटीमुण्डित्वम्।
एतान्यपि न त्रायन्ते, दु शील पर्यायागतम्॥२१॥

अन्वयार्थ-चीर-चीवर (वस्त्र) और, अजिण-मृग चर्म, णगिणिणं-नग्न होना, जडी-जटा धारण, संघाडि-गादडी (चिथडा की कथा धारण), मुंडिणं-(सिर से) मुण्डित होना, एयाणि वि-ये सब (नानाविध) वेष भी परियागयं-प्रव्रज्या को धारण करने वाले को, दुस्सीलं-दुष्टाचारी के, ण तायंति-(दुर्गति से) रक्षक नहीं होते हैं।

भावानुवाद-दु शील प्रव्रज्याधारी अर्थात् दुराचारी साधु को उसके वस्त्र, मृगचर्म, नग्नत्व, जटा, कथल गुदडी रखना, शिरोमुण्डन आदि अनेक प्रकार के बाह्याचार बचा नहीं सकते, नरकादि दुर्गति से उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं।

22 निरतिचार व्रत पालन ही सुगति और पंडित मरण का हेतु

मूल गाथा- पिंडोलए व दुस्सीले, णरगाओ ण मुच्चई।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं॥२२॥

संस्कृत छाया- पिण्डावलगोऽपि दु शीलो, नरकान्न मुच्यते।
भिक्षादो वा गृहस्थो वा, सुव्रतो क्रामति दिवम्॥२२॥

अन्वयार्थ-पिडोलए व-(भिक्षा द्वारा) गृहित पिण्ड से जीवन निर्वाह करने वाला, दुस्सीले-दुष्टाचारी, णरगाओ-नरक से, ण मुच्चई-मुक्त नहीं हो सकता, वा-अथवा, भिक्खाए-भिक्षु हो, वा-अथवा, गिहत्थे-गृहस्थ हो (यदि), सुव्वए-सुव्रत वाला है, तो दिव-स्वर्ग मे, कम्मई-जाता है।

भावानुवाद-पिण्डोलक-भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाला भी यदि दु शील है तो वह नरक से बच नहीं सकता है। भिक्षु साधु हो या गृहस्थ यदि वह सुव्रती (निरतिचार व्रतो का पालक) है तो स्वर्ग मे जाता है।

23 सुव्रती श्रावक को देवलोक प्राप्ति

मूल गाथा- **अगारि सामाइयगाइ, सड्ढीकाएण फासए।**
पोसह दुहओ पक्ख, एगराय ण हावए॥२३॥

सस्कृत छाया- **अगारी सामायिकागानि, श्रद्धी कायेन स्पृशति।**
पौषधमुभयो पक्षयो , एकरात्र न हापयेत्॥२३॥

अन्वयार्थ-सड्ढी-श्रद्धालु, अगारि-गृहस्थ (श्रावक), सामाइयगाइ-सामायिक के सभी अगो का, काएण-काया से, फासए-स्पर्श करे, दुहओ-दोनो (कृष्ण और शुक्ल) पक्ख-पक्षो मे, पोसह-पौषध व्रत को, एगराय-एक रात्रि के लिए भी, ण-हावए-न छोडे।

भावानुवाद-श्रद्धावान गृहस्थ सामायिक साधना के सभी अगो को काया से स्पर्श करे, आचरण करे। कृष्ण और शुक्ल दोना पक्षो मे पौषध व्रत को एक रात्रि के लिए भी न छोडे। अर्थात् एक रात्रि का पौषध-सवर तो अवश्य करे।

टिप्पण-यहा जो 'एगराय' शब्द आया है इसका अभिप्राय आगमोल्लिखित श्रावक के छह पौषधो से सबधित है, अत वह श्रावक एक पौषध भी न छोडे। स्थानाग सूत्र के चौथे ठाणे म श्रावक के चार विश्राम स्थानों का वर्णन आया है उससे भी यही सिद्ध होता है।

24 सुव्रती गृहस्थ को भी स्वर्ग की प्राप्ति

मूल गाथा- **एव सिक्खासमावण्णे, गिहिवासे वि सुव्वए।**
मुच्चई छविपव्वाओ, गच्छे जक्खसलोगय॥२४॥

सस्कृत छाया- **एव शिक्षासमापन्न , गृहिवासेऽपि सुव्रत ।**
मुच्यते छवि पर्वण , गच्छेद् यक्षसलोकताम्॥२४॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, सिक्खा-शिक्षा से, समावण्णे-सयुक्त, सुव्वए-सुव्रती, गिहिवास-गृहस्थावास मे, वि-भी, छविपव्वाओ-औदारिक शरीर से, मुच्चई-मुक्त हो जाता है, और जक्खसलोगय-यक्ष (वैमानिक देव) के लोक को, गच्छे-जाता है।

भावानुवाद-इस प्रकार धर्म शिक्षा से सम्पन्न सुव्रती जीव गृहस्थाश्रम मे रहता हुआ भी मानवीय औदारिक तन का छोडकर यक्ष लोक-देवलोक मे जाता है।

वाले, य-और, भिक्खुणो-(बहुत से) भिक्षु भी, विसमसीला-विषम शील वाले होते हैं।

भावानुवाद-यह सकाम मरण न तो सभी भिक्षुओ-साधुओ को प्राप्त होता है और न सभी गृहस्थो को। क्योकि बहुत से गृहस्थ अनेक प्रकार के शीलव्रतो से सम्पन्न होते हैं, जबकि बहुत से साधु भी विषमशील-विकृत साधना वाले होते हैं।

20 श्रावक भी सयम मे श्रेष्ठ?

मूल गाथा- सति एगेहि भिक्खूहि, गारत्था सजमुत्तरा।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं, साहवो सजमुत्तरा ॥२०॥

सस्कृत छाया- सन्त्येकेभ्यो भिक्षुभ्य, गृहस्था सयमोत्तरा।
गारस्थेभ्यश्च सर्वेभ्य, साधव सयमोत्तरा ॥२०॥

अन्वयार्थ-एगेहिं भिक्खूहिं-(एक) कुछ भिक्षुओ से, गारत्था-गृहस्थ, सजमुत्तरा-सयम म श्रेष्ठ, सति-होते हैं, य-तथा, सव्वेहिं-सभी, गारत्थेहिं-गृहस्थो से, साहवो-(शुद्धाचारी) साधु, सजमुत्तरा-सयम म प्रधान होते हैं।

भावानुवाद-कुछ साधुओ से अपेक्षा दृष्टि से गृहस्थ सयम मे श्रेष्ठ होते हैं, किन्तु शुद्ध आचार निष्ठ साधु सभी गृहस्थो से सयम मे श्रेष्ठ होते हैं।

21 विविध वेश भी दुराचारी के रक्षक नहीं

मूल गाथा- चीराजिण णगिणिण, जडी सघाडि मुडिण।
एयाणि वि ण तायति, दुस्सील परियागय ॥२१॥

सस्कृत छाया- चीराजिन नाग्न्य, जटित्व सघाटीमुण्डित्वम्।
एतान्यपि न त्रायन्ते, दु शील पर्यायागतम् ॥२१॥

अन्वयार्थ-चीर-चीवर (वस्त्र) और, अजिण-मृग चर्म, णगिणिण-नग्न होना, जडी-जटा धारण, सघाडि-गोदडी (चिथडो की कथा धारण), मुडिण-(सिर से) मुण्डित होना, एयाणि वि-ये सब (नानाविध) वेष भी, परियागय-प्रव्रज्या को धारण करने वाले को, दुस्सील-दुष्टाचारी के, ण तायति-(दुर्गति से) रक्षक नहीं होते हैं।

भावानुवाद-दु शील प्रव्रज्याधारी अर्थात् दुराचारी साधु को उसके वस्त्र, मृगचर्म, नग्नत्व, जटा, केवल गुदडी रखना, शिरोमुण्डन आदि अनेक प्रकार के बाह्याचार बचा नहीं सकते, नरकादि दुर्गति से उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं।

22 निरतिचार व्रत पालन ही सुगति और पडित मरण का हेतु

मूल गाथा- पिडोलए व दुस्सीले, णरगाओ ण मुच्चई।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिव ॥२२॥

सस्कृत छाया- पिण्डावलगोऽपि दु शीलो, नरकान्न मुच्यते।
भिक्षादो वा गृहस्थो वा, सुव्रतो क्रामति दिवम् ॥२२॥

अन्वयार्थ-पिडोलए व-(भिक्षा द्वारा) गृहित पिण्ड से जीवन निर्वाह करने वाला, दुस्सीले-दुष्टाचारी, णरगाओ-नरक से, ण मुच्चई-मुक्त नहीं हो सकता, वा-अथवा, भिक्खाए-भिक्षु हो, वा-अथवा, गिहत्थे-गृहस्थ हो (यदि), सुव्वए-सुव्रत वाला है, तो दिव-स्वर्ग मे, कम्मई-जाता है।

भावानुवाद-पिण्डोलक-भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाला भी यदि दु शील है तो वह नरक से बच नहीं सकता है। भिक्षु साधु हो या गृहस्थ यदि वह सुव्रती (निरतिचार व्रतो का पालक) है तो स्वर्ग मे जाता है।

23 सुव्रती श्रावक को देवलोक प्राप्ति

मूल गाथा- अगारि सामाइयगाइ, सड्ढीकाएण फासए।
पोसह दुहओ पक्ख, एगराय ण हावए॥२३॥

सस्कृत छाया- अगारी सामायिकागानि, श्रद्धी कायेन स्पृशति।
पौषधमुभयो पक्षयो , एकरात्र न हापयेत्॥२३॥

अन्वयार्थ-सड्ढी-श्रद्धालु, अगारि-गृहस्थ (श्रावक), सामाइयगाइ-सामायिक के सभी अगो का, काएण-काया से, फासए-स्पर्श करे, दुहओ-दोनो (कृष्ण और शुक्ल) पक्ख-पक्षो मे, पोसह-पौषध व्रत को, एगराय-एक रात्रि के लिए भी, ण-हावए-न छोडे।

भावानुवाद-श्रद्धावान गृहस्थ सामायिक साधना के सभी अगा को काया से स्पश करे, आचरण करे। कृष्ण और शुक्ल दोनो पक्षो मे पौषध व्रत को एक रात्रि के लिए भी न छोडे। अर्थात् एक रात्रि का पौषध-सवर तो अवश्य करे।

टिप्पण-यहा जो 'एगराय' शब्द आया है इसका अभिप्राय आगमोल्लिखित श्रावक के छह पौषधो से सबधित है, अत वह श्रावक एक पौषध भी न छोडे। स्थानाग सूत्र के चौथे ठाणे मे श्रावक के चार विश्राम स्थानों का वर्णन आया है उससे भी यही सिद्ध होता है।

24 सुव्रती गृहस्थ को भी स्वर्ग की प्राप्ति

मूल गाथा- एव सिक्खासमावण्णे, गिहिवासे वि सुव्वए।
मुच्चई छविपव्वाओ, गच्छे जक्खसलोगय॥२४॥

सस्कृत छाया- एव शिक्षासमापन्न , गृहिवासेऽपि सुव्रत ।
मुच्यते छवि पर्वण , गच्छेद् यक्षसलोकताम्॥२४॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, सिक्खा-शिक्षा से, समावण्णे-सयुक्त, सुव्वए-सुव्रती, गिहिवासे-गृहस्थावास मे, वि-भी, छविपव्वाओ-औदारिक शरीर से, मुच्चई-मुक्त हो जाता है, और जक्खसलोगय-यक्ष (वैमानिक देव) के लोक को, गच्छे-जाता है।

भावानुवाद-इस प्रकार धर्म शिक्षा से सम्पन्न सुव्रती जीव गृहस्थाश्रम मे रहता हुआ भी मानवीय औदारिक तन को छाडकर यक्ष लोक-देवलोक मे जाता है।

25 सवृत अनगार की मरणोत्तर गति

मूल गाथा- अह जे सवुडे भिक्खू, दोण्ह अण्णयरे सिया।
सव्वदुक्खप्पहीणे वा, देवे वावि महिड्ढिए॥२५॥

सस्कृत छाया- अथ य सवृतो भिक्षु, द्वयोरन्यतरस्मिन् स्यात्।
सर्वदु खप्रक्षीणो वा, देवो वाऽपि महर्द्धिक ॥२५॥

अन्वयार्थ-अह-अथ (और), जे-जो, संवुडे-सवृत (सवर वाला), भिक्खू-साधु है, दोण्ह-दो मे से, अण्णयरे-कोई एक, सिया-होता है, (सभव है), वा-या तो, सव्व दुक्खप्पहीणे-सर्व दु ख रहित, (सिद्ध), वावि-अथवा, महिड्ढिए-महा ऋद्धि वाला, देवे-देव होता है।

भावानुवाद-जो सवर युक्त सयमी साधक है, उसकी दोनो मे से एक गति होती है, या तो वह सदा के लिए सर्व दु खो का क्षय करके मुक्त हो जाता है या महान् ऋद्धि सम्पन्न देव होता है।

26 महर्द्धिक देवो का स्थान

मूल गाथा- उत्तराइ विमोहाइ, जुइमंताऽणुपुव्वसो।
समाइण्णाइ जक्खेहिं, आवासाइ जससिणो॥२६॥

सस्कृत छाया- उत्तराणि विमोहानि, द्युतिमन्त्यनुपूर्वश ।
समाकीर्णानि यक्षै, आवासानि यशस्विन ॥२६॥

अन्वयार्थ-आवासाइं-देवो के आवास, अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, उत्तराइ-प्रधान से प्रधान, विमोहाइ-मोह से रहित, जुईमंता-द्युतिमान (प्रकाश वाले), जक्खेहिं-देवो से, समाइण्णाइं-व्याप्त हुए के समान, जससिणो-यशस्वी होते हैं।

भावानुवाद-देवो से परिव्याप्त देवताओ के आवास उत्तरोत्तर अनुक्रम से ऊर्ध्व, उत्तम, अल्पमोह और द्युतिमान होते हैं। उनमें रहने वाले देव उत्तरोत्तर अधिक यशस्वी होते हैं।

27 महर्द्धिक देवो का स्वरूप

मूल गाथा- दीहाउया इड्ढिमता, समिद्धा कामरूविणो।
अहुणोववण्णसकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा॥२७॥

सस्कृत छाया- दीर्घायुषो ऋद्धिमन्त , समृद्धा कामरूपिण ।
अधुनोत्पन्नसकाशा , भूयोऽर्चिमालिप्रभा ॥२७॥

अन्वयार्थ-(विमान में रहने वाले देव), दीहाउया-दीर्घायु वाले, इड्ढिमता-ऋद्धि वाले, समिद्धा-समृद्धि वाले, काम रूविणो-इच्छानुसार रुप बनाने वाले, अहुणोववण्ण संकासा-तत्काल उत्पन्न हुए के समान, भुज्जो-अनेक, अच्चिमालि-सूर्यों की तरह, पभा-प्रभा वाले (अति तेजस्वी) होते हैं।

भावानुवाद-वे देव उत्तरोत्तर दीर्घायु, ऋद्धिमान् दीप्तिमान् समृद्ध, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले तथा तत्काल हुए हो ऐसी भव्य कान्तिवाले एव सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी प्रभा वाले होते हैं।

28 देव आवासो मे जाने का अधिकारी

मूल गाथा- ताणि ठाणाणि गच्छ ति, सिक्खित्ता सजम तव।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे सति परिणिव्वुडा॥२८॥

सस्कृत छाया- तानि स्थानानि गच्छन्ति, शिक्षित्वा सयम तप।
भिक्षुका वा गृहस्था वा, ये सन्ति परिनिवृता॥२८॥

अन्वयार्थ-भिक्खाए-भिक्षाजीवी साधु हो, वा-अथवा, गिहत्थे वा-गृहस्थ हो, जे-जो, परिणिव्वुडा-हिसा से निवृत्त (शान्त), सति-हैं, वे सजम-सयम (और) तव-तप का, सिक्खित्ता-अभ्यास करके, ताणि-उन (पूर्वोक्त देव आवास), ठाणाणि-स्थानो, को, गच्छति-जाते हैं।

भावानुवाद-भिक्षु हो या गृहस्थ, उपर्युक्त देवलोको मे वे ही जाते है, जो हिसादि से निवृत्त होते हैं और सयम तथा तप के अभ्यास से सम्पन्न होते हैं।

29 पडित मरण योग्य साधु की मृत्यु के समय मन स्थिति

मूल गाथा- तेसि सोच्चा सपुज्जाण, सजयाण वुसीमओ।
ण सतसति मरणते, सीलवता बहुस्सुया॥२९॥

सस्कृत छाया- तेषा श्रुत्वा सत्पूज्याना, सयताना वश्यवताम्।
न सत्रस्यन्ति मरणान्ते, शीलवन्तो बहुश्रुता॥२९॥

अन्वयार्थ-तेसि-उन, सपुज्जाण-सत्पूज्यवरो, सजयाण-सयमी मुनियो, और वुसीमओ-जितेन्द्रिय (भिक्षुओ) का, (पूर्वोक्त वर्णन), सोच्चा-सुनकर, सीलवत्ता-शीलवान्, (चरित्रयुक्त), और बहुस्सुया-बहुश्रुत, मरणते-मृत्यु के समीप आने से, ण सतसति-सत्रस्त नहीं होते हैं (त्रस्त नहीं होते)।

भावानुवाद-उन परम पूज्य सयमशील जितेन्द्रिय आत्माओ के स्वरूप को-जीवन वृत्त को सुन करके चारित्रयुक्त बहुश्रुत साधक मृत्यु के आने पर भी कभी सत्रस्त नहीं होते।

30 पडित मरण साधक का मृत्यु के समय कर्त्तव्य

मूल गाथा- तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खतिए।
विप्पसीएज्ज मेहावी, तहाभूएण अप्पणा॥३०॥

सस्कृत छाया- तोलयित्वा विशेषमादाय, दयाधर्मस्य क्षात्या।
विप्रसीदेन्मेधावी, तथाभूतेनात्मना॥३०॥

अन्वयार्थ-मेहावी-बुद्धिमान, तुलिया-तुलना करके, (दोना मरण की), विसेस-विशिष्ट को, आदाय-ग्रहण करके, दया धम्मस्स-दया धर्म से, खंतिए-क्षमा से पवित्र, तहाभूएण-तथाभूत, अप्पणा-आत्मा से विप्पसीएज्ज-अत्यन्त प्रसन्न रहे।

भावानुवाद-बाल मरण और पण्डित मरण की परस्पर तुलना करके मेधावी विशिष्ट प्रज्ञा सम्पन्न साधक विशिष्ट-स काम मरण को स्वीकार करे तथा मृत्यु के समय दया धर्म एव क्षमाभाव से पवित्र तथाभूत आत्मा से प्रसन्न रहे। आत्मा के मूल स्वरूप म स्थिर रहे।

31 प्रसन्नात्मा का कर्त्तव्य

मूल गाथा- तओ काले अभिप्पेए, सड्ढी तालिसमतिए।
विणएज्ज लोमहरिस, भेय देहस्स कखए॥३१॥

सस्कृत छाया- तत काल अभिप्रेते, श्रद्धी तादृशमन्तिके।
विनयेल्लोमहर्ष, भेद देहस्य काक्षेत्॥३१॥

अन्वयार्थ-तओ-इसके बाद, काले-मृत्यु समय के, अभिप्पेए-प्राप्त होने पर, सड्ढी-श्रद्धावान, तालिस-तादृश (उसी प्रकार), अतिए-गुरु के निकट, लोमहरिस-लोमहर्ष (रोमाच) को, विणएज्ज-दूर करे तथा देहस्स-(शान्ति से) शरीर के, भेय-भेद की, कखए-काक्षा (इच्छा) करे।

भावानुवाद-अनन्तर श्रद्धावान् पुरुष मरण समय के आन पर जिस श्रद्धा भाव से प्रव्रज्या स्वीकार की थी, उसी क अनुसार गुरु के समीप लोमहर्ष रोमाचकारी मृत्यु भय को दूर करे तथा शान्त भाव स अनशन के द्वारा दह भेद की इच्छा करे, प्रसन्नता पूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा कर।

32 सकाम मरण की सामान्य विधि का निर्देश

मूल गाथा- अह कालम्मि सपत्ते, आघायाय समुस्सय।
सकाममरण मरई, तिण्हमण्णयर मुणी॥३२॥

त्ति बेमि।

इति अकाममरणिज्ज पचम अज्झयण समत्त॥५॥

सस्कृत छाया- अथ काले सप्राप्ते, आघातयन् समुच्छ्रयम्।
सकाममरणेन म्रियते, त्रयाणामन्यतरेण मुनि॥३२॥

इति ब्रवीमि।

इति अकाममरणीय पचममध्ययन समाप्तम्॥५॥

अन्वयार्थ-अह-इसके पश्चात्, कालम्मि-काल क, सपत्ते-प्राप्त होने पर, समुस्सयं-मनुष्यरूप (शरीर का),

आघायाय-(सलेखना आदि के द्वारा) विनाश करता हुआ, **मुणी**-मुनि, **तिण्ह**-(भक्त परिज्ञा, इगित या पादोपगमन) इन तीनो मे से, **अण्णयर**-किसी एक, **सकाममरण**-सकाम मरण से, **मरई**-मृत्यु प्राप्त करता है (मरता है)।

त्ति-इस प्रकार, **बेमि**-मैं कहता हू।

भावानुवाद-मृत्यु का समय आने पर मुनि भक्त परिज्ञा, इगित मरण और पादपोगमन इन तीनो मे से किसी एक मरण को अगीकार करके-सलेखणा द्वारा सकाममरण से देह के ममत्व का परित्याग करता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार अकाम मरणीय नामक पाचवा अध्ययन समाप्त हुआ।

❑❑❑

क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय - षष्ठम् अध्ययन

उत्थानिका

जैन आगमो मे साधक के लिए जिन शब्दो का प्रयोग हुआ है, उनमे निर्ग्रन्थ शब्द अति प्राचीन एव मौलिक प्रतीत होता है। निर्ग्रन्थ शब्द अपने अन्दर मे कुछ लाक्षणिक अर्थ छुपाए हुए है। सस्कृत व्युत्पत्ति की दृष्टि से निर्ग्रन्थ शब्द का सामान्य अर्थ है ग्रन्थि रहित। किन्तु लाक्षणिक दृष्टि से निर्ग्रन्थ शब्द के कुछ गहन अर्थ हैं।

निर्ग्रन्थ शब्द उस साधना पद्धति का प्रतीक है जिसमे राग-द्वेष की गाठो को खोला जाता है-वीतराग भाव की ओर आत्मा की गति होती है। वीतरागता की साधना मे बाहर की ममता जनित गाठे तो सहज ही खुल जाती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में बाहर-भीतर दोनों प्रकार की गाठो का वर्णन है, जो चेतन्य को एक ममत्व जनित सीमित दायरे मे प्रतिबद्ध करती है। परिजन धन-वैभव की बाह्य गाठ है और आसक्ति-मूर्च्छा की गाठ आतरिक गाठ है। दोनो से मुक्त होकर विशुद्ध निर्ग्रन्थ भाव मे कैसे स्थिर रहा जाय, यह प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य है।

यहा यह विशेष स्मरणीय है कि यहा ऐसे ज्ञान को भी बन्धन का ही कारण बताया है जो क्रिया शून्य है और अहकार का निमित्त है। बहुत व्यक्ति अपने आपको ज्ञानी मानते हैं, किन्तु उनके आचरण मे वह ज्ञान नहीं उतरता है। उनका वह ज्ञान केवल शब्द ज्ञान अथवा भाषा ज्ञान ही होता है, जो मुक्ति का नहीं प्रतिबद्धता का ही कारण होता है। इसे पढे और सच्चे अर्थों में निर्ग्रन्थ बनने का प्रयास करें।

❑❑❑

क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय - षष्ठम् अध्ययन

सूक्ति साराश

मूढता ही जन्म-मरण की हेतु है।
अविद्या-अज्ञान युक्त व्यक्ति दु खद ससार मे परिभ्रमण करता है।

सत्यान्वेषण अर्थात् समस्त प्राणियो पर मैत्री।
विद्वान् वह है जो स्वय सत्य का अन्वेषण करता है,
मार्ग की सम्यग् समीक्षा करता है।

स्वय अपने रक्षक बनो, पराकाक्षा निरर्थक है।
जब जीव स्वकर्म वश परलोक जाता है तो माता-पिता,
पति-पत्नी आदि परिजन रक्षा करने-बचाने मे समर्थ नहीं होते हैं।

स्नेहासक्ति बन्धन है-पराधीन है, पराधीनता ही दु ख है।
स्नेहासक्ति दु ख का मूल है, इसका त्याग करो, क्योकि ससार की सम्पूर्ण सम्पदा भी
कर्म से मुक्ति नहीं दे सकती है।

प्राणि वध पर हिंसा है, भयभीत होना स्वहिंसा है।
प्राणिवध भय एव वैर को बढाता है।
भय से बचना हो तो हिसा से बचो।

बोलो कम-करके दिखाओ।
केवल वाचिक पराक्रम अर्थहीन है।
वचन क्रिया निष्ठ होना चाहिए।

प्रमाद-परिभ्रमण, अप्रमाद मुक्ति।
अनन्त ससार के विषम मार्ग पर अप्रमत्त होकर चलो,
अनन्त सान्त हो जाएगा।

□□□

अह खुड्डागणियंठिज्जं छट्ठं अज्झयणं

अथ क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीयं षष्ठमध्ययनं

क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

1 अविद्या भव भ्रमण का हेतु

मूल गाथा- जावतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसभवा।
लुप्पति बहुसो मूढा, ससारम्मि अणतए॥1॥

सस्कृत छाया- यावन्तोऽविद्या पुरुषा , सर्वे ते दु खसभवा ।
लुप्यन्ते बहुशो मूढा , ससारेऽनन्तके ॥१॥

अन्वयार्थ-जावत-जितने भी, अविज्जा-विद्या से रहित, पुरिसा-पुरुष हैं, ते-वे, सव्वे-सारे, दुक्ख सभवा-दु खो के सभव (दु ख को उत्पन्न करने वाले) हैं, मूढा-वे (विवेक मूढ), अणतए-अनन्त, ससारम्मि-ससार में, बहुसो-बार-बार, लुप्पति-लुप्त (दरिद्रतादि से पीडित) होते हैं।

भावानुवाद-जितने भी अविद्यावान्-अज्ञानी पुरुष हैं, वे दु ख के भोक्ता एव उत्पादक हैं। वे विवेक मूढ अनन्त ससार में पुन पुन लुप्त होते हैं-दु खी होते हैं।

2 विद्या के दो पक्ष-सत्य और मैत्री

मूल गाथा- समिक्ख पडिए तम्हा, पासजाई पहे बहू।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्ति भूएसु कप्पए॥2॥

सस्कृत छाया- समीक्ष्य पण्डितस्तस्मात्, पाशजातिपथान् बहून्।
आत्मना सत्यमेषयेत्, मैत्रीं भूतेषु कल्पयेत्॥२॥

अन्वयार्थ-तम्हा-इसलिए, पडिए-पडित, बहू-अनेक विध, पास-पाश रूप, जाई पहे-(एकेन्द्रियादि) जाति पथों को, समिक्ख-समीक्षा (विचार) करके, अप्पणा-स्वय, सच्चमेसेज्जा-सत्य का अन्वेषण करे (तथा), भूएसु-सर्व जीवों के प्रति, मेत्ति-मैत्री का, कप्पए-आचरण करे।

भावानुवाद-इसलिए पडित पुरुष एकेन्द्रिय बन्धन रूप जाति पथा की अथवा जन्म-मरण के कारण रूप भावकर्मो की समीक्षा करके स्वय सत्य का अन्वेषण करे तथा समस्त जीव समूह पर मैत्री भाव धारण करे।

3 स्वकर्मानुसार दु ख का भोग, कोई सहयोगी नहीं

मूल गाथा- माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा।
णाल ते मम ताणाए, लुप्पतस्स सकम्मुणा॥३॥

सस्कृत छाया- माता पिता स्नुषा भ्राता, भार्या पुत्राश्चौरसा ।
नाल ते मम त्राणाय, लुप्यमानस्य स्वकर्मणा॥३॥

अन्वयार्थ-माया-माता, पिया-पिता, ण्हुसा-स्नुषा (पुत्रवधू), भाया-भ्राता, भज्जा-भार्या (स्त्री), य-और, ओरसा पुत्ता-औरस पुत्र (अगजात), ते-ये सब, सकम्मुणा-अपने कर्मो से, लुप्पतस्स-दु ख पाते हुए, मम-मेरे, ताणाए-रक्षण (त्राण) के लिए, अल ण-समर्थ नहीं हैं।

भावानुवाद-स्वकृत कर्मों के द्वारा दु ख भोगत समय माता, पिता, स्नुषा-पुत्रवधू, पत्नी, भाई तथा पुत्र, ये सब मेरी रक्षा करने मे समर्थ नहीं हैं।

4 सम्यग्द्रष्टा पुरुष का कर्त्तव्य

मूल गाथा- एयमट्ठ सपेहाए, पासे समियदसणे।
छिन्दे गेहिं सिणेह च, ण कखे पुव्वसथुय॥४॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं स्वप्रेक्षया, पश्येत् समितदर्शन ।
छिन्द्याद् गृद्धिं स्नेह च, न काक्षेत पूर्वसस्तवम्॥३॥

अन्वयार्थ-समिय दसणे-सम्यग्दर्शी पुरुष, एय-इस, अट्ठ-अर्थ को, सपेहाए-अपनी प्रज्ञा से (विचार करके), पासे-देखे, गेहिं-गृद्धिभाव, च-और, सिणेह-रागात्मक स्नेह का, छिदे-छेदन करे, पुव्व सथुय-पूर्व परिचय (ससर्ग) की, ण कखे-काक्षा न करे (न चाहे)।

भावानुवाद-सम्यग्दृष्टि व्यक्ति अपनी बुद्धि से इस उपर्युक्त अर्थ की सत्यता को देखे तथा अपने पूर्व परिचय की आकाक्षा को छोडकर आसक्ति एव स्नेह भाव का छेदन करे।

5 परिग्रह परित्याग का परिणाम

मूल गाथा- गवास मणिकुडल, पसवो दासपोरुस।
सव्वमेय चइत्ता ण, कामरूवी भविस्ससि॥५॥

सस्कृत छाया- गवाश्व मणिकुण्डल, पशवो दासपौरुषम्।
सर्वमेतत्त्यक्त्वा त्व, कामरूपी भविष्यसि॥५॥

अन्वयार्थ-गवास-गाय घोडा, मणि-रत्नादि, कुडल-कुण्डल, पसवो-पशु, दास-दास (नौकर), पोरुस-पुरुष

समूह, सव्वमेयं-यह सभी, चइत्ताण-छोड करके, ण-तू, कामरूवी-इच्छानुसार रूप बनाने वाला, भविस्ससि-होगा।

भावानुवाद-हे साधक! गौ-गाय-बैल-घोडा, मणि, कुण्डल, पशु, दास और अन्य सहयोगी पुरुष इन सबका परित्याग करके तू, परलोक में यथेच्छ रूप बनाने वाला, कामरूपी (इच्छानुसार रूप बनाने वाला) देव हो जायेगा अथवा त्याग से आत्मशुद्धि को प्राप्त करेगा।

6 कर्मफल स्वरूप प्राप्त कष्टो से मुक्ति

मूल गाथा- थावरं जगमं चेव, धणं धण्णं उवक्खरं।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, णालं दुक्खाओ मोअणे ॥६॥

संस्कृत छाया- स्थावरं जगमं चैव, धनं धान्यमुपस्करम्।
पच्यमानस्य कर्मभि, नालं दु खान्मोचने ॥६॥

अन्वयार्थ-कम्मेहिं-कर्मों से, पच्चमाणस्स-दु ख पाते हुए प्राणी को, थावर-स्थावर, चेव-और, जगमं-जगम सम्पत्ति, धण-धन, धण्ण-धान्य (और), उवक्खर-घर का उपकरण, दुक्खाओ-दु ख से, मोअणे-छुड़ाने को, अल-समर्थ, ण-नहीं है।

भावानुवाद-स्वकृत कर्मों से दु ख पाते हुए जीवों को स्थावर जगम अर्थात् चल-अचल सम्पत्ति, धन, धान्य, उपस्कर-गृह योग्य वस्तुए दु ख से मुक्त करने में सक्षम नहीं हैं।

7 सभी को जीवन प्रिय

मूल गाथा- अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए।
ण हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए ॥७॥

संस्कृत छाया- अध्यात्मस्थ सर्वत सर्वं, दृष्ट्वा प्राणान्प्रियात्मकान्।
न हन्यात्प्राणिनः प्राणान् भयवैरादुपरतः ॥७॥

अन्वयार्थ-सव्व-सब प्राणियों को, सव्वओ-सब तरह से, अज्झत्थं-अध्यात्म (सुख) प्रिय है, तथा पाणे-प्राणियों को, पियायए-अपना आयुष्य प्रिय है, दिस्स-यह देख (सोच) कर, भय वेराओ-भय व वैर से, उवरए-निवृत्त (साधक) पाणिणो-किसी भी प्राणी के, पाणे-प्राणो का, ण हणे-हनन (हिंसा) न करे।

भावानुवाद-'सबको सबरूप से अध्यात्म अर्थात् आत्मस्थ सुख प्रिय है, सभी को अपने प्राण अत्यन्त प्रिय हैं'-यह जानकर भय और वैर से उपरत साधक किसी भी प्राणी के प्राणों का हनन न करे।

8 सत्यान्वेषी पुरुष के कर्त्तव्य

मूल गाथा- आयाणं णरयं दिस्स, णायएज्ज तणामवि।
दोगुछी अप्पणो पाए, दिण्णं भुंजेज्ज भोयणं ॥८॥

सस्कृत छाया- आदाल नरक दृष्ट्वा, नाददीत तृणमपि।
गुगुप्स्यात्मन पात्रे, दत्त भुञ्जीत भोजनम्॥८॥

अन्वयार्थ-आयाण-धन धान्यादि को, णरय-नरक का हेतु, दिस्स-जानकर (देखकर), तणामवि-(बिना दिये हुए) तृण मात्र भी, णायएज्ज-ग्रहण न करे, दो गुञ्छी-असयम से जुगुप्सा (अरुचि) रखने वाला मुनि (आहार के बिना सयम निर्वाह नहीं), अप्पणो-अपने, पाए-पात्र मे, दिण्ण-(गृहस्थ द्वारा) दिया हुआ, भोयण-भोजन, भुजेज्ज-खावे (गृहण करे)।

भावानुवाद-अदत्तादान अथवा सग्रह वृत्ति मे आसक्ति नरक का हेतु है, यह सोचकर मुनि एक तिनका भी किसी की अनुमति के बिना ग्रहण न करे। असयम के प्रति जुगुप्सा रखने वाला मुनि गृहस्थ द्वारा प्रदत्त भोजन को अपने पात्र मे ग्रहण करके खाए। अथवा भोजन के बिना शरीर निर्वाह नहीं हो सकता है-इस प्रकार आत्मनिदा करता हुआ साधक किसी गृहस्थ द्वारा अपने पात्र मे दिया हुआ भोजन ग्रहण करे।

9 पापो का त्याग किये बिना ही मुक्ति-प्रथम भ्रान्त मान्यता

मूल गाथा- इहमेगे उ मण्णति, अप्पच्चक्खाय पावग।
आयरिय विदित्ता ण, सव्वदुक्खाण विमुच्चई॥९॥

सस्कृत छाया- इहैके मन्यन्ते, अप्रत्याख्याय पापकम्।
आर्यत्व विदित्वा, सर्वदु खेभ्यो विमुच्यते॥९।

अन्वयार्थ-इह-इस ससार में, एगे-एक मत के अनुयायी, उ-फिर यो, मण्णति-मानते हैं कि, पावग-पाप का, अप्पच्चक्खाय-प्रत्याख्यान किये बिना, आयरिय-आचार को, विदित्ताण-जानकर (व्यक्ति), सव्व-सर्व, दुक्खाण-दु खो से, विमुच्चई-विमुक्त हो जाता है।

भावानुवाद-इस ससार मे कुछ लोगा की अथवा किसी मत की यह मान्यता है कि "पापों का परित्याग किये बिना ही केवल आर्य-तत्त्व ज्ञान अथवा धर्मानुष्ठान के आचरण सबधी ज्ञान मात्र से जीव सब दु खो से मुक्त हो जाता है।"

10 बन्ध मोक्ष का ज्ञान बघारने से ही मुक्ति-द्वितीय भ्रान्त मान्यता

मूल गाथा- भणंता अकरेंता य, बधमोक्खपइण्णिणो।
वायावीरियमेत्तेण, समासासेंति अप्पय॥१०॥

सस्कृत छाया- भणन्तोऽकुर्वन्त, च बन्धमोक्षप्रतिज्ञिन।
वागवीर्यमात्रेण समाश्वासयन्त्यात्मानम्॥१०॥

अन्वयार्थ-भणता-बोलते हुए, य-और, अकरेता-क्रिया न करते हुए, बधमोक्ख-बन्ध और मोक्ष के, पइण्णिणो-सस्थापक, वाया-वचन की, वीरिय मेत्तेण-वीरता (वीर्य) मात्र से ही, अप्पय-आत्मा को, समासासेंति-आश्वासन देते हैं।

भावानुवाद-बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तो की स्थापना करने वाले बहुत से लोग कहते तो बहुत हैं, किन्तु करते कुछ नहीं, वे ज्ञानवादी वाक्चातुर्य से वचन बल से ही अपने आपको आश्वस्त करते रहते हैं।

11 भाषा विद्या और अनुशासन भी त्राण देने मे असमर्थ

मूल गाथा- ण चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासण।
विसण्णा पावकम्मेहिं, बाला पडियमाणिणो॥11॥

सस्कृत छाया- न चित्रा त्रायन्ते भाषा, कुतो विद्यानुशासनम्।
विषण्णा पापकर्मभि, बाला पण्डितमानिन ॥११॥

अन्वयार्थ-चित्ता-नाना प्रकार की, भासा-भाषाए, ण तायए-रक्षा नहीं कर पाती हैं, विज्जाणुसासण-विद्याओ का सीखना (अनुशासन), कुओ-कहा से रक्षा कर सकेगा, पडिय-(अपने आप को), पडित, माणिणो-मानने वाले, बाला-अज्ञानी, पावकम्मेहिं-पाप कर्मों से, विसण्णा-विमग्न (डूबे हुए) हैं।

भावानुवाद-जब अनेक प्रकार की भाषाए इस आत्मा की रक्षा नहीं कर सकती है तो मत्रादि विद्याओ की शिक्षा कहा से रक्षक हो सकती है? अपने आपको पण्डित मानने वाले जो पाप कर्मों में निमग्न रहते हैं वे वास्तव में अज्ञानी ही हैं।

12 शरीरासक्त पुरुष भी दु ख के उत्पादक

मूल गाथा- जे केइ सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो।
मणसा कायवक्केण, सव्वे ते दुक्खसभवा॥12॥

सस्कृत छाया- ये के शरीरे सक्ता, वर्णे रूपे च सर्वश।
मनसा कायवाक्येन, सर्वे ते दु खसभवा ॥१२॥

अन्वयार्थ-जे केइ-जो कोई (जीव), मणसा-मन से, कायवक्केण-काया और वचन से, सरीरे-शरीर में, य और, वण्णे रूवे-वर्ण और रूप में, सव्वसो-सर्व प्रकार से, सत्ता-आसक्त हैं, ते-वे, सव्वे-सब, दुक्ख सभवा-दु खो के भाजन (दु ख उत्पन्न करने वाले) हैं।

भावानुवाद-जो प्राणी मन, वचन और काया से शरीर में और शरीर के वर्ण एव रूपादि मे सर्वथा आसक्त हैं, वे सभी अपने लिये दु ख उत्पन्न करते हैं।

13 साधक को इन ग्रन्थो से अप्रमत्त एवं विरक्त रहने का आदेश

मूल गाथा- आवण्णा दीहमद्धाण, ससारम्मि अणतए।
तम्हा सव्वदिस पस्स, अप्पमत्तो परिव्वए॥13॥

सस्कृत छाया- आपन्ना दीर्घमध्वान, ससारे अनन्तके।
तस्मात् सर्वदिश दृष्ट्वा, मुनिरप्रमत्त परिव्रजेत्॥१३॥

अन्वयार्थ-(अज्ञानी जीव) अणतए-अनन्त, ससारम्मि-ससार मे, दीह-दीर्घ (लम्बे), अद्धाण-मार्ग को, आवण्णा-प्राप्त किए हुए हैं, तम्हा-इसलिए (साधक), सव्वदिस-सर्व दिशाओ को, पस्स-देखकर, अप्पमत्तो-प्रमाद रहित होकर, परिव्वए-विचरे।

भावानुवाद-अज्ञानी जीव इस अनन्त ससार मे जन्म-मरण की दीर्घकालिक चक्र मे फसे हुए है। अत उनकी समस्त दिशाओ-जीवोत्पत्ति स्थानो को देखता हुआ मुमुक्षु साधक अप्रमत भाव से विचरण करे।

14 अप्रमत्तता के विविध उपाय

मूल गाथा- **बहिया उड्ढमादाय, णावकखे कयाइ वि।**
पुव्वकम्मक्खयट्ठाए, इम देह समुद्धरे॥१४॥

सस्कृत छाया- **बाह्यमुर्ध्वमादाय नावकाक्षेत् कदापि च।**
पूर्वकर्मक्षयार्थम् इम देह समुद्धरेत्॥१४॥

अन्वयार्थ-बहिया-ससार से बाहर, उड्ढ-ऊचे को, आदाय-ग्रहण करके, कयाइवि-कदाचित् भी, णावकखे-विषयादि की इच्छा न करे, तथा इम-इस, देह-शरीर को, पुव्व कम्मक्खयट्ठाए-पूर्व कर्मों का क्षय करने के लिए, समुद्धरे-पुष्ट करे (धारण कर)।

भावानुवाद-मुक्ति सुख को सर्वश्रेष्ठ समझ कर उस लक्ष्य पर स्थित साधक बाह्य विषय सुखा की आकाक्षा न करे। पूर्व कृत कर्मों के क्षय के लिए ही इस शरीर को धारण करे।

15 अप्रमत्त मुनि के अन्य विचार

मूल गाथा- **विविच्च कम्मुणो हेउ, कालकखी परिव्वए।**
माय पिडस्स पाणस्स, कड लद्धूण भक्खए॥१५॥

सस्कृत छाया- **विविच्य कर्मणो हेतु, कालाकाक्षी परिव्रजेत्।**
मात्रा पिण्डस्य पानस्य, कृत लब्ध्वा भक्षयेत्॥१५॥

अन्वयार्थ-कालकखी-कालकाक्षी (समयज्ञ-अवसर का ज्ञाता) साधक, कम्मुणो-कर्म के, हेउ-हेतुआ को, विविच्च-दूर करके, परिव्वए-(सयम मार्ग मे) विचरण करे, कड-(गृहस्थ के द्वारा) किये हुए, पिडस्स-आहार की, पाणस्स-पानी की, माय-मात्रा को (जानकर), लद्धूण-प्राप्त करके, भक्खए-भक्षण करे (सेवन करे)।

भावानुवाद-हे साधक! कर्म बन्ध के हेतुओ को दूर कर। सयमशील साधु समय विभाग के अनुसार ही अपने धर्मानुष्ठानो का आचरण करे। गृहस्थो द्वारा अपने स्वय के लिए तैयार किया गया आहार-पानी अपनी आवश्यकतानुसार-उचित मात्रा मे (विधि पूर्वक) ग्रहण करके सेवन करे।

16 निर्ग्रन्थ सयत द्वारा सग्रह वृत्ति का त्याग

मूल गाथा- **सण्णिहि च ण कुव्विज्जा, लेवमायाए सजए।**
पक्खी पत्त समायाय, णिरवेक्खो परिव्वए॥१६॥

सस्कृत छाया- सन्निधि च न कुर्वीत, लेपमात्रया सयत ।
पक्षी पत्रमिव समादाय, निरपेक्ष परिव्रजेत् ॥१६ ॥

अन्वयार्थ- सजए-सयमी साधु, लेवमायाए-लेप मात्र भी, सण्णिहिं-सचय, ण च कुविज्जा-नहीं कर (किन्तु), णिरवेक्खो-अपेक्षा रहित होकर, पक्खी-पक्षी की भाति, पत्त-पात्र को, समादाय-ग्रहण करके, परिव्वए-(सयम मार्ग में) विचरण करे।

भावानुवाद-सयमी साधक लेशमात्र भी सग्रह न करे (रात्रि म) किंचित् मात्र भी अन्नादि अपने पास न रखे, पक्षी के समान पात्र लेकर निरपेक्ष भाव से भिक्षा के लिए परिव्रजन करे।

17 एषणा समिति का परिपालन

मूल गाथा- एसणासमिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिडवाय गवेसए॥१७।

सस्कृत छाया- एषणासमितो लज्जावान्, ग्रामेऽनियतश्चरेत्।
अप्रमत्त प्रमत्तेभ्य , पिण्डपात गवेषयेत् ॥१७ ॥

अन्वयार्थ-एसणासमिओ-एषणा समिति से युक्त, लज्जू-लज्जावान् साधु, गाम-ग्रामादि मे, अणियओ-अनियत (प्रतिबन्ध रहित) होकर, चरे-विचरे, अप्पमत्तो-प्रमाद रहित होकर, पमत्तेहिं-गृहस्थ लोगों से, पिडवाय-आहारादि की, गवेसए-गवेषणा करे।

भावानुवाद-लज्जाशील सयमी साधक एषणा समिति युक्त होकर गावो में अनियत-प्रतिबन्ध रहित विहार करे। अप्रमत्त भाव से गृहस्थो से पिण्डपात-भिक्षा आदि की गवेषणा करे।

18 उपसहार (आदरणीयता का प्रतिपादन)

मूल गाथा- एव से उदाहु अणुत्तरणाणी अणुत्तरदसी अणुत्तरणाणदसणधरे।
अरहा णायपुत्ते भयव वेसालिए वियाहिए॥१८॥

त्ति बेमि।

इति खुड्डागणियठिज्ज छट्ठ अज्झयण समत्त ॥६॥

सस्कृत छाया- एव स उदाहृतवान् अनुत्तरज्ञान्यनुत्तरदर्शी अनुत्तरज्ञानदर्शनधर ।
अर्हन् ज्ञातपुत्र भगवान् वैशालिको विख्यात: ॥१८॥

इति ब्रवीमि

इति क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय षष्ठमध्ययन समाप्तम् ॥६॥

अन्वयार्थ-से-उन, अणुत्तरणाणी-प्रधान ज्ञानी, अणुत्तर दंसी-अनुत्तर (प्रधान) दर्शी, अणुत्तर णाण दंसणधरे-

प्रधान ज्ञान दर्शनधारी, अरहा-अरिहत (अर्हन), णायपुत्ते-ज्ञात पुत्र, वेसालिए-वैशालिक (विशाल यशस्वी) और, वियाहिए-व्याख्याता, भयव-भगवान् (महावीर) ने, एव-इस प्रकार, उदाहु-कहा है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-अनुत्तर ज्ञानी, अनुत्तरदर्शी, अनुत्तर ज्ञान दर्शन के धारक, अरिहन्त-वीतरागी, ज्ञात पुत्र भगवान्-वैशालिक (महावीर) विशिष्ट यशस्वी ने ऐसा कहा है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय नामक छठा अध्ययन समाप्त हुआ।

❑❑❑

औरभीय - सप्तम् अध्ययन

उत्थानिका

प्रस्तुत अध्ययन में विशुद्ध साहित्यिक रूपक बद्धता का परिदर्शन व्यक्त हुआ है। साधक जीवन का मूल लक्ष्य है-एन्द्रिय-क्षणिक सुखा से विरक्त होकर आत्मरमणता मे स्थिर रहे। अपने लक्ष्य के प्रति साधक को सदा सजग रहने का सकेत रूपको द्वारा यहा प्रस्तुत किया गया है।

इन्द्रियों के विषय-सुख बडे लुभावने मन मोहक-आकर्षक होते हैं। किन्तु इनकी परिणति आत्मा को अनन्त दु खो के सागर मे धकेल देती है। साधक इन सुखो के प्रलोभन में फसकर अपने लक्ष्य को न भूले। थोडे से सुख के लिये अमूल्य आत्मा-निधि को न भूले, इसे समझाने के लिये पाच उदाहरण, जो अत्यन्त व्यावहारिक एव सुबोध हैं, प्रस्तुत किये गये हैं -

1 एक व्यक्ति एक गाय-बछडा और बकरे-मेमने का पालन करता है। वह बकरे को अच्छा स्वादिष्ट एव पौष्टिक भोजन खिलाता है। बकरा हृष्ट-पुष्ट होने लगा। वह व्यक्ति गाय और बछडे का सुखी घास डालता है। बछडा अपने स्वामी क इस भेद पूर्ण व्यवहार को देखकर अपनी मा से शिकायत करता है-"मा। यह स्वामी बकरे को कितना पौष्टिक आहार देता है, जबकि तुम इसे दूध देती हो तब भी तुम्हें सूखी घास देता है और मुझे तो यह भी पूरा नहीं देता है। यह भेद क्यो है?"

गाय अपने प्रिय बछडे को समझाकर कहती है-"बेटा। अपने स्वामी के भेदभाव का कारण है-यह इस बकरे को अच्छा भोजन देता है, इसे मोटा-ताजा बना रहा है इसका अर्थ है अब इस बकरे की मृत्यु निकट आ गई है। कुछ दिना बाद तुम खुद अपने दिमाग से निणय कर लेना कि प्रतिदिन पौष्टिक भोजन खाने वाले की क्या दशा होती है?"

एक दिन उस स्वामी के यहा कुछ अतिथि मेहमान आ जाते हैं और उस बकरे का काटा जाता है। इस भयानक दृश्य को देखकर बछडा काप उठता है। वह मा स पूछता है-"मा! क्या हम भी अतिथि क स्वागत के लिये इस तरह से काटा जायेगा?"

मा ने सहज मुस्कान के साथ उत्तर दिया-"नहीं, बेटा! हमने तो सूखी घास खाई है-हमारी यह स्थिति क्यों होगी? कहावत है-'जो करेगा घटका वो सहेगा झटका' जो नित्य प्रति माल मलीद खाता है-गुलछर्रे उडाता है उसे ही इस तरह के दु ख पूर्ण झटके सहन करने पड़ते हैं। मनोज्ञ काम भोगो की आसक्ति भी मानव जीवन को इसी प्रकार स नष्ट-भ्रष्ट कर देती है।"

2 एक व्यक्ति ने बडी कठिनाई से श्रम करके एक हजार कार्षापण (प्राचीन काल का एक छोटा सिक्का, जो पैसे

काकिणी के बराबर एक होता था) इकट्ठे किये। वह उन्हे लेकर अपने गाव लौट रहा था। मार्ग के किसी गाव मे अपने भोजन की व्यवस्था के लिये उसने अतिरिक्त काकिणियो मे से कुछ की भोजन सामग्री खरीदी। वहा वह एक काकिणी (बहुत छोटा सिक्का) भूलकर आगे चला गया।

मार्ग मे चलते हुए उसे वह एक काकिणी याद आयी तो वह जगल मे कहीं जगह देखकर हजार कार्षापण छुपाकर वह काकिणी लेने को वापस लौट पडा। वह काकिणी उसे नहीं मिली। उसे किसी ने उठा लिया। वह निराश होकर पुन वहा आया जहा उसने एक हजार कार्षापण छुपाकर रखे थे। किन्तु वहा आने पर उसे जब वह हजार कार्षापण की थैली नहीं मिली तो उसे महान् दु ख हुआ। क्योकि उस थैली को छुपाते समय किसी ने देख लिया और उसके जाने के बाद छुपकर देखन वाले व्यक्ति ने उसे उठा लिया। वह व्यक्ति हजार कार्षापण के खो जाने से अत्यन्त दु खित होकर उस जगल मे विलाप करने लगा।

जो व्यक्ति थोडे से इन्द्रिय जन्य भौतिक सुखो के लिये मानव जीवन की बहुमूल्य सम्पदा को खो देता है उसे अत मे इसी प्रकार पश्चात्ताप करना पडता है।

3 एक रुग्ण नृप को चिकित्सको ने आम खाने का सर्वथा निषेध कर दिया। चिकित्सक-वैद्य ने उपचार इसी शर्त पर किया कि आम खाना तो दूर उसकी गन्ध से भी दूर रहा जाएगा। एक ही आम प्राणो को समाप्त करने वाला हो सकता है। नृप ने सभी शर्तें स्वीकार करके उपचार ले लिया।

कुछ वर्षों बाद सम्राट वन भ्रमण को निकला। उसका मत्री उसके साथ था। राजा मत्री के मना करने पर भी एक आम के वृक्ष के नीचे बैठ गया। पके हुए आमफलो की महक ने उसके मन को आकर्षित कर लिया। राजा से नहीं रहा गया। उसने मत्री के मना करने पर भी यह कहते हुए एक आम खा लिया कि एक आम से क्या होता है? राजा के लिये आम अपथ्य था। राजा वहीं मर गया। स्वाद के क्षणिक सुख के लिये राजा ने अपने अमूल्य प्राण खो दिये। यही स्थिति भोगासक्त साधक की होती है।

4 चतुर्थ दृष्टान्त मे मनुष्य जीवन के सुखो की ओस बिन्दुओ से तुलना करते हुए कहा गया है कि जैसे ओस बिन्दु की आभा एव उसका स्थिरत्व क्षणिक होता है उसी प्रकार मानव जीवन भी क्षण भगुर और अस्थिर-चचल आभा वाला होता है। जबकि दिव्य सुख विशाल जलधि के समान अधिक एव चिर स्थाई होते हैं।

5 तीन पुत्र पिता के आदेश के अनुसार घर से पूजी लेकर व्यापार के लिये विदेश गये। वहा से कुछ वर्षों बाद जब तीनो वापस लौटकर स्वदेश आये तो एक ने अपनी पूजी को दस गुना बढा दिया, दूसरे ने मूल पूजी को ही सुरक्षित रखा, न बढाया, न घटाया और तीसरे ने मूल पूजी को ही समाप्त कर दिया।

यह मनुष्य जीवन मूल पूजी की तरह है। इस जीवन मे सत्कर्म के द्वारा दिव्य देवगति को प्राप्त कर लेना इस मूल पूजी की वृद्धि है। पुन मनुष्य बनने जितना ही पुण्य कर्म करना मूल पूजी की सुरक्षा है। ऐसे असत्कर्म करना जो नरक और तिर्यञ्च गति मे ले जावे, मूल पूजी को खो देना है।

यहा इन रूपको को मूल ग्रन्थ द्वारा समझे-

❑❑❑

औरभ्रीय - सप्तम् अध्ययन

सूक्ति साराश :

विषय सुख क्षणिक है-आत्मसुख अनन्त।
अल्प-क्षणिक सुख के लिए अनन्त आनन्द को ठोकर मारने वाला उस नृप के समान है जो क्षणिक स्वाद के लिये अपथ्य आम खा कर जीवन समाप्त कर देता है।

क्षणिक छोड़ो, अक्षय मिलेगा।
क्षणिक-अल्प सुख का त्याग, अनन्त आनन्द के द्वार खोल देता है।
नादान बालक की तरह एक चॉकलेट मे रत्न हार फैंक देने वाला बुद्धिमान् नहीं होता है।

मनुष्यत्व में देवत्व प्रगटाओ।
बुद्धिमान मूल पूजी को बढाता है, सामान्य समझदार व्यक्ति मूल को कायम रखता है, पर ना समझ मूल को भी खो देता है।
जीवन की अर्थवत्ता को समझकर इसका अनन्त लाभ के लिये उपयोग करो।

दीनता पराजय है, अदीनता आत्म-जय।
भिक्षु अदीन होता है। पदार्थों के प्रति दीन भाव भिक्षुत्व के विपरीत है।

ससार का सुख क्षणिक-मोक्ष का अक्षय।
मनुष्य सम्बन्धी सुखों में एव देव सम्बन्धी विषय सुखों में बिन्दु और सिन्धु जितना अन्तर है, फिर मुक्ति सुख का तो कहना ही क्या?

शरीर का नहीं, आत्मा का चिन्तन करो।
आत्मा के योग क्षेम का चिन्तन करो, शरीर विनश्वर है,
उसका योग क्षेम भी अस्थायी है

धैर्य पूर्वक धर्म करो, अधीर मत बनो।
धैर्यशाली ही धार्मिक होता है, अधीर व्यक्ति धर्महीन होता है।

□□□

अह एलयं सत्तमं अज्झयणं

अथ एलकं सप्तमं अध्ययनम्

औरभ्रीय

1 उरभ्र-दृष्टान्त द्वारा विषय भोगो के कटु परिणामो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- जहाऽऽएस समुद्दिस्स, कोई पोसेज्ज एलय।
ओयण जवस देज्जा, पोसेज्जावि सयगणे॥१॥

सस्कृत छाया- अथादेश समुद्दिश्य, कोऽपि पोषयेदेलकम्।
ओदन यवस दद्यात्, पोषयेदपि स्वकागणे॥१॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, आएस-(किसी) मेहमान आदि के, समुद्दिस्स-उद्देश्य से, कोई-कोई (एक मनुष्य), एलय-एलक (मेमने-बकरे) का, पोसेज्ज-पोषण करता है, ओयण-ओदन-(चावल), जवस-जौ, (मूग या घास आदि), देज्जा-देता है, सयगणे-अपने घर के आगन मे, वि-ही, पोसेज्जा-पोषण करता है।

भावानुवाद-जैसे कोई व्यक्ति सम्भावित अतिथि के लिये किसी बकरी-शावक का पालन-पोषण करता है। उसे चावल, जौ अथवा हरी घास देकर अपने आगन मे ही उसका परिपोषण करता है।

2 बकरे की दशा का वर्णन

मूल गाथा- तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेए महोयरे।
पीणिए विउले देहे, आएस परिकखए॥२॥

सस्कृत छाया- तत स पुष्ट परिवृढ, जातमेदो महोदर।
प्रीणितो विपुले देहे, आदेश परिकाक्षति॥२॥

अन्वयार्थ-तओ-इसके बाद, से-वह (मेमना), पुट्ठे-पुष्ठ, परिवूढे-बलिष्ठ(समर्थ), जायमेए-बढी हुई चर्बी वाला, महोयरे-महान् पेट वाला, पीणिए-अत्यन्त तृप्त, (मेमना) विउले देहे-विपुल शरीर होने पर, आएस-आदेश-मेहमान की, परिकखए-प्रतीक्षा करता है।

भावानुवाद-इस प्रकार काल परिपाक से अच्छे खाद्य पदार्थों के सेवन से वह बकरा, हृष्ट-पुष्ट, मोटा-ताजा, बढी

8 पदार्थों से सग्रह व त्याग के निमित्त से होने वाले कष्ट

मूल गाथा- आसण सयणं जाण, वित्तं कामे य भुंजिया।
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहु संचिणिया रयं ॥८॥

संस्कृत छाया- आसनं शयनं यानं, वित्तं कामान् भुक्त्वा।
दु खाहृतं धनं त्यक्त्वा, बहु संचित्य रजः ॥८॥

अन्वयार्थ-आसणं-आसन, सयणं-शयन (शय्या), जाण-यान, सवारी आदि, वित्त-धन, य-और काम-काम भोगों को, भुंजिया-भोग करके, दुस्साहडं-दु ख से एकत्रित किये, धणं-धन को, हिच्चा-त्याग करके, बहुं-बहुत, रय-कर्मरज, संचिणिया-एकत्रित करके।

भावानुवाद-आसन, शय्या, वाहन, धन तथा अन्य कामभोगों को भोगकर तथा दु ख से कमाए हुए धन को छोड़कर, अत्यधिक कर्मरज का संचय करके यह जीव-

9 ऐसे महापापी को अन्तिम समय शोक

मूल गाथा- तओ कम्मगुरु जंतू, पच्चुप्पण्णपरायणे।
अय व्व आगयाएसे, मरणंतम्मि सोयई ॥९॥

संस्कृत छाया- ततः कर्मगुरुर्जन्तुः, प्रत्युत्पन्नपरायणः।
अज इवागत आदेशे, मरणान्ते शोचति ॥९॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर (इसके बाद), कम्मगुरू-कर्मों से भारी, पच्चुप्पण्ण-वर्तमान में (विषय सुखों में) परायणे-तत्पर, जंतू-जीव, आगयाएसे-मेहमान के आने पर, अयव्व-बकरे की तरह, मरणंतम्मि-मृत्यु के समय आने पर, सोयई-सोचता है।

भावानुवाद-केवल वर्तमान के सुखोपभोगों को ही देखने वाला, कर्मों से भारी होकर, यह प्राणी मृत्यु के समय उसी प्रकार शोक करता है, जैसे कि मेहमान के आने पर बकरा विलाप करता है-दु खी होता है।

10 जीव की भावी गति

मूल गाथा- तओ आउपरिक्खीणे, चुयादेहा विहिंसगा।
आसुरीयं दिसं बाला, गच्छंति अवसा तमं ॥१०॥

संस्कृत छाया- तत आयुषि परिक्षीणे, च्युतदेहा विहिंसकाः।
आसुरीं दिशं बाला, अवशा गच्छन्ति तमसाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, आउ परिक्खीणे-आयु के क्षय होने पर विहिंसगा-नाना प्रकार की हिंसा करने वाला-अज्ञानीजीव चुयादेहा-देह के छूटने पर (च्युत होने पर), अवसा-कृतकर्म से (विवश होकर), तमं अंधकार युक्त, आसुरीयं-असुरीय (नरक), दिसं-दिशा की ओर, गच्छंति-जाते हैं।

भावानुवाद-तदनन्तर विविध प्रकार की हिसा करने वाले अज्ञानी जीव जब आयु क्षीण होने पर यह शरीर छोडते हैं तब वे स्वकृत कर्मों के वशीभूत होकर अधकार युक्त नरक दिशा को जाते है। असुरो से पीडित नरक गति को प्राप्त होते हैं।

11 काकिणी और आम्रफल का दृष्टान्त

मूल गाथा- जहा कागिणिए हेउ, सहस्स हारए णरो।
अपत्थ अम्बग भोच्चा, राया रज्ज तु हारए॥11॥

सस्कृत छाया- यथा काकिण्या हेतो, सहस्त्र हारयेन्नर।
अपथ्यमाम्रक भुक्त्वा, राजा राज्य तु हारयेत्॥११॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, णरो-कोई मनुष्य (मूढ), कागिणिए-एक काकिनी के, हेउ-हेतु, सहस्स-हजार मोहरे, हारए-हार देता है, तथा राया-कोई राजा, अपत्थ-कुपथ्यरूप, अवग-आम्रफल, भोच्चा-खा करके, रज्ज-राज्य को, तु-ही, हारए-खो देता है।

भावानुवाद-जैसे मूढ-अज्ञानी व्यक्ति एक काकिणी के लिए हजार (कर्पापण) गवा देता है तथा राजा एक अपथ्य आम्रफल खाकर राज्य सम्पदा को हार जाता है-खो दता है-इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति थोडे से मानवीय सुखो के लिए दिव्य सुखो को खो देता है।

12 दिव्य काम की पराजय प्ररूपणा

मूल गाथा- एव माणुस्सगा कामा, देवकामाण अतिए।
सहस्सगुणिए भुज्जो, आउ कामा य दिव्विया॥12॥

सस्कृत छाया- एव मानुष्यका कामा, देवकामानामन्तिके।
सहस्त्रगुणिता भूय, आयु कामाश्च दिव्यका ॥१२॥

अन्वयार्थ-एव-इसी प्रकार, देवकामाण-देव काम भोगो के, अतिए-समीप, माणुस्सगा-मनुष्य के, कामा-कामभोग नगण्य हैं (क्योकि मनुष्य की अपेक्षा), दिव्विया-देवो की, आउ-आयु, य-और, कामा-कामभोग, सहस्सगुणिया-हजार गुणा, भुज्जो-अधिक हैं।

भावानुवाद-इसी प्रकार देवो के काम-सुखा की तुलना मे मनुष्य के काम-सुख हजार गुण न्यून हैं और मनुष्य की अपेक्षा देवो की आयु और उनके कामसुख सहस्त्र गुण अधिक हैं-पल्योपम-सागरोपम काल जितने हैं।

13 देव-मनुष्यायु का वर्णन

मूल गाथा- अणेगवासाणउया, जा सा पण्णवओ ठिई।
जाइ जीयति दुम्मेहा, ऊणे वाससयाउए॥13॥

संस्कृत छाया- अनेकवर्षनयुता, या सा प्रज्ञावत स्थिति ।
यानि जीयन्ते, दुर्मेधसो ऊने वर्षशतायुषि ॥१३ ॥

अन्वयार्थ-पण्णवओ-प्रज्ञावान् (साधक) की, जा ठिई-(देव लोक मे) जो स्थिति है, सा-वह अणेग-अनेक णउया-नयुत (असख्य), वासा-वर्ष की होती है, जाइ-जिसको (दिव्य सुखो की), दुम्मेहा-दुर्बुद्धि (मूढ) ऊणे वाससयाउए-सौ वर्ष से भी कम आयुष्य काल में, जीयति-हार जाता है।

भावानुवाद-देवलोक में प्रज्ञावान्! साधक की अनेक नयुत वर्ष (असख्यकाल) की स्थिति-आयु होती है, यह जानते हुए भी अज्ञानी मनुष्य सौ वर्ष से भी अल्पकाल में उन दिव्य सुखो को खो देता है।

14 व्यवहार उदाहरण द्वारा प्रतिबोध

मूल गाथा- जहा य तिण्णि वाणिया, मूलं घेत्तूण णिग्गया।
एगोऽत्थ लहई लाह, एगो मूलेण आगओ॥१४॥

संस्कृत छाया- यथा च त्रयो वणिज , मूल गृहीत्वा निर्गता ।
एकोऽत्र लभते लाभम्, एको मूलेनागत ॥१४॥

अन्वयार्थ-जहा य-जैसे, तिण्णि-तीन, वाणिया-वणिक, मूल-मूलपूजी, घेत्तूण-ले करके, णिग्गया-घर से निकले, अत्थ-इनमे से, एगो-एक वणिक, लाह-लाभ को, लहई-प्राप्त करता है, और एगो-एक दूसरा वणिक, मूलेण-मूलपूजी लेकर, आगओ-आ गया।

भावानुवाद-जैसे तीन वणिक मूलधन लेकर व्यापार के लिए निकले। उनमे से एक अधिक लाभ प्राप्त करता है। एक केवल मूल को ही लेकर वापस लौट आता है।

15 लाभालाभ की दृष्टि का विवेचन

मूल गाथा- एगोमूलपि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ।
ववहारे उवमा एसा, एव धम्मे वियाणह॥१५॥

संस्कृत छाया- एकोमूलमपि हारयित्वा, आगतस्तत्र वणिक्।
व्यवहारे उपमैषा, एव धर्मे विजानीत॥१५॥

अन्वयार्थ-तत्थ-उनमें से, एगो-तीसरा एक, वाणिओ-वणिक, मूलपि-मूलपूजी भी, हारित्ता-हार करके, आगओ-आ गया, एसा-यह, उवमा-उपमा, ववहारे-व्यवहार (व्यापार) का है, धम्मे-धर्म के विषय मे भी एवं-इसी प्रकार वियाणह-जानो।

भावानुवाद-तीसरा एक वणिक मूलधन को भी गवा कर लौट आता है। यह व्यवहार का दृष्टान्त है। धर्म के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

16 उपर्युक्त उपमा उपमेय का कथन

मूल गाथा- माणुसत्त भवे मूल, लाभो देवगई भवे।
मूलच्छेएण जीवाण, णरग तिरिक्खत्तण धुवम् ॥१६॥

सस्कृत छाया- मानुष्यत्व भवेन्मूल, लाभो देवगतिर्भवेत्।
मूलच्छेदेन जीवाना, नरकर्तियक्त्व ध्रुवम्॥१६॥

अन्वयार्थ-माणुसत्त-मनुष्यत्व, मूल भवे-मूलधन होवे, देवगई-देवगति, लाभो-लाभरूप, भवे-होवे, मूलच्छेएण-मूल के नाश होने से, जीवाण-जीवो को, णरग तिरिक्खत्तण-नरक ओर तियच गति (की प्राप्ति), धुव-निश्चित है।

भावानुवाद-मनुष्य जीवन मूलधन है। देवगति लाभरूप है। किन्तु मूल नाश के समान निश्चय ही जीवो को नरक तथा तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है।

17 दो कुगतियो मे हारा हुआ जीव

मूल गाथा- दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया।
देवत्त माणुसत्त च, ज जिए लोलयासढे ॥१७॥

सस्कृत छाया- द्विधा गतिर्बालस्य, आपद्वधमूलिका।
देवत्व मनुष्यत्व च हारित , यस्माज्जितो लोलताशठ ॥१७॥

अन्वयार्थ-बालस्स-अज्ञानी जीव की, दुहओ-दो प्रकार की (नरक व तिर्यंच), गई-गति होती है जो, आवई-आपत्तिमूलक, और, वहमूलिया-वधमूलक है, (क्याकि वह), लोलया-(विपय मासादि मे) लोलुप, सढे-धूर्त होकर, ज-जो, देवत्त-देवपना, च-और, माणुसत्त-मनुष्य पना है उसे, जिए-हार गया।

भावानुवाद-अज्ञानी जीव की गति दो प्रकार की है-नरक और तिर्यञ्च। वहा उसे कष्ट और वध प्राप्त होते हैं। क्योकि वह मास लोलुपता एव छलादि वृत्तियो के कारण देवगति और मनुष्य गति को तो पहले ही हार चुका होता है।

18 मूलधन का विनाश करके नीची गति मे जाने वाले जीव

मूल गाथा- तओ जिए सई होइ, दुविह दुग्गइ गए।
दुल्लहा तस्स उम्मग्गा, अद्धाए सुचिरादवि ॥१८॥

सस्कृत छाया- ततोजितो सकृद् भवति, द्विविधा दुर्गतिं गत ।
दुर्लभा तस्योन्मज्जा, अद्धाया सुचिरादपि ॥१८॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, दुविह-दो प्रकार की, दुग्गइ-दुर्गति को, गए-गया (प्राप्त) हुआ, सई-सदा केलिए जिए होइ-हारा हुआ है (क्योकि), अद्धाए-बडे मार्ग मे, तस्स-उसका सुचिरादवि-बहुत काल तक, उम्मग्गा-

उन गतियों से निकलना, दुल्लहा-दुर्लभ है।

भावानुवाद-नरक और तिर्यंच रूप दो दुर्गतियों को प्राप्त अज्ञानी जीव मनुष्य और देवगति को सदा हारे हुए हैं। क्योंकि उन जीवों का उन दो दुर्गतियों से दीर्घकाल तक निकलना दुर्लभ है।

19 मूलधन वाले वणिक के समान मनुष्यत्व प्राप्त जीव

मूल गाथा- एव जियं सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं।
मूलियं ते पवेसंति, माणुसं जोणिमेंति जे ॥१९॥

संस्कृत छाया- एवं जितं सम्प्रेक्ष्य, तोलयित्वा बालं च पण्डितम्।
मूलकं ते प्रविशन्ति, मानुषीं योनिं यान्ति ये ॥१९॥

अन्वयार्थ-एव-इसी प्रकार, जियं-हारे हुए का (अज्ञानी को), सपेहाए-(भलीभांति) देखकर, बालं-बाल (अज्ञानी), च-और पंडियं-पंडित को, तुलिया-(बुद्धि से) तोल करके, जे-जो, माणुसं-मनुष्य की, जोणिं-योनि में, एंति-आते हैं, ते-वे, मूलियं-मूलधन के साथ, पवेसंति-प्रवेश करते हैं।

भावानुवाद-इस प्रकार सुगति को हारे हुए बाल जीवों की स्थिति को देखकर तथा बाल और पण्डित की तुलना करके जो पुनः मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं, वे मूलधन के साथ लौटे वणिक के समान हैं।

20 मनुष्यत्व को प्राप्त व्यक्तियों की योग्यता

मूल गाथा- वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे णरा गिहिसुव्वया।
उर्वेति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥२०॥

संस्कृत छाया- विमात्राभिः शिक्षाभिः, ये नरा गृहिसुव्रताः।
उपयान्ति मानुषीं योनिं, कर्मसत्या खलु प्राणिनः ॥२०॥

अन्वयार्थ-वेमायाहिं-नाना प्रकार की, सिक्खाहिं-शिक्षाओं से, जे-जो णरा-मनुष्य, गिहि-गृहस्थ होते हुए सुव्वया-सुन्दर व्रत वाले हैं माणुसं-मनुष्य की, जोणिं-योनि को, उवेंति-प्राप्त होते हैं हु-निश्चय ही पाणिणो-प्राणी के, कम्मसच्चा-कर्म सत्य हैं, (कृतकर्मानुसार फल प्राप्ति)।

भावानुवाद-जो मनुष्य विविध प्रकार के व्रतों शीलों की शिक्षाओं द्वारा गृहवास में भी सुव्रती हैं वे मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं। क्योंकि प्राणी कर्म सत्य होते हैं अर्थात् कृत कर्मों का फल अवश्य प्राप्त करते हैं।

21 देवत्व को प्राप्त व्यक्तियों की योग्यता

मूल गाथा- जेसिं तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया।
सीलवंता सविसेसा, अदीणा जंति देवयं ॥२१॥

संस्कृत छाया- येषां तु विपुला शिक्षा, मूलकं तेऽतिक्रान्ताः।
शीलवन्तः सविशेषाः, अदीना यान्ति देवत्वम् ॥२१॥

अन्वयार्थ-तु-किन्तु, जेसि-जिनकी, विउला-बहुत, सिक्खा-शिक्षाएं हैं, ते-वे, सीलवता-शीलवान्, सविसेसा-विशेषगुण युक्त, अदीणा-दीनता रहित व्यक्ति, मूलिय-मूलधन रूप मनुष्यत्व से, अइच्छिया-आगे बढकर, देवय जति-देवत्व को प्राप्त करते हैं।

भावानुवाद-और जिन प्राणियो की शिक्षा विपुल-अधिक विस्तृत हो गई हो, जो घर में रहते हुए भी शील सम्पन्न एव विशिष्ट गुणो से युक्त हैं, वे पुरुष मूलधन रूप मनुष्यत्व से आगे बढकर देवगति को प्राप्त होते है।

22 प्रस्तुत लाभ को हाथ से न जाने देने का निर्देश

मूल गाथा- एवमदीणव भिक्खु, अगारिं च वियाणिया।
कहण्णु जिच्चमेलिक्ख, जिच्चमाणो ण संविदे ॥२२॥

सस्कृत छाया- एवमदैन्य भिक्षुम्, अगारिण च विज्ञाय।
कथ नु जेतव्यमीदृश, जीयमानो न सविद्यात् ॥२२॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, अदीणव-दीनतारहित, भिक्खु-साधु को, च-और, अगारिं-गृहस्थ को, वियाणिया-जान करके, कहण्णु-किस प्रकार, एलिक्ख-देवगतिरूप लाभ को, जिच्चं-हार जाता है और, जिच्चमाणो-हारता हुआ, ण सविदे-सवेदन नहीं करता है? अर्थात् जानता ही है।

भावानुवाद-इस प्रकार दीनता रहित साहसी भिक्षु और गृहस्थ को देवगति से लाभान्वित जानकर कैसे कोई विवेकी व्यक्ति उपर्युक्त लाभ को हारेगा? और हारता हुआ कैसे सवेदन-पश्चात्ताप नहीं करेगा?

23 दिव्य और मानुप काम भोगो की समुद्र से तुलना

मूल गाथा- जहा कुसग्गे उदग, समुद्देण समं मिणे।
एव माणुस्सगा कामा, देवकामाण अंतिए ॥२३॥

सस्कृत छाया- यथा कुशाग्रे उदक, समुद्रेण सम मिनुयात्।
एव मानुष्यका कामा, देवकामानामन्तिके ॥२३॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, कुसग्गे-कुश के अग्रभाग के, उदग-जल बिन्दु को, समुद्देण-समुद्र के, सम-साथ, मिणे-मापे (तुलना करे), एव-इसी प्रकार, माणुस्सग्गा-मनुष्यो के, कामा-कामभोग, देवकामाण-देवो के कामभोगा के, अतिए-समीप (क्षुद्र) हैं।

भावानुवाद-जैसे कुश के अग्रभाग पर स्थित जल बिन्दु-ओसकण समुद्र की तुलना में नगण्य है, उसी प्रकार देव कामसुखो के सामने मनुष्य के काम सुख ना कुछ हैं।

24 दिव्य ओर मानुप काम भोगो की कुशाग्र बिन्दु से तुलना

मूल गाथा- कुसग्गमित्ता इमे कामा, सण्णिरुद्धम्मि आउए।
कस्स हेउ पुराकाउ, जोगक्खेम ण सविंदे ॥२४॥

संस्कृत छाया- कुशाग्रमात्रा इमे कामा, संनिरुद्धे आयुषि।
कस्य हेतु पुरस्कृत्य, योगक्षेम न संविदात्॥२४॥

अन्वयार्थ-कुसग्गमित्ता-कुशाग्र मात्र, इमे-ये, कामा-काम भोग हैं, सण्णिरुद्धम्मि-संक्षिप्त (विघ्न बाधाओं से युक्त), आउए-आयु के होने पर (भी), कस्स-किस हेउ-हेतु को, पुराकाउ-आगे करके जोगक्खेमं-योग और क्षेम का, ण संविदे-नहीं समझता है?

भावानुवाद-मनुष्य जन्म की इस स्वल्प आयु मे काम सुख कुशाग्र पर स्थित जल बिन्दु जितने ही हैं, फिर भी अज्ञानी किस हेतु का समक्ष रखकर अपने लाभप्रद योगक्षेम को नहीं समझता है?

25 मानवीय काम भोगो से अनिवृत्ति का परिणाम

मूल गाथा- इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झई।
सोच्चा णेयाउय मग्गं, ज भुज्जो परिभस्सई॥२५॥

संस्कृत छाया- इह कामाऽनिर्वृत्तस्य आत्मार्थोऽपराध्यति।
श्रुत्वा नैयायिक मार्गं, य भूय परिभ्रश्यति॥२५॥

अन्वयार्थ-इह-इस, मनुष्यभव में, कामाऽणियट्टस्स-काम भोगो से निवृत्त न होने वाले (व्यक्ति), अत्तट्ठ-आत्मार्थ (आत्मप्रयोजन) का, अवरज्झई-नाश हो जाता है, ज-जिसने कि, णयाउय मग्गं-न्याययुक्त मार्ग को, भुज्जो-बार-बार, सोच्चा-सुनकर भी, परिभस्सइ-परिभ्रष्ट (पतित) हो जाता है।

भावानुवाद-इस मानव जीवन में काम भोगो से निवृत्त नहीं होने वाले का आत्म प्रयोजन विनष्ट हो जाता है। क्योंकि वह न्याययुक्त मार्ग को बार-बार सुनकर भी उससे च्युत हो जाता है-गिर जाता है।

26 मानवीय कामभोगो से निवृत्ति का परिणाम

मूल गाथा- इह कामणियट्टस्स, अत्तट्ठे णावरज्झई।
पूइदेहणिरोहेण, भवे देवे त्ति मे सुय॥२६॥

संस्कृत छाया- इह कामनिर्वृत्तस्य, आत्मार्थो नापराध्यति।
पूतिदेहत्यागेन, भवेद् देव इति मया श्रुतम्॥२६॥

अन्वयार्थ-किन्तु इह-इस मनुष्य भव में कामणियट्टस्स-काम भोगों से निवृत्त होने का अत्तट्ठ-आत्मार्थ आत्मप्रयोजन ण अवरज्झइ-नष्ट नहीं होता है, पूइदेह-(मलिन) औदारिक शरीर का, णिरोहेण-निरोध से (त्याग), देवे-देव, भवे-होता है, त्ति-इस प्रकार, मे-मैंने, सुय-सुना है।

भावानुवाद-मनुष्य भव में काम भोगों से निवृत्त होने वाले व्यक्ति का आत्म प्रयोजन नष्ट नहीं होता है। क्योंकि वह पूतिदेह-औदारिक शरीर को छोड़कर देव होता है, ऐसा मैंने सुना है।

27 देवलोक के पश्चात् पुन उत्तम मनुष्य कुल मे

मूल गाथा- इड्ढी जुई जसो वण्णो, आउ सुहमणुत्तर।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जई॥२७॥

सस्कृत छाया- ऋद्धिर्धतिर्यशो वर्ण , आयु सुखमनुत्तरम्।
भूयो यत्र मनुष्येषु, तत्र स उत्पद्यते॥२७॥

अन्वयार्थ-भुज्जो-पुन , जत्थ-जहा, अणुत्तर-प्रधान (श्रेष्ठ), इड्ढी-ऋद्धि, जुई-द्युति (कान्ति), जसो-यश, वण्णो-उच्चवर्ण, आउ-आयु (और), सुह-सुख होता है, तत्थ-वहा, मणुस्सेसु-मनुष्य कुलो मे, से-वह जीव, उववज्जई-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-देवलोक से आकर वह जीव पुन वहा उत्पन्न होता है जहा मनुष्यो मे श्रेष्ठ ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण आयु और अधिक सुख होते हैं।

28 अज्ञानी जीव की गति

मूल गाथा- बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्म पडिवज्जिया।
चिच्चा धम्म अहम्मिट्ठे, णरए उववज्जई॥२८॥

सस्कृत छाया- बालस्य पश्य बालत्वम्, अधर्म प्रतिपद्य।
त्यक्त्वा धर्ममधर्मिष्ठ , नरके उत्पद्यते॥२८॥

अन्वयार्थ-बालस्स-अज्ञानी का, बालत्त-अज्ञानपना, पस्स-देख, अहम्म-अधर्म को, पडिवज्जिया-ग्रहण करके, धम्म-धर्म को, चिच्चा-त्याग कर, अहम्मिट्ठे-अधर्मी होकर, णरए-नरको मे, उववज्जई-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-बालजीव की अज्ञानता को देखो, वह अधर्म को ग्रहणकर और धर्म को छोडकर अधर्मिष्ठ बनता है तथा नरक मे उत्पन्न होता है।

29 धीर जीव की गति

मूल गाथा- धीरस्स पस्स धीरत्त, सव्वधम्माणुवत्तिणो।
चिच्चा अधम्म धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जई॥२९॥

सस्कृत छाया- धीरस्य पश्य धीरत्व, सर्वधर्मानुवर्तिन ।
त्यक्त्वाऽधर्म धर्मिष्ठ , देवेषूत्पद्यते॥२९॥

अन्वयार्थ-सव्व-सर्व, धम्माणुवत्तिणो-धर्मों का अनुवर्ती, धीरस्स-धीर (पुरुष) के, धीरत्त-धीरपने (धैर्यता) को, पस्स-देखो (वह), अधम्म-अधर्म को, चिच्चा-छोड करके, धम्मिट्ठे-धर्मिष्ठ बनकर, देवेसु-देवों मे, उववज्जई-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-सर्वप्रकार से धम का अनुवर्तन-पालन करने वाले धीर पुरुष के धैर्य को देखो। वह अधम का त्याग कर धार्मिक बनता है और दवां मे उत्पन्न होता है।

30 बालभाव को छोड़ पंडित भाव को अपनावें

मूल गाथा- तुलियाण बालभाव, अबाल चेव पंडिए।
चइऊण बालभावं, अबाल सेवए मुणि ॥30॥

ति बेमि।

इति एलयज्झयण समत्त

संस्कृत छाया- तोलयित्वा बालभावम्, अबालं चैव पण्डित ।
त्यक्त्वा बालभावम्, अबाल सेवते मुनि ॥30॥

इति ब्रवीमि

इत्येलकाध्ययन समाप्तम्।

अन्वयार्थ-पंडिए-पंडित, मुणि-मुनि, बालभाव-बाल भाव को, चेव-और, अबाल-अबालभाव को तुलियाण-तोल कर बालभाव-बाल भाव को, चइऊण-छोडकर, अबाल-अबाल भाव का, सेवए-सेवन करता है।

त्ति-इस प्रकार बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-पण्डित मुनि बालभाव और अबालभाव की तुलना अर्थात् गुण-दोष की समीक्षा करके बालभाव को छोडकर अबाल भाव का स्वीकार करता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार औरभ्रीय अध्ययन समाप्त हुआ।

❏❏❏

कापिलीय - अष्टम् अध्ययन

उत्थानिका

मानव जीवन की सबसे बडी त्रासदी है, महातृष्णा की मृग मरीचिका। ससार बन्धन एव जन्म-मरण का मूल हेतु यह तृष्णा ही है। तृष्णा का अर्थ है लोभ और लोभ तब तक बढता जाता है, जब तक लाभ होता रहता है। अर्थात् एक इच्छा की पूर्ति अपने पीछे अगणित इच्छाओ को जन्म देती है और इस रूप मे इच्छाओ का कभी अन्त नहीं आ पाता है। इच्छा पूर्ति-समाप्ति का हेतु नहीं है अपितु इच्छा अथवा कामनाओ का सर्वथा क्षय ही इच्छाओ की नवीन उत्पत्ति को प्रतिबन्धित कर सकता है।

इच्छाओ की अमर बेल किस प्रकार बढती जाती है और किस प्रकार उसे क्षण भर मे उखाड फेका जाता है, इसका जीवन्त चित्रण है प्रस्तुत अध्ययन मे। जीवन्त इसलिए कि जीवन की उद्दाम लालसाओ की अधी गलियो मे भटक कर उनसे पार हो जाने वाले एक अलौकिक महापुरुष का अनुभूत सत्य इसमे अभिव्यक्त हुआ है। इस जीवन्त अनुभव के ज्ञान के लिए हमें कुछ इतिहास के पृष्ठ उलटने होगे।

कौशाम्बी नगरी के राज सम्मानित ब्राह्मण कश्यप का पुत्र कपिल पितृविहीन हो जाने पर मा की प्रेरणा से अपने स्वर्गीय पिता के मित्र इन्द्रदत्त के यहा श्रावस्ती नगरी मे अध्ययन करने हेतु गया। इन्द्रदत्त ने मित्र-पुत्र को अध्ययन करवाना स्वीकार तो कर लिया, किन्तु अपनी गरीबी के कारण वह ब्राह्मण पुत्र कपिल के भोजन की व्यवस्था नहीं कर पा रहा था। सयोग से एक श्रेष्ठि शालिभद्र ने कपिल के भोजन की व्यवस्था के लिए एक दासी की नियुक्ति कर दी जो प्रतिदिन उभयकाल कपिल के लिए भोजन बना दिया करती थी।

यौवनकाल, इन्द्रियो का आकर्षण और प्रतिदिन दोनो के एकान्तवास ने दोनो की मन स्थिति को डावाडाल कर दिया। दोनो का प्रेम धीरे-धीरे वासना मे बदल गया। अब कपिल विद्यार्थी नहीं रहा वह दासी के मोहजाल म फस गया। पडित इन्द्रदत्त ने जब उसके चित्त की चचलता का अवलोकन किया तो वह समझ गया कि मित्र का यह होनहार पुत्र वासना के जाल मे फस गया है। उसने कपिल को समझाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु कपिल पर छाया हुआ दासी-प्रेम का नशा नहीं उतरा। विपरीत उसने अब अपना अध्ययन ही बन्द कर दिया। विद्यारसिक कपिल अब दासी रसिक हो गया।

एक बार श्रावस्ती मे कोई बडा जन्मोत्सव होने वाला था, दासी ने उस महोत्सव मे जाने के लिए कपिल स कुछ वस्त्राभूषणो की माग की। किन्तु अपने भोजन के लिए भी पराश्रित कपिल के पास क्या था, जो वह उस अपनी प्रिय दासी को देता। वह दु खी हो गया।

अन्त मे दासी ने ही उसे बताया कि यहा एक धन (किसी कथा मे राजा का उल्लेख मिलता है) नामक परम

अह काविलीयं अट्ठमं अज्झयणं

अथ कापिलिकमष्टममध्ययनम्

कापिलीय

1 दुर्गति निवारण के उपाय की जिज्ञासा

मूल गाथा-
अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए।
कि णाम होज्ज त कम्मय, जेणाहं दुग्गइं ण गच्छेज्जा॥1॥

संस्कृत छाया-
अध्रुवेऽशाश्वते, संसारे दुःखप्रचुरे।
किं नाम तद् भवेत्कर्मक, येनाहं दुर्गतिं न गच्छेयम्॥१॥

अन्वयार्थ-अधुवे-अध्रुव, असासयम्मि-अशाश्वत, दुक्खपउराए-दुःख प्रचुर, संसारम्मि-संसार में, किं णाम-कौनसा, त-वह, कम्मय-कर्म, होज्ज-होता है, जेण-जिससे, अह-मैं, दुग्गई-दुर्गति में, ण-न, गच्छेज्जा-जाऊं।

भावानुवाद-इस अध्रुव, अशाश्वत एवं दुःख बहुल संसार में ऐसा कौन सा कर्म है, कौनसा क्रियानुष्ठान है, जिसके आचरण से मैं दुर्गति में न जाऊं।

2 दोष-प्रदोषों से मुक्त रहने का उपाय

मूल गाथा-
विजहित्तु पुव्वसंजोगं, ण सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा।
असिणेह सिणेहकरेहिं, दोसपओसेहिं मुच्चए भिक्खू॥2॥

संस्कृत छाया-
विहाय पूर्वसंयोगं, न स्नेहं कस्मिंश्चित्-कुर्यात्।
अस्नेहः स्नेहकरेषु, दोषप्रदोषेभ्यो मुच्यते भिक्षुः॥२॥

अन्वयार्थ-पुव्व संजोगं-पूर्व संयोग का, विजहित्तु-त्याग कर (फिर), कहिंचि-किसी भी पदार्थ में सिणेहं-स्नेह, ण कुव्वेज्जा-न करे, सिणेह करेहिं-स्नेह करने वालों में असिणेह-स्नेहरहित होकर भिक्खू-साधु दोस-दोष (और) पओसेहिं-प्रदोषों से, मुच्चए-मुक्त हो जाता है।

भावानुवाद-जिन पूर्व संयोगों-स्नेह बन्धनों को एक बार छोड़ दिया जाता है, फिर किसी भी पदार्थ में ...

न करे। जो भिक्षु स्नेह करने वालो के साथ भी स्नेह नहीं करता है, वह सभी प्रकार से दोषो और पदोषो से मुक्त हो जाता है।

3 कपिल केवली द्वारा दिये गए उपदेश का प्रयोजन

मूल गाथा- तो णाणदसणसमग्गो, हियणिस्सेसाय सव्वजीवाण।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, भासइ मुणिवरो विगयमोहो ॥३॥

सस्कृत छाया- ततो ज्ञानदर्शनसमग्र , हितनि श्रेयसाय सर्वजीवानाम्।
तेषा विमोक्षार्थं, भाषते मुनिवरो विगतमोह ॥३॥

अन्वयार्थ-तो-तत्पश्चात्, णाणदसण-ज्ञानदर्शन, समग्गो-सयुक्त (परिपूर्ण), विगयमोहो-मोह से रहित, मुणिवरो-मुनिश्रेष्ठ (कपिल केवली) ने, सव्वजीवाण-समस्त जीवा के, हिय-हित (और), णिस्सेसाय-मोक्ष (नि श्रेयस) के लिए, तेसि-उन (500 चोरो) के, विमोक्खणट्ठाए-मोक्ष के लिए, (प्रतिबोध) भासइ-कहते है-

भावानुवाद-अनन्तर मोहमुक्त, केवलज्ञान-कवलदर्शन से युक्त कपिल मुनि ने समस्त प्राणियो के हित और कल्याण के लिए तथा सबकी मुक्ति के लिए इस प्रकार कहा-

4 निर्लिप्तता का उपदेश

मूल गाथा- सव्व गथ कलह च, विप्पजहे तहाविह भिक्खू।
सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो ण लिप्पई ताई ॥४॥

सस्कृत छाया- सर्वग्रन्थ कलह च, विप्रजह्यात्तथाविध भिक्षु ।
सर्वेषु कामजातेषु, पश्यन् न लिप्यते त्रायी ॥४॥

अन्वयार्थ-भिक्खू-साधक मुनि, तहाविह-तथाविध (कर्म बन्ध के हेतु भूत), सव्व-सर्व प्रकार के, गथ-ग्रन्थ (धनादिपरिग्रह), च-और, कलह-(क्रोधादि) कलह का, विप्पजहे-परित्याग करे (तथा), सव्वेसु-सभी, कामजाएसु-काम भोगो मे, पासमाणो-देखता हुआ, ताई-आत्मरक्षक, मुनि, लिप्पई-लिप्त, ण-नहीं हाता।

भावानुवाद-भिक्षु-साधक कर्म बन्धन के कारण रूप सभी प्रकार के ग्रन्थ-परिग्रह का तथा कलह सक्लेश का परित्याग करे। काम भोगो के सभी प्रकारा मे दोषो का अवलोकन करता हुआ आत्मत्राता मुनि उनमे मलिप्त-आसक्त न हो।

5 भोग त्याग न करने की दुर्दशा

मूल गाथा- भोगामिसदोसविसण्णे, हियणिस्सेयसबुद्धिवोच्चत्थे।
बाले य मदिए मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥५॥

सस्कृत छाया- भोगामिषदोषविषण्ण , हितनि श्रेयसबुद्धिविपर्यस्त ।
बालश्च मन्दो मूढ , बध्यते मक्षिकेव श्लेष्मणि ॥५॥

अन्वयार्थ-भोगामिस-भोगरूप आमिष के दोस विसण्णे-दोषों में निमग्न, हिय-हित, णिस्सेयस-निःश्रेयस (मोक्ष) में, वाच्चत्थे-विपरीत, बुद्धि-बुद्धिवाला, बाल-अज्ञानी, मंदिए-मन्दमति और मूढ-मूढजीव, खेलम्मि श्लेष्म-कफ में (लिपटी) मच्छिया व-मक्खी की तरह, बज्झई-बंध (फंस) जाता है।

भावानुवाद-आसक्ति जनक भोग रूप आमिषदोषों में निमग्न, हित और निःश्रेयस के प्रति विपरीत बुद्धि वाला अज्ञानी, मन्द और मूढ, श्लेष्म-कफ में फंसने वाली मक्खी के समान कर्म जाल में फंस जाता है।

6 दुस्त्यज काम भोगों का त्याग सुव्रती साधु द्वारा सुकर

मूल गाथा- दुप्परिच्चया इमे कामा, णो सुजहा अधीरपुरिसेहिं।
अह संति सुव्वया साहू, जे तरंति अतरं वणिया व॥६॥

संस्कृत छाया- दुःपरित्याज्या इमे कामा, नो सुत्यजा अधीरपुरुषैः।
अथ सन्ति सुव्रता साधवः, ये तरन्त्यतारं वणिज इव॥६॥

अन्वयार्थ-इमे-ये, कामा-कामभोग दुप्परिच्चया-दुस्त्यज हैं, अधीर पुरिसेहिं-अधीर पुरुषों के द्वारा (ये) सुजहा-सुत्याज्य, णो-नहीं है, अह-किन्तु, जे-जो सुव्वया-सुव्रती, साहू-साधु संति-होते हैं (वे), अतरं-दुस्तर कामभोग (विषय रूप समुद्र को), वणिया व-वणिक् की तरह, तरंति-तैरते हैं।

भावानुवाद-इन काम भोगों का परित्याग अत्यन्त कठिन है। धैर्यहीन व्यक्तियों के द्वारा ये सहजता से नहीं छोड़े जाते हैं। किन्तु जो सुव्रती साधु हैं, इन दुस्तर काम भोगों के सागर को उसी प्रकार तैर जाते हैं, जैसे वणिक् व्यापार निमित्त अपार सागर को तैर जाते हैं।

7 पाप दृष्टि वाले श्रमणाभासों की दुर्गति

मूल गाथा- समणा मु एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अयाणंता।
मंदा णरयं गच्छंति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं॥७॥

संस्कृत छाया- श्रमणाः स्मः (वयम्) एके वदन्तः, प्राणवधं मृगा अजानन्तः।
मन्दा नरकं गच्छन्ति, बाला पापिकाभिर्दृष्टिभिः॥७॥

अन्वयार्थ-मु-हम, समणा-साधु हैं, एगे-कोई-कोई, वयमाणा-कहते हुए, मिया-मृगवत्, मंदा-मन्दमति बाला-अज्ञानी जीव, पाणवहं-प्राण वध को, अयाणंता-न जानते हुए, पावियाहिं दिट्ठीहिं-पाप दृष्टि से णरयं-नरक को गच्छंति-जाते हैं।

भावानुवाद-हम श्रमण हैं-इस प्रकार कहते हुए भी बहुत से व्यक्ति प्राण वध को नहीं जानते हुए [illegible] और मूढ बनकर अपनी पापदृष्टियों के कारण मर कर नरक में जाते हैं।

8 प्राण वध की अनुमोदना दु ख के कारण

मूल गाथा- ण हु पाणवह अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाण।
एवमायरिएहिं अक्खाय, जेहिं इमो साहुधम्मो पण्णत्तो ॥८॥

सस्कृत छाया- न खलु प्राणवधमनुजानन्, मुच्येत कदाचित्सर्वदु खै ।
एवमाचार्यैराख्यात, यैरेष साधुधर्म प्रज्ञप्त ॥८॥

अन्वयार्थ-पाणवह-प्राणवध का, अणुजाणे-अनुमोदक, कयाइ-कदाचित् भी, सव्व दुक्खाण-सर्व दु खा स हु-निश्चय , ण मुच्चेज्ज-मुक्त नही हो सकता, एव-इस प्रकार, आयरिएहि-आचार्यों ने, अक्खाय-कहा हे, जेहिं-जिन्होने, इमो-इस, साहुधम्मो-साधु धर्म की, पण्णत्तो-प्ररूपणा की है।

भावानुवाद-जिन महान् आचार्यों ने साधु धर्म का प्रतिपादन किया हे, उन आर्य पुरुषो का कथन है कि जो प्राण वध का अनुमोदन करता है वह कभी भी दु खा से मुक्त नहीं हो सकता है।

9 हिंसादि से दूर-पाप कर्मों से दूर

मूल गाथा- पाणे य णाइवाएज्जा, से समीए त्ति वुच्चई ताई।
तओ से पावय कम्म, णिज्जाइ उदग व थलाओ॥९॥

सस्कृत छाया- प्राणान् यो नातिपातयेत्, स समित इत्युच्यते त्रायी।
तस्मात्तस्य पापकर्म, निर्यात्युदक स्थलादिव॥९॥

अन्वयार्थ-(जा) पाणे-प्राणियो के प्राणो का णाइवाएज्जा-अतिपात (विनाश) नहीं करता, त्ति-इस प्रकार, ताई-षट्काय रक्षक, य-और, समिए-समिति (सम्यक् प्रवृत्ति) वाला, से-वह (मुनि), वुच्चई-कहा जाता है, तओ-तदनन्तर, से-उससे, पावय-पाप, कम्म-कर्म, णिज्जाइ-निकल जाता है, व-जैसे, थलाओ-(ऊचे) स्थल से, उदग-पानी बहकर चला जाता है।

भावानुवाद-जो प्राणियो का वध नहीं करता, वह साधक "समिति-सम्यक् प्रवृत्ति वाला" कहलाता हे। उससे-उसके जीवन मे पाप कर्म वैसे ही निकल जाता है, जैसे ऊचे स्थान से पानी बह जाता है।

10 प्राणातिपात से निवृत्ति का कारण एव विधि

मूल गाथा- जगणिस्सिएहिं भूएहिं, तसणामेहिं थावरेहिं च।
णो तेसिमारभे दड, मणसा वयसा कायसा चेव॥१०॥

सस्कृत छाया- जगन्निश्रितेषु भूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च।
न तेषा दण्डमारभेत, मनसा, वचसा कायेन चैव॥१०॥

अन्वयार्थ-जग-लोक के, णिस्सिएहिं-आश्रित, भूएहिं-जीवो मे, तसणामेहिं-त्रसो म, च-और, थावरेहिं-स्थावरा में, तेसि-उनका, मणसा-मन से, वयसा-वचन से, च-और, कायसा-काया से, दड-दण्ड का, णो-आरभ-आरम्भ न करे (दण्ड न देवे)।

भावानुवाद-ससार आश्रित जितने भी त्रस अथवा स्थावर सज्ञा वाले प्राणी हैं उनके प्रति मन वाणी और काया से किसी भी प्रकार के दण्ड का प्रयोग न करे।

11 एषणा समिति के पालन का निर्देश

मूल गाथा- सुद्धेसणाओ णच्चाणं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।
जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे ण सिया भिक्खाए ॥11॥

सस्कृत छाया- शुद्धैषणा ज्ञात्वा, तत्र स्थापयेद् भिक्षुरात्मानम्।
यात्रायै ग्रासमेषयेत्, रसगृद्धो न स्याद् भिक्षाकः ॥११॥

अन्वयार्थ-सुद्धेसणाओ-शुद्ध एषणा को, णच्चाणं-जानकर, भिक्खू-साधु, तत्थ-वहां (उसमें), अप्पाणं-अपनी आत्मा को, ठवेज्ज-स्थापित करे, भिक्खाए-(भिक्षाजीवी) साधु, जायाए-सयम यात्रा के लिए, घासं-आहार की, एसेज्जा-गवेषणा करे (किन्तु), रसगिद्धे-रस में मूर्च्छित, ण सिया- न होवे।

भावानुवाद-भिक्षु शुद्ध एषणा को जानकर उसी में अपनी आत्मा को स्थिर करे अर्थात् एषणा के अनुसार प्रवृत्ति करे। भिक्षा जीवी साधक सयम यात्रा के निर्वाह के लिए आहार की गवेषणा करे, किन्तु रसों में आसक्त न बने।

12 रसासक्ति के त्यागी साधु द्वारा आहारादि का ग्रहण

मूल गाथा- पंताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु वुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए णिसेवए मंथु ॥12॥

सस्कृत छाया- प्रान्तानि चैव सेवेत, शीतपिण्डं पुराणकुल्माषम्।
अथवा बुक्कसं पुलाकं, यापनार्थं निषेवेत मन्थुम् ॥१२॥

अन्वयार्थ-जवणट्ठाए-(सयम यात्रा के), निर्वाह हेतु, पंताणि-प्रान्त (नीरस) आहार, सीयपिंडं-शीत आहार, चेव-और, पुराण-पुराने, कुम्मासं-कुल्माषों का (मूग, उड़द के बाकुले) आहार सेवेज्जा-करे अदु-अथवा, वुक्कसं-बुक्कस (सारहीन), वा-अथवा, पुलागं-पुलाक (और), मंथु-बेर व सत्तु का चूर्ण का णिसेवए-सेवन करे।

भावानुवाद-साधक जीवन निर्वाह के लिए नीरस शीत आहार, पुराने उड़द बुक्कस सारहीन पुलाक तथा बेर सत्तु फल आदि का चूर्ण आदि आहार का सेवन करे।

13 लक्षण स्वप्न और अंग विद्या के प्रयोग का निषेध

मूल गाथा- जे लक्खणं च सुविणं, अगविज्जं च जे पउंजंति।
ण हु ते समणा वुच्चंति, एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥13॥

सस्कृत छाया- ये लक्षणं च स्वप्नम्, अगविद्यां च ये प्रयुञ्जन्ति।
न खलु ते श्रमणा उच्यन्ते, एवमाचार्यैराख्यातम् ॥१३॥

अन्वयार्थ-जे-जो (साधु), लक्खण-लक्षणविद्या, सुविण-स्वप्नविद्या, च-और, अगविज्ज-अगविद्या का, पउजति-प्रयोग करते हैं, ते-वे, हु-निश्चय ही, समणा-साधु, ण वुच्चति-नहीं कहे जाते, एव-इस प्रकार, आयरिएहिं-आचार्यों ने, अक्खाय-कहा है।

भावानुवाद-जो मुनि लक्षण, शास्त्र, स्वप्न विद्या और अग विद्या का प्रयोग करते हैं, उन्हे निश्चय ही साधु नहीं कहा जाता है, ऐसा आचार्यों ने कहा है।

14 समाधि योग से भ्रष्ट साधको की गति-मति

मूल गाथा- **इह जीविय अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोएहिं।**
ते कामभोगरसगिद्धा, उववज्जति आसुरे काए॥१४॥

सस्कृत छाया- **इह जीवित अनियम्य, प्रभ्रष्टा समाधियोगेभ्य।**
ते कामभोगरसगृद्धा, उत्पद्यन्ते आसुरे काये॥१४॥

अन्वयार्थ-इहजीविय-इस (वर्तमान) जीवन को, अणियमेत्ता-अनियमित (असयमित) रखकर, समाहिजोएहिं-समाधि योगो से, पब्भट्ठा-परिभ्रष्ट होकर, ते-वे, कामभोगरसगिद्धा-काम भोग व रसो मे गृद्ध (साधु), आसुरे-आसुर, काए-काय मे, उववज्जति-उत्पन्न होते हैं।

भावानुवाद-इस वर्तमान जीवन को नियत्रित नहीं रखने वाले साधक समाधियोग से पतित हो जाते हैं। वे काम भोग और रसो मे आसक्त रहने के कारण असुरकाय मे उत्पन्न होते हैं।

15 असुर कुमारादि से च्युत होकर ससार परिभ्रमण

मूल गाथा- **तत्तोऽवि य उवट्टित्ता, ससार बहु अणुपरियडति।**
बहुकम्मलेवलित्ताण, बोही होइ सुदुल्लहा तेसि॥१५॥

सस्कृत छाया- **ततोऽपि च उद्धृत्य, ससार बह्वनुपर्यटन्ति।**
बहुकर्मलेपलिप्तानाम् बोधिर्भवति सुदुर्लभा तेषाम्॥१५॥

अन्वयार्थ-तत्तोवि-वहा (असुर काय) से भी, उवट्टित्ता-निकल कर, बहु ससार-बहुत (विस्तीर्ण) ससार मे, अणुपरियडति-सतत् परिभ्रमण करते है, य-और, बहु-बहुत, कम्मलेव-कर्मों के लेप से, लित्ताण-लिप्त, तेसि-उन (जीवो) को, बोही-बोधि-धर्म की प्राप्ति, सुदुल्लहा-अतिदुर्लभ, होइ-होती है।

भावानुवाद-वे जीव पुन उन असुर कुमारो से निकल कर भी बहुत काल तक ससार मे परिभ्रमण करते हैं। अत्यधिक कर्मों से लिप्त होने के कारण उन्हे पुन बोधि-सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अति दुर्लभ होती है।

16 तृष्णा की दुष्पूरता

मूल गाथा- **कसिणपि जो इम लोय, पडिपुण्ण दलेज्ज इक्कस्स।**
तेणावि से ण सतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया॥१६॥

भावानुवाद-ससार आश्रित जितने भी त्रस अथवा स्थावर सज्ञा वाले प्राणी हैं उनके प्रति मन, वाणी और काया से किसी भी प्रकार के दण्ड का प्रयोग न करे।

11 एषणा समिति के पालन का निर्देश

मूल गाथा- सुद्धेसणाओ णच्चाण, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाण।
जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे ण सिया भिक्खाए॥११॥

सस्कृत छाया- शुद्धैषणा ज्ञात्वा, तत्र स्थापयेद् भिक्षुरात्मानम्।
यात्राया ग्रासमेषयेत्, रसगृद्धो न स्याद् भिक्षाक ॥११॥

अन्वयार्थ-सुद्धेसणाओ-शुद्ध एषणा को, णच्चाण-जानकर, भिक्खू-साधु, तत्थ-वहा (उनमें), अप्पाणं-अपनी आत्मा को, ठवेज्ज-स्थापित करे, भिक्खाए-(भिक्षाजीवी) साधु, जायाए-सयम यात्रा के लिए, घास-आहार की, एसेज्जा-गवेषणा करे (किन्तु), रसगिद्धे-रस मे मूर्च्छित, ण सिया- न होवे।

भावानुवाद-भिक्षु शुद्ध एषणा को जानकर उसी मे अपनी आत्मा को स्थिर करे अर्थात् एषणा के अनुसार प्रवृत्ति करे। भिक्षा जीवी साधक सयम यात्रा के निर्वाह के लिए आहार की गवेषणा करे, किन्तु रसों में आसक्त न बने।

12 रसासक्ति के त्यागी साधु द्वारा आहारादि का ग्रहण

मूल गाथा- पताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिंड पुराणकुम्मासं।
अदु बुक्कस पुलाग वा,जवणट्ठाए णिसेवए मथु॥१२॥

सस्कृति छाया- प्रान्तानि चैव सेवेत, शीतपिण्ड पुराणकुल्माषान्।
अथवा बुक्कस पुलाक, यापनार्थं निषेवेत मन्थुम्॥१२॥

अन्वयार्थ-जवणट्ठाए-(सयम यात्रा के), निर्वाह हेतु, पताणि-प्रान्त (नीरस) आहार, सीयपिड-शीत आहार, चेव-और, पुराण-पुराने, कुम्मास-कुल्माषों का (मूग, उड़द के बाकुले) आहार, सेवेज्जा-करे, अदु-अथवा, बुक्कस-बुक्कस (सारहीन), वा-अथवा, पुलाग-पुलाक (और), मंथु-बेर या सत्तु का चूर्ण का, णिसेवए-सेवन करे।

भावानुवाद-साधक जीवन निर्वाह के लिए नीरस, शीत आहार, पुराने उडद, बुक्कस-सारहीन, पुलाक-रूक्ष एव बदरी फल आदि का चूर्ण आदि आहार का सेवन करे।

13 लक्षण स्वप्न और अग विद्या के प्रयोग का निषेध

मूल गाथा- जे लक्खणं च सुविण, अंगविज्ज च जे पउंजंति।
ण हु ते समणा वुच्चति, एवं आयरिएहिं अक्खाय॥१३॥

सस्कृत छाया- ये लक्षण च स्वप्नम्, अगविद्या च ये प्रयुञ्जन्ति।
न खलु ते श्रमणा उच्यन्ते, एवमाचार्यैराख्यातम्॥१३॥

अन्वयार्थ-जे-जो (साधु), लक्खण-लक्षणविद्या, सुविण-स्वप्नविद्या, च-और, अगविज्ज-अगविद्या का, पउजति-प्रयोग करते हैं, ते-वे, हु-निश्चय ही, समणा-साधु, ण वुच्चति-नहीं कहे जाते, एव-इस प्रकार, आयरिएहिं-आचार्यों ने, अक्खाय-कहा है।

भावानुवाद-जो मुनि लक्षण, शास्त्र, स्वप्न विद्या और अग विद्या का प्रयोग करते हैं, उन्हे निश्चय ही साधु नहीं कहा जाता है, ऐसा आचार्यों ने कहा है।

14 समाधि योग से भ्रष्ट साधको की गति-मति

मूल गाथा- इह जीविय अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोएहिं।
ते कामभोगरसगिद्धा, उववज्जति आसुरे काए॥१४॥

सस्कृत छाया- इह जीवित अनियम्य, प्रभ्रष्टा समाधियोगेभ्य ।
ते कामभोगरसगृद्धा , उत्पद्यन्ते आसुरे काये॥१४॥

अन्वयार्थ-इहजीविय-इस (वर्तमान) जीवन को, अणियमेत्ता-अनियमित (असयमित) रखकर, समाहिजोएहिं-समाधि योगो से, पब्भद्ठा-परिभ्रष्ट होकर, ते-वे, कामभोगरसगिद्धा-काम भोग व रसो मे गृद्ध (साधु), आसुरे-आसुर, काए-काय मे, उववज्जति-उत्पन्न होते हैं।

भावानुवाद-इस वर्तमान जीवन को नियन्त्रित नहीं रखने वाले साधक समाधियोग से पतित हो जाते हैं। वे काम भोग और रसो मे आसक्त रहने के कारण असुरकाय में उत्पन्न होते हैं।

15 असुर कुमारादि से च्युत होकर ससार परिभ्रमण

मूल गाथा- तत्तोऽवि य उवट्टित्ता, ससार बहु अणुपरियडति।
बहुकम्मलेवलित्ताण, बोही होइ सुदुल्लहा तेसि॥१५॥

सस्कृत छाया- ततोऽपि च उद्धृत्य, ससार बह्वनुपर्यटन्ति।
बहुकर्मलेपलिप्तानाम् बोधिर्भवति सुदुर्लभा तेषाम्॥१५॥

अन्वयार्थ-तत्तोवि-वहा (असुर काय) से भी, उवट्टित्ता-निकल कर, बहु ससार-बहुत (विस्तीर्ण) ससार मे, अणुपरियडति-सतत् परिभ्रमण करते हैं, य-और, बहु-बहुत, कम्मलेव-कर्मों के लेप से, लित्ताण-लिप्त, तेसि-उन (जीवो) को, बोही-बोधि-धर्म की प्राप्ति, सुदुल्लहा-अतिदुर्लभ, होइ-होती है।

भावानुवाद-वे जीव पुन उन असुर कुमारा से निकल कर भी बहुत काल तक ससार में परिभ्रमण करते हैं। अत्यधिक कर्मों से लिप्त होने के कारण उन्हे पुन बोधि-सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अति दुर्लभ होती है।

16 तृष्णा की दुष्पूरता

मूल गाथा- कसिणपि जो इम लोय, पडिपुण्ण दलेज्ज इक्कस्स।
तेणावि से ण सतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया॥१६॥

संस्कृत छाया- कृत्स्नमपि य इमं लोकं, प्रतिपूर्णं दद्यादेकस्मै।
तेनापि स न सन्तुष्येत्, इति दुःपूरकोऽयमात्मा ॥१६॥

अन्वयार्थ-इक्कस्स-किसी एक व्यक्ति को, पडिपुण्ण-धन धान्यादि से भरा हुआ, इम-यह, कसिणपि-सम्पूर्ण भी, लोय-लोक, जो-जो सुरेन्द्रादि, दलेज्ज-दे देवे, तेणावि-उससे भी, से-यह (आत्मा), ण सतुस्से-सन्तुष्ट नहीं होता, इह-इस प्रकार, दुप्पूरए-दुष्पूरक (दुःख से पूर्ण करने योग्य) है, इमे-यह, आया-आत्मा (लोभाभिभूत) है।

भावानुवाद-अर्थात् धन-धान्य से परिपूर्ण यह सम्पूर्ण लोक भी यदि किसी एक व्यक्ति को दे दिया जाए, तब भी वह इससे सतुष्ट नहीं होगा। इतनी दुष्पूर है यह लोभी आत्मा।

17 लोभात्मा को यथेष्ट लाभ मिलने पर भी सन्तोष नहीं

मूल गाथा- जहा लाहो तहा लोहा, लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मासकयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठियं ॥17॥

संस्कृत छाया- यथा लाभस्तथा लोभः, लाभाल्लोभः प्रवर्धते।
द्विमाषकृतं कार्यं, कोट्याऽपि न निष्ठितम् ॥१७॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार (जैसे-जैसे), लाहो-लाभ होता है, तहा-वैसे वैसे, लोहो-लोभ होता है, लाहो-लाभ से, लोहो-लोभ, पवड्ढई-बढ़ता है, दो मासकय-दो माशा सोने से होने वाले, कज्ज-कार्य, कोडीए वि-करोडों (स्वर्ण मुद्राओं) से भी, ण णिट्ठिय-निष्पन्न नहीं हो सकते हैं।

भावानुवाद- जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे लोभ होता है। क्योंकि लाभ से लोभ बढ़ता जाता है, इसलिए दो माशा सोने से सम्पन्न होने वाला कार्य करोडों स्वर्ण मुद्राओं से भी निष्पन्न नहीं हो सका।

18 स्त्री सहवास से अलग रहने का उपदेश

मूल गाथा- णो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासुऽणेगचित्तासु।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेल्लंति जहा व दासेहिं ॥18॥

संस्कृत छाया- न राक्षसीषु गृध्येत्, गण्डवक्षस्स्वनेकचित्तासु।
याः पुरुषं प्रलोभ्य, क्रीडन्ति यथा वा दासैः ॥१८॥

अन्वयार्थ-गंडवच्छासु-पीनस्तनवाली (जिनके हृदय में कूच है), अणेगचित्तासु-अनेक चित्त वाली रक्खसीसु-राक्षसियों में णो गिज्झेज्जा-मूर्च्छित नहीं होवे, जाओ-जो, पुरिसं-पुरुष को, पलोभित्ता-प्रलोभन देकर जहा व-जैसे, दासेहिं-(खरीदे हुए) दासों की तरह, खेलंति-क्रीडा करती हैं।

भावानुवाद-जिनके हृदय में कूच-कपट है अथवा सीने पर फोड़े रूप स्तन हैं, जिनके चित्त अनेक हैं अथवा अनेक में संलग्न हैं, जो पुरुष को अपने मोह पाश रूप प्रलोभन में फंसाकर क्रीतदास की तरह नचाती हैं, ऐसी कामना की दृष्टि से राक्षसी रूप-साधना में विघ्न उत्पन्न करने वाली स्त्रियों में मूर्च्छित नहीं होना चाहिए।

19 वासना प्रिय नारी से साधक को सावधानी रखने का निर्देश

मूल गाथा- णारीसु णोवगिज्झेज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे।
धम्म च पेसल णच्चा, तथ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाण ॥१९॥

सस्कृत छाया- नारीषु नोपगृध्येत्, स्त्रीर्विप्रजह्यादनगार ।
धर्म च पेशल ज्ञात्वा, तत्र स्थापयेद् भिक्षुरात्मानम् ॥१९॥

अन्वयार्थ-इत्थी विप्पजहे-स्त्रिया के ससग का त्यागी, अणगारे-गृह त्यागी साधु, णारीसु-स्त्रियो मे, णोव गिज्झेज्जा-मूर्च्छित न होवे, च-और, भिक्खू-साधु, धम्म-धर्म (सयम) को, पेसल-सुन्दर (इहलोक-परलोक मे हितकर), णच्चा-जानकर, तत्थ-उसमे, अप्पाण-अपनी आत्मा को, ठवेज्ज-स्थापित करे।

भावानुवाद-अनगार, भिक्षु स्त्रियो मे आसक्त नहीं होवे, स्त्री सग का परित्याग करे। भिक्षु धर्म को एकान्त हितकर-कल्याणप्रद जानकर उसमे अपनी आत्मा को स्थिर करे।

20 यति धर्म का स्वरूप-उपसहार

मूल गाथा- इह एस धम्मे अक्खाए, कविलेण च विसुद्धपण्णेण।
तरिहिंति जे उ काहिंति, तेहिं आराहिया दुवे लोगा ॥२०॥

त्ति बेमि

इति काविलीय अट्ठम अज्झयण समत्त

सस्कृत छाया- इत्येष धर्म आख्यात , कपिलेन च विशुद्धप्रज्ञेन।
तरिष्यन्ति ये तु करिष्यन्ति, तैराराधितौ द्वौ लोकौ ॥२०॥

इति ब्रवीमि

इति कापिलिकमष्टममध्ययनम्

अन्वयार्थ-इह-इस प्रकार, विसुद्धपण्णेण-विशुद्ध प्रज्ञावान्, कविलेण-कपिल मुनि ने, एस-यह, धम्मे-साधु धर्म अक्खाए-कहा है जे उ-अत जो (साधक), काहिंति-(धर्म का) करगे, (वे) तरिहिंति-(ससार सागर से) तिर जायेगे, च-और, तेहिं-उन्होने ही दुवे लोगा-दोनो लोको की, आराहिया-आराधना की है, (साध लिया है)।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू

भावानुवाद-विशुद्ध प्रज्ञा सम्पन्न कपिल मुनि केवली ने इस प्रकार के इस धर्म का प्रतिपादन किया है जो व्यक्ति इसकी सम्यगाराधना करगे, वे ससार समुद्र को पार करेगे। उनके द्वारा दोनो लोक (इहलोक-परलोक) आराधित हागे।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार कापिलीय नामक आठवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

□□□

नमि प्रव्रज्या - नवम अध्ययन

उत्थानिका

अद्वैत की चर्चा केवल वेदान्त दर्शन की ही चर्चा नहीं है। अद्वैत वाद पर केवल वैदिक दर्शन का ही एकाधिकार नहीं है। अपितु जैन तत्त्व दर्शन में जिस रूप में अथवा जिस सूक्ष्मता और गहनता से अद्वैत का विवेचन प्रस्तुत हुआ है, वह अपने आप में बेजोड है। हा, दोनों दर्शनो की प्रतिपादन शैली में अवश्य अन्तर है, एक एकान्त अद्वैत की चर्चा करता है तो दूसरा (जैन दर्शन) सापेक्ष अद्वैत की। जैन दर्शन ने आपेक्षिक दृष्टि से आत्मा की सर्वोच्च सत्ता को अद्वैत के रूप मे ही स्वीकार किया है। यही नहीं, वहा हम जब तक एकत्व को समग्र दृष्टि से निर्णीत नहीं कर लेते, पूर्ण सत्य का साक्षात्कार नहीं कर पाते है। इस रूप मे एकत्व में प्रतिष्ठित होना ही तो अद्वैत का दर्शन है।

जैन तत्त्व दर्शन की यह ध्रुव मान्यता है कि जहा दो हैं-जड और चेतन, वहा बन्धन है। जहा एकत्व की पराकाष्ठा है वहा परम स्वतन्त्रता है-परम मुक्ति है। जीव और कर्म दो मिलते हैं तो बन्धन है, दोनों स्वतन्त्र हो गये, अलग-अलग हो गए कि मुक्ति हो गई। जब तक जीवन म द्वैत है चेतन्य का जड के साथ लगाव है, बन्धन ही बन्धन है और जहा बन्धन है वहा राग है-द्वेष है। जहा राग-द्वेष है वहीं दु ख, क्लेश, अशान्ति और संक्लेश है।

जीवन में कौन सा छोटा-सा क्षण निमित्त बन कर हमें अद्वैत भाव मे ले जाता है? कौन सा लघु चिन्तन विराट म समाहित होने का निमित्त बन जाता है, यह कह पाना कठिन है। जब चेतना के मुक्तिकाल का परिपाक होता है तो एक लघु-सी घटना उसके जागरण का निमित्त बन जाती है और वह आत्मा क्षण भर म द्वैत के द्वन्द्वो से ऊपर उठकर आत्मा की अद्वैतता में-आत्मलीनता में प्रवेश कर जाती है।

आत्म प्रतिष्ठा की मर्मस्पर्शी घटना का ही चित्रण प्रस्तुत हुआ है, इस नमिपव्वज्जा अध्ययन में। यहा साथ म यह भी प्रतिपादित हुआ है कि वह आत्माद्वैत की प्रतिष्ठा जैसे एक क्षणिक झटके के द्वारा हुई है वैसी क्षणिक एवं अस्थिर नहीं है। स्वय देवेन्द्र उस जागृत चेतना की परीक्षा करने आता है और सटीक उत्तर प्राप्त कर चरण नत हो जाता है। देवेन्द्र एव उस परम जागृत चेतना का सवाद प्रारम्भ हो, उसके पूर्व इसकी पृष्ठ भूमि का समझ लेना उपयोगी होगा।

मिथिला नरेश नमिराज के जीवन की यह घटना है। वे एक बार दाहज्वर की वेदना से पीडित हो गये। छह माह तक उन्हें भयकर वेदना होती रही। वैद्यो के सभी उपचार निरर्थक सिद्ध हो रहे थे। अन्त में वैद्यों का एक समवेत स्वर उठा कि बावन गोशीर्ष चन्दन का लेप करने से वेदना का शमन हो सकता है।

शीघ्र ही बावन गोशीर्ष चन्दन आ गया। अपने स्वामी की वेदना से दु खित रानियां स्वय अपने हाथों से चन्दन

घिसने का कार्य करने लगी। चन्दन घिसते समय रानियो के हाथो मे पहने हुए ककणो की आवाज होने लगी। महाराज नमि पहले से ही वेदना से व्याकुल थे, उन्हे यह शोरगुल अच्छा नहीं लगा। उन्होने कहा-"यह इतनी तीव्र आवाज किस की हो रही है?" समीपस्थ मत्री ने निवेदन किया-'राजन! चन्दन घिसने से रानियो के हाथो के ककणा की आवाज हो रही है। और सकेत पाते ही रानियो ने तुरन्त सौभाग्य सूचक एक-एक ककण रख लिया और बाकी के ककण निकाल लिये और पुन चन्दन घिसने लग गई।

शोरगुल बन्द हो गया। नमिराज ने पूछा-"क्या चन्दन घिसने का कार्य सम्पन्न हो गया?" मत्री ने कहा-"नहीं"। "तो आवाज कैसे बन्द हो गई?" नमिराज के इस प्रश्न पर मत्री ने रानियो के एक-एक ककण रखने की बात की तो नमिराज के चिन्तन ने एक गहरा मोड ले लिया। यह लघु घटना उनके लिये घटना नहीं रही, आत्म जागरण का निमित्त बन गई।

नृप का चिन्तन चला कि जहा अनेक हैं, वहीं सब झगडे हैं, शोरगुल हैं, द्वन्द्व-दु ख और सघर्ष हैं। जहा एक है वहा पूर्ण शान्ति है, कोई तनाव नहीं। जब तक यह आत्मा शरीर मन इन्द्रिया धन और परिजन के द्वैत से जुडी है, अशान्ति ही अशान्ति है। और राजा का विवेक जागृत हो गया। अन्तर चेतना मे वैराग्य भाव उमड पडा। वह इसी विशुद्ध विचार धारा मे सोया कि उसे जाति-स्मरण-पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया। प्रात होते ही अन्तरग वैराग्य के आधार पर वह मुनि बन गया, उसने निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। क्षण भर मे राज्य सम्पदा और परिवार के ममत्व बन्धनो को छेदन कर दिया।

नमिराज की प्रव्रज्या का परिज्ञान जब स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र को हुआ तो वह ब्राह्मण का रूप बनाकर देखने के लिये आया कि नमिराज का यह वैराग्य क्षणिक आवेगमय है या इसमे चिरस्थायीत्व का महत्तम भाव छुपा हुआ है?

देवेन्द्र के द्वारा नमिराज को पूछे गये प्रश्न भले ही सामान्य कोटि के हो किन्तु नमिराज ने अन्तरग गहराईयो को छूने वाले जो उत्तर दिये वे सामान्य नहीं हैं। उन्होने मिथिला के जलने के प्रति जो उपेक्षापूर्ण उत्तर दिया वह आम व्यक्ति के लिये अवश्य अटपटा लगता है, किन्तु वह उनके गहरे भेद विज्ञान का परिचायक है। यही नहीं अन्य अनेक उत्तरो मे उन्होने आत्म सुरक्षा पर बल दिया है। इसी प्रकार शत्रुदमन नहीं, आत्मसयमन राज्य विस्तार नहीं, आत्म-राज्य विस्तार को अधिक आवश्यक बताया है। बाहर की दुनिया से विजय पाने की अपेक्षा बाहर की दुनिया को भुलाकर आत्म विजय को ही उन्होने श्रेष्ठ बताया है।

हम मूल ग्रन्थ के आधार पर ही यह स्पष्ट समझने का प्रयास करेगे कि नमिराजर्षि के एक-एक उत्तर पर इन्द्र किस प्रकार निरुत्तर होकर अन्त मे उनके चरणो मे अवनत होकर उनकी स्तुति करने लगता है।

❑❑❑

नमि प्रव्रज्या - नवम् अध्ययन

सूक्ति साराश -

स्वहिताकाक्षी-भोग परित्यागी ही प्रज्ञाशाली।
समुपलब्ध भागा का त्याग करने वाला आत्म हितच्छु व्यक्ति ही प्रज्ञा सम्पन्नता की काटि म आता है।

आर्त्तध्यान का मूल कारण-स्वार्थ सिद्धि मे बाधा।
समस्त रुदन स्वार्थ पोषी हैं। परमार्थी कभी नहा रोता।

ममत्व भाव-विलाप का कारण।
आत्मा का अपना यहा कुछ भी नहीं हाता है। फिर शाक-विलाप किस लिय?

प्रिय-अप्रिय का वर्जन-साधना मे समर्पण।
यहा न अपना कोइ प्रिय है और न अप्रिय,
एसा चिन्तन ही कल्याण पथ पर बढाता है।

दह की नहीं, आत्मा की सुरक्षा करो।
बाहर के सभी सुरक्षा प्रबन्ध नाकाम हा जाते हैं, अत शरीर सुरक्षा का नहीं,
आत्म नगर की सुरक्षा का प्रबन्ध तप, सवर, क्षमा पराक्रम के द्वारा करना श्रेयस्कर है।

अन्तरग शत्रु पर विजय ही सच्ची विजय है।
बाहर के नहीं, अन्दर क सग्राम म विजय श्री का वरण करा।
बाहर के शत्रु से जय भी पराजय है।

अन्तिम पड़ाव पर ही घर बनाओ।
जो शाश्वत घर-मुक्ति प्राप्ति क प्रति सन्देह शील है
वही अशाश्वत घर की व्यवस्था करता है।

अज्ञानता पूर्ण व्यवहार का नाम ससार है।
सम्यग्ज्ञान पूर्ण व्यवहार साधना है।
ससार म अज्ञान वश निरपराधी दण्डित होते हैं, अपराधी मौज उड़ाते हैं।
एसे ससार से शीघ्र मुक्त हान का प्रयास करो।

दु स्थित आत्मा को सन्मार्ग पर लगा देना ही आत्म विजय है
और वही सच्ची विजय है।
लाखो शत्रुओ को जीतने की अपेक्षा एक आत्मा को जीतना श्रेयस्कर है।

आत्म विजय ही शान्ति का मार्ग है।
स्वय की असद् वृत्तियो पर विजय साध लेना ही
ससार पर विजय साध लेना है।

सयम, सयम है, दान से उसकी तुलना व्यर्थ है।
लाखो गायो के दान से भी एक दिन का सयम श्रेष्ठ है,
क्याकि दान पुण्य बन्ध का हेतु है, जबकि सयम आत्म शुद्धि-आत्म शान्ति का।

अज्ञान और साधना मे दिवा रात्रि का अन्तर है।
अज्ञान पूर्ण साधना, साधना नहीं कहलाती
भले वह कितनी भी कठोर क्यो न हो?

आकाशवत् अनन्त तृष्णा से बचो।
तृष्णा की खाई अपूरणीय है। सम्पूर्ण ससार का वैभव भी
उस खाई को नहीं भर सकता।

काम राग भयकर जहर है, आत्म शान्ति को नष्ट कर देता है।
काम-सुखो की नि सारता को प्राय प्रत्येक व्यक्ति समझता है,
क्योकि काम सुख, भोग के बाद शल्यवत् चुभते है,
पश्चाताप से पीडित करते है।

❑❑❑

अह णवमं नमिपवज्जाणामज्झयणं

अथ नवमं नमिप्रव्रज्यानामाऽध्ययनम्

नमि प्रव्रज्या

1 नमिराज का जन्म और पूर्व जन्म स्मरण

मूल गाथा- चइऊण देवलोगाओ, उववण्णो माणुसम्मि लोगम्मि।
उवसंतमोहणिज्जो, सरई पोराणियं जाइं ॥1॥

संस्कृत छाया- च्युत्वा देवलोकात्, उपपन्नो मानुषे लोके।
उपशान्तमोहनीय, स्मरति पौराणिकीं जातिम् ॥१॥

अन्वयार्थ-देवलोगाओ-देवलोक से, चइऊण-च्युत होकर, माणुसम्मि-मनुष्य, लोगम्मि-लोक में, उववण्णो-उत्पन्न हुआ, उवसंतमोहणिज्जो-जिसका मोहनीय कर्म-उपशांत हो गया है, पोराणियं-पूर्व, जाइं-जन्म (जाति) का, सरई-स्मरण करता है।

भावानुवाद-महाराजा नमि की आत्मा ने देवलोक से च्युत होकर (मरकर) मनुष्य लोक में जन्म लिया। मोह के उपशान्त होने पर उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण हुआ-पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हुआ।

2 नमिराज का अभिनिष्क्रमण

मूल गाथा- जाइं सरित्तु भयवं, सयसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे।
पुत्तं ठवेत्तु रज्जे, अभिणिक्खमई णमी राया ॥2॥

संस्कृत छाया- जातिं स्मृत्वा भगवान्, स्वयंसम्बुद्धोऽनुत्तरे धर्मे।
पुत्रं स्थापयित्वा राज्ये, अभिनिष्क्रामति नमिराजा ॥२॥

अन्वयार्थ-जाइं-पूर्व जन्म को, सरित्तु-स्मरण करके, भयवं-भगवान्, णमीराया-नमिराज, अणुत्तरे धम्मे-अनुत्तर धर्म में, सयं संबुद्धो-स्वयं सम्बुद्ध हुए और, रज्जे-राज्य में पुत्तं-पुत्र को ठवेत्तु-स्थापित कर (स्वयं) अभिणिक्खमइ-दीक्षा के लिये निकलता है।

भावानुवाद-भगवान् प्रज्ञानिधि नमि पूर्व जन्म का स्मरण करके स्वय सबुद्ध बनकर राज्यभार पुत्र को देकर अनुत्तर धर्म के प्रति-दीक्षा के प्रति अभिनिष्क्रमित-गतिशील हुए।

3 राग के पक मे वैराग्य कमल

मूल गाथा-
सो देवलोगसरिसे, अतेउरवरगओ वरे भोए।
भुजित्तु णमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयई ॥3॥

सस्कृत छाया-
स देवलोकसदृशान्, अन्त पुरवरगतो वरान्भोगान्।
भुक्त्वा नमिराजा, बुद्धो भोगान् परित्यजति ॥३॥

अन्वयार्थ-सो-वह, अतेउरवर-अन्त पुर मे (रानियो के साथ), गओ-प्राप्त हुए, देवलोग सरिसे-देवलोक के सदृश, वरे-प्रधान, भोए-भोगो को, भुजित्तु-भोगकर, णमीराया-नमिराजा, बुद्धो-प्रवुद्ध होकर, भोगे-भोगो को, परिच्चयई-परित्याग करता है।

भावानुवाद-वह अपने श्रेष्ठ अन्त पुर मे अपनी रानियो के साथ देव सदृश काम भोगो को भोगता हुआ एक दिन प्रतिबुद्ध होता है और उन भोगो का परित्याग कर देता है।

4 अभिनिष्क्रमण कैसे हुआ

मूल गाथा-
मिहिल सपुरजणवय, बलमोरोह च परियण सव्व।
चिच्चा अभिणिक्खतो, एगतमहिट्ठिओ भयव ॥4॥

सस्कृत छाया-
मिथिला सपुरजनपदा, बलमवरोध च परिजन सर्वम्।
त्यक्त्वाऽभिनिष्क्रान्त , एकान्तमधिष्ठितो भगवान् ॥४॥

अन्वयार्थ-भयव-भगवान् नमिराज, सपुर जणवय-नगर और जनपद सहित, मिहिल-मिथिला नगरी, बल-(चतुरगिणि) सेना, ओरोह-अन्त पुर, च-और, सव्व-समस्त, परियण-परिजन को, चिच्चा-छोडकर, अभिणिक्खतो-(घर से निकलकर) अभिनिष्क्रमण, एगत-एकान्त-मोक्ष मार्ग मे, अहिट्ठिओ-अधिष्ठित हुआ।

भावानुवाद-भगवान् (राजर्षि) नमि अपने पुर, जनपद सहित अपनी राजधानी मिथिला, सम्पूण सेना, अन्त पुर एव समस्त परिजनो को छोडकर महाऋद्धिक एकान्त मोक्ष के प्रति अभिनिष्क्रमित हुए-साधना मार्ग के प्रति गतिशील हुए।

5 अभिनिष्क्रिमण किस परिस्थिति मे

मूल गाथा-
कोलाहलगभूय, आसी मिहिलाए पव्वयतम्मि।
तइया रायरिसिम्मि, णमिम्मि अभिणिक्खमतम्मि ॥5॥

11 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमि रायरिसि, देविंदो इणमब्बवी॥11॥

संस्कृत छाया- एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।
ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥११॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-इस पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुनकर, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया गया, देविन्दो-देवेन्द्र, णमि रायरिसि-नमिराजर्षि से, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे।

भावानुवाद-नमिराजर्षि के उपर्युक्त अर्थ-उत्तर को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमिराजर्षि को इस प्रकार निम्न वचन कहे-

12 महल और अन्तःपुर के जलने का प्रश्न

मूल गाथा- एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मंदिरं।
भयवं! अंतेउरं तेणं, कीस णं णावपेक्खह॥12॥

संस्कृत छाया- एषोऽग्निश्च वायुश्च, एतद् दह्यते मन्दिरम्।
भगवन्! अन्तःपुरं तेन, कस्मान्नावप्रेक्षसे॥१२॥

अन्वयार्थ-भयवं-भगवन्, एस-यह, अग्गी-अग्नि है, य-और, वाऊ य-यह वायु है, एयं-यह, मंदिरं-मन्दिर (राजभवन), डज्झइ-जल रहा है, तेण-फिर आप, अंतेउरं-अपने, अन्तःपुर की ओर, कीस णं-किस कारण से, ण-नहीं, अवपेक्खह-देखते?

भावानुवाद-हे राजर्षि भगवन्! इस अग्नि और वायु से आपके राजभवन एवं अन्तःपुर जल रहे हैं, फिर आप इस ओर क्यों नहीं देखते हैं?

13 नमिराजर्षि का उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥13॥

संस्कृत छाया- एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।
ततो नमी राजर्षिः, देवेन्द्रमिदमब्रवीत्॥१३॥

अन्वयार्थ-एयं-इस (पूर्वोक्त) अट्ठ-अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके इसके बाद हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया हुआ, णमीरायरिसी-नमिराजर्षि ने, देविंदं-देवेन्द्र को, इण-इस प्रकार अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-देवेन्द्र के इस प्रश्न को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमिराजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा-

14 मिथिला आदि से निर्लिप्तता

मूल गाथा- सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो णत्थि किंचण।
मिहिलाए डज्झमाणीए, ण मे डज्झइ किंचण ॥१४॥

संस्कृत छाया- सुखं वसामो जीवाम , येषां नो नास्ति किंचन।
मिथिलायां दह्यमानायां, न मे दह्यते किंचन॥१५॥

अन्वयार्थ-जेसिं-जिसमे, मो- मेरा(हमारा), किंचण-कुछ भी, णत्थि-नहीं है, (मैं) सुहं वसामो-सुख से रहता हूँ, जीवामो- सुख से जीता हूँ , अत मिहिलाए-मिथिला के, डज्झमाणीए-जलने से, मे-मेरा, किंचण-कुछ भी, ण डज्झइ-नहीं जलता है।

भावानुवाद-हम तो सुखपूर्वक रहते हैं और जीते हैं, क्योंकि यहाँ हमारा अपना कुछ भी नहीं है। अत मिथिला के जलने पर मेरा कुछ भी नहीं जलता है।

15 पुत्र कलत्रादि का सम्बन्ध विच्छेद

मूल गाथा- चत्तपुत्तकलत्तस्स, णिव्वावारस्स भिक्खुणो।
पियं ण विज्जई किंचि, अप्पियं पि ण विज्जई ॥१५॥

संस्कृत छाया- त्यक्तपुत्रकलत्रस्य, निर्व्यापारस्य भिक्षो ।
प्रियं न विद्यते किंचित्, अप्रियमपि न विद्यते ॥१५॥

अन्वयार्थ-पुत्त कलत्तस्स-पुत्र कलत्र (पत्नी) के, चत्त-त्यागी, णिव्वावारस्स-व्यापार रहित, भिक्खुणो-भिक्षु को, किंचि-किंचित् मात्र भी, (कोई पदार्थ) पियं-प्रिय, ण विज्जई-नहीं है, अप्पियंपि-अप्रिय भी, ण विज्जइ-नहीं है।

भावानुवाद-जिस भिक्षु -साधक ने पुत्र-पत्नी आदि से अपना सम्बन्ध छोड दिया है, जो सभी प्रकार के व्यापार से मुक्त हो गया है , उसके लिये कोई भी पदार्थ न तो प्रिय है और न अप्रिय है।

16 एकान्त निवास एवं संग त्याग का फल

मूल गाथा- बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगंतमणुपस्सओ॥१६॥

संस्कृत छाया- बहु खलु मुनेर्भद्रं, अनगारस्य भिक्षो ।
सर्वतो विप्रमुक्तस्य, एकान्तमनुपश्यत ॥१६॥

अन्वयार्थ-सव्वओ-सर्व प्रकार से, विप्पमुक्कस्स-बन्धनो से रहित (विमुक्त), एगंतमणुपस्सओ-(एकान्त देखने वाले को) एकान्त दर्शी (आत्मदर्शी), अणगारस्स-गृहत्यागी, भिक्खुणो-भिक्षाजीवी, मुणिणो-मुनि को, बहुं-

वहुत, खु-ही-भद्द-भद्र (सुख) है।

भावानुवाद-एकान्त आत्म द्रष्टा मुनि के लिए सर्वत्र सुख कल्याण ही है। क्योंकि वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त गृहत्यागी भिक्षु होता है।

17 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमि रायरिसि, देविंदो इणमब्बवी॥१७॥

संस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित।
ततो नमि राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥१७॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-इस पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुनकर, हेउकारण-हेतु और कारण से चोइओ-प्रेरित किया गया, देविन्दो-देवेन्द्र, णमि रायरिसि-नमि राजर्षि से, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-इस अर्थ-उत्तर को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमिराजर्षि को इस प्रकार कहा-

18 इन्द्र द्वारा नगर सुरक्षा की ओर अंगुली निर्देश

मूल गाथा- पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य।
उस्सूलग सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया॥१८॥

संस्कृत छाया- प्राकारं कारयित्वा, गोपुराट्टालकानि च।
उत्सूलका शतघ्नी, ततो गच्छ क्षत्रिय। ॥१८॥

अन्वयार्थ-खत्तिया-हे क्षत्रिय (तुम), पागार-किला (परकोटा), गोपुरट्टालगाणि-गोपुर (नगर द्वार) अट्टालिकाएं, य-और, उस्सूलग-कोट (दुर्ग) की खाई और, सयग्घीओ-शतघ्नी शतमारक (तोप) आदि शस्त्र, कारइत्ताण-बनवाकर, तओ-इसके बाद, गच्छसि-(दीक्षा के लिए) जाना।

भावानुवाद-हे क्षत्रिय! तुम पहले नगर का द्वार, अट्टालिकाएं, दुर्ग के चारों ओर खाई, शतघ्नी-तोपें आदि बना कर फिर जाना-बाद में दीक्षित होना।

19 नमिराजर्षि का उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी॥१९॥

संस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदितः।
ततो नमी राजर्षि, देवेन्द्रमिदमब्रवीत्॥१९॥

अन्वयार्थ-एय-इस (पूर्वोक्त), अट्ठ-अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके, तओ-इसके बाद हेउकारण-हेतु और कारण से चोइओ-प्रेरित किया हुआ, णमी रायरिसी-नमिराजर्षि ने, देविन्दं-देवेन्द्र को, इणं-इस प्रकार अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-इस अर्थ जिज्ञासा-प्रश्न को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को यह निम्न वचन कहे-

20 आध्यात्मिक नगर की सुरक्षा

मूल गाथा- सद्धं णगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं।
खंतिं णिउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥२०॥

संस्कृत छाया- श्रद्धां नगरं कृत्वा, तपः संवरमर्गलाम्।
क्षान्तिं निपुणप्राकारं, त्रिगुप्तं दुःप्रधर्षिकम् ॥२०।

अन्वयार्थ-सद्द-श्रद्धा को, णगर-नगर, तव सवर-तप और सवर को, अग्गल-अर्गला बनाकर, खति-क्षमा को, णिउण पागार-निपुण प्राकार, तिगुत्त-(बुर्ज, खाई शतघ्नी रूप) तीन गुप्ति से सुरक्षित, एव दुप्पधसय-दुष्प्रध्वस्य (अजेय), पागार-सुदृढ प्राकार, किच्चा-बनाकर।

भावानुवाद-हे विप्र! कर्म शत्रु से अपनी आत्मा को सुरक्षित रखने के लिए श्रद्धारूप नगर पर तपसवर रूप अर्गला, क्षमारूप नगर कोट, मन, वचन और काया की गुप्ति रूप खाई, किला और तोप आदि शस्त्रो से सुरक्षित एव अजेय सुदृढ प्राकार आदि मैंने पहले ही बना लिये हैं।

21 अन्तर्युद्ध पर विजेता मुनि

मूल गाथा- धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण परिमंथए ॥२१॥

संस्कृत छाया- धनुः पराक्रमं कृत्वा, जीवां चेर्यां सदा।
धृतिं च केतनं कृत्वा, सत्येन परिगन्थीयात् ॥२१॥

अन्वयार्थ-परक्कम-पराक्रम रूप, धणु-धनुष, च-और, सय सदा, ईरिय-ईर्या समिति रूप, जीव-जीवा (प्रत्यचा) को, किच्चा-करके, च-तथा, धिइ-धृतिरूप, केयण-केतन (मूठ), किच्चा-करके, सच्चेण-सत्य से, परिमथए-(धनुष को) बाधे।

भावानुवाद-पराक्रम रूप धनुष पर ईर्या समिति रूप प्रत्यचा स्थापित करके, धृति को उसकी मूठ (केतन) बनाकर, सत्य से उसे बाध कर-

22 धनुष के उपयोग के सबध मे वर्णन

मूल गाथा- तव णाराय जुत्तेण, भित्तूण कम्मकचुय।
मुणी विगयसगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥२२॥

संस्कृत छाया- तपोनाराचयुक्तेन, भित्त्वा कर्मकचुकम्।
मुनिर्विगतसंग्रामः, भवात्परिमुच्यते ॥२॥

अन्वयार्थ-तवणाराय-तप रूपी बाण से, जुत्तेण-युक्त (धनुष) से, कम्म कंचुय-कर्म रूपी कवच को भिन्नूणं भेदन करके, विगय संगामो-बाह्य संग्राम से रहित होकर मुणी-मुनि, भवाओ-संसार से, परिमुच्चए-सर्वथा मुक्त हो जाता है।

भावानुवाद-तपरूप बाणों से संयुक्त धनुष से कर्म रूपी कवच का भेदन करके कर्म युद्ध का विजेता मुनि संग्राम रहित इस संसार से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

23 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥२३॥

संस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणचोदित।
ततो नमिं राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥२३॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-इस पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुनकर, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया गया, देविन्दो-देवेन्द्र, णमि रायरिसिं-नमि राजर्षि से, इणं-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-इस उपर्युक्त अर्थ-समाधान को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित इन्द्र ने नमि राजर्षि को पुनः इस प्रकार कहा-

24 विविध गृहादि निर्माण की प्रेरणा

मूल गाथा- पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य।
वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया॥२४॥

संस्कृत छाया- प्रासादान्कारयित्वा, वर्धमानगृहाणि च।
वालाग्रपोतिकाश्च, ततो गच्छ क्षत्रिय।॥२४॥

अन्वयार्थ-खत्तिया-हे क्षत्रिय!, तुम पासाए-प्रासादों को, कारइत्ताण-करवाकर, य-और, वद्धमाण गिहाणि-वर्द्धमान गृह, य-और, वालग्ग पोइयाओ-वलभी (चन्द्रशालाएं) बनवा कर, तओ-इसके बाद, गच्छसि (मुनि बनने के लिए) जाना।

भावानुवाद-हे क्षत्रिय! तुम पहले प्रासाद-महल, वर्धमान गृह एवं चन्द्रशालाएं आदि महल बनवा कर फिर संयम लेना।

25 नमि राजर्षि का उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी॥२५॥

संस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणचोदित।
ततो नमी राजर्षि, देवेन्द्रमिदमब्रवीत्॥२५॥

अन्वयार्थ-एय-इस (पूर्वोक्त), अट्ठ-अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके, तओ-इसके बाद, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया हुआ, णमी रायरिसी-नमि राजर्षि ने, देविन्द-देवेन्द्र को, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा-

26 मोक्ष मे शाश्वत गृह बनाना उचित

मूल गाथा- ससय खलु सो कुणई, जो मग्गे कुणई घर।
जत्थेव गतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासय॥२६॥

सस्कृत छाया- सशय खलु स कुरुते, यो मार्गे कुरुते गृहम्।
यत्रैव गन्तुमिच्छेत्, तत्रैव कुर्वीत शाश्वतम्॥२६॥

अन्वयार्थ-जो-जो, मग्गे-मार्ग मे, घर कुणई-घर बनाता है, सो-वह, खलु ससय-सशय (ही), कुणइ-करता है, जत्थेव-जहा पर, गन्तु-जाने की, इच्छेज्जा-इच्छा करे, तत्थ-वहा (उसी स्थान पर), सासय-अपने आश्रय के लिए, कुव्वेज्ज-घर बनावे।

भावानुवाद-वह व्यक्ति मार्ग मे घर बनाता है जो कि सशयशील होता है, अत जहा जाने की इच्छा हो वहीं स्थायी आश्रय-घर बनाना चाहिए।

27 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमि रायरिसि, देविंदो इणमब्बवी॥२७॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित।
ततो नमि राजर्षि, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥२७॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-इस पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुनकर, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया गया, देविन्दो-देवेन्द्र, णमि रायरिसि-नमि राजर्षि से इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-इस उत्तर को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि के प्रति यो कहा-

28 नगर मे शाति की प्रेरणा

मूल गाथा- आमोसे लोमहारे य, गठिभेए य तक्करे।
णगरस्स खेम काऊण, तओ गच्छसि खत्तिया!॥२८॥

सस्कृत छाया- आमोषान् लोमहरान्, ग्रथिभेदाश्च तस्करान्।
नगरस्य क्षेम कृत्वा, ततो गच्छ क्षत्रिय!॥२८॥

अन्वयार्थ-खत्तिया-हे क्षत्रिय, तुम, आमोसे-चोरी करने वाले, य-और, लोमहारे-प्राणघात करने वाले, गंठिभेए-गांठ कतरने वाले, य-और, तक्करे-तस्करों से (चोरों से), णगरस्स-नगर को, खेम-क्षेम (अमनचैन), काऊणं-(स्थापित) करके, तओ-फिर, गच्छसि-(दीक्षा के लिए) जाना।

भावानुवाद-हे क्षत्रिय! पहले चोरी करने वाला, बदमाशों, प्राणघातक लुटेरों, गांठ काटने वालों और चोरो से नगर को सुरक्षित कर फिर जाना।

29 नमिराजर्षि द्वारा उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंदं इणमब्बवी॥२९॥

संस्कृत छाया- एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणचोदितः।
ततो नमी राजर्षि, देवेन्द्रमिदमब्रवीत्॥२९॥

अन्वयार्थ-एयं-इस (पूर्वोक्त), अट्ठं-अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके, तओ-इसके बाद, हेउकारण हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया हुआ, णमी रायरिसी-नमि राजर्षि ने, देविन्द-देवेन्द्र को, इणं-इस प्रकार अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा-

30 संसार में मिथ्या दण्ड का प्रवर्त्तन

मूल गाथा- असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादंडो पउजइ।
अकारिणोऽथ बज्झंति, मुच्चई कारओ जणो॥30॥

संस्कृत छाया- असकृत्तु मनुष्यै, मिथ्यादण्ड प्रयुज्यते।
अकारिणोऽत्रबध्यन्ते, मुच्यते कारको जन॥३०॥

अन्वयार्थ-अत्थ-यहां (लोक में), असइं-अनेक बार, मणुस्सेहिं-मनुष्यों के द्वारा, मिच्छा दंडो-मिथ्या दण्ड का पउजइ-प्रयोग किया जाता है (जैसे कि), तु-निश्चय से, अकारिणो-अपराध न करने वाले, बज्झंति-बांधे जाते हैं (किन्तु), कारओ-सही अपराधी, जणो-जन, मुच्चई-छूट जाते हैं।

भावानुवाद-इस संसार में अनेक बार मनुष्यों द्वारा मिथ्या दण्ड का प्रयोग होता है। निर्दोष निरपराधी तो पकड़े जाते हैं और वास्तविक अपराधी छूट जाते हैं।

31 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमिं रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥31॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमि राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥३१॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुनकर, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया गया, देविन्दो-देवेन्द्र, णमि-रायरिसि-नमि राजर्षि से, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा-

32 स्वतत्र राजाओ को जीतने की प्रेरणा

मूल गाथा- जे केइ पत्थिवा तुज्झ, णा णमति णराहिवा।
वसे ते ठावइत्ताण, तओ गच्छसि खत्तिया!॥३२॥

सस्कृत छाया- ये केचन पार्थिवास्तुभ्य, न नमन्ति नराधिप!।
वशे तान्स्थापयित्वा, ततो गच्छ क्षत्रिय!॥३२॥

अन्वयार्थ-खत्तिया-हे क्षत्रिय, णराहिवा-हे नराधिप!, जे केई-जो कोई, पत्थिवा-राजा (पार्थिव), तुज्झ-तुम्हारे को, णा णमति-नमस्कार नहीं करते, ते-उन्हे, वसे-वश मे, ठावइत्ताण-स्थापन करके, तओ-इसके बाद, गच्छसि-(दीक्षा के लिए) जाना।

भावानुवाद-"हे क्षत्रिय राजन्! जो कोई राजा अभी तुम्हें नमस्कार नहीं करते हैं, तुम्हारी अधीनता स्वीकार नहीं करते हैं, पहले उन्हे अपने वश मे करके उन पर विजय प्राप्त करके फिर जाओ, प्रव्रज्या ग्रहण करो।"

33 नमिराजर्षि द्वारा उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी॥३३॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमी राजर्षि, देवेन्द्रमिदमब्रवीत्॥३३॥

अन्वयार्थ-एय-इस (पूर्वोक्त), अट्ठ-अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके, तओ-इसके बाद, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया हुआ, णमी रायरिसी-नमि राजर्षि ने, देविन्द-देवेन्द्र को, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-देवेन्द्र के इस कथन को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को यह कहा-

34 आत्म विजय ही सच्ची विजय है

मूल गाथा- जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जिणे।
एग जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ॥३४॥

संस्कृत छाया- यः सहस्रं सहस्राणां, संग्रामे दुर्जये जयेत्।
एकं जयेदात्मानं, एष तस्य परमो जयः ॥३४॥

अन्वयार्थ-जो-जो, दुज्जए-दुर्जय, संगामे-संग्राम में, सहस्साण सहस्स-(हजार को हजार से गुणा) दस लाख सुभटों को, जिणे-जीतता है (इसकी अपेक्षा), एग-एक, अप्पाण-आत्मा को, जिणज्ज-जीत लेवे, एस-यह, से-उसकी, परमो जओ-परम विजय है।

भावानुवाद-'जो दुर्जय संग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा एक अपनी आत्मा को ही जीतना श्रेष्ठ है, क्योंकि आत्म विजय ही परम विजय है।'

35 आत्मा से ही आत्मा को जीतना

मूल गाथा- अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाण मेव अप्पाण, जइत्ता सुहमेहए॥३५॥

संस्कृत छाया- आत्मनैव सह युध्यस्व, किं ते युद्धेन बाह्यतः।
आत्मनैवात्मानं, जित्वा सुखमेधते ॥३५॥

अन्वयार्थ-अप्पाण-आत्मा के साथ, एव-ही, जुज्झाहि-युद्ध करो, ते-तुम्हें, बज्झओ-बाहर के, जुज्झेण-युद्ध से, किं-क्या (लाभ)? अप्पाण-आत्मा से, एव-ही, अप्पाण-आत्मा को, जइत्ता-जीतकर, सुहं-(वास्तविक) सुख को, एहए-(यह जीव) पाता है।

भावानुवाद-कहा है-हे साधक! अपनी आत्मा से ही युद्ध करो। बाहर के युद्ध से क्या होना है? स्वयं आत्मा से आत्मा को ही जीतकर सच्चा सुख प्राप्त होता है।

36 मन का निग्रह करना अत्यन्त कठिन

मूल गाथा- पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्व अप्पे जिए जियं॥३६॥

संस्कृत छाया- पञ्चेन्द्रियाणि क्रोधं, मानं मायां तथैव लोभं च।
दुर्जयं चैवमात्मानं, सर्वमात्मनि जिते जितम् ॥३६॥

अन्वयार्थ-पंचिंदियाणि-पाचों इन्द्रियाँ, चेव-वैसे ही, कोहं-क्रोध, माणं-मान, मायं-माया, तहेव-तथा लोहं-लोभ च-और अप्पाणं-मन(ये), दुज्जयं-दुर्जय हैं अप्पे जिए- (एक) आत्मा को जीत लेने पर, सव्वं-सब, जियं-जीत लिए जाते हैं।

भावानुवाद-पाँचों इन्द्रियों, क्रोध मान, माया और लोभ तथा दुर्जय आत्मा मन का निग्रह करना कठिन है। क्योंकि एक दुर्जय मन को जीत लेने पर सभी जीत लिये जाते हैं।

37 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमि रायरिसि, देविंदो इणमब्बवी॥३७॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमि राजर्षि, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥३७॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, **एयमट्ठ**-इस पूर्वोक्त अर्थ को, **णिसामित्ता**-सुनकर, **हेउकारण**-हेतु ओर कारण से, **चोइओ**-प्रेरित किया गया, **देविन्दो**-देवेन्द्र, **णमि रायरिसि**-नमि राजर्षि से, **इण**-इस प्रकार, **अब्बवी**-कहने लगे-

भावानुवाद-राजर्षि नमि के इस समाधान को सुनकर हेतु आर कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा-

38 ब्राह्मण सस्कृति विहित यज्ञादि की प्रेरणा

मूल गाथा- जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे।
दत्ता भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया॥३८॥

सस्कृत छाया- याजयित्वा विपुलान् यज्ञान्, भोजयित्वा श्रमणान् ब्राह्मणान्।
दत्त्वा भुक्त्वा च इष्ट्वा च, ततो गच्छ क्षत्रिय!॥३८॥

अन्वयार्थ-खत्तिया-हे क्षत्रिय! तुम, **विउले जण्णे**-विपुल यज्ञ को, **जइत्ता**-करवा करके, **समण**-श्रमणो, **य**-और, **माहणे**-ब्राह्मणो को, **भोइत्ता**-भोजन कराकर, **दत्ता**-दान (दक्षिणा) देकर, **भोच्चा**-(विषयादि के) भोग भोगकर, **य**-और, **जिट्ठा**-स्वय यज्ञ करके, **तओ**-इसके बाद, **गच्छसि**-(दीक्षा के लिए) जाना।

भावानुवाद-"हे क्षत्रिय! तुम विपुल विस्तृत यज्ञ करवा करके, श्रमण ब्राह्मणो को भोजन करवा कर, उन्हे दक्षिणा देकर, स्वय विषय भोगो का सेवन करके, स्वय यज्ञ करके फिर जाना, श्रमण बनना।"

39 नमिराजर्षि द्वारा उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी॥३९॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमी राजर्षि , देवेन्द्रमिदमब्रवीत्॥३९॥

अन्वयार्थ-एय-इस (पूर्वोक्त), **अट्ठ**-अर्थ को, **णिसामित्ता**-सुन करके, **तओ**-इसके बाद, **हेउकारण**-हेतु और कारण से, **चोइओ**-प्रेरित किया हुआ, **णमी रायरिसी**-नमि राजर्षि ने, **देविन्द**-देवेन्द्र को, **इण**-इस प्रकार, **अब्बवी**-कहा-

भावानुवाद-इन्द्र के इस यज्ञ याज्ञ सम्बन्धी प्रश्न को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार बोले-

सस्कृत छाया- य सहस्त्र सहस्त्राणा, सग्रागे दुर्जये जयेत्।
एक जयेदात्मान, एष तस्य परमो जय ॥३४॥

अन्वयार्थ-जो-जो, दुज्जए-दुर्जय, सगामे-सग्राम में, सहस्साण सहस्स-(हजार को हजार से गुणा) दस लाख सुभटो को, जिणे-जीतता है (इसकी उपेक्षा), एग-एक, अप्पाण-आत्मा को, जिणेज्ज-जीत लेवे, एस-यही, से-उसकी, परमो जओ-परम विजय है।

भावानुवाद-'जो दुर्जय सग्राम मे दस लाख योद्धाओ को जीतता है, उसकी उपेक्षा एक अपनी आत्मा को ही जीतना श्रेष्ठ है, क्योकि आत्म विजय ही परम विजय है।'

35 आत्मा से ही आत्मा को जीतना

मूल गाथा- अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाण मेव अप्पाण, जइत्ता सुहमेहए॥३५॥

सस्कृत छाया- आत्मनैव सह युध्यस्व, कि ते युद्धेन बाह्यत ।
आत्मनैवात्मान, जित्वा सुखमेधते॥३५॥

अन्वयार्थ-अप्पाण-आत्मा के साथ, एव-ही, जुज्झाहि-युद्ध करो, ते-तुम्हे, बज्झओ-बाहर के, जुज्झेण-युद्ध से, कि-क्या (लाभ)? अप्पाण-आत्मा से, एव-ही, अप्पाण-आत्मा को, जइत्ता-जीतकर, सुह-(वास्तविक) सुख को, एहए-(यह जीव) पाता है।

भावानुवाद-कहा है-हे साधक! अपनी आत्मा से ही युद्ध करो। बाहर के युद्ध से क्या होना है? स्वय आत्मा से आत्मा को ही जीतकर सच्चा सुख प्राप्त होता है।

36 मन का निग्रह करना अत्यन्त कठिन

मूल गाथा- पचिंदियाणि कोह, माण माय तहेव लोह च।
दुज्जय चेव अप्पाण, सव्व अप्पे जिए जिय॥३६॥

सस्कृत छाया- पचेन्द्रियाणि क्रोध, मान माया तथैव लोभ च।
दुर्जय चैवमात्मान, सर्वमात्मनि जिते जितम्॥३६॥

अन्वयार्थ-पचिंदियाणि-पाचों इन्द्रियाँ, चेव-वैसे ही, कोह-क्रोध, माण-मान, माय-माया, तहेव-तथा, लोह-लोभ, च-और, अप्पाण-मन(ये), दुज्जय-दुर्जय हैं, अप्पे जिए- (एक) आत्मा को जीत लेने पर, सव्व-सब, जिय-जीत लिए जाते हैं।

भावानुवाद-पाँचो इन्द्रियो, क्रोध, मान, माया और लोभ तथा दुर्जय आत्मा-मन पर विजय प्राप्त करना चाहिए। क्योकि एक दुर्जय मन को जीत लेने पर सभी जीत लिये जाते हैं।

37 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- **एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।**
तओ णमि रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी॥37॥

संस्कृत छाया- **एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणनोदित ।**
ततो नमि राजर्षिं, देवेन्द्र इदमब्रवीत्॥३७॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, **एयमट्ठ**-इस पूर्वोक्त अर्थ को, **णिसामित्ता**-सुनकर, **हेउकारण**-हेतु और कारण से, **चोइओ**-प्रेरित किया गया, **देविन्दो**-देवेन्द्र, **णमि रायरिसि**-नमि राजर्षि से, **इण**-इस प्रकार, **अब्बवी**-कहने लगे-

भावानुवाद-राजर्षि नमि के इस समाधान को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा-

38 ब्राह्मण सस्कृति विहित यज्ञादि की प्रेरणा

मूल गाथा- **जइत्ता विउले जण्णे, भोइत्ता समणमाहणे।**
दत्ता भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया॥38॥

संस्कृत छाया- **याजयित्वा विपुलान् यज्ञान्, भोजयित्वा श्रमणान् ब्राह्मणान्।**
दत्त्वा भुक्त्वा च इष्ट्वा च, ततो गच्छ क्षत्रिय!॥३८॥

अन्वयार्थ-खत्तिया-हे क्षत्रिय! तुम, **विउले जण्णे**-विपुल यज्ञ को, **जइत्ता**-करवा करके, **समण**-श्रमणो, **य**-और, **माहणे**-ब्राह्मणो को, **भोइत्ता**-भोजन कराकर, **दत्ता**-दान (दक्षिणा) देकर, **भोच्चा**-(विषयादि के) भोग भोगकर, **य**-और, **जिट्ठा**-स्वय यज्ञ करके, **तओ**-इसके बाद, **गच्छसि**-(दीक्षा के लिए) जाना।

भावानुवाद-"हे क्षत्रिय! तुम विपुल विस्तृत यज्ञ करवा करके, श्रमण ब्राह्मणो को भोजन करवा कर, उन्हे दक्षिणा देकर, स्वय विषय भोगो का सेवन करके, स्वय यज्ञ करके फिर जाना, श्रमण बनना।"

39 नमिराजर्षि द्वारा उत्तर

मूल गाथा- **एयमट्ठं णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।**
तओ णमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी॥39॥

संस्कृत छाया- **एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणनोदित ।**
ततो नमी राजर्षि , देवेन्द्रमिदमब्रवीत्॥३९॥

अन्वयार्थ-एय-इस (पूर्वोक्त), **अट्ठ**-अर्थ को, **णिसामित्ता**-सुन करके **तओ**-इसके बाद, **हेउकारण**-हेतु और कारण से, **चोइओ**-प्रेरित किया हुआ, **णमी रायरिसी**-नमि राजर्षि ने, **देविन्द**-देवेन्द्र को, **इण**-इस प्रकार **अब्बवी**-कहा-

भावानुवाद-इन्द्र के इस यज्ञ याज्ञ सम्बन्धी प्रश्न को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि देवेन्द्र को इस प्रकार बोले-

40 दान की अपेक्षा सयम की श्रेयस्करता का प्रतिपादन

मूल गाथा- जो सहस्स सहस्साण, मासे मासे गव दए।
तस्सावि सजमो सेओ, अदितस्सऽवि किंचण ॥४०॥

सस्कृत छाया- य सहस्र सहस्राणा, मासे मासे गवा दद्यात्।
तस्मादपि सयम श्रेय , अददतोऽपि किंचन ॥४०॥

अन्वयार्थ-जो-जो, मासेमासे-प्रतिमास, सहस्साण सहस्स-(हजार को हजार से गुणा) दस लाख, गवं-गायो का, दए-दान देवे, तस्सावि-उससे भी, सजम-सयम, सेओ-श्रेयस्कर है, चाहे, किचणवि-किंचित् मात्र भी, अदितस्स-दान न करे।

भावानुवाद-"जो व्यक्ति प्रतिमास दस लाख गायो का दान करता है, उससे भी अथवा उसकी अपेक्षा भी सयम ही श्रेष्ठ है-कल्याणकारी है, चाहे वह किसी को भी कुछ भी दान नहीं करता हो।"

41 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमि रायरिसिं, देविंदो इणमब्बवी ॥४१॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमि राजर्षि, देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥४१॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-इस पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुनकर, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया गया, देविंदो-देवेन्द्र, णमि रायरिसि-नमि राजर्षि से, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि को इस प्रकार कहा-

42 सन्यासाश्रम के प्रति दृढता की परीक्षा के लिए गृहस्थाश्रम की प्रेरणा

मूल गाथा- घोरासम चइत्ताण, अण्ण पत्थेसि आसमं।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा ॥४२॥

सस्कृत छाया- घोराश्रम त्यक्त्वा, अन्य प्रार्थयसे आश्रमम्।
इहैव पौषधरत , भव मनुजाधिप ।॥४२॥

अन्वयार्थ-मणुयाहिवा-हे मनुजाधिप (तुम), घोरासम-घोराश्रम-गृहस्थाश्रम को, चइत्ताणं-छोडकर, अण्ण आसम-अन्य आश्रम की, पत्थेसि-इच्छा करते हो (यह अनुचित है), इहेव-(तुम) यहीं पर ही, पोसहरओ-पौषध मे रत, भवाहि-हो जाओ।

भावानुवाद-हे मनुजाधिप-नरनाथ! आप घोराश्रम-गृहस्थाश्रम का परित्याग करके जो दूसरे आश्रम की कामना करते हैं, यह उचित नहीं है, आप यहा गृहस्थाश्रम मे रहकर ही पौषध व्रत में रत रहें।

43 नमिराजर्षि द्वारा उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी ॥४३॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमी राजर्षि , देवेन्द्रमिदमब्रवीत् ॥४३॥

अन्वयार्थ-एय-इस (पूर्वोक्त), अट्ठ-अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके, तओ-इसके बाद, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किया हुआ, णमी-रायरिसी-नमि राजर्षि ने, देविन्द-देवेन्द्र को, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-इन्द्र के इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमिराजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा-

44 स्वाख्यात मुनि धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन

मूल गाथा- मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेण तु भुजए।
ण सो सुयक्खायधम्मस्स, कल अग्घइ सोलसि ॥४४॥

सस्कृत छाया- मासे मासे तु यो बाल , कुशाग्रेण तु भुङ्क्ते।
न स स्वाख्यातधर्मस्य, कलामर्धति षोडशीम् ॥४४॥

अन्वयार्थ-जो-जो, बालो-बाल (अज्ञानी) साधक, मासे-मासे-महीने-महीने के तप मे, कुसग्गेण-कुशाग्र मात्र, तु-ही, भुजए-आहार करता है, सो-वह, सुयक्खाय-सुविख्यात, धम्मस्स-(मुनि) धर्म की, सोलसि-सोलहवीं, कल-कला को भी, ण अग्घइ-प्राप्त नहीं होता।

भावानुवाद-जो बाल-अज्ञानी जीव महीने-महीने के तप करता है-मासखमण के पारणे में कुशाग्रमात्र आहार लेकर पुन मासखमण कर लेता है, वह सुआख्यात केवली प्ररूपित धर्म-सम्यक् चारित्र रूप मुनि धर्म की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकता है, अर्थात् सर्व विरति धर्म के समक्ष अज्ञानी जीव की ऐसी कठोर तपस्या भी कुछ मूल्य नहीं रखती।

45 देवेन्द्र द्वारा प्रस्तुति

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमि रायरिसि, देविंदो इणमब्बवी ॥४५॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमि राजर्षि, देवेन्द्र इदमब्रवीत् ॥४५॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-इस पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुनकर, हेउकारण-हेतु और कारण से चोइओ-प्रेरित किया गया, देविन्दो-देवेन्द्र, णमि रायरिसि-नमि राजर्षि से, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लग-

भावानुवाद-इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र नमि राजर्षि को यो बोले-

46 परिग्रह वृद्धि की प्रेरणा अपरिग्रहत्व की कसौटी

मूल गाथा- हिरण्ण सुवण्ण मणिमुत्त, कस दूस च वाहण।
कोस वड्ढइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥४६॥

सस्कृत छाया- हिरण्य सुवर्ण मणिमुक्त, कास्य दूष्य च वाहनम्।
कोश वर्धयित्वा, ततो गच्छ क्षत्रिय।॥४६॥

अन्वयार्थ-खत्तिया-हे क्षत्रिय! तुम, हिरण्ण-चादी, सुवण्ण-सोना, मणिमुत्त-मणि मोती, कस-कासी के भाजन (बर्तन), दूस-वस्त्र, च-और, वाहण-वाहन तथा कोस-कोश को, वड्ढइत्ताण-बढा करके, तओ-इसके बाद, गच्छसि-(दीक्षा के लिए) जाना।

भावानुवाद-हे क्षत्रिय! आप पहले चादी, सुवर्ण, मणि, मुक्ता तथा कास्यपात्र, वस्त्र, वाहन से कोश-भण्डार की वृद्धि करके फिर जाओ, मुनि बनो।

47 नमिराजर्षि द्वारा उत्तर

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमी रायरिसी, देविंद इणमब्बवी ॥४७॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित।
ततो नमी राजर्षि, देवेन्द्रमिदमब्रवीत ॥४७॥

अन्वयार्थ-एय-इस (पूर्वोक्त), अट्ठ-अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके, तओ-इसके बाद, हेउकारण-हेतु और कारण से, चोइओ-प्रेरित किये हुए, णमी-रायरिसी-नमि राजर्षि ने, देविन्द-देवेन्द्र को, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहा।

भावानुवाद-इन्द्र की इस जिज्ञासा को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमिराजपि न देवेन्द्र को यों कहा-

48 इच्छा की अनन्तता के कारण

मूल गाथा- सुवण्णरुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असखया।
णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥४८॥

सस्कृत छाया- सुवर्णस्य रूप्यस्य च पर्वता भवेयु ,
स्यात्खलु कैलाससमा असख्यका ।
नरस्य लुब्धस्य न तै किचित्,
इच्छा हु आकाशसमा अनन्तिका ॥४८॥

अन्वयार्थ-केलाससमा-कैलाश के समान, असखया-असख्यात, सुवण्ण-सोने और, रूव्वस्स-चादी के, पव्वया-पर्वत, सिया-कदाचित्, भवे-होवे, उ-फिर भी, तेहिं-उनसे, लुद्धस्स-लोभी, णरस्स-मनुष्य को, किंचि-किंचित्मात्र भी तृप्ति, ण-नहीं होती, हु-निश्चय, इच्छा-तृष्णा, आगाससमा-आकाश के समान, अणतिया-अनन्त है।

भावानुवाद-सोने-चादी के कैलाश-सुमेरु पर्वत जेसे कदाचित् असख्य पर्वत भी हो जाए तब भी लोभी मनुष्य के लिये वे अपर्याप्त है, उनसे उसकी तृप्ति नहीं होती है, क्योकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है।

49 समस्त इच्छा पूर्ति असम्भव

मूल गाथा- पुढवी साली जवा चेव, हिरण्ण पसुभिस्सह।
पडिपुण्ण णाल मेगस्स, इइ विज्जा तव चरे॥४९॥

सस्कृत छाया- पृथिवी शालिर्यवाश्चैव, हिरण्य पशुभि सह।
प्रतिपूर्ण नालमेकस्मै, इति विदित्वा तपश्चरेत्॥४९॥

अन्वयार्थ-पुढवी-समग्र पृथ्वी, साली-(समग्र), शाली-चावल, जवा-जौ, चेव-अन्य धान्य, हिरण्ण-स्वण, पसुभिस्सह-(समग्र) पशुओ सहित (सारी पृथ्वी), एगस्स-एक जीव की, पडिपुण्ण-इच्छा परिपूर्ण करने मे, अल-समर्थ, ण-नहीं है, इइ-इस प्रकार, विज्जा-जानकर, तव-तप का, चरे-आचरण करे।

भावानुवाद-साधक यह समझ कर तपाचरण करे कि चावल, यव, हिरण्य और पशु आदि से परिपूर्ण यह सम्पूर्ण पृथ्वी भी एक जीव की इच्छा पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है।

50 देवेन्द्र द्वारा प्रेरणा

मूल गाथा- एयमट्ठ णिसामित्ता, हेउकारणचोइओ।
तओ णमि रायरिसी, देविंदो इणमब्बवी॥५०॥

सस्कृत छाया- एतमर्थं निशाम्य, हेतुकारणनोदित ।
ततो नमि राजर्षि , देवेन्द्र इदमब्रवीत॥५०॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, एयमट्ठ-इस पूर्वोक्त अर्थ को, णिसामित्ता-सुन करके, हेउकारण-हेतु और कारण से चोइओ-प्रेरित किये हुए, णमि- रायरिसीं-नमि राजर्षि को, देविंदो-देवेन्द्र ने, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि को यो पूछा-कहा-

अन्वयार्थ-अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, कोहो-क्रोध को, णिज्जिओ-जीत लिया, अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, माणो-मान को, पराजिओ-पराजित किया, अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, माया-माया को, णिरक्किया-निराकृत (दूर) किया, अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, लोहो-लोभ को, वसीकओ-वश मे किया।

भावानुवाद-हे ऋषिराज! आश्चर्य है, आपने क्रोध को जीत लिया। अहो! आपने मान को पराजित कर दिया। अहो! आपने माया-छल-कपट को निराकृत-दूर कर दिया। अहो! आपने लोभ को वश मे कर लिया।

57 आत्मा के अत्यन्त हितकारी मित्र

मूल गाथा- अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा॥५७॥

संस्कृत छाया- अहो ते आर्जवं साधु, अहो ते साधु मार्दवम्।
अहो तवोत्तमा क्षान्ति, अहो ते मुक्तिरुत्तमा॥५७॥

अन्वयार्थ-अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, अज्जव-ऋजुता (सरलता), साहु-श्रेष्ठ है, अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, मद्दव-मृदुता, साहु-श्रेष्ठ है, अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, खंती-क्षान्ति (क्षमा), उत्तमा-श्रेष्ठ है, अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, मुत्ति-मुक्ति (निर्लोभता), उत्तमा-श्रेष्ठ है (उत्तम है)।

भावानुवाद-अहो! ऋषिवर! आपकी सरलता श्रेष्ठ है, अहो! आपकी मृदुता सुन्दर है। अहो! आपकी क्षमा सर्वोत्तम है, अहो! आपकी निर्लोभता भी महोत्तम है।

58 नमि राजर्षि की कषाय विजय की देवेन्द्र द्वारा प्रशंसा

मूल गाथा- इह सि उत्तमो भंते, पच्छा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि णीरओ॥५८॥

संस्कृत छाया- इहास्युत्तमो भगवन्, पश्चाद् भविष्यस्युत्तमः।
लोकोत्तमोत्तमं स्थानं, सिद्धिं गच्छसि नीरजाः॥५८॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, इह-इस लोक मे, सि-भी, (यहा), उत्तमो-(आप) उत्तम हैं और, पच्छा-परलोक मे भी, उत्तमो-उत्तम, होहिसि-होगे तथा, णीरओ-कर्म रज से रहित होकर, लोगुत्तमुत्तम-लोकोत्तर उत्तम, ठाणं-स्थान को, सिद्धिं-सिद्धि को, गच्छसि-जाओगे (प्राप्त होगे)।

भावानुवाद-हे भगवन्! आप इस लोक मे भी उत्तम हैं और परलोक मे भी उत्तम होगे। आप कर्मरज से रहित होकर लोक मे सर्वोत्तम स्थान-सिद्धि को प्राप्त करेगे।

59 श्रद्धाभक्ति से राजर्षि की स्तुति

मूल गाथा- एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए।
पयाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदई सक्को॥५९॥

सस्कृत छाया- एवमभिष्टुवन्, राजर्षिमुत्तमया श्रद्धया।
प्रदक्षिणा कुर्वन्, पुन पुनर्वन्दते शक्र ॥५९॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, अभित्थुणतो-स्तुति करता हुआ, सक्को-इन्द्र (शक्र), उत्तमाए सद्धाए-उत्तम श्रद्धा से, रायरिसि-राजर्षि को, पयाहिण-प्रदक्षिणा, करेंतो-करते हुए, पुणो-पुणो-बार-बार, वन्दइ-वदना करता है।

भावानुवाद-इस प्रकार राजर्षि को उत्तम श्रद्धा से स्तुति करता हुआ प्रदक्षिणा करता हुआ इन्द्र बार-बार वन्दना करता है।

60 वदन करने के पश्चात् इन्द्र का प्रस्थान

मूल गाथा- तो वदिऊण पाए, चक्ककुसलक्खणे मुणिवरस्स।
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुडलतिरीडी ॥६०॥

सस्कृत छाया- ततो वन्दित्वा पादौ, चक्राकुशलक्षणौ मुनिवरस्य।
आकाशेनोत्पतित , ललितचपलकुण्डलकिरीटी ॥६०॥

अन्वयार्थ-तो-इसके बाद, मुणिवरस्स-मुनिवर के, चक्ककुसलक्खणे-चक्र और अकुश के चिह्न युक्त, पाए-चरणो को, वन्दिऊण-वन्दना करके, ललिय-ललित (सुन्दर), चवल-चपल, कुडल-कुडल, तिरीडी-मुकुट का धारक (इन्द्र), आगासेण-आकाश मार्ग से, उप्पइओ-चला गया (उड गया)।

भावानुवाद-तदनन्तर मुनि प्रवर नमि राजर्षि के चक्र और अकुश के लक्षणो से युक्त दोनो चरणो को वन्दन करके अति सुन्दर और चपल कुण्डल और मुकुट को धारण किये हुए इन्द्र आकाश मार्ग से ऊपर अपने देवलोक को चला गया।

61 स्तुति प्रशसा से नम्र राजर्षि श्रमण धर्म मे स्थिर

मूल गाथा- णमी णमेइ अप्पाण, सक्ख सक्केण चोइओ।
चइऊण गेह च वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥६१॥

सस्कृत छाया- नमिर्नमयत्यात्मान, साक्षाच्छक्रेण चोदित ।
त्यक्त्वा गृह च वैदेही, श्रामण्ये पर्युपस्थित ॥६१॥

अन्वयार्थ-णमी-नमि राजर्षि, अप्पाण-आत्मा को, णमेइ-नमाता है, सक्ख-साक्षात्, सक्केण-इन्द्र के द्वारा, चोइओ-प्रेरित हुआ, गेह-घर, च-और, वइदेही-विदेही (विदेही देश की राजलक्ष्मी) का, चइऊण-त्याग कर सामण्णे-श्रमण भाव (साधुता) मे, पज्जुवट्ठिओ-प्रतिष्ठित (सुस्थिर) हो गया।

भावानुवाद-इधर साक्षात् इन्द्र से प्रेरित एव नमस्कृत होते हुए भी नमि राजर्षि अपनी आत्मा को नमाते हुए अर्थात् विनम्र करते हुए घर और विदेह देश की राज्य सम्पदा को छोडकर श्रमण पर्याय में-सयम भाव में प्रतिष्ठित हुए।

अन्वयार्थ-अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, कोहो-क्रोध को, णिज्जिओ-जीत लिया, अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, माणो-मान को, पराजिओ-पराजित किया, अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, माया-माया को, णिरक्किया-निराकृत (दूर) किया, अहो-आश्चर्य है, ते-तुमने, लोहो-लोभ को, वसीकओ-वश में किया।

भावानुवाद-हे ऋषिराज! आश्चर्य है, आपने क्रोध को जीत लिया। अहो! आपने मान को पराजित कर दिया। अहो! आपने माया-छल-कपट को निराकृत-दूर कर दिया। अहो! आपने लोभ को वश मे कर लिया।

57 आत्मा के अत्यन्त हितकारी मित्र

मूल गाथा- अहो ते अज्जवं साहु, अहो ते साहु मद्दवं।
अहो ते उत्तमा खंती, अहो ते मुत्ति उत्तमा॥५७॥

संस्कृत छाया- अहो ते आर्जवं साधु, अहो ते साधु मार्दवम्।
अहो तवोत्तमा क्षान्ति, अहो ते मुक्तिरुत्तमा॥५७॥

अन्वयार्थ-अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, अज्जव-ऋजुता (सरलता), साहु-श्रेष्ठ है, अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, मद्दव-मृदुता, साहु-श्रेष्ठ है, अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, खंती-क्षान्ति (क्षमा), उत्तमा-श्रेष्ठ है, अहो-आश्चर्य है, ते-तुम्हारी, मुत्ति-मुक्ति (निर्लोभता), उत्तमा-श्रेष्ठ है (उत्तम है)।

भावानुवाद-अहो! ऋषिवर! आपकी सरलता श्रेष्ठ है, अहो! आपकी मृदुता सुन्दर है। अहो! आपकी क्षमा सर्वोत्तम है, अहो! आपकी निर्लोभता भी महोत्तम है।

58 नमि राजर्षि की कषाय विजय की देवेन्द्र द्वारा प्रशंसा

मूल गाथा- इह सि उत्तमो भंते, पच्छा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि णीरओ॥५८॥

संस्कृत छाया- इहास्युत्तमो भगवन्, पश्चाद् भविष्यस्युत्तम।
लोकोत्तमोत्तम स्थानं, सिद्धिं गच्छसि नीरजा॥५८॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, इह-इस लोक मे, सि-भी, (यहां), उत्तमो-(आप) उत्तम हैं और, पच्छा-परलोक में भी, उत्तमो-उत्तम, होहिसि-होगे तथा, णीरओ-कर्म रज से रहित होकर, लोगुत्तमुत्तम-लोकोत्तर उत्तम, ठाणं-स्थान को, सिद्धि-सिद्धि को, गच्छसि-जाओगे (प्राप्त होगे)।

भावानुवाद-हे भगवन्! आप इस लोक मे भी उत्तम हैं और परलोक मे भी उत्तम होगे। आप कर्मरज से रहित होकर लोक मे सर्वोत्तम स्थान-सिद्धि को प्राप्त करेंगे।

59 श्रद्धाभक्ति से राजर्षि की स्तुति

मूल गाथा- एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए।
पयाहिणं करेंतो, पुणो पुणो वंदई सक्को॥५९॥

संस्कृत छाया- एवमभिष्टुवन्, राजर्षिमुत्तमया श्रद्धया।
प्रदक्षिणा कुर्वन्, पुन पुनर्वन्दते शक्र ॥५९॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, अभित्थुणतो-स्तुति करता हुआ, सक्को-इन्द्र (शक्र), उत्तमाए सद्धाए-उत्तम श्रद्धा से, रायरिसि-राजर्षि को, पयाहिण-प्रदक्षिणा, करतो-करते हुए, पुणो-पुणो-बार-बार, वन्दइ-वदना करता है।

भावानुवाद-इस प्रकार राजर्षि को उत्तम श्रद्धा से स्तुति करता हुआ प्रदक्षिणा करता हुआ इन्द्र बार-बार वन्दना करता है।

60 वदन करने के पश्चात् इन्द्र का प्रस्थान

मूल गाथा- तो वंदिऊण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स।
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुंडलतिरीडी ॥६०॥

संस्कृत छाया- ततो वन्दित्वा पादौ, चक्राकुशलक्षणौ मुनिवरस्य।
आकाशेनोत्पतित , ललितचपलकुण्डलकिरीटी ॥६०॥

अन्वयार्थ-तो-इसके बाद, मुणिवरस्स-मुनिवर के, चक्ककुसलक्खणे-चक्र और अकुश के चिह्न युक्त, पाए-चरणो को, वन्दिऊण-वन्दना करके, ललिय-ललित (सुन्दर), चवल-चपल, कुडल-कुडल, तिरीडी-मुकुट का धारक (इन्द्र), आगासेण-आकाश मार्ग से, उप्पइओ-चला गया (उड गया)।

भावानुवाद-तदनन्तर मुनि प्रवर नमि राजर्षि के चक्र और अकुश के लक्षणो से युक्त दोनो चरणो को वन्दन करके अति सुन्दर और चपल कुण्डल और मुकुट को धारण किये हुए इन्द्र आकाश मार्ग से ऊपर अपने देवलोक को चला गया।

61 स्तुति प्रशसा से नम्र राजर्षि श्रमण धर्म म स्थिर

मूल गाथा- णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेह च वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥६१॥

संस्कृत छाया- नमिर्नमयत्यात्मान, साक्षाच्छक्रेण चोदित ।
त्यक्त्वा गृह च वैदेही, श्रामण्ये पर्युपस्थित ॥६१॥

अन्वयार्थ-णमी-नमि राजर्षि, अप्पाण-आत्मा को, णमेइ-नमाता है, सक्ख-साक्षात्, सक्कण-इन्द्र के द्वारा, चोइओ-प्रेरित हुआ, गेह-घर, च-और, वइदेही-विदेही (विदेही देश की राजलक्ष्मी) का, चइऊण-त्याग कर, सामण्णे-श्रमण भाव (साधुता) मे, पज्जुवट्ठिओ-प्रतिष्ठित (सुस्थिर) हो गया।

भावानुवाद-इधर साक्षात् इन्द्र से प्रेरित एव नमस्कृत होते हुए भी नमि राजर्षि अपनी आत्मा को नमाते विनम्र करते हुए घर और विदेह देश की राज्य सम्पदा को छोडकर श्रमण पर्याय मे-सयम

कर दिया। अत यह सम्बोधन सूत्रानुबद्धता मे समायोजित शैली की देन मानी जानी चाहिए।

प्रथम तो महावीर की अधिकाश वाणी गौतम को सम्बोधित करती हुई ही मुखरित हुई है। जैनागमों क परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनम अधिकाश रूप से गौतम के प्रश्न और प्रभु महावीर के समाधान हैं। उसी क्रमबद्धता में प्रस्तुत अध्ययन भी गौतम को सम्बोधित करके प्रतिपादित हुआ हो, किन्तु हुआ समस्त मानव जाति के लिए। कुछ भी रहा हो, प्रस्तुत अध्ययन मे गौतम को सम्बोधित करते हुए महावीर न जो उद्बोधन दिया है, वह जिनवाणी का सार है, अन्तर्जागरण का पुनीत पाथेय है, और है जीवन दर्शन की यथार्थ कथा का चित्रण।

□□□

द्रुम पत्रक - दशम् अध्ययन

सूक्ति साराश

जीवन अस्थिर है, क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो।
वृक्ष के पीले पत्ते एव ओस बिन्दु के समान मनुष्य का जीवन अस्थिर है, कौनसा हवा का झौंका गिरा दे, कुछ कहा नहीं जा सकता।

जीवन का उपयोग केवल आत्म हित मे करो।
मनुष्य का जीवन एक दुर्लभतम अवसर है, इसे निरर्थक कार्यों मे मत खोओ।

सत्कर्म-सद्गति, अशुभकर्म-दुर्गति।
जीव कर्मानुसार योनियो मे परिभ्रमण करता है। असत्कार्यों के द्वारा दुर्गति के द्वार मत खोलो।

दुर्लभ अगो का दुरुपयोग मत करो।
मनुष्यत्व, आर्यत्व, पूर्णेन्द्रियत्व, श्रेष्ठधर्म श्रवणत्व, सम्यक् श्रद्धा एव उसका अनुशीलन, ये सभी दुर्लभाग हैं, इनका सही उपयोग करो।

शक्ति रहते इसका सम्यगुपयोग कर लो।
इन्द्रियो की शक्ति निरन्तर क्षीण होती जा रही है, शरीर मे रोगो की वृद्धि होती जा रही है एव वृद्धावस्था निकट आ रही है फिर प्रमाद क्यो?

अनासक्ति साधना है, आसक्ति विराधना।
जल कमल की तरह ससार मे निर्लिप्त रहने का अभ्यास करो, क्योकि यहा सब कुछ नि सार है।

धन परिजन का परित्याग कर पुन उन्हे पाने की कल्पना मूढ़ता की परिचायक है।
जिसे नि सार समझ कर छोड चुके हो, उसकी पुन कामना करना नासमझी है।

निर्बल शरीर और काम भोग का विपम मार्ग पश्चात्ताप ही देता है।
निर्बल भार वाहक हो और माग विपम ले ले तो पश्चात्ताप ही होता है।

ज्ञान श्रद्धा से पुष्ट होना चाहिए।
ज्ञानियो के कथन को उसी तरह स्वीकार करो, जैसे पाच और पाच के जोड को दस।

❏❏❏

अह दुमपत्तयं दसमं अज्झयणं

अथ द्रुमपत्रकं दशममध्ययनम्

द्रुम पत्रक

1 जीवन की क्षणभगुरता- अप्रमाद का उपदेश

मूल गाथा- दुमपत्तए पडुयए जहा, णिवडइ राइगणाण अच्चए।
एव मणुयाण जीविय, समय गोयम! मा पमायए॥१॥

सस्कृत छाया- द्रुमपत्रक पाण्डुरक यथा, निपतति रात्रिगणानामत्यये।
एव मनुजाना जीवित, समय गौतम! मा प्रमादी ॥१॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, राइगणाण-रात्रि के गण(समूह)के, अच्चए-अतिक्रम होने पर (बीत जाने पर), पडुयए-पीला (पका हुआ), दुमपत्तए-वृक्षपत्र, णिवडइ-गिर जाता है, एव-इसी प्रकार, मणुयाण जीविय-मनुष्यो का जीवन है, गोयम-हे गौतम, समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-जैसे दिन और रात्रियो के व्यतीत होने पर वृक्ष का पत्ता पीला होकर गिर पडता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है, अत हे गौतम समय (क्षण)मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

2 मनुष्य जीवन को कुशाग्र स्थित ओस विन्दु की उपमा

मूल गाथा- कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोव चिट्ठइ लबमाणए।
एव मणुयाण जीविय, समय गोयम! मा पमायए॥२॥

सस्कृत छाया- कुशाग्रे यथाऽवश्यायबिन्दु , स्तोक तिष्ठति लम्बमानक ।
एव मनुजाना जीवित, समय गौतम! मा प्रमादी ॥२॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, कुसग्गे-कुश के अग्र भाग पर, लबमाणए-टिकी हुई (लटकती हुइ), ओस बिंदुए-ओस की बिन्दु, थोवं-थाडे काल (सुन्दरता धारण किये हुए), चिट्ठई-ठहरती है, एव-इसी प्रकार, मणुयाण जीवियं-मनुष्यों का जीवन है, गोयम-हे गौतम, समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-कुश-डाभ के अग्र भाग पर ओस का बिन्दु मोती की तरह थोडे समय तक ही ठहरता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी क्षण भगुर है, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

3 जीवन की नश्वरता

मूल गाथा- इइ इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहु पच्चवायए।
विहुणाहि रय पुरे कड, समय गोयम! मा पमायए॥3॥

सस्कृत छाया- इतीत्वर आयुषि, जीवितके बहु प्रत्यपायके।
विधुनीहि रज पुराकृत, समय गौतम! मा प्रमादी ॥

अन्वयार्थ-इइ-इस प्रकार, इत्तरियाम्मि-अल्पकालीन, आउए-आयु मे, जीवियए-जीवन, बहु-अनेक, पच्चवायए-विघ्नो से परिपूर्ण है (अब), पुरेकड-पूर्वकृत सचित, रय-कर्मरज को, विहुणाहि-दूर कर, गोयम-हे गौतम! इस कार्य मे समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-इस अल्पकालीन आयुष्य मे, जिसमे कि विघ्नो की प्रचुरता है, पूर्व सचित कर्म मैल को दूर करो, हे गौतम! इस कार्य मे समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

4 मनुष्य जन्म की दुर्लभता

मूल गाथा- दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिण।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समय गोयम! मा पमायए॥4॥

सस्कृत छाया- दुर्लभ खलु मानुष्यो भव, चिरकालेनापि सर्वप्राणिनाम्।
गाढाश्च विपाककर्मणा, समय गौतम! मा प्रमादी ॥4॥

अन्वयार्थ-सव्व पाणिण-(विश्व के) समस्त प्राणियो को, चिरकालेण वि-चिरकाल मे भी, माणुसे भवे-मनुष्य भव, खलु-निश्चय ही, दुल्लहे-दुर्लभ है, य-और, कम्मुणो-कर्मों का, विवाग-विपाक, गाढा-प्रगाढ (अत्यन्त कठिन है), अत गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-ससार के समस्त प्राणियो को चिरकाल से भी मनुष्य जीवन की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, कर्मों का विपाक-फल अत्यन्त प्रगाढ है, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

5 पृथ्वीकाय के जीव की काय स्थिति

मूल गाथा- पुढविकायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।
काल सखाईय, समय गोयम! मा पमायए॥5॥

सस्कृत छाया- पृथिवीकायमतिगत, उत्कर्षतो जीवस्तुसवसेत्।
काल सख्यातीत,समय गौतम! मा प्रमादी॥5॥

अन्वयार्थ-पुढविकाय-पृथ्वीकाय मे, अइगओ-गया (उत्पन्न) हुआ, जीवो-जीव, उक्कोस उ-उत्कृष्टता से, सखाईय-सख्यातीत (असख्य), काल-काल तक, सवसे-रहता है, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत करो।

भावानुवाद-पृथ्वीकाय में गया हुआ-उत्पन्न हुआ जीव बार-बार उसी मे जन्म-मरण करता हुआ उत्कृष्ट रूप से

उत्कर्षत अर्थात् अधिक से अधिक असख्य काल तक रहता है, जन्म-मरण करता है, इसलिए हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

6 अपकाय के जीव की काय स्थिति

मूल गाथा- आउक्कायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।
काल सखाईय, समय गोयम! मा पमायए॥६॥

सस्कृत छाया- अप्कायगतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तुसवसेत्।
काल सख्यातीत, समय गौतम! मा प्रमादी ॥६॥

अन्वयार्थ-आउक्काय-अप्काय (पानी) मे, अइगओ-गया (उत्पन्न) हुआ, जीवो-जीव, उक्कोस उ-उत्कृष्टता से, सखाईय-सख्यातीत (असख्य), काल-काल तक, सवसे-रहता है, (अत) गोयम-हे गौतम, समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-अप्काय (जल) मे गया हुआ जीव उत्कर्षत वहा रहे तो असख्य काल तक रहता है, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

7 तेजस्काय जीव की काय स्थिति

मूल गाथा- तेउक्कायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।
काल सखाईय, समय गोयम! मा पमायए॥७॥

सस्कृत छाया- तेजस्कायगतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तुसवसेत्।
काल सख्यातीत, समय गौतम! मा प्रमादी ॥७॥

अन्वयार्थ-तेउक्काय-तेजस्काय (अग्नि) में, अइगओ-गया (उत्पन्न) हुआ, जीवो-जीव, उक्कोस उ-उत्कृष्टता से, सखाईय-सख्यातीत (असख्य), काल-काल तक, सवसे-रहता है (अत), गोयम-हे गौतम, समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-तेजस्काय (अग्नि) म गया हुआ जीव उत्कर्षत असख्यात काल तक रहता है, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

8 वायुकाय जीव की काय स्थिति

मूल गाथा- वाउक्कायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।
काल सखाईय, समय गोयम! मा पमायए॥८॥

सस्कृत छाया- वायुकायगतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तुसवसेत्।
काल सख्यातीत, समय गौतम! मा प्रमादी ॥८॥

अन्वयार्थ-वाउक्काय-वायुकाय में, अइगओ-गया (उत्पन्न) हुआ, जीवो-जीव, उक्कोसं उ-उत्कृष्टता से

सखाईय-सख्यातीत (असख्य), काले-काल तक, सवसे-रहता है, (अत) गोयम-हे गौतम। समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-वायुकाय मे गया हुआ जीव उत्कृष्ट रूप से असख्यात काल तक रहता है, अत हे गौतम। समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

9 वनस्पतिकाय के जीव की काय स्थिति

मूल गाथा- **वणस्सइकायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।**
कालमणतदुरतय, समय गोयम। मा पमायए॥९॥

सस्कृत छाया- **वनस्पतिकायमतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तुसवसेत्।**
कालमनन्त दुरन्तक, समय गौतम। मा प्रमादी ॥९॥

अन्वयार्थ-**वणस्सइ काय**-वनस्पतिकाय मे, **अइगओ**-गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो**-जीव, **उक्कोस उ**-उत्कृष्टता से, **दुरतय**-दु ख से जिसका अन्त हो सके, उतना, **अणत काल**-अनन्त काल तक, **सवसे**-रहता है (अत) **गोयम**-हे गौतम। **समय**-समय मात्र भी, **मा पमायए**-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-वनस्पति काय मे गया हुआ जीव उत्कर्षत दुरन्त-दु खपूर्वक समाप्त हो सके ऐसे अनन्तकाल तक रहता है, अत हे गौतम। समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

10 द्वीन्द्रिय काय के जीवो की काय स्थिति

मूल गाथा- **बेइदियकायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।**
काल सखिज्जसण्णिय, समय गोयम। मा पमायए॥१०॥

सस्कृत छाया- **द्वीन्द्रियकायमतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तु सवसेत्।**
काल सख्येयसज्ञित, समय गौतम। मा प्रमादी ॥१०॥

अन्वयार्थ-**बेइदिय काय**-द्वीन्द्रिय काय मे, **अइगओ**-गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो**-जीव, **उक्कोस उ**-उत्कृष्टता से, **सखिज्ज**-सख्येय, **सण्णिय**-सज्ञक, **काल**-काल तक, **सवसे**-रहता है, (अत) **गोयम**-हे गौतम। **समय**-समय मात्र भी, **मा पमायए**-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-द्वीन्द्रियकाय मे जन्म-मरण करता हुआ जीव उत्कर्षत सख्यात सज्ञित काल तक रहता है, अत हे गौतम। समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

11 त्रीन्द्रिय जीवो की काय स्थिति

मूल गाथा- **तेइदियकायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।**
काल सखिज्जसण्णिय, समय गोयम। मा पमायए॥११॥

मस्कृत छाया- त्रीन्द्रियकायगतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तु सवसेत्।
काल सख्येयसज्ञित, समय गौतम! मा प्रमादी ॥११॥

अन्वयार्थ-तेइदिय काय-तेइन्द्रिय जीवो की काय मे, अइगओ-गया (उत्पन्न) हुआ, जीवो-जीव, उक्कोस उ उत्कृष्टता से, सखिज्ज-सख्येय, सण्णिय-सज्ञक, काल-काल तक, सवसे-रहता है (अत), गोयम-हे गौतम! समय-समय (क्षण) मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-त्रीन्द्रिय काय म गया हुआ जीव उत्कर्षत सख्यात सज्ञा वाले काल तक रहता है, अत ह गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

12 चतुरिन्द्रिय जीवो की काय स्थिति

मूल गाथा- चउरिंदियकायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।
काल सखिज्जसण्णिय, समय गोयम! मा पमायए॥१२॥

सस्कृत छाया- चतुरिन्द्रियकायगतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तु सवसेत्।
काल सख्येयसज्ञित, समय गौतम! मा प्रमादी ॥१२॥

अन्वयार्थ-चउरिंदिय काय-चतुरिन्द्रिय काय मे, अइगओ-गया (उत्पन्न) हुआ, जीवो-जीव, उक्कोस उ-उत्कृष्टता से, सखिज्ज-सख्येय, सण्णिय-सज्ञक, काल-काल तक, सवसे-रहता है (अत), गोयम-हे गौतम! समय-क्षणमात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-चतुरिन्द्रिय काय मे गया हुआ जीव उत्कर्षत सख्यात सज्ञित काल तक रहता है, अत हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत कर।

13 पचेन्द्रिय जीवों की काय स्थिति

मूल गाथा- पचिदियकायमइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।
सत्तट्ठभवगहणे, समय गोयम! मा पमायए॥१३॥

सस्कृत छाया- पचेन्द्रियकायगतिगत , उत्कर्षतो जीवस्तु सवसेत्।
सप्ताष्टभवग्रहणानि, समय गौतम! मा प्रमादी ॥१३॥

अन्वयार्थ-पचिदिय काय-पचेन्द्रिय काय में, अइगओ-गया हुआ (उत्पन्न हुआ), जीवो-जीव उक्कोस उ-उत्कृष्टता से सत्तट्ठ भवगहणे-सात-आठ भव ग्रहण तक, सवसे-रहता है (अत), गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-पचेन्द्रिय काय मे गया हुआ जीव उत्कृष्टत सात-आठ भव तक रहता है, इसलिए हे गौतम! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर।

14 देव तथा नारकी की काय और भव स्थिति

मूल गाथा- देवे णेरइए य अइगओ, उक्कोस जीवो उ सवसे।
इक्केक्क भवगहणे, समय गोयम! मा पमायए॥१४॥

सस्कृत छाया- देवान्नैरयिकाश्चातिगत , उत्कर्षतो जीवस्तु सवसेत्।
एकैकभवग्रहण, समय गौतम! मा प्रमादी ॥१४॥

अन्वयार्थ-देवे य-देव और, णेरइए-नारकियो मे, अइगओ-गया हुआ (उत्पन्न) जीवो-जीव, उक्कोस उ-उत्कृष्टता से, इक्केक्क भवगहणे-एक ही भव ग्रहण (जन्म) तक, सवसे-रहता है अत , गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-देव और नरक योनि मे गया जीव उत्कर्षत एक-एक भव-जन्म करता है, अत हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

15 प्रमाद बहुल जीव का सतत भव भ्रमण

मूल गाथा- एव भवससारे, ससरइ सुहासुहेहिं कम्मेहि।
जीवो पमायबहुलो, समय गोयम! मा पमायए॥१५॥

सस्कृत छाया- एव भवससारे, ससरति शुभाशुभै , कर्मभि ।
जीव प्रमाद बहुल , समय गौतम! मा प्रमादी ॥१५॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, पमाय बहुलो-बहुत प्रमाद वाला, जीवो-जीव, सुहासुहेहिं कम्मेहिं-शुभाशुभ कर्मो के कारण, भव-जन्म मरण रूप, ससारे-ससार मे, ससरइ-परिभ्रमण करता है, अत गोयम-हे गौतम!, समय-क्षण भर भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-इस प्रकार प्रमाद बहुल जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण ससार मे विभिन्न योनियो मे परिभ्रमण करता है, अत हे गौतम! क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

16 आर्य देश का मिलना अत्यन्त दुर्लभ

मूल गाथा- लद्धूण वि माणुसत्तण, आरियत्तण पुणरावि दुल्लह।
बहवे दसुया मिलक्खुया, समय गोयम! मा पमायए॥१५॥

सस्कृत छाया- लब्ध्वापि मानुषत्व, आर्यत्व पुनरपिदुर्लभम्।
बहवो दस्यवो म्लेच्छा , समय गौतम! मा प्रमादी ॥१५॥

अन्वयार्थ-माणुसत्तण-(दुर्लभ) मनुष्य जीवन, लद्धूणवि-पाकर भी, आरियत्तण-आयत्व (आर्यदेश) पाना, पुणरावि-और भी, दुल्लह-दुर्लभ है, बहवे-बहुत से लोग, दसुया-दस्यु (और), मिलक्खुया-म्लेच्छ हैं (अत), गोयम-हे गौतम!, समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-दुर्लभ मनुष्य जीवन प्राप्त होने पर भी आयत्व प्राप्त होना दुर्लभ है, क्योकि बहुत से लोग मनुष्य तन पाकर भी दस्यु और म्लेच्छ होते हैं, अत हे गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

17 पचेन्द्रिय का मिलना निश्चय ही दुर्लभ

मूल गाथा- लद्धूण वि आरियत्तण, अहीणपचिंदियया हु दुल्लहा।
विगलिंदियया हु दीसई, समय गोयम! मा पमायए॥१७॥

सस्कृत छाया- लब्ध्वाप्यार्यत्व, अहीनपचेन्द्रियता खलु दुर्लभा।
विकलेन्द्रियता खलु दृश्यते, समय गौतम! मा प्रमादी ॥१७॥

अन्वयार्थ-आरियत्तण-आर्यत्व, लद्धूण वि-पाकर भी, अहीण-सम्पूर्ण, पचिंदियया-पचेन्द्रिय पना हु-निश्चय ही, दुल्लहा-दुर्लभ है, हु-क्योंकि, विगलिंदियया-विकलेन्द्रियपन, दीसई-देखा जाता है, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-आयत्व के प्राप्त हो जाने पर भी परिपूर्ण पचेन्द्रियत्व-पाचो इन्द्रियों की अविकलता प्राप्त होना दुर्लभ है, क्याकि बहुत से व्यक्ति विकलेन्द्रियत्व-हीन इद्रिय भी देखे जाते हैं, अत हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

18 धर्मश्रुति की दुर्लभता

मूल गाथा- अहीणपचेंदियत्त पि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थिणिसेवए जणे, समय गोयम! मा पमायए॥१८॥

सस्कृत छाया- अहीनपचेन्द्रियत्वमपि स लभते, उत्तमधर्मश्रुति खलु दुर्लभा।
कुतीर्थिनिषेवको जनो, समय गौतम! मा प्रमादी ॥१८॥

अन्वयार्थ-अहीणपचिंदियत्तपि-सम्पूर्ण पचेन्द्रिय पन भी, से-वह, लहे-प्राप्त कर लेवे (तो), उत्तम-श्रेष्ठ, धम्मसुई-धम की प्राप्ति, हु-निश्चय ही, दुल्लहा-दुर्लभ है (क्योकि), कुतित्थि-कुतीर्थ के, णिसवए-सेवन करने वाले, जणे-जन बहुत है, गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-परिपूर्ण पचेन्द्रियत्व की प्राप्ति हो जाने पर भी उत्तम धम-श्रुति-श्रेष्ठ धर्म का श्रवण हो पाना दुर्लभ है क्योकि बहुत से लोग कुतीर्थिको की उपासना करने वाले भी देखे जाते हैं, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

19 तत्त्व श्रद्धा की दुर्लभता

मूल गाथा- लद्धूण वि उत्तमं सुइ, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा।
मिच्छत्तणिसेवए जणे, समय गोयम! मा पमायए॥१९॥

संस्कृत छाया- लब्ध्वाप्युत्तमा श्रुति, श्रद्धान पुनरपि दुर्लभम्।
मिथ्यात्वनिषेवको जनो, समय गौतम! मा प्रमादी ॥१९॥

अन्वयार्थ-कदाचित्, उत्तम सुइ-उत्तम धर्मश्रवण रूप श्रुति, लद्धूण वि-प्राप्त हो जाने पर भी, सद्दहणा-(तत्त्व की) श्रद्धा होना, पुणरावि-फिर भी, दुल्लहा-दुर्लभ है (क्योकि), मिच्छत्त-मिथ्यात्व का, णिसेवए-सेवन करने वाले, जणे-लोग बहुत हैं, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-उत्तम धर्म श्रुति के मिलने पर भी उस पर श्रद्धा होना और भी दुर्लभ है, क्योकि बहुत से लोग मिथ्यात्व का सेवन करते हैं, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

20 काया के द्वारा सयम का सेवन करना बहुत कठिन

मूल गाथा- धम्म पि हु सद्दहतया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगुणेहिं मुच्छिया, समय गोयम! मा पमायए॥20॥

संस्कृत छाया- धर्ममपि खलु श्रद्धधत , दुर्लभका कायेन स्पर्शका ।
इह कामगुणेषु मूर्च्छिता , समय गौतम! मा प्रमादी ॥२०॥

अन्वयार्थ-धम्म पिहु-उत्तम धर्म पर, सद्दहतया-श्रद्धा होने पर भी, काएण-काया से, फासया-स्पर्श करना, दुल्लहया-दुर्लभ है (क्योकि) बहुत से, इह-इस ससार मे, कामगुणेहिं-कामभोगो मे, मुच्छिया-मूर्च्छित हैं, अत , गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-धर्म के प्रति श्रद्धा होने पर भी उसका काया के द्वारा स्पर्श-आचरण होना दुर्लभ है। क्योकि बहुत से धर्म श्रद्धालु होकर भी काम-भोग मे मूर्च्छित रहते है, अत हे गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत कर।

21 श्रोत्रेन्द्रिय बल की उत्तरोत्तर क्षीणता

मूल गाथा- परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते।
से सोयबले य हायई, समय गोयम! मा पमायए॥21॥

संस्कृत छाया- परिजीर्यति तव शरीरक, केशा पाण्डुरका भवन्ति ते।
तच्छ्रोत्रबल च हीयते, समय गौतम! मा प्रमादी ॥२१॥

अन्वयार्थ-ते-तुम्हारा, सरीरय-शरीर, परिजूरइ-(सर्व प्रकार से) जीर्ण होता है, ते-तुम्हारे, केसा-केश, पडुरया-सफेद, हवति-होते जाते हैं, य-और, से-वह, सोयबले-श्रोत्र (कान) का बल, हायई-हीन हुआ जाता है, अत गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-तुम्हारा शरीर जीर्ण होता जा रहा है, केश-सिर के बाल सफेद हो रहे हैं और श्रोत्र-शक्ति क्षीण होती जा रही है, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

22 चक्षुरिन्द्रिय बल की क्षीणता

मूल गाथा- परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवंति ते।
से चक्खुबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२२॥

संस्कृत छाया- परिजीर्यति ते शरीरक, केशा पाण्डुरका भवन्ति ते।
तच्चक्षुर्बलं च हीयते, समयं गौतम! मा प्रमादी ॥२२॥

अन्वयार्थ-ते-तुम्हारा, सरीरय-शरीर, परिजूरइ-(सर्व प्रकार से) जीर्ण होता है, ते-तुम्हारे, केसा-केश, पडुरया-सफेद, हवंति-होते जाते हैं, य-और, से-वह, चक्खुबले-चक्षु (नेत्र) का बल, हायई-हीन हुआ जाता है, अतः गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश पाण्डुर हो रहे हैं, नेत्रों की ज्योति क्षीण हो रही है, अतः हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

23 घ्राण बल की क्षीणता

मूल गाथा- परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवंति ते।
से घाणबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२३॥

संस्कृत छाया- परिजीर्यति ते शरीरक, केशा पाण्डुरका भवन्ति ते।
तद्घ्राणबलं च हीयते, समयं गौतम! मा प्रमादी ॥२३॥

अन्वयार्थ-ते-तुम्हारा, सरीरय-शरीर, परिजूरइ-(सर्व प्रकार से) जीर्ण होता है, ते-तुम्हारे, केसा-केश, पडुरया-सफेद, हवंति-होते जाते हैं, य-और, से-वह, घाणबले-घ्राण (नासिका) का बल, हायई-हीन हुआ जाता है, अतः गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश श्वेत हो रहे हैं, घ्राण शक्ति क्षीण हो रही है, अतः हे गौतम! क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

24 जिह्वा बल की क्षीणता

मूल गाथा- परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवंति ते।
से जिब्भबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥२४॥

संस्कृत छाया- परिजीर्यति ते शरीरक, केशा पाण्डुरका भवन्ति ते।
तज्जिह्वाबलं च हीयते, समयं गौतम! मा प्रमादी ॥२४॥

अन्वयार्थ-ते-तुम्हारा, सरीरयं-शरीर, परिजूरइ-(सर्व प्रकार से) जीर्ण होता है, ते-तुम्हारे, केसा-केश, पंडुरया-सफेद, हवंति-होते जाते हैं, य-और, से-वह, जिब्भबले-जिह्वा का बल, हायई-हीन हुआ जाता है, अतः गोयम-हे गौतम! समयं-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद- हे गौतम! तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश सफेद हो रहे हें, रस ग्राहक जीभ की शक्ति क्षीण हो रही है, अत क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

25 स्पर्शेन्द्रिय बल की क्षीणता

मूल गाथा- **परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते।**
से फासबले य हायई, समय गोयम! मा पमायए॥२५॥

सस्कृत छाया- ***परिजीर्यति ते शरीरक, केशा पाण्डुरका भवन्ति ते।***
तत्स्पर्शबल च हीयते, समय गौतम! मा प्रमादी ॥२५॥

अन्वयार्थ-ते-तुम्हारा, सरीरय-शरीर, परिजूरइ-(सर्व प्रकार से) जीर्ण होता है, ते-तुम्हारे, केसा-केश, पडुरया-सफेद, हवति-होते जाते है, य-और, से-वह, फासबले-स्पर्श का बल, हायई-हीन हुआ जाता है, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, बाल सफेद हो रहे हैं, स्पर्श इन्द्रिय की शक्ति क्षीण हो रही है, अत हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

26 सभी बल की क्षीणता के कारण अप्रमाद प्रेरणा

मूल गाथा- **परिजूरइ ते सरीरय, केसा पडुरया हवति ते।**
से सव्वबले य हायई, समय गोयम! मा पमायए॥२६॥

सस्कृत छाया- **परिजीर्यति ते शरीरक, केशा पाण्डुरका भवन्ति ते।**
तत् सर्वबल च हीयते, समय गौतम! मा प्रमादी ॥२६॥

अन्वयार्थ-ते-तुम्हारा, सरीरय-शरीर, परिजूरइ-(सर्व प्रकार से) जीर्ण हाता है, ते-तुम्हारे, केसा-केश, पडुरया-सफेद, हवति-होते जाते है, य-और, से-वह, सव्व बले-समस्त (इन्द्रियो या अगों का) बल, हायई-हीन हुआ जाता है, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-क्षण मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-तुम्हारा शरीर कमजोर हो रहा हे, बाल श्वेत हो रहे है, अरे समस्त शक्ति ही क्षीण हो रही है, अत हे गौतम! क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

27 शीघ्र विघातक रोगो से शरीर का विध्वस

मूल गाथा- **अरई गड विसूइया, आयका विविहा फुसति ते।**
विहडइ विद्धसइ ते सरीरय, समय गोयम! मा पमायए॥२७॥

सस्कृत छाया- **अरतिर्गण्ड विसूचिका, आतका विविधा स्पृशन्ति ते।**
विहियते विध्वस्यति ते शरीरक, समय गौतम! मा प्रमादी ॥२७॥

अन्वयार्थ-अरई-चित्त का उद्वेग (पित्तरोग), गड-फोडा, विसूइया-विसूचिका, (हैजा) और, विविहा आयका-विविध प्रकार के रोग, (शीघ्रपाती) ते-तेरे शरीर को, फुसति-स्पर्श करते हैं (जिनसे), ते-तेरा, सरीरय-शरीर,

विहडइ-गिरता है, विद्धसइ-विध्वस (नष्ट) हो जाता है, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत करो।

भावानुवाद-वायु-विकार जन्य, चित्तोद्वेग, विस्फोटक, फोडा, आदि विसूचिका-वमन तथा अन्य भी अनक प्रकार क रोग तुम्हारे शरीर को स्पर्श करते हैं, जिसम तुम्हारा यह शरीर शक्ति हीन हो जाता है, विध्वस का प्राप्त हो जाता है, इसलिए हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

28 प्रमाद क परित्याग का प्रकार

मूल गाथा- वोच्छिद सिणेहमप्पणो, कुमुय सारइय व पाणिय।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समय गोयम! मा पमायए॥२८॥

सस्कृत छाया- व्युच्छिन्द्धि स्नेहमात्मन , कुमुद शारदमिव पानीयम्।
तत्सार्वस्नेहवर्जित , समय गौतम! मा प्रमादी ॥२८॥

अन्वयार्थ-कुमुय-सारइय-(शरद ऋतु के) चन्द्र विकासी कमल, पाणिय-जल को छोडकर व-जैसे (अलग हो जाता है), वैसे, अप्पणो-अपने, सिणेह-स्नेह को, वोच्छिद-दूर कर, से-अनन्तर, सव्व-सब, सिणेह वज्जिए-स्नेह से वर्जित होकर, गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! जैसे शरदीय-कुमुद (चन्द्र विकासी कमल) पानी से मुक्त-ऊपर उठा हुआ रहता है, उसमें लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार तुम भी अपने समस्त प्रकार के स्नेह (आसक्तिभाव) को त्याग कर निर्लिप्त बन जाओ और इसमे समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

29 त्याग वृत्ति की दृढता हेतु शिक्षा

मूल गाथा- चिच्चा ण धण च भारिय, पव्वइओ हि सि अणगारिय।
मा वत पुणो वि आविए, समय गोयम! मा पमायए॥२९॥

सस्कृत छाया- त्यक्त्वा धन च भार्यां, प्रव्रजितोऽस्यनगारिताम्।
मा वान्त पुनरप्यापिबे , समय गौतम! मा प्रमादी ॥२९॥

अन्वयार्थ-धणं-धन, च-और, भारिय-भार्या को, चिच्चा-परित्याग कर, (तू) अनगारिय-अणगार वृत्ति म, पव्वइओ हि सि-प्रव्रजित हुआ है, (अत) वत-वमन किय भोगो को, पुणो-पुन वि-भी तू, मा आविए-मत पी गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! तुम धन और पत्नी का परित्याग करके अनगार भाव से प्रव्रजित हुए हो, अत अब इन वमन किये हुए को पुन ग्रहण मत करो अणगार धर्म की प्रतिष्ठा म क्षणमात्र भी प्रमाद मत करो।

30 पूर्व परिचितो के प्रति अनासक्ति का उपदेश

मूल गाथा- अवउज्झिय मित्तबधव, विउल चेव धणोहसचय।
मा त बिइय गवेसए, समय गोयम! मा पमायए॥३०॥

संस्कृत छाया- अपोह्य मित्रबान्धव, विपुल चैव धनौघसचयम्।
मा तद् द्वितीयवार गवेषय, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३०॥

अन्वयार्थ-मित्तवधव-मित्र और बाधवो को, चेव-और, विउल-विपुल, धणोह-(स्वर्णादि) धन राशि के सचय-सचय को, अवउज्झिए-छोडकर, त-उन मित्रादि की , बिइय-दूसरी बार (अर्थात् फिर से), मा गवेसए-गवेषणा मत कर (अत) गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-मित्र, बान्धव, और सचित विपुल धन का परित्याग करके पुन दुबारा उनकी प्राप्ति हेतु गवेषणा मत कर। हे गौतम! तू समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

31 प्राप्त न्याय युक्त पथ पर अप्रमत्तता पूर्वक चलना

मूल गाथा- ण हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए।
सपइ णेयाउए पहे, समय गोयम! मा पमायए॥३१॥

संस्कृत छाया- न खलु जिनोऽद्य दृश्यते, बहुमत खलु दृश्यते मार्गदेशक ।
सम्प्रति नैयायिके पथि, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३१॥

अन्वयार्थ-(भविष्य में लोग कहेगे) हु-निश्चय ही, अज्ज-आज, जिणे-जिन भगवान्, ण-नहीं, दिस्सई-दिख रहे हैं, मग्गदेसिए-मार्गदर्शक, बहुमए-अनेक मत के, दिस्सइ-दिखाई देते हैं, (किन्तु) सपइ-वर्तमान समय मे, णेयाउए-न्याय युक्त पहे-मार्ग है, (अत) गोयम-हे गौतम!, समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-(आने वाले समय मे लोग कहेगे) निश्चय ही आज जिन भगवान् नहीं दिख रहे हैं, मार्ग दर्शको का भी बहुमत दिखाई देता है-वे एक मत नहीं हैं, किन्तु तुम्हे आज न्याय युक्त नयात्मक मार्ग उपलब्ध है, अत हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

32 कण्टक युक्त मार्ग का परित्याग कर राजमार्ग पर चलना

मूल गाथा- अवसोहिय कटगापह, ओइण्णोऽसि पह महालय।
गच्छसि मग्ग विसोहिया, समय गोयम! मा पमायए॥३२॥

संस्कृत छाया- अवशोध्य कटकपथ, अवतीर्णोऽसि पन्थान महालय।
गच्छसि मार्ग विशोध्य, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३२॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! तू, कटगापह-कण्टक युक्त मार्ग को, अवसोहिय-छोडकर, महालय-बडे विस्तार वाले, पह-भाव मार्ग मे, ओइण्णोऽसि-प्रविष्ट हो गया है (अत), विसोहिया-दृढ निश्चय करके, मग्ग-(मोक्ष) पर, गच्छसि-तू चल, समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-कण्टकाकीर्ण मार्ग को छोडकर तू स्वच्छ राजमार्ग पर-महापथ पर आ गया है, यही नहीं, दृढ आस्था के साथ तू उस पर चल रहा है, अत हे गौतम! समय भर का प्रमाद मत कर।

33 विषम पथ पर न चलने का निर्देश

मूल गाथा- अवले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेऽवगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समय गोयम! मा पमायए॥33॥

संस्कृत छाया- अबलो यथा भारवाहक , मा मार्गं विषममवगाह्य।
पश्चात्पश्चादनुतप्यते, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३३॥

अन्वयार्थ-जह-जैस, अवले-निर्बल, भारवाहए-भारवाहक (भार उठाने वाला), विसमे-विषम, मग्गे-मार्ग को, अवगाहिया-ग्रहण करके, (फिर भार फेंक कर) पच्छा-(पीछे), पच्छाणुतावए-पश्चात्ताप करने वाला होता है, मा-(इस प्रकार) मत हो, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-जैसे विषम माग पर गया हुआ कमजोर भार वाहक बीच मे ही भार फेक देता है, पीछे से पश्चाताप करता है। ह गौतम! तुम उस तरह विषम मार्ग पर मत जाओ अन्यथा पीछे पश्चात्ताप करना पडेगा, अत समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

34 ससार सागर शीघ्रता से पार करने का निर्देश

मूल गाथा- तिण्णो हु सि अण्णव मह, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पार गमित्तए, समय गोयम! मा पमायए॥34॥

संस्कृत छाया- तीर्णोऽसि खलु अर्णव महान्त, किं पुनस्तिष्ठसि तीरमागत ।
अभित्वरस्व पार गन्तु, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३४॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! (तू), मह अण्णवं-विशाल ससार-समुद्र को, हु-निश्चय ही, तिण्णो सि-पारकर गया है, (अब) तीर-तीर के निकट, आगओ-आया हुआ, कि पुण-फिर क्यो, चिट्ठसि-खडा है, पारं गमित्तए-इससे, (ससार-समुद्र से) पार करने की, अभितुर-शीघ्रता कर, (इसमें), समयं-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! तू अति विस्तृत महासागर को तो पार कर गया है, अब तीर-किनारे के निकट आकर क्यो खडा है? उसे पार करने में शीघ्रता कर, हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

35 सिद्ध लोक प्राप्त होने का आश्वासन

मूल गाथा- अकलेवरसेणि मूसिया, सिद्धि गोयम लोय गच्छसि।
खेम च सिव अणुत्तर, समय गोयम! मा पमायए॥35॥

संस्कृत छाया- अकलेवरश्रेणिमुच्छ्रित्य, सिद्धि गौतम लोक गच्छसि।
क्षेम च शिवमनुत्तर, समय गौतम! मा प्रमादीः ॥३५॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! (तू), अकलेवर-शरीर रहित, सेणिं-(क्षपक) श्रेणि को, ऊसिया-आरूढ होकर खेमं-क्षम, सिवं-शिव (कल्याणरूप), च-और, अणुत्तरं-सर्वोत्कृष्ट सिद्धिं-सिद्धि नामक, लोयं-लोक को,

गच्छसि-जायेगा, (अत) गोयम-है गौतम!, समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! तू देह मुक्त सिद्धत्व को प्राप्त कराने वाली क्षपक श्रेणि पर आरोहण कर सर्वोत्कृष्ट क्षेम-कल्याण स्वरूप अनुत्तर सिद्धि लोक को प्राप्त करेगा, अत हे गौतम पल भर का भी प्रमाद मत कर।

36 सिद्धि पद प्राप्ति का मुख्य उपाय

मूल गाथा- **बुद्धे परिणिव्वुडे चरे, गामगए णगरे व सजए।**
सतिमग्ग च बूहए, समय गोयम! मा पमायए॥३६॥

सस्कृत छाया- **बुद्ध परिनिर्वृतश्चरे , ग्रामगतो नगरे वा सयत ।**
शान्ति मार्ग च वृहये , समय गौतम! मा प्रमादी ॥३६॥

अन्वयार्थ-बुद्धे-बुद्ध (तत्त्वज्ञ), परिणिव्वुडे-निवृत होकर, सजए-सयत होकर, गाम गए-ग्राम मे गया हुआ, व-अथवा, णगरे-नगर मे, (तू) चरे-(सयम मार्ग मे) विचरण कर, च-और, सतिमग्ग-शान्तिमार्ग को, बूहए-बढा (अत), गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! (प्रबुद्ध एव शान्त रूप होकर सयत भाव मे विचरण कर) पापो से निवृत्त होकर गाव एव नगर मे विचरण कर, शान्ति मार्ग को बढा, इसमे समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

37 उपदेशानुसार आचरण से गौतम को सिद्धि-उपसहार

मूल गाथा- **बुद्धस्स णिसम्म भासिय, सुकहियमट्ठ पओवसोहिय।**
राग दोस च छिंदिया, सिद्धिगई गए गोयमे॥३७॥

ति बेमि।

इति दुमपत्तय समत्त॥१०॥

सस्कृत छाया- **बुद्धस्य निशम्य भाषित,सुकथितमर्थपदोपशोभितम्।**
राग द्वेष च छित्त्वा, सिद्धिगति गतो गौतम ॥३७॥

इति ब्रवीमि।

इति द्रुमपत्रक समाप्तम्॥१०॥

अन्वयार्थ-अट्ठ-अर्थ तथा, पओवसोहिय-पदो से सुशोभित, सुकहिय-सुकथित, बुद्धस्स-बुद्ध, (भ महावीर) की, भासिय-वाणी (भाषण) को, णिसम्म-सुनकर, राग दोस च-राग और द्वेष का, छिंदिया-छेदन कर, गोयमे-गौतम मुनि सिद्धिगइ-सिद्धि गति को, गए-प्राप्त हो गये।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इस प्रकार सुन्दर अर्थ और पदो से सुशोभित एव सुकथित बुद्ध (पूर्ण ज्ञानी) भगवान् महावीर की वाणी को श्रवण कर, राग-द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि गति को प्राप्त हुए।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार द्रुमपत्रक दसवा अध्ययन समाप्त हुआ। ☐☐☐

33 विषम पथ पर न चलने का निर्देश

मूल गाथा- अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेऽवगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समय गोयम! मा पमायए॥33॥

संस्कृत छाया- अबलो यथा भारवाहक , मा मार्गं विषममवगाह्य।
पश्चात्पश्चादनुतप्यते, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३३॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, अबले-निर्बल, भारवाहए-भारवाहक (भार उठाने वाला), विसमे-विषम, मग्गे-मार्ग को, अवगाहिया-ग्रहण करके, (फिर भार फेक कर) पच्छा-(पीछे), पच्छाणुतावए-पश्चात्ताप करने वाला होता है, मा-(इस प्रकार) मत हो, (अत) गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-जैसे विषम मार्ग पर गया हुआ कमजोर भार वाहक बीच म ही भार फेक देता है, पीछे से पश्चाताप करता है। हे गौतम! तुम उस तरह विषम मार्ग पर मत जाओ, अन्यथा पीछे पश्चात्ताप करना पडेगा, अत समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

34 ससार सागर शीघ्रता से पार करने का निर्देश

मूल गाथा- तिण्णो हु सि अण्णव मह, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पार गमित्तए, समय गोयम! मा पमायए॥34॥

सस्कृत छाया- तीर्णोसि खलु अर्णव महान्त, किं पुनस्तिष्ठसि तीरमागत ।
अभित्वरस्व पार गन्तु, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३४॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! (तू), मह अण्णव-विशाल ससार-समुद्र को, हु-निश्चय ही, तिण्णो सि-पारकर गया है, (अत्र) तीर-तीर के निकट, आगओ-आया हुआ, कि पुण-फिर क्या, चिट्ठसि-खडा है, पार गमित्तए-इससे, (ससार-समुद्र से) पार करने की, अभितुर-शीघ्रता कर, (इसमें), समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! तू अति विस्तृत महासागर को तो पार कर गया है, अब तीर-किनारे के निकट आकर क्यों खडा है? उसे पार करने मे शीघ्रता कर, हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

35 सिद्ध लाक प्राप्त होने का आश्वासन

मूल गाथा- अकलेवरसेणि मूसिया, सिद्धि गोयम लोय गच्छसि।
खेम च सिव अणुत्तर, समय गोयम! मा पमायए॥35॥

सस्कृत छाया- अकलेवरश्रेणिमुच्छ्रित्य, सिद्धि गौतम लोक गच्छसि।
क्षेम च शिवमनुत्तर, समय गौतम! मा प्रमादी ॥३५॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! (तू), अकलेवर-शरीर रहित, सेणि-(क्षपक) श्रेणि का, उस्सिया-आरूढ होकर, खेमं-क्षेम, सिव-शिव (कल्याणरूप), च-और, अणुत्तरं-सर्वोत्कृष्ट, सिद्धि-सिद्धि नामक, लोय-लोक को,

गच्छसि-जायेगा, (अत) गोयम-है गौतम!, समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! तू देह मुक्त सिद्धत्व को प्राप्त कराने वाली क्षपक श्रेणि पर आरोहण कर सर्वोत्कृष्ट क्षेम-कल्याण स्वरूप अनुत्तर सिद्धि लोक को प्राप्त करेगा, अत हे गौतम पल भर का भी प्रमाद मत कर।

36 सिद्धि पद प्राप्ति का मुख्य उपाय

मूल गाथा- बुद्धे परिणिव्वुडे चरे, गामगए णगरे व सजए।
सतिमग्ग च वूहए, समय गोयम! मा पमायए॥३६॥

सस्कृत छाया- बुद्ध परिनिर्वृतश्चरे , ग्रामगतो नगरे वा सयत ।
शान्ति मार्ग च वृहये , समय गौतम! मा प्रमादी ॥३६॥

अन्वयार्थ-बुद्धे-बुद्ध (तत्त्वज्ञ), परिणिव्वुडे-निवृत होकर, सजए-सयत होकर, गाम गए-ग्राम मे गया हुआ व-अथवा, णगरे-नगर मे, (तू) चरे-(सयम मार्ग मे) विचरण कर, च-और, सतिमग्ग-शान्तिमार्ग को, वूहए-बढा (अत), गोयम-हे गौतम! समय-समय मात्र भी, मा पमायए-प्रमाद मत कर।

भावानुवाद-हे गौतम! (प्रबुद्ध एव शान्त रूप होकर सयत भाव मे विचरण कर) पापो से निवृत्त होकर गाव एव नगर मे विचरण कर, शान्ति मार्ग को बढा, इसमे समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

37 उपदेशानुसार आचरण से गौतम को सिद्धि-उपसहार

मूल गाथा- बुद्धस्स णिसम्म भासिय, सुकहियमट्ठ पओवसोहिय।
राग दोस च छिंदिया, सिद्धिगई गए गोयमे॥३७॥

त्ति बेमि।

इति दुमपत्तय समत्त॥१०॥

सस्कृत छाया- बुद्धस्य निशम्य भाषित,सुकथितमर्थपदोपशोभितम्।
राग द्वेष च छित्त्वा, सिद्धिगतिं गतो गौतम ॥३७॥

इति ब्रवीमि।

इति दुमपत्रक समाप्तम्॥१०॥

अन्वयाथ-अट्ठ-अर्थ तथा, पओवसोहिय-पदो से सुशोभित, सुकहिय-सुकथित, बुद्धस्स-बुद्ध, (भ महावीर) की, भासिय-वाणी (भाषण) को, णिसम्म-सुनकर, राग दोस च-राग और द्वेष का, छिंदिया-छेदन कर, गोयमे-गौतम मुनि सिद्धिगइ-सिद्धि गति को, गए-प्राप्त हो गये।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इस प्रकार सुन्दर अर्थ और पदो से सुशोभित एव सुकथित बुद्ध (पूर्ण ज्ञानी) भगवान् महावीर की वाणी को श्रवण कर, राग-द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि गति को प्राप्त हुए।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार द्रुमपत्रक दसवा अध्ययन समाप्त हुआ। ☐☐☐

बहुश्रुत-पूजा - एकादश अध्ययन

उत्थानिका

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे शिक्षा नीति पर, उसके उद्देश्यो पर बहुत विस्तृत चर्चाए चल रही हैं। अध्ययन अध्यापन के नये-नये आयाम खोजे जा रहे हैं। तकनीकी शिक्षण को मूल आधार बनाया जा रहा है, किन्तु योग्यता अयोग्यता के मानदण्ड को नजर अन्दाज किया जा रहा है और यही कारण है कि योग्य प्रतिभाओ का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। यह व्यावहारिक बुद्धि से विचारणीय है कि जिस व्यक्ति अथवा विद्यार्थी की रुचि इतिहास के अध्ययन-अध्यापन के प्रति हो उसे जबरन विज्ञान पढाने का प्रयास किया जाय अथवा जो विज्ञान के प्रति रुचि रखता हो उसे कला का शिक्षण दिया जाये तो वह उसमें कहा तक सफल हो सकता है?

यह तो हुई वैषयिक योग्यता-अयोग्यता की बात। किन्तु इसके भी पूर्व विद्याध्ययन की योग्यता-अयोग्यता की परख अथवा योग्यता के निर्माण का विचार आवश्यक है। क्योकि योग्य रीति से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति सही अर्थों में विद्वान बन सकता है और उसी की विद्वत्ता पूज्यता की श्रेणी में पहुच पाती है।

आज की इन ज्वलन्त समस्याओ का तर्क पुष्ट समाधान ही प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है। आगमिक भाषा में विद्वान बहुमुखी विद्वत्ता के धारक को कहते हैं। यहा आत्म ज्ञानी और आत्मसाधक को बहुश्रुत की सज्ञा प्रदान की गई है।

बहुश्रुत को पन्द्रह उपमाओ से उपमित करने के पूर्व बहुश्रुत बनने अर्थात् ज्ञान प्राप्ति की योग्यता-अयोग्यता का अतीव सुन्दर चित्रण यहा प्रस्तुत किया गया है-

अध्ययन अथवा शिक्षा प्राप्ति का प्रथम आधार विनय है, विनय में ही अन्य सभी गुणो का समावेश हो जाता है। अत विनय और अविनय के साथ विनीत और अविनीत को समझ लेना आवश्यक है। इसी आधार पर 14 कारणो-स्थानों के सेवन करने वाले को अविनीत और 15 स्थानो को सेवन करने वाले को विनीत बताकर उन्हें *अध्ययन के योग्य-अयोग्य, पात्र-अपात्र घोषित किया है।*

जो व्यक्ति अध्ययनशील हो, विद्यार्जन करना चाहता हो, किन्तु बात-बात पर क्रोध करता हो, सामान्य सी उपलब्धि पर अहकार में झूमने लगता हो, दूसरो के दोष देखता रहता हो, दूसरों का तिरस्कार करता हो, मित्रों की निन्दा करता हो, ऐसा व्यक्ति विद्यार्जन नहीं कर पाता है, वह अध्ययन के अयोग्य ही रह जाता है।

इसके विपरीत जो विनम्र हो, सुशील हो, व्यर्थ की चर्चाओ में बहुमूल्य समय नहीं खोता हो, अधिक हसी मजाक नहीं करता हो, गाली-गलोच अपशब्दो का प्रयोग नहीं करता हो, अपनी विद्वत्ता आदि किसी भी विशेषता

पर अहकार नहीं करता हो, सभी प्रकार के अभद्र व्यवहारो से दूर रहता हो। वही शिक्षा का पात्र होता है और वही बहुश्रुत बनता है। बहुश्रुत ही दृढ धर्मी, तेजस्वी, साहसी एव सागर की तरह गम्भीर होते हैं, उनकी ज्ञान सम्पत्ति बेजोड होती है।

शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षार्थी एव शिक्षक की पात्रता, उनकी आचार सहिता एव बहुश्रुत शिक्षक की महत्ता का सुन्दर-समीचीन वैज्ञानिक विश्लेषण है प्रस्तुत अध्ययन मे।

काश, आज के शिक्षा शास्त्री इस ओर कुछ दृष्टिपात करे तो आज की शिक्षा नीति की सभी समस्याए सहज समाधान प्राप्त कर सकती हैं।

❑❑❑

बहुश्रुत-पूजा - एकादश अध्ययन

सूक्ति साराश

विनय एव निस्पृहता ज्ञान के द्वार खोल देते है।
अहकार, लुब्धता, इन्द्रिय निग्रह का अभाव, वाचालता, क्रोध, प्रमाद एव रुग्णता ज्ञान प्राप्ति के बाधक तत्व है।

सद्ज्ञान का आधार-सदाचार।
वही व्यक्ति यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है जो इन्द्रियो पर नियत्रण रखता हो, मधुर व सयमित भाषा बोलता हो एव सदाचार मे रमण करता हो।

विनय का अर्थ है-आत्म केन्द्रित होना।
अविनीत वह है जो स्वय का नहीं दूसरो का ध्यान रखता हो, पुन पुन क्रोध करता हो, जरा से ज्ञान पर गर्व करता हो एव मैत्री का परित्याग करता हो।

विनीत बनो-सर्व कल्याण की भावना रखो।
विनीत वह है जो माया, कुतूहल, क्रोध, अहकार एव वाचालता का त्याग कर दे।

ज्ञान का आधार है, आन्तरिक-आत्मिक प्रियता।
गुरु की सन्निधि में रहो एव सदैव प्रियवचन-प्रिय कर्तृत्व पर सजग रहो, ज्ञान स्वय प्रकाशित होगा।

विनीत बनो-बहुश्रुत बन जाओगे।
धर्म-कीर्ति एव श्रुत का निवास विनीत में ही होता है, वही बहुश्रुत होता है।

केवल बहुश्रुत बन जाओ, सर्वशक्ति सपन्न बन जाओगे।
बहुश्रुत शक्तिशाली, पराक्रमी, अप्रतिहत, यूथाधिपति एव दुष्प्रध्वस्य होता है।

बहुश्रुतता-ज्ञान के समक्ष-चक्रवर्ती एव इन्द्र का वैभव भी तुच्छ है।
बहुश्रुत चक्रवर्ती की सम्पदा से भी अधिक सम्पन्न होता है, सहस्राक्ष पुरन्दर से भी अधिक शक्तिशाली होता है।

समस्त आधेयो का आधार है बहुश्रुतता।
वर्तमान में श्रुतज्ञान ही आधार है, अत बहुश्रुतता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

□□□

अह बहुस्सुयपुज्जं एगारसमं अज्झयणं

अथ बहुश्रुतपूज्यमेकादशममध्ययनम्

बहुश्रुत पूजा

1 आचार कथन की प्रतिज्ञा

मूल गाथा- सजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
आयार पाउकरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे॥1॥

संस्कृत छाया- संयोगाद् विप्रमुक्तस्य, अनगारस्य भिक्षो ।
आचार प्रादु करिष्यामि, आनुपूर्व्या शृणुत मे॥१॥

अन्वयार्थ-सजोगा-सयोग से, विप्पमुक्कस्स-विप्रमुक्त, रहित अणगारस्स-अनगार, भिक्खुणो-भिक्षु के, आयार-आचार धर्म को, पाउकरिस्सामि-प्रकट करूगा, मे-मुझसे, आणुपुव्वि-अनुक्रम से, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-मैं सासारिक सयोगो-बन्धनो से रहित, अनगार गृहत्यागी भिक्षु के आचार धर्म का प्रतिपादन करूगा, उसे तुम अनुक्रम से मुझसे सुनो।

2 अबहुश्रुत के लक्षण

मूल गाथा- जे यावि होइ णिव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
अभिक्खण उल्लवइ, अविणीए अबहुस्सए॥2॥

संस्कृत छाया- यश्चापि भवति निर्विद्य , स्तब्धो लुब्धोऽनिग्रह ।
अभीक्ष्णमुल्लपति, अविनीतोऽबहुश्रुत ॥२॥

अन्वयार्थ-जे-जो कोई, णिव्विज्जे-विद्या रहित, होइ-होता है, अवि-अथवा (विद्यावान) (परन्तु जो), थद्धे-स्तब्ध (अहकारी), लुद्धे-लोभी (लोलुप), अणिग्गहे-(इन्द्रियादि के) निग्रह से रहित है, अभिक्खण-बार-बार, उल्लवइ-(बिना विचारे) असम्बद्ध बोलता है, य-और, अविणीए-विनय धर्म-रहित है (वह), अबहुस्सुए-अबहुश्रुत है।

भावानुवाद-जो कोई विद्याहीन है, अथवा विद्यासम्पन्न होकर भी अहकारी है, लोभी अथवा इन्द्रियों के अधीन है, अजितेन्द्रिय है, जो बार-बार बिना विचारे असम्बद्ध प्रलाप करता है और जो अविनीत है, वह अबहुश्रुत है।

3 शिक्षा प्राप्ति में बाधक पाच कारण

मूल गाथा- अह पचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा ण लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणालस्सएण य॥3॥

सस्कृत छाया- अथ पचभि स्थानै, यै शिक्षा न लभ्यते।
स्तम्भात्क्रोधात्प्रमादेन, रोगेणालस्येन च॥3॥

अन्वयार्थ-जेहिं-जिन, पचहिं-पाच, ठाणेहिं-स्थानों से, सिक्खा-शिक्षा, ण लब्भई-प्राप्त नहीं होती है, अह-व (पाच ये हैं), थम्भा-अहकार से, कोहा-क्रोध से, पमाएण-प्रमाद से, रोगेण-रोग से, य-और, आलस्सएण आलस्य से।

भावानुवाद-इन पाच कारणों से शिक्षा की प्राप्ति नहीं होती है-अहकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य।

4 शिक्षा प्राप्ति के एक से तीन साधक कारण

मूल गाथा- अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सया दते, ण य मम्ममुदाहरे॥4॥

सस्कृत छाया- अथाष्टभि स्थानै, शिक्षाशील इत्युच्यते।
अहसनशील सदा दान्त, न च मर्मोदाहर॥4॥

अन्वयार्थ-अह-अनन्तर, अट्ठहिं-आठ, ठाणहिं-स्थानो से, सिक्खासीले-शिक्षा के योग्य है, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है, अहस्सिरे-हास्य न करने वाला, सया दते-सदा (इन्द्रियों का) दमन करने वाला, य-और, मम्मं-(स्व परके) मर्म को, ण उदाहरे-प्रकाशित न करता हो।

भावानुवाद-निम्न आठ स्थानो-कारणो से व्यक्ति शिक्षाशील शिक्षा का पात्र बनता है -

1 जो अधिक हसी-मजाक नहीं करता है।
2 जो सदा इन्द्रियों को वश मे रखकर शान्त-दान्त रहता है।
3 जो किसी के मर्म को प्रकाशित-प्रकट नहीं करता है।

5 शिक्षा प्राप्ति के शेष पाच साधक कारण

मूल गाथा- णासीले ण विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अक्कोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई॥5॥

सस्कृत छाया- नाऽशीलो न विशील, न स्यादतिलोलुप।
अक्रोधन सत्यरत, शिक्षाशील इत्युच्यते॥5॥

अन्वयार्थ-असीले-शील रहित, ण-नहीं हो, विसीले-खडित (दूषित) शील वाला, ण-नहीं हो, अइलोलुए-अतिलोलुप, ण सिया-न होवे, अकोहणे-क्रोध से रहित, सच्चरए-सत्य भाषण मे रत, सिक्खासीले-शिक्षाशील, त्ति-ऐसा, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-4 जो पूर्णतया शुद्ध आचार वाला हो, आचारहीन न हो।

5 जो विशील-कलकित अथवा खण्डित आचार वाला न हो।

6 जो रसलोलुप अर्थात् स्वाद के प्रति आसक्त न हो।

7 जो क्रोध से रहित हो।

8 जो सत्य के प्रति अनुरक्त हो।

6 अविनीतता के स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- **अह चउद्दसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ सजए।**
अविणीए वुच्चई सो उ, णिव्वाण च ण गच्छइ॥६॥

सस्कृत छाया- **अथ चतुर्दशसु स्थानेषु, वर्तमानस्तु सयत।**
अविनीत उच्यते स तु, निर्वाण च न गच्छति॥६॥

अन्वयार्थ-अह-अब, चउद्दसहिं-चौदह, ठाणेहिं-स्थानो मे, वट्टमाणे-वर्तन करने वाला, उ-(पादपूर्ति), सजए-सयत साधु है, सो-वह, अविणीए-अविनीत, वुच्चई-कहा जाता है, च-और, उ-फिर, णिव्वाण-निर्वाण को, ण गच्छइ-नहीं जाता है।

भावानुवाद-निम्नोक्त चौदह आचरणो मे वर्तन करने वाला व्यक्ति-सयत अविनीत श्रमण कहलाता है, वह निर्वाण-मुक्ति को प्राप्त नहीं होता है।

7 अविनीतता के चतुर्दश स्थानो मे से चार लक्षणो का उल्लेख

मूल गाथा- **अभिक्खण कोही हवइ, पबध च पकुव्वइ।**
मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुय लद्धूण मज्जइ॥७॥

सस्कृत छाया- **अभीक्ष्ण क्रोधी भवति, प्रबन्ध च प्रकरोति।**
मैत्रीयमाणो वमति, श्रुत लब्ध्वा माद्यति॥७॥

अन्वयार्थ-अभिक्खण-बार-बार, कोही-क्रोधी, हवइ-होता है, च-और, पबध-क्रोध का (दीर्घकाल) प्रबन्ध, पकुव्वई-करता है, मेत्तिज्जमाणो-मित्रता के भाव को, वमइ-छोडता है, सुय-श्रुत को, लद्धूण-प्राप्त करके, मज्जइ-मद-अहकार करता है।

भावानुवाद-1 जो बार-बार जरा-जरा सी बातो पर क्रोध करता हो।

2 जिसका क्रोध दीर्घकाल तक बना रहता हो।

3 जो मित्रता का परित्याग करता हो।

4 जो श्रुतज्ञान को प्राप्त करके अहकार करता हो।

8 अविनीतता के चतुर्दश स्थानो मे से आठ लक्षणो तक का वर्णन

मूल गाथा- अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पइ।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावय ॥८॥

सस्कृत छाया- अपि पापपरिक्षेपी, अपि मित्रेभ्य कुप्यति।
सुप्रियस्यापि मित्रस्य, रहसि भाषते पापकम् ॥८॥

अन्वयार्थ-अवि-कदाचित्, पाव-स्खलनादि के कारण से, परिक्खेवी-(आचार्यादि का) तिरस्कार करता है अवि-कदाचित्, मित्तेसु-मित्रा पर, कुप्पइ-कोप करता है, अवि-कदाचित्, रहे-एकान्त में, सुप्पियस्स-अतिप्रिय मित्तस्स-मित्र के भी, पावय-अवगुणवाद, भासइ-बोलता है।

भावानुवाद-5 जो गलती होने पर दूसरो का तिरस्कार-अपमान करता हो।

6 जो मित्रों पर क्रोध करता हो।

7 जो अच्छे-घनिष्ठ मित्र-प्रिय मित्रा की भी एकान्त पाकर निन्दा-बुराई करता हो।

8 जो असम्बद्ध भाषी हो।

9 अविनीत के शेष लक्षण

मूल गाथा- पइण्णवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असविभागी अवियत्ते, अविणीए त्ति वुच्चई ॥९॥

सस्कृत छाया- प्रकीर्णवादी द्रोहशील , स्तब्धो लुब्धोऽनिग्रह ।
असविभाग्यप्रीतिकर , अविनयीत्युच्यते ॥९॥

अन्वयार्थ-पइण्णवाई-असबद्ध भाषी है, दुहिले-द्रोह करने वाला, थद्धे-स्तब्ध-(अहकारी) है, लुद्धे-आहारादि मे लुब्ध, अणिग्गहे-असयतेन्द्रिय, असविभागी-सविभाग न करने वाला, (असविभागी है) (तथा), अवियत्ते-अप्रीति कर है, त्ति-ऐसा, अविणीए-अविनीत, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद- 9 जो द्रोह करने वाला हो।

10 जो प्रतिपल अभिमान में चूर रहता हो।

11 जो स्वादों मे आसक्त रहता हो।

12 जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं करता है, अर्थात् इन्द्रियों का गुलाम हो।

13 जो असविभागी अर्थात् उपलब्ध भिक्षा आदि का समवितरण नहीं करता है।

14 तथा जो गुरु आदि पर अप्रीति रखने वाला हो, वह अविनीत कहलाता है।

10 सुविनीत के लक्षणो पर प्रकाश

मूल गाथा- अह पण्णरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चई।
णीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥१०॥

सस्कृत छाया- अथ पचदशभि स्थानै, सुविनीत इत्युच्यते।
नीचवर्त्यचपल, अमाय्यकुतूहल ॥१०॥

अन्वयार्थ-अह-अब, पण्णरसेहिं-पचदश, ठाणेहिं-स्थानो से (साधक), सुविणीए-सुविनीत-, त्ति-इस प्रकार, वुच्चइ-कहा जाता है, णीयावत्ती-निम्न (विनम्र होकर रहने वाला), अचवले-चपलता से रहित, अमाई-कपट भाव से रहित, अकुऊहले-कुतूहल से रहित।

भावानुवाद-पन्द्रह स्थानो-आचरणो से साधक सुविनीत कहलाता है यथा-

1 निम्न वृत्तिक अर्थात् विनम्र वृत्ति वाला।

2 अचपल-चचलता-अस्थिरता से रहित।

3 अमायी-छल-दम्भ से रहित।

4 अकुतुहली-कुतूहल भण्ड कुचेष्टा से रहित।

11 विनीतता के अन्य लक्षणो का वर्णन

मूल गाथा- अप्प च अहिक्खिवइ, पबध च ण कुव्वइ।
मेत्तिज्जमाणो भयई, सुय लद्धु ण मज्जई ॥११॥

सस्कृत छाया- अल्प चाऽधिक्षिपति, प्रबन्ध च न करोति।
मैत्रीयमाणो भजते, श्रुत लब्ध्वा न माद्यति ॥११॥

अन्वयार्थ-च-और, अप्प-थोडा (भी), अहिक्खिवइ-तिरस्कार नहीं करता, पवध-क्रोध का प्रवध, ण कुव्वई-नहीं करता (और), मेत्तिज्जमाणो-मित्र की मित्रता को, भयइ-(यथावत्) निभाता है, सुय-श्रुत को, लद्धु-पाकर, ण मज्जइ-मद नहीं करता है।

भावानुवाद-5 जो किसी का भी कभी अनादर-तिरस्कार नहीं करता है।

6 जो क्रोध को दीर्घकाल तक टिकने नहीं देता है।

7 जो मित्रता को यथावत् निभाता है।

8 जो श्रुतधर होकर भी अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के बाद भी अहकार नहीं करता है।

12 विनीतता के अन्य स्थानो का वर्णन

मूल गाथा- ण य पावपरिक्खेवी, ण य मित्तेसु कुप्पइ।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासइ ॥१२॥

सस्कृत छाया- न च पापपरिक्षेपी, न च मित्रेभ्य कुप्यति।
अप्रियस्यापि मित्रस्य, रहसि कल्याण भापते ॥१२ ॥

अन्वयार्थ-य-और, पाव परिक्खेवी-(आचार्यादि की) स्खलना को कहने वाला, ण-नहीं, य-तथा, मित्तेसु-मित्रो पर, ण कुप्पइ-क्रोध नहीं करता है, अप्पियस्स-अप्रिय, मित्तस्स-मित्र के लिए, अवि-भी, रहे-एकान्त में कल्लाण-कल्याण रूप वचन, भासइ-कहता है।

भावानुवाद-9 जो साधना में स्खलना हो जाने पर उसे छुपाता नहीं है अथवा बडों से कोई भूल हो जाने पर उनका अपमान नहीं करता है।

10 जो मित्रो पर कुपित नहीं होता है।

11 जो अप्रिय मित्र की भी एकान्त मे प्रशसा करता है अथवा उसके कल्याण की ही भावना करता है।

13 सुविनीत को परिभाषा

मूल गाथा- कलहडमरवज्जिए, बुद्धे अभिजाइए।
हिरिम पडिसलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चइ ॥१३॥

सस्कृत छाया- कलहडमरवर्जक, बुद्धो ऽभिजातिक।
हीमान् प्रतिसलीन, सुविनीत इत्युच्यते ॥१३ ॥

अन्वयार्थ-(जो), कलह डमर-कलह और प्राणिघात आदि से, वज्जिए-वर्जित हो, बुद्धे-बुद्धिमान हो, अभिजाइए-कुलीन (सयम भार का निर्वाह करने वाला), हिरिम-लज्जावान्, पडिसलीणे-इन्द्रियों को वश में करने वाला, सुविणीए-सुविनीत, त्ति-इस प्रकार, वुच्चइ-कहा जाता है।

भावानुवाद-12 जो कलह-वाक्युद्ध एव डमर-मारपीट उपघात आदि नहीं करता है।

13 जो अभिजात्य-कुलीन और प्रतिभा सम्पन्न होता है।

14 जो लज्जाशील-लिए हुए सयम भार को निभाने वाला होता है।

15 जो प्रति सलीन-इन्द्रियो और मन को वश में रखने वाला होता है।

वह बुद्धिमान् साधु सुविनीत कहलाता है।

14 शिक्षा पाने योग्य शिष्य के लक्षण

मूल गाथा- वसे गुरुकुले णिच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्ख लद्धुमरिहइ॥ १३॥

सस्कृत छाया- वसेद् गुरुकुले नित्य, योगवानुपधानवान्।
प्रियङ्कर प्रियवादी, स शिक्षा लब्धुमर्हति ॥१३ ॥

अन्वयार्थ-(जो) णिच्च-सदा, गुरुकुले-गुरुकुल मे, वसे-निवास करता हो, जोगव-योगवान् हो, उवहाणव-उपधान तप वाला, पियकरे-प्रिय हित करने वाला हो, पियवाई-प्रिय बोलने वाला, से-वह, सिक्ख-शिक्षा, लद्धु-प्राप्त करने के, अरिहइ-योग्य होता है।

भावानुवाद-जो मुनि सदैव गुरुकुल अर्थात् गुर के सन्निकट रहता है, उनकी सेवा मे समर्पित रहता है, जो योग-समाधि और उपधान-आगमिक अध्ययन की विशेष पद्धति मे सलग्न रहता है, प्रिय करने वाला और प्रियकारी बोलने वाला हो, वह शिक्षा प्राप्ति का पात्र होता है।

15 बहुश्रुत की निर्मलता   शख की उपमा

मूल गाथा- **जहा सखम्मि पय, णिहिय दुहओ वि विरायइ।**
एव बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुय ॥१५॥

सस्कृत छाया- **यथा शखे पयो, निहित द्विधापि विराजते।**
एव बहुश्रुते भिक्षौ, धर्म कीर्तिस्तथा श्रुतम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, सखम्मि-शख मे, णिहिय-निहित (रखा हुआ), पय-दूध, दुहओ-दो प्रकार से, विरायइ-विराजता है, शोभा पाता है, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, भिक्खू-भिक्षु मे, धम्मो-धर्म, कित्ती-कीर्ति, तहा-तथा, सुय-श्रुत (शोभा पाता है)।

भावानुवाद-जैसे शख मे रखा हुआ दुग्ध दोनो के स्वय अपने और अपने आधार के गुणो को सुशोभित करता है अर्थात् निर्मल और पवित्र बना रहता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु मे धर्म, कीति और श्रुत भी दोनो ओर से सुशोभित होते हैं, उज्ज्वल बने रहते है।

16 बहुश्रुत की गति प्रधानता   आकीर्ण अश्व की उपमा

मूल गाथा- **जहा से कम्बोयाण, आइण्णे कथए सिया।**
आसे जवेण पवरे, एव हवइ बहुस्सुए ॥१६॥

सस्कृत छाया- **यथा स कम्बोजाना, आकीर्ण कन्थक स्यात्।**
अश्वो जवेन प्रवर , एव भवति बहुश्रुत ॥१६॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, से-वह, कम्बोयाण-कम्बोज देश मे जन्मे घोडे में, आइण्णे-आकीर्ण (शीलादिगुणो से युक्त), कथए-कथक प्रधान, आसे-घोडा, सिया-होता है (जो), जवेण-गति (वेग मे भी), पवरे-प्रधान होता है, एव-इस प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जिस प्रकार कम्बोज देशोत्पन्न अश्वो में कथक घोडा जातिमान-प्रधान और वेग मे उत्तम होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत श्रेष्ठ-प्रधान होता है।

17 वहुश्रुत का पराक्रम अश्वारूढ शूरवीर की उपमा

मूल गाथा- जहाइण्णसमारुढे, सूरे दढपरक्कमे।
उभओ णदिघोसेण, एव हवइ बहुस्सुए॥१७॥

सस्कृत छाया- यथाऽऽकीर्णसमारूढ , शूरो दृढपराक्रम ।
उभयतो नदिघोषेण, एव भवति बहुश्रुत ॥१७॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, आइण्णे-आकीर्ण घाडे पर, समारूढे-चढा हुआ, दढपरक्कमे-दृढ पराक्रम वाला, सूरे-शूरवीर, उभओ-दोनो ओर से, णदि घोसेण-नदीघोष से युक्त (सुशोभित) होता है, एव-इसी प्रकार, वहुस्सुए-बहुश्रुत (सुशोभित), हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे आकीर्ण उत्तम जातिवान् अश्व पर आरूढ दृढ पराक्रमी शूरवीर उभयत होने वाली नन्दी घोषों-विजय वाद्यों की जय-जयकारो से सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी उभयत सुशोभित होता है।

18 वहुश्रुत का वल कुजर की उपमा

मूल गाथा- जहा करेणुपरिकिण्णे, कुजरे सट्ठिहायणे।
बलवते अप्पडिहए, एव हवइ बहुस्सुए॥१८॥

सस्कृत छाया- यथा करेणुपरिकीर्ण , कुञ्जर षष्ठिहायन ।
बलवानप्रतिहत , एव भवति बहुश्रुत ॥१८॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, करेणु-परिकिण्णे-हथिनियो से घिरा हुआ, सट्ठिहायणे-60 वर्ष का, वलवते-बलवान, कुजरे-हाथी, अप्पडिहए-अप्रतिहत (न हारने वाला) होता है, एव-वैसे ही, वहुस्सुए-बहुश्रुत (भी), हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे साठ वर्ष का बलिष्ठ किसी से पराजित नहीं होने वाला हाथी हथनिया स घिरा हुआ शोभा पाता है, उसी प्रकार श्रुत सम्पन्न अजेय बहुश्रुत भी शोभा पाता है।

19 वहुश्रुत का धैर्य वृषभ की उपमा

मूल गाथा- जहा से तिक्खसिंगे, जायखधे विरायइ।
वसहे जूहाहिवई, एव हवइ बहुस्सुए॥१९॥

सस्कृत छाया- यथा स तीक्ष्णशृग , जातस्कन्धो विराजते।
वृषभो यूथाधिपति , एव भवति बहुश्रुत ॥१९॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, से-वह, तिक्खसिंग-तीक्ष्ण सींगों वाला, जायखधे-उन्नत स्कन्ध वाला, जूहाहिवई-गो वर्ग अधिपति (स्वामी), वसहे-वृषभ, विरायइ-शोभा पाता है, एवं-इसी प्रकार, वहुस्सुए-बहुश्रुत भी, हवइ-होता है (शोभा पाता है)।

भावानुवाद-जैसे तीक्ष्ण सींगो और बलिष्ठ उन्नत स्कन्धो वाला वृषभ-साड यूथ के स्वामी के रूप मे शोभायमान होता है, वैसे ही स्वमत-पर मत का ज्ञाता बहुश्रुत साधु भी गण के अधिपति के रूप मे सुशोभित होता है।

20 बहुश्रुत को सिह की उपमा

मूल गाथा- जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहसए।
सीहे मियाण पवरे, एव हवइ बहुस्सुए॥२०॥

संस्कृत छाया- यथा स तीक्ष्णदष्ट्र , उदग्रो दुष्प्रधर्ष ।
सिहो मृगाणा प्रवर , एव भवति बहुश्रुत ॥२०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, से-वह, तिक्खदाढे-तीक्ष्ण दाढो वाला, उदग्गे-उत्कट (युवा) एव, मियाणपवरे-मृगो-पशुओ में प्रधान, सीहे-सिह को, दुप्पहसए-जीतना कठिन है, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे तीक्ष्ण दाढो वाला उत्कट-पूर्ण यौवन प्राप्त दुष्पराजेय सिह सभी वन्य पशुओ मे श्रेष्ठ शक्तिशाली होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अन्य तीर्थिको मे प्रधान-श्रेष्ठ होता है।

21 अनेक समस्याओ से जूझने की बहुश्रुत की शक्ति वासुदेव की उपमा

मूल गाथा- जहा से वासुदेवे, सखचक्कगयाधरे।
अप्पडिहयबले जोहे, एव हवइ बहुस्सुए॥२१॥

संस्कृत छाया- यथा स वासुदेव , शखचक्र गदाधर ।
अप्रतिहतबलो योध , एव भवति बहुश्रुत ॥२१॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, से-वह, वासुदेवे-वासुदेव, सखचक्कगयाधरे-शख, चक्र, गदा के धारण करने वाला, अप्पडिहय बले-अप्रतिहत बल वाला (और), जोहे-महायोद्धा होता है, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे शख, चक्र और गदा का धारक वासुदेव अप्रतिहत बलशाली-पराक्रमी योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अपराजित बलशाली होता है।

22 बहुश्रुत की चक्रवर्ती की तुलना

मूल गाथा- जहा से चाउरते, चक्कवट्टी महिड्ढिए।
चोद्दसरयणाहिवई, एव हवइ बहुस्सुए॥२२॥

संस्कृत छाया- यथा स चतुरन्त , चक्रवर्ती महर्द्धिक ।
चतुर्दशरत्नाधिपति , एव भवति बहुश्रुत ॥२२॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, चाउरते-चारो दिशाओ के अन्त पर्यन्त राज्य करने वाला, से-वह, चक्कवट्टी-चक्रवर्ती महिड्ढिए-महर्द्धिक (और), चोद्दस रयणाहिवई-चौदह रत्नो का स्वामी (होता है), एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-

यहुश्रुत, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे महान् ऋद्धि का धारक, चातुरन्त चारो दिशाओं का अधिपति चक्रवर्ती चौदह रत्नों का स्वामी होता है, उसी प्रकार यहुश्रुत भी चतुर्दश पूर्वों के ज्ञान के अधिपति होते हैं।

23 बहुश्रुत का वैभव इन्द्र की उपमा

मूल गाथा- जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरंदरे।
सक्के देवाहिवई, एव हवइ बहुस्सुए॥२३॥

संस्कृत छाया- यथा स सहस्त्राक्ष, वज्रपाणि पुरंदर।
शक्रो देवाधिपति, एव भवति बहुश्रुत॥२३॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, से-वह, सहसक्खे-सहस्राक्ष (हजार आखो वाला), वज्जपाणी-वज्रपाणी (वज्र हाथ में लिये हुए) ऐसे, पुरदरे-दैत्यों का विदारण (भेदन) करने वाला सक्के-शक्र (इन्द्र), देवाहिवई-देवों का अधिपति (होता है), एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे सहस्र चक्षु, वज्रपाणी-हाथ मे वज्र धारण करने वाला, पुरन्दर-शक्रेन्द्र देवताओं का अधिपति होता है, वैसे ही बहुश्रुत होता है।

24 बहुश्रुत का तेज एव प्रकाश सूर्य की उपमा

मूल गाथा- जहा से तिमिरविद्धंसे, उच्चिट्ठंते दिवायरे।
जलंते इव तेएण, एव हवइ बहुस्सुए॥२४॥

संस्कृत छाया- यथा स तिमिरध्वसक, उत्तिष्ठन्दिवाकर।
ज्वलन्निव तेजसा, एव भवति बहुश्रुत॥२४॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, तिमिर विद्धसे-अधकार का विध्वस (नाश) करने वाला, उच्चिट्ठते-उदय होता हुआ, से-वह, दिवायरे-दिवाकर (सूर्य), तेएण-अपने तेज से, जलते-जाज्वल्यमान-सा (जलता हुआ), इव-प्रतीत होता है, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, तेजस्वी, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे अन्धकार का नाशक उदित होता हुआ सूर्य अपने तेज से अत्यन्त तेजस्वी-दीप्तिमान जलता हुआ-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अपने ज्ञान तेज से तेजस्वी होता है।

25 बहुश्रुत की सौम्यता तथा अन्यगुण पूर्णता पूर्ण चन्द्रमा की उपमा

मूल गाथा- जहा से उडुवई चंदे, णक्खत्तपरिवारिए।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एव हवइ बहुस्सुए॥२५॥

संस्कृत छाया- यथा स उडुपतिश्चन्द्र, नक्षत्रपरिवारित।
प्रतिपूर्ण पौर्णमास्या, एव भवति बहुश्रुत॥२५॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, णक्खत्तपरिवारिए-नक्षत्रो (तारागण) से परिवृत्त हुआ, उडुवई-नक्षत्रो का अधिपति, से-वह, चदे-चन्द्रमा, पुण्णमासीए-पूर्णिमा को, पडिपुण्णे-परिपूर्ण विराजता है, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत (मुनि-परिवार से परिवृत्त), हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे पूर्णमासी को नक्षत्रो से परिवृत्त, परिपूर्ण नक्षत्रो का अधिपति चन्द्रमा सर्वकलाआ से युक्त होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी जिज्ञासु-शिष्य साधुओ के परिवार से घिरा हुआ ज्ञानादि कलाओ से परिपूर्ण होता है।

26 बहुश्रुत की धारणा शक्ति कोष्ठागार की उपमा

मूल गाथा- **जहा से सामाइयाण, कोट्ठागारे सुरक्खिए।**
णाणाधण्णपडिपुण्णे, एव हवइ बहुस्सुए॥२६॥

सस्कृत छाया- **यथा स सामाजिकाना, कोष्ठागार सुरक्षित ।**
नानाधान्यप्रतिपूर्ण , एव भवति बहुश्रुत ॥२६॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, सामाइयाण-सामाजिको (किसानो, व्यापारियो आदि) का, कोट्ठागारे-कोठार, णाणाधण्णपडिपुण्णे-नाना प्रकार के धान्यो से परिपूर्ण, सुरक्खिए-सुरक्षित (होता है), एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत (नाना प्रकार के शास्त्र ज्ञान से परिपूर्ण), हवइ-होता है।

भावानुवाद-जिस प्रकार सामाजिक अर्थात् कृषक या व्यापारियो का कोष्ठागार (भण्डार) नाना प्रकार के धानो से परिपूर्ण और सुरक्षित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अनेक प्रकार के श्रुतज्ञान से परिपूर्ण होता है।

27 बहुश्रुत की श्रेष्ठता जम्बू वृक्ष की उपमा

मूल गाथा- **जहा सा दुमाण पवरा, जबू णाम सुदसणा।**
अणाढियस्स देवस्स, एव हवइ बहुस्सुए॥२७॥

सस्कृत छाया- **यथा सा द्रुमाणा प्रवरा, जम्बूर्नाम सुदर्शना।**
अनादृतस्य देवस्य, एव भवति बहुश्रुत ॥२७॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, सा-वह, सुदसणा णाम-'सुदर्शन' नामक, जबू-जम्बू वृक्ष, दुमाण-वृक्षों मे, पवरा-प्रधान, अणाढियस्स-अनादृत, देवस्स-देवता के द्वारा अधिष्ठित हैं, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत (साधुओ में श्रेष्ठ व श्रुत देवता का अधिष्ठान), हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे 'अनादृत' देव के द्वारा अधिष्ठित सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष सब वृक्षा मे श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब श्रमणो मे श्रेष्ठ होता है।

28 बहुश्रुत की मोक्ष गामिता सीता नदी की उपमा

मूल गाथा- **जहा सा णईण पवरा, सलिला सागरगमा।**
सीया णीलवतपवहा, एव हवइ बहुस्सुए॥२८॥

संस्कृत छाया- यथा सा नदीना प्रवरा, सलिला सागरगमा।
सीता नीलवत्प्रवहा, एव भवति बहुश्रुत ॥२८॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, णीलवत-नीलवत (वर्षधर पर्वत) से, पवहा-उत्पन्न (निकली) हुई, सलिला-(सदैव) जल से पूण, णईण-नदियो में, पवरा-प्रधान, सा-वह, सीया-सीता नदी, सागरगमा-(अन्त में) सागर गामिनी है, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, साधुओ में प्रधान अन्त में मोक्षगामी, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे नीलवन्त पर्वत से प्रवाहित, जल प्रवाह से परिपूर्ण, समुद्र मे विलीन होने वाली महानदी सीता सब नदियो में प्रधान-श्रेष्ठ है, वैसे ही बहुश्रुत भी सर्वश्रेष्ठ होता है।

29 बहुश्रुत की उच्चता एव महत्ता मन्दर पर्वत की उपमा

मूल गाथा- जहा से णगाण पवरे, सुमह मदरे गिरी।
णाणोसहिपज्जलिए, एव हवइ बहुस्सुए॥२९॥

संस्कृत छाया- यथा स नगाना प्रवर , सुमहान्मन्दरो गिरि ।
नानौषधिप्रज्वलित , एव भवति बहुश्रुत ॥२९॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, से-वह, मदरगिरी-मन्दरपर्वत (मेरुगिरी), णगाण-पर्वतो मे, पवरे-प्रधान, सुमह-अतिशय महान् (तथा), णाणोसहि-नाना प्रकार की औषधियो से, पज्जलिए-प्रज्वलित है, एव-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत (महान् एव प्रदीप्त), हवइ-होता है।

भावानुवाद-अनेक प्रकार की औषधिया से दीप्तिमान महान् सुमेरु पर्वत जैसे सब पर्वतो में श्रेष्ठ है, वैसे ही बहुश्रुत सब मुनियो मे श्रेष्ठ होता है।

30 बहुश्रुत की अक्षयता एवं परिपूर्णता स्वयभूरमण समुद्र की उपमा

मूल गाथा- जहा से सयभूरमणे, उदही अक्खओदए।
णाणारयणपडिपुण्णे, एव हवइ बहुस्सुए॥३०॥

संस्कृत छाया- यथा स स्वयभूरमण , उदधिरक्षयोदक ।
नानारत्नप्रतिपूर्ण , एव भवति बहुश्रुत ॥३०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, स-वह, सयभूरमणे-स्वयभूरमण, उदही-समुद्र, अक्खओदए-अक्षय उदक (जल) को धारण करने वाला णाणा-नाना प्रकार के, रयण-रत्नो से, पडिपुण्णे-परिपूर्ण है, एवं-इसी प्रकार, बहुस्सुए-बहुश्रुत, हवइ-होता है।

भावानुवाद-जैसे सदा-सर्वदा अक्षय जल राशि से परिपूर्ण स्वयभूरमण समुद्र विविध रत्नों से परिपूर्ण रहता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अनेक ज्ञान रत्नों से परिपूर्ण होता है।

31 बहुश्रुत की सिद्धि गति समुद्र की गभीरता की उपमा

मूल गाथा-

समुद्दगम्भीरसमा दुरासया,
अचक्किया केणइ दुप्पहसया
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो,
खवित्तु कम्म गइमुत्तम गया ॥३१॥

सस्कृत छाया-

समुद्रगभीरसमा दुरासदा,
अचक्रिता केनापि दुःप्रधर्षा ।
श्रुतेन पूर्णा विपुलेन त्रायिण,
क्षपयित्वा कर्म गतिमुत्तमा गता ॥३१॥

अन्वयार्थ-समुद्दगभीरसमा-समुद्र के समान गभीर, दुप्पहसया-नहीं जीता जा सकने वाला, केणइ-किसी से भी (परीषह आदि से), अचक्किया-अविचलित (पराजित नहीं), दुरासया-अभिभूत न होने वाला, विउलस्स-विपुल (विस्तीर्ण), सुयस्स-श्रुत (शास्त्र ज्ञान) से, पुण्णा-पूर्ण, ताइणो-(षट्काय का), त्राता-रक्षक (बहुश्रुत), कम्म-कर्मों को, खवित्तु-क्षय करके, उत्तम-उत्तम, गइ-गति (सिद्धि गति) को, गया-प्राप्त हुआ है।

भावानुवाद-समुद्र के समान गभीर, दुरासद-प्रतिवादियो से अजेय परीषह आदि से अविचलित-किसी से अप्रतिहत अपराजेय, विपुल श्रुतज्ञान से परिपूर्ण षट्काय रक्षक ऐसे बहुश्रुत मुनि कर्मों का क्षय करके सर्वोत्तम सिद्धि गति को प्राप्त हुए व होते हैं।

32 श्रुताभ्यास की प्रेरणा

मूल गाथा-

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए।
जेणप्पाण पर चेव, सिद्धि सपाउणेज्जासि ॥३२॥

त्ति बेमि

इति बहुसुयपुज्ज एगारस अज्झयण समत्त

सस्कृत छाया-

तस्माच्छ्रुतमधितिष्ठेत्, उत्तमार्थगवेषक ।
येनात्मान पर चैव, सिद्धि सप्रापयेत् ॥३२।

इति ब्रवीमि

इति बहुश्रुतपूजनैकादशमध्ययन समाप्तम् ॥

अन्वयार्थ-तम्हा-इसलिए, उत्तमट्ठ-उत्तम (मोक्ष रूप) अर्थ की, गवेसए-गवेषणा करने वाला (साधक), सुय-श्रुत शास्त्र का, अहिट्ठिज्जा-अध्ययन करे, जेण-जिससे कि, अप्पाण-अपने आपको, च-और, पर-दूसरे को एव-निश्चय (अवश्य) ही, सिद्धि-सिद्धि (मुक्ति) को, सपाउणेज्जासि-सम्प्राप्त करा सके।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हूं।

भावानुवाद-इसलिए उत्तम अर्थ-मोक्ष का गवेषक मुनि श्रुतज्ञान का आश्रय ले, जिसके द्वारा वह स्वयं अपनी आत्मा को व दूसरों को भी सिद्धि-मोक्ष प्राप्त करा सके।

ऐसा मैं कहता हूं।

इस प्रकार बहुश्रुत पूज्य नामक ग्यारहवां अध्ययन समाप्त हुआ।

❑❑❑

हरिकेशीय - द्वादश अध्ययन

उत्थानिका

भगवान् महावीर का दर्शन गुणात्मकता का दर्शन है और यह गुणात्मकता जातिवाद से प्रतिबाधित नहीं होती है। साधना मे गति-प्रगति का आधार गुणात्मकता का विकास ही है। अत साधना के लिए किसी जाति विशेष मे उत्पन्न होने की अनिवार्यता नहीं है। अनिवार्यता है तो गुणात्मकता के विकास की। कृत्रिम जाति मे उत्पन्न होने मात्र स श्रेष्ठ गुणा की प्राप्ति नहीं हा जाती है। जन्मना चाण्डाल होने पर भी व्यक्ति साधनात्मक गुणो मे महान् हो सकता है। विपरीत इसके जन्मना उच्च कुलीन माना जाने वाला भी व्यसनी और गुणवत्ता की दृष्टि से एकदम हीन हो सकता है।

उच्च गति का आधार भी किसी जाति विशेष मे जन्म लेना नहीं हो जाता है। कोई भी जाति दुर्गति मे जाने से रोक नहीं सकती और कोई जाति सद्गति का प्रमाण पत्र नहीं दे सकती है। सब कुछ गुणो-आचरणो के विकास और साधना की तारतम्यता पर आधारित है।

जैन दर्शन के इस मूलभूत सिद्धान्त को एक मर्मस्पर्शी किन्तु रोचक सत्य घटना के द्वारा इस अध्ययन मे स्पष्ट किया गया है।

बालक हरिकेशबल पूव म जन्म के जातिमद-जाति सम्बन्धी अहकार के कारण चाडाल कुल में अत्यन्त कुरूपता लिए हुए उत्पन्न हुआ। जैसी उसके तन की वर्ण और आकृति से कुरूपता थी वैसी ही उसकी प्रकृति भी अत्यन्त कठोर थी। अपनी दैहिक कुरूपता एव क्रोधी झगडालु प्रकृति के कारण वह पास-पडौसियो का ही नहीं, स्वय अपने परिवार वालो का भी प्रिय नहीं रह सका। उसके समवयी बालक भी उससे घृणा करते थे। घर-बाहर सभी की उपक्षा और घृणा से वह अधिक से अधिक कठोर बनता चला गया।

एक बार नगर के बाहर के सभी चाडाल जाति के व्यक्ति अपना कोई जातीय उत्सव मना रहे थे। हरिकेश बल भी उस उत्सव मे गया किन्तु अपनी अभद्र आकृति एव गुस्सेल प्रकृति के कारण कोई भी किशोर उसके साथ क्रीडा करने को अथवा बातचीत करने को तैयार नहीं था। वह एकाकी बैठा हुआ उत्सव में चल रहे आमोद-प्रमोद को टुकर-टुकर देख रहा था। उसे अपनी इस दयनीय दशा पर स्वय ही क्षोभ और दु ख उत्पन्न हो रहा था।

उस समय वहा पर नाग (सप) निकल आया। बच्चे चिल्लाने लगे साप साप साप और कुछ बडे लोग दौडे आए और उस नाग को तत्काल मार दिया। कुछ समय बाद ही वहा पर एक बडी लम्बी गोह-अलशिक (दो मुही) आ निकली। लोगो ने उसे देखकर मार नहीं अपितु उसकी पूजा करने लगे।

कुछ दूरी पर खड़ा हरिकेशबल भी यह सब दृश्य देख रहा था। एक समान दिखने वाले दोनों प्राणियों के [illegible] इतना भिन्न व्यवहार, उसके चिन्तन का सूत्र बन गया था और उस सूत्र पर वह मन ही मन टीका और [illegible] लगा। एक सामान्य-सी घटना ने उसके समस्त चिन्तन को अन्तर्मुखी बना दिया। वह चिन्तन के द्वारा इस निष्क[illegible] पहुचा कि सर्प को इसलिए मारा गया कि उसके अन्दर विष है, वह सबके रोष का पात्र होता है और दामुही [illegible] निर्विष है, उससे किसी को कोई खतरा नहीं, कहीं मेरा तिरस्कार मेरे अन्दर भरे हुए क्रोध रूपी विष के [illegible] नहीं है? मेरी क्रूरता एव कठोरता ही मेरी प्रताडना का कारण तो नहीं। यदि मैं इस अलशिक (दामुही) के [illegible] निर्विष होता तो मेरा यह अपमान क्यों होता? क्यों आज इतनी भीड में भी मुझे एकाकी बैठना पड़ता? यह [illegible] कि व्यक्ति अपने दुर्गुणों से तिरस्कृत होता है और अपने गुणों से ही पूजा जाता है।

यह चिन्तन उस चाडाल पुत्र हरिकेशबल के अन्तरग मे गहरा पैठ गया, उसके अन्त स्थल का [illegible] उस चिन्तन ने उसके ज्ञान चक्षुओ को उद्घाटित कर दिया, उसे जातिस्मरण (अपने पूर्व जन्मो का) ज्ञान [illegible] पूर्व जन्मो की स्मृति के जागृत होते ही हरिकेशबल को जाति एव रूप अभिमान के द्वारा किए गए [illegible] स्मरण हो आया तथा साथ ही श्रमण जीवन की उच्च साधना की भी स्मृति हो आई। बस, अब क्या था [illegible] वह युवक आत्म साधना के मगल पथ पर, जातीयता का बन्धन इसमे किसी भी प्रकार की रुकावट नहीं [illegible] वास्तव में जन्म सम्बन्धी जाति से साधना का सम्बन्ध हो ही क्या सकता है? अत गुणात्मक साधना किसी भी [illegible] में की जा सकती है।

चाडाल कुलोत्पन्न हरिकेशबल श्रमण बन गए और बन गए तिरस्कर्ताओं के वदनीय, अन्तरग वैराग्य [illegible] प्रभावित होकर दीक्षा लेने के बाद मुनि हरिकेशबल उत्कट तपस्या में सल्लीन हो गए। उग्र तपश्चरण के द्वारा [illegible] शरीर को ही नहीं, कषायो और वासना के विष को भी क्षीण कर दिया। एक बार वे वाराणसी के उद्यान में ठहरे हुए थे। नगर से यदा-कदा भिक्षा ग्रहण करते और अधिकाशत तप साधना में मग्न रहते। उसी उद्यान में तिन्दुक [illegible] एक यक्ष निवास करता था। वह मुनि की तप साधना से प्रभावित होकर अपने सहयोगी-साथी यक्षों के साथ मुनि की सेवा उपासना करने लगा।

एक बार वाराणसी नरेश कौशलिक की पुत्री भद्रा अपने दास-दासियों के साथ उद्यान में यक्ष पूजन हेतु आई। वहा उसने शरीर से बीभत्स एव मलिन मुनिवर को देखा तो मुनि की उस कुरूपता से घृणा करती हुई उसने मुनि पर थूक दिया।

महान् तपोधनी मुनि श्रेष्ठ का राजकुमारी द्वारा किया गया यह अपमान यक्ष के लिए असह्य हो गया। [illegible] 'समो निदा पससासु' के अनुसार समत्व साधना म लीन थे। किन्तु मुनि प्रवर के भक्त यक्ष ने [illegible] राजकुमारी को शिक्षा देने के लिए तथा मुनि प्रवर के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए तत्काल राजकुमारी को [illegible] बना दिया और अपनी दैविक शक्ति के द्वारा दासियों सहित उद्यान से उठा कर राजमहलों में ला पटका। पूरे राज[illegible] में कोलाहल मच गया। राजकुमारी की ऐसी विक्षिप्त दशा देखकर सम्पूर्ण अन्त पुर ही नहीं [illegible] चिन्तित हो उठा। अनेकों वैद्यों को बुलाया गया, उपचार करवाया गया, किन्तु सब कुछ निरर्थक सिद्ध हुआ। राजकुमारी के रोग में अणुमात्र का भी अन्तर नहीं पडा। अन्त में यक्ष स्वय अदृश्य रहकर राजकुमारी के [illegible] शरीर में आकर उसके मुह से बोलने लगा, "मैं इस मन्दिर का यक्ष हू" और [illegible] इसने महाअपमान किया है, अत मैंने इसकी यह दशा कर दी है। अब तो मैं इसे इस रोग से [illegible]

यह उस महातपस्वी महाश्रमण से विवाह की स्वीकृति दे। यदि यह अथवा राजा इसके लिए तैयार नहीं हुए तो इसका अब जीवित रहना असम्भव है।

राजा एव स्वय राजकुमारी ने यह स्वीकार कर लिया कि मुनि के साथ विवाह हो और राजा अपने बहुत बडे ऐश्वर्य के साथ राजकुमारी को लेकर यक्ष के मन्दिर मे तपोधनी मुनि की सेवा मे उपस्थित होकर मुनि से क्षमायाचना करते हुए कहने लगा-'हे तपस्वी मुनि! मैं अपनी कन्या के अपराध की आपसे क्षमा मागता हू। आप इस अबोध बाला को क्षमा करे तथा इसके साथ विवाह करके हमे कृतार्थ करे।'

मुनि हरिकेशबल, जो भोग-वासना की क्षण भगुरता एव ससार की असारता से भलीभाति परिचित थे, तो वे विवाह का निमत्रण कैसे स्वीकार करते? उन्होने राजा को स्पष्ट कहा-"मेरा कोई अपमान नहीं हुआ है और मैं साधक-श्रमण हू। मैं विवाह नहीं कर सकता।"

राजा निराश होकर पुन महलो मे लौट आया और ब्राह्मण को ऋषि का रूप मानकर राजकुमारी भद्रा का विवाह राजपुरोहित रुद्र देव ब्राह्मण के साथ कर दिया।

एक बार रुद्र देव पुरोहित एक विशाल यज्ञ करवा रहे थे। यज्ञशाला मे अनेको युवा, वृद्ध, यज्ञ पाठी ब्राह्मण उपस्थित हुए थे और प्रभूत मात्रा में भोज्य सामग्री बनाई गई थी। मुनि हरिकेशबल भी अपने मासखमण (एक माह का निराहार) तप के पारणे मे भिक्षा हेतु वहीं यज्ञ मण्डप मे पहुच गए, किन्तु ब्राह्मणो ने भोजन देने से इकार कर दिया। मुनि की सेवा मे रहने वाला यक्ष ब्राह्मणो के इस व्यवहार से क्रोधित हो गया और उसने ब्राह्मणो को बहुत अधिक प्रताडित किया। सबके मुहो से रक्त बहने लगा।

भद्रा राजकुमारी, जो उस यज्ञ स्थल पर उपस्थित थी और उस तपस्वी मुनि के तपोतेज को जानती थी, उसने ब्राह्मणो को समझाया कि "ये महान् सयमी, अखण्ड ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय मुनि हैं। मेरे पिता स्वय मुझे इनके चरणा में भेट कर रहे थे किन्तु इन्होने मुझे मन से भी अस्वीकार कर दिया। आपने इनका यह जो अपमान किया यह महान् अनर्थ का कारण है। अरे, ऐसे तपस्वी मुनि तो ऐसी शक्ति रखते हैं कि सबको भस्म कर दे। आप सब इनसे क्षमायाचना करो।"

सब ब्राह्मण कुमारो ने, उनके मुखिया ने मुनि से क्षमायाचना की और वे यक्ष प्रदत्त पीडा से मुक्त हुए। स्वस्थ होकर उन्होने मुनि से आहार ग्रहण करने का आग्रह किया। मुनि ने कहा-'आहार का यहा महत्व नहीं है, मैं तो आप से यज्ञ के वास्तविक स्वरूप की चर्चा करना चाहता हू। आप लोग जो यज्ञ कर रहे हैं, क्या यह वास्तविक यज्ञ है?'

और फिर यज्ञ के विषय मे जो विस्तृत चर्चा हुई वह इस अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है। मुनि ने यज्ञ की मौलिक व्याख्या किस रूप मे प्रस्तुत की और उन ब्राह्मणो को किस प्रकार प्रतिबोधित किया यह प्रस्तुत अध्ययन मे बताया गया है।

इस अध्ययन के दो मूलभूत प्रतिपाद्य हैं-एक कृत्रिम जातिवाद पर करारा प्रहार अर्थात् जाति जन्म से नहीं कर्म-गुणो के आधार पर बनती है और जाति, चाहे वह जन्म जनित हो या कर्म जनित, आत्म कल्याण की साधना में बाधक नहीं बन सकती है। दूसरा यज्ञ-याग की हिंसाजनक क्रिया काण्डी प्रवृत्ति की निरर्थकता का परिबोध।

प्रस्तुत अध्ययन में मुनि हरिकेश बल के यज्ञशाला में प्रवेश के बाद का प्रसग वर्णित है। पूर्व कथा मूल ग्रन्थ में केवल साकेतिक रूप मे ही उपलब्ध होती है, जिसे वृत्तिकारो ने परम्परा से उल्लिखित किया है। ☐☐☐

हरिकेशीय - द्वादश अध्ययन

सूक्ति साराश •

उत्कृष्ट कर्म साधना है, निकृष्ट कर्म विराधना।
साधुता किंवा साधना का सम्बन्ध जातीयता से नहीं है।

साधना का सम्बन्ध बाह्य रूप से नहीं, अन्तरग वृत्तियो से है।
आकार-प्रकार, वेश-विन्यास अथवा सुरूप-कुरूप साधना को प्रतिबंधित नहीं करते।

साम्प्रदायिक नहीं-धार्मिक बनो।
साम्प्रदायिकता का अभिनिवेश व्यक्ति को धार्मिक नहीं रहने देता है,
क्रूर बना देता है।

सम्यग्ज्ञान ही-सही समझ पैदा करता है एव मुक्ति का मार्ग बन सकता है।
वह ज्ञान भी विवादास्पद है जिसके सम्यग् अर्थ को नहीं समझा हो, चाहे वह वेद-पदार्थ ही
क्यों न हो?

साधक चेतना का एक संकल्प करोड़ों का उद्धार कर सकता है,
तो करोड़ो को भस्म भी।
साधक आत्मा का तेज करोड़ों सूर्यों से बढ़ कर होता है,
किन्तु साधक आत्माए उनका उपयोग-दुरुपयोग नहीं करती।

मुनित्व का अर्थ ही है, करुणा का स्रोत
मुनि महाकृपावन्त-करुणावन्त होते हैं,
वे किसी का अहित सोच भी नहीं सकते हैं।

व्यक्ति जन्म से नहीं, गुणों से महान् बनता है।
तप-साधना की तेजस्विता के समक्ष जाति का तेज टिक नहीं सकता।

तप-अग्नि से कर्म-समिधा को जलाना ही सच्चा यज्ञ है।
हिंसाकारी यज्ञ-यज्ञ नहीं, वधशाला है।
वह धार्मिक उपासना नहीं, उपासना का उपहास है।

शरीर की नहीं, आत्मा पर लगी कर्म-रज की सफाई करो।
धर्म-सरोवर-ब्रह्मचर्य तीर्थ में ऐसा स्नान करो जो शरीर का नहीं,
आत्मा का मैल साफ कर दे।

ᑌᑌᑐ

अह हरिएसिज्जं बारहं अज्झयणं

अथ हरिकेशीयं द्वादशमध्ययनम्

हरिकेशीय

1 हरिकेश मुनि का परिचय

मूल गाथा- सोवागकुलसभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।
हरिएसबलो णाम, आसि भिक्खू जिइदिओ ॥1॥

सस्कृत छाया- श्वपाककुलसभूत, उत्तरगुणधरो मुनि ।
हरिकेशबलो नाम, आसीद् भिक्षुर्जितेन्द्रिय ॥१॥

अन्वयार्थ-सोवाग-चाडाल, कुल-कुल में, सभूओ-उत्पन्न हुआ, गुणुत्तरधरो-प्रधान गुणो का धारक, मुणी-मुनि, हरिएसबलो-हरिकेशबल, णाम-नाम वाला, भिक्खू-साधु, जिइदिओ-जितेन्द्रिय, आसि-हुआ।

भावानुवाद-हरिकेशबल नामक मुनि श्वपाक-चाण्डाल कुल मे उत्पन्न हुए थे, तथापि ज्ञानादि श्रेष्ठतम गुणों के धारक तथा जितेन्द्रिय भिक्षु-श्रमण थे।

2 हरिकेश मुनि के गुणो का वर्णन

मूल गाथा- इरिएसणभासाए, उच्चारसमिईसु य।
जओ आयाणणिक्खेवे, सजओ सुसमाहिओ ॥2॥

सस्कृत छाया- ईर्येषणाभाषा, उच्चार समितिषु च।
यत आदाननिक्षेपे, सयत सुसमाहित ॥२॥

अन्वयार्थ-वे, इरि-ईर्या, एसण-एसणा, भासाए-भाषा, उच्चार-उच्चार (प्रस्रवण खेल जल्ल सिघाण परिस्थापनिका), य-और, आयाण-णिक्खेवे-आदान-निक्षेप, समिईसु-समितियो में, जओ-यत्नशील, सुसमाहिओ-श्रेष्ठ समाधिवान, सजओ-सयमी पुरुष थे।

भावानुवाद-वे ईर्या, एषणा, भाषा, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल सिघाण परिस्थापनिका, आदान-निक्षेप, इन पाच समितियो के प्रति यत्नशील एव सुसमाधिवन्त सयति-मुनि थे।

3 यज्ञ पाटक में भिक्षार्थ गमन

मूल गाथा- मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
भिक्खट्ठा बंभइज्जम्मि, जण्णवाडे उवट्ठिओ॥3॥

संस्कृत छाया- मनोगुप्तो वचोगुप्तः, कायगुप्तो जितेन्द्रियः।
भिक्षार्थं ब्रह्मेज्ये, यज्ञपाटे उपस्थितः ॥३॥

अन्वयार्थ-मणगुत्तो-मनगुप्त, वयगुत्तो-वचनगुप्त, कायगुत्तो-कायागुप्त, जिइंदिओ-जितेन्द्रिय (मुनि हरिकेश एक दिन), भिक्खट्ठा-भिक्षा के लिए, बंभइज्जम्मि-ब्राह्मणों के यज्ञ में, जण्णवाडे-यज्ञवाट में, उवट्ठिओ-उपस्थित हुए।

भावानुवाद-मन, वचन और काय से सगुप्त वे जितेन्द्रिय मुनि भिक्षा हेतु ब्राह्मणों द्वारा निर्मित यज्ञ मण्डप में उपस्थित हुए।

4 याज्ञिकों द्वारा हरिकेश मुनि का उपहास

मूल गाथा- तं पासिऊण एज्जंतं, तवेण परिसोसियं।
पंतोवहिउवगरणं, उवहसंति अणारिया॥4॥

संस्कृत छाया- तं दृष्ट्वाऽऽयान्तं, तपसा परिशोषितम्।
प्रान्तोपध्युपकरणं, उपहसन्त्यनार्याः ॥४॥

अन्वयार्थ-तवेण-तप से, परिसोसियं-परिशुष्क (कृश) हुए, पंतोवहि-प्रान्त उपधि, उवगरणं-उपकरण वाले, तं-उस मुनि को, एज्जंतं-आते हुए, पासिऊण-देखकर, अणारिया-अनार्य (अशिष्ट जन-समान) उवहसंति उपहास करने लगे।

भावानुवाद-उन मुनि को, जिनका शरीर तप से सूख गया था और वस्त्रादि बाह्य उपकरण एकान्त जीर्ण-शीर्ण और मलिन हो गए थे, आते हुए देखकर वे ब्राह्मण लोग अनार्यवत् उनका उपहास करने लगे।

5 याज्ञिक ब्राह्मणों के स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- जाईमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइंदिया।
अबंभचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी॥5॥

संस्कृत छाया- जातिमदप्रतिस्तब्धा, हिंसका अजितेन्द्रियाः।
अब्रह्मचारिणो बाला, इदं वचनमब्रुवन्॥५॥

अन्वयार्थ-जाईमय-जातिमद से, पडिथद्धा-अहंकार युक्त, हिंसगा-हिंसक, अजिइंदिया-अजितेन्द्रिय, अबंभचारिणो-अब्रह्मचारी (मैथुन सेवन करने वाले), बाला-अज्ञानी (मूढ़), इमं इस प्रकार के, वयणं

। लगे-

: से प्रतिस्तब्ध-उन्मत्त, हिसक अजितेन्द्रिय ब्रह्मचर्य साधना से रहित-मैथुन वृत्तिक वे अज्ञानी
हने लगे-

खाई देते हुए मुनि का वर्णन

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे, काले विकराले फोक्कणासे।
ओमचेलए पसुपिसायभूए, संकरदूसं परिहरिय कंठे ॥६॥

संस्कृत छाया- कतर आगच्छति दीप्तरूप , कालो विकराल फोक्कनास ।
अवमचेलक पांशुपिशाचभूत , सकरदूष्य परिधृत्य कण्ठे ॥६॥

अन्वयार्थ-दित्तरूवे-दैत्य रूप (बीभत्सरूप), काले-काला (कलूटा) वर्ण वाला, विकराले-विकराल, फोक्कणासे-ऊची (बैडोल) नाक वाला, ओमचेलए-अल्प और जीर्ण वस्त्रो वाला, पसु-पिसायभूए-धूलि-धूसरित होने से, पिशाच (भूत) के सदृश, कंठे-गले मे, सकर दूस-(श्मसानी) फटा चिथडा, परिहरिय-धारण किये हुए (यह), कयरे-कौन, आगच्छइ-आता (आ रहा) है?

भावानुवाद-'यह कौन आ रहा है, जो दीप्तरूप-बीभत्स रूप वाला, काला, महाभयकर बेडोल चिपटी नाक वाला, अल्प एव जीर्ण मलिन वस्त्रो वाला तथा धूल धूसरित होने के कारण जो पिशाच जैसा दिखाई देता है, जिसने गले मे कूडे के ढेर पर फैंके हुए वस्त्र को डाल रखा है, धारण कर रखा है?'

7 हरिकेश मुनि से हुई पृच्छा

मूल गाथा- कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे, काए व आसा इहमागओ सि।
ओमचेलया पसुपिसायभूया, गच्छ क्खलाहि किमिहं ठिओ सि॥७॥

संस्कृत छाया- कतरस्त्वमित्यदर्शनीय , कया वाऽऽशयेहागतोऽसि।
अवमचेलक पांशुपिशाचभूत, गच्छाऽपसर किमिह स्थितोऽसि ॥७॥

अन्वयार्थ-अदंसणिज्जे-ओ! अदर्शनीय मूर्ति, तुम-तुम, कयरे-कौन हो? व-तथा, काए-किस, आसा-आशा से, इह-यहा, आगओसि-आया है, ओमचेलया-अरे! जीर्ण वस्त्रधारी, पसुपिसायभूया-धूलि से, पिशाच समान दिखने वाला, क्खलाहि-हमारी दृष्टि से परे, गच्छ-चले जाओ, इह-यहा, कि-क्यो, ठिओसि-खडे हो?

भावानुवाद-अरे अदर्शनीय! तू कौन है? तू यहा किस आशा से आया है? हे जीर्ण और मलिन वस्त्रा वाले पिशाच रूप जा, भाग यहा से, तू यहा क्या खडा है?

8 तिन्दुक यक्ष द्वारा शरीर पर प्रभाव

मूल गाथा- जक्खे तहिं तिंदुयरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता णियगं सरीरं, इमाइं वयणाइमुदाहरित्था ॥८॥

3 यज्ञ पाटक मे भिक्षार्थ गमन

मूल गाथा- मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
भिक्खट्ठा बम्भइज्जम्मि, जण्णवाडे उवट्ठिओ॥3॥

संस्कृत छाया- मनोगुप्तो वचोगुप्त, कायगुप्तो जितेन्द्रिय ।
भिक्षार्थं ब्रह्मेज्ये, यज्ञपाटे उपस्थित ॥३॥

अन्वयार्थ-मणगुत्तो-मनगुप्त, वयगुत्तो-वचनगुप्त, कायगुत्तो-कायागुप्त, जिइंदिओ-जितेन्द्रिय (मुनि हरिके एक दिन), भिक्खट्ठा-भिक्षा के लिए, बम्भइज्जम्मि-ब्राह्मणो के यज्ञ मे, जण्णवाडे-यज्ञवाट में, उवट्ठिओ उपस्थित हुए।

भावानुवाद-मन, वचन और काय से सगुप्त वे जितेन्द्रिय मुनि भिक्षा हेतु ब्राह्मणो द्वारा निर्मित यज्ञ मण्डप में उपस्थित हुए।

4 याज्ञिको द्वारा हरिकेश मुनि का उपहास

मूल गाथा- त पासिऊण एज्जंत, तवेण परिसोसिय।
पंतोवहिउवगरण, उवहसंति अणारिया॥4॥

संस्कृत छाया- त दृष्ट्वाऽऽयान्त, तपसा परिशोषितम्।
प्रान्तोपध्युपकरण, उपहसन्त्यनार्या ॥४॥

अन्वयार्थ-तवेण-तप से, परिसोसियं-परिशुष्क (कृश) हुए, पंतोवहि-प्रान्त उपधि, उवगरण-उपकरण वाले त-उस मुनि को, एज्जतं-आते हुए, पासिऊण-देखकर, अणारिया-अनार्य (अशिष्ट जन-समान), उवहसंति-उपहास करने लगे।

भावानुवाद-उन मुनि को, जिनका शरीर तप से सूख गया था और वस्त्रादि बाह्य उपकरण एकदम जीर्ण-शीर्ण और मलिन हो गए थे, आते हुए देखकर वे ब्राह्मण लोग अनार्यवत् उनका उपहास करने लगे।

5 याज्ञिक ब्राह्मणो के स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- जाईमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइंदिया।
अबम्भचारिणो बाला, इम वयणमब्बवी॥5॥

संस्कृत छाया- जातिमदप्रतिस्तब्धा, हिंसका अजितेन्द्रियाः।
अब्रह्मचारिणो बाला, इद वचनमब्रुवन्॥५॥

अन्वयार्थ-जाईमय-जातिमद से, पडिथद्धा-अहकार युक्त, हिंसगा-हिसक, अजिइंदिया-अजितेन्द्रिय, अबभचारिणो-अब्रह्मचारी (मैथुन सेवन करने वाले), बाला-अज्ञानी (ब्राह्मण), इमं-इस प्रकार के, वयणं-

। लगे-

, से प्रतिस्तब्ध-उन्मत्त, हिसक अजितेन्द्रिय ब्रह्मचर्य साधना से रहित-मैथुन वृत्तिक वे अज्ञानी हने लगे-

खाई देते हुए मुनि का वर्णन

कयरे आगच्छइ दित्तरुवे, काले विकराले फोक्कणासे।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, सकरदूसं परिहरिय कंठे ॥६॥

सस्कृत छाया- **कतर आगच्छति दीप्तरूप , कालो विकराल फोक्कनास ।**
अवमचेलक पाशुपिशाचभूत , सकरदूष्य परिधृत्य कंठे ॥६॥

अन्वयार्थ-दित्तरूवे-दैत्य रूप (बीभत्सरूप), काले-काला (कलूटा) वर्ण वाला, विकराले-विकराल, फोक्कणासे-ऊची (बैडोल) नाक वाला, ओमचेलए-अल्प और जीर्ण वस्त्रो वाला, पसु-पिसायभूए-धूलि-धूसरित होने से, पिशाच (भूत) के सदृश, कंठे-गले मे, सकर दूस-(श्मसानी) फटा चिथडा, परिहरिय-धारण किये हुए (यह), कयरे-कौन, आगच्छइ-आता (आ रहा) है?

भावानुवाद-'यह कौन आ रहा है, जो दीप्तरूप-बीभत्स रूप वाला, काला, महाभयकर बेडोल चिपटी नाक वाला, अल्प एव जीर्ण मलिन वस्त्रो वाला तथा धूल धूसरित होने के कारण जो पिशाच जैसा दिखाई देता है, जिसने गले मे कूडे के ढेर पर फैंके हुए वस्त्र को डाल रखा है, धारण कर रखा है?'

7 हरिकेश मुनि से हुई पृच्छा

मूल गाथा- **कयरे तुमं इय अदसणिज्जे, काए व आसा इहमागओ सि।**
ओमचेलया पसुपिसायभूया, गच्छ क्खलाहि किमिह ठिओ सि ॥७॥

सस्कृत छाया- **कतरस्त्वमित्यदर्शनीय , कया वाऽऽशयेहागतोऽसि।**
अवमचेलक पाशुपिशाचभूत, गच्छाऽपसर किमिह स्थितोऽसि ॥७॥

अन्वयार्थ-अदसणिज्जे-ओ! अदर्शनीय मूर्ति, तुम-तुम, कयरे-कौन हो? व-तथा, काए-किस, आसा-आशा से, इह-यहा, आगओसि-आया है, ओमचेलया-अरे! जीर्ण वस्त्रधारी, पसुपिसायभूया-धूलि से, पिशाच समान दिखने वाला, क्खलाहि-हमारी दृष्टि से परे, गच्छ-चले जाओ, इह-यहा, कि-क्यो, ठिओसि-खडे हो?

भावानुवाद-अरे अदर्शनीय! तू कौन है? तू यहा किस आशा से आया है? हे जीर्ण और मलिन वस्त्रो वाले पिशाच रूप जा, भाग यहा से, तू यहा क्या खडा है?

8 तिन्दुक यक्ष द्वारा शरीर पर प्रभाव

मूल गाथा- **जक्खे तहिं तिंदुयरुक्खवासी, अणुकपओ तस्स महामुणिस्स।**
पच्छायइत्ता णियग सरीर, इमाइ वयणाइमुदाहरित्था ॥८॥

संस्कृत छाया- यक्षस्तस्मिन् (काले) तिन्दुकवृक्षवासी, अनुकम्पकस्तस्य महामुने ।
प्रच्छाद्य निजकं शरीरं, इमानि वचनान्युदाहृतवान् ॥८॥

अन्वयार्थ-तहिं-उस समय, तिदुय रुक्खवासी-तिन्दुक (आबनूस) वृक्ष मे रहने वाला, जक्खे-यक्ष, तस्स-उस महामुणिस्स-महामुनि की, अणुकम्पओ-अनुकम्पा करने वाला, णियग-अपने, सरीर-शरीर को, पच्छायइत्ता प्रच्छन्न (छिपा) करके, इमाइ-इन, वयणाइ-वचना को, उदाहरित्था-बोलने लगा-

भावानुवाद-उस समय उस महामुनि के प्रति अनुकम्पा का भाव रखने वाला तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष अपने शरीर को प्रच्छन्न (छुपा हुआ रख कर) मुनि के शरीर पर प्रतिस्थापित होकर उन ब्राह्मणो को इस प्रकार बोला-

9 यक्षराज द्वारा त्यागी मुनि के भिक्षा याचना का औचित्य कथन

मूल गाथा- समणो अह संजओ बम्भयारी, विरओ धणपयणपरिग्गहाओ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अण्णस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥९॥

संस्कृत छाया- श्रमणोऽहं संयतो ब्रह्मचारी, विरतो धनपचनपरिग्रहात्।
परप्रवृत्तस्य तु भिक्षाकाले, अन्नार्थमिहाऽऽगतोऽस्मि ॥९॥

अन्वयार्थ-अह-मैं, समणो-श्रमण हू, संजओ-संयत और, बम्भयारी-ब्रह्मचारी हू, धण-धन से, पयण-अन्न के पकाने से (और), परिग्गहाओ-परिग्रह से, विरओ-निवृत्त हू (मैं), उ-तो, भिक्खकाले-भिक्षा के समय, परप्पवित्तस्स-दूसरो के लिए निष्पन्न, अण्णस्स-अन्न (आहार) के, अट्ठा-लिए, इह-यहा (यज्ञमण्डप में), आगओमि-आया हू।

भावानुवाद-वह यक्ष मुनि के मुह से बोलने लगा-'हे ब्राह्मणो! मैं श्रमण हू, संयत हू, ब्रह्मचारी हू। मैं धन-संग्रह, पचन-भोजन पकाना और परिग्रह रखना आदि प्रवृत्तियो से दूर हू-विरत हू। भिक्षा काल होने से दूसरों के लिए बने हुए भोजन म से अपना आहार लेने के लिए मैं यहा आया हू।'

10 अन्नादि के वितरण एव भोजनादि का वर्णन

मूल गाथा- वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जई, अण्णं पभूयं भवयाणमेयं।
जाणाहि मे जायणजीविणु त्ति, सेसावसेसं लहऊ तवस्सी ॥१०॥

संस्कृत छाया- वितीर्यते खाद्यते भुज्यते, चान्नं प्रभूतं भवतामेतत्।
जानीत मा याचनजीविनमिति, शेषावशेषं लभतां तपस्वी ॥१०॥

अन्वयार्थ-भवयाण-आपके (यहा), एयं-यह (प्रत्यक्ष म), पभूय-प्रचुर, अण्ण-अन्न है (जिसे), वियरिज्जइ-वितीर्ण किया जाता है, खज्जइ-खाया जाता है, भुज्जइ-भोगा जाता है, जाणहि-तुम जानते हो, मे-मेरा, जायण-याचना से, जीविणु-जीवन है, त्ति-इस प्रकार, सेस-शेष, अवससं-अवशेष (बचे हुए) में से कुछ, तवस्सी-तपस्वी को, लहऊ-मिल जाए (प्राप्त हो)।

भावानुवाद-हे ब्राह्मणो! यहा प्रभूत अन्न वितरित किया जा रहा है, खाया जा रहा है और उपयोग में लाया जा रहा

है। आप जानते हैं कि मैं भिक्षा जीवी हू, अत शेष बचे हुए भोजन मे से कुछ अन्न तपस्वी को दे लाभ प्राप्त करो।

11 याज्ञिक प्रमुख सोमदेव द्वारा भिक्षा देने का निषेध

मूल गाथा- उवक्खड भोयण माहणाण, अत्तट्ठिय सिद्धमिहेगपक्ख।
ण ऊ वय एरिसमण्णपाण, दाहामु तुज्झ किमिह ठिओ सि॥११॥

सस्कृत छाया- उपस्कृत भोजन ब्राह्मणाना, आत्मार्थक सिद्धमिहैकपक्षम्।
न तु वयमीदृशमन्नपान, तुभ्य दास्याम किमिह स्थितोऽसि॥११॥

अन्वयार्थ-इह-यहा, उवक्खड-सस्कारित (तैयार) किया हुआ, भोयण-भोजन, माहणाण-ब्राह्मणो के लिए अत्तट्ठिय-अपने वास्ते ही, सिद्ध-पकाया हुआ (निष्पन्न किया) है, इह-इस (यज्ञवाडे मे), एगपक्ख-एक पक्षीय निमित्त ही (भोजन तैयार किया है), अत वय-हम, एरिस-इस प्रकार का, अण्णपाण-अन्न पान, तुज्झ-तुमको, ण ऊ-(हर्गिज) नहीं, दाहामु-देगे, इह-फिर यहा, कि-क्यो, ठिओसि-खडा है?

भावानुवाद-रुद्रदेव-'यह उपस्कृत भोजन केवल ब्राह्मणो के लिए है। यह एक पक्षीय हमारे अपने लिये ही है, अत दूसरो को देने योग्य नहीं है, हम तुझे यज्ञार्थ निष्पन्न यह अन्न-जल नहीं देगे, फिर तू यहा किसलिये खडा है?'

12 मुनि रूपी पुण्य क्षेत्र मे दान देने की यक्ष की प्रेरणा

मूल गाथा- थलेसु बीयाइ ववति कासगा, तहेव णिण्णेसु य आससाए।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिण खु खित्त॥१२॥

सस्कृत छाया- स्थलेषु बीजानि वपन्ति कर्षका, तथैव निम्नेषु चाऽऽशसया।
एतया श्रद्धाय दद्ध्व मह्य, आराधयत पुण्यमिद खलु क्षेत्रम्॥१२॥

अन्वयार्थ-कासगा-कृषक, आससाए-उपज की आशा से, थलेसु-स्थलो (ऊचे), य-और, तहेव-उसी प्रकार से, णिण्णेसु-नीचे स्थलो (खेतो मे), बीयाइ-बीज, ववति-बोते हैं, एयाए-इसी, सद्धाए-श्रद्धा से, मज्झ-मुझे, दलाह-दे दो, इण-इस, पुण्ण-पुण्य रूपी, खित्त-क्षेत्र की, खु-अवश्य ही, आराहए-आराधना कर लो।

भावानुवाद-यक्ष-किसान अच्छी फसल की आशा से जैसे-ऊची उन्नत भूमि मे बीजों का वपन करते हैं, वैसे ही निम्न नीची भूमि मे उसी आशा से बोते हैं। इस कृपक दृष्टि से ही मुझे भिक्षा दे दो। मैं भी पुण्य क्षेत्र हू, अत इस पुण्य क्षेत्र का आराधन कर लो।

13 सोमदेव द्वारा प्रत्युत्तर

मूल गाथा- खेत्ताणि अम्ह विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहति पुण्णा।
जे माहणा जाइविज्जोववेया, ताइ तु खेत्ताइ सुपेसलाइ॥१३॥

संस्कृत छाया- यक्षस्तस्मिन् (काले) तिन्दुकवृक्षवासी, अनुकम्पकस्तस्य महामुने।
प्रच्छाद्य निजकं शरीरं, इमानि वचनान्युदाहृतवान् ॥८॥

अन्वयार्थ-तहिं-उस समय, तिंदुय रुक्खवासी-तिन्दुक (आबनूस) वृक्ष में रहने वाला, जक्खे-यक्ष, तस्स-उस, महामुणिस्स-महामुनि की, अणुकम्पओ-अनुकम्पा करने वाला, णियग-अपने, सरीर-शरीर को, पच्छायइत्ता-प्रच्छन्न (छिपा) करके, इमाइ-इन, वयणाइ-वचनो को, उदाहरित्था-बोलने लगा-

भावानुवाद-उस समय उस महामुनि के प्रति अनुकम्पा का भाव रखने वाला तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष अपने शरीर को प्रछन्न (छुपा हुआ रख कर) मुनि के शरीर पर प्रतिस्थापित होकर उन ब्राह्मणो को इस प्रकार बोला-

9 यक्षराज द्वारा त्यागी मुनि के भिक्षा याचना का औचित्य कथन

मूल गाथा- समणो अहं संजओ बम्भयारी, विरओ धणपयणपरिग्गहाओ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अण्णस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥९॥

संस्कृत छाया- श्रमणोऽहं संयतो ब्रह्मचारी, विरतो धनपचनपरिग्रहात्।
परप्रवृत्तस्य तु भिक्षाकाले, अन्नार्थमिहाऽऽगतोऽस्मि ॥९॥

अन्वयार्थ-अहं-मैं, समणो-श्रमण हू, संजओ-संयत और, बम्भयारी-ब्रह्मचारी हू, धण-धन से, पयण-अन्न के पकाने से (और), परिग्गहाओ-परिग्रह से, विरओ-निवृत्त हू (मैं), उ-तो, भिक्खकाले-भिक्षा के समय, परप्पवित्तस्स-दूसरो के लिए निष्पन्न, अण्णस्स-अन्न (आहार) के, अट्ठा-लिए, इह-यहा (यज्ञमण्डप में), आगओमि-आया हू।

भावानुवाद-वह यक्ष मुनि के मुह से बोलने लगा-'हे ब्राह्मणो! मैं श्रमण हू, संयत हू, ब्रह्मचारी हू। मैं धन-संग्रह, पचन-भोजन पकाना और परिग्रह रखना आदि प्रवृत्तियो से दूर हू-विरत हू। भिक्षा काल होने से दूसरो के लिए बने हुए भोजन मे से अपना आहार लेने के लिए मैं यहा आया हू।'

10 अन्नादि के वितरण एव भोजनादि का वर्णन

मूल गाथा- वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जई, अण्णं पभूयं भवयाणमेयं।
जाणाहि मे जायणजीविणु त्ति, सेसावसेसं लहउ तवस्सी ॥१०॥

संस्कृत छाया- वितीर्यते खाद्यते भुज्यते, अन्नं प्रभूतं भवतामेतत्।
जानीत मां याचनजीविनमिति, शेषावशेषं लभतां तपस्वी ॥१०॥

अन्वयार्थ-भवयाण-आपके (यहा), एय-यह (प्रत्यक्ष मे), पभूय-प्रचुर, अण्णं-अन्न है (जिसे), वियरिज्जइ-वितीर्ण किया जाता है, खज्जइ-खाया जाता है, भुज्जइ-भोगा जाता है, जाणाहि-तुम जानते हो, मे-मेरा, जायण-याचना से, जीविणु-जीवन है, त्ति-इस प्रकार, सेस-शेष, अवसेसं-अवशेष (बचे हुए) मे से कुछ, तवस्सी-तपस्वी को, लहउ-मिल जाए (प्राप्त हो)।

भावानुवाद-हे ब्राह्मणो! यहा प्रभूत अन्न वितरित किया जा रहा है, खाया जा रहा है और उपभोग मे लाया जा रहा

है। आप जानते हैं कि मैं भिक्षा जीवी हू, अत शेष बचे हुए भोजन मे से कुछ अन्न तपस्वी को दे लाभ प्राप्त करो।

11 याज्ञिक प्रमुख सोमदेव द्वारा भिक्षा देने का निषेध

मूल गाथा- उवक्खड भोयण माहणाण, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं।
ण ऊ वय एरिसमण्णपाण, दाहामु तुज्झ किमिह ठिओं सि॥११॥

सस्कृत छाया- उपस्कृत भोजन ब्राह्मणाना, आत्मार्थक सिद्धमिहैकपक्षम्।
न तु वयमीदृशमन्नपान, तुभ्य दास्याम किमिह स्थितोऽसि॥११॥

अन्वयार्थ-इह-यहा, उवक्खड-सस्कारित (तैयार) किया हुआ, भोयण-भोजन, माहणाण-ब्राह्मणो के लिए, अत्तट्ठिय-अपने वास्ते ही, सिद्ध-पकाया हुआ (निष्पन्न किया) है, इह-इस (यज्ञवाडे मे), एगपक्ख-एक पक्षीय निमित्त ही (भोजन तैयार किया है), अत वय-हम, एरिस-इस प्रकार का, अण्णपाण-अन्न पान, तुज्झ-तुमको, ण ऊ-(हर्गिज) नहीं, दाहामु-देगे, इह-फिर यहा, कि-क्यो, ठिओसि-खडा है?

भावानुवाद-रुद्रदेव-'यह उपष्कृत भोजन केवल ब्राह्मणो के लिए है। यह एक पक्षीय हमारे अपने लिये ही है, अत दूसरो को देने योग्य नहीं है, हम तुझे यज्ञार्थ निष्पन्न यह अन्न-जल नहीं देगे, फिर तू यहा किसलिये खडा है?'

12 मुनि रूपी पुण्य क्षेत्र मे दान देने की यक्ष की प्रेरणा

मूल गाथा- थलेसु बीयाइ ववंति कासगा, तहेव णिण्णेसु य आससाए।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झ, आराहए पुण्णमिण खु खित्त॥१२॥

सस्कृत छाया- स्थलेषु बीजानि वपन्ति कर्षका, तथैव निम्नेषु चाऽऽशसया।
एतया श्रद्धाय ददध्व मह्य, आराधयत पुण्यमिद खलु क्षेत्रम्॥१२॥

अन्वयार्थ-कासगा-कृषक, आससाए-उपज की आशा से, थलेसु-स्थलो (ऊचे), य-और, तहेव-उसी प्रकार से, णिण्णेसु-नीचे स्थलो (खेतो मे), बीयाइ-बीज, ववंति-बोते हैं, एयाए-इसी, सद्धाए-श्रद्धा से, मज्झ-मुझे, दलाह-दे दो, इण-इस, पुण्ण-पुण्य रूपी, खित्त-क्षेत्र की, खु-अवश्य ही, आराहए-आराधना कर लो।

भावानुवाद-यक्ष-किसान अच्छी फसल की आशा से जैसे-ऊची उन्नत भूमि मे बीजो का वपन करते हैं, वैसे ही निम्न नीची भूमि मे उसी आशा से बोते हैं। इस कृपक दृष्टि से ही मुझे भिक्षा दे दो। मैं भी पुण्य क्षेत्र हू, अत इस पुण्य क्षेत्र का आराधन कर लो।

13 सोमदेव द्वारा प्रत्युत्तर

मूल गाथा- खेत्ताणि अम्ह विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहति पुण्णा।
जे माहणा जाइविज्जोववेया, ताई तु खेत्ताइ सुपेसलाइ॥१३॥

संस्कृत छाया- केऽत्र क्षत्रा उपज्योतिषा वा, अध्यापका वा सह खण्डिकै ।
एवं तु दण्डेन फलकेन हत्वा, कण्ठे गृहीत्वा निष्कासयेयु ये ॥१८॥

अन्वयार्थ-इत्थ-यहा, के-कौन, खत्ता-क्षत्रिय, वा-अथवा, अवजोइया-उप ज्योतिष्क (रसोइये), वा-अथवा खडिएहि-छात्रा के सह-साथ, अज्झावया-अध्यापक हैं, जो (ण) जो, एय-इस (निर्ग्रन्थ) को, दण्डेण-दण्ड (डंडे) से, (अथवा) फलेण-फल से, (काष्ठ के पट्टिये से), खु-निश्चय ही, हता-मार कर, कंठम्मि-कठ स घेत्तूण-पकड कर, (इसे) खलेज्ज-यहा से निकाल देवे?

भावानुवाद-रुद्रदेव-"अरे, यहा पर कोई क्षत्रिय,उपज्योतिष अग्निहोत्री, अध्यापक अथवा छात्र है जो निग्रन्थ मुनि को डण्ड से या फलक से पीटकर और इसका कण्ठ पकड कर यहा से बाहर निकाल दें?"

19 अध्यापको की प्रेरणा पर छात्रो द्वारा मुनि पर प्रहार

मूल गाथा- अज्झावयाण वयण सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा।
दडेहिं वित्तेहिं कसेहिं, चेव, समागया त इसिं तालयति॥१९॥

सस्कृत छाया- अध्यापकाना वचन श्रुत्वा, उद्धावितास्तत्र बहव कुमारा ।
दण्डैर्वेत्रै कशैश्चैव, समागतास्तमृषिं ताडयन्ति ॥१७॥

अन्वयार्थ-अज्झावयाण-अध्यापकों के, वयण-वचन का, सुणेत्ता-सुनकर, बहू-कुमारा-बहुत से कुमार, उद्धाइया-दौडते हुए, तत्थ-वहा, समागया-आए (और), दडेहिं-डडा से, वित्तेहिं-बैंता से, च-और, कसेहिं-कशों स (चाबुका से), त-उस, इसि-(हरिकेश) मुनि को, तालयति-पीटने लगे।

भावानुवाद-अध्यापकों के वचन सुनकर बहुत से कुमार आदि दौडते हुए वहा आए और दण्डा से, बैंतों से और चाबुक आदि से उस मुनि को ताडने-पीटने लगे।

20 राजपुत्री भद्रा द्वारा क्रुद्ध कुमारों को रोकने हेतु शिक्षा

मूल गाथा- रण्णो तहिं कोसलियस्स धूया, भद्द त्ति णामेण अणिदियगी।
त पासिया सजय हम्ममाण, कुद्धे कुमारे परिणिव्ववेइ॥२०॥

सस्कृत छाया- राजस्तत्र कौशलिकस्य दुहिता, भद्रेतिनाम्नाऽनिन्दिताङ्गी।
त दृष्ट्वा सयत हन्यमान, क्रुद्धान्कुमारान्परिनिर्वापयति ॥२०॥

अन्वयार्थ-तहिं-यहा पर (यज्ञशाला म), रण्णो-राजा, कोसलियस्स-कौशलिक की, अणिदियंगी-अनिन्द्य-सुन्दरी, भद्दत्ति-भद्रा, णामेणा-नाम की, धूया-पुत्री तं-उस संजय-सयमी (साधु) को हम्ममाणं-मारते हुए, पासिया-देखकर कुद्धे-कुपित हुए, कुमारे-कुमारो का परिणिव्ववेइ-सब प्रकार से शान्त करने लगी।

भावानुवाद-उस समय राजा कौशलिक की परम सुन्दरी कन्या भद्रा क्रोधित कुमारो द्वारा मुनि का मारते हुए देखकर उन्हे (क्रुद्ध कुमारा को) शान्त करने लगी, उन्हे मारने से रोकने लगी।

21 नरेन्द्रो और देवो द्वारा पूजित ऋषिवर

मूल गाथा- **देवाभिओगेण णिओइएण, दिण्णामु रण्णा मणसा ण झाया।**
णरिंददेविंदभिवदिएण, जेणामि वता इसिणा स एसो॥२१॥

सस्कृत छाया- **देवाभियोगेन नियोजितेन, दत्ताऽस्मि राज्ञा मनसा न ध्याता।**
नरेन्द्रदेवेन्द्राभिवन्दितेन, येनास्मि वान्ता ऋषिणा स एष ॥२१॥

अन्वयार्थ-देवाभिओगेण-देवता के अभियोग से, णिओइएण-प्रेरणा से (प्रेरित हुए), रण्णा-राजा ने, दिण्णामु-मेरे को (इस मुनि को) दिया था, (किन्तु इसने) मणसा-मन से भी, ण झाया-नहीं चाहा, जेणा-जिस, इसिणा-ऋषि के द्वारा, मि-मैं, वता-परित्याग की गई थी, स-वे ही, णरिंद-नरेन्द्रो (और), देविद-देवेन्द्रो से, अभिवदिएण-अभिवन्दित (पूजित), एसो-यह (ऋषि) है।

भावानुवाद-भद्रा-''देवता के अभियोग अर्थात् देवता की प्रबल प्रेरणा से राजा ने मुझे इस मुनि को दे दिया था, किन्तु इस महामुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा, यह नरेन्द्र और देवेन्द्रो का वन्दनीय पूज्यनीय वही ऋषि है, जिसने मेरा परित्याग कर दिया था।''

22 राजकुमारी भद्रा द्वारा मुनि के गुणो का वर्णन

मूल गाथा- **एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइदिओ सजओ बम्भयारी।**
जो मे तया णेच्छइ दिज्जमाणि, पिउणा सय कोसलिएण रण्णा॥२२॥

सस्कृत छाया- **एष खलु स उग्रतपा महात्मा, जितेन्द्रिय सयतो ब्रह्मचारी।**
यो मा तदा नेच्छति दीयमाना, पित्रा स्वय कौशलिकेन राज्ञा॥२२॥

अन्वयार्थ-एसो-यह, हु-निश्चय म, सो-वही, उग्गतवो-उग्रतपस्वी, महप्पा-महात्मा, जिइदिओ-जितेन्द्रिय, सजओ-सयमी (और), बम्भयारी-ब्रह्मचारी है, जो-जिन्होने, तया-उस समय, सय-स्वय, पिउणा-मेरे पिता, कोसलिएण रण्णा-कौशालिक राजा के द्वारा, मे-मुझे, दिज्जमाणि-(इन्ह) दिये जाने पर भी, णेच्छइ-नहीं चाहा।

भावानुवाद-''ये वे ही उग्र तपस्वी महात्मा, जितेन्द्रिय, सयमी और ब्रह्मचारी हैं, जिन्हाने मुझे उस समय भी स्वीकार नहीं किया, जबकि स्वय मेरे पिता कौशल नरेश ने मुझे इनके चरणा में ले जाकर उपस्थित किया था।''

23 मुनि के महात्म्य का वर्णन

मूल गाथा- **महाजसो एस महाणुभावो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।**
मा एयं हीलेह अहीलणिज्ज, मा सव्वे तेएण भे णिद्दहेज्जा॥२३॥

सस्कृत छाया- **महायशा एष महानुभाग, घोरव्रतो घोरपराक्रमश्च।**
मैन हीलयताहीलनीय, मा सर्वान्तेजसा भवतो निर्धाक्षीत्॥२३॥

अन्वयार्थ-एस-यह मुनि, महाजसो-महान् यशवाला, महाणुभावो-महा प्रभावशाली (महानुभाग), घोरव्वओ-

सव्वजणेण-सब लोगो के साथ, समागया-इकट्ठे होकर, सीसेण-मस्तक (झुकाकर) से, एयं-इस मुनि का सरण-शरण, उवेह-ग्रहण करो, (अन्यथा), एसो-यह ऋषि, कुविओ-कुपित होने पर, लोगपि-सम्पूर्ण विश्व को भी डहेज्जा-जलाने मे समर्थ है।

भावानुवाद-यदि तुम अपने जीवन और धन की इच्छा-रक्षा चाहते हो, तो सब मिलकर अवनतसिर इनकी शरण स्वीकार करो, इनके चरणो में गिरकर इनसे क्षमायाचना करो। तुम्हे ज्ञात नहीं है, कुपित होने पर यह मुनि पूरे लोक का भी भस्म कर सकता है।

29 छात्रा की दुर्दशा का वर्णन

मूल गाथा- अवहेडियपिट्ठिसउत्तमगे, पसारिया वाहु अकम्मचेट्ठे।
णिब्भेरियच्छे रुहिर वमते, उड्ढमुहे णिग्गयजीहणेत्ते ॥२९॥

संस्कृत छाया- अवहेठितपृष्ठसदुत्तमागान्, प्रसारितबाहूनकर्मचेष्टान्।
प्रसारिताक्षान् रुधिर वमतः, ऊर्ध्वमुखान्निर्गतजिह्वानेत्रान् ॥२९॥

अन्वयार्थ-अवहेडिय-(उन छात्रा का) नीचे गिरा हुआ, पिट्ठि-पीठ पर्यन्त, सउत्तमग-मस्तक, पसारिया-पसरी हुई (फैली हुई), वाहु-भुजाए थी, अकम्मचेट्ठे-क्रिया चेष्टा से रहित, णिब्भेरियच्छे-पसारी हुई (फटा हुई) आखें थी (एक), रुहिर-वमते-मुख से रधिर निकल रहा था, उड्ढमुहे-मुह ऊपर हो गये थे, जीहणेत्ते-जिह्वा और नेत्र, णिग्गय-निकल आई थी।

भावानुवाद-इधर मुनि को प्रताडित करने वाले कुमारो के सिर पीठ की ओर झुक गए थे, उनकी भुजाए भी पीठ की ओर फैल गई थी। उनका शरीर निश्चेष्ट हो गया था। आखें फटी की फटी रह गई थी। मुह से रक्त बह रहा था और मुह ऊपर की ओर हो गए थे, उनकी जीभें और आख बाहर निकल आई थी।

30 सामदेव द्वारा मुनि से सपत्नी क्षमा याचना

मूल गाथा- ते पासिया खडिय कट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसि पसाएइ सभारियाओ, हील च णिंद च खमाह भंते॥३०॥

संस्कृत छाया- तान् दृष्ट्वा खण्डिकान्काष्ठभूतान्, विमना विषण्णोऽथ ब्राह्मण सः।
ऋषिं प्रसादयति सभार्याक , हीला च निन्दा च क्षमस्व भदन्त॥३०॥

अन्वयार्थ-ते-उन खडिय-छात्रो को, कट्ठभूए-काष्ट की तरह, निश्चेष्ट, पासिया-देखकर, सो-वह, माहणो-सामदेव ब्राह्मण, विमणो-मन उदास, विसण्णो-विषाद युक्त हो गया, अह-फिर (वह), सभारियाओ अपनी पत्नी सहित, इसि-ऋषि को, पसाएइ-प्रसन्न करने लगा, भंत-हे भगवन् (हमने जो), हील हीलना, च और णिंद-निदा की है, खमाह-उसे क्षमा कर।

भावानुवाद-जब रुद्रदेव ब्राह्मण ने उन कुमारो को काष्ठ की तरह निश्चेष्ट देखा तो उसे बहुत विषाद हुआ वह भयभीत और दुखित मन से अपनी पत्नी को साथ लेकर मुनि के समक्ष उपस्थित हुआ और उन्हें प्रसन्न करने हेतु कहने लगा-'भन्ते! हमने आपकी जो अवहेलना और निंदा की है, उसके लिए आप हमें क्षमा कर।'

31 मुनियो के क्षमा परायण स्वभाव का सुन्दर चित्रण

मूल गाथा- बालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं, ज हीलिया तस्स खमाह भंते।
महप्पसाया इसिणो हवति, ण हु मुणी कोवपरा हवति॥31॥

संस्कृत छाया- बालैर्मूढैरज्ञै, यद् हीलितास्तत्क्षमध्वम् भदन्त।।
महाप्रसादा ऋषयो भवन्ति, न खलु मुनय कोपपरा भवन्ति॥३१॥

अन्वयार्थ-भंते!-भगवन्! मूढेहिं-मूढो ने, अयाणएहिं-अज्ञानियो ने, बालेहिं-बालका ने, ज-जो, हीलिया-(आपकी) अवहेलना की है, तस्स-उसको, खमाह-क्षमा करे, इसिणो-ऋषिजन, महप्पसाया-महाप्रसन्नचित्त, हवति-होते हैं, मुणी-मुनिजन (कभी), हु-निश्चय ही, कोवपरा-क्रोधयुक्त, ण-नहीं हवति-होते हैं।

भावानुवाद-"हे भगवन्! इन मूढ अज्ञानी बालको द्वारा आपकी जो अवहेलना हुई है, उसके लिए आप क्षमा कर। क्याकि ऋषि मुनिगण सदा प्रसन्न चित्त होते हैं, अत वे कभी किसी पर क्रोधित नहीं होते।"

32 मुनिवरो द्वारा ब्राह्मणो का मन समाधान

मूल गाथा- पुव्वि च इण्हि च अणागय च, मणप्पदोसो ण मे अत्थि कोइ।
जक्खा हु वेयावडिय करेंति, तम्हा हु एए णिहया कुमारा॥32॥

संस्कृत छाया- पूर्वं चेदानीं चानागत च, मन प्रद्वेषो न मेऽस्ति कोऽपि।
यक्षा खलु वैयावृत्य कुर्वन्ति, तस्मात्खल्वेते निहता कुमारा ॥३२॥

अन्वयार्थ-मे-मेरे, कोइ-थोडा भी (कोई), मणप्पदोसो-मन मे द्वेष, ण पुव्वि-न तो पहले था च-और, ण-न, इण्हि-अब, अत्थि-है, च-और, न ही, अणागय-(अनागत) भविष्य मे होगा, (ये) जक्खा-यक्ष, हु-निश्चय ही, वेयावडिय-हमारी सेवा (वैयावृत्य), करेन्ति-करते है, तम्हा हु-इसी कारण, (उनके द्वारा) एए-ये, कुमारा-कुमार, (प्रत्यक्ष) णिहया-प्रताडित किये गए हैं।

भावानुवाद-मुनि-"मेरे मन मे तुम्हारे प्रति किसी भी प्रकार का द्वेष न पहले था, न अभी है और न आगे होगा। कुछ यक्ष मेरी सेवा मे रहते हैं, उन्हीं के द्वारा यह कुमार प्रताडित हुए हैं।"

33 अध्यापको द्वारा मुनि चरणो मे शरण पाने की इच्छा

मूल गाथा- अत्थ च धम्म च वियाणमाणा, तुब्भे ण वि कुप्पह भूइपण्णा।
तुब्भ तु पाए सरण उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे॥33॥

संस्कृत छाया- अर्थं च धर्मं च विजानाना, यूय नापि कुप्यथ भूतिप्रज्ञ।
युष्माक तु पादौ शरणमुपेम, समागता सर्वजनेन वयम्॥३३॥

अन्वयार्थ-अत्थ-अर्थ को, च-और, धम्म-धर्म को, वियाणमाणा-यथाथ रूप से जानने वाले, भूइपण्णा-भूतिप्रज्ञ (रक्षा करने की बुद्धि से युक्त), तुब्भे-आप, कुप्पह ण वि-क्रोध नहीं करते हैं, (इसीलिए) सव्व जणेण-

सवजना के साथ, समागया-एकत्र होकर, अम्हे-हम, तुब्भं-आपको, तू-ही, पाए-चरणों में, सरणं-शरण, उवेमो-ग्रहण करते हैं।

भावानुवाद-रुद्रदेव-"हे भदन्त! आप अर्थ और धर्म के ज्ञाता हैं, आप भूतिप्रज्ञ, रक्षा प्रधान बुद्धिवाले हैं, आप कदापि कुपित नहीं होते हैं। हम सब आपके चरणों म उपस्थित होकर शरण ग्रहण कर रह हैं।"

34 मुनि की सेवा मे जाकर आहार ग्रहण करने की प्रार्थना

मूल गाथा- अच्चेमु ते महाभाग, ण ते किंचि ण अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं, णाणावंजणसंजुयं ॥३४॥

संस्कृत छाया अर्चयामस्त्वां महाभाग, न तव किंचिन्नार्चयाम ।
भुंक्ष्व शालिमयं कूरं, नानाव्यञ्जनसंयुतम् ॥३४॥

अन्वयार्थ-महाभाग-हे महाभाग! ते-आपकी, अच्चेमु-(हम) पूजा-(अर्चना) करते हैं, ते-आपका,किंचि-किंचित् ऐसा, ण-नहीं है, जो-जो, ण अच्चिमो-अर्चन योग्य न हो, आप णाणा वंजण-नाना प्रकार के व्यंजनों स, संजुयं-संयुक्त, सालिमं कूरं-शालिमय चावलो का, भुंजाहि-भोजन करिये।

भावानुवाद-'हे महाभाग! हम आपकी अर्चना करते हैं। आपका ऐसा कोई भी अंग नहीं है जो अर्चनीय न हो, जिसकी हम अर्चना न करें। अब आप विविध प्रकार के व्यंजनो से मिश्रित शाली चावलो से निर्मित भोजन खाईए।'

35 हरिकेश बल मुनि द्वारा भिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख

मूल गाथा- इमं च मे अत्थि पभूयमण्णं, तं भुंजसू अम्ह अणुग्गहट्ठा।
बाढं ति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स उ पारणए महप्पा ॥३५॥

संस्कृत छाया- इदं च मेऽस्ति प्रभूतमन्नं, तद् भुंक्ष्वास्माकमनुग्रहार्थम्।
बाढमिति प्रतीच्छति भक्तपानं, मासस्य तु पारणके महात्मा ॥३५॥

अन्वयार्थ-इमं च-और, मे-मेरे, पभूयं-प्रभूत (तैयार किया हुआ) प्रचुर, अण्णं-अन्न अत्थि-है, अम्ह-हमारे, अणुग्गहट्ठा-अनुग्रहार्थ, तं-इसका, भुंजसू-भोजन करिये, बाढं-स्वीकार है, त्ति-इस प्रकार कहकर महप्पा महात्मा मुनि, मासस्स उ-मासिक तप के, पारणए-पारणे में, भत्तपाणं-आहार-पानी को, पडिच्छइ-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-"यह यज्ञ मण्डप में बना हुआ हमारा प्रचुर अन्न है। आप हम पर अनुग्रह करके इसे स्वीकार करें।" पुरोहित के आग्रह पर मुनि ने "स्वीकार है" इस प्रकार कहकर उस महान् तपोमूर्ति महात्मा ने एक मास के पारणे के निमित्त अन्न-जल ग्रहण किया।

36 मुनि के आहार दान का प्रभाव देवों द्वारा पंच दिव्यों का प्रकटीकरण

मूल गाथा- तहियं गन्धोदयपुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा।
पहयाओ दुंदुहीओ सुरेहिं, आगासे अहो दाणं च घुट्ठं ॥३६॥

सस्कृत छाया- तत्र गधोदकपुष्प वर्षं, दीव्या तत्र वसुधारा च वृष्टा।
प्रहता दुन्दुभय सुरै , आकाशे ऽहो दान च घुष्ट ॥३६॥

अन्वयार्थ-तहिय-उस समय (वहा), गधोदय-गन्धोदक (और) पुप्फवास-पुष्पो की वृष्टि (वर्षा) हुई, य-और, तहिं-वहा, दिव्वा-प्रधान देवों द्वारा, वसुहारा-द्रव्य की (धन की), वुट्ठा-वर्षा हुई, सुरेहिं-देवो ने, दुदुहीओ-दुन्दुभिया, पहयाओ-बजाई, च-और, आगासे-आकाश मे, अहोदाण-अहोदान का, घुट्ठ-घोष किया।

भावानुवाद-उस समय (मुनि के पारणे पर) वहा देवो ने सुवासित जल, पुष्प एव सुवण मुद्राओ की वृष्टि की तथा दुन्दुभिया बजाकर आकाश म अहो दान का उद्घोष किया-दान की महिमा का गान किया।

37 मुनि के प्रभाव से विस्मित याज्ञिक विप्रो के उद्गार

मूल गाथा- सवख खु दीसइ तवोविसेसो, ण दीसई जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्त हरिएस साहु, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥३७॥

सस्कृत छाया- साक्षात् खलु दृश्यते तपोविशेष , न दृश्यते जातिविशेष कोऽपि।
श्वपाकपुत्र हरिकेशसाधु, यस्येदृशी ऋद्धिर्महानुभागा॥३७॥

अन्वयार्थ-सक्ख-साक्षात् ही, तवो-तप का, विसेसो-विशेष, दीसई-देखा जाता है, किन्तु, जाइ विसेस-जाति का विशेष, कोई-थोडा-सा भी, ण-नहीं, दीसइ-देखा जाता है, (क्योकि), सोवागपुत्त-चाण्डाल पुत्र, हरिएस-हरिकेश, साहु-साधु को, (देखो), जस्स-जिसकी, एरिसा-इस प्रकार की, इड्ढि-ऋद्धि (और), महाणुभागा-महात्म्य है।

भावानुवाद-प्रत्यक्ष मे यह तप की ही विशेषता-महत्ता दिखाई देती है, जाति की कोई विशेषता दिखाई नहीं देती है। जिसकी कि यह महान् चमत्कारिक ऋद्धि है, वह हरिकेश मुनि चाडाल पुत्र ही तो है।

38 मिथ्यात्व उपशान्त हुआ देख मुनि का ब्राह्मणो को उपदेश

मूल गाथा- किं माहणा जोइसमारभता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा।
ज मग्गहा बाहिरिय विसोहिं, ण त सुइट्ठ कुसला वयति॥३८॥

सस्कृत छाया- किं ब्राह्मणा ज्योति समारभमाणा, उदकेन शुद्धि बाह्या विमार्गयथ।
या मार्गयथ बाह्या विशुद्धि, न तत् स्विष्ट कुशला वदन्ति॥३८॥

अन्वयार्थ-माहणा-हे ब्राह्मणो! जोइ-अग्नि का, समारभता-समारम्भ करते हुए, कि-क्या, उदएण-जल से, बहिया-बाहर से, सोहिं-शुद्धि को, विमग्गहा-चाह रहे हो। ज-जो, बाहिरिय-बाह्य, विसोहिं-शुद्धि को, मग्गहा-खोजते हैं, त-उसे, कुसला-कुशल पुरुष सुइट्ठ-सुदृष्ट, ण-नहीं, वयति-कहते हैं।

भावानुवाद-मुनि-हे विप्रों! तुम क्यो अग्नि का आरम्भ करते हो तथा जल से बाह्य शुद्धि की गवेषणा क्यो करते हो क्योंकि जो बाहर शुद्धि की खोज करते हैं, उन्हें कुशल पुरुष सुदृष्ट-सम्यग्दृष्टा नहीं कहते हैं।

39 वास्तविक शुद्धि का तत्त्व ज्ञान

मूल गाथा- कुस च जूव तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसंता।
पाणाइ भूयाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पकरेह पावं॥39॥

संस्कृत छाया- कुशं च यूपं तृणकाष्ठमग्निं, सायं च प्रातरुदकं स्पृशन्तः।
प्राणिनो भूतान् विहेठयन्तो, भूयोऽपि मन्दाः प्रकुरुथ पापम्॥39॥

अन्वयार्थ-कुस-कुश, च-और, जूवं-यूप-यज्ञ स्तम्भ, तण-तृण, कट्ठ-काष्ठ, अग्गिं-अग्नि का प्रयोग, तथा, पाय-प्रात काल, च-और सायं-सन्ध्या, उदगं-जल को, फुसंता-स्पर्श करते हुए, पाणाइ-प्राणियों का, भूयाइं-भूतों का (वनस्पति), विहेडयंता-विनाश करते हुए (तुम), मंदा-मंद बुद्धि लोग, भुज्जोवि-पुन पुन पावं पाप को, पकरेह-किया करते हो।

भावानुवाद-"कुश-डाभ, यूप (यज्ञस्तम्भ) तृण, काष्ट तथा अग्नि का प्रयोग एव प्रात काल एव सन्ध्याकाल जल का स्पर्श करते हुए तुम मन्दबुद्धि लोग प्राणियों एव भूतों-वनस्पति की हिंसा करते हुए पाप कर्म का उपार्जन कर रहे हो।"

40 याज्ञिको की मुनि से श्रेष्ठ यज्ञ सम्बन्धी जिज्ञासा

मूल गाथा- कह चरे भिक्खु वयं जयामो, पावाइ कम्माइ पणुल्लयामो।
अक्खाहि णे संजय जक्खपूइया, कहं सुइट्ठं कुसला वयंति॥40॥

संस्कृत छाया- कथं चरामो भिक्षो वयं यजामः, पापानि कर्माणि पुनः प्रणुदामः।
आख्याहि नः संयत! यक्षपूजित! कथं स्विष्टं कुशला वदन्ति॥40॥

अन्वयार्थ-भिक्खु-हे भिक्षु, वयं-हम, कह-कैसे चरे-आचरण करें, जयामो-(कैसे) यज्ञ करें, पावाइं-कम्माइं-पाप कर्मों को, पुणोल्लयामो-दूर करें, जक्ख पूइया-हे यक्ष पूजित, संजय-संयत!, णे-हमको, अक्खाहि कहो (कि), कुसला-कुशल पुरुष, कह-किस प्रकार का, सुइट्ठं-श्रेष्ठ यज्ञ, वयंति-बताते हैं।

भावानुवाद-रुद्रदेव-"हे भिक्षु श्रेष्ठ! हम कैसा यज्ञ करे? कैसी प्रवृत्ति करें? हम पाप कर्मों को किस प्रकार दूर करे? हे यक्ष पूजित संयत! हमें समझाए कि तत्त्वज्ञ-कुशल पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ किसको कहते हैं?"

41 मुनि के द्वारा समाधान

मूल गाथा- छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माण मायं, एयं परिण्णाय चरंति दंता॥41॥

संस्कृत छाया- षड्जीवकायानसमारभमाणाः, मृषाऽदत्तं चासेवमानाः।
परिग्रहं स्त्रियो मानं मायां, एतत्परिज्ञाय चरन्ति दान्ताः॥41॥

अन्वयार्थ-दंता-इन्द्रियों का दमन करने वाले (मुनि), छज्जीवकाए-षट्-जीव काय के जीवों का, असमारंभंता समारम्भ नहीं करते, मोस-मृषावाद, च-और अदत्तं चोरी का, असेवमाणा-सेवन नहीं करते, परिग्गहं परिग्रह

परिग्रह, इत्थिओ-स्त्रियाँ, माण-मान और, माय-माया, एय-इन सबको, परिण्णाय-भली भाति जानकर, चरति-विचरण करते हैं।

भावानुवाद-मुनि-"मन और इन्द्रियो को सयमित करने वाले मुनि पृथ्वी काय आदि छह काया के जीवो की हिसा नहीं करते हुए, असत्य और चोरी का सेवन नहीं करते हुए, परिग्रह, स्त्री, मान और माया इन सबका भली-भाति परित्याग करके विचरण करते हैं।"

42 श्रेष्ठ यज्ञ की विधि

मूल गाथा- सुसवुडा पचहिं सवरेहिं, इह जीविय अणवकखमाणो।
वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजय जयइ जण्णसिट्ठ ॥४२॥

सस्कृत छाया- सुसवृता पचभि सवरै, इह जीवितमनवकाक्षत।
व्युत्सृष्टकाया शुचित्यक्तदेहा, महाजय जयन्ते श्रेष्ठयज्ञ ॥४२॥

अन्वयार्थ-पचहिं-पाच, सवरेहिं-सवरो से, सुसवुडो-(जो) सम्यक् प्रकार से सवृत्त है, (जो) इह-इस जन्म मे जीविय-जीवन की, अणवकखमाणो-आकाक्षा नहीं करता, (जो) वोसट्ठकाओ-शरीर की आसक्ति का त्याग कर चुका है (ऐसा), साधु, सुइ-शुचि, चत्तदेहो-देहाशक्ति का त्यागी, महाजय-कर्म शत्रुओ पर विजय पाने वाले जण्ण सिट्ठ-श्रेष्ठ यज्ञ को, जयइ-करता है।

भावानुवाद-जो पाचो सवरो से पूर्णतया सवृत होते हैं, जो असयमी जीवन की आकाक्षा नहीं करते हैं, जो देहासक्ति का परित्याग करते हैं, जो पवित्र हैं, विदेह-देहाध्यास से परे हैं, वे ही महामुनि वासना अथवा कर्मों पर विजय रूप महाजयी श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं।

43 अध्यात्म यज्ञ के साधनो के विषय मे प्रश्न

मूल गाथा- के ते जोई के व ते जोइठाणे,
का ते सुया कि च ते कारिसगं।
एहा य ते कयरा सति भिक्खू,
कयरेण होमेण हुणासि जोइ ॥४३॥

सस्कृत छाया- कि ते ज्योति कि वा ते ज्योति स्थान,
कास्ते स्त्रुच कि ते करीषागम्।
एधाश्च ते कतरा शान्तिर्भिक्षु
कतरेण होमेन जुहोषि ज्योति ॥४३॥

अन्वयार्थ-भिक्खू-हे भिक्षु! ते-तुम्हारी, जोई-ज्योति-अग्नि, के-कौनसी है?, व-तथा, ते-तुम्हारा, जोइठाण-अग्नि का स्थान (अग्निकुड), के-कौनसा है, ते-तुम्हारी, सुया-स्त्रोता (घी आदि डालने की कडछी), का-क्या है? व-और, ते-तुम्हारा, कारिसग-अग्नि प्रदीप्त करने का साधन के-कौनसा है? य-और, ते-तुम्हारी एहा-समिधा (इधन), कयरा-कौन सी है? सति-शान्ति पाठ (कौनसा है?) कयरेण-किस, होमेण-होम से (आप),

39 वास्तविक शुद्धि का तत्त्व ज्ञान

मूल गाथा- कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसंता।
पाणाइ भूयाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पकरेह पावं ॥३९॥

संस्कृत छाया- कुशं च यूपं तृणकाष्ठमग्निं, सायं च प्रातरुदकं स्पृशन्तः ।
प्राणिनो भूतान् विहेठयन्तः, भूयोऽपि मन्दाः प्रकुरुथ पापम् ॥३९॥

अन्वयार्थ-कुसं-कुश, च-और, जूवं-यूप-यज्ञ स्तम्भ, तण-तृण, कट्ठ-काष्ठ, अग्गिं-अग्नि का प्रयोग, तथा पायं-प्रातःकाल, च-और, सायं-सन्ध्या, उदगं-जल को, फुसंता-स्पर्श करते हुए, पाणाइं-प्राणियों का, भूयाइं भूतो का (वनस्पति), विहेडयंता-विनाश करते हुए (तुम), मंदा-मंद बुद्धि लोग, भुज्जोवि-पुनः पुनः पावं-पाप का, पकरेह-किया करते हो।

भावानुवाद-"कुश-डाभ, यूप (यज्ञस्तम्भ) तृण, काष्ट तथा अग्नि का प्रयोग एवं प्रातःकाल एवं सायंकाल जल का स्पर्श करते हुए तुम मन्दबुद्धि लोग प्राणियों एवं भूतों-वनस्पति की हिंसा करते हुए पाप कर्म का उपार्जन कर रहे हो।"

40 याज्ञिको की मुनि से श्रेष्ठ यज्ञ सम्बन्धी जिज्ञासा

मूल गाथा- कहं चरे भिक्खु वयं जयामो, पावाइ कम्माइ पुणोल्लयामो।
अक्खाहि णे संजय जक्खपूइया, कहं सुइट्ठं कुसला वयंति ॥४०॥

संस्कृत छाया- कथं चरामो भिक्षो वयं यजामः, पापानि कर्माणि पुनः प्रणुदामः ।
आख्याहि नः संयत! यक्षपूजित! कथं स्विष्टं कुशला वदन्ति ॥४०॥

अन्वयार्थ-भिक्खु-हे भिक्षु, वयं-हम, कहं-कैसे, चरे-आचरण करें, जयामो-(कैसे) यज्ञ करें पावाइं-कम्माइं पाप कर्मों का, पुणोल्लयामो-दूर करें, जक्ख पूइया-हे यक्ष पूजित, संजय-संयत!, णे-हमको, अक्खाहि कहो (कि), कुसला-कुशल पुरुष, कहं-किस प्रकार का, सुइट्ठं-श्रेष्ठ यज्ञ, वयंति-बताते हैं।

भावानुवाद-रुद्रदेव-"हे भिक्षु श्रेष्ठ! हम कैसा यज्ञ करें? कैसी प्रवृत्ति करें? हम पाप कर्मों को किस प्रकार दूर करें? हे यक्ष पूजित संयत! हमें बतलाइए कि तत्त्वज्ञ-कुशल पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ किसको कहते हैं?"

41 मुनि के द्वारा समाधान

मूल गाथा- छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
परिग्गहं इत्थिओ माण मायं, एयं परिण्णाय चरंति दंता ॥४१॥

संस्कृत छाया- षड्जीवकायानसमारभमाणाः, मृषाऽदत्तं चासेवमानाः ।
परिग्रहं स्त्रियो मानं मायां, एतत्परिज्ञाय चरन्ति दान्ताः ॥४१॥

अन्वयार्थ-दंता-इन्द्रियों का दमन करने वाले (मुनि) छज्जीवकाए-षट्-जीव काय के जीवों का, असमारभंता आरम्भ नहीं करते, मोसं-मृषावाद, च-और, अदत्तं-चोरी का, असेवमाणा-सेवन नहीं करते, तथा परिग्गहं

परिग्रह, इत्थिओ-स्त्रियाँ, माण-मान ओर, माय-माया, एय-इन सबको, परिण्णाय-भली भाति जानकर, चरति-विचरण करते हैं।

भावानुवाद-मुनि-"मन और इन्द्रियो को सयमित करने वाले मुनि पृथ्वी काय आदि छह काया के जीवो की हिसा नहीं करते हुए, असत्य और चोरी का सेवन नहीं करते हुए, परिग्रह, स्त्री, मान और माया इन सबका भली-भाति परित्याग करके विचरण करते है।"

42 श्रेष्ठ यज्ञ की विधि

मूल गाथा- सुसवुडा पचहिं सवरेहिं, इह जीविय अणवकखमाणो।
वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजय जयइ जण्णसिट्ठ ॥४२॥

सस्कृत छाया- सुसवृता पचभि सवरै, इह जीवितमनवकाक्षत।
व्युत्सृष्टकाया शुचित्यक्तदेहा, महाजय जयन्ते श्रेष्ठयज्ञ ॥४२॥

अन्वयार्थ-पचहिं-पाच, सवरेहिं-सवरो से, सुसवुडो-(जो) सम्यक् प्रकार से सवृत्त है, (जो) इह-इस जन्म मे, जीविय-जीवन की, अणवकखमाणो-आकाक्षा नहीं करता, (जो) वोसट्ठकाओ-शरीर की आसक्ति का त्याग कर चुका है (ऐसा), साधु, सुइ-शुचि, चत्तदेहो-देहाशक्ति का त्यागी, महाजय-कर्म शत्रुओ पर विजय पाने वाले जण्ण सिट्ठ-श्रेष्ठ यज्ञ को, जयइ-करता है।

भावानुवाद-जो पाचो सवरो से पूर्णतया सवृत होते हैं, जो असयमी जीवन की आकाक्षा नहीं करते हैं, जो देहासक्ति का परित्याग करते हैं, जो पवित्र हैं, विदेह-देहाध्यास से परे हैं, वे ही महामुनि वासा अथवा कर्मों पर विजय रूप महाजयी श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं।

43 अध्यात्म यज्ञ के साधनो के विषय मे प्रश्न

मूल गाथा- के ते जोई के व ते जोइठाणे,
का ते सुया कि च ते कारिसग।
एहा य ते कयरा सति भिक्खू,
कयरेण होमेण हुणासि जोइ ॥४३॥

सस्कृत छाया- कि ते ज्योति कि वा ते ज्योति स्थान,
कास्ते स्रुच कि ते करीषागम्।
एधाश्च ते कतरा शान्तिर्भिक्षु
कतरेण होमेन जुहोषि ज्योति ॥४३॥

अन्वयार्थ-भिक्खू-हे भिक्षु! ते-तुम्हारी, जोई-ज्योति-अग्नि, के-कौनसी है?, व-तथा, ते-तुम्हारा, जोइठाण-अग्नि का स्थान (अग्निकुड), के-कौनसा है, ते-तुम्हारी, सुया-स्रोता (घी आदि डालने की कडछी), का-क्या है? च-और, ते-तुम्हारा, कारिसग-अग्नि प्रदीप्त करने का साधन, के-कौनसा है? य-और, त-तुम्हारी, एहा-समिधा (ईंधन), कयरा-कौन सी है? सति-शान्ति पाठ (कौनसा है?) कयरेण-किस, होमेण-होम से (आप)

हुणासि-हवन करते हैं (और), जोइ-ज्योति को (तृप्त करते हैं)?

भावानुवाद-रुद्रदेव-'हे भिक्षो! आपके यज्ञ की अग्नि-ज्योति कौनसी है, और आपका ज्योतिस्थान-अग्निकुण्ड कौनसा है? घृतादि डालने का साधन स्रोत-कड़छी क्या है? अग्नि को प्रज्वलित करने के साधन कारिषग-कण्डे-कौन से हैं? किस हवन प्रक्रिया से आप अग्नि को प्रज्वलित प्रसन्न करते हो?'

44 मुनि द्वारा अध्यात्म यज्ञ के साधनो के विषय मे समाधान

मूल गाथा-

तवो जोई जीवो जोइठाण,
जोगा सुया सरीर कारिसग।
कम्मेहा सजम जोग संती,
होम हुणामि इसिण पसत्थ ॥४४॥

सस्कृत छाया-

तपो ज्योतिर्जीवो ज्योति स्थान,
योगा स्रुच शरीर करीषागम्।
कर्मैधा सयमयोगा शान्तिः,
होमेन जुहोम्यृषीणा प्रशस्तेन ॥४४॥

अन्वयार्थ-तवो-तप, जोई-ज्योति (अग्नि) है, जीवो-जीव (आत्मा), जोइठाणं-ज्योतिस्थान (अग्निकुण्ड) है, जोगा-मन, वचन और काया के योग, सोया-कुड़छिया रूप हैं, सरीरं-शरीर, कारिसंगं-अग्नि प्रदीप्त करने का साधन है, कम्मेहा-कर्म (समिधा) ईंधन है, सजम जोग-सयम की प्रवृत्ति, संती-शान्ति पाठ है, होमं-चारित्र रूप अनुष्ठान से, मैं, हुणामि-हवन करता हू जो, इसिणं-ऋषियों केलिए, पसत्थं-प्रशस्त है।

भावानुवाद-मुनि-"हमारे यज्ञ के लिए तप ज्योति-अग्नि है, जीव-आत्म-ज्योति का स्थान है, मन, वचन और काया के तीनो योग स्रुव-कुड़छी हैं, शरीर करीषाग-कण्डे हैं। कर्म समिधा-ईंधन है, सयम में प्रवृत्ति शान्तिपाठ से मैं अग्नि को प्रसन्न करता हू। ऐसा ऋषियों द्वारा प्रशस्त माना हुआ यज्ञ मैं करता हू।"

45 आध्यात्मिक स्नान और शुद्धि के साधनों की जिज्ञासा

मूल गाथा-

के ते हरए के य ते संति तित्थे,
कहिं सिणाओ व रय जहासि।
आइक्ख णे सजय जक्खपूइया,
इच्छामो णाउ भवओ सगासे ॥४५॥

सस्कृत छाया-

कस्ते ह्रदः किं च ते शान्तितीर्थ,
कस्मिन् स्नातो वा रजो जहासि।
आख्याहि न सयत यक्षपूजित!,
इच्छामो ज्ञातुं भवत सकाशे ॥४५॥

अन्वयार्थ-जक्ख पूइया-हे यक्ष पूजित, सजय-सयत!, णे-हमे, आइक्ख-बताइये कि, ते-आपका, हरए-ह्रद-जलाशय, के-कौनसा है? य-और, ते-आपका, सति तित्थे-शान्तितीर्थ, के-कौनसा है? व-और, कहिं-(आप) कहा, सिणाओ-स्नान करके, रय-रज-मलिनता, जहासि-दूर करते हो, भवओ-आपके, सगासे-पास, णाउ-(हम) जानना, इच्छामो-चाहते हैं।

भावानुवाद-रुद्रदेव-'हे यक्षार्चित सयत! आपका ह्रद-जलाशय कौनसा है? शाति तीर्थ कौनसा है? आप कहा पर स्नान करके कर्मरज को हटाते हो, आप हमारे लिए सब कहे, हम आपसे यह जानना चाहते हैं।'

46 आध्यात्मिक स्नान और उसके साधनो की जानकारी

मूल गाथा- धम्मे हरए बम्भे सति तित्थे,
अणाविले अत्तपसण्णलेसे।
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो,
सुसीइभूओ पजहामि दोस ॥४६॥

सस्कृत छाया- धर्मो ह्रदो ब्रह्म शान्तितीर्थं,
अनाविल आत्मप्रसन्नलेश्ये।
यस्मिन् स्नातो विमलो विशुद्ध,
सुशीतीभूत प्रजहामि दोषम् ॥४६॥

अन्वयार्थ-धम्मे-धर्म (मेरा), हरए-जलाशय है, बम्भे-ब्रह्मचर्य, सतितित्थे-शान्तितीर्थ है, जो, अणाविले-अनाविल (निर्मल) है, (जहा) अत्तपसण्णलेसे-आत्मा की लेश्या प्रशस्त होती है, जहिं-जिसमे, सिणाओ-स्नान करके, विमलो-भाव मल से रहित, विसुद्धो-कर्म कलक रहित, सुसीइभूओ-अत्यन्त शीतल होकर, दोस-कर्म दोष को, पजहामि-दूर करता हूँ।

भावानुवाद-मुनि-"आत्मभाव मे स्थित रहना रूप प्रशस्त लेश्या वाला धर्म मेरा तडाग-जलाशय है। ब्रह्मचर्य शान्तितीर्थ है, जहा स्नान करके मैं विमल, विशुद्ध एव अत्यन्त शीतल शान्त होकर कर्म मैल अथवा दोष को छोड देता हू।"

47 आत्म शुद्धि का निरूपण उपसहार

मूल गाथा- एय सिणाण कुसलेहि दिट्ठ,
महासिणाण इसिण पसत्थ।
जहिं सिणाया विमला विसुद्धा,
महारिसी उत्तम ठाण पत्ते ॥४७॥

त्ति बेमि

इति हरिएसिज्ज बारसम अज्झयण समत्त

संस्कृत छाया- एतत्स्नान कुशलैर्दृष्टं,
महास्नानमृषीणां प्रशस्तम्।
यस्मिन्स्नाता विमला विशुद्धा,
महर्षय उत्तमं स्थानं प्राप्ता ॥४७॥

इति ब्रवीमि

इति हरिकेशीयमध्ययनं समाप्तं ॥१२॥

अन्वयार्थ-कुसलेहिं-कुशल-तत्त्वज्ञ पुरुषों ने, एय-इस ही सिणाण-स्नान, दिट्ठं-बताया है, इसिणं-ऋषियों के लिए (यही), महासिणाणं-महान् स्नान, पसत्थं-प्रशस्त है, जहिं-जिस धर्म जलाशय में सिणाया-स्नान करके, महारिसी-महर्षि, विमला-कर्म मल रहित, विसुद्धा-विशुद्ध होकर, उत्तमं ठाणं-उत्तम स्थान को, पत्ते-प्राप्त हुए हैं।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हूं।

भावानुवाद-यह उपर्युक्त स्नान कुशल ज्ञानी पुरुषों द्वारा उपदिष्ट है। ऋषियों के लिए यह महास्नान ही प्रशस्त माना गया है। इस धर्म सरोवर में स्नान करके महर्षि विमल-विशुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हो गए हैं।

इस प्रकार मैं कहता हूं।

इस प्रकार हरिकेशी नामक बारहवां अध्ययन सम्पन्न हुआ।

❍❍❍

चित्त सम्भूतीय - त्रयोदश अध्ययन

उत्थानिका

प्रस्तुत अध्ययन की भूमिका मे दो आत्माओ के ससार परिभ्रमण का लम्बा इतिहास छुपा हुआ है और उक्त इतिहास मे निहित है उन दो आत्माओ के परस्पर सहयोग-असहयोग की कहानी। ससार के इस अनादिकालीन जन्म-मरण के प्रवाह मे आत्माए परस्पर कैसे सम्बन्धित होती हैं, कैसे उनके विचारा मे एकता-अनेकता के रूप प्रकट होते हैं और कैसे वे एक-दूसरे के विचारों से एकदम विपरीत दिशा म गति कर जाती हैं। इसका चित्रण एक गहन शैली मे प्रकट हुआ है-प्रस्तुत अध्ययन मे।

इतना ही नहीं, जब दोनो आत्माए भिन्न-भिन्न मार्ग की पथिक हो जाती हैं, तो वे एक-दूसरे को अपने-अपने मार्ग की श्रेष्ठता बताकर अपनी ओर खींचने का प्रयास करती हैं, तो कितना अजीब लगता है कि अन्धकार की ओर खींचने वाला भी अपनी सटीक तर्के प्रस्तुत कर रहा है और प्रकाश की ओर ले जाने वाला भी अपनी अकाट्य तर्के दे रहा है।

यहा उन दो आत्माआ का वर्णन चित्रित हुआ है जिनका अन्तिम पूर्व सयुक्त भव चित्त और सम्भूति के रूप म होता है, अत प्रस्तुत अध्ययन का नाम ही चित्त सम्भूतीय रख दिया गया है। दोनो ससार की असारता और ससार की कमनीयता का रोचक शैली से प्रतिपादन करते हैं, यह तो हम मूल ग्रन्थ से ही भली भाति समझ सकगे। प्रस्तुत मे उनके भव-परम्परा के कुछ जन्मों के इतिहास को जान लेना अधिक उचित होगा।

साकेतपुर के नृपति चन्द्रावतसक के सुपुत्र मुनिचन्द्र ने मुनि सागर चन्द्र के पास दीक्षा ग्रहण की। अपनी विहार चर्या मे भ्रमण करते हुए एक बार वे किसी विकट अटवी मे मार्ग भूल गये। क्षुधा-तृषा से पीडित वे सहसा किसी गोकुल-गोशाला मे पहुच गये। वहा चार गोपाल पुत्रा-ग्वाले के लडको ने उन्हे दुग्धाहार बहराया। मुनि ने उन चारो को जीवन की सम्यगुपयोगिता का उपदेश दिया। चारो की आत्मा जागृत हो गई और वे चारो मुनिचन्द्र के पास ही दीक्षित हो गए, किन्तु चारो मे से दो ने तो निरतिचार सयम की आराधना की और दो ने साध्वाचार के प्रति घृणा जुगुप्सा वृत्ति बना ली। वहा से मरकर वे चारो देवगति म गए किन्तु सयम के प्रति घृणा करने वाले वे दो मुनि देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर शखपुर नगर मे शाण्डिल्य ब्राह्मण की दासी यशोमति के पुत्र बने।

दास्य कर्म करते हुए एक बार दोनो भाइ खेत पर सो रहे थे, कि उन्हें सर्प ने काट खाया और दोनों एक साथ मरकर कालिजर नामक पर्वत पर जगल में मृगरूप से उत्पन्न हुए। एक व्याध-शिकारी के बाण से दोनो मारे गये और गगानदी के किनारे हस के रूप मे उत्पन्न हुए। यहा भी एक मछुआरे के द्वारा दोनो मारे गए।

वहा से आकर वे पुन मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं। उस समय वाराणसी म एक श्री सम्पन्न "भूतदल"

आग लगते ही मंत्री पुत्र ने ब्रह्मदत्त को सावधान कर दिया और सुरंग के द्वार का आघात करने को कहा। लात लगते ही द्वार खुल गया और वे बाहर आ गए।

दीर्घ राजा और चूलनी रानी ने ब्रह्मदत्त को मरवाने के और भी अनेक प्रयोग किये किन्तु सब निष्फल हुए। इन सब परिस्थितियों ने राजकुमार ब्रह्मदत्त ने कुछ समय के लिये विदेश जाने का विचार किया और वह काम्पिल्यपुर छोड़ कर चला गया। अपने शौर्य और पराक्रम के सहारे विदेश में उसने अनेक राजकन्याओं से विवाह किया और उनके राजाओं की सेना लेकर काम्पिल्यपुर आया। काम्पिल्यपुर में प्रवेश करते ही उसने दीर्घ राजा को मार दिया और वहां का राज्य अपने अधिकार में कर लिया। चूंकि उसने पूर्व जन्म में चक्रवर्ती पद का निदान किया था, अतः अनुक्रम से उसके राज्य में चौदह रत्नों की उत्पत्ति हुई जिनके प्रभाव से वह छह खण्ड पृथ्वी पर विजय प्राप्त करके चक्रवर्ती सम्राट बना।

एक बार ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती कोई नाटक देख रहा था कि उसे देवलोक के नाटक का स्मरण हो आया और उसी के साथ उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उस ज्ञान के आधार पर उसे अपने छह जन्म के साथी चित्र भ्राता चित्त की स्मृति हो आयी। अपने भ्राता की खोज के लिये पूर्वजन्म की स्मृति के प्रतीक एक श्लोक के पूर्वार्ध का निर्माण कर उसे जन-जन में प्रचारित करते हुए यह घोषणा की कि जो इस श्लोक का उत्तरार्ध बनाकर लायेगा उसे आधा राज्य दिया जायेगा। श्लोक का पूर्वार्ध था-

'गोप-दासौ मृगौ हंसौ-मातंगश्चामरौ तथा।'

चूंकि आधे राज्य की प्राप्ति का प्रलोभन इस के साथ जुड़ा था अतः राज्य भर में हजारों लाखों लोगों के मुख पर यह पूर्वार्ध चढ़ गया अर्थात् लाखों व्यक्ति समय बे समय उच्चारण करने लगे। किन्तु इसका उत्तरार्ध पूरा करने की प्रतिभा किसमें थी? कौन जानता था इन जन्मों के रहस्य को?

इधर श्रेष्ठी पुत्र चित्त भी जाति स्मरण के द्वारा प्रतिबोधित होकर दीक्षा ले चुके थे। वे एक बार विहार करते हुए काम्पिल्यपुर आए और नगर के बाहर एक उद्यान में ठहरे। संयोग से वहां उद्यान के पौधों को पानी दे रहा अरघट्ट चालक उक्त श्लोक के पूर्वार्ध को जोर-जोर से बोल रहा था, मुनि ने सुना और अपने पूर्व जन्मों की स्मृति के आधार पर उसके रहस्य को समझ गये। उन्होंने उस कृषक को बुला कर पूछा-"तुम यह आधा श्लोक ही क्यों बोल रहे हो? इसका उत्तरार्ध क्यों नहीं बोलते?" किसान (अरघट्ट चालक) कहने लगा "भगवन्! आप ही इसका उत्तरार्ध पूरा कर दीजिए।" मुनि ने सहज रूप से उत्तरार्ध पूरा करते हुए कहा-'एषा नौ षष्टिका जातिः अन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः ॥'

श्लोक का उत्तरार्ध सुनकर कृषक के हर्ष का पार न रहा। वह तुरन्त ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के पास गया और पूरा श्लोक सुना दिया। कृषक के मुख से श्लोक का उत्तरार्ध सुनकर ब्रह्मदत्त एक दम विचार में पड़ गए कि क्या मेरा भाई कृषक बना है। और वे तत्काल मूर्छित हो लुढ़क गए। राज कर्मचारी तत्काल उठे दौड़े आए और उस कृषक को पीटने लगे तो उसने सच-सच बता दिया कि मुझे क्यों मारते हो, मैंने तो श्लोक का उत्तरार्ध उद्यान में ठहरे हुए एक मुनि से सुना है।

यह सुनते ही ब्रह्मदत्त सावधान हो गए। उस कृषक को यथोचित पारितोषिक दिया और स्वयं अन्तःपुर साथ लेकर भ्राता मुनि के दर्शन हेतु गये। उद्यान में जाकर उन्होंने उनको अत्यन्त भावपूर्वक वन्दन कर अत्यन्त हर्षित हुए।

अनन्तर दोना मे पूर्व जन्म और वर्तमान जन्म सम्बन्धी चर्चाए हुई उसी चर्चा का प्रतिपादन प्रस्तुत अध्ययन म हुआ है। यह चर्चा केवल चर्चा ही नहीं अपितु आध्यात्मिकता एव भौतिकता के मध्य होने वाला एक भावपूर्व मार्मिक एव रोचक सवाद है।

ब्रह्मदत्त पुन पुन चित्त मुनि को भौतिक सासारिक सुखों के परिभाग के लिए आमत्रित करता है कि " देखो , मैं पूर्व जन्म मे कृत पुण्य का प्रत्यक्ष फल भोग रहा हूँ और तुम उससे वचित हो। अभी भी आ जाओ, मैं तुम्हे ससार के सभी सुख प्रदान करूगा। "

चित्त मुनि ब्रह्मदत्त को समझाते हुए कहते हैं-"ये ससार के सब रिश्ते झूठे हैं। जिन्हे हम अपना मानते हैं वे सब समय पडने पर पराये हो जाते हैं, ये भौतिक इन्द्रिय भोग्य सुख जन्म-मरण के दु खों को ही बढाने वाले हैं। परिजन सब स्वार्थ पोषी होते हैं। अत उनके विश्वास मे इस बहुमूल्य जीवन को नहीं खो देना चाहिये। यह जीवन भोग वासना के क्षणिक आवेगों मे खो देने को नहीं मिला है। यह आत्म-कल्याण के लिए मिला है। अत छोडो इस क्षणिक राज्य को और निकल पडो शाश्वत राज्य की प्राप्ति के लिए। "

अन्त मे ब्रह्मदत्त अध्यात्म की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए कहते हैं- "मुनिवर! मैं आपकी बात तो अच्छी तरह समझता हूँ, किन्तु मैं इस वासना के दल दल मे फँसा हूँ, मैने निदान ही ऐसा किया था अत मैं इसे छाड नहीं सकता। मेरी स्थिति तो इस हाथी जैसी है जो दलदल म फँसा हो और तीर-किनारा सामने दिखते हुए भी बाहर नहीं निकल सकता है।"

मुनि बहुत कुछ समझाकर यह विचार करते हुए चले जाते हैं कि यह भोगों म अति आसक्त हो गया है, अब इसका अभी निकल पाना कठिन है। और वे अपनी साधना म गति करते हुए अन्त मे सर्वोत्तम गति सिद्ध स्थान को प्राप्त करते हैं और ब्रह्मदत्त भोगो मे आसक्त बने हुए ही आखिर अशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप सबसे नीची सातवीं नरक मे जाते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का कथानक तो उसका ऊपरी कलेवर है। मौलिकता तो छुपी है दोनो के सवाद मे जो जीवन के मूल भूत लक्ष्य को उजागर करती हुई रहस्यो को अभिव्यजित करती है। चले हम अब मूल ग्रन्थ के द्वारा जीवन रहस्यों को समझे।

□□□

अह चित्तसम्भूइज्जं तेरहमं अज्झयणं

अथ चित्तसंभूतीयं त्रयोदशमध्ययनम्

चित्त सम्भूतीय

1 ब्रह्मदत्त (सम्भूत) का परिचय

मूल गाथा- जाईपराइओ खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि।
चुलणीए बम्भदत्तो, उववण्णो पउमगुम्माओ॥1॥

संस्कृत छाया- जातिपराजितः खलु, अकार्षीत् निदानं तु हस्तिनापुरे।
चुलन्यां ब्रह्मदत्तः, उपपन्नः पद्मगुल्मात् ॥१॥

अन्वयार्थ-खलु-वास्तव में, जाई पराइओ-जाति से पराजित हुए, (सम्भूत मुनि ने) हत्थिण-पुरम्मि-हस्तिनापुर में, नियाणं-निदान, कासि-किया था, तु-इस प्रकार वह, पउमगुम्माओ-पद्म गुल्म विमान से, (च्यव कर) चुलणीए-चूलनी की कुक्षि में, बम्भदत्तो-ब्रह्मदत्त नामक-चक्रवर्ती के रूप में, उववण्णो-उत्पन्न हुआ।

भावानुवाद-जाति से पराजित (चाण्डाल कुल में तिरस्कृत) सम्भूति मुनि ने हस्तिनापुर नगर में, चक्रवर्ती होने का निदान किया था, वह वहां से मृत्यु को प्राप्त करके पद्म गुल्म विमान में देव बना और फिर चूलनी की कुक्षि से ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में उत्पन्न हुआ।

2 सम्भूत एवं चित्त का उत्पत्ति स्थान

मूल गाथा- कम्पिल्ले सम्भूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ॥2॥

संस्कृत छाया- काम्पिल्ये सम्भूतः चित्रः पुनर्जातः पुरिमताले।
श्रेष्ठिकुले विशाले, धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः ॥२॥

अन्वयार्थ-कम्पिल्ले-काम्पिल्य नगर में, संभूओ-सम्भूत का जीव (उत्पन्न हुआ) पुण-फिर चित्तो-चित्र (चित्त) का जीव, पुरिमतालम्मि-पुरिमताल नगर में, विसाले-विशाल, सेट्ठिकुलम्मि श्रेष्ठिकुल में जाओ उत्पन्न हुआ (था) धम्मं-धर्म को, सोऊण-सुनकर पव्वइओ-दीक्षित (

भावानुवाद-सम्भूत काम्पिल्य नगर मे और चित्त का जन्म पुरिमताल नगर मे विशाल श्री सम्पन्न श्रेष्ठि कुल मे हुआ, वह धर्म श्रवण कर दीक्षित हो गया।

3 ब्रह्मदत्त चक्री एव चित्त मुनि का काम्पिल्यपुर मे मिलन

मूल गाथा- कम्पिल्लम्मि य णयरे, समागया दो वि चित्तसम्भूया।
सुहदुक्खफलविवाग, कहेंति ते एक्कमेक्कस्स॥3॥

सस्कृत छाया- काम्पील्ये च नगरे, समागतौ द्वावपि चित्तसभूतौ।
सुखदु खफलविपाक, कथयतस्तावेकैकस्य॥३॥

अन्वयार्थ-कम्पिल्लम्मि-कापिल्य, य णयरे-नगर मे, चित्त-चित्त (और) सम्भूया-सम्भूत, दो वि-दोनो ही, समागया-इकट्ठे (एकत्र) मिले, ते-वे दोनो, एक्कमेक्कस्स-परस्पर एक दूसरे को, सुह-सुख, दुक्ख-दु ख रूप, फलविवाग-कम फल विपाक को, कहेंति-कहने लगे।

भावानुवाद-काम्पिल्य नगर म चित्त और सम्भूत दोनो का मिलन हुआ। वहा वे आपस मे सुख-दु ख रूप कर्म फल के विपाक के विषय म विचार चर्चा करने लगे।

4 महाऋद्धिक ब्रह्मदत्त द्वारा बड़े भैया को कथन

मूल गाथा- चक्कवट्टी महिड्ढीओ, बम्भदत्तो महायसो।
भायर बहुमाणेण, इम वयणमब्बवी॥4॥

सस्कृत छाया- चक्रवर्ती महर्द्धिक , ब्रह्मदत्तो महायशा ।
भ्रातर बहुमानेन, इद वचनमब्रवीत्॥४॥

अन्वयार्थ-महिड्ढिओ-महान् ऋद्धिवाले, महायसो-महान् यशस्वी, चक्कवट्टी-चक्रवर्ती, बम्भदत्तो-ब्रह्मदत्त ने, बहुमाणेण-बहुमान पूर्वक भायर-अपने (पूर्वभवीय) भाई को, इम-इस प्रकार, वयण-वचन, अब्बवी-कहे-

भावानुवाद-महान् यशस्वी एव महान् ऋद्धि सम्पन्न चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने अत्यन्त आदर-बहुमान के साथ अपने भ्राता चित्त को इस प्रकार कहा-

5 ब्रह्मदत्त द्वारा परस्पर प्रीति का उल्लेख

मूल गाथा- आसिमो भायरा दोवि, अण्णमण्णवसाणुगा।
अण्णमण्णमणुरत्ता, अण्णमण्णहिएसिणो॥5॥

सस्कृत छाया- आस्व भ्रातरौ द्वावपि, अन्योऽन्यवशानुगौ।
अन्योऽन्यनुरक्तौ, अन्योऽन्यहितैषिणौ॥५॥

अन्वयार्थ-मो-हम,दोवि-दोनो ही, भायरा-भाई, अण्णमण्ण-परस्पर (एक दूसरे के), वसाणुगा-वशवर्ती अण्णमण्ण-परस्पर (एक दूसरे के), अणुरत्ता-अनुरक्त, (और) अण्णमण्ण-परस्पर (एक दूसरे के), हिएसिणो-हितैषी आसि-थे।

अह चित्तसम्भूइज्जं तेरहमं अज्झयणं

अथ चित्तसंभूतीयं त्रयोदशमध्ययनम्

चित्त सम्भूतीय

1 ब्रह्मदत्त (सम्भूत) का परिचय

मूल गाथा- जाईपराइओ खलु, कासि णियाण तु हत्थिणपुरम्मि।
चुलणीए बम्भदत्तो, उववण्णो पउमगुम्माओ॥1॥

सस्कृत गाथा- जातिपराजित खलु, अकार्षीत् निदान तु हस्तिनापुरे।
चुलन्या ब्रह्मदत्त, उपपन्न पद्मगुल्मात्॥१॥

अन्वयार्थ-खलु-वास्तव में, जाई पराइओ-जाति से पराजित हुए, (सम्भूत मुनि ने) हत्थिण-पुरम्मि-हस्तिनापुर म, णियाण-निदान, कासि-किया था, तु-इस प्रकार वह, पउमगुम्माओ-पद्म गुल्म विमान से, (च्यव कर) चुलणीए-चूलनी की कुक्षि में, बम्भदत्तो-ब्रह्मदत्त नामक-चक्रवर्ती के रूप में, उववण्णो-उत्पन्न हुआ।

भावानुवाद-जाति से पराजित (चाण्डाल कुल में तिरस्कृत) सम्भूति मुनि ने हस्तिनापुर नगर में, चक्रवर्ती होने का निदान किया था, वह वहा से मृत्यु को प्राप्त करके पद्म गुल्म विमान मे देव बना और फिर चूलनी की कुक्षि से ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप मे उत्पन्न हुआ।

2 सम्भूत एव चित्त का उत्पत्ति स्थान

मूल गाथा- कम्पिल्ले सभूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्म सोऊण पव्वइओ॥2॥

सस्कृत छाया- काम्पील्ये सभूत चित्त पुनर्जात पुरिमताले।
श्रेष्ठिकुले विशाले, धर्म श्रुत्वा प्रव्रजित ॥२॥

अन्वयार्थ-कम्पिल्ले-काम्पिल्य नगर में, सभूओ-सभूत का जीव (उत्पन्न हुआ), पुण-फिर चित्तो-चित्त (चित्र) का जीव, पुरिमतालम्मि-पुरिमताल नगर में, विसाले-विशाल, सेट्ठिकुलम्मि-श्रेष्ठिकुल में, जाओ-उत्पन्न हुआ, (वहा) धम्म-धर्म को, सोऊण-सुनकर, पव्वइओ-दीक्षित (प्रव्रजित हो गया)।

भावानुवाद-सम्भूत काम्पिल्य नगर मे और चित्त का जन्म पुरिमताल नगर मे विशाल श्री सम्पन्न श्रेष्ठि कुल मे हुआ, वह धर्म श्रवण कर दीक्षित हो गया।

3 ब्रह्मदत्त चक्री एव चित्त मुनि का काम्पिल्यपुर मे मिलन

मूल गाथा- कम्पिल्लम्मि य णयरे, समागया दो वि चित्तसम्भूया।
सुहदुक्खफलविवाग, कहेंति ते एक्कमेक्कस्स ॥3॥

सस्कृत छाया- काम्पील्ये च नगरे, समागतौ द्वावपि चित्तसभूतौ।
सुखदु खफलविपाक, कथयतस्तावेकैकस्य ॥३॥

अन्वयार्थ-कम्पिल्लम्मि-कापिल्य, य णयरे-नगर मे, चित्त-चित्त (और) सम्भूया-सम्भूत, दो वि-दोनो ही, समागया-इकट्ठे (एकत्र) मिले, ते-वे दोनो, एक्कमेक्कस्स-परस्पर एक दूसरे को, सुह-सुख, दुक्ख-दु ख रूप, फलविवाग-कर्म फल विपाक को, कहेति-कहने लगे।

भावानुवाद-काम्पिल्य नगर मे चित्त और सम्भूत दोनो का मिलन हुआ। वहा वे आपस मे सुख-दु ख रूप कर्म फल के विपाक के विषय मे विचार चर्चा करने लगे।

4 महाऋद्धिक ब्रह्मदत्त द्वारा बड़े भैया को कथन

मूल गाथा- चक्कवट्टी महिड्ढीओ, बम्भदत्तो महायसो।
भायर बहुमाणेण, इम वयणमब्बवी ॥4॥

सस्कृत छाया- चक्रवर्ती महर्द्धिक , ब्रह्मदत्तो महायशा ।
भ्रातर बहुमानेन, इद वचनमब्रवीत् ॥४॥

अन्वयार्थ-महिड्ढिओ-महान् ऋद्धिवाले, महायसो-महान् यशस्वी, चक्कवट्टी-चक्रवर्ती, बम्भदत्तो-ब्रह्मदत्त ने, बहुमाणेण-बहुमान पूर्वक भायर-अपने (पूर्वभवीय) भाई को, इम-इस प्रकार, वयण-वचन, अब्बवी-कहे-

भावानुवाद-महान् यशस्वी एव महान् ऋद्धि सम्पन्न चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने अत्यन्त आदर-बहुमान के साथ अपने भ्राता चित्त को इस प्रकार कहा-

5 ब्रह्मदत्त द्वारा परस्पर प्रीति का उल्लेख

मूल गाथा- आसिमो भायरा दोवि, अण्णमण्णवसाणुगा।
अण्णमण्णमणुरत्ता, अण्णमण्णहिएसिणो ॥5॥

सस्कृत छाया- आस्व भ्रातरौ द्वावपि, अन्योऽन्यवशानुगौ।
अन्योऽन्यानुरक्तौ, अन्योऽन्यहितैषिणौ ॥५॥

अन्वयार्थ-मो-हम,दोवि-दोनो ही, भायरा-भाई, अण्णमण्ण-परस्पर (एक दूसरे के), वसाणुगा-वशवर्ती अण्णमण्ण-परस्पर (एक दूसरे के), अणुरत्ता-अनुरक्त, (और) अण्णमण्ण-परस्पर (एक दूसरे के), हिएसिणो-हितैषी आसि-थे।

भावानुवाद-चक्रवर्ती-"हम दोनो (इस जन्म के पूर्व) परस्पर वशवर्ती, परस्पर अनुरक्त और एक दूसरे के हितैषी भाई-भाई थे।"

6 पाचो भवो मे सहोत्पत्ति का कथन

मूल गाथा- दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे णगे।
हसा मयगतीरे, सोवागा कासिभूमिए ॥६॥

सस्कृत छाया- दासौ दशार्णेषु आस्व, मृगौ कालिंजरे नगे।
हसौ मृतगगातीरे, श्वपाकौ काशीभूम्याम् ॥६॥

अन्वयार्थ-हम दोना, दसण्णे-दशार्ण देश मे, दासा-दासपुत्र, आसी-हुए थे, (वहा से) कालिजरे णगे-कालिजर पर्वत पर, मिया-मृग हुए, (वहा) मयग तीरे य-मृतगगा के किनारे, हसा-हस हुए। (फिर हम) कासिभूमिए-काशी भूमि मे, सोवागा-श्वपाक (चाडाल) हुए।

भावानुवाद-"हम दोनों दशार्ण देश मे दास के रूप मे, कालिजर पर्वत पर हरिण रूप म, मृतगगा के तट पर हस रूप में और काशी देश में चाण्डाल के रूप में उत्पन्न हुए थे।"

7 छठे भव मे पृथक्ता का वर्णन

मूल गाथा- देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया।
इमा णो छट्ठिया जाई, अण्णमण्णेण जा विणा ॥७॥

सस्कृत छाया- देवौ च देवलोके, आस्वाऽऽवां महर्द्धिकौ।
इयमावयो षष्ठिका जाति , अन्योऽन्येन या विना ॥७॥

अन्वयार्थ-य-और (फिर), देवलोगम्मि-देवलोक में, अम्हे-हम, महिड्ढिया-महर्द्धिक, देवा-देव, आसि-थ इमा-यह, णो-हमारी, छट्ठिया-छठी, जाई-जाति (जन्म) है, जा-जो, अण्णमण्णेण-एक दूसरे के स्नेह से, विणा-रहित हुई।

भावानुवाद-"हम दोनो देवलोक मे महाऋद्धियुक्त देव थे। यह हमारा छठवा भव-जन्म अलग-अलग एक दूसरे को छोडकर हुआ है।"

8 चित्त मुनि द्वारा परस्पर विमुक्त होने का कथित कारण निदान

मूल गाथा- कम्मा णियाणपगडा, तुमे राय! विचिंतिया।
तेसिं फलविवागेण, विप्पओग मुवागया ॥८॥

सस्कृत छाया- कर्माणि निदानप्रकृतानि, त्वया राजन् विचिंतितानि।
तेषां फलविपाकेन, विप्रयोगमुपागतौ ॥८॥

अन्वयार्थ-राय-हे राजन्! तुम-तुमन, णियाण पगडा-निदानरूप कृत (किए), कम्मा-कर्मों का, विचिंतिया-विशेष रूप से चिन्तन किया, तेसिं-उन्हीं के, फलविवागेण-फल विपाक से, विप्पओगं-वियोग को, उवागया-प्राप्त हुए।

भावानुवाद-मुनि-"हे राजन्! तुमने जो कर्म किये हैं वे विशेष चिन्तित रूप-निदान पूर्वक (भोगाकांक्षारूप) किये हैं, उसी कर्म फल के विपाक से हम अलग-अलग उत्पन्न हुए हैं।"

9 ब्रह्मदत्त द्वारा पूर्व शुभ कर्मकृत सुख भोग का वर्णन

मूल गाथा- सच्चसोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा।
ते अज्ज परिभुंजामो, किण्णु चित्ते वि से तहा॥९॥

संस्कृत छाया- सत्यशौचप्रकटानि, कर्माणि मया पुराकृतानि।
तान्यद्य परिभुञ्जे, किन्नु चित्तोऽपि तानि तथा॥९॥

अन्वयार्थ-मए-मैंने, पुरा-पूर्व जन्म मे, सच्च सोय प्पगडा-सत्य और शौच की प्रकटता से, (जो) कम्मा-कर्म, कडा-किये थ, अज्ज-आज, ते-उन्हीं को, परिभुञ्जामो-भोग रहा हू, से-उनको, किण्णु-क्या तुम, चित्ते-चित्त, वि-भी, तहा-उसी प्रकार (भोग रहे हो)?

भावानुवाद-चक्रवर्ती- "हे चित्त! मैंने पूर्व जन्म मे जो शुद्ध सत्य शौचरूप कर्म किये उन्हीं कर्मों का फल आज मैं भाग रहा हू। क्या तुम भी उसी प्रकार का फल प्राप्त कर रहे हो?"

10 चित्तमुनि द्वारा प्रत्युत्तर

मूल गाथा- सव्वं सुचिण्णं सफलं णराणं, कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि।
अत्थेहिं कामेहिं य उत्तमेहिं, आया मम पुण्णफलोववेए॥१०॥

संस्कृत छाया- सर्वं सुचीर्णं सफलं नराणां, कृतेभ्यः कर्मभ्यो न मोक्षोऽस्ति।
अर्थैः कामैश्चोत्तमैः, आत्मा मम पुण्यफलोपपेतः॥१०॥

अन्वयार्थ-णराण-मनुष्यो के द्वारा, सुचिण्ण-अच्छे किये हुए, सव्व-सभी कर्म, सफल-सफल होते हैं, कडाण-किये हुए, कम्माण-कर्मों के (बिना भोगे), मोक्ख-मोक्ष, ण अत्थि-नहीं है, उत्तमेहिं-उत्तम, अत्थेहिं-अर्थों (धन) से, (और) कामेहिं-काम भोगो से, मम-मेरी, आया-आत्मा, पुण्ण-पुण्यरूप, फलोववेए-फलो से युक्त रही है।

भावानुवाद-मुनि-मनुष्यो द्वारा कृत सभी सत्कर्म सफल होते हैं। किये हुए कर्मों के फल का भोगे बिना मुक्ति नहीं होती है। उत्तम अर्थ और कामों की प्राप्ति से मेरी आत्मा भी पुण्य फल से सयुक्त रही है।

11 विषय सुख एव आत्म सुख की उपलब्धि का वर्णन

मूल गाथा- जाणासि संभूय महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं, इड्ढी जुई तस्स वि यप्पभूया॥११॥

संस्कृत छाया- जानासि संभूत! महानुभागं, महर्द्धिकं पुण्यफलोपपेतम्।
चित्रमपि जानीहि तथैव राजन्, ऋद्धिर्द्युतिस्तस्यापि च प्रभूता॥११॥

अन्वयार्थ-सभूय-हे सभूत! (तुम अपने आपको), महाणुभाग-महा-भाग्यवान, महिड्ढिय-महा-ऋद्धि सम्पन्न, (और) पुण्ण फलोववेय-पुण्य फल से युक्त, जाणासि-जानते हो, चित्त वि-चित्त को भी, तहेव-उसी प्रकार, जाणाहि-समझो, राय-हे राजन्!, तस्स-उस (चित्त) के पास, वि-भी, पभूया-प्रचुर, इड्ढि-ऋद्धि, य-और जुई-द्युति (तेजस्विता) रही है।

भावानुवाद-"हे सम्भूत! जैसे तुम स्वय को भाग्यशाली, महान् ऋद्धि सम्पन्न एव पुण्य फल से युक्त समझते हो, वैसे ही चित्त को भी समझो, राजन्! उसके पास भी प्रभूत ऋद्धि और द्युति-तेजस्विता रही है।"

12 शीलगुणो से युक्त श्रमण बनने का कारण

मूल गाथा- महत्थरूवा वयणप्पभूया, गाहाणुगीया णरसघमज्झे।
ज भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इह जयते समणोमि जाओ॥१२॥

सस्कृत छाया- महार्थरूपा वचनाऽल्पभूता, गाथानुगीता नरसघमध्ये।
या (श्रुत्वा) भिक्षव शीलगुणोपपेता, इह यतन्ते श्रमणोऽस्मि जात ॥१२॥

अन्वयार्थ-किन्तु (स्थविरो ने), णरसघमज्झे-जन समुदाय म, वयण-प्पभूया-अल्प अक्षरों वाली, महत्थरूवा-महान् अर्थवाली, गाहा-गाथा, अणुगीया-गाई थी, ज-जिसे (सुनकर), भिक्खुणो-साधु, सीलगुणोववेया-शील गुण से युक्त होकर, इह-इस (श्रमणधर्म) को, जयते-(प्रयत्न पूर्वक) अर्जित करते हैं (उस सुनकर) मैं भी, समणो-श्रमण, मि-मैं, जाओ-हो गया हू।

भावानुवाद-"जन समुदाय के मध्य गान की गई अल्पाक्षर और महान् अर्थवाली जिस गाथा को सुनकर इस जिन शासन में शीलगुण युक्त भिक्षु लोग यत्न शील होते हैं, उसी गाथा को सुनकर मैं भी श्रमण बना हू।"

13 चक्रवर्ती द्वारा समृद्धि का वर्णन

मूल गाथा- उच्चोयए महु कक्के य बम्भे, पवेइया आवसहा य रम्मा।
इम गिह चित्त धणप्पभूय, पसाहि पचालगुणोववेय॥१३॥

सस्कृत छाया- उच्चोदयो मधु कर्कश्च ब्रह्मा, प्रवेदिता आवसथाश्च रम्या।
इद गृह चित्र प्रभूत धन, प्रशाधि पचालगुणोपपेतम्॥१३॥

अन्वयार्थ-उच्चोयए-उच्चोदय, महु-मधु, कक्के-कर्क, य-और, मध्य, बम्भे-ब्रह्म (ये मुख्य पाच), य-और भी रम्मा-रमणीय, आवसहा-प्रासाद, पवेइया-कहे गये हैं चित्त-हे चित्त, पचाल-पाचाल देश के, गुणोववेयं-विशिष्टगुणों से युक्त, (तथा) धणप्पभूय-धन धान्यादि से प्रचुर, इम-इस, गिह-घर को, पसाहि-स्वीकार करो।

भावानुवाद-चक्रवर्ती-उच्चोदय मधु, कर्क, मध्य और ब्रह्म ये मुख्य पाच प्रासाद तथा अन्य भी अनेक रमणीय प्रासाद हैं, पाचाल देश के अनेक विशिष्ट पदार्थों से युक्त इस घर तथा प्रचुर धनादि को स्वीकार करो।

14 ब्रह्मदत्त द्वारा चित्तमुनि को भोगो के लिये आमत्रण

मूल गाथा- णट्टेहिं गीएहिं य वाइएहिं, णारीजणाइ परिवारयतो।
भुजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं॥१४॥

संस्कृत छाया- नृत्यैर्गीतैश्च वादित्रैः, नारीजनान् परिवारयन्।
भुक्ष्व भोगानिमान् भिक्षो, मह्यं रोचते प्रव्रज्या खलु दुःखम्॥१४॥

अन्वयार्थ-भिक्खू-हे भिक्षो, (तुम) णट्टेहिं-नाटकों से, गीएहिं-गीतों से, य-और, वाइएहिं-वाद्यों से, णारीजणाइ-नारी जनो के, परिवारयंतो-घिरे हुए, इमाइ-इन, भोगाइ-भोगो को, भुञ्जाहि-भोगो, मम-मुझे, रोयई-(यही) रुचिकर है, पव्वज्जा-प्रव्रज्या, हु-निश्चय ही, दुक्ख-दुःख रूप है।

भावानुवाद-हे भिक्षो! नाट्य, गीत एव वाद्य यत्रो से युक्त स्त्रिया से परिवृत्त होकर इन भोगो का सेवन करो। मुझे यही रुचिकर लगता है। प्रव्रज्या निश्चित ही दुःखप्रद है।

15 आमंत्रित करने पर चित्त मुनि द्वारा दिग्दर्शन

मूल गाथा- तं पुव्वणेहेण कयाणुरागं, णराहिवं कामगुणेसु गिद्धं।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था॥१५॥

संस्कृत छाया- तं पूर्वस्नेहेन कृतानुरागं, नराधिपं कामगुणेषु गृद्धम्।
धर्माश्रितस्तस्य हितानुप्रेक्षी, चित्त इदं वचनमुदाहृतवान्॥१५॥

अन्वयार्थ-पुव्वणेहेण-पूर्वभव के स्नेह से, कयाणुराग-अनुरक्त (तथा), काम गुणेसु-काम भोगो मे, गिद्ध-आसक्त, तं-उस, णराहिव-नराधिप राजा को, तस्स-उसके, हियाणुपेही-हितानुप्रेक्षी एव, धम्म स्सिओ-धर्म मे स्थिर हुए, स-उस, चित्तो-चित्त मुनि ने, इमं-ये, वयण-वचन, उदाहरित्था-कहे।

भावानुवाद-पूर्व स्नेह से अनुरक्त और काम-गुणों-भोगो से आसक्त उस ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को उसके सदैव हितैषी धर्म मे स्थित चित्त मुनि ने इस प्रकार कहा-

16 चित्त मुनि द्वारा अशाश्वत भोगो को छोड़ने का उपदेश

मूल गाथा- सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं णट्टं विडम्बियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥१६॥

संस्कृत छाया- सर्वं विलपितं गीतं, सर्वं नृत्यं विडम्बितम्।
सर्वाण्याभरणानि भाराः, सर्वे कामा दुःखावहाः॥१६॥

अन्वयार्थ-सव्व-सब, गीय-गीत (गान), विलविय-विलासरूप हैं, सव्व-सभी, णट्ट-नाटक, विडम्बिय-विडम्बना रूप हैं, सव्वे-समस्त, आभरणा-आभूषण, भारा-भार रूप हैं, और, सव्वे-सभी, कामा-काम भोग, दुहावहा-दुःख रूप है।

भावानुवाद-मुनि-"सब गीत विलाप रूप हैं। सभी नाटक विडम्बना रूप हैं। सब आभूषण भार रूप हैं और सब कामभोग दुःख प्रद हैं।"

17 विषय जन्य सुख की लघुता का वर्णन

मूल गाथा- वालाभिरामेसु दुहावहेसु, ण त सुह कामगुणेसु राय।
विरत्तकामाण तवोधणाण, ज भिक्खुण सीलगुणे रयाण॥१७॥

संस्कृत छाया- बालाभिरामेषु दुःखावहेषु, न तत्सुखं कामगुणेषु राजन्।
विरक्तकामाना तपोधनाना, यद्भिक्षूणा शीलगुणेषु रताणाम्॥१७॥

अन्वयार्थ-राय-हे राजन्, वालाभिरामेसु-अज्ञानियो को अभिराम (सुन्दर) लगने वाले, दुहावहेसु-दु ख प्रद, कामगुणेसु-कामभोगो में, त-यह, सुह-सुख नहीं है, ज-जो, (सुख) विरत्तकामाण-काम भोगों से विरक्त, तवोधणाण-तपोधनी, सीलगुणेरयाण-शीलादि गुणा में रत, भिक्खुण-भिक्षुओ को होता है।

भावानुवाद-हे राजन्! मूढ जनों द्वारा रमणीय माने जाने पर भी दु खप्रद काम भोगा में यह सुख नहीं है जो सुख शील गुणों म निरत कामनाओं से निवृत्त तपाधनी भिक्षुओ को प्राप्त होता है।

18 भोगरूपी सुख की अवहेलना का कथन

मूल गाथा- णरिंद! जाई अहमा णराण, सोवागजाई दुहओ गयाण।
जहिं वय सव्वजणस्स वेस्सा, वसीअ सोवागणिवेसणेसु ॥१८॥

संस्कृत छाया- नरेन्द्र! जातिरधमा नराणा, श्वपाकजातिर्द्वयो गतयो ।
यस्यामावा सर्वजनस्य द्वेष्यौ, अवसाव श्वपाकनिवेशनेषु॥१८॥

अन्वयार्थ-णरिंद-हे नरेन्द्र! णराण-मनुष्यो में, अहमा जाई-अधम जाति, सोवाग जाई-श्वपाक (चाण्डाल) जाति में, दुहओ-हम दोनो, गयाण-गये हुए हैं, (उत्पन्न हुए थे), वय-हम दोनो, सोवाग-चाण्डाल की, णिवेसणेसु-बस्तियों में, वसीअ-रहते थे, जहिं-जहा, सव्वजणस्स-सब लोगो के, वेस्सा-द्वेष के पात्र थे।

भावानुवाद-"हे नरेन्द्र! मनुष्यो में जो श्वपाक-चाण्डाल जाति अधम मानी जाती है, उसम हम दोना ने जन्म लिया था। हम दोनो चाण्डालों की बस्ती में रहते थे, जहा हम सभी के घृणा पात्र बने हुए थे।"

19 पूर्वकृत शुभ कर्मों का फल

मूल गाथा- तीसे य जाईए उ पावियाए, वुच्छामु सोवागणिवेसणेसु।
सव्वस्स लोगस्स दुगुछणिज्जा, इह तु कम्माइ पुरे कडाइं॥१९॥

संस्कृत छाया- तस्या च जातौ तु पापिकायाम्, उषितौ स्व श्वपाकनिवेशनेषु।
सर्वस्य लोकस्य जुगुप्सनीयौ, अस्मिस्तु कर्माणि पुराकृतानि॥१९॥

अन्वयार्थ-तीसे-उस, पावियाए-पाप रूप, जाईए उ-(चाण्डाल) जाति में तो, सोवाग-चाण्डालों का णिवसणेसु-बस्ती में, मु-हम दोनों, वुच्छा-रहे थे, सव्वस्स-सभी, लोगस्स-लोगों के, दुगुछणिज्जा-घृणा पात्र थ, तु-किन्तु इह-इस जन्म में, (जो श्रेष्ठता प्राप्त है वह), पुरे कडाइ-पूर्व जन्म म किये हुए, कम्माई-(शुभ) कर्मों का फल है।

भावानुवाद-"उस पापयुक्त चाण्डाल जाति मे जन्म लेकर हम चाण्डाल के घरो मे रहते थे और सभी जनो के घृणा पात्र बने हुए थे, अभी जो श्रेष्ठता एव उच्चता प्राप्त है वह पूर्व जन्म कृत शुभ कर्मों का परिणाम है।"

20 गृह त्याग एव कर्त्तव्य कार्य की प्रेरणा

मूल गाथा- सो दाणिसि राय महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ।
चइत्तु भोगाइ असासयाइ, आयाणहेउ अभिणिक्खमाहि ॥२०॥

सस्कृत छाया- स इदानीं राजन् महानुभाग , महर्द्धिक पुण्य फलोपपेत ।
त्यक्त्वा भोगानशाश्वतान् , आदानहेतोरभिनिष्क्राम ॥२०॥

अन्वयार्थ-राय!-हे राजन्! सो-वह सम्भूत का जीव, दाणिसि-इस समय, महाणुभागो-महाभाग्य शाली, महिड्ढिओ-महान् ऋद्धि सम्पन्न, (तथा) पुण्ण फलोववेओ-पुण्य-फलो से युक्त है, अत असासयाइ-अशाश्वत (विनाशी), भोगाइ-काम भोगो को, चइत्तु-छोडकर, आयाण-चरित्र के, हेउ-हेतु अभिणिक्खमाहि-घर से निकल (अभिनिष्क्रमण कर)।

भावानुवाद-"हे राजन्! (पूर्व जन्म में जुगुप्सित) वह (सम्भूत का जीव) तू इस समय महाभाग महान् ऋद्धि सम्पन्न पुण्य फलो से युक्त राजा हुआ है, अत अब तू क्षणिक भोग सुखो को छोडकर चारित्र धर्म की आराधना क लिये अभिनिष्क्रमण कर-दीक्षा ले।"

21 धर्म का आचरण न करने वालो के लिये हानि

मूल गाथा- इह जीविए राय असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परम्मिलोए॥२१॥

सस्कृत छाया- इह जीविते राजन्नशाश्वते, धनित तु पुण्यान्यकुर्वाण ।
स शोचति मृत्युमुखोपनीत , धर्ममकृत्वा परस्मिँल्लोके॥२१॥

अन्वयार्थ-राय!-हे राजन्!, इह-इस, असासयम्मि-अशाश्वत, जीविए-जीवन में, धणिय-(जो) अधिक, पुण्णाइ-पुण्य कर्म, अकुव्वमाणो-नहीं करता, से-वह, मच्चु-मृत्यु के, मुहोवणीए-मुख मे पहुचने पर, सोयई-शोक करता है, धम्म-धर्म के, अकाऊण-बिना किये, परम्मिलोए-परलोक मे भी (पश्चात्ताप करता है)।

भावानुवाद-"हे राजन्! इस अशाश्वत मानव जीवन मे विपुल पुण्य कर्म नहीं करने वाला व्यक्ति मृत्यु के आगमन पर पश्चाताप करता है। तथा धर्म नहीं करने के कारण परलोक मे भी पश्चाताप करता है।"

22 अशरण भावना का दिग्दर्शन

मूल गाथा- जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू णरं णेइ हु अतकाले।
ण तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मसहरा भवंति॥२२॥

सस्कृत छाया- यथेह सिहो वा मृग गृहीत्वा, मृत्युर्नर नयति खल्वन्तकाले।
न तस्य माता वा पिता च भ्राता, काले तस्याशधरा भवन्ति ॥२२॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, इह-इस लोक म, (यहा) सीहो-सिह, मिय-मृग को, गहाय-पकडकर ले जाता है (वैसे ही) अतकाले-अन्तिम समय म, मच्चू-मृत्यु, हु-निश्चित ही, णर-मनुष्य को, णेइ-ले जाती है, कालम्मि-अन्त समय मे, तस्स-उसके, माया-माता, व-अथवा, पिया-पिता, व-अथवा, भाया-भाई (भ्राता), त-उस (मृत्यु दु ख) मे, असहरा-अशधर (हिस्सेदार), ण-नहीं, भवति-होते हैं।

भावानुवाद-"जिस प्रकार यहा सिह मृग को पकड कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्त समय म मनुष्य को मृत्यु पकड कर ले जाती है। उस मृत्यु के समय में माता, पिता और भाई बन्धु कोई भी मरण दु ख में भागीदार या सहयोगी नहीं बनते है।"

23 मानसिक व शारीरिक दु खो का विभाग सम्भव नहीं

मूल गाथा- ण तस्स दुक्ख विभयति णाइओ, ण मित्तवग्गा ण सुया ण बधवा।
एक्को सय पच्चणुहोइ दुक्ख, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥२३॥

सस्कृत छाया- न तस्य दु ख विभजन्ते ज्ञातय, न मित्रवर्गा न सुता न बान्धवा।
एक स्वय प्रत्यनुभवति दु ख, कर्तारमेवानुयाति कर्म ॥२३॥

अन्वयार्थ-तस्स-उसके, दुक्ख-दु ख का, णाइओ-ज्ञाति (जाति) जन, ण विभयति-विभाग (बटा) नहीं कर सकते, ण मित्तवग्गा-न ही मित्रवर्ग, ण सुया-न पुत्र एव, ण बधवा-न बधु ही कर सकते, सय-स्व (स्वय), एक्को-अकेला ही, दुक्ख-प्राप्त दु ख को, पच्चणुहोइ-भोगता (अनुभव करता) है, क्योकि, कम्म-कर्म, कत्तारमेव-कर्त्ता का ही, अणुजाइ-अनुसरण करता है।

भावानुवाद-"उसके दु ख को न तो जाति के लोग बटा सकते हैं और न मित्र, पुत्र या बन्धु ही। जीव स्वय अकेला ही प्राप्त दु खो को भोगता है, क्योकि कर्म कर्त्ता का ही अनुसरण करता है।"

24 एकत्व भावना का वर्णन

मूल गाथा- चिच्चा दुपय चउप्पयं च, खेत्त गिह धण धण्ण च सव्व।
सकम्मबीओ अवसो पयाइ, पर भव सुदर पावग वा ॥२४॥

सस्कृत छाया- त्यक्त्वा द्विपद च चतुष्पद च, क्षेत्र गृह धन धान्य च सर्वम्।
स्वकर्मद्वितीयोऽवश प्रयाति, परभव सुन्दर पापक वा ॥२४॥

अन्वयार्थ-दुपय-द्विपद (सेवक आदि), चउप्पय-चतुष्पद (पशु आदि चौपाये जानवर), खेत्त-खेत, गिह-घर, च-और धण-धन, धण्ण-धान्यादि, सव्व-सब कुछ, चिच्चा-छोडकर, अवसो-पराधीन जीव, सकम्म बीओ-स्वकृत कर्मों को साथ लिये, सुदर-सुन्दर, वा-अथवा पावग-असुन्दर (पापयुक्त), पर भव-परभव को, पयाइ-जाता है।

भावानुवाद-"द्विपद-सेवक, चतुष्पद-पशु, खेत,घर तथा धन, धान्य आदि सब कुछ यहीं छोडकर यह कर्मवश पराधीन जीव अपने कृत कर्मों को साथ लेकर सुन्दर अथवा कुरूप-पापमय परभव को प्राप्त करता है।"

25 मृत्यु होने के पश्चात् शरीर की गति

मूल गाथा- त इक्कग तुच्छसरीरग से, चिईगय दहिय उ पावगेण।
भज्जा य पुत्तावि य णायओ वा, दायारमण्ण अणुसकमति॥२५॥

सस्कृत छाया- तदेकक तुच्छशरीरक तस्य, चितिगत दग्ध्वा तु पावकेन।
भार्या च पुत्रोऽपि च ज्ञातयो वा, दातारमन्यमनुसक्रामन्ति॥२५॥

अन्वयार्थ-त-उस जीव रहित, इक्कग-एकाकी, चिईगय-चिता पर रखे हुए, तुच्छ-तुच्छ, सरीरग-शरीर को, उ-तो, पावगेण-अग्नि से, दहिय-जलाकर, भज्जा-भार्या (पत्नी), य-और, पुत्तावि-पुत्र भी, य-तथा, वा-इसी प्रकार, णायओ-जाति के लोग भी, अण्ण-अन्य, दायार-आश्रय दाता का, अणुसकमति-अनुसरण करत हैं।

भावानुवाद-"उस एकाकी निर्जीव-तुच्छ चितागत शरीर का अग्नि से जलाकर स्त्री, पुत्र और जातिजन किसी अन्य आश्रय दाता का अनुसरण करते हैं, अर्थात् दूसरे की शरण ले लेते हैं।"

26 भोगो को छोड़कर धर्माचरण का उपदेश

मूल गाथा- उवणिज्जई जीवियमप्पमाय, वण्ण जरा हरइ णरस्स राय।
पचालराया! वयण सुणाहि, मा कासि कम्माइ महालयाइं॥२६॥

सस्कृत छाया- उपनीयते जीवितमप्रमाद वर्ण जरा हरति नरस्य राजन्!
पचालराज! वचन शृणु, मा कार्षी कर्माणि महालयानि॥२६॥

अन्वयार्थ-राय-हे राजन्, जीविय-यह जीवन, अप्पमाय-प्रमाद रहित होकर, उवणिज्जई-(मृत्यु के समीप) चला जा रहा है, जरा-वृद्धावस्था, णरस्स-मनुष्य के, वण्ण-वर्ण का हरइ-हरण करती है, पचाल राया-हे पचाल देश क राजा, वयण-मेरे वचन को, सुणाहि-सुन, महालयाइ-महाहिसक, कम्माइ-पाप कर्म, मा कासि-(तू) मत कर।

भावानुवाद-"हे राजन्! किसी भी प्रकार का प्रमाद किये बिना यह जीवन कर्मों के द्वारा प्रतिक्षण मृत्यु की ओर ले जाया जा रहा है और यह वृद्धावस्था मनुष्य के वर्ण-रूप लावण्य का हरण कर रही है। अत हे पाचालराज! मेरे वचन सुनो और प्रचुर-महादुष्कर्म मत करो।"

27 ब्रह्मदत्त द्वारा भोगो को त्यागने की असमर्थता व्यक्त करना

मूल गाथा- अह पि जाणामि जहेह साहू, ज मे तुम साहसि वक्कमेय।
भोगा इमे सगकरा हवति, जे दुज्जया अज्जो अम्हारिसेहिं॥२७॥

सस्कृत छाया- अहमपि जानामि यथेह साधो, यन्मम त्व साधयसि वाक्यमेतत्।
भोगा इमे सगकरा भवन्ति, ये दुर्जया आर्य! अस्मादृशै॥२७॥

अन्वयार्थ-साहू-हे साधो। जहा-जैसे, इह- इस ससार म, तुम-तुमने, ज-जो, मे-मुझे, एयं-इस प्रकार के, वक्क-वाक्य, साहसि-कहे हैं, उसे अह-मैं, पि-भी, जाणामि-जानता हू कि, इमे-ये, भोगा-कामभोग, संगकरा-(ससार मे) बधनकारक, हवति-होते हैं (किन्तु), अज्जो-हे आर्य। अम्हारिसेहि-हमारे जैसो को तो, जे-य, दुज्जया-दुर्जय हैं।

भावानुवाद-चक्रवर्ती- "हे मुनिप्रवर! जैसा कि तुम मुझे समझा रहे हो, यह मैं भी जानता हू कि ये काम-भोग बधन रूप हैं, किन्तु आय! हम जैसे व्यक्तिया के लिये तो ये अत्यन्त दुर्जेय हैं।"

28 सनत्कुमार चक्रवर्ती की विलक्षण समृद्धि

मूल गाथा- हत्थिणपुरम्मि चित्ता! दट्ठूण णरवइ महिड्ढियं।
कामभोगेसु गिद्धेण णियाणमसुह कड ॥२८॥

सस्कृत छाया- हस्तिनापुरे चित्र! दृष्ट्वा नरपतिं महर्द्धिकम्।
कामभोगेषु गृद्धेन निदानमशुभ कृतम् ॥२८॥

अन्वयार्थ-चित्ता-हे चित्त!, हत्थिण पुरम्मि-हस्तिनापुर में, महिड्ढियं-महान् ऋद्धि वाले, णरवइं-नरपति (चक्रवर्ती) को, दट्ठूण-देखकर, काम भोगेसु-काम भोगा मे, गिद्धेण-आसक्त होकर मैंने, असुह-णियाण-अशुभ निदान, कड-किया था।

भावानुवाद-"हे चित्त! हस्तिनापुर में उस महान् ऋद्धि सम्पन्न चक्रवर्ती सम्राट को देखकर काम-भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान कर लिया था।"

29 निदान कर्म का प्रतिरोध नहीं हो सकता

मूल गाथा- तस्स मे अपडिकतस्स, इम एयारिस फलं।
जाणमाणो वि ज धम्म, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥२९।

सस्कृत छाया- तस्मान्ममाप्रतिक्रान्तस्य, इदमेतादृश फलम्।
जानानोऽपि यद् धर्म, कामभोगेषु मूर्च्छित ॥२९॥

अन्वयार्थ-मे-मैंने, तस्स-उस निदान कर्म का, अपडिकतस्स-प्रतिक्रमण (अप्रतिकान्त) नहीं किया, (उसी का) एयारिस-ऐसा, इम-यह प्रत्यक्ष, फल-फल हुआ, (कि) ज-जो, धम्म-धर्म को, जाणमाणो वि-जानता हुआ भी, काम भोगेसु-काम भोगों में, मुच्छिओ-मूर्च्छित हू।

भावानुवाद-"मैंने उस निदान रूप दोष का प्रतिक्रमण नहीं किया, उसी कम का यह फल है कि धर्म को जानता हुआ भी मैं काम भोगों में आसक्त हू, उन्हें नहीं छोड़ पा रहा हू।"

30 कामभोगो का दलदल एव आसक्त पुरुष का हस्ती के सदृश प्रतिपादन

मूल गाथा- णागो जहा पकजलावसण्णो, दट्ठु थल णाभिसमेइ तीर।
एव वय कामगुणेसु गिद्धा, ण भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ॥३०॥

संस्कृत छाया- नागो यथा पंकजलावसन्न , दृष्ट्वा स्थल नाभिसमेति तीरम्।
एव वय कामगुणेषु गृद्धा , नो भिक्षोर्मार्गमनुव्रजाम ॥३०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, पंकजला-पंकजल-दलदल मे, वसण्णो-फसा (धसा) हुआ, णागो-हाथी, थल-स्थल को, दट्ठु-देखकर भी, तीर-किनारे को, णाभिसमेइ-प्राप्त नहीं होता, एव-इसी प्रकार, काम गुणेसु-काम भोगो मे, गिद्धा-आसक्त, वय-हम, भिक्खुणो-भिक्षु के, मग्ग-मार्ग का, ण अणुव्वयामो-अनुसरण नहीं कर सकते।

भावानुवाद-''जैसे दल दल-कीचड मे फसा हुआ हाथी स्थल को देखता हुआ भी किनारे पर नहीं पहुच पाता है। उसी प्रकार हम काम-भोगो मे आसक्त व्यक्ति जानते हुए भी साधु मार्ग का अनुसरण नहीं कर पाते हैं।''

31 मुनि द्वारा काम भोग के त्याग हेतु दिग्दर्शन

मूल गाथा- अच्चेइ कालो तरंति राइओ, ण यावि भोगा पुरिसाण णिच्चा।
उविच्च भोगा पुरिस चयति, दुम जहा खीणफल व पक्खी॥३१॥

संस्कृत छाया- अत्येति कालस्त्वरन्ते रात्रय , न चापि भोगा पुरुषाणा नित्या ।
उपेत्य भोगा पुरुष त्यजन्ति, द्रुम यथा क्षीणफलमिव पक्षिण ॥३१॥

अन्वयार्थ-हे राजन्, कालो-समय, अच्चेइ-व्यतीत हो रहा है, राइओ-रात्रिया, तरति-शीघ्र जा रही है, पुरिसाण-मनुष्यो के, भोगा-काम भोग, यावि-भी, ण णिच्चा-नित्य नहीं है, भोगा-कामभोग, उविच्च-प्राप्त होकर भी, पुरिस-व्यक्ति को, व-उसी प्रकार, चयति-छोड देते हैं, जहा-जिस प्रकार, खीणफल-क्षीणफल वाले, दुम-वृक्ष को, पक्खी-पक्षी (छोड जाते हैं)।

भावानुवाद-मुनि-''राजन्! समय व्यतीत हो रहा है, रात्रिया बडी तेजी से दौडती जा रही हैं। मनुष्यो के काम भोग भी नित्य स्थायी नहीं हैं। क्षीण पुण्य वाले व्यक्ति को ये काम-भोग उसी प्रकार छोड देते हैं, जैसे कि क्षीण फल वाले वृक्ष को पक्षी।''

32 ब्रह्मदत्त को आर्य कर्म करने की प्रेरणा

मूल गाथा- जइ त सि भोगे चइउ असत्तो, अज्जाइ कम्माइ करेहि राय।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी॥३२॥

संस्कृत छाया- यदि त्वमसि भोगान् त्यक्तुमशक्त , आर्याणि कर्माणि कुरुष्व राजन्।
धर्मे स्थित सर्वप्रजानुकम्पी, तस्माद् भविष्यसि देव इतो वैक्रियी॥३२॥

अन्वयार्थ-राय-हे राजन्, जइ-यदि, त-तू, भोगे-काम भोगो को, चइउ-छोडने में, असत्तो सि-असमर्थ (अशक्त) है तो, अज्जाइ-आर्य, कम्माइ-कर्म ही, करेहि-कर धम्म-धर्म में, ठिओ-स्थित होकर, सव्व-सर्व, पयाणुकंपी-जीवो (प्रजा) पर अनुकम्पा करने वाला हो, तो-जिससे, (तू) इओ-यहा से मरकर, विउव्वी-वैक्रिय शरीर वाला देवो-देवता, होहिसि-हो सकेगा।

भावानुवाद-हे राजन्! यदि तू काम-भोगा का परित्याग करने में असक्षम है, तो आर्य कम ही कर, धर्म के प्रति स्थिर होकर सब प्राणियो पर अनुकम्पा करने वाला बन, जिससे कि तू भविष्य म वैक्रिय शरीर धारक देव तो बन सके।

33 भोगासक्त ब्रह्मदत्त से निराश मुनि का अन्यत्र गमन

मूल गाथा- ण तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धोसि आरम्भपरिग्गहेसु।
मोह कओ एत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि राय आमतिओ सि॥33॥

संस्कृत छाया- न तव भोगान् त्यक्तु बुद्धि, गृद्धोऽस्यारम्भपरिग्रहेषु।
मोघ कृत एतावान् विप्रलाप, गच्छामि राजन्नामन्त्रितोऽसि॥३३॥

अन्वयार्थ-भोगे-भागों को, चइऊण-छोडने की, तुज्झ-तेरी, बुद्धी-बुद्धि, ण-नहीं है, तू, आरम्भ परिग्गहेसु-आरम्भ और परिग्रह में, गिद्धोसि-आसक्त है, एत्तिउ-इतना, विप्पलावो-विप्रलाप, मोह कओ-निष्फल (व्यर्थ) किया, जो, आमतिओ सि-तुम्हे सबोधित किया, राय-हे राजन्, गच्छामि-मैं जाता हू।

भावानुवाद-"हे राजन्! अब भी तुझमें भोगो के परित्याग की प्रज्ञा-बुद्धि नहीं बनी। तू आरम्भ और परिग्रह में अतीव आसक्त हो रहा है। मैंने व्यर्थ ही तुझे इतनी शिक्षा दी-तुम्हें सम्बोधित करके अब मैं जा रहा हू।"

34 काम भोगो मे अत्यासक्त ब्रह्मदत्त का नरक गमन

मूल गाथा- पचालरायावि य बभदत्तो, साहुस्स तस्स वयण अकाउं।
अणुत्तरे भुजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो णरए पविट्ठो॥34॥

संस्कृत छाया- पचालराजोऽपि च ब्रह्मदत्त, साधोस्तस्य वचनमकृत्वा।
अनुत्तरान् भुक्त्वा कामभोगान्, अनुत्तरे स नरके प्रविष्ट ॥३४॥

अन्वयार्थ-पचाल राया-पाचाल देश का राजा, बंभदत्तो-ब्रह्मदत्त ने, वि-भी, तस्स-उस साहुस्स-मुनि (चित्त) के, वयण-वचनो का, अकाउ-स्वीकार नहीं किया, अत सो-वह, अणुत्तरे-उत्कृष्ट, कामभोगे-कामभोगों को, भुंजिय-भोग कर, अणुत्तर-प्रधान, णरए-नरक में, पविट्ठो-प्रविष्ट हुआ (पहुचा)।

भावानुवाद-पाचाल देश के राजा ब्रह्मदत्त ने उस मुनि के वचनो का पालन नहीं किया और अनुत्तर काम भोगों का भोग कर अनुत्तर नरक अप्रतिष्ठान नामक सप्तम नरक म गया।

35 उत्कृष्ट सयम पालन से चित्तमुनि का मुक्ति गमन

मूल गाथा- चित्तो वि कामेहि विरत्तकामो, उदग्गचारित्ततवो महेसी।
अणुत्तर सजम पालइत्ता, अणुत्तर सिद्धिगइ गओ॥35॥

त्ति बेमि

इति चित्तसम्भूतिय तेरसम अज्झयणं समत्त

सस्कृत छाया- चित्रोऽपि कामेभ्यो विरक्तकाम , उदग्रचारित्रतपा महर्षि ।
अनुत्तर सयम पालयित्वा, अनुत्तरा सिद्धिगति गत ॥३५॥

इति ब्रवीमि।

इति चित्तसभूतीय त्रयोदशमध्ययन समाप्तम्॥१३॥

अन्वयार्थ-कामेहि-काम भोगो से, विरत्त कामो-विरक्त काम होकर, उदग्ग-प्रधान, चारित्त-चारित्र और, तवो-तपोधनी, महेसी-महर्षि, चित्तो-चित्त मुनि, वि-भी, अणुत्तर-उत्कृष्ट, सजम-सयम का, पालइत्ता-पालन करके, अणुत्तर-अनुत्तर, सिद्धिगइ-सिद्धिगति (मोक्ष) को, गओ-प्राप्त हुआ।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-काम भोगो से निवृत, उत्कृष्ट चारित्री एव तपाधनी महर्षि चित्त मुनि भी सर्वोत्कृष्ट सयम का पालन करके अनुत्तर सिद्धि गति को प्राप्त हुए।

एसा मैं कहता हू।

इस प्रकार चित्त सम्भूतीय तेरहवा अध्ययन सम्पन्न हुआ।

□□□

इषुकारीय - चतुर्दश अध्ययन

उत्थानिका

हमारी संस्कृति संस्कारो की संस्कृति है और ये संस्कार एक जन्म के ही नहीं, जन्म-जन्म तक के चलते हैं। हमारी चेतना म कुछ संस्कार ऐसे जमे होते हैं, जो सामान्य-सा निमित्त मिलते ही जागृत हो जाते हैं। बाहर के कोई प्रतिरोध उन संस्कारो के जागरण मे व्यवधान उत्पन्न नहीं कर सकते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में ऐसी ही कुछ पुनीत आत्माओ का जीवन्त चित्रण दिया गया है, जो जरा से निमित्त से जागृत होकर आत्म साधना के पावन पथ पर गतिशील हो गई। बाहर के प्रतिबंध और स्थूल बुद्धि के भौतिक आकर्षण उन्हें रोक नहीं सके।

इस अध्ययन की पूर्व पीठिका-पूर्व कथा अत्यन्त रोचक एव मर्मस्पर्शी है। जो अपने भीतर एक गहनतम सन्देश छुपाए हुए है। सन्देश यही कि दो नन्हें-मुन्ने बालक अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के जागरण के साथ ही आत्म साधना के पुनीत पथ पर बढने को संकल्पित हो जाते हैं, और अपने माता-पिता के ज्वलन्त प्रश्नों का सटीक समाधान देकर अपनी प्रतिभा का परिचय देते हैं। जीवन दर्शन की यथार्थता का कितना सुन्दर तर्क स्पर्शी चित्रण उन बालको के द्वारा हुआ है, यह तो मूल ग्रन्थ के अर्थ में अवगाहन करने पर ही ज्ञात हो पाएगा। किन्तु यहा इतना अवश्य ज्ञातव्य है कि यह समस्त चिन्तन पूर्ण समाधान अथवा जीवन रहस्यों का उद्घाटन केवल शब्दाडम्बर मात्र नहीं है। इसके पीछे अनुभूति का आलोक छुपा हुआ है।

जीवन कितना क्षणभंगुर है? समय की गति कितनी त्वरित् है? मनुष्य जीवन की अर्थवत्ता अथवा सार्थकता किस कृति में निहित है? मृत्यु का क्या स्वरूप है? साधना का उम्र से क्या और कितना सम्बन्ध है, आदि प्रश्नों का समाधान दो बालको ने अपनी जननी-जनक को इस सहजता एव तार्किकता से दिया है कि वे निरुत्तर ही नहीं हुए, स्वय भी जीवन के यथार्थ उपयोग को समझ कर उस प्रशस्त मार्ग पर गतिशील हो गए।

अध्ययनगत भावो को समझने के लिए पूर्ववृत्त अथवा पूर्व कथा का उल्लेख अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। अस्तु प्रस्तुत है छह मुमुक्षु आत्माओ की मर्मस्पर्शी जीवन गाथा-

प्राचीन परम्परा का अनुसरण करने वाली इषुकार नृप की राजधानी थी इषुकार नगर। कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत बसी यह नगरी इस कथा की जन्मस्थली है। राजा इषुकार, महारानी कमलावती, भृगु पुरोहित, यशा-पुरोहित पत्नी और उसके दो पुत्र-इन छह व्यक्तियों ने इस नगरी म एक साथ विरक्ति पायी और साधना के पथ पर आगे बढ़ गए।

इषुकार राजा की इषुकार नगरी का यह घटना प्रसग प्रस्तुत अध्ययन में हुआ है, अत इसका इषुकारीय अध्ययन नाम दिया गया है।

इषुकार नगर का राजपुरोहित भृगु श्री सम्पन्न ही नहीं था, राज्य द्वारा सम्मान्य भी था। अपार वैभव और उच्च प्रतिष्ठा के उपरान्त भी भृगु और उसकी पत्नी जशा सन्तान के अभाव में चिन्तित रहते थे। एक दिन दो देव श्रमण वेश मे भृगु पुरोहित के समक्ष उपस्थित हुए और उसे आश्वस्त करते हुए कहने लगे-"तुम चिन्ता न करो, तुम्हारे सन्तान होने वाली है। तुम्हारे दो पुत्र होंगे, किन्तु वे लघुवय मे ही दीक्षित हो जाएगे।"

चूकि उन दोनों देवों को यह ज्ञात हो गया था कि वे देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य योनि मे इसी पुरोहित के यहा उत्पन्न होने वाले हैं। अत उपर्युक्त भविष्यवाणी करके वे पुन देवलोक म चले गए।

इधर भृगु इस सूचना से प्रसन्न तो हुआ, किन्तु उनके बाल्यकाल म ही दीक्षित हो जाने के सकेत से चिन्तित भी हो गया। यथा समय पुरोहित पत्नी न दो पुत्रों को जन्म दिया। वे दोनों देवलोक से आगत आत्माए ही थी। माता ने दोनो पुत्रो मे वैदिक सस्कृति के सस्कारो का आरोपण प्रारभ किया। साथ ही जैन श्रमण के प्रति द्वेष का भाव भरना भी प्रारभ कर दिया। चूकि उसे यह डर था कि श्रमणो के सम्पर्क से दोनो बालक श्रमण बन जाएगे। अत राजपुरोहित भृगु ने शहर से कुछ दूर जगल मे भवन बना लिया और बच्चो के साथ वहीं चारों व्यक्ति रहने लगे। जसा और पुरोहित दोनो बच्चो को यह सिखाते रहते कि ये जो मुखवस्त्रिका वाले जैन श्रमण आते हैं, वे अपने पास चाकू-छुरी रखते हैं, बच्चो को पकड कर ले जाते हैं और उन्हे मार डालते हैं। इन साधुओ के पास कभी नहीं जाना। बच्चा के कोमल मानस मे मा के कुसस्कारो ने साधुओ के प्रति भय उत्पन्न कर दिया। परिमाणत वे साधुआ का देखते ही भय से दूर भागकर छिप जाने का प्रयास करते।

किन्तु जिनके पूर्व जन्मा के सस्कार गहरे होते हैं, उन्हे आत्म जागरण हेतु किसी न किसी रूप म निमित मिल ही जाता है। भवितव्यता को किसी भी प्रकार से प्रतिबधित नहीं किया जा सकता है। एक बार दोनों बालक वन क्रीडा-भ्रमण हेतु गए हुए थे कि उधर कुछ मुनि मार्ग भूल जाने से उनके ही घर पर भिक्षा हेतु पहुच गए। माता-पिता ने शीघ्रता पूर्वक उन्हे आहार दान दिया और इस बात की खुशी मनाई कि इस प्रसग पर दोना बालक यहा नहीं हैं। मुनियो से भृगु पुरोहित ने कहा-"आप शीघ्र ही यहा से दूर निकल जाए, क्योकि मेरे दोनो बालक बडे नटखट हैं, वे आपको परेशान करेगे, अच्छा हुआ कि अभी वे यहा पर नहीं है।"

मुनिगण भिक्षा लेकर वहा से आगे जगल की ओर निकल गए। सयोग से जिस ओर मुनि लाग जा रहे थे, उधर से ही वे दोनो बालक चले आ रहे थे, बालका ने मुनिया का देखा तो मा की कुशिक्षा याद आ गई। वे भय से कापने लगे कि अब ये साधु हमे पकड कर ले जाएगे और मार देगे। दोनो बालक दौड कर छुपने-छुपाते एक बडे वृक्ष पर चढ गए। मुनि अपनी सहज गति से आग बढते हुए उस वृक्ष के नीचे पहुचे तो उचित स्थान देखकर पुरोहित के यहा से लाया गया आहार-ग्रहण करने को बैठ गए। दोनो बालक भयाक्रान्त होते हुए भी मुनियों की क्रिया विधिया को ध्यान पूर्वक देखने लगे। जब मुनियो ने भूमि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन किया, चींटी आदि जन्तुओ से रहित स्थान पर अपने उपकरण रखे और आहार के पात्रों को खाला तो दोनों बालक देखकर विस्मित् होने लगे। उन्होंने सोचा-"भला! इनके पास चाकू आदि शस्त्र कहा है, अरे, ये तो चींटी की भी रक्षा कर रहे हैं, तो हमें कैसे मारेंगे? अवश्य मा ने हमे गलत शिक्षा दी है। ये तो महान् दयालु सन्त हैं।" दोनो बालको का भय और भ्रम दूर हो गया। वे सोचने लगे कि 'ऐसे साधुओ को तो पहले कहीं देखा है', अपनी स्मृति को वे कुछ अतीत में ले गए। स्मृति के ऊहा-अपोह के साथ ही उन्हें जाति स्मरण (पूर्व जन्म का ज्ञान) हो गया। उन्होने अपने पूर्वजन्मा में आचरित साधु जीवन की चर्याओं को स्पष्ट रूप से देखा। वे अत्यन्त प्रसन्न होते हुए वृक्ष से नीचे उतर आए। तब तक मुनियों का भोजन पूर्ण

सम्पन्न हो चुका था, दोनो बालकों ने मुनियो को विधिवत् भाव पूर्ण वन्दन किया।

मुनियो ने उन्हे जिज्ञासु समझ कर जीवन दर्शन और ससार की असारता का प्रतिबोध दिया। दोनों क अन्तरग मे वैराग्य का सागर उमडने लगा। दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण की ओर बढने का दृढ सकल्प कर घर चले गए। घर आकर उन्होने अपने माता-पिता को अपने सकल्पो की जानकारी दी। किन्तु बडी आशाओं से प्राप्त सन्तान को वे ऐसे कैसे छोड सकते थे? पिता भृगु ने वैदिक दर्शन की अनेक युक्तियो-प्रयुक्तियो से बालको को समझाने का प्रयास किया, किन्तु दोना बालको ने पिता द्वारा प्रयुक्त सभी तर्कों का जो अकाट्य उत्तर दिया वह तो मूल ग्रथ के आधार पर ज्ञात होगा। यहा तो यही ज्ञातव्य है कि बालकों के सही उत्तर से प्रभावित होकर स्वय भृगु पुरोहित भी प्रव्रज्या ग्रहण करने को तत्पर हो गए। पत्नी यशा ने पहले तो पति को समझाया कि पुत्रो को जाने दो, तुम तो सासारिक सुख भोग करो, किन्तु अन्त में भृगु के समझाने पर वह भी दीक्षा ग्रहण करने को तत्पर हो गई।

जब चारो व्यक्ति दीक्षा लेने को तैयार हो गए, तो इस परम्परा के अनुसार कि जिसका कोई उत्तराधिकारी नहीं हो, उसका धन राजा का होता है, पुरोहित की अपार सम्पत्ति को राज भण्डार में रखने की घोषणा हुई और बैलगाडियों में भर कर वह वैभव राज भण्डार म लाया जाने लगा।

जब महारानी कमलावती को यह जानकारी हुई तो उसने महाराजा इषुकार को समझाया कि क्या तुम्हारे पास धन की कमी हो गई है जो ब्राह्मण को दान दिया धन पुन ग्रहण कर रहे हो? अरे यह तो वमन किए हुए को पुन ग्रहण करने जैसा कार्य है। इन नश्वर भोगो की आसक्ति म ही आप ऐसा कर रहे हो। अर ये काम-भोग ही एक दिन आपको छोड देंगे। इनके लिये इतन बहुमूल्य जीवन को क्या नष्ट करते हो?

महारानी ने अति तर्क पुष्ट उपदेश दिया राजा को और रानी का वह मर्मस्पर्शी सन्देश राजा की अन्तरात्मा को छू गया। तत्काल राजा और रानी ने भी राज्य वैभव का परित्याग कर दीक्षा लेने का सकल्प कर लिया।

इस प्रकार एक दूसरे के निमित्त और उपदेशो के द्वारा छह व्यक्ति एक साथ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णित यह कथानक केवल कथा ही नहीं है जीवन दर्शन के शाश्वत सत्य इस अध्ययन म अभिव्यक्त हुए हैं। पूर्वजन्म-पूर्व जन्मों के सस्कार, पुण्य फल भोग, जाति स्मरण ज्ञान, सामान्य से निमित्त से आत्म जागरण आदि अनेक ऐसे तथ्य इस अध्ययन से अभिव्यक्त होते हैं, जो अध्यात्म एव आस्तिकता के प्रबलतम पावन प्रमाण हैं।

इस अध्ययन का साराश यदि देखना चाहे तो यही है कि "जीवन की अर्थ वत्ता भोग में नहीं त्याग म है" यह सिद्ध करते हैं नन्हे मुन्ने दो बालक।

□□□

इषुकारीय - चतुर्दश अध्ययन

सूक्ति साराश

उच्च स्थिति उच्चता की प्रतीक है, इसे नीच कार्य मे मत लगाओ।
अपनी हैसियत को कम मत करो।
यह मत भूलो कि प्रबल पुण्य के उदय से उच्च कुल प्राप्त हुआ है।
इसकी उपयोगिता को समझो।

व्यामोह दु ख प्रद ही होता है, चाहे वह गुरु-शिष्य का ही क्यो न हो?
पुत्र व्यामोह सुख सुविधा छोडकर जगल मे रहने का भी मजबूर
कर देता है। इसका जीवन्त उदाहरण है भृगु पुरोहित-जसा भार्या।

क्षणिक सुख, सुख नहीं सुखाभास की कोटि मे आता है।
अनेक प्रकार की विघ्न बाधाओ से परिपूर्ण इस अशाश्वत
ससार मे सुख मानना नासमझी है।

यथार्थ मे हम स्वय, स्वय के त्राता बन सकते है।
वेदाध्ययन रक्षक नहीं बनता और न द्विज-दान प्राण देता है।
पुत्र दुर्गति से बचा नहीं सकता, फिर इन पर विश्वास कैसे किया जाये?

क्षणिक सुख मे मुग्ध होकर, अनन्त दु ख को आमन्त्रण मत दो।
क्षण मात्र सुख देने वाले काम भोग दु खों का एक भण्डार खोल देते हैं
और मुक्ति के द्वार बन्द कर देते हैं।

समझो करणीय-अकरणीय को।
करना कभी पूरा नहीं होता है और समय गुजर जाता है।

धर्म पदार्थों स नहीं अन्तरग वृत्तियो से होता है।
धर्म के लिये धन की आवश्यकता नहीं होती, न स्वजन की
आवश्यकता होती है और न इन्द्रिय-विषयो की।

अमूर्त सत्ता के नहीं दीखने पर उस अस्वीकृत करने
का दुस्साहस मत करो।
आत्मा अमूर्त है, उसे मूर्त इन्द्रियो से देखन का प्रयास ठीक
वैसा ही होगा जैसे कपडे नापने के मीटर से बुखार नापने का।

जहा सर्वत्र आपा-धापी है, उसी का नाम संसार है।
यह प्राणी जगत मृत्यु से आहत है, जरा बुढापे से घिरा हुआ है,
अमोघ-अस्त्र रूपी रात्रिया इसे समाप्त कर रही है, इसमें सुख कहा?

जो समय को अपना बना लेता है, उसी का जीवन सार्थक है।
समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता और जो समय बीत गया
वह लौट कर नहीं आता, अत समय का सम्यगुपयोग कर लो।

साधना का कार्य कल पर डालना स्वयं से छलावा है।
कल की बात मत करो, क्योंकि मृत्यु से तुम्हारी मित्रता नहीं है
और न तुम उसके आने पर कहीं भाग-छिप सकते हो।

शाखा रहित वृक्ष ठूंठ है, साधना रहित जीवन बोझ है।
संसार का सम्पूर्ण वैभव भी तुम्हें मिल जाये तो भी
अपर्याप्त होगा, क्योंकि तृष्णा अपूरणीय है।

स्वयं की शरण जाओ, पदार्थ की शरण नहीं।
यहा धर्म-साधना के अतिरिक्त और कोई रक्षक नहीं है।

संसार दावानल है, इससे बाहर निकलने का पुरुषार्थ करो।
राग-द्वेष रूपी अग्नि से जलते हुए संसार में क्षण भर को भी शान्ति नहीं मिलती।

□□□

अह उसुयारिज्जं चोद्दहमं अज्झयणं

अथेषुकारीयं चतुर्दशमध्ययनम्

इषुकारीय

1 देवलोक से च्युत होकर इषुकार नगर मे जन्म

मूल गाथा- देवा भवित्ताण पुरे भवम्मि, केई चुया एगविमाणवासी।
पुरे पुराणे उसुयारणामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥1॥

संस्कृत छाया- देवा भूत्वा पूर्वभवे, केचिच्च्युता एकविमानवासिनः ।
पुरे पुराण इषुकारनाम्नि, ख्याते समृद्धे सुरलोकरम्ये ॥१॥

अन्वयार्थ-पुरे-पूर्व, भवम्मि-भव में, देवा-देवता, भवित्ताण-होकर, एगविमाणवासी-एक ही विमान के वासी, केई-कुछ जीव, चुया-वहा से च्यवकर, सुर लोगरम्मे-देवलोक के समान, सुरम्य, पुराणे-प्राचीन, खाए-विख्यात (और), समिद्धे-समृद्ध उसुयार णामे-इषुकार नामक, पुरे-नगर में उत्पन्न हुए।

भावानुवाद-पूर्व जन्म मे देव रहकर एक ही विमान मे निवास करने वाले कुछ जीव उस देवलोक से च्युत होकर (मृत्यु को प्राप्त कर) देवलोक के तुल्य ही रमणीय अति प्राचीन एव समृद्धिशाली इषुकार नामक नगर मे उत्पन्न हुए।

2 शुभ कर्मों के शेष रहते हुए च्यवन हुआ या नहीं?

मूल गाथा- सकम्मसेसेण पुराकएण, कुलेसुदग्गेसु य ते पसूया।
णिव्विण्णससारभया जहाय, जिणिदमग्ग सरण पवण्णा॥२॥

संस्कृत छाया- स्वकर्मशेषेण पुराकृतेन, कुलेषूदग्रेषु च ते प्रसूता ।
निर्विण्णा ससारभयात्त्यक्त्वा, जिनेन्द्रमार्गं शरण प्रपन्ना ॥२॥

अन्वयार्थ-पुरा कएण-पूर्व जन्म में कृत सकम्म सेसेण-अपने अवशिष्ट कर्मों के कारण, ते-वे देवता, दग्गेसु-उच्च, कुलेसु-कुलों में, पसूया-उत्पन्न हुए, य-और, णिव्विण्ण-उद्वेग से युक्त, ससारभया-ससार के भय से, जहाय-(काम भोगों का) परित्याग कर, जिणिदमग्ग-जिनेन्द्र मार्ग को, सरण-शरण को, पवण्णा-प्राप्त हुए।

भावानुवाद-अपने ही पूर्व कृत कर्मों के अवशेष रह जाने के कारण वे जीव उच्च कुलों में उत्पन्न हुए और ससार

भय से उद्विग्न होकर काम भोगों से विरक्त होकर जिनेन्द्र मार्ग की शरण ग्रहण की।

3 प्रधान कुल म किस-किस नाम वाले जीव उत्पन्न हुए

मूल गाथा-
पुमत्तमागम्म कुमार दो वि,
पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती।
विसालकित्ती य तहेसुयारो,
रायत्थ देवी कमलावई य ॥3॥

संस्कृत छाया-
पुरुत्वमाऽऽगम्य कुमारौ द्वावपि,
पुरोहित च तस्य यशा च पत्नी।
विशालकीर्तिश्च तथेषुकारः,
राजात्र देवी कमलावती च ॥3॥

अन्वयार्थ-अत्थ-इस भव में, पुमत्त-पुरुष भाव (रूप) में, आगम्म-आकर, कुमार दोवि-दोनों कुमार य और, पुरोहिओ-पुरोहित, तस्स-उसकी, पत्ती-पत्नी, जसा-यशा, तह-तथा, विसालकित्ती-विशाल कीर्ति वाला, उसुयारो-इषुकार नामक, राया-राजा, य-और, कमलावइ-कमलावती देवी (पटरानी) (ये 6 व्यक्ति थे)।

भावानुवाद-पुरुषत्व को प्राप्त कर दोनो पुरोहित कुमार, स्वय पुरोहित, उसकी पत्नी यशा, विशाल कीर्ति का धारक इषुकार राजा और उसकी रानी कमलावती, ये छह व्यक्ति थे।

4 दोनो पुरोहित पुत्रों के विषय म वर्णन

मूल गाथा-
जाईजरामच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभिणिविट्ठचित्ता।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥4॥

संस्कृत छाया-
जातिजरामृत्युभयाभिभूतौ, बहिर्विहाराभिनिविष्टचित्तौ।
संसारचक्रस्य विमोक्षार्थं, दृष्ट्वा (साधु) तौ कामगुणेभ्यो विरक्तौ ॥4॥

अन्वयार्थ-दट्ठूण-मुनियों को, देखकर, ते-वे दोनों (पुरोहित पुत्र) जाई-जन्म, जरा-बुढ़ापा, और मच्चु-मृत्यु के भयाभिभूया-भय से व्याप्त हुए तथा, बहिं-(ससार से) बाहर, विहाराभिणिविट्ठचित्ता-मोक्ष की ओर आकृष्ट हुए, ससार चक्कस्स-ससार चक्र से, विमोक्खणट्ठा विमुक्त होने के लिए, कामगुणे-काम गुणो से, विरत्ता-विरक्त हुए।

भावानुवाद-मुनिदर्शन के द्वारा जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर जन्म जरा और मृत्यु के भय से अभिभूत कुमारों का चित्त ससार से बाहर अर्थात् मोक्ष मार्ग की ओर आकृष्ट हुआ, परिणामत वे शब्दादि काम गुणो से, ससार चक्र से मुक्ति पाने के लिए विरक्त हो गए।

5 तप एवं संयमादि का स्मरण करना

मूल गाथा-
पियपुत्तगा दोण्णि वि माहणस्स,
सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स।

सरितु पोराणियं तत्थ जाइ,
तहा सुचिण्णं तवसंजमं च ॥5॥

संस्कृत छाया- प्रियपुत्रको द्वावपि ब्राह्मणस्य,
स्वकर्मशीलस्य पुरोहितस्य।
स्मृत्वा पौराणिकीं तत्र जातिं,
तथा सुचीर्णं तपः संयमं च ॥5॥

अन्वयार्थ-सकम्म सीलस्स-स्वकर्म निष्ठ, माहणस्स-उस भृगु नामक ब्राह्मण, पुरोहियस्स-पुरोहित के, दोण्णवि-वे दोनो ही, पियपुत्तगा-प्रिय पुत्र, पोराणिय जाइ-अपने पुराने जन्म को, तहा-तथा, तत्थ-उस जन्म मे, सुचिण्ण-अर्जित किए हुए, तव-तप, च-और, सजम-सयम को, सरितु-स्मरण करके (काम भोगो से विरक्त हुए)।

भावानुवाद-यज्ञ-यागादि-स्वकर्म मे निरत उस ब्राह्मण-पुरोहित के दोनो ही प्रिय पुत्र अपने पूर्व जन्म को तथा तत्कालीन आचरित तप सयम को स्मरण करके विरक्त हो गए।

6 कामभोगो को छोड़कर मोक्ष की अभिलाषा

मूल गाथा- ते कामभोगेसु असज्जमाणा,
माणुसएसु जे यावि दिव्वा।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसड्ढा,
तातं उवागम्म इमं उदाहु ॥6॥

संस्कृत छाया- तौ कामभोगेष्वसजन्तौ,
मानुष्यकेषु ये चापि दिव्या (तेषु)।
मोक्षाभिकाङ्क्षिणावभिजातश्रद्धौ,
तातमुपागम्येदमुदाहरताम् ॥6॥

अन्वयार्थ-माणुसएसु-मनुष्य सम्बन्धी, काम भोगेसु-काम भोगो में, तथा जे-जो, दिव्वा-दिव्य कामभोग, यावि-हैं (उनमें) भी, असज्जमाणा-आसक्त न होते हुए, मोक्खाभिकखी-मोक्ष क आकाक्षी, अभिजाय सड्ढा-श्रद्धा से सपन्न, ते-वे दोना कुमार, तात-पिता के पास उवागम्म-आकर, इम-यह वचन, उदाहु-कहन लगे-

भावानुवाद-वे दोनो पुरोहित कुमार मनुष्य तथा देव सबधी कामभोगो में अनासक्त, केवल मोक्ष की ही आकाक्षा वाले श्रद्धा सम्पन्न होकर अपने पिता के समक्ष आकर इस प्रकार कहने लगे-

7 पुत्रो द्वारा मुनि दीक्षा की अनुमति मागना

मूल गाथा- असासयं दट्ठु इमं विहारं,
बहुअंतरायं न य दीहमाउं।

तम्हा गिहसि ण रइ लभामो,
आमंतयामो चरिस्सामु मोण ॥७॥

संस्कृत छाया- अशाश्वतं दृष्ट्वेमं विहारं,
बह्वन्तरायं न च दीर्घमायुः।
तस्माद् गृहे न रतिं लभामहे,
आमन्त्रयावश्चरिष्यावो मौनम्॥७॥

अन्वयार्थ-इम-इस, विहार-मनुष्य भव को, असासय-अशाश्वत, तथा बहु-अनेक, (रोगादि), अंतरायं-अन्तरायों वाला, दट्ठु-देखकर, य-और, दीहमाउ ण-आयु दीर्घ नहीं है, तम्हा-इसलिए, गिहंसि-घर में, रइं-रति-आनन्द को, ण लभामो-नहीं पा रहे हैं, अतः आमंतयामो-आपसे पूछते हैं कि, मोणं (हम)-मुनिवृत्ति (मौन) का, चरिस्सामु-आचरण करेंगे।

भावानुवाद-(हे तात) "हमने जीवन की क्षण भंगुरता को समझा है, यह रोगादि अनेक विघ्न-बाधाओं से परिपूर्ण है और यहां आयुष्य भी अल्प ही है। अतः हमें अब घर में (गृहवास में) आनन्द प्राप्त नहीं होता है। हम आपसे अनुमति मांगने आए हैं कि हम मुनि धर्म का आचरण करें।"

8 भृगु पुरोहित का पुत्रों को कथन

मूल गाथा- अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं,
तवस्स वाघायकरं वयासी।
इमं वयं वेयविओ वयंति,
जहा ण होई असुयाण लोगो॥८॥

संस्कृत छाया- अथ तातकस्तत्र मुन्योस्तयोः,
तपसो व्याघातकरमवादीत्।
इमां वाचं वेदविदो वदन्ति,
यथा न भवत्यसुतानां लोकः॥८॥

अन्वयार्थ-अह-(भावना जानकर) इसके पश्चात्, तायगो-पिता ने, तत्थ-उस समय, तेसिं-उन मुणीणं-मुनियों (बालकों) के, तवस्स-तप में, वाघाय कर-व्याघात करने वाले वचन, वयासी-कहे कि (पुत्रो!), वेयविओ-वेदों के ज्ञाता, इम-इस प्रकार, वयं-वचन वयंति-कहते हैं, जहा-जैसे कि, असुयाण-पुत्र रहितों का, लोगो-परलोक (सद्गति), ण होई-नहीं होता।

भावानुवाद-पुत्रों के विचार सुनकर पिता ने उन कुमारों-भाव मुनियों को उनके तप मार्ग में बाधा डालने वाली बात कही कि-'हे पुत्रो! वेदविदों का वचन है कि जिनको पुत्र नहीं होता है, उनकी सद्गति नहीं होती है।'

9 वैदिक मान्यतानुसार अभी प्रव्रज्या लेने से रोकना

मूल गाथा-

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे,
पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं,
आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥९॥

संस्कृत छाया-

अधीत्य वेदान् परिवेष्य विप्रान्,
पुत्रान् परिष्ठाप्य गृहे जातौ।
भुक्त्वा भोगान् सह स्त्रीभि,
आरण्यकौ भवत मुनी प्रशस्तौ ॥९॥

अन्वयार्थ-अत , जाया-हे पुत्रा, वेए-वेदा का, अहिज्ज-अध्ययन करके, विप्पे-ब्राह्मणा को, परिविस्स-भोजन देकर, इत्थियाहिं-स्त्रियो के, सह-साथ, भोए-भोगो का, भोच्चाण-भोगकर, पुत्ते-पुत्रो को, गिहंसि-घर में, परिट्ठप्प-स्थापना करके, (दोनो), आरण्णगा-आरण्यक, पसत्था-प्रशस्त, श्रेष्ठ, मुणी-मुनि, होइ-बनना।

भावानुवाद-"अत हे पुत्रो! पहले वेदो का अध्ययन करो, ब्राह्मणो को भोजन दो और विवाह करके स्त्रियो के साथ काम भोगो का सेवन करो। इसके बाद पुत्रा को घर का दायित्व सौंप कर अरण्यवासी श्रेष्ठ मुनि बनना।"

10 भृगु पुरोहित की मन स्थिति शोक सतप्त

मूल गाथा-

सोयग्गिणा ऽऽयगुणिंधणेण,
मोहाणिला पज्जलणाहिएण।
संतत्तभाव परितप्पमाण,
लालप्पमाण बहुहा बहु च ॥१०॥

संस्कृत छाया-

शोकाग्निना आत्मगुणेन्धनेन,
मोहानिलादधिक प्रज्वलनेन।
संतप्तभाव परितप्यमान,
लालप्यमान बहुधा बहु च ॥१०॥

अन्वयार्थ-आयगुणिंधणेण-अपने रागादिगुण रूप ईंधन (तथा), मोहाणिला-मोहरूपी पवन से, पज्जलणाहिएण-अधिकाधिक प्रज्वलित, सोयग्गिणा-शोक रूपी अग्नि से, संतत्तभाव-सतप्त अत करण वाले, परितप्पमाण-परितप्त होते हुए, बहु-बहुत प्रकार से, च-और, बहुहा-बहुत बार लालप्पमाण-(मोहवश दीन हीन) वचन बोलते हुए।

भावानुवाद-अपने रागादि-गुण रूप ईंधन से प्रदीप्त तथा मोह रूप हवा से प्रज्वलित शोकाग्नि के कारण जिसका अन्त करण सतप्त एव परितप्त हो गया है तथा जो मोहग्रस्त होकर अनेक प्रकार से अत्यधिक दीन-हीन वचन बोल रहा है।

11 धन भोगादि रूप मोह से प्रेरित करना

मूल गाथा-

पुरोहियं तं कमसोऽणुणंतं,
णिमंतयंतं च सुए धणेण।
जहक्कमं कामगुणेहिं चेव,
कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥11॥

संस्कृत छाया-

पुरोहितं तं क्रमशोऽनुनयन्तं,
निमन्त्रयन्तं च सुतौ धनेन।
यथाक्रमं कामगुणैश्चैव,
कुमारकौ तौ प्रसमीक्ष्य वाक्यम् ॥११॥

अन्वयार्थ-सुए-पुत्रों को, कमसो-क्रमशः (एक के बाद एक), अणुणंतं-अनुनय करते हुए (तथा) धणेणं-धन के, च-और, काम गुणेहिं-काम भोगों, चेव-के लिए, भी, जहक्कमं-यथाक्रम से णिमंतयंतं-निमन्त्रण देते हुए, तं पुरोहियं-(अपने पिता) उस पुरोहित को, ते-वे दोनों, कुमारगा-कुमारों, पसमिक्ख-भली भांति देखकर, वक्कं-ये वचन बोले-

भावानुवाद-जो एक के पश्चात् एक बार-बार अनुनय कर रहा है, धन और क्रमागत काम भोगों के लिए आमन्त्रण दे रहा है, उस अपने पिता भृगु पुरोहित को कुमारों ने सुविचारित ढंग से यों कहा-

12 पुरोहित-पुत्रों का पिता को समाधान

मूल गाथा-

वेया अहीया ण भवंति ताणं,
भुत्ता दिया णिंति तमं तमेणं।
जाया य पुत्ता ण हवंति ताणं,
को णाम ते अणुमण्णेज्ज एयं ॥12॥

संस्कृत छाया-

वेदा अधीता न भवन्ति त्राणं,
भोजिता द्विजा नयन्ति तमस्तमसि।
जाताश्च पुत्रा न भवन्ति त्राणं,
को नाम त्वामनुमन्येतैतत् ॥१२॥

अन्वयार्थ-(पिताजी!) वेया-वेद अहीया-पढ़े हुए, ताणं-रक्षक, ण भवंति-नहीं होते, दिया-ब्राह्मणों (द्विजों) को, भुत्ता-भोजन कराने से, तमं तमेणं-तमस्तम [illegible] नरक (अन्धकार) में, णिंति-ले जाते हैं, य-तथा जाया-उत्पन्न हुए पुत्ता-पुत्र भी, ताणं-रक्षक ण हवंति-नहीं होते (अतः), ते-आपके, एयं इस [illegible], को णाम-भला कौन अणुमण्णेज्ज-अनुमोदन करेगा?

भावानुवाद-पुत्र-"पढ़े हुए वेद भी त्राण-रक्षक नहीं होते हैं। यज्ञ-यागादि के अन्त में [illegible] ब्राह्मणों को भोजन कराने पर भी (पाप कर्म) [illegible] अन्धकारयुक्त नरक में ले जाते हैं और पुत्र भी त्राण करने वाले नहीं

हैं। अत आपके उपर्युक्त कथन का कौन अनुमोदन करेगा?"

13 विषम भोगो की असारता का प्रतिपादन

मूल गाथा- खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा।
ससारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥13॥

सस्कृत छाया- क्षणमात्रसौख्या बहुकालदु खा,
प्रकामदु खा अनिकामसौख्या।
ससारमोक्षस्य विपक्षभूता,
खानिरनर्थाना तु कामभोगा ॥१३॥

अन्वयार्थ-(पिताजी!) कामभोगा-कामभोग, खणमित्त-क्षण मात्र के, सुक्खा-सुखदायी हैं, एव, बहु काल-बहुकाल पर्यन्त, दुक्खा-दु ख देते हैं, पगाम-अधिक, दुक्खा-दु ख हैं, अणिगाम-बहुत थोडा, सोक्खा-सुख देते हैं ससारमोक्खस्स-ससार से मुक्त (मोक्ष) के, विपक्खभूया-विपक्षभूत (बाधक) हैं, उ-अत, अणत्थाण-अनर्थों की, खाणी-खान हैं।

भावानुवाद-"ये काम-भोग क्षण मात्र के लिए सुख देते हैं, जबकि चिरकाल तक दु ख देते हैं। अत ये अधिक दु ख और अल्प सुख देने वाले हैं। ये ससार से मुक्त होने में व्यवधान उत्पन्न करते हैं और अनर्थों की खान हैं।"

14 कामभोगादि पदार्थ की अनर्थकारिता

मूल गाथा- परिव्वयते अणियत्तकामे,
अहो य राओ परितप्पमाणे।
अण्णप्पमत्तो धणमेसमाणे,
पप्पोति मच्चु पुरिसे जर च ॥14॥

सस्कृत छाया- परिव्रजन्ननिवृत्तकाम,
अह्नि रात्रौ परितप्यमान।
अन्यप्रमत्तो धनमेषयन्,
प्राप्नोति मृत्यु पुरुषो जरा च ॥१४॥

अन्वयार्थ-अणियत्तकामे-काम भोगो से जो निवृत्त नहीं है (ऐसे), पुरिसे-पुरुष, अहो-दिन, य-और, राओ-रात, परितप्पमाणे-(अतृप्ति की अग्नि से) सतप्त होकर, परिव्वयत-भटकते रहते हैं (वह) अण्णप्पमत्त-दूसरों के लिए प्रमत्त होकर धणमेसमाणे-धन की गवेषणा करता हुआ, जर-जरा (बुढापा) का, च-और मच्चुं-मृत्यु को, पप्पोति-प्राप्त करता है।

भावानुवाद-"जो व्यक्ति विषय-भोगों की कामनाओं से निवृत्त नहीं है, वह अहर्निश अतृप्ति के परिताप से संतप्त होता हुआ भटकता रहता है तथा दूसरों के लिए प्रमादी बनकर धन की खोज में लगा हुआ वह एक दिन जरा और मृत्यु के मुख को प्राप्त हो जाता है।"

15 अप्रमत्त रहने की शिक्षा

मूल गाथा-

इम च मे अत्थि इम च णत्थि,
इम च मे किच्च इम अकिच्च।
त एवमेव लालप्पमाणं,
हरा हरंति त्ति कह पमाओ? ॥१५॥

संस्कृत छाया-

इद च मेऽस्ति इद च नास्ति,
इद च मे कृत्यमिदमकृत्यम्।
तमेवमेव लालप्यमानं,
हरा हरन्तीति कथ प्रमाद ॥१५॥

अन्वयार्थ-इम च-यह, मे अत्थि-मेरे पास है, च-और इम णत्थि-यह नहीं है, इमं-यह, म-मुझे, किच्चं-करना है, च-और, इम-यह, अकिच्चं-नहीं करना है, एवमेवं-इस प्रकार, लालप्पमाणं-संताप करते हुए, तं-उस व्यक्ति का, हरा-हरण करने वाले, (कालरूपचोर) हरंति-हरण कर लेते हैं, त्ति-ऐसी स्थिति में, पमाओ-प्रमाद कह-कैसा?

भावानुवाद-"मेरे पास यह है, यह नहीं है, मुझे यह करना है, यह नहीं करना है, इस प्रकार निरर्थक प्रलाप में संलग्न व्यक्ति की आयुष्य का अपहरण करने वाले दिन रात रूपी काल चोर उठा ले जाते हैं, ऐसी स्थिति में प्रमाद क्यों किया जाय?"

16 पुरोहित कथन-श्रमणत्व का फल यहीं प्राप्त है, फिर श्रमण क्यों बनते हैं?

मूल गाथा-

धण पभूय सह इत्थियाहिं,
सयणा तहा कामगुणा पगामा।
तव कए तप्पइ जस्स लोगो,
त सव्व साहीणमिहेव तुब्भ ॥१६॥

संस्कृत छाया-

धन प्रभूत सह स्त्रीभि,
स्वजनास्तथा कामगुणा प्रकामा।
तप कृते तप्यते यस्य लोक,
तत्सर्वं स्वाधीनमिहैव युवयो ॥१६॥

अन्वयार्थ-जस्स कए-जिसके लिए, लोगो-लोग, तवं-तप को तप्पइ-करते हैं, तं सव्व-वह सब पभूयं-प्रचुर धणं-धन इत्थियाहिं-स्त्रियों के, सह-साथ पगामा-प्रचुर कामगुणा-काम भोग तहा तथा सयणा स्वजन

इहेव-यहीं पर, तुब्भ-तुम्हे, साहीण-स्वाधीन रूप है।

भावानुवाद-पिता भृगु-"जिसकी उपलब्धि हेतु लोग तप करते हैं, वह प्रचुर धन, स्त्रिया, स्वजन तथा अत्यधिक काम सुख-इन्द्रियो के मनोज्ञ विषय भोग-तुम्हे यहीं पर स्वाधीन रूप से प्राप्त हैं। फिर इन्हे परलोक मे प्राप्त करने की कामना से मुनि क्यो बनना चाहते हो?"

17 पुरोहित-पुत्रो द्वारा प्रतिवाद

मूल गाथा-

धणेण किं धम्मधुराहिगारे,
सयणेण वा कामगुणेहि चेव।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी,
बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ॥१७॥

संस्कृत छाया-

धनेन किं धर्मधुराधिकारे,
स्वजनेन वा कामगुणैश्चैव।
श्रमणौ भविष्यावो गुणौघधारिणौ,
बहिर्विहारावभिगम्य भिक्षाम् ॥१७॥

अन्वयार्थ-धम्मधुराहिगारे-(दशविध श्रमण) धर्म धुरा के अधिकार मे, धणेण-धन से, सयणेण-स्वजन से, वा-अथवा, कामगुणेहि चेव-कामभोगो से भी, किं-क्या प्रयोजन? (हम तो) गुणोहधारी-गुण समूह के धारक, भिक्ख-भिक्षा का, अभिगम्म-आश्रय लेकर, बहिं-नगर से बाहर, विहारा-अप्रतिबद्धविहारी, समणा-श्रमण, भविस्सामु-बनेगे।

भावानुवाद-पुत्र-"जो धर्म की धुरा का अधिकारी है, उसे धन, स्वजन एव इन्द्रिय सुख-साधनो से क्या प्रयोजन है? हम तो गुण समूह धारक, अप्रतिबद्ध विहारी विशुद्ध भिक्षा जीवी श्रमण बनेगे।"

18 पुरोहित कथन-शरीर नष्ट होते ही आत्मा नष्ट हो जाती है

मूल गाथा-

जहा य अग्गी अरणी असंतो,
खीरे घयं तेल्ल महातिलेसु।
एमेव जाया सरीरंसि सत्ता,
संमुच्छई नासइ नावचिट्ठे ॥१८॥

संस्कृत छाया-

यथा चाग्निररणितोऽसन्,
क्षीरे घृत तैल महातिलेषु।
एवमेव जातौ शरीरे सत्त्वा,
संमूर्च्छन्ति नश्यन्ति नावतिष्ठन्ते ॥१८॥

अन्वयार्थ-जहा य-जैसे, अरणी-अरणि में अग्गी-अग्नि, खीरे-दूध में घय-घृत महातिलेसु-तिलों में तेल्ल-

तेल, असतो-अविद्यमान होते हुए भी उत्पन्न होता है, जाया-हे पुत्रो! एमेव-इसी प्रकार, सरीरंसि-शरीर में सत्ता-जीव भी, समुच्छई-उत्पन्न होता है, और णासइ-नष्ट हो जाता है, णावचिट्ठे-जीव का अस्तित्व नहीं रहता है।

भावानुवाद-पिता भृगु-"पुत्रो! जैसे-अरणि-काष्ट में अग्नि, दूध में घृत, तिलों में तेल-असत् (अविद्यमान) होते हुए भी उत्पन्न होता है, वैसे ही शरीर में जीव भी असत् ही उत्पन्न होता है और विनष्ट हो जाता है। शरीर के नष्ट होने पर जीव का अस्तित्व नहीं रहता है।"

19 पुत्र कथन-आत्मा अमूर्त नित्य और बंधन संसार का हेतु

मूल गाथा-
णो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा वि य होइ णिच्चो।
अज्झत्थहेउं णिययस्स बंधो,
संसारहेउं च वयंति बंधं ॥१९॥

संस्कृत छाया-
नो इन्द्रियग्राह्योऽमूर्तभावात्,
अमूर्तभावादपि च भवति नित्यः।
अध्यात्महेतुर्नियतस्य बन्धः,
संसारहेतुं च वदन्ति बन्धम् ॥१९॥

अन्वयार्थ-अमुत्तभावा-अमूर्तभाव (आत्मादि), णो इंदियग्गेज्झ-इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है, य-तथा, अमुत्तभावा वि-अमूर्त होने से य भाव, णिच्चो-नित्य, होइ-है, अस्स-इस (आत्मा) का, बंधो-बन्ध, अज्झत्थहेउं-अध्यात्म हेतु (मिथ्यात्वादि) के कारण, णिययस्स-निश्चित है, च-और, बंधं-बन्ध को ही संसारहेउं-संसार का हेतु वयंति-कहते हैं।

भावानुवाद-पुत्र-"आत्मा अमूर्त है, अतः यह इन्द्रियों के द्वारा अग्राह्य है, जाना नहीं जा सकता है। जो अमूर्त भाव होता है, वह नित्य होता है। आत्मा के मिथ्यात्व आदि आन्तरिक हेतु ही नियत रूप से बन्ध के हेतु हैं और बन्ध ही संसार का हेतु माना गया है।"

20 पाप कर्म का सेवन निरर्थक-पुत्रों द्वारा स्पष्टीकरण

मूल गाथा-
जहा वयं धम्म अजाणमाणा,
पावं पुरा कम्ममकासि मोहा।
ओरुज्झमाणा परिरक्खयंता,
तं णेव भुज्जो वि समायरामो ॥२०॥

संस्कृत छाया-
यथाऽऽवां धर्ममजानानौ,
पापं पुरा कर्माकार्ष्व मोहात्।

अवरुध्यमानौ परिरक्ष्यमाणौ,
तन्नैव भूयोऽपि समाचराव ॥२०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, वय-हम दोनो, धम्म-धर्म को, अजाणमाणा-नहीं जानते हुए, मोहा-मोह वश, पुरा-पहले, पाव कम्म-पापकर्म, अकासि-करते रहे, (और आपके द्वारा) ओरुब्भ माणा-रोके जाते हुए, परिरक्खियतो-सर्व प्रकार से सुरक्षित किए हुए, त-उस पाप कर्म को, भुज्जोवि-अब पुन , णेव-नहीं, समायरामो-ग्रहण करेगे।

भावानुवाद-हम पहले आपके द्वारा (घर के बाहर जाने से) अवरुद्ध किए गए, हम सब तरफ से प्रतिबन्धित होकर सरक्षण पाते रहे। ऐसी स्थिति मे जब तक हम धर्म से अनभिज्ञ थे, तब तक हम मोहवश पाप कर्म करते रहे। अब हम उस पाप कर्म का आचरण पुन नहीं करेंगे।

21 पुत्रो द्वारा कथन-घर मे रहना रुचिकर नहीं

मूल गाथा- अब्भाहयम्मि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहि पडतीहिं, गिहसि ण रइ लभे।

सस्कृत छाया- अभ्याहते लोके, सर्वत परिवारिते।
अमोघाभि पतन्तीभि, गृहे न रति लभामहे॥२१॥

अन्वयार्थ-अब्भाहयम्मि-पीडित हुए, लोगम्मि-लोक मे, सव्वओ-सर्व दिशाओ में, परिवारिए-परिवृत्त हुए अमोहाहिं-अमोघ, पडतीहि-शस्त्र धाराओ के पडने से, गिहसि-घर मे, रइ-रति (आनन्द) को, ण लभे-हम नहीं पाते।

भावानुवाद-यह लोक-ससार पीडित है, चारा ओर से घिरा हुआ हैं। अमोघाए शस्त्र धाराए गिर रही है। इस स्थिति में हम घर मे आनद नहीं पा रहे हैं।

22 पुरोहित का प्रश्न-लोक किससे पीड़ित, किससे घिरा?

मूल गाथा- केण अब्भाहओ लोगो, केण वा परिवारिओ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया चितावरो हुमे॥२२॥

सस्कृत छाया- केनाभ्याहतो लोक, केन वा परिवारित।
का वाऽमोघा उक्ता, जातौ चिन्तापरो भवामि॥२२॥

अन्वयार्थ-जाया-पुत्रो! लोगो-यह लोक, केण-किससे, अब्भाहओ-पीडित है?, वा-अथवा, केण-किससे परिवारिओ-परिवेष्टित (घिरा हुआ) है, वा-अथवा, का-कौनसी, अमोहा-शस्त्रधारा (अमोघ), वुत्ता-कही है चिंतावरो हुम-मैं चिन्तातुर हू।

भावानुवाद-पिता भृगु - "पुत्रों! यह लोक किससे पीड़ित है अथवा यह किससे घिरा हुआ है? अमोघ शस्त्र की धाराए कौनसी कही गई हैं।? मैं यह जानने के लिये चिन्तित हू।"

23 पुत्रो द्वारा उत्तर—मृत्यु से पीड़ित, जरा से परिवृत्त और अमोघा अधर्म रात्रि

मूल गाथा- मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय! वियाणह॥२३॥

संस्कृत छाया- मृत्युनाभ्याहतो लोक:, जरया परिवारित:।
अमोघा रात्रय उक्ता:, एवं तात! विजानीहि॥२३॥

अन्वयार्थ-लोगो-यह लोक, मच्चुणा-मृत्यु से, अब्भाहओ-पीड़ित है, (और) जराए-जरा से, परिवारिओ-घिरा हुआ है, रयणी-रात्रि को, अमोहा-अमोघा, वुत्ता-कहा है, ताय-हे पिताजी! एवं-इस प्रकार वियाणह-भलीभांति जान लें।

भावानुवाद-पुत्र -"तात! आप यह अच्छी तरह से समझ लें कि यह लोक मृत्यु से पीड़ित है तथा वृद्धावस्था से घिरा हुआ है, कभी नहीं रुकनेवाली समय चक्र की गति रात्रि को अमोघा कहा गया है।"

24 निष्फल रात्रियां मनुष्य के लिये पश्चाताप

मूल गाथा- जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ॥२४॥

संस्कृत छाया- या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते।
अधर्मं कुर्वाणस्य, अफला यान्ति रात्रय:॥२४॥

अन्वयार्थ-जा जा-जो जो, रयणी-रात्रि, वच्चइ-जा रही है, सा-वह, ण पडिणियत्तई-लौटकर नहीं आती, अहम्मं-अधर्म, कुणमाणस्स-करते हुए की, राइओ-रात्रियां, अफला-निष्फल, जंति-जाती हैं।

भावानुवाद-"जो-जो रात्रि व्यतीत हो रही है, वह पुन लौटकर नहीं आती है। अधर्माचरण करने वाले की रात्रियां निष्फल हो जाती हैं।"

25 सफल रात्रियां धर्माचरण का प्रभाव

मूल गाथा- जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ॥२५॥

संस्कृत छाया- या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते।
धर्मं च कुर्वाणस्य सफला यान्ति रात्रय:॥२५॥

अन्वयार्थ-जा जा-जो जो, रयणी-रात्रि, वच्चइ-बीत जा रही है, सा वह, ण पडिणियत्तई लौटकर नहीं आती, धम्मं च-धर्म को, कुणमाणस्स-करते हुए की, राइओ-रात्रियां, सफला-सफल जंति-जाती हैं।

भावानुवाद-"जो-जो रात्रियां बीत रही हैं वे पुन लौटकर नहीं आतीं, किन्तु धर्माचरण करने वालों की रात्रियां सफल होती हैं।"

26 पुरोहित-वाद मे हम सब साथ ही दीक्षा ग्रहण करेगे

मूल गाथा- एगओ सवसित्ता ण, दुहओ सम्मत्तसंजुया।
पच्छा जाया गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥

सस्कृत छाया- एकत सगुष्य, द्वये सम्यक्त्वसयुता ।
पश्चाज्जातौ गमिष्याम , भिक्षमाणा गृहे गृहे ॥२६॥

अन्वयार्थ-जाया-पुत्रो! (पहले) दुहओ-हम दोनो (हमसब) एगओ-एक स्थान में, सवसित्ताण-सुख से रहकर, सम्मत्तसजुया-सम्यक्त्व से युक्त होकर, पच्छा-पश्चात् (ढलती आयु में) प्रव्रजित होकर, कुले कुले-घर घर में, भिक्खमाणा-भिक्षा ग्रहण करते हुए, गमिस्सामो-विचरण करेंगे।

भावानुवाद-पिता भृगु - "हे पुत्रो! पहले हम सब सयुक्त रूप से एक साथ रहकर (कुछ समय के लिये) सम्यक्त्व और व्रतो का अनुष्ठान करें, पश्चात् वृद्धावस्था मे दीक्षित होकर घर-घर से भिक्षा ग्रहण करते हुए विचरण करेंगे।"

27 आने वाले कल की प्रतीक्षा करना

मूल गाथा- जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायण।
जो जाणे ण मरिस्सामि, सो हु कखे सुए सिया ॥२७॥

सस्कृत छाया- यस्यास्ति मृत्युना सख्य, यस्य वास्तिपलायनम्।
यो जानीते न मरिष्यामि, स खलु काङ्क्षति श्व स्यात् ॥२७॥

अन्वयार्थ-पिताजी! जस्सत्थि-जिसकी, मच्चुणा-मृत्यु के साथ, सक्ख-मैत्री, अत्थि-है, व-अथवा, जस्स-जिसकी, पलायण-(मृत्यु से) भागने की, शक्ति, अत्थि-है अथवा, जो-जो, जाणे-जानता है कि, ण मरिस्सामि-मैं कभी नहीं मरूगा, हु-निश्चय में, सो-वही, सुए-(आने वाले) कल की, कखे-प्रतीक्षा (आकाक्षा), सिया-कर सकता है।

भावानुवाद-पुत्र -"पितृदेव! जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता है अथवा जो मृत्यु के आने पर दूर भाग सकता है या जो यह जानता है कि मैं कभी भी मरूगा ही नहीं, वही आगामी कल की आकाक्षा (प्रतीक्षा) कर सकता है।"

28 पुत्र-कल की प्रतीक्षा न करके आज ही मुनि धर्म स्वीकारें

मूल गाथा- अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो,
जहिं पवण्णा ण पुणाभवामो।
अणागयं णेव य अत्थि किंचि,
सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ॥२८॥

सस्कृत छाया- अद्यैव धर्म प्रतिपद्यावहे,
य प्रपन्नो न पुनर्भविष्याम ।

23 पुत्रों द्वारा उत्तर–मृत्यु से पीड़ित, जरा से परिवृत्त और अमोघा अधर्म रात्रि

मूल गाथा- मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एव ताय! वियाणह॥२३॥

सस्कृत छाया- मृत्युनाभ्याहतो लोक , जरया परिवारित ।
अमोघा रात्रय उक्ता , एव तात! विजानीहि॥२३॥

अन्वयार्थ-लोगो-यह लोक, मच्चुणा-मृत्यु से, अब्भाहओ-पीडित है, (और) जराए-जरा से, परिवारिओ-घिरा हुआ है, रयणी-रात्रि को, अमोहा-अमोघा, वुत्ता-कहा है, ताय-हे पिताजी! एव-इस प्रकार, वियाणह-भलीभाति जान लें।

भावानुवाद-पुत्र -''तात! आप यह अच्छी तरह से समझ लें कि यह लोक मृत्यु से पीडित है तथा वृद्धावस्था से घिरा हुआ है, कभी नहीं रुकनेवाली समय चक्र की गति रात्रि को अमोघा कहा गया है।''

24 निष्फल रात्रिया मनुष्य के लिये पश्चात्ताप

मूल गाथा- जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ॥२४॥

सस्कृत छाया- या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते।
अधर्मं कुर्वाणस्य, अफला यान्ति रात्रय ॥२४॥

अन्वयार्थ-जा जा-जो जो, रयणी-रात्रि, वच्चइ-जा रही है, सा-वह, ण पडिणियत्तई-लौटकर नहीं आती, अहम्म-अधर्म, कुणमाणस्स-करते हुए की, राइओ-रात्रिया, अफला-निष्फल, जति-जाती हैं।

भावानुवाद-''जो-जो रात्रि व्यतीत हो रही है, वह पुन लौटकर नहीं आती है। अधर्माचरण करने वाले की रात्रिया निष्फल हो जाती हैं।''

25 सफल रात्रिया धर्माचरण का प्रभाव

मूल गाथा- जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तई।
धम्म च कुणमाणस्स, सफला जति राइओ॥२५॥

सस्कृत छाया- या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते।
धर्मं च कुर्वाणस्य, सफला यान्ति रात्रय ॥२५॥

अन्वयार्थ-जा जा-जो-जो, रयणी-रात्रि, वच्चइ-बीती जा रही है, सा-वह, ण पडिणियत्तई-लौटकर नहीं आती, धम्म च-धर्म को, कुणमाणस्स-करते हुए की, राइओ-रात्रिया, सफला-सफल, जति-जाती हैं।

भावानुवाद-''जो-जो रात्रिया बीत रही हैं वे पुन लौटकर नहीं आती, किन्तु धर्माचरण करने वालों की रात्रिया सफल होती हैं।''

26 पुरोहित-बाद मे हम सब साथ ही दीक्षा ग्रहण करेगे

मूल गाथा- एगओ सवसित्ता ण, दुहओ सम्मत्तसजुया।
पच्छा जाया गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥

संस्कृत छाया- एकत्र समुष्य, द्वये सम्यक्त्वसयुता ।
पश्चाज्जातौ गमिष्याम , भिक्षमाणा गृहे गृहे ॥२६॥

अन्वयार्थ-जाया-पुत्रो! (पहले) दुहओ-हम दोनो (हमसब) एगओ-एक स्थान में, सवसित्ताण-सुख से रहकर, सम्मत्तसजुया-सम्यक्त्व से युक्त होकर, पच्छा-पश्चात् (ढलती आयु में) प्रव्रजित होकर, कुले कुले-घर घर में, भिक्खमाणा-भिक्षा ग्रहण करते हुए, गमिस्सामो-विचरण करेंगे।

भावानुवाद-पिता भृगु - "हे पुत्रो! पहले हम सब सयुक्त रूप से एक साथ रहकर (कुछ समय के लिये) सम्यक्त्व और व्रतो का अनुष्ठान करे, पश्चात् वृद्धावस्था मे दीक्षित होकर घर-घर से भिक्षा ग्रहण करते हुए विचरण करेंगे।"

27 आने वाले कल की प्रतीक्षा करना

मूल गाथा- जस्सत्थि मच्चुणा सक्ख, जस्स वऽत्थि पलायण।
जो जाणे ण मरिस्सामि, सो हु कखे सुए सिया ॥२७॥

संस्कृत छाया- यस्यास्ति मृत्युना सख्य, यस्य वास्तिपलायनम्।
यो जानीते न मरिष्यामि, स खलु काङ्क्षति श्व स्यात् ॥२७॥

अन्वयार्थ-पिताजी! जस्सत्थि-जिसकी, मच्चुणा-मृत्यु के साथ, सक्ख-मैत्री, अत्थि-है, व-अथवा, जस्स-जिसकी, पलायण-(मृत्यु से) भागने की, शक्ति, अत्थि-है अथवा, जो-जो, जाणे-जानता है कि, ण मरिस्सामि-मैं कभी नहीं मरूगा, हु-निश्चय में, सो-वही, सुए-(आने वाले) कल की, कखे-प्रतीक्षा (आकाक्षा), सिया-कर सकता है।

भावानुवाद-पुत्र -"पितृदेव! जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता है अथवा जो मृत्यु के आने पर दूर भाग सकता है या जो यह जानता है कि मैं कभी भी मरुगा ही नहीं, वही आगामी कल की आकाक्षा (प्रतीक्षा) कर सकता है।"

28 पुत्र-कल की प्रतीक्षा न करके आज ही मुनि धर्म स्वीकारे

मूल गाथा- अज्जेव धम्म पडिवज्जयामो,
जहिं पवण्णा ण पुणब्भवामो।
अणागय णेव य अत्थि किंचि,
सद्धाखम णे विणइत्तु राग ॥२८॥

संस्कृत छाया- अद्यैव धर्मं प्रतिपद्यावहे,
य प्रपन्नो न पुनर्भविष्याम ।

अनागत नैव चास्ति किञ्चित्,
श्रद्धाक्षम नो विनीय रागम् ॥२८॥

अन्वयार्थ-हम, अज्जेव-आज ही, रागं-राग को, विणइत्तु-दूर करके, णे सद्धाखम-हमारी श्रद्धा के योग्य, धम्मं-मुनि धर्म को, पडिवज्जयामो-ग्रहण करेंगे, जहिं-जिसके, पवण्णा-ग्रहण करने से, ण पुणब्भवामो-फिर ससार मे, जन्ममरण नहीं होगा, य-क्योकि, किंचि-किंचिन्मात्र भी (विषयसुख), अणागय-अप्राप्त (अनागत) णेव अत्थि-नहीं है।

भावानुवाद-"हम तो आज ही रागादि-असद्भावो से अलग हटकर अपनी श्रद्धा के अनुरूप-मुनिधर्म को अगीकार करे, जिसे स्वीकार करके पुन हमे इस ससार म जन्म नहीं लेना पडेगा। अब हमारे लिये कोई भी भोग अनागत अभुक्त नहीं है, क्योकि वे सब भोग अनन्त बार भोगे जा चुके हैं।"

29 प्रबुद्ध पुरोहित का पत्नी से कथन

मूल गाथा- पहीणपुत्तस्स हु णत्थि वासो,
वासिट्ठि! भिक्खायरियाइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहई समाहिं,
छिण्णाहि साहाहि तमेव खाणु ॥२९॥

सस्कृत छाया- प्रहीणपुत्रस्य खलु नास्ति वास,
वासिष्ठि! भिक्षाचर्याया काल।
शाखाभिर्वृक्षो लभते समाधि,
छिन्नाभि शाखाभिस्तमेव स्थाणुम् ॥२९॥

अन्वयार्थ-वासिट्ठि-हे वाशिष्ठि!, पुत्तस्स-पुत्र के, पहीण-रहित (विना), णत्थि वासो-मेरा बसना, हु-हर्गिज नहीं, भिक्खायरियाइ-(मेरा भी) भिक्षाचर्या का, कालो-काल है, क्योकि, रुक्खो-वृक्ष, साहाहि-शाखाओ से, समाहिं-समाधि-शोभा, लहई-पाता है, साहाहि-शाखाओ के, छिण्णाहिं-कट जाने पर, तमेव-उसी वृक्ष को (लोग), खाणु-स्थाणु-ठूठ कहते हैं।

भावानुवाद-भृगु पुरोहित प्रबुद्ध होने पर-"हे वाशिष्ठि-प्रिय पत्नी! अब मेरा भी भिक्षा चर्या का काल आ गया है क्योंकि अब पुत्रों के विना मेरा इस घर में निवास उचित नहीं है। वृक्ष शाखाओ से ही सुशोभित होता है, शाखाओं के कट जाने पर वही वृक्ष केवल स्थाणु कहलाता है।"

30 पुत्रो के विना मेरा ग्रहवास अनुचित पुरोहित के उद्गार

मूल गाथा- पखाविहूणो व्व जहेह पक्खी,
भिच्चविहूणो व्व रणे णरिंदो।
विवण्णसारो वणिओ व्व पोए,
पहीणपुत्तोमि तहा अहं वि ॥३०॥

संस्कृत छाया- पक्षविहीन इव यथेह पक्षी,
भृत्यविहीन इव रणे नरेन्द्र ।
विपन्नसारो वणिगिव पोते,
प्रहीणपुत्रोऽस्मि तथाऽहमपि ॥३०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, इह-इस लोक मे, पखाविहूणो-पखो से रहित, पक्खी-पक्षी, व्व-तथा, रणे-युद्ध मे, भिच्चा-भृत्य सेना से, विहूणो-रहित, णरिंदो-राजा, व्व-एव, पोए-जलपोत (जहाज) पर, विवण्णसारो-धन-माल रहित, वणिओ-वणिक् (व्यापारी) खेद पाता है, तहा-वैसे ही, पहीणपुत्तो-पुत्रो से विहीन, अहमवि-मैं भी (असहाय) मि-हू।

भावानुवाद-"इस ससार मे जैसे पखो के बिना पक्षी, युद्ध में सैनिको के बिना नृप तथा जल-पोत (जहाज) में धन रहित व्यापारी असहाय होते हैं, उसी प्रकार पुत्रो के बिना मैं भी असहाय एव शोभाहीन हू।"

31 पुरोहित की पत्नी का कथन काम गुणो के तीन विशेषण

मूल गाथा- सुसंभिया कामगुणा इमे ते,
संपिंडिया अग्गरसप्पभूया।
भुंजामु ता कामगुणे पगाम,
पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं ॥31॥

संस्कृत छाया- सुसंभृता कामगुणा इमे ते,
संपिण्डिता अग्ग्यरसप्रभूता ।
भुञ्जीवहि तान् कामगुणान् प्रकामं,
पश्चाद् गमिष्याव प्रधानमार्गम् ॥३१॥

अन्वयार्थ-(पुरोहित पत्नी)-इमे-ये, ते-तुम्हारे, अग्गरस-प्रधान रसवाले, कामगुणा-कामभोग, पभूया-पर्याप्त रूप से, सु-संभिया-सम्यक् रूपेण संस्कृत हैं (और), संपिंडिया-सुसंग्रहित हैं, (अत पहले) ते-उन, कामगुणे-कामभोगो को, पगाम-पर्याप्त, भुंजामु-भोग लो, पच्छा-बाद में (वृद्धावस्था में), पहाणमग्ग-प्रधान मार्ग-साधु धर्म का, गमिस्सामु-अनुसरण करेंगे (चलेंगे।)

भावानुवाद-"हे स्वामिन्! ये आपके इन्द्रिय विषयक काम भोग के साधन सुसंस्कृत एव सुसंग्रहित हैं तथा ये प्रधान श्रृगार रस के उत्पादक हैं। अत पहले हम इन्हें इच्छानुसार भोग लें। तत्पश्चात् हम मुनि धर्म के प्रधान मार्ग पर चलेंगे।"

32 पुरोहित का पत्नी को उद्बोधन स्वर्गीय सुखो की प्राप्ति

मूल गाथा- भुत्ता रसा भोइ जहाइ णे वओ,
ण जीवियट्ठा पजहामि भोए।

लाभ अलाभ च सुह च दुक्खं,
सविक्खमाणो चरिस्सामि मोण ॥३२॥

संस्कृत छाया- भुक्ता रसा भवति। गहात्यस्मान् नो वय,
न जीवितार्थं प्रजहामि भोगान्।
लाभमलाभ च सुख च दु ख,
संवीक्षमाणश्चरिष्यामि मौनम् ॥३२॥

अन्वयार्थ-भोइ-हे ब्राह्मणी, रसा-विषय रस, भुत्ता-भोग लिये हैं, णे-हमको, वओ-यौवनावस्था, जहाइ-छोड़ रही है। (मैं) जीवियट्ठा-(असयमी) जीवन के लिये, भोए-भोगो को, ण पजहामि-नहीं छोडता हू (किन्तु), लाभ-लाभ, च-और, अलाभं-अलाभ, सुह-सुख, च-और, दुक्खं-दुख को, संचिक्खमाणो-समभाव से देखता हुआ, मोण-मुनि वृत्ति का, चरिस्सामि-आचरण करूगा।

भावानुवाद-पुरोहित - "भवति-भद्रे! हम विषय रसो को बहुत भोग चुके, अब युवावस्था हमसे विदा ले रही है। मैं किसी स्वर्गीय जीवन की उपलब्धि के लिये भोगो का परित्याग नहीं कर रहा हू। लाभ-अलाभ और सुख-दुख को समभाव से देखते हुए मैं मुनिधर्म का आचरण करूगा।"

33 पुरोहित पत्नी का कथन-जीर्ण हस की उपमा

मूल गाथा- मा हु तुम सोयरियाण सभरे,
जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी।
भुजाहि भोगाइ मए समाण,
दुक्ख खु भिक्खायरिया विहारो ॥३३॥

संस्कृत छाया- मा खलु त्व सौदर्याणा स्मार्षी,
जीर्ण इव हस: प्रतिस्रोतोगामी।
भुक्ष्व भोगान् मया सम,
दु ख खलु भिक्षाचर्याविहार ॥३३॥

अन्वयार्थ-(पुरोहित पत्नी), पडिसोत्तगामी-प्रतिस्रोत गामी, जुण्णो-बूढे, हसो-हस, व-की तरह, तुमं-तुम्हें, सोयरियाण-सहोदर भाइयों को, माहु सभरे-स्मरण न करना पडे, अत मए-मेरे, समाणं-साथ, भोगाई-भोगों को, भुंजाहि-भोगो (यह), भिक्खायरिया-भिक्षाचर्या, (और) विहारो-विहार, खु-निश्चय ही, दुक्खं-दुख रूप है।

भावानुवाद-पुरोहित पत्नी - "विपरीत धारा की ओर बहने वाले बूढे हस के समान कहीं तुम्हें पुन अपने परिजनो-बन्धुओं का स्मरण न करना पडे, अत अभी मेरे साथ भोगो को भोगो। यह भिक्षाचर्या और ग्रामानुग्राम विहार निश्चय ही दु खप्रद है।"

मूल गाथा- जहा य भोई तणुय भुयगो,
णिम्मोयणि हिच्च पलेइ मुत्तो।
एमेए जाया पयहति भोए,
ते ह कह णाणुगमिस्समेक्को ॥३४॥

सस्कृत छाया- यथा च भवति! तनुजा भुजग,
निर्मोचनीं हित्वा पर्येति मुक्त ।
एवमेतौ जातौ प्रजहीतो भोगान्,
तौ अह कथ नानुगमिष्याम्येक ॥३४॥

अन्वयार्थ-य-और, भोई-हे प्रिये!, जहा-जैसे, भुयगो-भुजग (सर्प), तणुय-शरीर में उत्पन्न हुई, णिम्मोयणि-काचली को, हिच्च-छोडकर, मुत्तो-मुक्त मन से, पलेइ-भाग जाता है, एमेए-इसी प्रकार से, जाया-दोनो पुत्र, भोए-भोगो को, पयहति-छोडते हैं, (तय), ह-मैं, इक्को-अकेला, कह-क्यों, ण-न, ते-उनका, अणुगमिस्स-अनुगमन करू?

भावानुवाद-पुरोहित -"भवति! जैसे साप अपने शरीर की केंचुली को छोडकर मुक्तमन से गमन करता है, उसी प्रकार दोनों पुत्र भोगो का सर्वथा परित्याग करके जा रहे हैं, तब मैं अकेला उनका अनुगमन क्यो न करू?"

मूल गाथा- छिदित्तु जाल अबल व रोहिया,
मच्छा जहा कामगुणे पहाय।
धोरेयसीला तवसा उदारा,
धीरा हु भिक्खारिय चरति ॥३५॥

सस्कृत छाया- छित्त्वा जालमबलमिव रोहिता,
मत्स्या यथा कामगुणान् प्रहाय।
धौरेयशीलास्तपसो उदारा,
धीरा खलु भिक्षाचर्यां चरति ॥३५॥

अन्वयार्थ-रोहिया-रोहित जाति का, मच्छा-मत्स्य, जहा-जैसे, अबल व-कमजोर, जाल-जाल को, छिंदित्तु-फाटकर (बाहर निकल जाता है) वैसे ही, धोरेय-धौरी-वृषभ वत्, सीला-स्वभाव वाले, उदारा-प्रधान, तवसा-तपस्वी, धीरा-धीर साधक, कामगुण-कामगुणों को, पहाय-छोडकर, हु-निश्चय ही, भिक्खायरिय-भिक्षाचारी को, चरति-आचरते हैं।

भावानुवाद-"जैसे रोहितमत्स्य कमजोर जाल को फाटकर उससे बाहर निकल जाते हैं, वैसे ही धारण किए हुए गुरुतर सयम भार को वहन करने वाले महान् तपस्वी धीर श्रमण भी काम-गुणों का परित्याग करके भिक्षाचर्या पथ पर चलते हैं।"

36 प्रबुद्ध पुरोहित पत्नी, पुत्रों और पति के साथ दीक्षा लेने को तैयार

मूल गाथा-

णहेव कुंचा समइक्कमंता,
तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा।
पलेंति पुत्ता य पई य मज्झ,
ते हं कहं णाणुगमिस्समेक्का ॥३६॥

संस्कृत छाया-

नभसीव क्रौञ्चाः समतिक्रामन्तः,
ततानि जालानि दलित्वा हंसाः।
परियान्ति पुत्रौ च पतिश्च मम,
तानहं कथं नानुगमिष्याम्येका ॥३६॥

अन्वयार्थ-(जैसे) कुचा-कौंच पक्षी, हसा-(और) हस, तयाणि-विस्तीर्ण, जालाणि-जालो को, दलित्तु-काट कर, णहेव-आकाश में, समइक्कमता-स्वतत्र उड जाते हैं (वैसे ही), मज्झ-मेरे, पुत्ता-पुत्र, य-और, पईय-पति भी, पलेंति-जा रहे हैं, (तब) एक्काह-मैं अकेली, कह ण-क्यों न, ते-उनका, अणुगमिस्सं-अनुगमन करू।

भावानुवाद-पुरोहित पत्नी-"जैसे क्रोच पक्षी और हस बहेलियो द्वारा प्रसारित जालो का छदन कर स्वतत्र रूप से आकाश में उड जाते हैं, वैसे ही मेरे पुत्र और पति भी मोहजाल तोडकर जा रहे हैं। पीछे मैं अकेली रहकर क्या करूगी? क्यों न मै भी उन्हीं का अनुसरण करू?"

37 कमलावती रानी द्वारा इषुकार राजा को प्रतिबोध

मूल गाथा-

पुरोहियं तं ससुयं सदारं,
सोच्चाऽभिणिक्खम्म पहाय भोए।
कुडुम्बसारं विउलुत्तमं य,
रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

संस्कृत छाया-

पुरोहितं तं ससुतं सदारं,
श्रुत्वाऽभिनिष्क्रम्य प्रहाय भोगान्।
कुटुम्बसारं य,
राजानमभीक्ष्णं ॥३७॥

अन्व और) सदार- -उस, पुरोहियं-पुरोहित ने, भोए-भोगो को, पहाय-त्याग कर, -यह सुनकर, विउलुत्तमं-विपुल (और) उत्तम, कुडु -प्रधान -चाह र राजा इषुकार को, देवी-रानी कमलावती ने,

भावानुवाद-"पुत्रों पर की श्रेष्ठ एव किया है। यह सुनकर ने कहा-

38 सासारिक पदार्थों का त्याग प्रव्रज्या ग्रहण

मूल गाथा- वंतासी पुरिसो राय, ण सो होइ पससिओ।
माहणेण परिच्चत्त, धण आयाउमिच्छसि ॥३८॥

सस्कृत छाया- वान्ताशी पुरुषो राजन्, न स भवति प्रशसनीय ।
ब्राह्मणेन परित्यक्त, धनमादातुमिच्छसि ॥३८॥

अन्वयार्थ-राय-हे राजन्! माहणेण-ब्राह्मण, (पुरोहित) के द्वारा, परिच्चत्त-परित्यक्त, धण-धन को, आयाउ-ग्रहण करने की, इच्छसि-तुम इच्छा करते हो, वतासी-वमन किये हुए को खाने वाला, सो पुरिसो-वह पुरुष, पसंसिओ-प्रशसा के योग्य, ण-नहीं, होइ-होता है।

भावानुवाद-महारानी कमलावती-"हे राजन्! तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को ग्रहण करने की इच्छा रखते हो, किन्तु ससार मे वमन किये हुए पदार्थ को खाने वाला पुरुष प्रशसनीय नहीं होता है।"

39 तृष्णा दुष्पूर है उसकी पूर्ति विश्व के सारे पदार्थ भी नहीं कर सकते

मूल गाथा- सव्व जगं जइ तुह, सव्व वावि धण भवे।
सव्व पि ते अपज्जत्त, णेव ताणाय त तव ॥३९॥

सस्कृत छाया- सर्वं जगद्यदि तव, सर्वं वापि धन भवेत्।
सर्वमपि न अपर्याप्त, नैव त्राणाय तत्तव ॥३९॥

अन्वयार्थ-हे राजन्! जइ-यदि, सव्वं-सर्व, जग-जगत्, वा-अथवा, सव्व-समस्त, धण वि-धन भी, तुह-तुम्हारा, भवे-हो जावे (तो भी) सव्वपि-सर्व पदार्थ भी, ते-तुम्हारे लिए, अपज्जत्त-अपर्याप्त हैं (और), त-वह धन, ताणाय-तुम्हारी रक्षा के लिए, तव-कष्टादि मिटाने के लिए, णेव-नहीं है।

भावानुवाद-समस्त ससार और ससार का समस्त धन भी यदि तुम्हारा हो जाए, तुम्हें प्राप्त हो जाए, तो यह सब तुम्हारे लिए अपर्याप्त ही होगा और न वह धन तुम्हारी रक्षा कर सकेगा।

40 धर्म ही मनुष्य का रक्षक

मूल गाथा- मरिहिसि राय! जया तया वा,
मणोरमे कामगुणे पहाय।
एक्को हु धम्मो णरदेव! ताण,
ण विज्जई अण्णमिहेह किंचि ॥४०॥

सस्कृत छाया- मरिष्यसि राजन्! यदा तदा वा,
मनोरमान् कामगुणान् प्रहाय।

एक खलु धर्मो नरदेव। त्राण,
न विद्यतेऽन्यदिहेह किञ्चित् ॥४०॥

अन्वयार्थ-राय-हे राजन्! मणोरमे-इन मनोज्ञ, कामगुणे-कामभोगों को, पहाय-छोडकर, जया या-जब, मरिहिसि-मरोगे, तया-तब, हु-निश्चय ही, एक्को-एकमात्र, धम्मो-धर्म ही, ताण-रक्षक होगा, णरदेव-हे नृप! इह-इस लोक में, इह-इस मृत्यु के आने पर, अण्ण-(धर्म के अतिरिक्त) अन्य पदार्थ, किंचि-किंचिन्मात्र भी, ण विज्जई-रक्षक नहीं है।

भावानुवाद-"राजन्! एक दिन जब इन मनोरम काम-गुणो को छोडकर मरोगे, तब एक मात्र धर्म ही सरक्षक होगा। हे नरदेव! इस ससार में मृत्यु के अवसर पर धर्म के अतिरिक्त और कोई रक्षा करने वाला नहीं है।"

41 हार्दिक भावो की सुन्दरता से प्रकटीकरण

मूल गाथा- णाह रमे पक्खिणि पजरे वा,
सताणछिण्णा चरिस्सामि मोण।
अकिंचणा उज्जुकडा णिरामिसा,
परिग्गहारंभणियत्तदोसा ॥४१॥

सस्कृत छाया- नाह रमे पक्षिणी पञ्जर इव,
छिन्नसन्ताना चरिष्यामि मौनम्।
अकिञ्चना ऋजुकृता निरामिषा,
परिग्रहारम्भदोषनिवृत्ता ॥४१॥

अन्वयार्थ-वा-जैसे, पजरे-पिजरे मे बद, पक्खिणि-पक्षिणी, ण रमे-रति (आनन्द) नहीं पाती है, (वैसे) अह-मैं भी, (भवरूपी पिजरे में आनद नहीं पाती) अत मैं, सताणछिण्णा-स्नेह बधनो को तोड़कर, अकिंचणा-अकिचन, (परिग्रहरहित) उज्जुकडा-(शल्यादिरहित) सरल, णिरामिसा-विषयभोगो में अनासक्त (तथा), परिग्गहारंभणियत्तदोसा-परिग्रह और आरम्भ के दोषो से निवृत्त होकर, मोण-मुनि धर्म का, चरिस्सामि-आचरण करूगी।

भावानुवाद-पिजरे में बद पक्षिणी जैसे सुखानुभूति नहीं करती है, उसी प्रकार मैं भी राजप्रासाद अथवा भवरूपी इस पिजरे में आनद का अनुभव नहीं करती हू। अत अब मैं पारिवारिक बन्धनो से मुक्त होकर, अकिचन, सरल, अनासक्त होकर परिग्रह एव हिसकवृत्ति से निवृत्त होकर मुनिधर्म का आचरण करूगी।

42 जलते हुए जन्तुओ को दखकर आनन्द की प्राप्ति

मूल गाथा- दवग्गिणा जहारण्णे, डज्झमाणेसु जतुसु।
अण्णे सत्ता पमोयति, रागद्दोसवस गया ॥४२॥

सस्कृत छाया- दवाग्निना यथारण्ये, दह्यमानेषु जन्तुषु।
अन्ये सत्त्वा प्रमोदन्ते, रागद्वेषवशं गता ॥४२॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, रण्णे-अरण्य में लगे, दवग्गिणा-दावानल मे, डज्झमाणेसु-जलते हुए (वन), जन्तुसु-जन्तुओ को देखकर, अण्णे-अन्य, सत्ता-जीव, रागद्दोस-रागद्वेष के, वसगया-वशीभूत होकर, पमोयंति-आनन्द मनाते हैं।

भावानुवाद-जैसे राग द्वेष के वशीभूत अन्य जीव वन मे लगे दावानल मे जलते जीवों को देखकर प्रमुदित होते हैं-

43 राग द्वेष रूप अग्नि से जगत का जलना

मूल गाथा- एवमेव वय मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया।
डज्झमाण ण बुज्झामो, रागद्दोसग्गिणा जग॥४३॥

सस्कृत छाया- एवमेव वय मूढा, कामभोगेषु मूर्च्छिता।
दह्यमान न बुध्यामहे, रागद्वेषाग्निना जगत्॥४३॥

अन्वयार्थ-एवमेव-उसी प्रकार, कामभोगेसु-कामभोगो में, मुच्छिया-मूर्च्छित, वय-हम, मूढा-मूढ लोग भी, रागद्दोसऽग्गिणा-रागद्वेष की अग्नि मे, डज्झमाण-जलते हुए, जग-जगत् को,ण बुज्झामो-नहीं समझ रहे हैं।

भावानुवाद-उसी प्रकार काम भोगो में मूर्च्छित हम मूढ व्यक्ति भी राग द्वेष की अग्नि में जलते हुए ससार को नहीं समझ रहे हैं।

44 विचारशील पुरुष का कर्त्तव्य

मूल गाथा- भोगे भोच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो।
आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव॥४४॥

सस्कृत छाया- भोगान् भुक्त्वा वान्त्वा च, लघुभूतविहारिण।
आमोदमाना गच्छन्ति, द्विजा कामक्रमा इव॥४४॥

अन्वयार्थ-साधक, भोग-भोगों को, भोच्चा-भोगकर, य-और फिर, वमित्ता-(उनको) त्याग कर, लहुभूय-(वायु की तरह अप्रतिबद्ध) लघुभूत होकर, विहारिणो-विहार करते हुए, कामकमा-स्वेच्छापूर्वक विचरने वाले, दिया-पक्षी की, इव-तरह, आमोयमाणा-आनन्दित होते हुए, गच्छंति-गमन करते (विचरते) हैं।

भावानुवाद-आत्मार्थी साधक भोगों को भोगकर और यथावसर उनका परित्याग करके पवन के समान अप्रतिबद्ध-लघुभूत होकर विचरण करते हैं। स्वेच्छानुसार विचरण करने वाले पक्षियो के समान प्रसन्नता का अनुभव करते हुए स्वतत्र भ्रमण करते हैं।

45 काम भोगादि विषयों के परित्याग की चर्चा

मूल गाथा- इमे य बद्धा फंदति, मम हत्थज्जमागया।
वय च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे॥४५॥

संस्कृत छाया- इमे च बद्धा स्पन्दन्ते, मम हस्तगतार्य! आगता ।
वयं च सक्ताः कामेषु, भविष्यामो यथेमे ॥४५॥

अन्वयार्थ-अज्ज-हे आर्य!, मम-मेरे, च-और आपके, हत्थ-हाथ में, आगया-आये हुए, तथा बद्धा-नियंत्रित किए हुए भी, इम-ये, शब्दादिकामभोग-फंदति-अस्थिर (क्षणिक) हैं, च-और, वय-हम, कामेसु-कामभोगों में, सत्ता-आसक्त हैं, जहा-जैसे, इमे-ये, पुरोहित आदि हो गए वैसे, भविस्सामो-हम भी होंगे।

भावानुवाद-"हे आर्य! हमारे हस्तगत-हुए तथा हमारे द्वारा विविध उपायों द्वारा नियंत्रित किये गये ये काम भोग वस्तुतः क्षणिक हैं। अभी हम इन अस्थिर काम भोगों में आसक्त हैं किन्तु जैसे कि पुरोहित परिवार बन्धनों से मुक्त हुआ है, उसी प्रकार हम भी बन्धन मुक्त बनेंगे।"

46 त्यागने में ही सुख है, भोगने में नहीं

मूल गाथा- सामिसं कुललं दिस्स, बज्झमाणं णिरामिसं ।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामि णिरामिसा ॥४६॥

संस्कृत छाया- सामिषं कुललं दृष्ट्वा, बाध्यमानं निरामिषम् ।
आमिषं सर्वमुज्झित्वा, विहरिष्यामि निरामिषा ॥४६॥

अन्वयार्थ-सामिसं-मांस के सहित, कुललं-पक्षी को, बज्झमाण-अन्य पक्षियों द्वारा पीड़ित होता हुआ एवं, णिरामिसं-मांस रहित को, सुखी, दिस्स-देखकर (मैं भी) सव्व-सब प्रकार से, आमिसं-कामभोगादि आमिष को, उज्झित्ता-छोड़कर, णिरामिसा-भोगरूप आमिष से रहित हो, विहरिस्सामि-विचरण करूँगी।

भावानुवाद-जिस गिद्ध पक्षी के मुंह में मांस होता है उसी पर मांस लोलुप पक्षी आक्रमण करते हैं, मांस रहित पर नहीं, इसी प्रकार मैं भी सामिष अर्थात् मांस के तुल्य काम भोगों का परित्याग करके निरामिष भावपूर्वक-विचरण करूँगी।

47 कामभोगों से गृद्ध पक्षी की उपमा-

मूल गाथा- गिद्धोवमा उ णच्चाणं, कामे संसारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व्व, संकमाणो तणुं चरे ॥४७॥

संस्कृत छाया- गृध्रोपमान् तु ज्ञात्वा, कामान् संसारवर्धनान् ।
उरगः सौपर्णेयपार्श्व इव, शङ्कमानस्तनु चरेत् ॥४७॥

अन्वयार्थ-गिद्धोवमा उ-गृद्ध पक्षी की उपमा वाले, संसारवड्ढणे-संसार को बढ़ाने वाले, कामे-काम [illegible] को, णच्चाण-जानकर व्व-जैसे, उरगो-सांप, सुवण्ण-गरुड़ के, पासे-समीप, संकमाणो-शंका करता हुआ, तणुं-स्तोक यत्न (शनैः शनैः) से, चरे-विचरता है, (वैसे तू भी संयम मार्ग में [illegible])।

भावानुवाद-संसार वृद्धि के हेतु काम भोगों को गिद्ध के समान जानकर उनसे उसी प्रकार सजग-आशंकित होकर यत्नपूर्वक चलना चाहिए जैसे कि गरुड़ के पास सांप आशंकित होकर चलता है।

48 कर्मबन्धन तोड़कर मोक्ष मे जाने का उपदेश

मूल गाथा- णागो व्व बधण छित्ता, अप्पणो वसहिं वए।
एय पत्थ महाराय, उसुयारि त्ति मे सुय ॥४८॥

सस्कृत छाया- नाग इव बन्धन छित्त्वा, आत्मनो वसति व्रजेत्।
एतत्पथ्य महाराज!, इषुकार! इति मया श्रुतम् ॥४८॥

अन्वयार्थ-व्व-जैसे, णागो-हाथी, बधण-बन्धन को, छित्ता-तोडकर, अप्पणो-अपने, वसहि-निवास स्थान म वए-चला जाता है, (वैसे ही हमे अपने स्वस्थान (मोक्ष) मे, चलना चाहिए), महाराय-हे महाराज!, उसुयारि-इषुकार, एय-यही एकमात्र, पत्थ-पथ्य (श्रेयस्कर) है, त्ति-ऐसा, मे-मैंने, सुय-सुना है।

भावानुवाद-जैसे हाथी बन्धनो को तोडकर अपने मूलनिवास स्थल (वन) को चला जाता है, वैसे ही हमें भी अपने कर्म बन्धनो को काट कर अपने निज स्थान (मोक्ष) को चले जाना चाहिये। हे इषुकार महाराज! यह एकमात्र प्रशस्त श्रेयस्कर है, ऐसा मैंने ज्ञानियो से सुना है।

49 राजा और रानी दुस्त्यज काम भोगो के त्यागी

मूल गाथा- चइत्ता विउल रज्ज, कामभोगे य दुच्चए।
णिव्विसया णिरामिसा, णिण्णेहा णिप्परिग्गहा ॥४९॥

सस्कृत छाया- त्यक्त्वा विपुल राज्य, कामभोगाश्च दुस्त्यजान्।
निर्विषयौ निरामिषौ, नि स्नेहौ नि परिग्रहौ ॥४९॥

अन्वयार्थ-विउल-विपुल, रज्ज-राज्य को, य-और, दुच्चए-दुस्त्यज, कामभोगे-काम भोगो को, चइत्ता-छोडकर (राजा रानी), णिव्विसया-निर्विषय, णिरामिसा-निरामिष, णिण्णेहा-नि स्नेह (और), णिप्परिग्गहा-निष्परिग्रह हो गए।

भावानुवाद-उपसहार-विशाल राज्य और दुस्त्याज्य काम भोगों का परित्याग करके व राजा और रानी भी निर्विषय, निराकाक्षी, निर्मोह और अपरिग्रही हो गए।

50 घोर तप कर्म एव दीक्षा के लिए तैयार हुए

मूल गाथा- सम्मं धम्म वियाणित्ता, चिच्चा कामगुणे वरे।
तव पगिज्झहक्खाय, घोर घोरपरक्कमा ॥५०॥

सस्कृत छाया- सम्यग् धर्म विज्ञाय, त्यक्त्वा कामगुणान्वरान्।
तप प्रगृह्य यथाख्यात, घोर घोरपराक्रमौ ॥५०॥

अन्वयार्थ-धम्म-धर्म को, सम्म-सम्यक् रूप से, वियाणित्ता-जानकर वर-श्रेष्ठ कामगुणे-कामभोगों को, चिच्चा-छोडकर (दोनों), अहक्खाय-तीर्थंकरादि द्वारा प्रतिपादन किए गये घोर-घोर तवं-तप का, पगिज्झह-अगीकार करके, घोरपरक्कमा-(सयम में) घोर पराक्रमी बन।

भावानुवाद-श्रुत और चारित्र रूप धर्म को सम्यग्रूप से जानकर, उपलब्ध श्रेष्ठ कामभोगो का परित्याग करके दोनो ही यथानिर्दिष्ट घोर तप को स्वीकार कर सयम-साधना में घोर-पराक्रमी बन गए।

51 छह व्यक्तियो द्वारा क्रम से प्रतिबोध की प्राप्ति

मूल गाथा- एव ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा।
जम्ममच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्सतगवेसिणो॥५१॥

सस्कृत छाया- एव ते क्रमशो बुद्धा, सर्वे धर्मपरायणा ।
जन्ममृत्युभयोद्विग्ना, दु खस्यान्तगवेषिण ॥५१॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, ते-वे, सव्वे-सब, कमसो-क्रमश , बुद्धा-प्रतिबुद्ध हुए, धम्म परायणा-धर्म परायण बन, जम्म-जन्म और, मच्चु-मृत्यु के, भउव्विग्गा-भय से उद्विग्न हुए, दुक्खस्सत-दु ख के अन्त के, गवेसिणा-गवेषक हुए।

भावानुवाद-इस प्रकार वे सभी क्रमश प्रबुद्ध होकर धर्म परायण बने, जन्म और मृत्यु के भय से उद्विग्न हुए और दु ख का सर्वथा क्षय करने की खोज मे लग गए।

52 प्रतिबुद्ध होने के फल का वर्णन

मूल गाथा- सासणे विगयमोहाण, पुव्वि भावणभाविया।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सतमुवागया॥५२॥

सस्कृत छाया- शासने विगतमोहाना, पूर्वं भावनाभाविता ।
अचिरेणैव कालेन, दु खस्यान्तमुपागता ॥५२॥

अन्वयार्थ-पुव्वि-पूर्वजन्म म, भावणभाविया-अनित्यादि भावनाओं से भावित हुए, व सब, विगयमोहाण-मोह को दूर कर, सासणे-अर्हत् शासन मे, अचिरेणेव-थोडे ही, कालेण-काल म, दुक्खस्सत-दु खो क अन्त को, उवागया-प्राप्त हो गए (मुक्त हो गए)।

भावानुवाद-जिन्होंने पूर्व जन्म मे अशरण-अनित्यादि भावनाओ से अपनी आत्मा को भावित किया था, व विगत मोह अर्थात् वीतराग शासन में अल्प समय में ही दु ख के अन्त को प्राप्त हुए।

53 छहो द्वारा विरक्त, दीक्षा और मुक्ति प्राप्ति

मूल गाथा- राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिणिव्वुडे॥५३॥

त्ति बेमि।

इति इसुकारीय चउद्दसम अज्झयण समत्तं॥१४॥

संस्कृत छाया- राजा सह देव्या, ब्राह्मणश्च पुरोहित ।
ब्राह्मणी दारकौ चैव, सर्वे ते परिनिर्वृता ॥५३॥

इति ब्रवीमि।

इति इषुकारीय चतुर्दशमध्ययन समाप्तम् ॥१४॥

अन्वयार्थ-राया-राजा, देवीए-देवी के, सह-साथ, य-और, माहणो-ब्राह्मण, पुरोहिओ-पुरोहित, च-और, माहणी-ब्राह्मणी, दारगा-उसके दोनो पुत्र, ते-वे, सव्वे-सब, एव-निश्चय ही, परिणिव्वुडे-निर्वृत्ति (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-राजा इषुकार, रानी कमलावती, ब्राह्मण पुरोहित, उसकी पत्नी और उसके दोनो पुत्र ये सभी परिनिर्वाण-मोक्ष को प्राप्त हो गए।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार इषुकारीय नामक चौदहवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

❐❐❐

सभिक्षुक - पंचदश अध्ययन

उत्थानिका

भिक्षुक शब्द का प्रयोग सामान्यतया याचक अर्थों में होता है। भिक्षुक अर्थात् भिक्षाजीवी। जो घर-घर से भिक्षा-भोजन की याचना करके अपना जीवन चलाता है, वह भिक्षुक है।

किन्तु जैन तत्त्व दर्शन में भिक्षुक शब्द इतने उथले अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। वहाँ भिक्षुक का अर्थ केवल याचना मात्र से अनुबंधित नहीं है। भिक्षुक का अर्थ है-मुक्तिमार्ग की परमोच्च साधना पर गतिशील साधक। चूंकि वह साधक अपने घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, धन वैभव एवं सम्पूर्ण परिग्रह का परित्याग करके ही साधना मार्ग का पथिक बनता है, अतः भिक्षाजीवी होना उसके लिए आनुषंगिक हो जाता है। तथापि जैन साधक दीनता पूर्वक याचना करने वाले भिक्षुक-भिखारी की कोटि में नहीं आता है। उसकी भिक्षावृत्ति स्वाभिमान से परिपुष्ट आगम विधि-निषेधों की सीमाओं से अनुबद्ध होती है।

जैनागमों में भिक्षाजीवी होने का अधिकार उसे ही प्राप्त होता है जो गृह बन्धनों से सर्वथा मुक्त होकर गृहत्यागी-अनगार बन जाता है। सर्वथा एकाकी आत्मनिर्भर हो जाता है। प्रकृति के आधार पर जीवन जीता है। जो कापोतीवृत्ति के अनुसार निःसंग हो जाता है। गृहस्थ जीवन में रहने वाला व्यक्ति जो नाम मात्र की साधना कर लेता है और अनवरत परिग्रह संचय की वासना से आवेशित होकर व्यवसाय में लगा रहता है, उसे भिक्षा मांगने का कोई अधिकार नहीं है।

गृहत्यागी भिक्षुक जो विषयों से अनासक्त होकर केवल मुक्ति लाभ के लिए ही साधना करता है, अपनी समस्त शारीरिक, सामाजिक सुख सुविधाओं का परित्याग करता है, वही सही अर्थों में भिक्षुक होता है और उसी भिक्षुक की भिक्षावृत्ति और उसकी जीवन पद्धति कैसी होनी चाहिए, इसका प्रतिपादन हुआ है इस सभिक्षुक अध्ययन में। सभिक्षुक शब्द ही यह द्योतन करता है कि इसमें सद्भिक्षु अथवा सच्चे भिक्षुक की साधना के अवरोधक एवं संपोषक तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

सच्चे भिक्षुक की साधना पद्धति का विवेचन करते हुए कहा गया है कि भिक्षु सर्वप्रथम ऋजुभूत सरल होता है-माया निदान से रहित होता है। वह निर्भय और समभावी होता है। वह निदान-भावी भोग की कामना एवं पूर्व परिजनों की आसक्ति से रहित होता है। वह अप्रतिबद्ध विहारी और सभी जगह समभाव से भिक्षा ग्रहण करने वाला होता है। उसकी दृष्टि में अमीर-गरीब का भेद नहीं होता है। वह मंत्र-तंत्र का प्रयोग नहीं करता है। वह मनोनुकूल पदार्थों पर आसक्ति और प्रतिकूल विषयों पर घृणा नहीं करता है। वह भिक्षा करते समय आने वाले अपमान, आक्रोश, वध आदि परीषहों को समभाव से सहन करता है। वह सरस आहार देने वाले की प्रशंसा नहीं करता और नीरस आहार दान करने वाले की निंदा नहीं करता है, वह सत्कार सम्मान की कामना नहीं करता है। वह उन सभी प्रवृत्तियों से दूर रहता है जो उसकी आत्म साधना में बाधक हों। वह समरसता पूर्वक आत्म जागरण के प्रति सावधान रहता है। वह निरर्थक सांसारिक प्रपंचों से दूर रहता है। गृहस्थों से भी अधिक सम्पर्क, मेल-जोल नहीं बढ़ाता है।

भिक्षु शब्द की मूल स्पर्शी व्याख्या और उसके जीवन दर्शन की एक सांगोपांग झांकी प्रस्तुत करने वाले प्रस्तुत अध्ययन में हम प्रवेश करें और आत्म रमणता की उस पराकाष्ठा का आस्वाद लें, जिसका कि एक सच्चा भिक्षुक लेता है।

❑❑❑

सभिक्षुक - पंचदश अध्ययन

सूक्ति साराश

साधना अर्थात् अन्त प्रवेश-अनाकाक्षी जीवन।
साधक वह होता है जो ऋजुभूत हो, निदान-आकाक्षारहित
प्रशसा परित्यागी एव अज्ञातकुल भिक्षाजीवी हो।

अनासक्ति साधना-मूर्च्छा विराधना।
किसी भी पदार्थ या व्यक्ति के प्रति मूर्च्छा-आसक्ति
साधक को विराधक बना देती है।

कष्ट सहिष्णु बनकर साधना की भूमिका का निर्माण करो।
खान-पान, रहन-सहन मे समत्व बनाए रखना साधना की भूमिका है।

अनाकाक्षी साधक होता है, आकाक्षी भोगी।
सत्कार-सम्मान, वन्दन पूजा की कामना साधना के दूषण हैं।

अन्तर्दृष्टि साधक-बहिर्दृष्टि विराधक।
साधक आत्मगवेषक होता है, वह अन्तरग मे खोजता है,
बाहर से उपरत होता है।

बाह्य सम्पदा पोषक विद्याओ का प्रयोग साधना म बाधक है।
स्वप्न विद्या, अग विद्या, लक्षण विद्या, अग विकार विद्या आदि
विद्याओ का प्रयोग आत्मानुलक्षी साधक नहीं करता।

आकाक्षा व साधना दोनो मे तालमेल नहीं हो सकता है।
आकाक्षा युक्त होकर किसी की प्रशसा करना धार्मिकता नहीं है।

लाभ पर हर्ष नहीं, अलाभ पर रोष नहीं।
भिक्षा जीवी साधक लाभ व अलाभ दोना
स्थितियो में सन्तुष्ट रहता है।

अनुकूलता पर प्रसन्नता न हो, प्रतिकूलता पर क्षोभ न हो।
अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो में समत्व बनाए रखना साधना का आधार है।

□□□

अह सभिक्खू णाम पंचदहं अज्झयणं

अथ सभिक्षुर्नाम पञ्चदशमध्ययनम्

सभिक्षुक

1 मौनचारी यावत् अज्ञातैषी भिक्षुत्व की चतुर्भंगी

मूल गाथा-

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं,
सहिए उज्जुकडे नियाणछिण्णे।
संथवं जहिज्ज अकामकामे,
अण्णायएसी परिव्वए स भिक्खू ॥1॥

संस्कृत छाया-

मौनं चरिष्यामि समेत्य धर्मं,
सहितः ऋजुकृतः छिन्ननिदानः।
संस्तवं जह्यादकामकामी,
अज्ञातैषी परिव्रजेत् स भिक्षुः ॥१॥

अन्वयार्थ-धम्मं-धर्म को, समिच्च-स्वीकार कर, मोणं-मुनि भाव का, चरिस्सामि-आचरण करूँगा, (ऐसी प्रतिज्ञा वाला), सहिए-सम्यग्दर्शनादि से युक्त, उज्जुकडे-माया से रहित (ऋजुकृत), नियाणछिण्णे-निदान से रहित, (निदान का छेदक) संथवं-संस्तव का (परिचय का) जहिज्ज-त्यागी, अकाम-कामे-काम वासना से रहित, अण्णायएसी-अज्ञातकुल की भिक्षा करने वाला (और), परिव्वए-अप्रतिबद्ध विहारी, जे-जो है स-वही, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-"धर्म को स्वीकार करके मुनि भाव का अनुशीलन करूँगा", इस प्रकार के संकल्प के साथ जो [illegible] गुणों से युक्त होकर अथवा अन्य स्थविर मुनियों के सान्निध्य में रहकर सहज-सरलता पूर्वक [illegible] है, जिसने निदानों का छेद-त्याग कर दिया है, जो पूर्व परिचय-सांसारिक बन्धनों का त्यागी है, जो कामनाओं से मुक्त है, जो अज्ञात-अपरिचित कुलों से भिक्षा लेता है अर्थात् भिक्षा प्राप्त करने के लिए अपना परिचय नहीं देता है तथा जो अप्रतिबद्ध विहारी है, वही सद्भिक्षु-सच्चा साधु है।

2 राग विरत मूर्च्छारहित

मूल गाथा- राओवरय चरेज्ज लाढे,
विरए वेयवियायरक्खिए।
पण्णे अभिभूय सव्वदसी,
जे कम्हिवि ण मुच्छिए स भिक्खू ॥२॥

संस्कृत छाया- रागोपरतश्चरेल्लाढ,
विरतो वेदविदात्मरक्षित।
प्राज्ञोऽभिभूय सर्वदर्शी,
य कस्मिन्नपि न मुर्च्छित स भिक्षु ॥२॥

अन्वयार्थ-राओवरय-राग से रहित, लाढे-सदनुष्ठान पूर्वक, चरेज्ज-विचरने वाला, विरए-असयम से विरत, वेयविय-सिद्धान्त का वेत्ता, आयरक्खिए-आत्म रक्षक, पण्णे-बुद्धिमान्, अभिभूय-परीषहों को जीत कर, सव्वदसी-सर्वदर्शी (सबको देखने वाला) तथा, ज-जो, कम्हिवि-किसी वस्तु पर भी, ण मुच्छिए-मूर्च्छित नहीं होता, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जो राग भाव से विरत है, सयम म तत्पर है, जो असयम आस्रव से विरत है, जो आगमज्ञ है, जो आत्मरक्षक-स्वय को पाप से बचाने वाला एव प्राज्ञ है, जो राग-द्वेष को पराजित कर प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझता है, जो किसी वस्तु मे आसक्त-मूर्च्छित नहीं होता है, वह भिक्षु है।

3 आक्रोशादि सहिष्णु

मूल गाथा- अक्कोसवह विइत्तु धीरे,
मुणी चरे लाढे णिच्चमायगुत्ते।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे,
जे कसिण अहियासए स भिक्खू ॥3॥

संस्कृत छाया- आक्रोशवध विदित्वा धीर,
मुनिश्चरेल्लाढो नित्यमात्मगुप्त:।
अव्यग्रमना असंप्रहृष्ट,
य: कृत्स्नमध्यासयेत् स भिक्षु ॥३॥

अन्वयार्थ-अक्कोसवह-आक्रोश वध को, विइत्तु-जानकर, धीरे-धैर्यवान्, मुणी-मुनि, लाढे-सदनुष्ठान युक्त, णिच्चं-सदा ही, आयगुत्ते-आत्मगुप्त होकर, चरे-विचरता है और, अव्वग्गमणे-व्यग्रमन से रहित, असंपहिट्ठे-हर्ष से रहित, जे-जो, कसिण-सम्पूर्ण परीषहो को, अहियासए-सहन करता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-कठोर वचन एव वध-मारपीट को जो मुनि स्वकृत कर्मों का फल मान धीर-शान्त रहता है, जो सयम

स प्रशस्त एव प्रसन्न है, जिसने अपनी आत्मा को सदा असयम स्थानो-आस्रवो से गुप्त रखा है-बचाया है, जो आकुलता, व्यग्रता तथा हर्षातिरेक से रहित है, जो सब कुछ समभाव से सहन कर लेता है, वह भिक्षु है।

4 शीतोष्ण आदि समस्त परीषहो को सहन करना

मूल गाथा-

पत सयणासण भइत्ता,
सीउण्हं विविह च दसमसग।
अव्वग्गमणे असपहिट्ठे,
जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥4॥

संस्कृत छाया-

प्रान्त शयनासन भजित्वा,
शीतोष्ण विविध च दशमशकम्।
अव्यग्रमना असप्रहृष्ट,
य कृत्स्नमध्यासयेत् स भिक्षु ॥४॥

अन्वयार्थ-पत-नि स्सार, सयण-शय्या, आसण-आसन को, भइत्ता-सेवन करके, सीउण्ह-शीत और उष्ण, च-तथा विविह-विविध प्रकार के, दसमसग-दश और मशक आदि परीषहो के प्राप्त होने पर, अव्वग्गमणे-व्याकुलता रहित, असपहिट्ठ-हर्ष रहित, जे-जो, कसिण-सम्पूर्ण परीषहो को, अहियासए-सहन करता है, स वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जो तुच्छ साधारण आसन और शयन को भी समभाव से स्वीकार कर लेता है, जो शीत, उष्ण एव डास मच्छर आदि के प्रतिकूल या अनुकूल परीषहो-उपसर्गों को समभाव से सहन कर लेता है, उनसे व्यथित या व्यग्र नहीं होता है, जो अनुकूल सयोगो मे हर्षित नहीं होता है, वह भिक्षु है।

5 सत्कारादि न चाहने वाला यावत् आत्म गवेषक

मूल गाथा-

णो सक्कइमिच्छई ण पूय,
णोवि य वदणगं कुओ पसस।
से संजए सुव्वए तवस्सी,
सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥5॥

संस्कृत छाया-

न सत्कृतिमिच्छति न पूजा,
नोऽपि च वन्दनक कुत प्रशसाम्।
स सयत सुव्रतस्तपस्वी,
सहित आत्मगवेषक स भिक्षु ॥५॥

अन्वयार्थ-(जो) सक्कई-सत्कार को, णो इच्छई-नहीं चाहता, ण पूय-न पूजा को चाहता है, णोवि य और न वंदणग-वदना की इच्छा रखता, वह कुओ पसंस-प्रशसा कैसे चाहेगा। स-जो संजए-सयत, सुव्वए-सुव्रत

तवस्सी-तपस्वी, सहिए-ज्ञानादि से युक्त, आयगवेसए-आत्मा की गवेषणा करता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जो साधु सत्कार, पूजा और वन्दना की कामना नहीं करता है, वह किसी से प्रशसा की इच्छा कैसे करेगा? जो सयत, सुव्रती एव तपस्वी है, जो निमल आचार वाला है तथा जो आत्म गवेपक है, वह भिक्षु है।

6 असयमी जीवन त्यागी यावत् कुतूहल रहित

मूल गाथा- जेण पुणो जहाइ जीविय,
मोह वा कसिण णियच्छई।
णरणारिं पजहे सया तवस्सी,
ण य कोऊहल उवेइ स भिक्खू ॥६॥

सस्कृत छाया- येन पुनर्जहाति जीवित,
मोह वा कृत्स्न नियच्छति।
नरनारि प्रजह्यात् सदा तपस्वी,
न च कौतूहलमुपैति स भिक्षु ॥६॥

अन्वयार्थ-जेण-जिससे, पुणो-फिर, जीविय-सयमी जीवन, जहाइ-छूटता है, वा-अथवा, कसिण-सम्पूर्ण, मोह-मोहनीय कर्म णियच्छई-वढता है, (एस) णरणारिं-पुरुप अथवा नारी की सगति को, (जो) तवस्सी-तपस्वी मुनि सया-सदा क लिए, पजहे-त्यागता है, य-और, कोऊहल-कौतुहल को, ण उवेइ-नहीं करता है, स-वह भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जिस कारण से सयमी जीवन म व्यवधान उपस्थित हो अथवा वह छूट जाए, जिसके द्वारा सम्पूर्ण रूप से मोहनीय कर्म का बन्ध हो ऐसे नर या नारी का ससर्ग तपस्वी साधक सदा क लिए त्याग दता है तथा जो कुतूहल नहीं करता है वह भिक्षु है।

7 विविध विद्याओ से आजीविका न करने वाला

मूल गाथा- छिण्ण सर भोममतलिक्ख,
सुविण लक्खणदडवत्थुविज्ज।
अगवियार सरस्स विजय,
जे विज्जाहि ण जीवइ स भिक्खू ॥७॥

सस्कृत छाया- छिन्न स्वर भौममन्तरिक्ष,
स्वप्न लक्षणदण्डवास्तुविद्याम्।
अङ्गविकार स्वरस्य विजय,
यो विद्याभिर्न जीवति स भिक्षु ॥७॥

अन्वयार्थ-छिण्णं-छिन्न विद्या, सर-स्वर विद्या, भोम-भौम (भूकम्प) विद्या, अंतलिक्ख-अंतरिक्ष विद्या, सुमिण-स्वप्न विद्या लक्खण-लक्षण विद्या, दंड-दण्ड विद्या, वत्थुविज्ज-वास्तु विद्या, अंगवियार-अंग विकार विद्या, सरस्स विजय-स्वर विजय विद्या, विज्जाहिं-उक्त विद्याओं से, जो-जो साधक, ण जीवइ-आजीविका नहीं करता, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जो साधक छिन्न-विद्या (वस्त्रादि के छिद्रों से शुभाशुभ फल निर्देश) स्वर विद्या, भौम विद्या, अंतरिक्ष विद्या, स्वप्न विद्या, लक्षण विद्या एवं स्वर विजय विद्या आदि विद्याओं से अपनी आजीविका नहीं चलाता है, वह भिक्षु है।

8 मंत्रादि से चिकित्सा न करने वाला

मूल गाथा-

मंतं मूलं विविहं वेज्जचिंतं,
वमण-विरेयण-धूमणेत्त-सिणाणं।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च,
तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू॥8॥

संस्कृत छाया-

मन्त्रं मूलं विविधं वैद्यचिन्तां,
वमनविरेचनधूमनेत्रस्नानम्।
आतुरस्मरणं चिकित्सितं च,
तत् परिज्ञाय परिव्रजेत् स भिक्षुः॥8॥

अन्वयार्थ-मंतं-मंत्र, मूलं-मूल, विविहं-विविध प्रकार के, वेज्जचिंतं-वैद्यकीय चिंता, वमण-वमन, विरेयण-विरेचन, धूम-धूम, णेत्त-नेत्रौषधि, सिणाणं-स्नान, आउरे-आतुर अवस्था में, सरणं-मातादि का स्मरण, च-और, तिगिच्छियं-चिकित्सा, तं-इन सबको, परिण्णाय-ज्ञ-परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर (जो) परिव्वए-संयम मार्ग में विचरे, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जो मंत्र, मूल (जड़ी बूटी) विविध वैद्यकीय विद्याओं का चिन्तन, वमन, विरेचन, धूम, नेत्रांजन, स्नान एवं रोग आदि से आतुर होने पर स्वजनों का स्मरण एवं चिकित्सा आदि को स्वरूप से जानकर त्याग करके अप्रतिबद्ध विचरण करता है, वह भिक्षु है।

9 क्षत्रियादि की श्लाघा करने वाला

मूल गाथा-

खत्तिय - गण - उग्गरायपुत्ता,
माहणभोइय विविहा य सिप्पिणो।
णो तेसिं वयइ सिलोगपूयं,
तं परिण्णाय परिव्वए स भिक्खू॥9॥

संस्कृत छाया- क्षत्रियगणोग्रराजपुत्रा,
ब्राह्मणा भोगिका विविधाश्च शिल्पिन ।
नो तेषा वदति श्लोकपूजा,
तत्परिज्ञाय परिव्रजेत् स भिक्षु ॥९॥

अन्वयार्थ-खत्तिय-क्षत्रिय, गण-गण, उग्गरायपुत्ता-उग्रकुल के पुत्र (राजपुत्र), माहण-ब्राह्मण, भोइय-भोगिक पुत्र, य-और, विविहा-नाना प्रकार के, सिप्पिणो-शिल्पी लोग, तेसि-उनकी, सिलोग-श्लाघा, (प्रशसा) और पूय-पूजा को, (जो) णो वयइ-नहीं कहता है, त-और उसको, परिण्णाय-ज्ञ-परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग कर, परिव्वए-सयम मार्ग मे विचरे, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-क्षत्रिय, गण, उग्र राजपुत्र, ब्राह्मण और भोगिक (सामन्त आदि) तथा सभी तरह के शिल्पकारो की प्रशसा एव दुसाले आदि से सम्मान पूजा के सबध में जो कभी कुछ नहीं कहता है, किन्तु इसे त्याज्यमान कर विचरता है, वह भिक्षु है।

10 गृहस्थो से अति परिचय का निषेध

मूल गाथा- गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा,
अप्पवइएण व सथुया हविज्जा।
तेसि इहलोइयफलट्ठा,
जो सथव ण करेइ स भिक्खू ॥10॥

संस्कृत छाया- गृहिणो ये प्रव्रजितेन दृष्टा,
अप्रव्रजितेन च सस्तुता भवेयु ।
तेषामिहलौकिकफलार्थं
य सस्तव न करोति स भिक्षु ॥१०॥

अन्वयार्थ-जे-जिन, गिहिणो-गृहस्थो को, पव्वइएण-प्रव्रजित होने के बाद, दिट्ठा-देखा (परिचयकिया), व-अथवा, अपव्वइएण-गृहस्थावास (अप्रव्रज्तावस्था) में, सथुया-परिचित, हविज्जा-हुए हो, तेसि-उनके साथ, इह लोइय-इस लोक के, फलट्ठा-फल की प्राप्ति हतु जो-जो, सथव-सस्तव-विशेष परिचय, ण करेइ-नहीं करता है, स-वह, साधक, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जो प्रव्रजित होने के पश्चात् परिचित हुए हो, या उसके पूर्व के परिचित हों, उन व्यक्तियों के साथ इह लौकिक फल प्राप्ति के लिए जो सस्तव-ससर्ग नहीं करता है, वह साधु भिक्षु है।

11 शयनादि के नहीं देने पर प्रद्वेष नहीं करे

मूल गाथा- सयणासण - पाण - भोयण,
विविह खाइम साइम परेसि।

अदए पडिसेहिए णियंठे,
जे तत्थ ण पउस्सई स भिक्खू ॥११॥

मूल गाथा- शयनासनपानभोजन,
विविध खाद्य स्वाद्य परै।
अदद्भि प्रतिषिद्ध निर्ग्रन्थो,
यस्तत्र न प्रदुष्यति स भिक्षु ॥११॥

अन्वयार्थ-सयण-शय्या, आसण-आसन, पाण-पान, भोयण-भोजन, विविह-विविध प्रकार के, खाइमं-खादिम, साइम-स्वादिम को, अदए-न देने से, परेसि-गृहस्थों के, पडिसेहिए-निषेध करने पर, जे-जो, णियंठ-निर्ग्रन्थ, तत्थ-उनसे, ण पउस्सई-द्वेष नहीं करता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-शयन, आसन, पान, भोजन और विविध प्रकार के खादिम-स्वादिम पदार्थ अपने यहां होने पर भी कोई गृहस्थ स्वयं न दे अथवा याचना करने पर भी मना कर दे तब भी जो मुनि निर्ग्रन्थ उनके प्रति द्वेष नहीं करता, वह भिक्षु है।

12 आहारादि के बदले में गृहस्थों का कार्य न करने वाला

मूल गाथा- ज किंचि आहारपाणग विविह,
खाइमसाइम परेसि लद्धु।
जो त तिविहेण णाणुकंपे,
मण वय काय सुसंवुडे स भिक्खू ॥१२॥

संस्कृत छाया- यत्किञ्चिदाहारपानक विविध,
खाद्य स्वाद्य परेभ्यो लब्ध्वा।
यस्तत् त्रिविधेन नानुकम्पते,
सुसंवृतमनोवाक्काय स भिक्षु ॥१२॥

अन्वयार्थ-जं-जो, किंचि-किंचिन्मात्र, आहार-आहार, पाणगं-पानी, विविहं-नाना प्रकार के, खाइमं-खादिम, साइम-स्वादिम, परेसि-गृहस्थों से, लद्धु-प्राप्त होने पर, तं-उन पर, तिविहेण-तीन योगों से, अणुकंपे-अनुकम्पा, ण-नहीं करता (अपितु) जो-जो, मण-मन वय-वचन और काय-काया से सुसंवुडे-सम्यक् प्रकार से संवृत रहता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-जो मुनि गृहस्थों के द्वारा जो कुछ भी आहार पानी तथा विविध प्रकार के खाद्य स्वाद्य प्राप्त करके मन वचन और काया के द्वारा त्रिविध उनका कोई प्रतिकार्य-अनुकम्पा नहीं करता है अर्थात् इनका मुझ पर अनुग्रह है ऐसी दीनता नहीं दिखाता है और मन, वचन व काया से पूर्ण रूप से संवृत रहता है वह भिक्षु है।

13 नीरस आहारादि की निन्दा न करने वाला

मूल गाथा-

आयामग चेव जवोदण च,
सीय सोवीरजवोदग च।
ण हीलए पिंड णीरस तु,
पतकुलाई परिव्वए स भिक्खू ॥13॥

सस्कृत छाया-

आयामक चैव यवोदन च,
शीत सौवीर यवोदक च।
न हीलयेत् पिण्ड नीरस तु,
प्रान्तकुलानि परिव्रजेत् स भिक्षु ॥१३॥

अन्वयार्थ-आयामग-ओसामण, (अवश्रावण)-आयामक, चेव-तथा, जवोदण-यव का भात, सीय-शीतल आहार, सोवीर-काजी का पानी, च-और, जवोदग-यव-जौ का पानी तु-ऐसे, णीरस पिंड-नीरस पिण्ड की, (जो) णो हीलए-हीलना नहीं करता, अपितु, पत-कुलाइ-प्रान्त (साधारण) कुलो मे, परिव्वए-भिक्षा चर्या करता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-ओसामण, जौ से बना भोजन, शीत आहार, काजी का पानी, जौ का पानी जैसे नीरस पिण्ड आहार की जो निंदा नहीं करता है, अपितु साधारण घरो मे भी भिक्षा के लिए प्रवेश करता है, वह भिक्षु है।

14 भयानक शब्द सुनकर भयभीत नहीं होवे

मूल गाथा-

सद्दा विविहा भवंति लोए,
दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा।
भीमा भयभेरवा उराला,
जो सोच्चा ण विहिज्जइ स भिक्खू ॥14॥

सस्कृत छाया-

शब्दा विविधा भवन्ति लोके,
दिव्या मानुष्यकास्तैरश्चा ।
भीमा भयभैरवा उदारा,
य श्रुत्वा न बिभेति स भिक्षु ॥१४॥

अन्वयार्थ-लोए-लोक में, दिव्वा-देव सम्बन्धी, माणुस्सगा-मनुष्य सबधी तहा-तथा, तिरिच्छा-तिर्यंच सम्बन्धी, विविहा-नाना प्रकार के, भीमा-भयकर-रौद्र, भयभेरवा-भय से भैरव, (भय के उत्पादक), उराला-ऊची आवाज के प्रधान, सद्दा-शब्द, भवंति-होते हैं, जो-जो साधक, सोच्चा-उन्हें सुनकर, ण विहिज्जइ-नहीं डरता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-इस लोक-ससार में देवो, मनुष्यों और तिर्यंचो के अनेक प्रकार के रौद्र अति भयकर-भयोत्पादक एव महान् उच्च स्वर वाले शब्द होते हैं। जो साधक उन्हें सुनकर भी भयभीत नहीं होता है वह भिक्षु है।

15 सयमी यावत् दूसरो को कष्ट न देने वाला

मूल गाथा-

वाद विविह समिच्च लोए,
सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा।
पण्णे अभिभूय सव्वदसी,
उवसते अविहेडए स भिक्खू ॥१५॥

संस्कृत छाया-

वाद विविध समेत्य लोके,
सहित खेदानुगतश्च कोविदात्मा।
प्राज्ञोऽभिभूय सर्वदर्शी,
उपशान्तोऽविहेठक स भिक्षु ॥१५॥

अन्वयार्थ-लोए-लोक में, विविह-विविध प्रकार के, वाद-वाद (धर्म) को, समिच्च-जान करके, सहिए ज्ञान से युक्त, य-और, खेयाणुगए-सयम से अनुगत, तथा कोवियप्पा-कोविदात्मा, पण्णे-प्रज्ञावान, और अभिभूय परीषहो को जीतकर, सव्वदसी-सब के प्रति समदर्शी, उवसत-उपशान्तात्मा होकर, अविहेडए-किसी को किसी (बाधा) नहीं पहुचाता, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-लोक में प्रचलित धर्म विषयक विविध वादों को जान करके भी जो ज्ञान दर्शन चारित्र रूप स्वधर्म में स्थित रहता है, जिसे शास्त्रों का गूढार्थ परमार्थ ज्ञात है, जो कर्म क्षय की साधना में सलग्न है, जो प्रज्ञा सम्पन्न है, जो परीषहजयी है, जो सब के प्रति समदर्शी है, जो उपशान्त-मन्द कषायी है और जो किसी का अपमानित नहीं करता है, वह भिक्षु है।

16 शिल्प जीवी न हो यावत् एकाकी विचरण करने वाला

मूल गाथा-

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते,
जिइदिओ सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहु अप्पभक्खी,
चिच्चा गिह एगचरे स भिक्खू ॥१६॥

त्ति बेमि

इति सभिक्खुयं पञ्चदसज्झयण समत्त ॥१५॥

संस्कृत छाया-

अशिल्पजीव्यगृहोऽमित्र,
जितेन्द्रिय सर्वतो विप्रमुक्त।

अणुकपायी लघ्वल्पभक्षी,
त्यक्त्वा गृहमेकचर स भिक्षु ॥१६॥

इति ब्रवीमि।

इति सभिक्षुक पञ्चदशमध्ययन समाप्तम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-असिप्पजीवी-अशिल्पजीवी, अगिहे-घर से रहित, अमित्ते-मित्र-शत्रु रहित, जिइदिए-जितेन्द्रिय, सव्वओ-सर्व प्रकार से, विप्पमुक्के-बधन से मुक्त, अण्णुक्कसाई-अल्प कषाय वाला, अप्प-स्वल्प, और लहु-हल्का (निस्सार), भक्खी-भोजन करने वाला, और गिह-घर को, चिच्चा-छोड कर जो, एगचरे-अकेला, (रागादि से रहित होकर) विचरता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

त्ति-इस प्रकार, वेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-जो साधक शिल्पजीवी नहीं है, जिसका अपना कोई घर नहीं है, जिसके कोइ मित्र या शत्रु नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, जो सर्वप्रकार से सर्वथा मुक्त है, जो अणुकषायी अर्थात् मन्दकषायी है, जो नीरस और अल्प भोजन लेता है, जो गृहवास का परित्याग करके एकमात्र सयम मे ही विचरण करता है, वह भिक्षु है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार सभिक्षु नामक पन्द्रहवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

□□□

15 सयमी यावत् दूसरो को कष्ट न देने वाला

मूल गाथा-

वाद विविह समिच्च लोए,
सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा।
पण्णे अभिभूय सव्वदंसी,
उवसंते अविहेडए स भिक्खू ॥१५॥

सस्कृत छाया-

वाद विविध समेत्य लोके,
सहित खेदानुगतश्च कोविदात्मा।
प्राज्ञोऽभिभूय सर्वदर्शी,
उपशान्तोऽविहेठक स भिक्षु ॥१५॥

अन्वयार्थ-लोए-लोक में, विविह-विविध प्रकार के, वाद-वाद (धर्म) को, समिच्च-ज्ञा करके, सहिए ज्ञा से युक्त, य-और, खेयाणुगए-सयम से अनुगत, तथा कोवियप्पा-कोविदात्मा, पण्णे-प्रज्ञावान, और अभिभूय परीषहो का जीतकर, सव्वदंसी-सब के प्रति समदर्शी, उवसते-उपशान्तात्मा होकर, अविहेडए-किसी को (बाधा) नहीं पहुचाता, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

भावानुवाद-लोक में प्रचलित धर्म विषयक विविध वादों का ज्ञान करके भी जो ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय स्थित रहता है, जिसे शास्त्रो का गूढार्थ परमार्थ ज्ञात है, जो कर्म क्षय की साधना में सलग्न है, जो प्रज्ञा सम्पन्न है, परीषहजयी है, जो सब के प्रति समदर्शी है, जो उपशान्त-मन्द कषायी है और जो किसी को असमाधि नहीं पहुंचाता है, वह भिक्षु है।

16 शिल्प जीवी न हो यावत् एकाकी विचरण करने वाला

मूल गाथा-

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते,
जिइंदिओ सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहु अप्पभक्खी,
चिच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू ॥१६॥

त्ति बेमि

इति सभिक्खुय पञ्चदहज्झयण समत्तं ॥१५॥

संस्कृत छाया-

अशिल्पजीव्यगृहोऽमित्रः,
जितेन्द्रिय सर्वतो विप्रमुक्त।

अणुकषायी लघ्वल्पभक्षी,
त्यक्त्वा गृहमेकचर स भिक्षु ॥१६॥

इति ब्रवीमि।

इति सभिक्षुक पञ्चदशमध्ययन समाप्तम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-असिप्पजीवी-अशिल्पजीवी, अगिहे-घर से रहित, अमित्ते-मित्र-शत्रु रहित, जिइदिए-जितेन्द्रिय, सव्वओ-सर्व प्रकार से, विप्पमुक्के-बधन से मुक्त, अण्णुक्कसाइ-अल्प कषाय वाला, अप्प-स्वल्प, और लहु-हल्का (निस्सार), भक्खी-भोजन करने वाला, और गिह-घर को, चिच्चा-छोड कर जो, एगचरे-अकेला, *(रागादि से रहित होकर)* विचरता है, स-वह, भिक्खू-भिक्षु होता है।

त्ति-इस प्रकार, वेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-जो साधक शिल्पजीवी नहीं है, जिसका अपना कोई घर नहीं है, जिसके कोई मित्र या शत्रु नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, जो सर्वप्रकार से सर्वथा मुक्त है, जो अणुकषायी अर्थात् मन्दकषायी है, जो नीरस और अल्प भोजन लेता है, जो गृहवास का परित्याग करके एकमात्र सयम मे ही विचरण करता है, वह भिक्षु है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार सभिक्षु नामक पन्द्रहवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

□□□

ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - षोडश अध्ययन

उत्थानिका

हमारी साधना का मूलभूत उद्देश्य है-स्वरूप बोध अथवा स्वरमणता। मौलिक अर्थों में आत्मरमण के उच्च भाव को ही ब्रह्मचर्य की संज्ञा प्रदान की गई है। ब्रह्म का अर्थ है आत्मा की सर्वोच्च स्थिति और चर्य का अर्थ है विचरण। आत्मा की सर्वोच्च स्थिति में विचरण करने को आपेक्षिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य कहा जा सकता है। यह आत्मरमणता तभी संभव है जब बाह्य रमणता अथवा इन्द्रिय रमणता का भाव समाप्त हो।

यह आत्मा अनादिकाल से इन्द्रिय जन्य विषय सुखों को ही आनन्द का स्रोत मानकर उन्हीं में रमण करती चली आ रही है। इसी से जन्म-मरण के रूप में संसार परिभ्रमण का चक्र चल रहा है। इन्द्रिय रमणता के इस [illegible] को छिन्न-भिन्न करके स्वरूप रमणता में अवगाहन करना ही ब्रह्मचर्य है। किन्तु अनादि काल के इस जाल को [illegible] सरल नहीं है। इसके लिए प्रयत्नतम साधना की, इन्द्रियों और मन के संयम की आवश्यकता होती है। मन अपनी [illegible] अनादि प्रवृत्ति के कारण पुनः पुनः विषयों की ओर दौड़कर इन्द्रियों का गुलाम बन जाता है। वह स्वरूप रमणता से भटक कर पुनः इन्द्रिय-सुखों में दौड़ लगाने लगता है। मन के इस भटकाव को रोकने के लिए आत्मानन्द की रसानुभूति के लिए ही ब्रह्मचर्य और उसकी साधनात्मक प्रक्रिया पर बल दिया गया है।

यद्यपि विकारों का जाल भीतर में फैलता है किन्तु उन्हें परिपुष्ट करने वाली सामग्री बाहर से इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होती है, अतएव बाहरी परिवेश पर भी नियंत्रण आवश्यक माना गया है। इसी आधार पर [illegible] इन्द्रिय रूपी घरों की पुनः पुनः प्रेरणा प्रदान की जाती है।

कुछ आधुनिक विचारकों का कथन है कि बाह्य सुरक्षात्मक विधि निषेधात्मक नियमों का प्रभाव [illegible] मन स्थिति वाले पर होता है। अतः प्रत्येक साधक के लिए इन बाह्य नियमों के परिपालन की आवश्यकता नहीं है। यह चिन्तन अतीव भ्रान्तिपूर्ण चिन्तन है। इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े उच्च कोटि के [illegible] को भी [illegible] वातावरण ने प्रभावित करके [illegible] कर दिया था। अतः इन बाह्य नियमों की उपयोगिता को [illegible] से स्वीकार किया जाना चाहिए और इसी दृष्टि से ब्रह्मचर्य साधक के लिए प्रस्तुत अध्ययन में दस समाधि स्थानों का विवेचन किया गया है, जो ब्रह्मचर्य की साधना में सुस्थिरता उत्पन्न करते हैं।

प्रायः सभी धर्मों अथवा दर्शनों ने ब्रह्मचर्य की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। [illegible] इसे साधक जीवन का अनिवार्य अंग ही नहीं अनुपम सम्पदा के रूप में स्वीकार किया है। [illegible] का मूल है, [illegible] में प्रवेश का [illegible] है। सब व्रतों में ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट [illegible] है। [illegible] आधारशिला है। [illegible] आनन्द का [illegible] है [illegible]

अर्गला है। समग्र नैतिकता एव आध्यात्मिकता का आधार ब्रह्मचर्य ही है।

वस्तुत ब्रह्मचर्य हमारे विचारो-भाव जगत से सबधित है, किन्तु आज अधिकाशतया इसे जननेन्द्रिय सयम तक सीमित मान लिया गया है। ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध केवल दैहिक भाव तक ही सीमित नहीं है। इसका पालन किसी सामाजिक दबाव अथवा भय से किया जाता है तब भी वह महत्त्वहीन नहीं है। ब्रह्मचर्य के पालन म परिपार्श्ववर्ती वातावरण की सुरक्षा को भी महत्त्व दिया गया है। इसी आधार पर इस अध्ययन मे उन समाधि स्थानो का प्रतिपादन किया गया है, जिससे साधक अपनी पूर्णरूपेण सुरक्षा कर सके। जिसे हम ब्रह्मचर्य की नवबाड कह सकते हैं। जा खेत की सुरक्षा के समान ही हमारी साधना को सुरक्षा प्रदान करती है।

प्रस्तुत अध्ययन मे सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की विशुद्ध परिपालना म दस समाधि स्थानो की उपयोगिता एव अनिवार्यता पर बल दिया गया है।

वे ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान हैं

1 विविक्त शयनासन अर्थात् इन्द्रियाकर्षणों से रहित स्थान पर निवास करना।

2 स्त्रीकथा विवर्जना।

3 स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना और अधिक वार्तालाप का निषेध।

4 स्त्री के अगोपागो का विकार भरी दृष्टि से अवलोकन नहीं करना।

5 स्त्री के वासनावर्धक शब्दो का श्रवण नहीं करना।

6 पूर्व सेवित भोगा के स्मरण का निषेध।

7 विकार वर्धक आहार पर प्रतिबन्ध।

8 परिमाण से अधिक आहार का निषेध।

9 शारीरिक श्रृगार-विभूषा का निषेध।

10 पाच शब्दादि विषया की आसक्ति का वर्जन।

इन दस स्थानो का सम्यक् परिपालन आत्म समाधि का उत्पादक है।

गद्य और पद्य दोनो रूपो से ब्रह्मचर्य की महिमा उसकी फलश्रुति और पालन के अभाव मे होने वाली दु स्थिति का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत हुआ है प्रस्तुत अध्ययन म

❑❑❑

ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - षोडश अध्ययन

सूक्ति सारांश

समाधि की कामना है तो वासना जयी बनो।
हम जीवन में समाधि चाहते हैं और समाधि ब्रह्मचर्य साधने से मिलती है।

ब्रह्मचर्य की साधना जीवन की आराधना।
ब्रह्मचर्य जीवन का ओज है-जीवन की सर्वोत्तम ऊर्जा है। इसका क्षरण जीवन को मृत्यु की ओर ले जाता है।

वासना गमन हुआ कि साधकत्व समाप्त।
साधक जीवन का तो आधार ही ब्रह्मचर्य है।
वासना और साधना दोनों एक साथ कैसे चल सकती हैं?

ब्रह्मचर्य के प्रति जागृति-संयम, संवर की संस्कृति।
संयम, संवर, समाधि की कामना है, तो ब्रह्मचर्य के प्रति सदैव अप्रमत्त रहो।

विपरीत सैक्स संसर्ग-ब्रह्मचर्य स्खलना।
परस्पर विरुद्ध सैक्स (लिंग) के प्रति किसी भी प्रकार का
अनुराग ब्रह्मचर्य को स्खलित कर सकता है।

ब्रह्मचर्य स्खलन सर्वथा पतन का निमित्त हो सकता है।
ब्रह्मचर्य स्खलन सर्वज्ञ कथित धर्म से स्खलित होने का भी
निमित्त बन सकता है अथवा उन्माद भी पैदा कर सकता है।

ब्रह्मचर्य आराधन में इन्द्रिय-विषय नियंत्रण आवश्यक है।
पुरुष साधक स्त्री सहवास से तो बचे ही, पर उसके साथ अधिक बातें, एकासन उपवेशन एवं
अंग प्रत्यंगावलोकन से भी बचे।

ब्रह्मचर्य स्वीकार-सादा-परिमित आहार।
आहार-संयम ब्रह्मचर्य की विशुद्ध आराधना में अति सहयोगी होता है।

सादा जीवन व्यवहार-ब्रह्मचर्य का मूल आधार।
दैहिक साज-सज्जा-शृंगार ब्रह्मचर्य रक्षा का प्रमुख कारण है। [illegible]
[illegible] है।

ब्रह्मचर्य की साधना-मुक्ति की आराधना।
ब्रह्मचर्य साधक मनुष्य के द्वारा ही नहीं देवों के द्वारा भी
पूजनीय [illegible] है।

अह बम्भचेरसमाहिठाणाणाम सोलसमं अज्झयणं

अथ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानं नाम षोडशमध्ययनम्

ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

1 ब्रह्मचर्य समाधि स्थान (ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए अनिवार्य)

मूल गाथा- सुय मे आउस! तेण भगवया एवमक्खाय-इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं, दस बम्भचेरसमाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा णिसम्म सजमबहुले सवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥१॥

संस्कृत छाया- श्रुत मया आयुष्मन्! तेन भगवतैवमाख्यातम्-इह खलु स्थविरैर्भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तानि भिक्षु श्रुत्वा निशम्य बहुलसंयमो बहुलसंवरो बहुल समाधि-गुप्तो गुप्तेन्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ॥१॥

अन्वयार्थ-आउस-हे आयुष्मान्! मे-मैंने, सुय-सुना है, तेण-उन, भगवया-भगवान ने एवमक्खाय-ऐसा कहा है, इह-इस निर्ग्रंथ-प्रवचन मे, खलु-निश्चय से, थेरेहिं-स्थविर, भगवतेहिं-भगवन्ता ने, दस-दस, बभचेर-ब्रह्मचर्य के, समाहिठाणा-समाधि स्थान, पण्णत्ता-बतलाए हैं, जे-जिन्हे, सोच्चा-सुनकर णिसम्म-विचार करके, भिक्खू-भिक्षु, सजम बहुले-सयम म अधिक सम्पन्न, सवर बहुले-सवर मे अधिक सम्पन्न, समाहि बहुले-समाधि मे अधिक सम्पन्न, और गुत्ते-मन वचन काया के गोपक होकर, गुत्तिदिए-गुप्तेन्द्रिय, गुत्त बभयारी-गुप्त ब्रह्मचारी रहे और, सया-सदा, अप्पमत्ते-अप्रमत्त होकर, विहरेज्जा-विचरण करे।

भावानुवाद-आयुष्मन्! मैंने सुना है, उन भगवान् ने ऐसा कहा है-इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थविर भगवन्ता ने दस ब्रह्मचर्य समाधि स्थान बतलाए हैं, जिन्हें सुनकर, जिनके अर्थ का निश्चय करके भिक्षु सयम में सवर में और समाधि मे (चित्तस्थैर्य) अधिकाधिक सम्पन्न होकर मन, वचन व काया को सुगुप्त करे, इन्द्रियों को नियन्त्रित करे, ब्रह्मचर्य को नववाड़ो से सुरक्षित रखे तथा सदा अप्रमत्त भाव में विचरण करे।

ब्रह्मचर्य समाधि स्थान - षोडश अध्ययन

सूक्ति साराश •

समाधि की कामना है तो वासना जयी बनो।
हम जीवन मे समाधि चाहते हैं और समाधि ब्रह्मचर्य साधने से मिलती है।

ब्रह्मचर्य की साधना जीवन की आराधना।
ब्रह्मचर्य जीवन का ओज है-जीवन की सर्वोत्तम ऊर्जा है। इसका क्षरण जीवन को मृत्यु की ओर ले जाता है।

वासना गमन हुआ कि साधकत्व समाप्त।
साधक जीवन का तो आधार ही ब्रह्मचर्य है।
वासना और साधना दोनो एक साथ कैसे चल सकती है?

ब्रह्मचर्य के प्रति जागृति-सयम, सवर की सस्कृति।
सयम, सवर, समाधि की कामना है, तो ब्रह्मचर्य के प्रति सदैव अप्रमत्त रहो।

विपरीत सैक्स ससर्ग-ब्रह्मचर्य स्खलना।
परस्पर विरुद्ध सैक्स (लिग) के प्रति किसी भी प्रकार का
अनुराग ब्रह्मचर्य को स्खलित कर सकता है।

ब्रह्मचर्य स्खलन सर्वथा पतन का निमित्त हो सकता है।
ब्रह्मचर्य स्खलन सर्वज्ञ कथित धर्म से स्खलित होने का भी
निमित्त बन सकता है अथवा उन्माद भी पैदा कर सकता है।

ब्रह्मचर्य आराधन मे इन्द्रिय-विषय नियत्रण आवश्यक है।
पुरुष साधक स्त्री सहवास से तो बचे ही, पर उसके साथ अधिक वार्ता, एकासन उपवेसन एव
अग प्रत्यगावलोकन से भी बचे।

ब्रह्मचर्य स्वीकार-सादा-परिमित आहार।
आहार-सयम ब्रह्मचर्य की विशुद्ध आराधना मे अति सहयोगी होता है।

सादा जीवन व्यवहार-ब्रह्मचर्य का मूल आधार।
दैहिक साज-सज्जा-शृगार ब्रह्मचर्य पतन का प्रमुख कारण है। शृगारित साधक अभिलषनीय हो
जाता है।

ब्रह्मचर्य की साधना-मुक्ति की आराधना।
ब्रह्मचर्य साधक मनुष्य के द्वारा ही नहीं देवो के द्वारा भी
पूजनीय-वन्दनीय बन जाता है।

□□□

अह बम्भचेरसमाहिठाणाणाम सोलसमं अज्झयणं

अथ ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानं नाम षोडशमध्ययनम्

ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

1 ब्रह्मचर्य समाधि स्थान (ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए अनिवार्य)

मूल गाथा- सुय मे आउसं! तेण भगवया एवमक्खाय-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं, दस बम्भचेरसमाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा णिसम्म संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥१॥

संस्कृत छाया- श्रुतं मया आयुष्मन्! तेन भगवतैवमाख्यातम्-इह खलु स्थविरैर्भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षु श्रुत्वा निशम्य बहुलसंयमो बहुलसंवरो बहुल समाधि-र्गुप्तो गुप्तेन्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ॥१॥

अन्वयार्थ-आउस-हे आयुष्मान्! मे-मैंने, सुय-सुना है, तेण-उन, भगवया-भगवान ने, एवमक्खाय-ऐसा कहा है, इह-इस निर्ग्रंथ-प्रवचन मे, खलु-निश्चय से, थेरेहिं-स्थविर, भगवंतेहिं-भगवन्तों ने, दस-दस, बंभचेर-ब्रह्मचर्य के, समाहिठाणा-समाधि स्थान, पण्णत्ता-बतलाए हैं, जे-जिन्हे, सोच्चा-सुनकर, णिसम्म-विचार करके, भिक्खू-भिक्षु, संजम बहुले-संयम मे अधिक सम्पन्न, संवर बहुले-संवर मे अधिक सम्पन्न, समाहि बहुले-समाधि मे अधिक सम्पन्न, और गुत्ते-मन वचन काया के गोपक होकर, गुत्तिदिए-गुप्तेन्द्रिय, गुत्त बंभयारी-गुप्त ब्रह्मचारी रहे और, सया-सदा, अप्पमत्ते-अप्रमत्त होकर, विहरेज्जा-विचरण करे।

भावानुवाद-आयुष्मन्! मैंने सुना है, उन भगवान् ने ऐसा कहा है-इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने दस ब्रह्मचर्य समाधि स्थान बतलाए हैं, जिन्हे सुनकर, जिनके अर्थ का निश्चय करके भिक्षु संयम में, संवर में और समाधि में (चित्तस्थैर्य) अधिकाधिक सम्पन्न होकर मन, वचन व काया को सुगुप्त करे, इन्द्रियों का नियंत्रित करे, ब्रह्मचर्य को नववाड़ों से सुरक्षित रखे तथा सदा अप्रमत्त भाव में विचरण करे।

2 ब्रह्मचर्य समाधि स्थानो की जिज्ञासा

मूल गाथा- कयरे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा णिसम्म सजमबहुले सवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥२॥

सस्कृत छाया- कतराणि खलु तानि स्थविरैर्भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्य समाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षु श्रुत्वा निशम्य बहुलसयमो बहुलसवरो बहुलसमाधिर्गुप्तो गुप्तेन्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी सदाऽप्रमत्तो विहरेत् ॥२॥

अन्वयार्थ-थेरेहिं-स्थविर, भगवतेहिं-भगवन्तो ने, ते-वे, कयरे-कौनसे, खलु-निश्चय से, दस बभचेरसमाहिठाणा-दस ब्रह्मचर्य समाधि स्थान, पण्णत्ता-बतलाए हैं, जे-जिन्हे, सोच्चा-सुनकर, णिसम्म-विचार (निश्चय) कर, भिक्खू-भिक्षु, सजम बहुले-सयम मे अधिक सम्पन्न, सवरबहुले-सवर म अधिक सम्पन्न, समाहि बहुले-समाधि मे अधिक सम्पन्न, और गुत्ते-मन, वचन काया का गोपन करे, गुत्तिदिए-इन्द्रियो को नियत्रित रखे, गुत्त बभयारी-ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे, सया-सदा, अप्पमत्ते-अप्रमत्त होकर, विहरेज्जा-विचरण करे।

भावानुवाद-(आय जम्बू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से जिज्ञासा करते हैं) स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचय समाधि क वे कौन से दस स्थान बतलाए हैं जिन्हे सुनकर जिनका अर्थागम करके भिक्षु सयम, सवर और समाधि से अधिकाधिक समृद्ध होकर मन, वचन व काया को सगुप्त करे, इन्द्रियो को नियत्रित कर, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे तथा सदा अप्रमत्त भाव मे विचरण करे।

3 जिज्ञासा का समाधान

मूल गाथा- इमे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पण्णत्ता, जे भिक्खू सोच्चा णिसम्म सजमबहुले सवरबहुले समाहिबहुले गुत्ते गुत्तिदिए गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ॥

प्रथम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान-स्थान सयम

मूल गाथा- त जहा-विवित्ताइ सयणासणाइ सेवित्ता हवइ से णिग्गथे। णो इत्थी-पसु-पडग ससत्ताइं सयणासणाइ सेवित्ता हवइ से णिग्गथे। त कहमिति चे? आयरियाह णिग्गथस्स खलु इत्थी पसु पडग ससत्ताइ सयणासणाइ सेवमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ वा भसेज्जा, तम्हा णो इत्थी पसु पडग ससत्ताइं सयणासणाइ सेवित्ता हवइ से णिग्गथे ॥३॥

संस्कृत छाया- इमानि खलु स्थविरैर्भगवद्भिर्दश ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि, यानि भिक्षु श्रुत्वा निशम्य बहुलसंयमो बहुलसंवरो बहुलसमाधिर्गुप्तो गुप्तेन्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी सदाऽप्रमत्तो विहरेत्। तद्यथा-विविक्तानि शयनासनानि सेविता भवति स निर्ग्रन्थः। न स्त्रीपशुपण्डक संसक्तानि शयनासनानि सेविता भवति स निर्ग्रन्थः। तत् कथमिति चेत्? आचार्य आह-निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तानि शयनासनानि सेवमानस्य ब्रह्मचारिणो, ब्रह्मचर्ये शंका वा कांक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेदं वा लभेत, उन्मादं वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् तस्मान्नो स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तानि शयनासनानि सेविता भवति स निर्ग्रन्थः ॥३॥

अन्वयार्थ-इमे-ये, ते-वे, खलु-निश्चय से, दसबंभचेरसमाहिठाणा-दस ब्रह्मचर्य समाधि स्थान, थेरेहिं-स्थविर भगवंतेहिं-भगवन्तों ने, पण्णत्ता-बतलाए हैं, जे-जिन्हें, सोच्चा-सुनकर, णिसम्म-विचार कर, भिक्खू-भिक्षु संजम बहुले-संयम में अधिक संपन्न, संवर बहुले-संवर से अधिक सम्पन्न, समाहि बहुले-समाधि में अधिक सम्पन्न और, गुत्ते-मन, वचन का गोपन करे, गुत्तिंदिए-इन्द्रियां को नियंत्रित रखे गुत्तबंभयारी-ब्रह्मचर्य का सुरक्षित रखे, सया-सदा, अप्पमत्ते-अप्रमत्त होकर, विहरेज्जा-विचरण करे।

तंजहा-वे इस प्रकार हैं-जो, विवित्ताइं-विविक्त (एकान्त) सयणासणाइं-शयन और आसनों का, सेवित्ता-सेवन करता है, से-वह, णिग्गंथे-निर्ग्रन्थ, हवइ-होता है अर्थात् जो, इत्थी-स्त्री पसु-पशु, पंडग-और नपुंसक से संसत्ताइं-संसक्त, सयणासणाइं-शयन और आसन का, णो सेवित्ता हवइ-सेवन नहीं करता है, से-वह णिग्गंथे-निर्ग्रन्थ है, इतिचे-यदि ऐसा कहा जाए कि, तं-वह, कहं-कैसे? (उत्तर) आयरियाह-आचार्य ने कहा, इत्थी-स्त्री, पसु-पशु और पंडक-नपुंसक से, संसत्ताइं-संसक्त, सयणासणाइं-शयन और आसन का, सेवमाणस्स-सेवन करने वाले, बंभयारिस्स णिग्गंथस्स-ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के, बंभचेरे-ब्रह्मचर्य में, संका-शंका, वा-अथवा, कंखा-कांक्षा, विइगिच्छा-विचिकित्सा, समुप्पज्जिज्जा-समुत्पन्न होती है, भेदं वा लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का भंग (विनाश) होता है, वा-अथवा, उम्मायं-उन्माद, पाउणिज्जा-प्राप्त होता है, वा-अथवा, दीहकालियं-दीर्घकालिक, रोगायंक-रोग और आतंक, हवेज्जा-होता है, वा-अथवा, केवलि-केवली, पण्णत्ताओ-प्ररूपित, धम्माओ-धर्म से, भंसेज्जा-भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिए, इत्थी-स्त्री, पसु-पशु पंडग-नपुंसक से, संसत्ताइं-संसक्त, सयणासणाइं-शयन और आसन का, णो सेवित्ता हवइ-जो सेवन नहीं करता है से-वह, णिग्गंथे-निर्ग्रन्थ है।

भावानुवाद-आर्य सुधर्मा स्वामी समाधान प्रस्तुत करते हैं-

स्थविर भगवन्तों के द्वारा ब्रह्मचर्य समाधि के ये निम्न दस स्थान बतलाए गए हैं जिन्हें सुनकर जिनके अर्थ का निर्णय कर भिक्षु संयम संवर एवं समाधि में अधिकाधिक स्थिर होकर मन वचन व काया को संगुप्त करे, इन्द्रियों को वशीभूत कर, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे तथा सदैव अप्रमत्त होकर विचरण करे वे इस प्रकार हैं-प्रथम ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान प्रथम-जो विविक्त ब्रह्मचर्य साधना के अनुकूल शयन-आसन का सेवन नहीं करता है वह निर्ग्रन्थ है।

जो स्त्री, विजातीय पशु और नपुसक से ससक्त (घिरे हुए) शयन-आसन का सेवन नहीं करता है वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यो? (इस जिज्ञासा पर) आचार्य कहते हैं-स्त्री, पशु और नपुसक से सयुक्त शयन और आसन का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय मे शका, काक्षा (भोगों की कामना) या विचिकित्सा (ब्रह्मचर्य पालन के फल प्राप्ति मे सदेह) उत्पन्न हो सकती है, अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है, अथवा उन्माद उत्पन्न होता है अथवा दीर्घकालिक रोग एव आतक (शीघ्रघाती रोग) होता है अथवा वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट होता है इसलिए जो स्त्री, पशु और नपुसक ससक्त शयन और आसन का सेवन नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है।

4 द्वितीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान कथा सयम

मूल गाथा- **णो इत्थीण कह कहित्ता हवइ से णिग्गथे। त कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गथस्स खलु इत्थीण कह कहेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा, तम्हा णो इत्थीण कह कहेज्जा ॥4॥**

सस्कृत छाया- **नो स्त्रीणा कथा कथयिता भवति स निर्ग्रन्थ । तत्कथमिति चेत्? आचार्य आह-निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणा कथा कथयतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शका वा काक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत, तस्मान्नो स्त्रीणा कथा कथयेत् ॥4॥**

अन्वयार्थ-(जो) इत्थीण-स्त्रियो की, कह-कथा, णो कहित्ता-नहीं करता, हवइ-है, से-वह, णिग्गथे-निर्ग्रन्थ है, त-वह, कह-कैसे? इति चे-यदि ऐसा कहा जाए तो, आयरियाह-आचार्य ने कहा, इत्थीण-स्त्रिया की, कह-कथा, कहेमाणस्स-कहने वाले, निग्गथस्स-निर्ग्रन्थ के, बभचेरे-ब्रह्मचर्य में, खलु-अवश्य ही, सका वा-शका अथवा, कखा वा-काक्षा, विइगिच्छा वा-अथवा विचिकित्सा, समुप्पजिज्जा-समुत्पन्न होती है, भेद या लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का भग (विनाश) होता है, उम्माय वा पाउणिज्जा-अथवा उन्माद प्राप्त होता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक, रोगायक-रोग और आतक, हवेज्जा-होता है, केवलि-केवली, पण्णत्ताओ-प्ररूपित, धम्माओ-धर्म से, भंसेज्जा-भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिए, इत्थीण-स्त्रियों की, कह-कथा, णो कहेज्जा-नहीं कहे।

भावानुवाद-द्वितीय ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान-स्त्री कथा सयम-जो स्त्रियो की (श्रृगार सबधी) कथा नहीं करता है, वह निग्रन्थ है। ऐसा क्यो? (यह पूछने पर) आचार्य कहते हैं-स्त्रियो की कथा करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के सबध म शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचय का विनाश होता है अथवा उन्माद होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है, अथवा वह केवलि-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, अत निर्ग्रन्थ स्त्रिया के रूप लावण्य की अथवा केवल स्त्रियो के मध्य कथा न करे।

5 तृतीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान एकासन वर्जन

मूल गाथा- णो इत्थीण सद्धि सण्णिसेज्जागए विहरित्ता हवइ से णिग्गथे। त कहमति चे ? आयरियाह-णिग्गथस्स खलु इत्थीहिं सद्धि सण्णिसेज्जागयस्स बभयारिस्स बम्भचेरे सका वा कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गथे इत्थीहिं सद्धि सण्णिसेज्जागए विहरेज्जा ॥५॥

सस्कृत छाया- नो स्त्रीभि सार्धं सन्निषद्यागतो विहर्ता भवति स निर्ग्रन्थ । तत्कथमिति चेत्? आचार्य आह-निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीभि सार्धं सन्निषद्यागतस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शका वाऽऽकाक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् तस्मात्खलु नो निर्ग्रन्थ सार्धं सन्निषद्यागतो विहरेत् ॥५॥

अन्वयार्थ-(जो) इत्थीहिं-स्त्रियो के, सद्धि-साथ, सण्णिसेज्जागए-एक ही आसन पर, णो-नहीं, विहरित्ता-बैठता (विचरण करने वाला), हवइ-है, से-वह, णिग्गथे-निर्ग्रन्थ है, त-वह, कह-कैसे? इति चे-यदि ऐसा कहा जाए तो, आयरियाह-आचार्य कहते हैं, कि इत्थीहिं सद्धि-स्त्रियो के साथ, सण्णि सेज्जागयस्स-एक आसन पर बैठने वाले, बभयारिस्स णिग्गथस्स-ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के, बभचेरे-ब्रह्मचर्य मे, सका वा-शका अथवा, कखा वा-काक्षा अथवा, विइगिच्छा वा-वितिगिच्छा (विचिकित्सा), समुप्पज्जिज्जा-उत्पन्न होती है, भेद वा लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का भग (विनाश) होता है, उम्माय वा पाउणिज्जा-अथवा उन्माद पैदा होता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक, रोगायक-रोग और आतक, हवेज्जा-उत्पन्न होता है, केवलि-अथवा केवलि, पण्णत्ताओ-प्ररूपित, धम्माओ-धर्म से, भंसेज्जा-भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिए, णिग्गथे-निर्ग्रन्थ, इत्थीहिं सद्धि-स्त्रियो के साथ, सण्णि सेज्जागए-एक ही आसन पर, खलु-निश्चय से, णो विहरेज्जा-नहीं बैठे।

भावानुवाद-तृतीय ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान एकासन वर्जन-जो स्त्रियों के साथ पीठ आदि एक आसन पर नहीं बैठता है, वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यो? (इस जिज्ञासा पर) आचार्य कहते हैं-स्त्रियो के साथ एक आसन पर बैठने वाले निर्ग्रन्थ ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है, अथवा उन्माद उत्पन्न होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग या आतक होता है, एव केवलि प्रतिपादित धर्म से भ्रष्ट होता है। अत निर्ग्रन्थ स्त्रियो के साथ एक आसन पर न बैठे।

6 चतुर्थ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान दृष्टि सयम

मूल गाथा- णो इत्थीण इदियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोइत्ता णिज्झाइत्ता हवइ से णिग्गथे। त कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गथस्स खलु इत्थीण

इंदियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोएमाणस्स णिज्झायमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा, तम्हा खलु णो णिग्गथे इत्थीण इदियाइ मणोहराइ मणोरमाइ आलोएज्जा णिज्झाएज्जा ॥६॥

संस्कृत छाया- नो स्त्रीणामिन्द्रियाणी मनोहराणि मनोरमाण्यालोकयिता निर्ध्याता भवति स निर्ग्रन्थ । तत्कथमिति चेत्? आचार्य आह- निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाण्यवलोकमानस्य निर्ध्यायतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वाऽऽकाक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थ स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाण्यालोकयेन्निर्ध्यायेत् ॥६॥

अन्वयार्थ-(जो) इत्थीण-स्त्रियो की, मणोहराइ-मनोहर, एव मणोरमाई-मनोरम, इन्दियाइ-इन्द्रियो को, णो आलोइत्ता-न देखता है, एव णिज्झाइत्ता-न ही चिन्तन करता है, से-वह, णिग्गंथे-निर्ग्रन्थ, भवइ-होता है, तं वह, कह-कैसे, इति चे-यदि ऐसा कहा जाए तो, आयरियाह-आचार्य कहते हैं, इत्थीण-स्त्रियो की, मणोहराइ मनोहर एव मणोरमाइ-मनोरम, इदियाइ-इन्द्रियो का, आलोएमाणस्स-देखने वाले, और णिज्झायमाणस्स चिन्तन करने वाले, बम्भयारिस्स-णिग्गथस्स-ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ का, बंभचेरे-ब्रह्मचर्य के विषय में, संका वा शका अथवा, कखा वा-काक्षा अथवा, विइगिच्छा वा-अथवा विचिकित्सा, समुप्पज्जिजा-उत्पन्न होती है, भेद वा लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का भग (विनाश) होता है, उम्मायं वा पाउणिज्जा-अथवा उन्माद प्राप्त होता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक, रोगायंक-रोग और आतक, हवेज्जा-हो जाता है, वा-अथवा, केवलि केवली, पण्णत्ताओ-प्ररूपित, धम्माओ-धर्म से, भंसेज्जा-भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिए, णिग्गंथे-निर्ग्रन्थ, इत्थीण-स्त्रियो के, मणोहराइ-मनोहर और, मणोरमाई-मनोरम, इदियाई-इन्द्रियों को, खलु-निश्चय णो आलोएज्जा-देखे नहीं, और णिज्झाएज्जा-(उसके विषय मे) चिन्तन भी करे नहीं।

भावानुवाद-चतुर्थ ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान स्त्री अगोपाग-अदर्शन-जो स्त्रियों की मनोहर एव मनोरम इन्द्रियो को (कामुक दृष्टि से-दृष्टि गडाकर) नहीं देखता और उनके विषय में चिन्तन नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यों? (इस पृष्ठव्य पर) आचार्य कहते हैं-स्त्रियों की मनोहर एव मनोरम इन्द्रियों [illegible] को दृष्टि गडाकर देखने वाले तथा उनके विषय में चिन्तन करने वाले [illegible] काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश [illegible] होता [illegible] रोग या आतक होता है, अथवा वह केवली प्ररूपित धर्म [illegible] निर्ग्रन्थ [illegible] मनोरम इन्द्रियों को उनके अगोपागो को न देखे और न उस [illegible]।

मूल गाथा- *णो णिग्गथे इत्थीण कुड्डतरसि वा दूसतरसि वा भित्ततरसि वा कूइयसद्द वा रुइयसद्द वा गीयसद्द वा हसियसद्द वा थणियसद्द वा कदियसद्द वा विलवियसद्द वा सुणेत्ता हवइ, से णिग्गथे। त कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गथस्स खलु इत्थीण कुड्डतरसि वा दूसतरसि वा भित्ततरसि वा कूइयसद्द वा रुइयसद्द वा गीयसद्द वा हसियसद्द वा थणियसद्द वा कदियसद्द वा विलवियसद्द वा सुणेमाणस्स बभयारिस्स बभचेरे सका वा कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गथे इत्थीण कुड्डतरसि वा दूसतरसि वा भित्ततरसि वा कूइयसद्द वा रुइयसद्द वा गीयसद्द वा हसियसद्द वा थणियसद्द वा कदियसद्द वा विलवियसद्द वा सुणेमाणे विहरेज्जा॥७॥*

सस्कृत छाया- नो निर्ग्रन्थ स्त्रीणा कुड्यान्तरे वा दूष्यान्तरे वा भित्त्यन्तरे वा कूजितशब्द वा, रुदित शब्द वा गीतशब्द वा, हसितशब्द वा, स्तनितशब्द वा क्रन्दित शब्द वा, विलपितशब्द वा श्रोता (न) भवति, स निर्ग्रन्थ । तत्कथमितिचेत्? आचार्य आह निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणा कुड्यान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा, भित्त्यन्तरे वा कूजितशब्द वा, रुदितशब्द वा, गीतशब्द वा, हसितशब्द वा, स्तनितशब्द वा, क्रन्दितशब्द वा, विलपितशब्द वा, शृण्वतो, ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शङ्का वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातङ्को भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत्। तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थ स्त्रीणा कुड्यान्तरे वा, दूष्यान्तरे वा भित्त्यन्तरे वा कूजितशब्द वा, रुदितशब्द वा गीतशब्द वा, हसितशब्द वा, स्तनितशब्द वा, क्रन्दितशब्द वा, विलपितशब्द वा शृण्वन् विहरेत्॥७॥

अन्वयार्थ-णिग्गंथे-निर्ग्रन्थ (जो), कुड्डुतरसि-मिट्टी की दीवार के अन्दर से, वा-अथवा दूसंतरसि-वस्त्र के अन्तर से, भित्ततरंसि वा-अथवा पक्की दीवार के अन्तर से, इत्थीण-स्त्रियों के, कूइयसद्द वा-कूजन के शब्द,

रुइय सद्द वा-या रोने के शब्द, गीय सद्द वा-अथवा गीत शब्द, हसिय सद्द वा-अथवा हास्य के शब्द, थणिय सद्द वा-स्तनित-गर्जन शब्द, कंदियसद्द-क्रन्दन के शब्द, वा-अथवा, विलवियसद्द-विलाप के शब्द को, सुणमाणे-सुनता, णो-नहीं, हवइ-है, से-वह, णिग्गन्थे-निर्ग्रन्थ है, ते-वह, कह-कैसे, इतिचे-इस पर उत्तर में-आयरियाह आचार्य कहते हैं, कुड्डुतरसि-मिट्टी की दीवार के अथवा, दूसतरसि वा-वस्त्र के, अथवा भित्ततरंसि वा-पक्की दीवार के अन्तर से, इत्थीण-स्त्रियो के, कुइय सद्द वा-कूजन के शब्द, वा-अथवा, रुइयसद्द-रोदन के शब्द, वा अथवा, गीयसद्द-गीत के शब्द, वा-अथवा, हसियसद्द-हसी के शब्द, वा-अथवा, थणियसद्द-स्तनित-गर्जन के शब्द, वा-अथवा, कंदियसद्द-क्रदन के शब्द, वा-अथवा, विलवियसद्दवा-विलाप के शब्द का, सुणमाणस्स सुनने वाले, बभयारिस्स णिग्गन्थस्स-ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के, बंभचेरे-ब्रह्मचर्य में, सका वा-शका, अथवा कंखा वा-काक्षा अथवा, विइगिच्छा वा-विचिकित्सा, समुप्पज्जिज्जा-समुत्पन्न हाती है, भेद वा लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का भग (विनाश) होता है, उम्माय वा पाउणिज्जा-अथवा उन्माद पैदा होता है, दीहकालिय वा-अथवा, दीर्घकालिक रोगायक-रोग और आतक, हवज्जा-हो जाते हैं, केवलि पण्णत्ताओ वा-अथवा केवली प्ररूपित, धम्माओ धर्म से, भसेज्जा-नष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिये, णिग्गथे-निग्रन्थ, कुड्डुतरसि वा-मिट्टी की दीवार के अथवा दूसतरसि वा-वस्त्र के अथवा, भित्ततरसि वा-पक्की दीवार के अन्तर से, इत्थीण-स्त्रियों के, कुइयसद्दं वा कुजन के शब्द, रुइय सद्द वा-रदन के शब्द अथवा, गीय सद्द वा-गीत के शब्द, हसिय सद्दं वा-हास्य के शब्द, अथवा थणिय सद्द वा-स्तनित-गजन के शब्द, अथवा कंदिय सद्द वा-आक्रन्दन के शब्द, अथवा विलविय सद्द वा-विलाप के शब्द, सुणेमाणे-सुनता हुआ, णो-नहीं, विहरेज्जा-विचरे।

भावानुवाद-पचम ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान श्रुति सयम-सगुप्त शब्द-श्रवण विवर्जन-मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से अथवा पक्की दीवार के अन्तर से जो कूजन, रोदन, गीत, हास्य, स्तनित-गर्जन, आक्रन्दन, व विलाप के शब्दो को नहीं सुनता है, वह निर्ग्रन्थ है। यह क्यो? (इस पृच्छा पर) आचार्य कहते हैं-मिट्टी की दीवार क अन्तर से, परदे के पीछे से अथवा पक्की दीवार के अन्तर से, स्त्रिया के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन आक्रन्दन या विलाप के शब्द सुनने वाल ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश हाता है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है, अथवा दीर्घकालिक रोग या आतक हो जाता है, अथवा वह केवलि प्ररूपित धर्म से चलित-भ्रष्ट हो जाता है। अत निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अतर से, परदे के अतर से या पक्की दीवार के अतर से, स्त्रियो के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन व विलाप के शब्दो को नहीं सुने।

8 छठा ब्रह्मचय समाधि स्थान स्मृति सयम

मूल गाथा- णो णिग्गथे इत्थीणं पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरित्ता हवइ, से णिग्गथे। त कहमिति चे? आयरियाह णिग्गंथस्स खलु इत्थीण पुव्वरयं पुव्वकीलिय अणुसरमाणस्स बभयारिस्स बम्भचेरे सका वा कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गथे इत्थीण पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरेज्जा॥6॥

संस्कृत छाया- नो निर्ग्रन्थ स्त्रीणा पूर्वक्रीडितमनुस्मर्ता भवेत्, स निर्ग्रन्थ । तत्कथमिति चेत्? आचार्य आह-निर्ग्रन्थस्य खलु स्त्रीणा पूर्वरत पूर्वक्रीडितमनुस्मरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शका वा काङ्क्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थ स्त्रीणा पूर्वरत पूर्वक्रीडितमनुस्मरेत् ॥८॥

अन्वयार्थ-(जो) णिग्गथे-निर्ग्रन्थ, पुव्वरय-पूर्व, गृहवास मे, इत्थीण-स्त्री के सग की हुई रति तथा पुव्व कीलिय-पूर्वकृत क्रीडा का, अणुसरित्ता-अनुस्मरण, णो-नहीं, हवइ-करता है से-वह, णिग्गथे-निर्ग्रन्थ है त-वह, कह-कैसे? इतिचे-इस प्रकार पूछने पर, आयरियाह-आचार्य कहते हैं खलु-निश्चय ही, इत्थीण-स्त्री के साथ, पुव्वरय-सयम ग्रहण से पूर्व रति को, पुव्व कीलिय-पूर्वकृत क्रीडा का, अणुसरमाणस्स-अनुस्मरण करने वाले, बभयारिस्स णिग्गथस्स-ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को, सका वा-शका अथवा, कखा-काक्षा, वा-अथवा, विइगिच्छा वा-विचिकित्सा, समुप्पज्जिज्जा-उत्पन्न होती है, भेय वा लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का भग (विनाश) होता है, उम्माय वा पाउणिज्जा-अथवा उन्माद पैदा होता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक, रोगायक-रोग और आतक, हवेज्जा-होता है, केवलि पण्णत्ताओ वा-अथवा केवली प्ररूपित, धम्माओ-धर्म से, भंसेज्जा-भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिए, णिग्गथे-निर्ग्रन्थ, इत्थीण-स्त्री के साथ, पुव्वरय-पूर्व रति (एव) पुव्व कीलिय-पूर्व क्रीडा को, खलु-निश्चय से, णो-नहीं, अणुसरेज्जा-अनुस्मरण करे।

भावानुवाद-छठा ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान स्मृति सयम-पूर्व भुक्त भोग स्मरण वर्जन-जो सयम स्वीकार करने से पूर्व गृहवास में आचरित रति और क्रीडा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है। यह क्या? (इस जिज्ञासा पर) आचार्य कहते हैं कि सयम ग्रहण के पूर्व गृहवास मे सेवित रति और क्रीडा का अनुस्मरण करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रंथ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न हो जाती है अथवा ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है अथवा उन्माद उत्पन्न होता है अथवा दीर्घकालिक रोग या आतक होता है अथवा वह केवली प्रतिपादित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, अत निर्ग्रन्थ पूर्व आचरित रति एव क्रीडा का अनुस्मरण न करे।

9 सप्तम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान रस सयम

मूल गाथा- णो पणीय आहारं आहारित्ता हवइ, से णिग्गथे। त कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गथस्स खलु पणीय आहार आहारेमाणस्स बभयारिस्स बभचेरे सका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गथे पणीय आहार आहारेज्जा॥९॥

संस्कृत छाया- नो प्रणीतमाहारमाहर्ता भवेत्, स निर्ग्रन्थ । तत्कथमिति चेत्? आचार्य आह-निर्ग्रन्थस्य खलु प्रणीतमाहारमाहरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शंका वा कांक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत् उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत्। तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थ प्रणीतमाहारमाहरेत्॥९॥

अन्वयार्थ-(जो) पणीय-प्रणीत-पौष्टिक, आहार-आहार, आहरित्ता-करने वाला, णो हवइ-नहीं होता है, स वह, णिग्गन्थे-निर्ग्रन्थ है, त-वह, कह-कैसे? इतिचे-इस प्रकार पूछने पर, आयरियाह-आचार्य ने कहा-खलु निश्चय ही, पणीय-रसयुक्त पौष्टिक, आहार-आहार आहारेमाणस्स-सेवन करने वाले, बभयारिस्स णिग्गंथस्स ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के, बभचेरे-ब्रह्मचर्य में, सका वा-शका अथवा, कखा वा-काक्षा अथवा, विइगिच्छा-विचिकित्सा समुप्पज्जिजा-उत्पन्न होती है, भेद वा लभेज्जा-ब्रह्मचय का भग (विनाश) होता है, उम्मायं वा पाउणिज्जा अथवा उन्माद पैदा होता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक, रोगायक-रोग और आतक, हवेज्जा-हो जाता है, केवलि पण्णत्ताओ वा-अथवा केवलि प्ररूपित, धम्माओ-धर्म से, भसेज्जा-भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिए खलु-निश्चय ही, णिग्गन्थे-निर्ग्रन्थ, पणीय-प्रणीत, आहारं-आहार, णो आहरेज्जा-सेवन न करे।

भावानुवाद-सप्तम ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान रस सयम-प्रणीत आहार त्याग-जो प्रणीत-रसयुक्त विकारोत्तेजक आहार नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यों? (यह पूछने पर) आचार्य कहते हैं-प्रणीत-सरस भोजन का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य भग हो जाता है, अथवा उन्माद उत्पन्न हो जाता है अथवा दीर्घकालिक रोग एव आतक होता है अथवा वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, अत निर्ग्रन्थ प्रणीत आहार न करे।

10 अष्टम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान भोजन सयम

मूल गाथा- णो अइमायाए पाणभोयण आहारेता हवइ, से णिग्गथे। तं कहमिति चे ? आयरियाह-णिग्गथस्स खलु अइमायाए पाणभोयण आहारेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका व कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णताओ धम्माओ भसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गथे अइमायाए पाणभोयण आहारेज्जा॥10॥

संस्कृत छाया- नो अतिमात्रया पानभोजनमाहर्ता भवति, स निर्ग्रन्थ । तत् कथमिति चेत्? आचार्य आह-निर्ग्रन्थस्य खल्वतिमात्रया पान भोजनमाहरतो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शका वा काक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात्, दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत्, केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थोऽतिमात्रया पानभोजनमाहरेत्॥10॥

अन्वयार्थ-(जो) अइमायाए-अतिमात्रा मे, पाण-भोयण-पान-भोजन, णो आहारेत्ता-करने वाला नहीं हवइ-होता है, से-वह, णिग्गथे-निर्ग्रन्थ है, त-वह, कह-कैसे, इतिचे-इस प्रकार पूछने पर, आयरियाह-आचाय कहते हैं, खलु-निश्चय ही, अइमायाए-अधिक मात्रा मे, पाण भोयण-पान-भोजन, आहारेमाणस्स-करने वाल, वभयारिस्स णिग्गथस्स-ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के, वभचेरे-ब्रह्मचर्य मे, सका वा-शका अथवा, कखा वा-काक्षा अथवा, विइगिच्छा-विचिकित्सा, समुप्पज्जिज्जा-उत्पन्न होती है, भेद वा लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का भग (विनाश) होता है, उम्माय वा पाउणिज्जा-अथवा उन्माद पैदा होता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक रोगायक-रोग और आतक, हवेज्जा-हा जाता है केवलिपण्णत्ताओ वा-अथवा केवली प्ररूपित, धम्माओ-धर्म से, भसेज्जा-भ्रष्ट हो जाता है, तम्हा-इसलिए, खलु-निश्चय ही णिग्गथे-निर्ग्रन्थ अइमायाए-अति मात्रा म पाण-भोयण-पान और भोजन, णो आहारेज्जा-ग्रहण न करे।

भावानुवाद-अष्टम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान आहार सयम-अधिक आहार वर्जन-जो परिमाण-मात्रा से अधिक भोजन पान का सेवन नहीं करता है वह निग्र श है। ऐसा क्या? इस प्रश्न पर आचार्य कहते हैं-मात्रा से अधिक भाजन पान करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शका काक्षा अथवा विचिकित्सा होती है, अथवा ब्रह्मचर्य नष्ट होता है अथवा उन्माद का प्रादुर्भाव होता है अथवा दीर्घकालिक रोग या आतक होता है अथवा वह केवली प्ररूपित धर्म से गिर जाता है, अत निर्ग्रन्थ परिमाण से अधिक खान पान न करे।

11 नवम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान विभूषा सयम

मूल गाथा- णो विभूसाणुवादी हवइ, से णिग्गथे। त कहमिति चे? आयरियाह-विभूसावत्तिए विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ। तओ णं तस्स इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा कखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालिय वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा। तम्हा खलु णो णिग्गथे विभूसाणुवाई हविज्जा ॥११॥

सस्कृत छाया- नो विभूषानुपाती भवति, स निर्ग्रन्थ तत् कथमिति चेत्? आचार्य आह-विभूषावर्तिको विभूषितशरीर स्त्रीजनस्याभिलषणीयो भवति। ततस्तस्य स्त्रीजनेनाभिलष्यमाणस्य ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शका वा काक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत् उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत् केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् तस्मात् खलु नो निर्ग्रन्थो विभूषानुपाती भवेत् ॥११॥

अन्वयार्थ-(जो) विभूसाणुवादी-विभूषानुपाती, णो हवइ-नहीं होता है, अर्थात् शरीर की विभूषा नहीं करता, स-वह, णिग्गंथे-निर्ग्रन्थ है, तं-वह, कह-कैसे? इतिचे-इस प्रकार पूछने पर आयरियाह-आचार्य कहते हैं, विभूसावत्तिए-विभूषा वर्तन (करने) वाला, विभूसिय सरीर-विभूषित शरीर इत्थि जणस्स-स्त्री जन को अभिलसणिज्जे-

अभिलपनीय, हवइ-होता है, तओ ण-तब फिर, इत्थिजणेण-स्त्रियों द्वारा, अभिलसिज्जमाणस्स-चाह… वाले, तस्स-उस, बम्भयारिस्स-ब्रह्मचारी के, बभचेरे-ब्रह्मचर्य मे, सका वा-शका अथवा, कखा वा … अथवा, विइगिच्छा-विचिकित्सा, समुपज्जिज्जा-उत्पन्न होती है, भेद वा लभेज्जा-अथवा ब्रह्मचर्य का … (विनाश) होता है, उम्माय वा पाउणिज्जा-उन्माद को प्राप्त करता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक, रोगायक-रोग और आतक, हवेज्जा-होता है, केवलि पण्णत्ताओ वा-अथवा, केवली-प्ररूपित, धम्माओ … से, भंसेज्जा-भ्रष्ट होता है, तम्हा-इसलिए, खलु-निश्चय ही, णिग्गंथे-निग्रन्थ, विभूसाणुवाई विभूषानु… (शरीर को विभूषित करने वाला), णो सिया-न बने।

भावानुवाद-नवम ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान-विभूषा सयम-श्रृगार वर्जन-जो भिक्षु विभूषानुपाती नहीं होता है … शरीर की विभूषा सजावट नहीं करता है वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यो? इस जिज्ञासा का उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं -जिसकी मनोवृत्ति विभूषा करने की होती है, वह शरीर को सुसज्ज करता है, फलत वह स्त्रिया द्वारा अभिलषणीय चाहने योग्य हैं और इस प्रकार स्त्रियो के द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य मे शका, कांक्षा अथवा विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है अथवा उन्माद उत्पन्न होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह केवली प्रतिपादित धर्म से भ्रष्ट-पतित हो जाता है, अत निर्ग्रन्थ कभी विभूषानुपाती न बने।

12 दशम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान पचेन्द्रिय विषय सयम

मूल गाथा- णो सद्दरूवरसगधफासाणुवादी हवइ, से णिग्गथे। त कहमिति चे? आयरियाह-णिग्गथस्स खलु सद्दरूवरसगन्धफासाणुवादिस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे सका वा कंखा वा विइगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेद वा लभेज्जा, उम्माय वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायक हवेज्जा, केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भसेज्जा। तम्हा खलु णो सद्दरूवरस गधफासाणुवादी हवेज्जा, से णिग्गथे दसमे बम्भचेरसमाहिठाणे हवइ। भवति य इत्थइ सिलोगा तजहा ॥१२॥

संस्कृत छाया- नो शब्दरूपरसगन्धस्पर्शानुपाती भवति, स निर्ग्रन्थः। तत्कथमिति चेत्? आचार्य आह-निर्ग्रन्थस्य खलु शब्दरूप-रसगन्धस्पर्शानुपातिनो ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचर्ये शका वा कांक्षा वा विचिकित्सा वा समुत्पद्येत, भेद वा लभेत, उन्माद वा प्राप्नुयात् दीर्घकालिको वा रोगातको भवेत् केवलिप्रज्ञप्ताद् धर्माद् भ्रश्येत् तस्मात् खलु नो शब्दरूपरस गन्धस्पर्शानुपाती भवेत् स निर्ग्रन्थ, दशम ब्रह्मचर्य समाधिस्थान भवति। भवन्ति चात्र श्लोका तद्यथा ॥१२॥

अन्वयार्थ-(जो) सद्द-शब्द रूव-रूप, रस-रस, गध-गध, और फासाणुवादी-स्पर्श मे आसक्त णो-नहीं,

हवइ-होता है, से-वह, णिग्गन्थे-निर्ग्रन्थ है, त-वह, कह-कैसे? इतिचे-इस प्रकार पूछने पर, आयरियाह-आचार्य कहते हैं, सद्द-शब्द, रूव-रूप, रस-रस, गध-गन्ध और फासाणुवादिस्स-स्पर्श मे आसक्त वम्भयारिस्स णिग्गथस्स-ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के, बभचेर-ब्रह्मचर्य मे, सका वा-शका अथवा, कखा वा-काक्षा अथवा विइगिच्छा-विचिकित्सा, समुप्पज्जिज्जा-उत्पन्न हाती है, भेद वा लभेज्जा-ब्रह्मचर्य का भेद (विनाश) होता है उम्माय वा पाउणिज्जा-अथवा उन्माद प्राप्त हाता है, दीहकालिय वा-अथवा दीर्घकालिक रोगायक-रोग और आतक हवेज्जा-उत्पन्न होता है, केवलिपण्णत्ताओ वा-अथवा केवलि प्ररूपित धम्माओ-धर्म से भसेज्जा-भ्रष्ट हाता है, तम्हा-इसलिए, सद्द-शब्द, रूव-रूप, रस-रस गध-गन्ध, और फासाणुवादी-स्पर्श म आसक्त णो हविज्जा-न होवे, यह दसमे-दशवा, बभचेरे-ब्रह्मचर्य, समाहिठाणे-समाधि स्थान, हवइ-है, य-और इत्थ-यहा पर (इस विषय मे), सिलोगा-श्लोक भी, हवति-हैं, तजहा-जेसे कि-

भावानुवाद-दशम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान पचन्द्रिय विषय सयम-जो शब्द, रूप, रस गन्ध और स्पर्श म आसक्त नहीं होता है वह निर्ग्रन्थ है। ऐसा क्यो? इसके समाधान मे आचार्य कहते हैं-जा शब्द, रूप रस गन्ध और स्पश में आसक्त होता है उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शका, काक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचय का नाश हाता है अथवा उन्माद उत्पन्न होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग और आतक होता है अथवा वह कवली प्ररूपित धर्म से विचलित हो जाता है, अत निर्ग्रन्थ शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श मे आसक्त न बने। यह ब्रह्मचय समाधि का दसवा स्थान है और यहा पर श्लोक भी हैं। यथा-

1 प्रथम गुप्ति विविक्त शय्यासन ब्रह्मचर्य समाधि स्थान-

मूल गाथा- ज विवित्तमणाइण्ण, रहिय इत्थिजणेण य।
बम्भचेरस्स रक्खट्ठा, आलय तु णिसेवए॥1॥

सस्कृत छाया- य विविक्तमनाकीर्णं, रहित स्त्रीजनेन च।
ब्रह्मचर्यस्य रक्षार्थम्, आलय तु निषेवेत॥१॥

अन्वयार्थ-ज-जो (निवास स्थान), विवित्त-विविक्त-एकान्त, अणाइण्ण-अनाकीर्ण, इत्थि-जणेण-स्त्रीजन मे, रहिय-रहित हो, वम्भचेरस्स-ब्रह्मचर्य की, रक्खट्ठा-रक्षा के लिये उस, आलय-निवास स्थान का, णिसेवए-सेवन करे।

भावानुवाद-सयमी साधक ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये ऐसे आलय-स्थान मे निवास कर जो एकान्त या दूषित वातावरण रहित तथा अनाकीर्ण एव स्त्रियो से रहित हो।

2 द्वितीय गुप्ति स्त्री कथा वर्जन

मूल गाथा- मणपल्हायजणणी, कामरागविवड्ढणी।
बम्भचेररओ भिक्खू, थीकह तु विवज्जए॥2॥

सस्कृत छाया- मन प्रह्लादजननीं, कामरागविवर्धनीम्।
ब्रह्मचर्यरतो भिक्षु स्त्रीकथा तु विवर्जयेत्॥२॥

अन्वयार्थ-बंभचेररओ-ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू-भिक्षु, मण पल्हाय जणणी-मन का आनन्द पैदा करने वाली, (तथा) काम राग विवड्ढणी-काम राग को बढ़ाने वाली, थी कह तु-स्त्री कथा का, विवज्जए-त्याग करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य में निरत भिक्षु मन को आह्लादकारी तथा काम राग में वृद्धि करने वाली स्त्रीकथा का विवर्जन-विशेष रूप से परित्याग करे।

3 तृतीय गुप्ति स्त्री के साथ एकासन वार्तालाप एव अति ससर्ग का निषेध

मूल गाथा- सम च संथव थीहिं, संकह च अभिक्खण।
बंभचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए॥3॥

संस्कृत छाया- साम च सस्तव स्त्रीभि, सकथा चाभीक्ष्णम्।
ब्रह्मचर्यरतो भिक्षु, नित्यश परिवर्जयेत्॥3॥

अन्वयार्थ-बंभचेररओ-ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू-भिक्षु, थीहिं-स्त्रियों से, संथवं-सस्तव (अति परिचय) च और, अभिक्खण-बार-बार, सकह-साथ बैठकर कथा करने का, णिच्चसो-सदैव, परिवज्जए-त्याग करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य साधना मे रत भिक्षु स्त्रियो के साथ अति ससर्ग तथा उनके साथ अधिक वार्तालाप का सदैव परित्याग करे।

4 चतुर्थ गुप्ति अग प्रत्यग प्रेक्षण निषेध

मूल गाथा- अगपच्चगसठाण, चारु ल्लवियपेहिय।
बंभचेररओ थीण, चक्खुगिज्झं विवज्जए॥4॥

संस्कृत छाया- अगप्रत्यगसस्थान, चारूल्लपितप्रेक्षितम्।
ब्रह्मचर्यरत स्त्रीणा, चक्षुर्ग्राह्य विवर्जयेत्॥4॥

अन्वयार्थ-बंभचेररओ-ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू-भिक्षु, चक्खुगिज्झ-चक्षुइन्द्रिय से ग्रहण, थीणं-स्त्रियों के, अंग-मस्तकादि अग, पच्चंग-स्तनादि प्रत्यग एव, संठाण-कटि आदि सस्थान, चारु-सुन्दर ल्लविय-सभाषण, पेहियं-तथा कटाक्ष को देखने का, विवज्जए-त्याग करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य मे निमग्न भिक्षु साधक चक्षु इन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के अग प्रत्यग, सस्थान-आकार, बोलने की मनोहर मुद्रा तथा कटाक्ष आदि को देखने का परित्याग करे।

5 पंचम गुप्ति स्त्री के वासना वर्द्धक शब्दादि श्रवण निषेध

मूल गाथा- कूइय रुइय गीयं, हसिय थणियकदिय।
बंभचेररओ थीणं, सोयगिज्झ विवज्जए॥5॥

संस्कृत छाया- कूजित रुदित गीत, हसित स्तनितक्रन्दितम्।
ब्रह्मचर्य रत स्त्रीणा, श्रोत्रग्राह्य विवर्जयेत्॥5॥

अन्वयार्थ-बंभचेरओ-ब्रह्मचर्य मे रत साधु, सोयगिज्झ-श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य, थीण-स्त्रियो के, कूइय-कुजन, रूइय-रुदन, गीय-गीत, हसिय-हास्य, थणिय-गर्जन और, कंदिय-क्रन्दन के शब्द, विवज्जए-(सुनने का) त्याग करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य म रत साधु श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत स्त्रियो के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन एव क्रन्दन नहीं सुने।

6 छठी गुप्ति पूर्वानुभूत भोगो के स्मरण का निषेध

मूल गाथा- हास किड्ड रइ दप्प, सहसाऽवित्तासियाणि य।
बम्भचेररओ थीण, णाणुचिंते कयाइवि॥६॥

सस्कृत छाया- हास्य क्रीडा रति दर्प, सहसापि त्रासितानि च।
ब्रह्मचर्यरत स्त्रीणा, नानुचिन्तयेत् कदापि च॥६॥

अन्वयार्थ-बंभचेररओ-ब्रह्मचर्य मे रत भिक्षु, (प्रव्रजित होने से पूर्व अनुभूत) हास-हास्य, किड्ड-क्रीडा, रइ-रति, दप्प-दर्प (अभिमान), य-और, सहसा-आकस्मिक, अवित्तासियाणि-अवत्रासित-त्रास का, कयाइवि-कदापि, णाणुचिंते-अनुचिन्तन-स्मरण न करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य-परायण भिक्षु दीक्षा से पूर्व जीवन मे स्त्रियो के साथ अनुभूत हास्य, क्रीडा, रति अभिमान, सहसा-आकस्मिक सत्रास का कदापि अनुस्मरण नहीं करे।

7 सप्तम गुप्ति विकार वर्द्धक आहार निषेध

मूल गाथा- पणीय भत्तपाण तु, खिप्पं मयविवड्ढणं।
बम्भचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए॥७॥

सस्कृत छाया- प्रणीत भक्तपान तु, क्षिप्र मदविवर्धनम्।
ब्रह्मचर्यरतो भिक्षु, नित्यश परिवर्जयेत्॥७॥

अन्वयार्थ-बंभचेररओ-ब्रह्मचर्य म रत, भिक्खू-भिक्षु, खिप्प-शीघ्र ही, मय विवड्ढण-मद (काम वासना) बढाने वाले, पणीय-प्रणीत-पौष्टिक, भत्तपाण-भक्त पान का, तु-तो, णिच्चसो-सदैव, परिवज्जए-त्याग करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य परायण साधु काम वासना को शीघ्र बढाने वाले प्रणीत भोजन पान का सदैव परित्याग करे।

8 आठवीं गुप्ति - मात्रा से अधिक आहार का निषेध

मूल गाथा- धम्मलद्ध मिय काले, जत्तत्थं पणिहाणव।
णाइमत्त तु भुंजेज्जा, बम्भचेररओ सया॥८॥

सस्कृत छाया- धर्मलब्ध मित काले, यात्रार्थं प्रणिधानवान्।
नाऽतिमात्र तु भुञ्जीत, ब्रह्मचर्यरत सदा॥८॥

अन्वयार्थ-बभचेरओ-ब्रह्मचर्य मे रत साधु, पणिहाणव-प्रणिधानवान् (स्थिर चित्त) होकर, जत्तत्थं-संयम यात्रा के लिये, काले-उचित समय मे, धम्मलद्ध-धर्म मर्यादानुसार प्राप्त, मिय-परिमित, भुंजेज्जा-भोजन करे, तु किन्तु, णाइमत्त-मात्रा से अधिक आहार न करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु चित की स्थिरता के लिये, सयमी जीवन की यात्रा के लिये उचित काल में धर्म-मर्यादानुसार प्राप्त भोजन परिमित मात्रा मे करे, परिमाण से अधिक भोजन नहीं करे।

9 नौवीं गुप्ति विभूषा परिवर्जन

मूल गाथा- विभूस परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमडण।
बम्भचेररओ भिक्खू, सिगारत्थ ण धारए॥९॥

सस्कृत छाया- विभूषा परिवर्जयेत्, शरीरपरिमण्डनम्।
ब्रह्मचर्यरतो भिक्षु, श्रृंगारार्थं न धारयेत्॥९॥

अन्वयार्थ-बभचेरओ-ब्रह्मचर्य में रत, भिक्खू-भिक्षु, विभूस-विभूषा का, परिवज्जेज्जा-सर्वथा त्याग करे, सिगारत्थ-श्रृगार के लिये, सरीर परिमडण-शरीर का मण्डन (साज सज्जा) श्रृगारार्थ, ण धारए-धारण न करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य मे रमण करने वाला भिक्षु विभूषा का परित्याग करे। श्रृगार हेतु शरीर की साज सज्जा या किसी प्रकार का मडन न करे।

10 दशवीं गुप्ति शब्दादि मे आसक्ति का निषेध ब्रह्मचर्य गुप्ति का कोट-

मूल गाथा- सद्दे रुवे य गधे य, रसे फासे तहेव य।
पचविहे कामगुणे, णिच्चसो परिवज्जए॥१०॥

सस्कृत छाया- शब्दान् रूपाश्च गन्धाश्च, रसान् स्पर्शांस्तथैव च।
पञ्चविधान् कामगुणान्, नित्यशः परिवर्जयेत्॥१०॥

अन्वयार्थ-सद्दे-शब्द, रूवे-रूप, य-और, गधे य-गन्ध तथा, रसे-रस, तहेव य-तथा, फासे-स्पर्श (इन), पंचविहे-पाच प्रकार के, कामगुणे-काम गुणो का, णिच्चसो-सदा के लिए, परिवज्जए-त्याग करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचारी शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पाच प्रकार के काम गुणों का सर्वथा सदा के लिए त्याग करे।

11 ब्रह्मचर्य समाधि भंग के कारण

मूल गाथा- आलओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा।
सथवो चेव णारीणं, तासि इदियदरिसण॥११॥

सस्कृत छाया- आलयः स्त्रीजनाकीर्णः स्त्रीकथा च मनोरमा।
सस्तवश्चैव नारीणा तासामिन्द्रियदर्शनम्॥११॥

अन्वयार्थ-थीजणाइण्णो-स्त्री जन से आकीर्ण, आलओ-स्थान, य-और, मणोरमा-मनोरम, थीकहा-स्त्री कथा, चेव-इसी प्रकार, णारीण-स्त्रियो का, सथव-अति परिचय, तासि-उनकी, इदिय दरिसण-इन्द्रियो का दर्शन।

भावानुवाद-1 स्त्रियो से आकीर्ण स्थान।

2 मनोरम स्त्री कथा।

3 स्त्रियो का परिचय।

4 उनकी इन्द्रियो (अगो) को देखना।

12 मोहोत्पादक शब्दादि का विषय वर्णन

मूल गाथा- कूइय रुइय गीय, हासभुत्तासियाणि य।
पणीय भत्तपाण च, अइमाय पाणभोयण ॥१२॥

सस्कृत छाया- कूजित रुदित गीत, हास्यभुक्तासितानि च।
प्रणीत भक्तपान च, अतिमात्र पानभोजनम् ॥१२॥

अन्वयार्थ-(उनके) कूइय-कूजन, रुइय-रुदन, गीय-गीत, हास-हास्य (शब्दो का श्रवण) य-और, भुत्तासियाणि-भुक्तभोगो और सहावस्थान का स्मरण, च-तथा, पणीय-प्रणीत (पौष्टिक), भत्तपाण-भक्त पान, (और) अइमाय-मात्रा से अधिक, पाण भोयण-भोजन पान का सेवन।

भावानुवाद-5 उनके कूजन रोदन गीत और हास्ययुक्त शब्दो का श्रवण।

6 पूर्व भुक्त भोग एव सहावस्थान का स्मरण।

7 प्रणीत (गरिष्ठ) भोजन पान।

8 मात्रा से अधिक भोजन पान।

13 आत्म गवेषी के लिए कामभोग तालपुट विष के समान-

मूल गाथा- गत्तभूसणमिट्ठ च, कामभोगा य दुज्जया।
णरस्सत्तगवेसिस्स, विस तालउड जहा ॥१३॥

सस्कृत छाया- गात्रभूषणमिष्ट च, कामभोगाश्च दुर्जया।
नरस्यात्मगवेषिण, विष तालपुट यथा ॥१३॥

अन्वयार्थ-च-तथा, गत्त भूसण-गात्र (शरीर) को विभूषित करने की, इट्ठ-इच्छा, य-और दुज्जया-दुर्जय कामभोगा-कामभोग, (ये दस), अत्त गवेसिस्स-आत्म गवेषक, णरस्स-मनुष्य के लिए तालउड-ताल पुट विस-विष के, जहा-जैसे (समान) है।

भावानुवाद-9 शरीर सज्जा की कामना और

10 दुर्जय काम भोग (शब्दादि विषयो की आसक्ति), ये दस स्थान आत्म-गवेषक मनुष्य के लिए तालपुट विष के समान हैं।

14 ब्रह्मचर्य साधक को शका स्थानो का परित्याग करना उचित-

मूल गाथा- दुज्जए कामभोगे य, णिच्चसो परिवज्जए।
सकाठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणव ॥१४॥

सस्कृत छाया- दुर्जयान् कामभोगाश्च, नित्यश परिवर्जयेत्।
शकास्थानानि सर्वाणि, वर्जयेत् प्रणिधानवान् ॥१४॥

अन्वयार्थ-(अत) पणिहाणवं-स्थिर चित्त वाला मुनि, दुज्जए-दुर्जय, कामभोगे-काम भोगों का, णिच्चसो सदैव, परिवज्जए-त्याग करे, य-और, सव्वाणि-सभी प्रकार के, सकाठाणाणि-शका स्थानों से, वज्जेज्जा दूर रहे।

भावानुवाद-अत एकाग्रचित्त मुनि दुर्जय कामभोगो का सदैव परित्याग करे तथा सभी प्रकार के शका स्थानों का वजन करे, उनसे दूर रहे।

15 ब्रह्मचर्य में समाहित भिक्षु का कर्तव्य-

मूल गाथा- धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही।
धम्मारामे रए दते, बम्भचेरसमाहिए ॥१५॥

सस्कृत छाया- धर्मारामे चरेद् भिक्षु , धृतिमान् धर्मसारथि ।
धर्मारामे रतो दान्त ब्रह्मचर्यसमाहित ॥१५॥

अन्वयार्थ-बभचेर-ब्रह्मचर्य मे, समाहिए-सुसमाहित, (समाधिमान) भिक्खू-भिक्षु, धिइम-धैर्यवान, धम्मसारही धर्म रथ का सारथी तथा, धम्मारामे रए-धर्म रूपी उद्यान मे रत एव, दंते-दान्त (इन्द्रियो का दमन करने वाला) होकर, धम्मारामे-धर्म के आराम (उद्यान) में, चरे-विचरण करे।

भावानुवाद-ब्रह्मचर्य में सुसमाहित मुनि धृतिमान्, धर्मरथ का सारथी, धर्म रूपी आराम में रत एव दान्त होकर धर्म के आराम (उद्यान) में विचरण करता है।

16 ब्रह्मचर्य की परम महिमा

मूल गाथा- देवदाणवगधव्वा, जक्खरक्खसकिण्णरा।
बम्भयारिं णमसति, दुक्करं जे करंति त ॥१६॥

सस्कृत छाया- देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नरा ।
ब्रह्मचारिण नमस्कुर्वन्ति, दुष्कर य करोति तत् ॥१६॥

अन्वयार्थ-जे-जो, दुक्करं-दुष्कर (ब्रह्मचर्य पालन), करंति-करते हैं, तं-उस, बभयारिं-ब्रह्मचारी को, देव देव

दाणव-दानव, गन्धव्वा-गन्धर्व, जक्ख-यक्ष, रक्खस-राक्षस तथा, किण्णरा-किन्नर (सभी), णमसति-नमस्कार करते हैं।

भावानुवाद-जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर सभी नमस्कार करते हैं।

17 ब्रह्मचर्य धर्म की फल श्रुति उपसहार-

मूल गाथा- एस धम्मे धुवे णिच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झति चाणेण, सिज्झिस्सति तहावरे ॥१७॥

त्ति बेमि।

इति बम्भचेरसमाहिठाणा सोलसम अज्झयण समत्तं ॥१६॥

सस्कृत छाया- एष धर्मो ध्रुवो नित्य, शाश्वतो जिनदेशित।
सिद्धा सिध्यन्ति चानेन, सेत्स्यन्ति तथा परे ॥१७।

इति ब्रवीमि।

इति ब्रह्मचर्यसमाधिस्थानमध्ययन समाप्तम् ॥१६॥

अन्वयार्थ-एस-यह, धम्मे-ब्रह्मचर्य धर्म, धुवे-ध्रुव है, णिच्चे-नित्य है, सासए-शाश्वत है, और, जिण देसिए-जिनोपदिष्ट है, च-और, अणेण-(इस धर्म के द्वारा) अनेक साधक, सिद्धा-सिद्ध हुए हैं, सिज्झंति-वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं, तहा-तथा, अवरे-दूसरे अनेक, सिज्झिस्सति-भविष्य में सिद्ध होगे।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदेशित है, इसकी साधना से अनेक साधक सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य मे भी अनेक सिद्ध होगे।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य समाधि नामक सोलहवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

पाप श्रमणीय - सप्तदश अध्ययन

उत्थानिका

श्रमण जीवन की साधना को स्वीकार कर लेना जितना सहज है उसकी यथा तथ्य परिपालना उतनी ही कठिन है। यही कारण है कि अनेक साधक भावावेश में साधु बन जाते हैं, किन्तु जब साधु जीवन की कठोर आत्मसंयमपरक मर्यादाओं का, उसकी विधि-निषेधात्मक व्रतावलियों का उनसे सम्यक् परिपालन नहीं होता है तो वे सुविधावादी एव सुविधाभोगी बनकर साधना सरिता को तटबन्धों को तोडकर स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। ऐसे ही पथभ्रष्ट साधको को प्रभु महावीर ने पाप-श्रमण की सज्ञा प्रदान की है।

बहुत बार उत्साह, उमग और आन्तरिक वैराग्य वृत्ति के साथ दीक्षित होने के उपरान्त भी, दीक्षा लेने के कुछ ही समय पश्चात् वह साधक इस भाव से भर जाता है कि अब मुझे ज्ञान-ध्यान-तप-त्याग की क्या आवश्यकता है, अब तो मैं मुनि बन ही गया हूं। मुझे सहज ही लोगो की पूजा प्राप्त हो रही है। अब स्वाध्याय आदि क्रियाओ या अन्य श्रम की क्या आवश्यकता है? और इसी आधार पर वह निष्कर्म बनकर आलसी पेटू बन जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से सिंह के समान सयम ग्रहण करके श्रृगाल की तरह पालन करने वाला हो जाता है। उसे भी प्रभु महावीर पाप-श्रमण कहते हैं।

ऐसे ही पाप श्रमण की वृत्तिया-प्रवृत्तिया का चित्रण प्रस्तुत अध्ययन मे किया गया है जो सयम साधना के अपने मूल लक्ष्य को भूलकर विवेकहीन जीवन जीने का आदी हो जाता है।

पाप श्रमण की अशोभन वृत्तियो में पहली वृत्ति बताई गई है कि वह सुखशीलिया बन कर यह सोचने लगता है कि मुझे आहार, विहार, निवास स्थान और सत्कार सम्मान आदि सभी कुछ वेश परिवर्तन मात्र से ही उपलब्ध हो रहे हैं तो अब अध्ययन-स्वाध्याय आदि की क्या आवश्यकता है और इसी आधार पर वह आगमों के स्वाध्याय से जी चुराता है। फलत उसके आगे के आत्म-विकास के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं। यही नहीं अपनी प्रमत्त वृत्ति के कारण वह पतनोन्मुख होकर साधना के पथ से भ्रष्ट हो जाता है। अनेक दुर्गुण उसमे प्रवेश पा लेते हैं।

वह दम्भी, क्रोधी, मायावी, अहंकारी कृतघ्न, वाचाल, रसलोलुप, अविनयी, क्लेशी, इन्द्रियों का दास तपादि से विरत, असविभागी, अतिभोगी, बार-बार भोजन करने वाला, पुन पुन गण बदलने वाला, गृहस्थ के कार्यों में सलग्न नैमित्तिक, पचकुशीलयुक्त शिथिलाचारी गुरु अथवा आचार्य का प्रत्यनीक एव उनके प्रतिकूल चेष्टा करने वाला हो जाता है।

वह महाव्रतों की उपेक्षा करके हिंसादि प्रवृत्तियो में भाग लेने वाला बन जाता है। पाच समिति की पालना में प्रमत्त होकर अपने भण्डोपकरणों को अस्त-व्यस्त रखता है, यथासमय प्रतिलेखन नहीं करता है और करता भी है

ता उपयोग शून्य होकर लापरवाही से करता है, सयमी जीवन की क्रिया विधियो मे विवेक-यतना का पालन नहीं करता है। अपने शारीरिक अगो से कुचेष्टाए करता रहता है। मर्यादाहीन होकर आचार्य, उपाध्याय एव स्थविर आदि पूज्य पुरुषो की अवमानना करता हुआ स्वच्छन्दाचारी बन जाता है। वह अपने महान् उपकारी गुरु की भी निदा करने से नहीं चुकता है। ऐसे निन्दनीय आचरणो मे सलग्न साधु को पाप श्रमण अर्थात् अठारह पापो का सेवन करने वाला कहा गया है।

वर्तमान श्रमण परम्परा में आयी शिथिलता के परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत अध्ययन एक दिग्बोधक सिद्ध हो सकता है। शास्त्रकारो ने पाप श्रमण की व्याख्या करते हुए अतिम गाथा मे सावधानी भी दिला दी है कि जो साधक इन सभी प्रवृत्तियो से बचता है वह श्रेष्ठ श्रमण की कोटि मे आता है। इस अध्ययन म श्रेष्ठ श्रमण बनने की शिक्षा दी गई है।

❑❑❑

पाप श्रमणीय - सप्तदश अध्ययन

सूक्ति सारांश

मर्यादा हीन श्रमण-पाप श्रमण।
श्रमण-साधक जब गृहीत साधना को भूलकर, विराधना में चला जाता है तो वह अपने विशेषण के पूर्व "पाप" को संयुक्त करवा लेता है।

जिस लक्ष्य, उत्साह एवं संकल्प से संयम स्वीकार किया, उसी दृढ़ता से पालन करो।
अत्यन्त उत्साह एवं विनय पूर्वक साधुत्व स्वीकार करने के बाद स्वच्छन्द-सुख-शैलिया बन जाने वाला साधक पाप श्रमण कहलाता है।

खा-पीकर सो जाना श्रमणत्व को कलंकित करना है।
शय्या, प्रावरण एवं खाद्य सामग्री अच्छी से अच्छी उपलब्ध है, फिर तप-साधना से क्या प्रयोजन? ज्ञानार्जन किस लिए? ऐसा चिन्तन पाप श्रमण ही कर सकता है।

अविनय-प्रत्यनीकता पाप श्रमण के लक्षण है।
श्रुत प्रदाता आचार्य-उपाध्याय का अनादर साधक को पाप श्रमण की कोटि में ले जाता है।

यथा कथन-आचरण होना साधकत्व है।
संयम विपरीत प्रवृत्ति करते हुए भी स्वयं को संयमी घोषित करना दुर्लभ बोधित्व का कारण है।

मर्यादाओं का परिपालन-श्रमणत्व का आराधन।
प्रतिलेखना-प्रमार्जन आदि संयमीय मर्यादाओं की उपेक्षा श्रमणत्व को दूषित कर देती है।

सरलता, विनय संविभागित्व साधुत्व के परिचायक हैं।
मायाचार का सेवन, वाचालता, अहंकार अनिग्रह एवं असंविभागित्व साधना से पतित करने वाले हैं।

सत्शीलता साधुत्व है, साधु वेश में कुशीलता पाप श्रमणत्व है।
आहार-रसन एवं गण के प्रति अविवेक पाप श्रमणत्व के पोषक हैं।

इन्द्रिय संयम एवं विनयाराधन साधुत्व के परिचायक हैं।
सूर्योदय से सूर्यास्त तक खाते रहना एवं गुरु द्वारा प्रेरित करने पर सामने बोलना साधुत्व से क्या सामान्य शिष्टाचार के भी विरुद्ध है।

अह पावसमणिज्जं सत्तदहं अज्झयणं

अथ पापश्रमणीयं सप्तदशमध्ययनम्

पाप श्रमणीय

1 पाप-श्रमण बनने का सूत्रपात

मूल गाथा-

जे केइ उ पव्वइए णियंठे,
धम्मं सुणित्ता विणओववण्णे।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं,
विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु ॥1॥

संस्कृत छाया-

यः कश्चित्तु प्रव्रजितो निर्ग्रन्थः,
धर्मं श्रुत्वा विनयोपपन्नः।
सुदुर्लभं लब्ध्वा बोधिलाभं,
विहरेत् पश्चाच्च यथासुखं तु ॥१॥

अन्वयार्थ-जे-जो केइ-कोई, धम्मं-धर्म को, सुणित्ता-सुनकर, सुदुल्लहं-अत्यन्त दुर्लभ, बोहिलाभ-बोधिलाभ को लहिउं-प्राप्त करके उ-(पहले) तो विणओववण्णे-विनय सम्पन्न होकर णियंठे-निर्ग्रन्थ रूप में, पव्वइए-प्रव्रजित हो जाता है तु-किन्तु पच्छा य-बाद में, जहा सुहं-(स्वच्छन्दता पूर्वक) जैसे सुख हो विहरेज्ज-वैसे विचरता है।

भावानुवाद-जो कोई श्रुत-चारित्र रूप धर्म का श्रवण कर अत्यन्त दुर्लभ बोधिलाभ-सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त करके पहले तो विनय-आचार सम्पन्न होकर निर्ग्रन्थ रूप में दीक्षित हो जाता है किन्तु पीछे से-बाद में सुख-स्पृहु होकर स्वेच्छाचारी बनकर विचरता है।

2 पाप श्रमण के लक्षण एवं श्रुत का विषय वर्णन

मूल गाथा-

सिज्जा दढा पाउरणं मि अत्थि,
उप्पज्जई भोत्तुं तहेव पाउं।
जाणामि जं वट्टइ आउसुत्ति,
किं णाम काहामि सुएण भंते ॥2॥

संस्कृत छाया- शय्या दृढा प्रावरणं मेऽस्ति,
उत्पद्यते भोक्तुं तथैव पातुम्।
जानामि यद्वर्तते आयुष्मन्निति,
किं नाम करिष्यामि श्रुतेन भगवन्॥२॥

अन्वयार्थ-(स्वच्छन्द विहारी कहता है) आउसे-हे आयुष्मन्!, सिज्जा-शय्या या वसति (धर्मस्थान) दृढ़ा [illegible] है, पावरण-वस्त्र (तन ढकने हेतु), मि-मेरे पास, अत्थि-है, तहेव-तथा, भोत्तु-खाने एवं, पाउं-पीने [illegible] उप्पज्जइ-मिल जाता है, ज-जो, वट्टइ-हो रहा है, उसे, जाणामि-मैं जानता हूँ, ति-इसलिए, भंते [illegible] सुएण-श्रुतज्ञान, (शास्त्रों के पठन) से, किं णाम-मैं क्या, काहामि-करूंगा।

भावानुवाद-(आचार्य अथवा गुरु के द्वारा आगम अध्ययन की प्रेरणा मिलने पर वह उद्दण्डता पूर्वक कहता है) "आयुष्मान्! रहने के लिये स्थिर अच्छा स्थान मिला है। मेरे पास प्रावरण-कपड़े हैं ही। भोज्य पदार्थ भी अच्छे अच्छे स्वादिष्ट मिल ही जाते हैं तथा जो कुछ हो रहा है, उसे मैं जानता हूँ। भगवन्! फिर मैं आगमाध्ययन [illegible] करूंगा।"

3 खा-पीकर सुख से शयनशील पापश्रमण

मूल गाथा- जे केइ उ पव्वइए, णिद्दासीले पगामसो।
भुच्चा पिच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चई॥3॥

संस्कृत छाया- यः कश्चित् तु प्रव्रजितः, निद्राशीलः प्रकामशः।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं स्वपिति, पापश्रमण इत्युच्यते॥३॥

अन्वयार्थ-जे-जो, केइ उ-कोई, पव्वइए-प्रव्रजित होकर, पगामसो-अत्यधिक, णिद्दासील-निद्राशील [illegible] भुच्चा पिच्चा-खा पीकर, सुहं-सुख से, सुवइ-सो जाता है, (वह) पाव समण-पाप श्रमण, त्ति [illegible] वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो कोई प्रव्रजित होकर निद्राशील रहता है-अत्यधिक नींद लेता है। अनुकूल स्वादिष्ट [illegible] पीकर आराम से सो जाता है-दिन में भी सोया रहता है, वह 'पापश्रमण' कहलाता है।

4 आचार्यादि का निन्दक - पाप श्रमण

मूल गाथा- आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिंसई बाले, पावसमणे त्ति वुच्चई॥4॥

संस्कृत छाया- आचार्योपाध्यायैः, श्रुतं विनयं च ग्राहितः।
तानेव खिंसति बालः, पापश्रमण इत्युच्यते॥४॥

अन्वयार्थ-जि-आयरिय-आचार्यों और उवज्झाएहिं-उपाध्यायों से सुयं-श्रुत च और विणयं-विनय (आचार) गाहिए-ग्रहण किया है, ते चेव-उन्हीं की खिंसइ-निन्दा करता है (वह), बाले [illegible]

श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जिन आचार्य एव उपाध्यायो से श्रुत और विनय (विचार और आचार) ग्रहण किया, उन्हीं की निदा करता है, वह याल अज्ञानी 'पाप श्रमण' कहलाता है।

5 आचार्यादि के प्रतिकूल-अहकारी

मूल गाथा- **आयरियउवज्झायाण, सम्म णो पडितप्पइ।**
अप्पडिपूयए थद्धे, पावसमणे ति वुच्चई॥५॥

सस्कृत छाया- **आचार्योपाध्यायाना, सम्यग् न परितृप्यति।**
अप्रतिपूजक स्तब्ध , पापश्रमण इत्युच्यते॥५॥

अन्वयार्थ-जो आयरिय-आचार्य और, उवज्झायाण-उपाध्याया की, सम्म-सम्यक् प्रकार से णो पडितप्पइ-चिन्ता (सेवादि की) नहीं करता, अप्पडिपूयए-वह अप्रतिपूजक (वडों की पूजा नहीं करता), थद्धे-अभिमानी, पावसमणे-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो आचार्य एव उपाध्यायों के सेवादि की सम्यक् प्रकार से चिन्ता नहीं करता है, अपितु उनका अनादर करता है, जो ढीठ है वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

6 प्राणि-उपमर्दक यावत् सयत मानी

मूल गाथा- **सम्मद्दमाणे पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य।**
असजए सजयमण्णमाणे, पावसमणे ति वुच्चई॥६॥

सस्कृत छाया- **सम्मर्दयमान प्राणिन , बीजानि हरितानि च।**
असयत सयतमन्यमान , पापश्रमण इत्युच्यते॥६॥

अन्वयार्थ-पाणाणि-द्वीन्द्रियादि प्राणी बीयाणि-बीज, य-और, हरियाणि-हरित वनस्पति का, सम्मद्दमाण-सम्मर्दन करने वाला (तथा), असंजए-असयमी होते हुए भी (स्वय को), सजय मण्णमाण-सयमी मानने वाला पावसमण-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो प्राणी (द्वीन्द्रियादि जीवो), बीजों और वनस्पति का सम्मर्दन करता है तथा जो असयमी होते हुए भी अपने आपको सयमी मानता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

7 अप्रमार्जित सस्तारकादि पर सोने बैठने वाला

मूल गाथा- **सथार फलग पीढ, णिसेज्ज पायकम्बल।**
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे ति वुच्चई॥७॥

सस्कृत छाया- **सस्तार फलक पीठ, निषद्या पादकम्बलम्।**
अप्रमृज्यारोहति, पापश्रमण इत्युच्यते॥७॥

अन्वयार्थ-जो सथार-सस्तारक (बिछौना), फलग-फलक (पाट), पीढ-पीठ (आसन), [illegible] पायकंबल-पाद पूछने का, अप्पमज्जिय-प्रमार्जन किये बिना ही, आरुहई-आरोहण करता है (उन पर बैठता है), वह, पाव समणे-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो सस्तारक-बिछौना, फलक-पाट पीठ-चौकी (आसन) निषद्या-स्वाध्याय स्थान और [illegible] पाद प्रौंछन का प्रमार्जन किये बिना ही उन पर बैठता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

8 अत्यधिक द्रुतगामी, प्रमादी यावत् क्रोधी

मूल गाथा- दवदवस्स चरई, पमत्ते य अभिक्खणं।
उल्लंघणे य चण्डे य, पावसमणे त्ति वुच्चई॥8॥

संस्कृत छाया- द्रुत चरति, प्रमत्तश्चाभीक्ष्णम्।
उल्लंघनश्च चण्डश्च, पापश्रमण इत्युच्यते॥8॥

अन्वयार्थ-जो, दवदवस्स-जल्दी-जल्दी (दव-दव आवाज करता हुआ), चरई-चलता है, य तथा, अभिक्खणं-बार-बार, पमत्ते-प्रमाद करता हुआ, उल्लंघणे य-उल्लंघन (साधु मर्यादा को) करता है, चंडे य-और क्रोध से युक्त है, (वह) पावसमणे-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो अतिशीघ्रता पूर्वक दव-दव करता हुआ चलता है, जो बार-बार प्रमादाचरण करता रहता है, जो श्रमण-मर्यादाओं का उल्लंघन करता है और जो अतिक्रोधी है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

9 प्रतिलेखन में प्रमत्त होकर प्रत्युपेक्षण करना

मूल गाथा- पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पायकम्बलं।
पडिलेहा अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई॥9॥

संस्कृत छाया- प्रतिलेखयति प्रमत्त, अपोज्झति पादकम्बलम्।
प्रतिलेखनायामनायुक्त, पापश्रमण इत्युच्यते॥9॥

अन्वयार्थ-जो, पमत्ते-प्रमत्त होकर, पडिलेहइ-प्रतिलेखना करता है, पायकंबलं-पात्र और कम्बल को, अवउज्झइ-जहां तहां डाल देता है, पडिलेहा-प्रतिलेखन में, अणाउत्ते-अनायुक्त है, (वह), पावसमणे-पाप श्रमण त्ति इस प्रकार वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो प्रमाद पूर्वक असावधानी से प्रतिलेखन करता है, जो पात्र एव कम्बल (आदि) को जहां तहां डाल देता है, जो प्रतिलेखन में अनायुक्त-उपयोगशून्य रहता है वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

10 अनायुक्त एव गुरुजन अपमानकर्ता

मूल गाथा- पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु णिसामिया।
गुरुपरिभावए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चई॥10॥

सस्कृत छाया- प्रतिलेखयति प्रमत्त , स किञ्चित्खलु निशम्य।
गुरुपरिभावको नित्य, पाप श्रमण इत्युच्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ-पमत्ते-जो प्रमत्त होकर, पडिलेहेइ-प्रतिलेखन करता है, (और) किंचि-किंचित्, हु-भी, णिसामिया-सुन कर, णिच्च-सदा, गुरु-गुरुजनो का, परिभावए-अपमान करता है, (वह) पावसमणे-पाप श्रमण त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो इधर-उधर की चर्चा सुनता हुआ प्रमाद पूर्वक प्रतिलेखन करता है, सावधानी दिलाने पर गुरु की अवहेलना करता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

11 अतिभाषी यावत् प्रीतिहीन

मूल गाथा- बहुमाई पमुहरे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अवियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई॥११॥

सस्कृत छाया- बहुमायी प्रमुखर , स्तब्धो लुब्धोऽनिग्रह ।
असंविभाग्यप्रीतिक , पापश्रमण इत्युच्यते ॥११॥

अन्वयार्थ-बहुमाई-अत्यन्त मायायुक्त, पमुहरे-अतिमुखर (वाचाल) थद्धे-स्तब्ध (अहकारी), लुद्धे-लुब्ध (लोभी) अणिग्गहे-इन्द्रियो को वश न करने वाला, असंविभागी-समविभाग न करने वाला, अवियत्ते-प्रीति न करने वाला पावसमणे-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो अति मायाचरण करता है जो वाचाल ढीठ और लोभी है, जो इन्द्रिय और मन का निग्रह नहीं करता है, जो प्राप्त वस्तुओ का परस्पर सवितरण नहीं करता है, जिसके मन में गुरु के प्रति प्रेम नहीं है वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

12 शान्त विवाद को पुन उत्पन्न करने वाला कलहप्रिय

मूल गाथा- विवाय च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपण्णहा।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई॥१२॥

सस्कृत छाया- विवाद चोदीरयति, अधर्म आत्मप्रज्ञाहा।
व्युद्ग्रहे कलहे रक्त , पापश्रमण इत्युच्यते ॥१२॥

अन्वयार्थ-(जो शान्त हुए) विवादं-विवाद उदीरेइ-उदीरता (भडकाता) है, अहम्मे-अधर्मी (धर्माचरण रहित), य-और, अत्तपण्णहा-आत्म-प्रज्ञा का हनन करता है, वुग्गहे-युद्ध में (कदाग्रह) तथा, कलहे-कलह में रत्ते-रत रहता है, (वह) पावसमणे-पाप श्रमण त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो शान्त हुए विवाद को पुन भडकाता है, अधर्मी, आत्म प्रज्ञा का अथवा अपनी बुद्धि का हनन करता है, जो कदाग्रह एव कलह में लीन रहता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है

13 अस्थिर आसन वाला-आसन में असावधान

मूल गाथा-
अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ तत्थ णिसीयई।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥13॥

संस्कृत छाया-
अस्थिरासनः कुकुच्यः, यत्र तत्र निषीदति।
आसनेऽनायुक्तः, पापश्रमण इत्युच्यते ॥13॥

अन्वयार्थ-अथिरासणे-अस्थिरासन, कुक्कुइए-कुचेष्टा युक्त, (जो) जत्थ-जहाँ, तत्थ-तहाँ णिसीयइ-बैठ जाता है, आसणम्मि-आसन में, अणाउत्ते-अनायुक्त (विवेक रहित) होता है, पावसमणे-पाप श्रमण त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो अस्थिर आसन वाला अर्थात् स्थिर आसन से नहीं बैठता है, जो हाथ-पैर आदि अंगों से भण्ड कुचेष्टाएं करता है, जो जहां-कहीं (सचित्तादि पर भी) बैठ जाता है, तथा जो आसन पर बैठने में भी विवेक नहीं रखता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

14 पैरों का प्रमार्जन किये बिना सोने वाला-संस्तारक में असावधान

मूल गाथा-
ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं ण पडिलेहइ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥14॥

संस्कृत छाया-
सरजस्कपादः स्वपिति, शय्यां न प्रतिलेखयति।
संस्तारकेऽनायुक्तः, पापश्रमण इत्युच्यते ॥14॥

अन्वयार्थ-(जो) ससरक्ख-रज से भरे हुए, पाए-पैरों से, सुवई-सो जाता है, सेज्जं-शय्या को ण पडिलेहइ-प्रतिलेखन नहीं करता है, संथारए-और संस्तारक (बिछौने) पर, अणाउत्ते-असावधान होता है (वह) पावसमणे-पापश्रमण, त्ति-इस प्रकार वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो सचित्त रज (धूलि) से भरे हुए पैरों से सो जाता है, जो शय्या का प्रतिलेखन-प्रमार्जन नहीं करता है, जो संस्तारक-बिछौने के विषय में असावधान रहता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

15 दुग्धादि विकृतियों का बार-बार सेवन कर्ता एवं तपस्या से विरत

मूल गाथा-
दुद्ध दही विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥15॥

संस्कृत छाया-
दुग्धदधिविकृती, आहारयत्यभीक्ष्णम्।
अरतश्च तपः कर्मणि, पापश्रमण इत्युच्यते ॥15॥

अन्वयार्थ-(जो) दुद्ध-दूध, दही-दही आदि, विगईओ-विकृतिजनक पदार्थों का, अभिक्खणं-बार-बार आहार करता है य-और, तवोकम्मे-तपश्चर्या में, अरए-अरति रखता है (वह), पावसमणे-पाप श्रमण त्ति

इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो दूध, दही आदि विकृति कारक गरिष्ठ पदार्थों का बार-बार आहार करता है, जो तप साधना मे रुचि नहीं रखता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

16 सूर्यास्त तक आहार करने वाला, प्रतिकूल-भाषी

मूल गाथा- **अत्थतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खण।**
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चई॥१६॥

सस्कृत छाया- **अस्तमयिते च सूर्ये, आहारयत्यभीक्ष्णम्।**
चोदित प्रतिचोदयति, पापश्रमण इत्युच्यते॥१६॥

अन्वयार्थ-(जो) सूरम्मि-सूर्य के, अत्थतम्मि य-अस्त होने तक, अभिक्खण-बार-बार, आहारेइ-आहार करता है, य-तथा, चोइओ-प्रेरणा देने पर, पडिचोएइ-उन्हीं पर आक्षेप करता है, (वह) पावसमणे-पापश्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक बार-बार आहार करता रहता है, खाता रहता है, जो गुरु द्वारा समझाने पर उल्टा उन्हे ही समझाने लगता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

17 आचार्य-परित्यागी, परपाषड सेवी एव गाणगणिक

मूल गाथा- **आयरियपरिच्चाई, परपासडसेवए।**
गाणगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चई॥१७॥

सस्कृत छाया- **आचार्यपरित्यागी, परपाषण्डसेवक ।**
गाणगणिको दुर्भूत , पापश्रमण इत्युच्यते॥१७॥

अन्वयार्थ-(जो) आयरिय-आचार्य का, परिच्चाई-परित्याग कर, परपासड-परपाषण्ड का, सेवए-सेवन करता है, गाण-गणिए-गाण गणिक (बार-बार गण बदलने वाला) होता है (और), दुब्भूए-निन्दित होता है (वह), पावसमणे-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो अपने महान् आचार्य को छोडकर (स्वच्छन्दता पूर्वक) पर पाषण्ड अर्थात भिन्न मतावलम्बियो की परम्परा को स्वीकार करता है, जो गाणगणिक होता है अर्थात् छह-छह माह में एक गण से दूसरे गण मे सक्रमण करता है, वह दुर्भूत-निन्दित, 'पाप श्रमण' कहलाता है।

18 स्वगृह त्यागी, पर गृहानुरागी निमित्त जीवी पाप श्रमण

मूल गाथा- **सय गेह परिच्चज्ज, परगेहसि वावरे।**
णिमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चई॥१८॥

संस्कृत छाया- स्वकीय गृह परित्यज्य, परगृहे व्याप्रियते।
निमित्तेन व्यवहरति, पापश्रमण इत्युच्यते ॥१८॥

अन्वयार्थ-(जो) सय-अपना, गेह-एक घर, परिच्चज्ज-छोडकर, पर गेहसि-अन्य गृहस्थ के घर में, वावरे-व्याप्त होता है, य-तथा (जो) णिमित्तेण-निमित्त (शुभाशुभ) बतला कर, ववहरइ-व्यवहार करता है (वह), पाव समणे-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो अपने एक घर (गृहकार्यों) को छोडकर अनगार बनने के बाद अन्य गृहस्थी के कार्यों में व्याप्त होता है-जो शुभाशुभ निमित्त बता कर धनार्जन करता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

19 स्वज्ञाति पिण्ड भोजी गृहस्थ शय्या परिभोगी

मूल गाथा- सण्णाइपिंड जेमेइ, णेच्छइ सामुदाणियं।
गिहिणिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१९॥

संस्कृत छाया- स्वज्ञातिपिण्ड भुङ्क्ते, नेच्छति सामुदानिकम्।
गृहिनिषद्या च वाहयति, पापश्रमण इत्युच्यते ॥१९॥

अन्वयार्थ-(जो) सण्णाइपिंड-अपने ज्ञातिजनो के आहार को, जेमेइ-ग्रहण करता है, सामुदाणिय-सामुदायिक भिक्षा ग्रहण करना, णेच्छइ-नहीं चाहता है, च-और, गिहि-णिसेज्ज-गृहस्थ की शय्या पर, वाहेइ-बैठता है, (वह), पावसमणे-पाप श्रमण, त्ति-इस प्रकार, वुच्चई-कहा जाता है।

भावानुवाद-जो अपने ज्ञातिजनों-पूर्व परिचितो का ही आहार-भिक्षान्न ग्रहण करता है, परन्तु सभी घरो से सामुदायिक भिक्षा ग्रहण करना नहीं चाहता है और गृहस्थ की निषद्या (पलंग-सोफा आदि) पर बैठता है, वह 'पाप श्रमण' कहलाता है।

20 पंच कुशील रत मुनिवेषी विषवत् गर्हित

मूल गाथा- एयारिसे पंचकुसीलसंवुडे,
रूवधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए,
ण से इह णेव परत्थ लोए ॥२०॥

संस्कृत छाया- एतादृश पञ्चकुशीलसंवृत,
रूपधरो मुनिप्रवराणामधोवर्ती।
अस्मिंल्लोके विषमिव गर्हित,
न स इह नैव परत्र लोके ॥२०॥

अन्वयार्थ-एयारिसे-एतादृश, पंचकुसील संवुडे-पांच कुशीलों से संवृत, रूवधरे-साधु वेष का धारक (वह), मुणिपवराण-श्रेष्ठ मुनिवरों के मध्य में, हेट्ठिमे-निम्नतम (अधोवर्ती) है, (वह) अयंसि-इस, लोए-लोक में

विसमेव-विष की तरह, गरहिए-निन्दनीय है, अत से-वह, ण इह-न तो इस लोक का रहता है, (और) णेव-न ही, परत्थलोए-परलोक का।

भावानुवाद-इस प्रकार (पाप श्रमण का आचरण करने वाला साधु) पार्श्वस्थादि पच कुशील सेवन करने वाले साधुओ के समान असवृत है। वह केवल मुनिवेश का ही धारक है। वह श्रेष्ठ मुनियो म सबसे निकृष्ट है। वह इस लोक मे विषवत् गर्हित-निन्दित है। अत वह न इस लोक का रहता है और न परलोक का।

21 पूर्वोक्त दोष त्यागी मुनि ही अमृत सम पूजित

मूल गाथा-

जे वज्जए एए सया उ दोसे,
से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
अयसि लोए अमय व पूइए,
आराहए लोगमिण तहा पर ॥२१॥

ति बेमि

इति पावसमणिज्ज सत्तदह अज्झयण समत्त ॥१७॥

सस्कृत छाया-

यो वर्जयेदेतान्सदा तु दोषान्,
स सुव्रतो भवति मुनीना मध्ये।
अस्मिल्लोकेऽमृतमिव पूजित,
आराधयति लोकमिम तथा परम ॥२१

इति ब्रवीमि

इति पाप श्रमणीय सप्तदशमध्ययन समाप्तम्

अन्वयार्थ-जे उ-जो, एए-इन, दोसे-दोषो का, सया-सदा, वज्जए-त्याग करता है, से-वह, मुणीण-मुनियों के, मज्झे-मध्य मे, सुव्वए-सुव्रत, होइ-होता है, (वह) अयसि-इस, लोए-लोक मे, अमय व-अमृत की तरह, पूइए-पूजित होता है, (वह), लोगमिण-इस लोक, तहा-तथा, पर-परलोक (दोनो) की, आराहए-आराधना कर लेता है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-जो साधक इन पूर्वोक्त दोषो का सदा के लिए परित्याग कर देता है, वह मुनियो में सुव्रती (सुसाधु) होता है। वह इस ससार मे अमृत के समान पूजित होता है। अत वह इस लोक और परलोक दोनो ही लोको की आराधना कर लेता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार सत्तरहवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

सयतीय - अष्टादश अध्ययन

उत्थानिका

प्रस्तुत अध्ययन का नाम सजतीय अथवा सयतीय है। सयति शब्द का सामान्य अर्थ होता है मन और इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने वाला साधक-मुनि। यहा यह शब्द दो अर्थ ध्वनित कर रहा है-प्रथम सयति या सजति नामक राजा के जीवन का परिवर्तन और दूसरा सयति अर्थात् मुनि के जीवन का मूक प्रभाव।

यहा एक शिकारी राजा का और उसके बाद उसके सयमी जीवन का परिचय प्रस्तुत किया गया है, जो वास्तव म एक शिकारी के जीवन परिवर्तन की दास्तान है। एक ध्यान योगी महामुनि की समता साधना के प्रभाव से क्रूर शिकारी के पूर्णत अहिसक महामुनि बनने का रोचक वर्णन है, जिसमे सहसा मुनि बने राजा सयति के विचारो की दृढता की परीक्षा भी होती है कि कहीं यह भय गर्भित वैराग्य तो नहीं है या भावावेश मे किया गया वेश परिवर्तन तो नहीं है? यह अपने ज्ञान और चारित्र में कितना परिपक्व है? घटना का सार सक्षेप निम्न है-

काम्पिल्य नगर का राजा सजय अथवा सयति एक बार आखेट-शिकार हेतु सैन्य दल के साथ निकल पडा और वह नगर से कुछ दूर केसर नामक उद्यान मे पहुच गया। सैनिक लोग वन्य मृगो को उद्यान की ओर खदेड़ने लगे और राजा उन्हें एक-एक करके अपने बाणो से धराशायी करने लगा। बेचारे हिरण-मूक पशु घायल होकर इधर-उधर भागने लगे। राजा अश्वारोही था और हिरणो को गिरते-तडपते देखकर हर्षित हो रहा था। राजा एक लता मडप की ओर आगे बढा कि उसे कुछ मरे हुए हिरणों के समीप ही एक तेजस्वी ध्यान योगी महामुनि दिखाई दिए। मुनि जी के समीप ही एक मृग घायल-सा पडा था उसके पेट मे तीर घुसा हुआ था। यह देखते ही राजा के मन म अनेक कल्पनाए दौडने लगी, हो न हो ये मृग इन महात्मा के ही हैं और मैंने इन पालतू मृगों को मार डाला। ओहो! मुझसे बडा भारी अनर्थ हो गया। ये महात्मा कुपित हो जाए तो लाखो-करोडो व्यक्तियो को जला कर क्षण भर में भस्म कर सकते हैं। राजा इतना भयभीत हो गया कि उसका रोम-रोम काप उठा। वह तुरन्त घोडे से नीचे उतरा और अत्यन्त विनम्र स्वरो में महामुनि से अपने अपराध की क्षमा मागने लगा।

मुनि तो अपने विश्व वात्सल्य-आत्मौपम्य की भावनाओं में लीन थे। उनकी तन्मयता एव तेजस्विता अनुपम थी। मुनि को मौन देखकर राजा और अधिक भयभीत हुआ कि ये मुझसे नाराज हो गए हैं। अब न जाने मेरा क्या करेंगे? और वह गिडगिडाता हुआ मुनि गर्दभाली के चरणो में नतसिर होकर उच्च स्वर मे क्षमादान की प्रार्थना करने लगा।

मुनि गर्दभाली ने अपना ध्यान खोला और भयभीत राजा को सबोधित करते हुए कहा-'राजन्! मेरी ओर से तुम अभय हो-निर्भय रहो। मैं तुम्हें अभय दान देता हू, किन्तु तुम भी तो अभय दान देना सीखो। तुम अपनी मौत से इतने

भयभीत हो तो जरा देखो इन मूक प्राणियो को। क्या इन्हे अपना जीवन प्रिय नहीं है? ये भी तो तुम से भयभीत है तुम भी इन्हे अभयदान दो। इस थोडे से जीवन और काम सुखो के लिए तुम कितनी हिसा कर रहे हो? जिन परिजनो के लिए यह हिसा कर रहे हो वे तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगे। एक धर्म ही रक्षक हो सकता है। तुम्हें परलोक मे अकेले ही जाना पडेगा और इन क्रूर कर्मों का फल तुम्हे स्वय ही भोगना पडेगा।'

गर्दभाली मुनि का यह सामान्य किन्तु हृदय स्पर्शी उपदेश सयति राजा के अन्तरग को छू गया। उसका हृदय बदल गया और वह सर्वस्व का त्याग करके मुनि बन गया। चारित्र धर्म की उत्कृष्ट आराधना मे तल्लीन हो गया।

एक बार सयति मुनि की एक क्षत्रिय मुनि से तात्त्विक चर्चा होती है, जिसमे सयति के सहसा ससार त्याग का परीक्षण भी हो जाता है और तत्त्व का विश्लेषण भी। इस रूप मे प्रस्तुत अध्ययन के पूर्वार्ध मे गर्दभाली मुनि के परिचय के द्वारा राजा सयति के हृदय परिवर्तन के प्रसग का चित्रण है, जिसमे मुख्य अश है गर्दभाली मुनि का वह उपदेश जो जीवन दर्शन के शाश्वत सत्यो को अभिव्यक्त करता है और उत्तरार्ध में क्षत्रिय मुनि से सयति मुनि की चर्चा मे प्रथम तो क्षत्रिय मुनि से उनका परिचय, उनके गुरु का नाम आदि पूछते हैं, जिसका सुस्पष्ट उत्तर सयति मुनि देते हैं।

अनन्तर क्षत्रिय मुनि के क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद एव अज्ञानवाद को एकान्तवाद निरूपित करते हुए प्रभु महावीर के तत्त्व दर्शन का निरूपण किया और उसे ही सर्वश्रेष्ठ सत्य बताया। यही नहीं सजय राजर्षि को धर्म में सुस्थिर करने हेतु क्षत्रिय मुनि, भरत, सागर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, महापद्म, हरिषेण, जय आदि चक्रवर्तियो दशार्णभद्र, नमिराज, करकण्डु आदि प्रत्येक बुद्धो, उदायण, विजय, काशीराज, महाबल आदि बीस महान् व्यक्तियो की जीवन झाकी प्रस्तुत करते हैं जो एक दिन भोग-विलास के उच्च शिखर पर पहुच कर भी उसे तृणवत् क्षण भर मे त्याग देते हैं और त्याग साधना के उच्च शिखर का स्पर्श करते हैं।

साधना के जीवन्त प्रभाव व ज्ञान की अमृत विवेचना का आस्वाद लेने के लिए प्रस्तुत अध्ययन के विवेचन मे प्रवेश करे एव जीवन दर्शन के मूल उद्देश्य को समझे।

❑❑❑

संयतीय - अष्टादश अध्ययन

सूक्ति साराश

अभय चाहते हो तो अभय दाता यनो।
जो दूसरो का भयभीत करता है यह सदैव आतकित रहता है।

रूपान्तरण वचनो से नहीं व्यक्तित्व से होता है।
साधुत्व की तेजस्विता क्रूर से क्रूर व्यक्ति के हृदय को यदल सकती है।
उसे हिसक से अहिसक ही नहीं परमात्मा तक यना सकती है।

सदैव निर्भयता मुनित्व की प्रमुख विशेषता होती है।
मुनि सदैव अभयदाता होते हैं, वे किसी को भयभीत नहीं करते हैं,
अत स्यय निर्भय रहते हैं।

ससार अनित्य है, यहा अपना कोई नहीं है।
अनित्य सम्यन्धो से अनुयधित ससार म हिसा किसके लिए की
जाय? क्योकि सय कुछ यहीं छोड कर जाना है।

एक-दूसरे को विदा करने का नाम ससार है।
ससार में प्रत्येक पश्चात् व्यक्ति पूर्व व्यक्तियो का विदा करने में लगा है,
पुत्र पिता को विदा कर देता है और उसका पुत्र उसे।

जीवन का अनिवार्य नियम है जाना-विदा होना, फिर मोह किससे?
पिता को विदाई देकर उसके द्वारा अर्जित धन का उपयाग पुत्र-कलत्र यडे आनन्द से करते हैं।
ससार की यही रीति है।

यथार्थ योध के पश्चात् हेय अपने आप छूट जाता है।
सत्य समझ मे आते ही राज्य नि सार लगता है,
वैभव विडम्यना रूप लगता है, परिजन स्वार्थी लगते हैं।

आत्मस्थ होने पर स्वच्छन्दता एव विविधता विलीन हो जाती है।
साधक स्वच्छन्दता एव विविध रुचियों का परित्याग कर देता है।

क्षण भर के आत्मिक आनद के समक्ष दीर्घ कालीन वैभव
जनित सुख भी ना कुछ होता है।
भरत, सागर, सनत्कुमार आदि चक्रवर्तियो ने मनुष्य सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट वैभव का उपयोग करके भी उसकी निस्सारता को समझा एव क्षण भर मे छोड दिया।

साधना मार्ग पर गतिशील बने रहना, कायरो का नहीं शूरवीरो का कार्य।
सुदृढ मन स्थिति वाला पराक्रमी व्यक्ति ही धर्म साधना के पथ पर स्थिर रहता है।

वाणी भी महाकल्याणी बन सकती है।
वीतराग वाणी के अवलम्बन ने अनन्त भव्यात्माओ को
चरम लक्ष्य तक पहुचा दिया और अनन्तो को पहुँचा देगी।

□□□

भावानुवाद-आश्रव-कर्मबन्ध क हेतु रागादि का क्षय करने वाले वे मुनि अप्फोवमण्डप अर्थात् लता के कुज में ध्यानलीन थे। उनके निकट आए मृगो का उस राजा (सजय) ने वध कर दिया।

6 मृत मृग को देखकर अनगार को दखा

मूल गाथा- अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं।
हए मिए उ पासित्ता, अणगार तत्थ पासई॥६॥

सस्कृत छाया- अथाश्वगतो राजा, क्षिप्रमागम्य स तस्मिन्।
हतान् मृगान् तु दृष्ट्वा, अनगार तत्र पश्यति॥६॥

अन्वयार्थ-अह-इसके पश्चात्, आसगओ-अश्वारूढ, सो-वह, राया-राजा, तहिं-उस मडप (मुनि) के पास खिप्प-शीघ्र, आगम्म-आकर, हए-मारे हुए, मिए उ-मृगो को, पासित्ता-देखकर, तत्थ-वहा पर, अणगार-(ध्यानस्थ) अनगार को भी, पासई-देखता है।

भावानुवाद-अनन्तर बहुत से मृगो को मारने के पश्चात् अश्वारूढ वह राजा वहा पहुचा-आया जहा पर मुनि ध्यानस्थ बैठे थे। वहा उसने मृत हिरणो को देखने के बाद एक ध्यानस्थ अनगार को भी देखा।

7 सजय नृप का पश्चात्ताप

मूल गाथा- अह राया तत्थ सभतो, अणगारो मणाहओ।
मए उ मदपुण्णेण, रसगिद्धेण घत्तुणा॥७॥

सस्कृत छाया- अथ राजा तत्र सभ्रान्त , अनगारो मनाग् हत ।
मया तु मन्दपुण्येन, रसगृद्धेन घातुकेन॥७॥

अन्वयार्थ-अह-अथ, राया-राजा, तत्थ-उस स्थान पर (मुनि को देखकर), सभंतो-भयभीत हो गया (सोचा), मए उ-मुझ, मदपुण्णेण-मन्द भागी, रस गिद्धेण-रस लालुप, घत्तुणा-जीव घातक ने (मृग की हत्या कर), मणा-व्यर्थ ही, अणगारो-अनगार को, आहओ-पीडित किया है।

भावानुवाद-राजा वहा मुनि को देखकर सहसा भयभीत हो उठा। उसने सोचा 'मैं कैसा मन्दपुण्य-भाग्यहीन हू रसासक्त एव हिसक वृत्ति का हू कि मैंने व्यर्थ ही मुनि-मन को आहत किया है।'

8 मुनि से वन्दन पूर्वक क्षमायाचना

मूल गाथा- आस विसज्जइत्ता ण, अणगारस्स सो णिवो।
विणएण वदए पाए, भगव एत्थ मे खमे॥८॥

सस्कृत छाया- अश्व विसृज्य, अनगारस्य स नृप ।
विनयेन वन्दते पादौ, भगवन्नत्र मे क्षमस्व॥८॥

अन्वयार्थ-आस-घोडे को, विसज्जइत्ताण-(वहा) छोडकर, सो-उस, णिवो-राजा ने विणएण-विनयपूर्वक

अणगारस्स-अनगार के पाए-चरणो मे, वदए-वन्दन किया (और कहा), भगव-भगवन्! एत्थ-इस अपराध के सबध में, मे-मुझे, खमे-क्षमा कर।

भावानुवाद-राजा ने घोडे को वहीं छोडकर उस महामुनि का विनयपूर्वक चरण वन्दन किया और कहा-"भन्ते! इस अपराध के लिए मुझे क्षमा कर दे।"

9 मौनस्थ मुनि से राजा का भयभीत होना

मूल गाथा- **अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिए।**
रायाण ण पडिमतेए, तओ राया भयद्दुओ॥९॥

सस्कृत छाया- **अथ मौनेन स भगवान्, अनगारो ध्यानमाश्रित ।**
राजान न प्रतिमन्त्रयते, ततो राजा भयद्रुत ॥९॥

अन्वयार्थ-अह-उस समय, सो-वह, अणगारे-अनगार, भगव-भगवान्, मोणेण-मौन के साथ, झाण मस्सिए-ध्यान मे लीन थे (अतएव), रायाण-राजा को, ण पडिमतेए-प्रत्युत्तर नहीं दिया, राया-राजा, तओ-इससे, भयद्दुओ-अति भयभीत हुआ।

भावानुवाद-किन्तु वे मुनि भगवन् मौनपूर्वक ध्यान मे लीन थे, अत उन्होने राजा को कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। इससे राजा का भय द्विगुणित हो गया, वह अधिक भयाक्रान्त हो गया।

10 भयाक्रान्त राजा की अभय प्रार्थना

मूल गाथा- **सजओ अहमम्मीति, भगव! वाहराहि मे।**
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज णरकोडिओ॥१०॥

सस्कृत छाया- **सजयोऽहमस्मीति, भगवन्! व्याहर माम्।**
क्रुद्धस्तेजसाऽनगार , दहेत नरकोटी ॥१०॥

अन्वयार्थ-राजा ने कहा-भगव-भगवन्!, अह-मैं, सजओ-सजय, अहमम्मीति-हू, इसलिए, मे-मुझसे, वाहराहि-बोलो, (क्योकि) कुद्धे-क्रोधी, अणगारे-अनगार, तेएण-अपने तेज से, णरकोडिओ-करोडो मनुष्यो को, डहेज्ज-जला सकते हैं।

भावानुवाद-(भयाक्रान्त राजा कहने लगा) भगवन्! मैं सजय-सयति हू। आप मुझसे कुछ तो वाणी व्यवहार करे-बोले। मैं जानता हू कि क्रुद्ध अनगार अपने तेज से करोडो मनुष्यो को जला डालते हैं।

11 मुनि द्वारा राजा को अभय दान-हिंसक प्रवृत्ति के त्याग का उपदेश

मूल गाथा- **अभओ पत्थिवा! तुज्झ, अभयदाया भवाहि य।**
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि?॥११॥

संस्कृत छाया- अभय पार्थिव! तव, अभयदाता भव च।
अनित्ये जीवलोके, किं हिंसायां प्रसज्जसि? ॥११॥

अन्वयार्थ-(मुनि ने कहा-) पत्थिवा-हे पार्थिव!, तुज्झ-तुझे, अभओ-अभय है, य-और (तू भी), अभयदाया-अभयदाता, भवाहि-बन, अणिच्चे-इस अनित्य, जीवलोगम्मि-जीव लोक में, किं-क्या (तू), हिंसाए-हिंसा में, पसज्जसि-आसक्त हो रहा है?

भावानुवाद-(मुनि ने अभयदान एवं उपदेश के स्वर में कहा) "हे पार्थिव! मेरे द्वारा तुझे अभय है। किन्तु तुम भी तो अभय दाता बनो। इस अनित्य जीव लोक में तुम क्या हिंसा-कृत्यों में आसक्त हो रहे हो?"

12 राज्य के त्याग का उपदेश

मूल गाथा- जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्वमवसस्स ते।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि? ॥12॥

संस्कृत छाया- यदा सर्वं परित्यज्य, गन्तव्यमवशस्य ते।
अनित्ये जीवलोके, किं राज्ये प्रसज्जसि? ॥१२॥

अन्वयार्थ-सव्वं-सब कुछ, परिच्चज्ज-छोडकर, जया-जब, ते-तुझे, अवसस्स-परवश हुए, गंतव्वं-जाना है, (फिर) किं-क्यों, अणिच्चे-(इस) अनित्य, जीवलोगम्मि-जीव लोक में, रज्जम्मि-राज्य में, पसज्जसि-आसक्त हो रहे हो?

भावानुवाद-जब तुम्हें एक दिन सब कुछ छोड़कर विवश होकर निश्चित ही चले जाना है, तो इस अनित्य जीवलोक में क्या तुम राज्य में आसक्त-मुग्ध हो रहे हो?

13 जीव लोक की अनित्यता का दिग्दर्शन

मूल गाथा- जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपायचंचलं।
जत्थ तं मुज्झसि राया! पेच्चत्थं णावबुज्झसे ॥13॥

संस्कृत छाया- जीवितं चैव रूपं च, विद्युत्सम्पातचञ्चलम्।
यत्र त्वं मुह्यसि राजन्! प्रेत्यार्थं नावबुध्यसे ॥१३॥

अन्वयार्थ-रायं-हे राजन्!, जत्थ-जिसमें, तं-तू, मुज्झसि-मोह मुग्ध है, (वह) जीवियं-जीवन चेव-और रूवं च-रूप, विज्जु संपाय-बिजली की चमक के समान चंचलं-चंचल है, पेच्चत्थं-(तू) परलोक के हित को, णावबुज्झसे-नहीं समझ रहा है।

भावानुवाद-"हे राजन्! तुम जिस जीवन और सौन्दर्य में मोह मुग्ध हो रहे हो, वह जीवन और सौन्दर्य बिजली की चमक के समान चपल है। तुम अपने परलोक के हित को नहीं समझ रहे हो।"

14 स्त्री पुत्रादि के मोह त्याग का वर्णन

मूल गाथा- दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा।
जीवंतमणुजीवंति, मयं णाणुव्वयंति य ॥14॥

संस्कृत छाया- दाराश्च सुताश्चैव, मित्राणि च तथा बान्धवा ।
जीवन्तमनुजीवन्ति, मृत नानुव्रजन्ति च ॥१४ ॥

अन्वयार्थ-दाराणि-स्त्रिया, चेव-और, सुया-पुत्र, य-और, मित्ताय-मित्र, तह-तथा, बधवा-बन्धुजन, जीवत-जीवित व्यक्ति के साथ ही, अणुजीवति-जीते हैं, मय-मृत व्यक्ति के साथ, णाणुव्वयति-नहीं जाते हैं।

भावानुवाद-"स्त्रिया और पुत्र, मित्र तथा बन्धुजन जीवित व्यक्ति के साथ ही जीते है, जीते जी के ही साथी हैं मरने वाले के पीछे कोई नहीं जाता है अर्थात् मरने वाले के साथ कोई नहीं मरता है।"

15 मृत पिता का पुत्र द्वारा निष्क्रमण होना-परस्पर सम्बन्ध का दिग्दर्शन

मूल गाथा- णीहरंति मय पुत्ता, पियर परमदुक्खिया।
पियरो वि तहा पुत्ते, बधु राय तव चरे ॥१५॥

संस्कृत छाया- नि सारयन्ति मृत पुत्रा , पितर परमदु खिता ।
पितरोऽपि तथा पुत्रान्, बन्धवो राजन्! तपश्चरे ॥५॥

अन्वयार्थ-परम दुक्खिया-अत्यन्त दु खित होकर, पुत्ता-पुत्र, मय-मरे हुए, पियर-पिता को, णीहरति-(घर से) निकाल देते हैं, तहा-उसी प्रकार, पियरोवि-पिता भी, पुत्ते-अपने पुत्रो को, बन्धु-भाई भी भाई को (बाहर निकाल देत हैं), अत राय-हे राजन्! तव-(तू) तप का, चरे-आचरण कर।

भावानुवाद-"पुत्र अपने मृत पिता को अत्यन्त दु ख के साथ घर से बाहर (श्मशान मे) निकाल देते हैं, उसी प्रकार पुत्र को पिता और बन्धु को अन्य बन्धु भी बाहर निकाल देते हैं, अत हे राजन्! तुम तप का आचरण करो।"

16 सुरक्षित धन-स्त्रियादि का अन्य पुरुषो द्वारा उपभोग

मूल गाथा- तओ तेणज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए।
कीलतिऽण्णे णरा राय, हट्ठतुट्ठमलंकिया ॥१६॥

संस्कृत छाया- ततस्तेनार्जिते द्रव्ये, दारेषु च परिरक्षितेषु।
क्रीडन्त्यन्ये नरा राजन्! हृष्टतुष्टाऽलकृता ॥१६॥

अन्वयार्थ-राय-हे राजन्!, तओ-मरने के बाद, तेण-उस मृत व्यक्ति द्वारा, अज्जिए-अर्जित, दव्वे-धन का, य-और, परिरक्खिए-सुरक्षित, दारे-स्त्रियो का, अण्णे-अन्य, णरा-लोग, हट्ठ-हृष्ट, तुट्ठ-तुष्ट (और), अलकिया-अलकृत होकर, कीलति-उपभोग करते हैं।

भावानुवाद-"मृत्यु के बाद उस मृत व्यक्ति के द्वारा अर्जित धन तथा परिरक्षित-पालित स्त्रियो का हृष्ट-तुष्ट और अलकृत होकर दूसरे व्यक्ति उपभोग करते है।"

17 मृत्यु के बाद जीव के साथ कर्मों का जाना

मूल गाथा- तेणावि ज कय कम्म, सुह वा जइ वा दुह।
कम्मुणा तेण सजुत्तो, गच्छई उ पर भव ॥१७॥

संस्कृत छाया- तेनापि यत् कृत कर्म, शुभ वा यदि वाऽशुभम्।
कर्मणा तेन सयुक्त , गच्छति तु पर भवम् ॥१७॥

अन्वयार्थ-तेणावि-उस मृत व्यक्ति ने भी, ज-जो, सुह-सुख कारक, वा-अथवा, जइ वा-यदि, दुह-दुःख कारक, कम्म-कर्म, कय-किया है, (वह) तेण-अपने उस, कम्मुणा-कर्म से, सजुत्तो-सयुक्त, पर भव-परभव को, उ-निश्चय, गच्छई-जाता है।

भावानुवाद-"उस मृत व्यक्ति ने तो जो भी सुखकारक या दु खकारक कर्म किये हैं। वह अपने द्वारा कृत उन कर्मों के साथ परभव मे चला जाता है।"

18 महान् सवेग, निर्वेद एव वैराग्य की प्राप्ति

मूल गाथा- सोऊण तस्स सो धम्म, अणगारस्स अतिए।
महया संवेगणिव्वेय, समावण्णो णराहिवो॥१८॥

संस्कृत छाया- श्रुत्वा तस्य स धर्मम्, अणगारस्यान्तिके।
महान्त सवेगनिर्वेद, समापन्नो नराधिप ॥१८॥

अन्वयार्थ-तस्स-उस, अणगारस्स-अनगार के, अतिए-समीप, सो-वह, णराहिवो-सजयनृप, धम्मं-धर्म का, सोऊण-सुनकर, महया-महान्, सवेग-सवेग (मोक्षाभिलाषा) और, णिव्वेयं-निर्वेद (वैराग्य) को, समावण्णो-प्राप्त हुआ।

भावानुवाद-महाअनगार गर्दभाली के पास महान् धर्म श्रवण कर वह राजा सजय मोक्षाभिलाषी और ससार के भोगों से विरक्त हो गया।

19 सजय नृप द्वारा विरक्त होकर प्रव्रज्या ग्रहण

मूल गाथा- 'सजओ' चइउ रज्ज, णिक्खतो जिणसासणे।
'गद्दभालिस्स' भगवओ, अणगारस्स अतिए॥१९॥

संस्कृत छाया- सजयस्त्यक्त्वा राज्य, निष्क्रान्तो जिनशासने।
गर्दभालेर्भगवत , अनगारस्यान्तिके॥१९॥

अन्वयार्थ-रज्ज-राज्य को, चइउं-छोडकर, सजओ-सजय राजा, भगवओ-भगवान्, गद्दभालिस्स-गर्दभाली अणगारस्स-अनगार के, अतिए-समीप, जिणसासण-जिनशासन में, णिक्खतो-दीक्षित हुआ।

भावानुवाद-राज्य का परित्याग करके वह सजय नृप भगवान् (विशिष्ट ज्ञानी) गर्दभाली महामुनि के समीप जिनशासन में प्रव्रजित हो गया।

20 क्षत्रिय मुनि द्वारा सजय राजर्षि से वार्तालाप

मूल गाथा- चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासई।
जहा ते दीसई रुव, पसण्ण ते तहा मणो॥२०॥

संस्कृत छाया- त्यक्त्वा राष्ट्र प्रव्रजित , क्षत्रिय परिभाषते।
यथा ते दृश्यते रूप, प्रसन्न ते तथा मन ॥२०॥

अन्वयार्थ-रट्ठ-राष्ट्र को, चिच्चा-छोडकर, पव्वइए-प्रव्रजित हुए, खत्तिए-क्षत्रिय मुनि ने (सजय मुनि से), परिभासई-कहा, ते-तुम्हारा, रूव-यह रूप, जहा-जैसा, दीसई-दिखता है, ते-तुम्हारा, मणो-मन भी, तहा-वैसा ही, पसण्ण-प्रसन्न, प्रतीत होता है।

भावानुवाद-राष्ट्र-राज्य का परित्याग कर प्रव्रजित हुए क्षत्रिय मुनि ने एक दिन सजय मुनि को कहा-"जैसे तुम्हारी आकृति (शारीरिक रूप) प्रसन्न-निर्विकार दिखाई देती है, लगता है-वैसे ही तुम्हारा अतरग रूप मन भी प्रसन्न है।"

21 सजय राजर्षि से परिचय की जिज्ञासा

मूल गाथा- कि णामे कि गोत्ते, कस्सट्ठाए व माहणे?।
कह पडियरसि बुद्धे, कह विणीएत्ति वुच्चसि?॥२१॥

संस्कृत छाया- कि नाम कि गोत्रम्, कस्यार्थं वा माहन ?
कथ प्रतिचरसि बुद्धान्, कथ विनीत इत्युच्यसे?॥२१॥

अन्वयार्थ-कि णामे-तुम्हारा नाम क्या है? कि गोत्ते-क्या गोत्र है? व-अथवा, कस्सट्ठाए-किसलिए, माहणे-(तुम) मुनि हुए हो? कह-किस प्रकार, बुद्धे-आचार्यों की, पडियरसि-परिचर्या (सेवा) करते हो? कह-किस प्रकार विणीएत्ति-विनीत, वुच्चसि-कहलाते हो?

भावानुवाद-क्षत्रिय मुनि-"तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारा गोत्र क्या है? किस उद्देश्य से तुम माहन-मुनि बने हो? किस प्रकार आचार्यों की परिचर्या करते हो और किस प्रकार विनीत कहलाते हो?"

22 सजय राजर्षि द्वारा अपना परिचयात्मक उत्तर

मूल गाथा- सजओ णाम णामेण, तहा गोत्तेण गोयमो।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरणपारगा॥२२॥

संस्कृत छाया- सयतो नाम नाम्ना, तथा गोत्रेण गौतम ।
गर्दभालयो ममाचार्या , विद्याचरणपारगा ॥२२॥

अन्वयार्थ-णामेण-नाम से, सजओ-सजय, णाम-नाम है, तहा-तथा, गोत्तेण-गोत्र से, गोयमो-गौतम हू, मम-मेरे, आयरिया-धर्माचार्य, गद्दभाली-गर्दभाली हैं, (जो कि) विज्जा-विद्या, (और) चरण-चरण (चारित्र) मे, पारगा-पारगत हैं।

भावानुवाद-सजय मुनि-"मेरा नाम सजय है। मेरा गोत्र गौतम है। विद्या और चरण अर्थात् ज्ञान और चारित्र के पारगामी 'गर्दभाली' मेरे आचार्य हैं।"

द्युतिमान् (देव), आसी-था, जा-जो, वरिस सओवमा-वर्षशतोपम आयु वाला, सा-वही पाली-पल्योपम एवं महापाली-सागरोपम की दिव्वा-दिव्य स्थिति थी।

भावानुवाद-"मैं पहले (पूर्वभव में) महाप्राण नामक विमान में वर्षशतोपम आयुवाला द्युतिमान देव था जैसे कि यहा सौ वर्ष आदि वर्षों में आयु मानी जाती है, वैसे वहा (देवों की) पाली-महापाली अर्थात् पल्योपम और सागरोपम की आयु होती है।"

29 ब्रह्मलोक से च्युत होकर मनुष्य भव में आगमन

मूल गाथा- से चुए बम्भलोगाओ, माणुस्सं भवमागए।
अप्पणो य परेसिं च, आउ जाणे जहा तहा॥२९॥

संस्कृत छाया- स च्युतो ब्रह्मलोकात्, मानुष्यं भवमागतः।
आत्मनश्च परेषां च, आयुर्जानामि यथा तथा॥२९॥

अन्वयार्थ-से-यह अब, बभलोगाओ-ब्रह्मलोक नामक पचम देवलोक से, चुए-च्युत होकर, माणुस्सं-मनुष्य, भव-भव में, आगए-आया हू, (मैं) जहा-जैसे, अप्पणो आउ-अपनी आयु को, तहा य-वैसे ही, परेसिं च-दूसरो की भी, जाणे-जानता हू।

भावानुवाद-"ब्रह्मलोक का आयुष्य पूर्ण करके मैं मनुष्य भव में आया हू। मैं जैसे अपनी आयु को जानता हू वैसे ही दूसरो की आयु को भी जानता हू।"

30 नाना रुचि और छन्दादि से निवृत्त होना

मूल गाथा- णाणारुइं च छंदं च, परिवज्जेज्ज संजए।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे॥३०॥

संस्कृत छाया- नानारुचिं च छन्दश्च, परिवर्जयेत् संयतः।
अनर्था ये च सर्वार्था, इति विद्यामनुसंचरेः॥३०॥

अन्वयार्थ-क्षत्रिय राजर्षि- हे सजयमुने! संजए-सयतात्मा मुनि, णाणा-नाना प्रकार की, रुइं च- रुचि और, छंदं च-अभिप्रायो का य-एव, जे-जो, सव्वत्था-सर्वथा, अणट्ठा-अनर्थ व्यापार है, उनका परिवज्जेज्ज-परित्याग करे (तथा), इइ-इस प्रकार, (तत्त्व ज्ञानरूप) विज्जा-विद्या का अनुलक्ष्य करके, मणुसचरे-(सयम पथ पर) सचरण करे।

भावानुवाद-"सयतात्मा मुनि को चाहिए कि वह नाना प्रकार की रुचियो, विविध मन कल्पित अभिप्रायों तथा सभी प्रकार के अनर्थक व्यापारो का परित्याग करे। इस सयम मार्ग पर सचरण करे।"

31 धर्म कार्य में उद्यत होकर तप का आचरण करना

मूल गाथा- पडिक्कमामि पसिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो।
अहो उट्ठिए अहोराय, [illegible] तव [illegible]

संस्कृत छाया- प्रतिक्रमामि प्रश्नेभ्य , परमन्त्रेभ्यो वा पुन ।
अहो उत्थिताऽहोरात्रम्, इति विद्वान् तत्पश्चरेत् ॥३१॥

अन्वयार्थ-हे मुने। (मैं) पसिणाण-प्रश्नो से, वा-अथवा, पुणो परमंतेहिं-परमंत्रो-गृहस्थो के कार्यों की मत्रणाओ से, पडिक्कमामि-निवृत्त हो गया हू, अहो-अहो।, अहोराय-दिन रात, उट्ठिए-धर्माचरण के लिये उद्यत हू, इइ-इस प्रकार, विज्जा-विद्वान् जानकर, (तुम) तव-तप का, चरे-आचरण करो।

भावानुवाद-"मैं शुभाशुभ सूचक प्रश्नो एव गृहस्थ की मत्रणाओ से दूर रहता हू। यह जानकर कि अहो। अहर्निश धर्माचरण मे उद्यत (कोई विरला ही महात्मा होता है) हे मुने। तुम भी तत्पश्चरण करो।"

32 शुद्ध ज्ञान क्रिया में प्रवृत्त होना

मूल गाथा- ज च मे पुच्छसि काले, सम्म सुद्धेण चेयसा।
ताइ पाउकरे बुद्धे, त णाण जिणसासणे ॥३२॥

संस्कृत छाया- यच्च मा पृच्छसि काले, सम्यक् शुद्धेन चेतसा।
तत् प्रादुरकरोद् बुद्ध , तज्ज्ञान जिनशासने ॥३२॥

अन्वयार्थ-च-और, ज-जो, (तुम) मे-मुझे, सम्म-सम्यक्, सुद्धेण-शुद्ध, चेयसा-चित्त से, काले-काल के विषय मे, पुच्छसि-पूछ रहे हो, ताइ-उन्हे, बुद्धे-सर्वज्ञ (भगवान् महावीर) ने, पाउकरे-प्रकट किया हैं, त-वह, णाण-ज्ञान, जिणसासणे-जिन शासन मे है।

भावानुवाद-"तुम मुझे सम्यक् शुद्ध चित्त से जो काल के विषय मे पूछ रहे हो, उसे बुद्ध-सर्वज्ञो ने प्रकट किया है। अत वह ज्ञान जिन शासन मे ही विद्यमान है।"

33 श्रमणोचित कर्त्तव्य का निर्देश आस्तिकता मे रुचि

मूल गाथा- किरिय च रोयए धीरे, अकिरिय परिवज्जए।
दिट्ठीए दिट्ठिसपण्णे, धम्म चरसु दुच्चरं ॥३३॥

संस्कृत छाया- क्रिया च रोचयेद् धीर , अक्रिया परिवर्जयेत्।
दृष्ट्या दृष्टिसम्पन्न , धर्मं चर सुदुश्चरम् ॥३३॥

अन्वयार्थ-धीरे-धीर पुरुष, किरिय-क्रिया में, रोयए-रुचि करता है, च-और, अकिरिय-अक्रिया का, परिवज्जए-परित्याग करता है, दिट्ठीए-सम्यक् दृष्टि से, दिट्ठि सपण्णे-दृष्टि सपन्न होकर (तुम), सुदुच्चर-अतिदुश्चर, धम्म-श्रुत-चारित्र धर्म का, चर-आचरण करो।

भावानुवाद-"धीर-सयमी पुरुष क्रिया के प्रति रुचिवान् बने और अक्रिया का त्याग करे। सम्यग्दृष्टि से दृष्टि सम्पन्न होकर तुम दुश्चर धर्म का आचरण करो।"

34 सुदृष्टि का उपदेश भरत चक्रवर्ती प्रव्रजित हुए

मूल गाथा- एय पुण्णपय सोच्चा, अत्थधम्मोवसोहिय।
'भरहो' वि भारह वास, चिच्चा कामाइ पव्वए॥३४॥

संस्कृत छाया- एतत् पुण्यपद श्रुत्वा, अर्थधर्मोपशोभितम्।
भरतोऽपि भारत वर्ष, त्यक्त्वा कामान् प्रव्रजित ॥३४॥

अन्वयार्थ-अत्थ-अर्थ (और), धम्मोवसोहिय-धर्म से उपशोभित, एय-इस पूर्वोक्त, पुण्णपयं-पुण्यपद को, सोच्चा-सुनकर भरहो-भरत चक्रवर्ती, वि-भी, भारह वास-भारतवर्ष को (तथा), कामाइ-काम भोगो को चिच्चा-परित्याग कर, पव्वए-प्रव्रजित हुए थे।

भावानुवाद-"अर्थ और धर्म से उपशोभित इस पुण्यपद-पवित्र उपदेश वचन का श्रवण कर भरत चक्रवर्ती भी सम्पूर्ण भारत और कामभोगो का परित्याग कर प्रव्रजित हुए।"

35 सगर चक्रवर्ती ने सयम-साधना से मुक्ति प्राप्ति की

मूल गाथा- 'सगरोऽवि' सागरत, भारहवास णराहिवो।
इस्सरिय केवल हिच्चा, दयाए परिणिव्वुडे॥३५॥

संस्कृत छाया- सगरोऽपि सागरान्त, भारतवर्ष नराधिप।
ऐश्वर्य केवल त्यक्त्वा, दयया परिनिर्वृत ॥३५॥

अन्वयार्थ-णराहिवो-नराधिप, सगरो-सगर चक्रवर्ती ने, वि-भी, सागरत-समुद्र पर्यन्त, भारहवास-भारतवर्ष को (तथा), केवल-सम्पूर्ण, इस्सरिय-ऐश्वर्य को, हिच्चा-छोडकर, दयाए-दया (सयम साधना) से परिणिव्वुडे-परिनिर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया।

भावानुवाद-"नराधिप सगर चक्रवर्ती ने सागर पर्यन्त भारतवर्ष एव परिपूर्ण ऐश्वर्य को छोडकर दया अर्थात् सयम साधना से परिनिर्वाण को प्राप्त किया।"

36 मघवा चक्रवर्ती भी प्रव्रजित हुए

मूल गाथा- चइत्ता भारह वास, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, 'मघव' णाम महाजसो॥३६॥

संस्कृत छाया- त्यक्त्वा भारत वर्ष, चक्रवर्ती महर्द्धिक:।
प्रव्रज्यामभ्युपगत, मघवा नाम महायशा ॥३६॥

अन्वयार्थ-महिड्ढिओ-महान् ऋद्धिसम्पन्न, महाजसो-महान् यशस्वी, मघवं-मघवा, णाम-नामक, चक्कवट्टी-चक्रवर्ती ने भी भारह वास-भारतवर्ष के राज्य को चइत्ता-छोडकर, पव्वज्जं-प्रव्रज्या, अब्भुवगओ अगीकार की।

भावानुवाद-"महान्-ऋद्धि सम्पन्न महायशस्वी मघवा चक्रवर्ती ने सम्पूर्ण भारत वर्ष के राज्य का परित्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की।"

37 सनत्कुमार चक्रवर्ती ने भी रूप मद छोड़कर स्वकल्याण किया

मूल गाथा- **'सणकुमारो' मणुस्सिदो, चक्कवट्टी महड्ढिओ।**
पुत्त रज्जे ठवित्ता ण, सो ऽवि राया तव चरे॥३७॥

सस्कृत छाया- **सनत्कुमारो मनुष्येन्द्र , चक्रवर्ती महर्द्धिक ।**
पुत्र राज्ये स्थापयित्वा, सोऽपि राजा तपोऽचरत्॥३७॥

अन्वयार्थ-महड्ढिओ-महर्द्धिक (एव), मणुस्सिदो-मनुष्येन्द्र, चक्कवट्टी-चक्रवर्ती, सणकुमारो-सनतकुमार ने, पुत्त-अपने पुत्र को, रज्जे-राज्य पर, ठवित्ताण-स्थापित करके, सो-उस, राया-राजा ने वि-भी, तव-तप का, चरे-आचरण किया।

भावानुवाद-"महान् ऋद्धि सम्पन्न मनुष्येन्द्र चक्रवर्ती सनत्कुमार ने पुत्र को राज्य गद्दी पर स्थापित कर स्वय ने तपश्चरण किया।"

38 शान्तिकर शान्तिनाथ भगवान अनुत्तर गति को प्राप्त हुए

मूल गाथा- **चइत्ता भारह वास, चक्कवट्टी महड्ढिओ।**
'सती' सतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तर॥३८॥

सस्कृत छाया- **त्यक्त्वा भारत वर्षं, चक्रवर्ती महर्द्धिक ।**
शान्ति शान्तिकरो लोके, प्राप्तो गतिमनुत्तराम्॥३८॥

अन्वयार्थ-महड्ढिओ-महान् ऋद्धि सम्पन्न (और), लोए-लोक म, सतिकरे-शान्ति करने वाल, सती-शान्तिनाथ, चक्कवट्टी-चक्रवर्ती ने, भारह वास-भारतवर्ष के राज्य को, चइत्ता-छोडकर, अणुत्तर-अनुत्तर, गइ-गति को, पत्तो-प्राप्त किया।

भावानुवाद-"महाऋद्धि के धारक और लोक म शान्तिकर्ता शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष के राज्य का त्याग किया और अनुत्तर-मोक्षगति प्राप्त की।"

39 कुन्थुनाथ चक्रवर्ती मुक्त हुए

मूल गाथा- **इक्खागरायवसभो, 'कुथू' णाम णरीसरो।**
विक्खायकित्ती धिइम, पत्तोगइमणुत्तरं॥३९॥

सस्कृत छाया- **इक्ष्वाकुराजवृषभ , कुन्थुनामा नरेश्वर ।**
विख्यातकीर्तिर्धृतिमान् प्राप्तो गतिमनुत्तराम्॥३९॥

अन्वयार्थ-इक्खाग-इक्ष्वाकु कुल के, राय-राजाआ में, वसभो-श्रेष्ठ, विक्खाय-विख्यात कित्ती-कीर्ति, धिइम-

धृतिमान, भयव-भगवान्, कुथु-कुन्थु, णाम-नाम के, णरीसरो-नरेश्वर (चक्रवर्ती) ने, अणुत्तरं-अनुत्तर गइं-गति को, पत्तो-प्राप्त किया।

भावानुवाद-"इक्ष्वाकु कुल के राजाओ म श्रेष्ठ नरेश्वर, विख्यात कीर्ति धैर्यशाली कुंथुनाथ ने अनुत्तर गति प्राप्त की।"

40 अरनाथ चक्रवर्ती की मुक्ति

मूल गाथा- सागरंत चइत्ता ण, भरह णरवरीसरो।
'अरो' य अरय पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

संस्कृत छाया- सागरान्तं त्यक्त्वा, भारतं नरवरेश्वरः ।
अरश्चारजः प्राप्तो, प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥४०॥

अन्वयार्थ-सागरंत-सागर पर्यन्त, भरह-भारतवर्ष को, चइत्ताण-छोडकर, अरय-(कर्मरज से रहित) अरजस्कता, पत्तो-प्राप्त करके, य-और, णरवरीसरो-नरेश्वरो में श्रेष्ठ, अरो-अरनाथ ने, अणुत्तर-अनुत्तर, गइं-गति को, पत्तो-प्राप्त किया।

भावानुवाद-"सागर पर्यन्त भारतवर्ष का परित्याग करके, कर्मरज से मुक्त होकर नरेश्वरो म श्रेष्ठ "अरनाथ" ने अनुत्तर गति प्राप्त की।"

41 महापद्म चक्रवर्ती त्याग मार्ग पर

मूल गाथा- चइत्ता भारह वासं, चइत्ता बलवाहण।
चइत्ता य उत्तमे भोए, 'महापउमे' तव चरे ॥४१॥

संस्कृत छाया- त्यक्त्वा भारतं वर्षं, त्यक्त्वा बलवाहनम्।
त्यक्त्वा च उत्तमान् भोगान्, महापद्मस्तपोऽचरत् ॥४१॥

अन्वयार्थ-भारह वास-भारतवर्ष को चइत्ता-छोडकर (तथा), बलवाहण-सैन्य शक्ति का चइत्ता-परित्याग कर, उत्तमे-उत्तम, भोए-भोगो को, चइत्ता-त्यागकर, महापउमे-महापद्म चक्रवर्ती ने, तवं-तप का चरे-आचरण किया।

भावानुवाद-"भारतवर्ष के साम्राज्य का परित्याग कर सैन्य शक्ति का परित्याग कर तथा उत्तम भोगो को छोड़कर महान् ऋद्धि सम्पन्न "महापद्म" चक्रवर्ती नराधिप ने तप का आचरण किया।"

42 हरिषेण चक्री ने त्याग से अनुत्तर गति प्राप्त की

मूल गाथा- एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माणनिसूरणो।
'हरिसेणो' मणुस्सिंदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

संस्कृत छाया- एकच्छत्रां प्रसाध्य, महीं माननिषूदन ।
हरिषेणो मनुष्येन्द्र , प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥४२॥

अन्वयार्थ-माणणिसूरणो-शत्रुओ का मानमर्दन करने वाले, मणुस्सिंदो-मनुष्येन्द्र, हरिसेणो-हरियेण चक्रवर्ती ने, महि-पृथ्वी का, एगच्छत्त-एकछत्र, पसाहित्ता-शासन करके (फिर), अणुत्तर-अनुत्तर, गइ-गति को, पत्तो-प्राप्त किया।

भावानुवाद-''शत्रु राजाओ का मान मर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी का एक छत्र शासन करके, (फिर सर्वस्व का त्याग करके) अनुत्तर गति प्राप्त की।''

43 जय चक्रवर्ती ने सयमाचरण द्वारा मोक्ष प्राप्त किया

मूल गाथा- अण्णिओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दम चरे।
'जयणामो' जिणक्खाय, पत्तो गइमणुत्तर ॥४३॥

संस्कृत छाया- अन्वितो राजसहस्त्रै , सुपरित्यागी दममचारीत्।
जयनामा जिनाख्याता, प्राप्तो गतिमनुत्तराम् ॥४३॥

अन्वयार्थ-राय सहस्सेहिं-हजारो राजाओ से, अण्णिओ-युक्त होकर, सुपरिच्चाई-श्रेष्ठ त्यागी, जयणामो-जय नामक चक्रवर्ती ने, जिणक्खाय-जिनभाषित, दम-दम (सयम) का, चरे-आचरण किया (और), अणुत्तर-अनुत्तर (मोक्ष), गइ-गति को, पत्तो-प्राप्त किया।

भावानुवाद-'' श्रेष्ठ त्यागी ''जय'' नामक चक्रवर्ती ने हजार राजाओ के साथ राज्य का परित्याग कर जिन भाषित दम-सयम का अनुशीलन किया और अनुत्तर गति प्राप्त की।''

44 दशार्ण भद्र नृप द्वारा राज्य त्याग कर मुनि धर्माचरण

मूल गाथा- दसण्णरज्ज मुइय, चइत्ता णं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो णिक्खतो, सक्ख सक्केण चोइओ ॥४४॥

संस्कृत छाया- दशार्णराज्य मुदित, त्यक्त्वा मुनिरचरत्।
दशार्णभद्रो निष्क्रान्त , साक्षात्शक्रेण नोदित ॥४४॥

अन्वयार्थ-सक्ख-साक्षात्, सक्केण-शक्रेन्द्र द्वारा, चोइओ-प्रेरित होकर, दसण्णभद्दो-दशार्णभद्र राजा ने, मुइय-प्रमुदित, दसण्ण रज्ज-दशार्ण देश का राज्य, चइत्ताण-छोडकर, णिक्खतो-प्रव्रज्या ग्रहण की, (और) मुणी-मुनि धर्म का, चरे-आचरण किया।

भावानुवाद-''साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होकर दशार्णभद्र नरेश ने पूर्णत समृद्ध-प्रमुदित अपने दशार्ण राज्य का परित्याग कर दीक्षा अगीकार की-मुनि धर्म का आचरण किया।''

45 नमिराज विदेह राज्य का त्याग कर श्रमण धर्म में प्रव्रजित

मूल गाथा- 'णमी' णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ॥४५॥

संस्कृत छाया- नमिर्नमयत्यात्मानं, साक्षाच्छक्रेण नोदितः।
त्यक्त्वा गृहं वैदेही, श्रामण्ये पर्युपस्थितः ॥४५॥

अन्वयार्थ-सक्खं-साक्षात्, सक्केण-शक्रेन्द्र द्वारा, चोइओ-प्रेरित होने पर भी, वइदही-विदेह के राजा, णमी-नमिराज ने, गेह-राज भवन, चइऊण-छोडकर, अप्पाण-आत्मा को, णमेइ-(संयम में) झुका दिया, (और) सामण्णे-श्रमण धर्म में, पज्जुवट्ठिओ-भलीभांति स्थिर हो गए।

भावानुवाद-साक्षात् देवेन्द्र के द्वारा प्रेरणा किये जाने पर भी विदेह के राजा नमि ने अपने गृह-वैदेही राज्य का परित्याग कर स्वयं को विनम्र बनाया और समग्र भाव से श्रमण धर्म मे स्थिर हो गए।

46 करकडु आदि चार प्रत्येक बुद्ध का परिचय

मूल गाथा- 'करकडू' कलिंगेसु, पंचालेसु य 'दुम्मुहो'।
'णमी' राया विदेहेसु, गंधारेसु य णग्गई॥४६॥

संस्कृत छाया- करकण्डु कलिंगेसु, पंचालेषु च द्विमुखः।
नमी राजा विदेहेषु, गान्धारेषु च नग्गतिः ॥४६॥

अन्वयार्थ-कलिंगेसु-कलिंग (उडीसा) में, करकडू-करकण्डु राजा, य-तथा, पंचालेसु-पांचाल (पंजाब) में, दुम्मुहो-द्विमुख राजा, विदेहेसु-विदेह देश (मिथिला) में, णमीराया-नमिराजा, च-और, गंधारेसु-गांधार देश (अफगानिस्तान) मे, णग्गई-नग्गति राजा।

भावानुवाद-कलिंग देश में करकण्डु राजा तथा पांचाल देश में द्विमुख राजा, विदेह मे नमिराज और गांधार देश में नग्गति राजा-

47 प्रत्येक बुद्धों ने भी मोक्ष मार्ग का अनुसरण किया

मूल गाथा- एए णरिंदवसभा, णिक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठविताण, सामण्णे पज्जुवट्ठिया॥४७॥

संस्कृत छाया- एते नरेन्द्रवृषभा, निष्क्रान्ता जिनशासने।
पुत्रान् राज्ये स्थापयित्वा, श्रामण्ये पर्युपस्थिताः ॥४७॥

अन्वयार्थ-णरिंद-राजाओं में, वसभा-वृषभ के समान श्रेष्ठ, एए-ये नरेन्द्र, पुत्ते-अपने पुत्रों को, रज्जे-राज्य में ठवित्ताणं-स्थापित करके जिणसासणे-जिनशासन में, णिक्खंता-प्रव्रजित हुए, (और) सामण्णे-श्रमण धर्म में पज्जुवट्ठिया-सम्यक् प्रकार से स्थिर हो गए।

भावानुवाद-ये नृप राजाओ मे वृषभ के समान श्रेष्ठ थे, इन्होने अपने-अपने पुत्र को राज्यभार सौंपा और जिनशासन मे प्रव्रज्या ग्रहण की और श्रमण धर्म मे सुस्थिर हुए।

48 सौवीरराज उद्रायण ने प्रव्रजित होकर मुक्ति प्राप्त की

मूल गाथा- **सोवीररायवसभो, चइत्ताण मुणी चरे।**
उद्दायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४८॥

सस्कृत छाया- **सौवीरराजवृषभ , त्यक्त्वा मुनिरचरत्।**
उद्रायण प्रव्रजित , प्राप्तो गतिमनुत्तराम्॥४८॥

अन्वयार्थ-सोवीर-सौवीर, राय-राजाओ मे, वसभो-वृषभ के समान महान्, उद्दायणो-उद्रायण राजा ने, चइत्ताण-त्याग कर, पव्वइओ-प्रव्रज्या ग्रहण की, मुणी-मुनि धर्म का, चरे-आचरण किया (और), अणुत्तर-अनुत्तर, (मोक्ष) गइ-गति को, पत्तो-प्राप्त किया।

भावानुवाद-सौवीर राजाओ मे वृषभ के समान श्रेष्ठ उद्रायण राजा ने राज्य त्याग कर दीक्षा ग्रहण की। मुनि धर्म का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की।

49 सत्य पराक्रमी काशीराज कर्ममुक्त हुए

मूल गाथा- **तहेव 'कासीराया' वि, सेओ सच्चपरक्कमे।**
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावण ॥४९॥

सस्कृत छाया- **तथैव काशीराजोऽपि, श्रेय सत्यपराक्रम ।**
कामभोगान् परित्यज्य, प्राहन् कर्ममहावनम्॥४९।

अन्वयार्थ-तहेव-इसी प्रकार, सेओ-श्रेय और, सच्च-सत्य मे, परक्कमे-पराक्रमी, कासीराया-काशी राजा ने, वि-भी, कामभोगे-कामभोगो का, परिच्चज्ज-परित्याग कर, कम्म-कर्मरूपी, महावण-महावन को, पहणे-नष्ट कर डाला।

भावानुवाद-इसी प्रकार श्रेय और सत्य मे पराक्रमी बनकर काशीराज ने कामभोगो का परित्याग करके कर्म रूपी महावन को नष्ट कर दिया।

50 महायशस्वी विजय राजा राज्य त्याग कर प्रव्रजित

मूल गाथा- **तहेव 'विजओ' राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए।**
रज्ज तु गुणसमिद्ध, पयहित्तु महाजसो॥५०॥

सस्कृत छाया- **तथैव विजयो राजा, आनष्टाकीर्ति प्राव्राजीत्।**
राज्य गुणसमृद्ध, प्रहाय महायशा ॥५०॥

अन्वयार्थ-तहेव-इसी प्रकार, अणट्ठा-अविनाशी (अमर), कित्ति-कीर्ति वाला, महाजसो-महायशस्वी

विजओराया-विजयराया, गुणसमिद्ध-गुण समृद्ध, रज्जं तु-राज्य को, पयहित्तु-छोडकर, पव्वए-प्रव्रजित हुए।

भावानुवाद-इसी प्रकार अमर कीर्ति के धारक महान् यशस्वी विजय राजा ने गुण समृद्ध अपने राज्य का त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

51 उग्र तपस्वी महाबल राजर्षि ने सिद्ध रूप शीर्ष स्थान प्राप्त किया

मूल गाथा- तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
'महब्बलो' रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं॥५१॥

संस्कृत छाया- तथैवोग्रं तपः कृत्वा, अव्याक्षिप्तेन चेतसा।
महाबलो राजर्षिः आदाय शिरसा श्रियम्॥५१॥

अन्वयार्थ-तहेव-इसी प्रकार, अव्वक्खित्तेण-अव्याकुल, चेयसा-चित्त से, उग्गं तवं-उग्र तप, किच्चा-करके, महब्बलो-महाबल, रायरिसी-राजर्षि ने, सिरसा-सिर देकर, सिरिं-सिद्धि रूप शीर्ष स्थान, आदाय-प्राप्त किया।

भावानुवाद-इसी प्रकार अविक्षिप्त-अव्याकुल चित्त से उग्र तपश्चर्या करके राजर्षि महाबल ने सिर देकर सिर प्राप्त किया अर्थात् अहंकार का विसर्जन करके सर्वोच्च पद-सिद्ध स्वरूप प्राप्त किया।

52 कुहेतुओं से उन्मत्त की तरह विचरण नहीं करना

मूल गाथा- कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व महिं चरे।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा॥५२॥

संस्कृत छाया- कथं धीरोऽहेतुभिः, उन्मत्त इव महीं चरेत्।
एते विशेषमादाय, शूरा दृढपराक्रमाः॥५२॥

अन्वयार्थ-एए-इस प्रकार ये (भरतादि), सूरा-शूरवीर (और), दढपरक्कमा-दृढ पराक्रमी राजा विसेसं-विशेषता, आदाय-जानकर (प्रव्रजित हुए) अतः, अहेऊहिं-अहेतुवादों से प्रेरित होकर, धीरो-धीर पुरुष उम्मत्तो व-उन्मत्त के समान, कहं-कैसे महिं-पृथ्वी पर, चरे-विचरण करे?

भावानुवाद-इन भरतादि शूरवीर और सुदृढ़ पराक्रमी राजाओं ने जिनशासन में विशेषता देखकर ही उसे स्वीकार किया था, अतः कौन धीर पुरुष अहेतुवादों से प्रेरित होकर उन्मत्त के समान कैसे पृथ्वी पर विचरण करेगा?

53 विशेषता युक्त जिनशासन अपनाओ, संसार समुद्र पार करो -

मूल गाथा- अच्चंतनियाणखमा, सच्चा मे भासिया वई।
अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागया॥५३॥

संस्कृत छाया- अत्यन्तनिदानक्षमा, सत्या मया भाषिता वाक्।
अतार्षुस्तरन्त्येके, तरिष्यन्त्यनागताः॥५३॥

अन्वयार्थ-मे-मैंने (यह) अच्चंत-अत्यन्त, नियाणखमा-निदानक्षम-(दुर्गुणों) सच्चा वई सत्य...

भासिया-कही है, (इसे ग्रहण कर), एगे-अनेक जीव, अतरिंसु-अतीत मे तिर गये, तरति-वर्तमान मे तिर रहे हैं, (और) अणागया-भविष्य मे, तरिस्सति-तिरेगे।

भावानुवाद-मैंने यह अत्यन्त युक्ति सगत सत्य वाणी कही है, इसका अनुसरण करके अनेक जीव अतीत मे भव सागर से पार हुए हैं, वर्तमान मे पार हो रहे हैं और भविष्य मे भी पार होगे।

54 उक्त अर्थ का निगमन फलश्रुति उपसहार श्रुति

मूल गाथा- कह धीरे अहेऊहि, अत्ताण परियावसे।
सव्वसगविणिम्मुक्के, सिद्धे भवइ णीरए॥५४॥

त्ति बेमि।

इति सजइज्ज अट्ठारसम अज्झयण समत्त॥१८॥

सस्कृत छाया- कथ धीरोऽहेतुभि, आत्मान पर्यावासयेत्।
सर्वसगविनिर्मुक्त, सिद्धो भवति नीरजा॥१४॥

इति ब्रवीमि

इति सयतीय अष्टादशमध्ययन समाप्त

अन्वयार्थ-धीरे-धीर साधक, अहेउहिं-अहेतुवाद मे, अत्ताण-अपने आपको, कह-कैसे, परियावसे-लगाए? (जो), सव्व-सभी, सग-सगो से, विणिम्मुक्के-विनिर्मुक्त होवे, (वही) णीरए-कर्मरज से रहित होकर, सिद्धे-सिद्ध (मुक्त), हवइ-होता है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-एकान्तवादी अहेतुवादो मे धीर साधक अपने आपको कैसे लगाए? जो सभी सगो-सम्बन्धो स मुक्त है, वही कर्म रज से रहित सिद्ध होता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार सयति नामक अठारहवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

मृगापुत्रीय - एकोनाविंशत् अध्ययन

उत्थानिका

आधुनिक सन्दर्भों में एक आम धारणा-सी हो गई है कि साधु जीवन अत्यन्त कष्ट पूर्ण जीवन है। यन्त्रणाओं और दैहिक उत्पीडना का जीवन है। जैन श्रमण की साधना में अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से गुजरना पडता है।

किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है। साधना जैसा आनन्द तो संसार के किन्हीं भी भौतिक साधनों द्वारा उपलब्ध नहीं हो सकता है। केवल हम कष्ट और आनन्द की परिभाषा को ठीक से समझ लें। कष्ट और आनन्द भौतिक पदार्थों पर अवलम्बित नहीं है, उनका संबंध हमारे विचारों से है। एक पदार्थ किसी के लिए दुःखप्रद हो सकता है तो वही किसी के लिए सुखप्रद भी। कदाचित् शारीरिक सामान्य श्रम या केश-लुंचन, पाद विहार आदि क्रियाओं को कष्टप्रद कहा या माना जाए तो उसकी तुलना में संसार की गतियों-योनियों में पराधीनता पूर्वक भोगे जाने वाले दुःख अनन्त गुणाधिक होते हैं।

इसी विषय को अत्यन्त रोचक एवं तर्क पुष्ट तरीके से प्रस्तुत अध्ययन में स्पष्ट किया गया है। मृगापुत्र अपने पूर्व जन्मों की स्मृति के आधार पर स्पष्ट कर देता है कि नरक एवं तिर्यंच योनियों में इस आत्मा ने जो कष्ट सहन किये हैं, साधनागत जीवन के कष्ट तो उसके अनन्तवें भाग भी नहीं है।

एक दूसरी बात और मृगापुत्र स्पष्ट करते हैं जो कुछ व्यक्ति साधु जीवन को परवश बताते हुए कहते हैं कि उस जीवन में साधक एकाकी असहाय हो जाता है तो रोगादि के समय उसकी चिकित्सा कौन करेगा? इन व्यक्तियों की शंका का मृगचर्या के उदाहरण से समाधान दिया गया है अर्थात् जैसे मृग के रोगी होने पर उसकी चिकित्सा स्वतः प्रकृति से होती है, उसी प्रकार साधु जीवन में उपवास आदि से कर्म निर्जरा होने पर रोग स्वतः निर्मूल हो जाते हैं।

मृगापुत्र के द्वारा अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति के पीछे छुपा हुआ घटनाक्रम का स्वरूप इस प्रकार है-

सुग्रीव नगर के अधिपति महाराज बलभद्र और महारानी मृगावती का आत्मज 'बलश्री' राजकुमार था। उसे माता के नाम से 'बलश्री' को लोग 'मृगापुत्र' के नाम से पुकारते थे।

एक बार मृगापुत्र अपने अन्तःपुर में पत्नियों के साथ महल के झरोखे में बैठा हुआ नगर के सौन्दर्य को देख रहा था। राजमार्ग पर जन संकुल वातावरण था। स्थान-स्थान पर नृत्य गीत आदि मनोरंजक कार्यक्रमों के आयोजन हो रहे थे। नगर दृश्यों को देखते हुए राजकुमार की दृष्टि राजमार्ग पर समगति से चलते हुए एक श्रमण, [illegible] प्रशान्त अनगार पर पड़ी। मृगापुत्र मन्त्रमुग्ध बना देखता ही रह गया। उसकी स्मृति अपने ही [illegible] , [illegible]

याद आया-'ऐसा साधु तो मै पहले कई बार देख चुका हू। यह पोषाक-मुख वस्त्रिका-रजोहरण आदि मेरे द्वारा पूर्व में भी देखे हुए हैं।' वह स्मृतियो की गहराई मे गोते खाने लगा। 'मैने यह रूप कहा देखा? कब देखा? इस जीवन मे तो मैंने यह रूप नहीं देखा है? फिर यह परिवेश मुझे अति परिचित कैसे लग रहा है?' इन जिज्ञासाओ ने मृगापुत्र की सुप्त स्मृति को जागृत कर दिया। उनको अपने ही पूर्व जन्मो की स्मृति हो आई। उन्हें याद आया-' अरे, मैं स्वय भी तो इसी प्रकार का साधु था। मैंने पूर्व जन्म मे सासारिक भोगो का परित्याग करके ऐसी ही मुनि दीक्षा ली थी।' साधु जीवन और साधना की स्मृति आते ही मृगापुत्र को सभी वैषयिक सुख एव सभी परिजन बधन रूप दिखाई देने लगे। उसने पुन मुनि-दीक्षा ग्रहण करने का मन ही मन दृढ सकल्प किया और अपने माता-पिता के समक्ष उपस्थित होकर कहने लगा-'मेरा मन अब इस गृहवास मे, भोग वासना मे एव परिजनो मे बिल्कुल नहीं लग रहा है। मैं अब निर्ग्रन्थ मुनि बनूगा। आप मुझे श्रमण दीक्षा की अनुमति प्रदान करे।'

माता-पिता ने मृगापुत्र को विविध युक्तिओ से समझाने का प्रयास किया कि 'साधु-चर्या अतीव कष्ट प्रद है।' श्रमण जीवन मे आने वाले बाईस परीषह अति दुष्कर हैं। महाव्रतो का पालन, समिति गुप्ति की आराधना सहज नहीं है। कापोतवृत्ति, पाद विहार और केश लोच अत्यन्त कष्ट प्रद हैं। साधु जीवन की अत्यन्त कठोर मर्यादाए बालू के लड्डू खाने के समान नीरस हैं, तो लोहे के चने चबाने के समान कठोर भी हैं। श्रमण चर्या अनेक कष्टो से भरी होने के कारण तुम उसका पालन नहीं कर सकोगे, क्योकि तुम राजसिक सुखो मे पले हुए अत्यन्त सुकुमार हो।'

उत्तर में मृगापुत्र ने अपने पूर्व जन्मो की स्मृति के आधार पर नरक मे स्वय द्वारा भोगी गई अनतानन्त वेदना का उल्लेख और तिर्यंच गति मे परवश होकर झेले गए दु खो के अनुभव सुनाते हुए कहा-''इससे अधिक वेदना तो श्रमण चर्या मे नहीं है?''

इस प्रकार माता-पिता और पुत्र का काफी विस्तृत, रोचक एव रसप्रद सवाद होता है और उस सवाद मे मृगापुत्र की आप बीती तर्कों के सामने माता-पिता मौन हो जाते हैं और अन्त मे श्रमण दीक्षा के लिये पुत्र को सहमति प्रदान करते हैं।

मृगापुत्र अपार वैभव एव राज्य सुखो का परित्याग कर मुनि बन जाते हैं और विशुद्ध साधना के द्वारा सिद्धि गति को प्राप्त हो जाते है।

चले, मृगापुत्र के साक्षात् अनुभव का हम भी कुछ परोक्षत आस्वाद ले-नरकादिक यातनाओं का वर्णन पढ़ें और बन्धनो से मुक्त होने का प्रयास करे।

□□□

मृगापुत्रीय - एकोनाविंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश

ससार-प्रकृति विचित्र है,-किस समय क्या घटित हो जाए कहा नहीं जा सकता है।
सहज एव सहसा हुए मुनि दर्शन अतीत जन्मों की स्मृति दिला देते हैं।

अतीत के अनुभव को भविष्य का प्रकाश बना लो।
अतीत का स्मरण भविष्य की आख बन सकता है,
जीवन की सम्पूर्ण दिशा-गति को बदल सकता है।

आख खुली-दृष्टि मिली कि भोग-रोग लगने लगेगे।
अतीत के सुखों का स्मरण, उच्चतम काम सुखों से भी
क्षण भर में विरक्त कर देता है।

सही दृष्टि-सही समझ, सही-सुन्दर आचरण-संयम की आधार शिला है।
भोगो के प्रति नि:सारता की समझ ही सयम-साधना के
प्रति अनुराग-आकर्षण उत्पन्न करती है।

क्षणिक आराम-महा दु:खद परिणाम।
आत्म जागरण के लिये इतनी समझ पर्याप्त है कि काम-भोगो
का परिणाम अत्यन्त कटु होता है।

अशौच का श्रृंगार क्षार (राख) पर लीपने के समान है।
यह शरीर अनित्य तो है ही, पर अशुचिमय भी है।
क्योंकि इसका निर्माण बुनियादी तौर पर अशौच पदार्थों से हुआ है।

जो क्षणिक है वह संक्लेश ही उत्पन्न करेगा।
यह ससार-शरीर अशाश्वत तो है ही दु:ख एव सक्लेशों का
केन्द्र भी यही है। इससे प्रीति कैसी?

शरीर व्याधि मन्दिर है, इसका सही उपयोग कर लो।
क्योंकि, रोगों का केन्द्र स्थान है यह शरीर फिर इसे आगे पीछे
छोड़ना ही है, तो इसके प्रति ममत्व क्यों?

जन्म मरण की श्रृखला को तोड़ दो, दु ख अपने आप भाग जायेगे।
ससार मे चार महा दु ख हैं-जन्म, जरा, रोग और मरण।
दु ख का नाम ही ससार है।

बाहर की सुन्दरता विषाक्त होती है वह कटु परिणाम वाली होती है।
किपाक नामक फल दिखने मे सुन्दर, स्वाद मे मधुर एव घ्राण को सुवासित लगते हैं, किन्तु भोक्ता को उसका परिणाम कटु-मृत्यु मिलता है। यही स्थिति विषय जनित सुख की है।

वर्तमान का ही नहीं, आने वाले भविष्य का भी ख्याल करो।
पाथेय लिये बिना लम्बे-विकट मार्ग पर चल पडने वाला पथिक क्षुधा-प्यास से व्याकुल होता है, यही स्थिति धर्माराधना किये बिना पर लोक गमन करने वाले की होती है।

केवल आत्मा सार है-शेष असार।
समझदार गृहस्थ जलते हुए घर मे से बहुमूल्य पदार्थों को पहले निकालता है, वैसे ही जन्म मरण के दावानल से आत्मसार को निकाल लो।

साधना सुकर भी है तो दुष्कर भी, किन्तु यह साधक की मन स्थिति पर निर्भर करता है।
साधनात्मक गुणो-नियमो को आजीवन धारण करना दुष्कर अवश्य है किन्तु पराक्रमी के लिये नहीं।

समत्वभाव अहिंसात्मक-साधना का मूल आधार है।
शत्रु पर ही नहीं, समस्त प्राणियो पर सदैव ममत्व बनाए रख पाना कठिन है।

जागृत चेतना मे सभी गुण सहज समाविष्ट हो जाते है।
सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह का अनुशीलन सामान्य व्यक्ति के लिये दुष्कर हो सकता है, साधक चेतना के लिये नहीं।

शारीरिक शक्ति से नहीं, मानसिक शक्ति से समृद्ध बनो। साधना उसी से होगी।
शरीर की सुकुमारता साधना मे बाधक नहीं बन सकती, बशर्ते मन बलवान हो।

सुकरता-दुष्करता का मापदण्ड आन्तरिक शक्ति से होता है।
कायर व्यक्ति के लिये साधना उतनी ही दुष्कर है, जितना सागर को भुजाओ से तैरना, किन्तु साहसी यह भी कर जाता है।

साधना में रस उत्पन्न करो, यह अमृत से बढ़कर आनन्द देगा।
इन्द्रिय विषयों में आसक्त व्यक्ति को साधना
बालू (रेत) के लड्डू खाने के समान नि सार लगती है।

आत्मिक आनन्द की झलक मिलते ही सब कुछ सुकर हो जाता है।
उसे तारुण्य में श्रमणत्व अग्नि शिखा के पान की तरह दुष्कर लगता है,
जिसने विषय सुखों को ही सुख माना है।

आकाक्षाओं में अटका-भटका व्यक्ति ही साधना की
दुष्करता का विचार कर उनमें उलझा रहता है।
जिसकी भोगाकाक्षाए क्षीण हो गईं उसके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है।

नरक के दु खों का अनुभव सयम के कष्टों को हल्का कर देता है।
जिसने नरक की भयकर वेदनाओं का अनन्त बार अनुभव कर लिया,
उसे यहा कुछ भी वेदनामय नहीं लगता।

साधना स्व सापेक्ष होती है, उसमें परावलम्बन नहीं होता।
मुनिचर्या तो मृगचर्या है, मृग के रुग्ण होने पर कौन औषधि देता है?
स्वय स्वस्थ होने पर भोजनार्थ निकलता है।
यही चिन्तन साधक को स्वावलम्बी बना देता है।

चेतना के जागृत होते ही, नि सार छूट जाता है।
जागृत चेता व्यक्ति बाह्य वैभव एव परिजन सम्बन्धों को वैसे ही छोड़ देता है,
जैसे शरीर पर लगी रज (धूली) को पशु झटक देता है।

❑❑❑

मियापुत्तीयं एगुणवीसइमं अज्झयणं

मृगापुत्रीयमेकोनविंशतितममध्ययनम्

मृगापुत्रीय

1 बल भद्र राजा का पारिवारिक परिचय

मूल गाथा- सुग्गीवे णयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए।
राजा बलभद्दि त्ति, मिया तस्सग्गमहिसी ॥1॥

संस्कृत छाया- सुग्रीवे नगरे रम्ये, काननोद्यानशोभिते।
राजा बलभद्र इति, मृगा तस्याग्रमहिषी ॥१॥

अन्वयार्थ-काणण-कानन, (वनो), (और) उज्जाण-उद्यानों से, सोहिए-सुशोभित, रम्मे-रम्य, सुग्गीवे-सुग्रीव, णयरे-नगर मे, बलभद्दित्ति-बलभद्र, राया-राजा था, मिया-मृगा, तस्स-उसकी, अग्गमहिसी-अग्रमहिषी (पटरानी) थी।

भावानुवाद-कानन-उपवन और उद्यानो से सुशोभित 'सुग्रीव' नामक रमणीय नगर मे 'बलभद्र' नामक राजा था। 'मृगा' उसकी पटरानी थी।

2 मृगा पटरानी की सन्तति का वर्णन

मूल गाथा- तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए।
अम्मापिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥2॥

संस्कृत छाया- तयो पुत्रो बलश्री, मृगापुत्र इति विश्रुत ।
अम्बापित्रोर्दयित, युवराजो दमीश्वर ॥२॥

अन्वयार्थ-तेसि-उनके, बलसिरी-बलश्री नामक, पुत्ते-पुत्र था, (जो कि) मियापुत्तेत्ति-मृगापुत्र के नाम से, विस्सुए-विश्रुत (प्रसिद्ध) था, (वह) अम्मापिऊण-माता-पिता को, दइए-दयित-प्रिय था, (वह) जुवराया-युवराज था, (और) दमीसरे-दमीश्वर था।

भावानुवाद-उनके 'बलश्री' नामक पुत्र था जो 'मृगापुत्र' के नाम से जाना जाता था। वह माता-पिता का प्रिय पात्र

साधना मे रस उत्पन्न करो, वह अमृत से बढकर आनन्द देगा।
इन्द्रिय विषयो मे आसक्त व्यक्ति को साधना
बालू (रेत) के लड्डू खाने के समान नि सार लगती है।

आत्मिक आनन्द की झलक मिलते ही सब कुछ सुकर हो जाता है।
उसे तारुण्य मे श्रमणत्व अग्नि शिखा के पान की तरह दुष्कर लगता है,
जिसने विषय सुखो को ही सुख माना है।

आकाक्षाओ मे अटका-भटका व्यक्ति ही साधना की
दुष्करता का विचार कर उनमे उलझा रहता है।
जिसकी भोगाकाक्षाए क्षीण हो गई उसके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है।

नरक के दु खो का अनुभव सयम के कष्टो को हल्का कर देता है।
जिसने नरक की भयकर वेदनाओ का अनन्त बार अनुभव कर लिया,
उसे यहा कुछ भी वेदनामय नहीं लगता।

साधना स्व सापेक्ष होती है, उसम परावलम्बन नहीं होता।
मुनिचर्या तो मृगचर्या है, मृग के रुग्ण होने पर कौन औषधि देता है?
स्वय स्वस्थ होने पर भोजनार्थ निकलता है।
यहीं चिन्तन साधक को स्वावलम्बी बना देता है।

चेतना के जागृत होते ही, नि सार छूट जाता है।
जागृत चेता व्यक्ति बाह्य वैभव एव परिजन सम्बन्धो को वैसे ही छोड देता है,
जैसे शरीर पर लगी रज (धूली) को पशु झटक देता है।

□□□

मियापुत्तीयं एगुणवीसइमं अज्झयणं

मृगापुत्रीयमेकोनविंशतितममध्ययनम्

मृगापुत्रीय

1 बल भद्र राजा का पारिवारिक परिचय

मूल गाथा- सुग्गीवे णयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए।
राजा बलभद्दि त्ति, मिया तस्सग्गमहिसी ॥१॥

संस्कृत छाया- सुग्रीवे नगरे रम्ये, काननोद्यानशोभिते।
राजा बलभद्र इति, मृगा तस्याग्रमहिषी ॥१॥

अन्वयार्थ-काणण-कानन, (वना), (और) उज्जाण-उद्यानों से, सोहिए-सुशोभित, रम्मे-रम्य, सुग्गीवे-सुग्रीव, णयरे-नगर मे, बलभद्दित्ति-बलभद्र, राया-राजा था, मिया-मृगा, तस्स-उसकी, अग्गमहिसी-अग्रमहिषी (पटरानी) थी।

भावानुवाद-कानन-उपवन और उद्यानो से सुशोभित 'सुग्रीव' नामक रमणीय नगर मे 'बलभद्र' नामक राजा था। 'मृगा' उसकी पटरानी थी।

2 मृगा पटरानी की सन्तति का वर्णन

मूल गाथा- तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए।
अम्मापिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥२॥

संस्कृत छाया- तयो पुत्रो बलश्री, मृगापुत्र इति विश्रुत।
अम्बापित्रोर्दयित, युवराजो दमीश्वर ॥२॥

अन्वयार्थ-तेसि-उनके, बलसिरी-बलश्री नामक, पुत्ते-पुत्र था, (जो कि) मियापुत्तेत्ति-मृगापुत्र के नाम से, विस्सुए-विश्रुत (प्रसिद्ध) था, (वह) अम्मापिऊण-माता-पिता को दइए-दयित-प्रिय था, (वह) जुवराया-युवराज था, (और) दमीसरे-दमीश्वर था।

भावानुवाद-उनके 'बलश्री' नामक पुत्र था जो 'मृगापुत्र' के नाम से जाना जाता था। वह माता-पिता का प्रिय पात्र

था तथा युवराज एव दमीश्वर अर्थात् शत्रुओ का दमन करने मे प्रमुख था।

3 मृगापुत्र की सुख सम्पत्ति एव प्रवृत्ति सम्बन्धि वर्णन

मूल गाथा- णदणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं।
देवो दोगुदगो चेव, णिच्च मुइयमाणसो॥३॥

सस्कृत छाया- नन्दने स तु प्रासादे, क्रीडति सह स्त्रीभि ।
देवो दोगुन्दकश्चैव, नित्य मुदितमानस ॥३॥

अन्वयार्थ-सोउ-वह, णिच्च-सदा, मुइयमाणसो-प्रसन्नचित्त होकर, णदणे-नन्दन, पासाए-प्रसाद (महला) म, दोगुदगो-दोगुन्दक, देवो चेव-देव की तरह, इत्थिहिं-स्त्रियो के, सह-साथ, कीलए-क्रीडा करता था।

भावानुवाद-वह अपने नन्दन-प्रासाद आनन्द भवन म सदा प्रसन्न चित्त से दोगुन्दक देवो के समान स्त्रियों के साथ क्रीडा करता था।

4 मृगापुत्र द्वारा राज्य भवन से नगरादि को देखना

मूल गाथा- मणिरयणकोट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ।
आलोएइ णगरस्स, चउक्कतियचच्चरे ॥४॥

सस्कृत छाया- मणिरत्नकुट्टिमतले, प्रासादालोकनस्थित ।
आलोकयति नगरस्य, चतुष्कत्रिकचत्वरान् ॥४॥

अन्वयार्थ-(एक दिन मृगापुत्र) मणि-मणि और, रयण-रत्नो से जडित, कुट्टिमतले-कुट्टिमतल-फर्शवाले, पासाय-प्रासाद के, आलोयण-आलोकन (गवाक्ष) मे, ट्ठिओ-स्थित होकर, णगरस्स-नगर के, चउक्क-चौराहा, त्तिय-तिराहो और, चच्चरे-चौहट्टो को, आलोएइ-देख रहा था।

भावानुवाद-एक दिन मृगापुत्र मणि और रत्नो से जडित कुट्टिमतल (फर्श) वाले महल के गवाक्ष (झरोखे) में बैठा हुआ नगर के चतुष्पथ-त्रिपथ एव चौपाल (चौहट्टो) को देख रहा था।

5 मृगापुत्र को सयम शील मुनि का दर्शन

मूल गाथा- अह तत्थ अइच्छत, पासई समणसजय।
तवणियमसजमधर, सीलड्ढ गुणआगर ॥५॥

सस्कृत छाया- अथ तत्रातिक्रामन्त, पश्यति सयतश्रमणम्।
तपोनियमसयमधर, शीलाढ्य गुणाकरम् ॥५॥

अन्वयार्थ-अह-तदनन्तर, (मृगापुत्र ने) तत्थ-वहा पर, अइच्छत-चलते हुए, तव-तप, णियम-नियम, (और) सजमधर-सयम के धारक, सीलड्ढ-शील से समृद्ध, (तथा) गुण आगर-गुणों के आकर, (खान) (एक) संजय-सयमी, समण-श्रमण को, पासइ-देखा।

भावानुवाद-उस समय मृगापुत्र ने राजपथ पर जाते हुए तप, नियम और सयम के धारक, शील से सम्पन्न, गुणों के आकर श्रमण को देखा।

6 निर्निमेष दृष्टि से स्मृति ज्ञान की उत्पत्ति होने का दिग्दर्शन

मूल गाथा- त पेहइ मियापुत्तें, दिट्ठीए अणिमिसाए उ।
कहिं मण्णेरिस रुव, दिट्ठपुव्व मए पुरा॥६॥

सस्कृत छाया- त पश्यति मृगापुत्र , दृष्ट्याऽनिमेषया तु।
क्व मन्ये ईदृश रूप, दृष्टपूर्वं मया पुरा॥६॥

अन्वयार्थ-मियापुत्ते-मृगापुत्र, त-उस मुनि को, अणिमिसाए उ-अनिमिष, दिट्ठीए-दृष्टि से, पेहइ-देखता है, (और सोचता है) मण्णे-मैं मानता हू कि, एरिस-ऐसा, रूव-रूप, मए-मैंने, पुरा-पूर्व जन्म मे, दिट्ठपुव्व-पहले देखा है।

भावानुवाद-मृगापुत्र उस सयमी अनगार को निर्निमेष-अपलक दृष्टि से देखता है और मन ही मन सोचता है-मुझे लगता है ऐसा रूप मैंने इसके पूर्व भी कहीं देखा है।

7 मुनि दर्शन से जाति स्मरण ज्ञान किस प्रकार

मूल गाथा- साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे।
मोह गयस्स सतस्स, जाईसरण समुप्पण्णं॥७॥

सस्कृत छाया- साधोर्दर्शने तस्य, अध्यवसाने शोभने।
गतमोहस्य सत , जातिस्मरण समुत्पन्नम्॥७॥

अन्वयार्थ-साहुस्स-साधु के, दरिसणे-दर्शन से, तस्स-उस, मृगापुत्र के, अज्झवसाणम्मि-अध्यवसायो (भावो) के, सोहणे-शुद्ध होने पर, मोह गयस्स-(मैंने कहीं पर उसको देखा है, इस प्रकार की चिन्ता से) निर्मोहता को, सतस्स-प्राप्त होने पर, जाई-सरण-जाति स्मरण ज्ञान, समुप्पण्ण-समुत्पन्न हुआ।

भावानुवाद-साधु के दर्शन से और अध्यवसाओं की विशुद्धि होने पर, ऊहापोह (कि मैंने पूर्व में, कहीं देखा है) से उसके मोह का क्षयोपशम हुआ और उसे जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ।

8 जाति स्मरण होने के पश्चात् क्या?

मूल गाथा- देवलोगचुओ सतो, माणुस भवमागओ।
सण्णिणाणे समुप्पण्णे, जाइ सरइ पुराणय॥८॥

सस्कृत छाया- देवलोकच्युत सन्, मानुष भवमागत ।
सज्ञिज्ञाने समुत्पन्नो, जाति स्मरति पौराणिकीम्॥८॥

अन्वयार्थ-सण्णिणाणे-सज्ञी ज्ञान, समुपण्णे-उत्पन्न होने पर, (वह)पुराणय-पूर्वजन्म की, जाइ-जाति को,

सरइ-स्मरण करता है कि (मैं), देवलोग-देवलोक से, चुओसतो-च्युत होकर, माणुस्स भव-मनुष्य भव मे, आगओ-आया हू।

भावानुवाद-सज्ञी-ज्ञान उत्पन्न होने पर वह पूर्व जाति-जन्म का स्मरण करता है, 'देवलोक से च्युत हो (आयुष्यपूर्ण) कर मैं मनुष्य भव मे आया हू।'

9 पूर्व जन्म के कृत्यो का स्मरण

मूल गाथा- जाईसरणे समुप्पण्णे, मियापुत्ते महिड्ढिए।
सरई पोराणिय जाइ, सामण्ण च पुराकय ॥९॥

सस्कृत छाया- जातिस्मरणे समुत्पन्ने, मृगापुत्रो महर्द्धिक ।
स्मरति पौराणिकीं जाति, श्रामण्य च पुराकृतम् ॥९॥

अन्वयार्थ-जाई सरणे-जाति स्मरण, समुप्पण्णे-उत्पन्न होने पर, महिड्ढिए-महर्द्धिक, मियापुत्ते-मृगापुत्र, पोराणिय-अपने पुराने, जाइ-जन्म, च-और, पुराकय-पूर्वाचरित, सामण्ण-श्रामण्य को, सरई-स्मरण करता है।

भावानुवाद-जाति स्मरण के उत्पन्न होने पर महान् राजऋद्धि सम्पन्न मृगापुत्र अपनी पूर्व-जाति और पूर्वाचरित-पूर्वजन्म मे पालित श्रमण धर्म का स्मरण करता है।

10 सासारिक विषय भोगो से उपरामता एव सयम मे अनुराग

मूल गाथा- विसएसु अरज्जतो, रज्जतो सजमम्मि य।
अम्मापियरमुवागम्म, इम वयणमब्बवी ॥१०॥

सस्कृत छाया- विषयेष्वरज्यन्, रज्यन् सयमे च।
अम्बापितरावुपागम्य, इद वचनमब्रवीत् ॥१०॥

अन्वयार्थ-विसएसु-विषयो से, अरज्जतो-विरक्त, य-और, सजमम्मि-सयम मे, रज्जतो-अनुरक्त हुए (मृगापुत्र ने) अम्मा पियर-माता पिता के पास, उवागम्म-आकर, इम-इस प्रकार का, वयण-वचन, अब्बवी-कहा-

भावानुवाद-(पूर्व जन्म के ज्ञान के आधार पर) विषयो से विरक्त और सयम-साधना मे अनुरक्त होता हुआ मृगापुत्र माता-पिता के समक्ष उपस्थित होकर इस प्रकार कहने लगा-

11 माता पिता के पास आकर मृगापुत्र का निवेदन

मूल गाथा- सुयाणि मे पच महव्वयाणि,
णरएसु दुक्ख च तिरिक्खजोणिसु।
णिव्विण्णकामो मि महण्णवाओ,
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो! ॥११॥

सस्कृत छाया- श्रुतानि मया पच महाव्रतानि,
नरकेपु दु ख च तिर्यग्योनिपु।
निर्विण्णकामोऽस्मि महार्णवात्,
अनुजानीत प्रव्रजिष्यामि मात ।॥११॥

अन्वयार्थ-मे-मैने, महव्वयाणि-पच महाव्रतो को, (पूर्व जन्म मे) सुयाणि-सुना है, णरएसु-नरको मे, च-और, तिरिक्ख जोणिसु-तिर्यंच योनियो में, दुक्ख-दुख (भोगे हैं) अत , महण्णवाओ-ससार रूपी समुद्र से, णिव्विण्ण कामोमि-मैं निवृत्त होने का अभिलाषी हो गया हू, पव्वइस्सामि-मैं प्रव्रज्या ग्रहण करूगा, अम्मो-माताजी, अणुजाणह-मुझे आज्ञा दो।

भावानुवाद-'(हे माता-पिता!) मैंने पच महाव्रतो को सुना है तथा नरक और तिर्यंचो के दु ख भी सुने हैं (भोगे हैं)। मे ससार रूप महासागर से काम-विरक्त हो गया हू। मैं प्रव्रज्या ग्रहण करूगा। हे माताजी! मुझे अनुमति दीजिये।'

12 सासारिक सम्बन्ध का निरूपण काम भोगादि दु खदायी

मूल गाथा- अम्मताय! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबधदुहावहा॥१२॥

सस्कृत छाया- मात स्तात! मया भोगा, भुक्ता विषफलोपमा ।
पश्चात् कटुकविपाका, अनुबन्धदु खावहा ॥१२॥

अन्वयार्थ-अम्मताय!-हे माता-पिता!, मए-मैंने, भोगा-भोगो को, भुत्ता-भोग लिया है, (जो) विसफलोवमा-विषफल के समान है, पच्छा-बाद मे, कडुय-कटुक, विवागा-विपाक वाले, (और) अणुबध-निरन्तर, दुहावहा-दु ख देने वाले हैं।

भावानुवाद-'माता-पिता! मैं भोगा को भोग चुका हू। वे विषफल के समान अन्त मे कटु-विपाक वाले निरन्तर दु ख देने वाले है।'

13 शरीर भी अनित्य और दु खो की खान

मूल गाथा- इम सरीर अणिच्च, असुइ असुइसभव।
असासयावासमिण, दुक्खकेसाण भायणं॥१३॥

सस्कृत छाया- इद शरीरमनित्यम्, अशुच्यशुचिसभवम्।
अशाश्वतावासमिद, दु खक्लेशाना भाजनम्॥१३॥

अन्वयार्थ-इम-यह, सरीर-शरीर, अणिच्च-अनित्य है, असुइ-अपवित्र है, असुइ-अशुचि से, सभव-उत्पन्न हुआ है, असासयावास-जीव का निवास, अशाश्वत (अनियत) है, (तथा) इण-यह, दुक्ख-दु खो, (और) केसाण-क्लेशो का, भायण-भाजन है।

भावानुवाद-'यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है, अशौच पदार्थों से उत्पन्न हुआ है। इसमे जीव का आवास अशाश्वत है तथा यह दु ख और सक्लेशो का भाजन-स्थान है।'

14 शरीर की अशाश्वतता एव बुलबुले के समान क्षण भगुरता

मूल गाथा- असासए सरीरम्मि, रइ णोवलभामह।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसण्णिभे ॥१४॥

सस्कृत छाया- अशाश्वते शरीरे, रति नोपलभेऽहम्।
पश्चात् पुरा वा त्यक्तव्ये, फेनबुद्बुदसन्निभे ॥१४॥

अन्वयार्थ-सरीरम्मि-इस शरीर मे, अह-मैं, रइ-रति (आनन्द) ण-नहीं, उवलभा-प्राप्त करता (क्योकि), यह फेण-फेन (पानी) के, बुब्बुय-बुलबुले के, सण्णिभे-समान है, पुरा-पहले, व-अथवा, पच्छा-बाद म, चइयव्वे-छोडना ही है।

भावानुवाद-'पहले या पीछे इस शरीर को अवश्य ही छोडना है, क्योकि यह पानी के बुलबुले के समान अशाश्वत-अनित्य है। अत इस नाशवान् शरीर मे मुझे आनन्द नहीं मिल रहा है।'

15 मनुष्य भव की असारता

मूल गाथा- माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए।
जरामरणघत्थम्मि, खणपि ण रमामह ॥१५॥

सस्कृत छाया- मनुष्यत्वे असारे, व्याधिरोगाणामालये।
जरामरणग्रस्ते, क्षणमपि न रमेऽहम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-वाही-व्याधि, रोगाण-(और) रोगो के, आलए-घर (तथा), जरा-बुढापा, और मरण-मृत्यु से, घत्थम्मि-ग्रसे हुए, असारम्मि-इस असार, माणुसत्ते-मनुष्य शरीर मे, (अव) खणंपि-एक क्षणमात्र भी, अह-मैं, ण रमा-सुख नहीं पाता हू।

भावानुवाद-'व्याधि और रोगो के केन्द्र-घर तथा जरा और मृत्यु से आक्रान्त इस असार मनुष्य तन में मैं एक क्षण को भी सुख नहीं पा रहा हू।'

16 मनुष्य भव सबधित प्रत्येक दशा के दु ख का दिग्दर्शन

मूल गाथा- जम्म दुक्खं जरा दुक्ख, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु ससारो, जत्थ कीसति जतवो ॥१६॥

सस्कृत छाया- जन्म दु ख जरा दु ख, रोगाश्च मरणानि च।
अहो दु ख खलु ससार, यत्र क्लिश्यन्ति जन्तव ॥१६॥

अन्वयार्थ-जम्म-जन्म का, दुक्ख-दुख, जरा दुक्ख-बुढापे का दुख, रोगाणि-रोग, य-और, मरणाणि-मरण का दु ख, य-पुन , अहो-आश्चर्य है, हु-निश्चय ही, ससारो-यह ससार, दुक्खो-दु ख रूप है, जत्थ-जहा, जतवो-जीव, कीसति-क्लेश पाते है।

भावानुवाद-'जन्म-दु ख हे। जरा-बुढापा दु ख है। रोग दु ख है। मरण दु ख है। अहो! यह समस्त ससार ही दु खमय है, जहा जीव सक्लेशित होते है।'

17 ससार से निर्वेद विषयक वर्णन

मूल गाथा- खेत्त वत्थु हिरण्ण च, पुत्तदार च बधवा।
चइत्ता ण इम देह, गतव्वमवसस्स मे ॥१७॥

सस्कृत छाया- क्षेत्र वास्तु हिरण्य च, पुत्रदाराश्च बान्धवान्।
त्यक्त्वेम देह, गन्तव्यमवशस्य मे ॥१७॥

अन्वयार्थ-खेत्त-क्षेत्र, (खेत आदि खुली जमीन) वत्थु-वस्तु घर, हिरण्ण-हिरण्य-स्वर्णादि, पुत्त-पुत्र, च-और, दार-स्त्री, च-तथा , बधवा-बन्धुजन, (और) इम-इस , देह-शरीर को, चइत्ताण-छोडकर, मे-मुझे, अवसस्स-अवश्य ही, (विवश होकर) गतव्व-चले जाना है।

भावानुवाद-' (मैं जान गया हू कि) क्षेत्र-खेत, मकान, सोना, पुत्र, पत्नी, बन्धुजन और इस शरीर को छोडकर एक दिन विवश होकर मुझे अवश्य ही चले जाना है।'

18 विषयभोगो के कटु विपाक का वर्णन

मूल गाथा- जहा किपाकफलाण, परिणामो ण सुदरो।
एव भुत्ताण भोगाण, परिणामो ण सुदरो॥१८॥

सस्कृत छाया- यथा किपाकफलाना, परिणामो न सुन्दर ।
एव भुक्ताना भोगाना, परिणामो न सुन्दर ॥१८॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, किपाकफलाण-विषरूप किपाक फलो का, परिणामो-परिणाम, ण सुदरो-सुन्दर नहीं हाता, एव-उसी प्रकार, भुत्ताण-भोगे हुए, भोगाण-भोगो का, परिणामो-परिणाम, (भी) ण सुदरो-सुन्दर नहीं होता।

भावानुवाद-'जैसे किपाक-विषफला के उपभोग का अन्तिम परिणाम सुन्दर नहीं होता है, वैसे ही भोगे हुए भोगा का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता है।'

19 धर्म से रहित मनुष्य परलोक मे भी दु खी दृष्टान्त द्वारा प्रदर्शन

मूल गाथा- अद्धाण जो महत तु, अपाहेज्जो पव्वज्जइ।
गच्छतो सो दुही होइ, छुहातण्हाइपीडिओ॥१९॥

सस्कृत छाया- अध्वान यो महान्त तु, अपाथेय प्रव्रजति।
गच्छन् स दु खी भवति, क्षुधातृष्णया पीडित ॥१९॥

अन्वयार्थ-जो-जो व्यक्ति, अपाहेज्जो-पाथेय रहित, महत-महान्, (लम्बे) अद्धाण-मार्ग का, पवज्जइ-अनुसरण करता है, सो-वह, गच्छतो-चलते हुए, छुहा-भूख और, तण्हाइ-प्यास से, पीडिओ-पीडित होकर, दुही-दु खी, होइ-होता है।

भावानुवाद-'जो व्यक्ति लम्बे मार्ग का पथिक होकर पाथेय (पथ का सबल-भाता) लिये बिना ही चल पडता है, वह मार्ग मे क्षुधा और तृषा से पीडित होता हुआ दु खी होता है।'

20 शारीरिक व्यथा और रोग से मानसिक कष्ट

मूल गाथा- एव धम्म अकाऊण, जो गच्छइ पर भव।
गच्छतो सो दुही होइ, वाहिरोगेहिं पीडिओ॥२०॥

सस्कृत छाया- एव धर्ममकृत्वा, यो गच्छति पर भवम्।
गच्छन् स दु खी भवति, व्याधिरोगै पीडित ॥२०॥

अन्वयार्थ-एव-इसी प्रकार, जो-जो व्यक्ति, धम्म-धर्म को, अकाऊण-किये बिना, पर भव-परभव में, गच्छइ-जाता है, सो-वह, गच्छतो-जाता हुआ, वाही-व्याधि (और), रोगेहिं-रोगा से, पीडिओ-पीड़ित होकर, दुही दु खी, होइ-होता है।

भावानुवाद-'इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म किये बिना ही परभव मे चला जाता है, वह जाता हुआ व्याधि और रोगा से पीडित होकर दु खी होता है।'

21 क्षुधा और तृषा का कष्ट सबसे अधिक प्रबल

मूल गाथा- अद्धाण जो महत तु, सपाहेज्जो पवज्जइ।
गच्छतो सो सुही होइ, छुहातण्हाविवज्जिओ॥२१॥

सस्कृत छाया- अध्वान यो महान्त तु, सपाथेय प्रव्रजति।
गच्छन् स सुखी भवति, क्षुधातृष्णाविवर्जित ॥२१॥

अन्वयार्थ-जो-जो व्यक्ति, सपाहेज्जो-पाथेय सहित, महत तु-महान, (लम्बे) अद्धाण-मार्ग पर, पवज्जइ-चलता है, सो-वह, छुहा-भूख, और तण्हा-प्यास की पीडा से, विवज्जिओ-रहित होकर, सुही-सुखी, होइ-होता है।

भावानुवाद-'जो व्यक्ति पाथेय साथ में लेकर लम्बे मार्ग पर प्रयाण करता है वह क्षुधा तृपा की पीडा से रहित होकर सुखी होता है।'

22 वेदना से रहित लघुकर्मी होना

मूल गाथा- एव धम्मऽवि काऊण, जो गच्छइ पर भव।
गच्छतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे॥२२॥

सस्कृत छाया- एव धर्ममपि कृत्वा, यो गच्छति पर भवम्।
गच्छन् स सुखी भवति, अल्पकर्माऽवेदन ॥२२॥

अन्वयार्थ-एव-इसी प्रकार, जो-जो व्यक्ति, धम्मऽवि-धर्म को, काऊण-करके, पर-पर, भव-भव मे, गच्छइ-जाता है, सो-वह अप्पकम्मे-अल्प कर्मवाला (और), अवेयणे-वेदना से रहित होकर, गच्छतो-जाता हुआ, सुही-सुखी, होइ-होता है।

भावानुवाद-'इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्माचरण करके परभव को जाता है, वह अल्पकर्मा और वेदना से रहित होकर जाते हुए सुखी होता है।'

23 असार पदार्थों को छोड़कर सारभूत को ग्रहण करना

मूल गाथा- जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू।
सारभाडाणि णीणेइ, असार अवउज्झइ॥२३॥

सस्कृत छाया- यथा गृहे प्रदीप्ते, तस्य गृहस्य य प्रभु ।
सारभाण्डानि निष्काशयति, असारमपोज्झति॥२३॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, गेह-घर के, पलित्तम्मि-प्रज्वलित होने पर, तस्स-उस, गेहस्स-घर का, जो-जो, पहू-स्वामी है (वह), सारभाडाणि-मूल्यवान सार वस्तुओ को, णीणेइ-बाहर निकाल देता है (और) असार-असार तुच्छ वस्तुओ को, अवउज्झइ-छोड देता है।

भावानुवाद-'जिस प्रकार घर मे आग लग जाने पर गृह-स्वामी-उस घर का मालिक सारभूत-मूल्यवान् वस्तुओ को बाहर निकालता है और मूल्यहीन-नि सार वस्तुओ को वहीं छोड देता है।'

24 माता पिता से सयम ग्रहण की अनुमति याचना

मूल गाथा- एव लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाण तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमण्णिओ॥२४॥

सस्कृत छाया- एव लोके प्रदीप्ते, जरया मरणेन च।
आत्मान तारयिष्यामि, युष्माभ्यामनुमत ॥२४॥

अन्वयार्थ-एव-इसी प्रकार, जराए-वृद्धावस्था, य-और, मरणेण-मृत्यु से, पलित्तम्मि-जलते हुए, लोए-इस लोक में, तुब्भेहिं-आप की, अणुमण्णिओ-अनुमति पाकर, अत्ताण-आत्मा को, तारइस्सामि-पार करूगा।

भावानुवाद-'उसी प्रकार जरा और मृत्यु से जलते हुए इस लोक मे से आपकी अनुमति प्राप्त करके, मैं सार भूत अपनी आत्मा को इससे बाहर निकालूगा-पार करूगा।'

25 माता पिता द्वारा श्रमण धर्म की दुष्करता का वर्णन

मूल गाथा- त बितम्मापियरो, सामण्ण पुत्ता! दुच्चर।
गुणाण तु सहस्साइ, धारेयव्वाइ भिक्खुणो॥२५॥

सस्कृत छाया- त ब्रूतोऽम्बापितरौ, श्रामण्य पुत्र। दुश्चरम्।
गुणाना तु सहस्राणि, धारयितव्यानि भिक्षो ॥२५॥

अन्वयार्थ-अम्मा-पियरो-माता पिता ने, त-उससे, वित-कहा, पुत्त!-हे पुत्र! सामण्ण-श्रमण धर्म (सयम वृत्ति) का पालन, दुच्चर-दुष्कर है, भिक्खुणो-भिक्षु को, तु-तो, सहस्साइ-हजारों, गुणाण-गुण, धारेयव्वाइ-धारण करने पडता हैं।

भावानुवाद-माता पिता ने उसे समझाते हुए कहा-'हे पुत्र! श्रमण चर्या अतीव दुष्कर है। भिक्षु को हजारों गुण नियमोपनियम धारण करने पडते हैं।'

26 साधु के आचरणीय प्रथम महाव्रत प्राणातिपात से निवृत्ति दुष्कर

मूल गाथा- समया सव्वभूएसु, सत्तु मित्तेसु वा जगे।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करा ॥२६॥

सस्कृत छाया- समता सर्वभूतेषु, शत्रुमित्रेषु वा जगति।
प्राणातिपातविरति, यावज्जीव दुष्करा ॥२६॥

अन्वयार्थ-जगे-ससार मे, सत्तु-शत्रु हो, वा-अथवा, मित्तेसु-मित्र, सव्वभूएसु-सभी जीवो पर, समया-समभाव रखना (तथा), जावज्जीवाए-जीवन पर्यन्त, पाणाइवाय-प्राणातिपात (हिसा) से, विरई-विरत होना, दुक्करा दुष्कर है।

भावानुवाद-'साधु को शत्रु के प्रति ही नहीं, समग्र प्राणियो पर समभाव रखना पडता है। जीवन पर्यन्त के लिए प्राणातिपात-हिसा से निवृत्त होना पडता है-जो कि अत्यन्त दुष्कर है।'

27 द्वितीय मृषावाद महाव्रत की दुष्करता

मूल गाथा- णिच्चकालप्पमत्तेण, मुसावायविवज्जण।
भासियव्व हिय सच्च, णिच्चाउत्तेण दुक्कर ॥२७॥

सस्कृत छाया- नित्यकालाप्रमत्तेन, मृषावादविवर्जनम्।
भाषितव्य हित सत्य, नित्यायुक्तेन दुष्करम् ॥२७॥

अन्वयार्थ-णिच्चकाल-सदैव, अप्पमत्तेण-अप्रमत्त रहकर, मुसावाय-मृषावाद का, विवज्जण-त्याग करना (तथा), णिच्च-सदा, आउत्तेण-उपयोग के साथ, हिय-हितकारी (और), सच्च-सत्य, भासियव्वं-बोलना, दुक्करं-अत्यन्त दुष्कर है।

भावानुवाद-'सदैव प्रमाद रहित होकर मृषावाद का परित्याग करना तथा प्रतिपल सजगता के साथ हितप्रद सत्य बोलना कठिन है।'

28 तृतीय महाव्रत की दुष्करता का प्रतिपादन

मूल गाथा- दतसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जण।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं ॥२८॥

संस्कृत छाया- दन्तशोधनादे , अदत्तस्य विवर्जनम्।
अनवद्यैषणीयस्य, ग्रहणमपि दुष्करम्॥२८॥

अन्वयार्थ-अदत्तस्स-बिना दिये हुए, दंतसोहण-दन्तशोधन मात्र, आइस्स-आदि पदार्थ का, विवज्जण-त्याग करना, (ग्रहण न करना), अणवज्ज-निरवद्य (और), एसणिज्जस्स-एषणीय (निर्दोष) पदार्थों का, गिण्हणा-ग्रहण करना, अवि-भी, दुक्कर-दुष्कर है।

भावानुवाद-'दन्त शोधन-दांत साफ करने का तिनका आदि भी बिना दिए न लेना तथा प्रदत्त-दी जाने वाली वस्तु भी अनवद्य-निर्दोष और एषणीय ही लेना, अति दुष्कर है।'

29 चतुर्थ महाव्रत की दुष्करता

मूल गाथा- विरई अबंभचेरस्स, कामभोगरसण्णुणा।
उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्वं सुदुक्करं॥२९॥

संस्कृत छाया- विरतिरब्रह्मचर्यस्य, कामभोगरसज्ञेन।
उग्रं महाव्रतं ब्रह्मचर्यं, धारयितव्यं सुदुष्करम्॥२९॥

अन्वयार्थ-कामभोग-कामभोगों के, रसण्णुणा-रस के ज्ञाता के लिए, अबंभचेरस्स-अब्रह्मचर्य से, विरई-विरति (तथा), उग्गं-उग्र, बंभं-ब्रह्मचर्य, महव्वयं-महाव्रत को, धारेयव्वं-धारण करना, सुदुक्करं-अत्यन्त दुष्कर है।

भावानुवाद-'काम भोग के रसज्ञ (लोलुप) व्यक्ति के लिए ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारण करना अत्यन्त दुष्कर है।'

30 पंचम अपरिग्रह महाव्रत की दुष्करता

मूल गाथा- धणधण्णपेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणं।
सव्वारंभपरिच्चाओ, णिम्ममत्तं सुदुक्करं॥३०॥

संस्कृत छाया- धनधान्यप्रेष्यवर्गेषु, परिग्रहविवर्जनम्।
सर्वारंभपरित्यागं, निर्ममत्वं सुदुष्करम्॥३०॥

अन्वयार्थ-धण-धन, धण्ण-धान्य, पेसवग्गेसु-दास वर्ग के प्रति, णिम्ममत्तं-निर्ममत्व, ममता का त्याग (तथा), परिग्गह-परिग्रह का, विवज्जणं-त्याग (और), सव्वारंभ-सर्व प्रकार के आरम्भ का, परिच्चाओ-परित्याग करना, सुदुक्करं-अत्यन्त दुष्कर है।

भावानुवाद-'धन, धान्य और भृत्य-नौकर-चाकर आदि परिग्रह का त्याग करना तथा सर्वारम्भ परित्यागी होकर निर्ममत्व होना अतीव कठिन है।'

31 छठे रात्रि भोजन की दुष्करता का प्रतिपादन

मूल गाथा- चउव्विहे ऽवि आहारे, राईभोयण वज्जणा।
सण्णिही संचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं॥३१॥

संस्कृत छाया- चतुर्विधेऽप्याहारे, रात्रिभोजनवर्जना।
सन्निधिसञ्चयश्चैव, वर्जितव्य सुदुष्कर ॥३१॥

अन्वयार्थ-चउव्विहे वि-चारो प्रकार के, आहारे-आहार का, राई भोयण-रात्रि भोजन का, वज्जणा-त्याग करना, सण्णिही-सन्निधि, चेव-और, सचओ-सचय का, वज्जेयव्वो-वजन करना, सुदुक्कर-अत्यन्त दुष्कर है।

भावानुवाद-चतुर्विध (अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य) आहार का रात्रि में त्याग करना तथा घृतादि सन्निधि सचय न करना अत्यन्त दुष्कर है।

32 माता-पिता द्वारा परीषहो के सहन की दुष्करता

मूल गाथा- छुहा तण्हा य सीउण्ह, दसमसगवेयणा।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेव य ॥३२॥

संस्कृत छाया- क्षुधा तृषा च शीतोष्ण, दशमशकवेदना।
आक्रोशा दु खशय्या च, तृणस्पर्शा जल्लमेव च ॥३२॥

अन्वयार्थ-छुहा-भूख, तण्हा-प्यास, य-और, सीउण्ह-शीत उष्ण (तथा), दस मसग-दश (डास), मशक (मच्छरो) की, वेयणा-वेदना, अक्कोसा-आक्रोश वचन, य-एव, दुक्ख-दु ख रूप, सेज्जा-शय्या, तण फासा-तृण स्पर्श, य-तथा, जल्लमेव-मैल धारण।

भावानुवाद-'भूख, प्यास, शीत, उष्ण, डास और मच्छरो की पीडा, आक्रोश वचन, दु खप्रद शय्या-कष्टकारी स्थान, तृण स्पर्श तथा मैल-

33 अन्य परीषह विजय की कठिनाईयो का वर्णन

मूल गाथा- तालणा तज्जणा चेव, वहबधपरीसहा।
दुक्ख भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ॥३३॥

संस्कृत छाया- ताडना तर्जना चैव, वधबन्धौ परीषहौ।
दु ख भिक्षाचर्याया, याचना चालाभता ॥३३॥

अन्वयार्थ-तालणा-ताडना, तज्जणा-तजना, चेव-और, वह-वध, बध-बधन, परीसहा-परीषह भिक्खायरिया-भिक्षाचर्या, जायणा-याचना, य-और, अलाभया-अलाभ (इत्यादि परीषहो को सहन करना), दुक्ख-दु ख रूप है।

भावानुवाद-'ताडना, तर्जना, वध, बन्धन भिक्षावृत्ति, याचना और अलाभ आदि इन कष्टो को सहन करना अत्यन्त कठिन है।'

34 संयम की दुष्करता की प्रतीति कपोत वृत्ति

मूल गाथा- कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ अ दारुणो।
दुक्ख बभव्वय घोर, धारेउ य महप्पणो ॥३४॥

संस्कृत छाया- कापोती चेय वृत्ति , केशलोचश्च दारुण ।
दु ख ब्रह्मव्रत घोर, धर्तुं च महात्मना ॥३४॥

अन्वयार्थ-जा-जो, इमा-यह, वित्ती-साधु वृत्ति, कावोया-कपोत, पक्षी (कबूतर) क समान है, य-तथा, दारुणो-दारुण, केसलोओ-केशलोचन, य-और, घोर-घोर, बभव्वय-ब्रह्मचर्य व्रत, धारेउ-धारण करना, महप्पणो-महात्मा पुरुषा क लिए, दुक्ख-दुष्कर है।

भावानुवाद-'मुनि जीवन मे यह जो कापोतवृत्ति है अर्थात् कबूतर के समान दोषो के प्रति सशक एव सतर्क रहना, दारुण कश लुचन तथा घोर ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करना महान् आत्माओ के लिए भी दुष्कर है।'

35 सयम वृत्ति के पालन मे असमर्थता का कथन

मूल गाथा- सुहोइओ तुम पुत्ता! सुकुमालो सुमज्जिओ।
ण हुसी पभू तुम पुत्ता! सामण्णमणुपालिउ ॥३५॥

संस्कृत छाया- सुखोचितस्त्व पुत्र! सुकुमारश्च सुमज्जित ।
न खल्वसि प्रभुस्त्व पुत्र! श्रामण्यमनुपालयितुम् ॥३५॥

अन्वयार्थ-पुत्ता-हे पुत्र! तुम-तुम, सुहोइओ-सुखोचित हो, सुकुमालो-सुकुमार हो, सुमज्जिओ-सुमज्जित (साफ सुथरे) हो, अत पुत्ता-हे पुत्र! तुम-तुम, सामण्ण-श्रमणत्व का, अणुपालिउ-पालन करने मे, पभू-समर्थ, ण हुसी-नहीं हो।

भावानुवाद-'हे पुत्र! तू अभी सुख भोगने के योग्य है, सुकुमार है, सुमज्जित-स्वच्छ साफ सुथरा रहने का आदी है, अत हे पुत्र! तू अभी श्रामण्य का पालन करने मे सक्षम नहीं है।'

36 लोह भार की तरह अत्यन्त कठिन जीवन

मूल गाथा- जावज्जीवमविस्सामो, गुणाण तु महब्भरो।
गुरुओ लोहभारु व्व, जो पुत्ता! होइ दुव्वहो ॥३६॥

संस्कृत छाया- यावज्जीवमविश्राम , गुणाना तु महाभार ।
गुरुको लोहभार इव, य पुत्र! भवति दुर्वह ॥३६॥

अन्वयार्थ-पुत्ता-हे पुत्र! गुणाण-गुणो का, महब्भरो-महाभार, तु-तो, लोहभारुव्व-लोहे के भार के समान, गुरुओ-गुरुत्तर (भारी) है, जो-जिसे, जावज्जीव-जीवनपर्यन्त, अविस्सामो-विना विश्राम लिए, दुव्वहो-वहन करना (उठाना) कठिन, होइ-होता है।

भावानुवाद-''हे पुत्र! गुणो का महाभार तो लोहे के भार से भी गुरुत्तर है, जिसे जीवन भर कहीं विश्राम लिए विना पार ले जाना (ढोना) अत्यन्त कठिन है, क्योकि साधु जीवन मे जीवन पर्यन्त कहीं विश्राम नहीं है।''

37 गगा प्रवाह के तैरने के दृष्टान्त से सयम पालन की अत्यन्त दुरूहता

मूल गाथा- आगासे गंगसोउ व्व, पडिसोउ व्व दुत्तरो।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोदेही॥३७॥

सस्कृत छाया- आकाशे गगास्रोत इव, प्रतिस्रोतोवद् दुस्तर ।
बाहुभ्या सागरश्चैव, तरितव्यो गुणोदधि ॥३७॥

अन्वयार्थ-आगासे-आकाश मे, गगसोउव्व-गगा के स्रोत, पडिसोउव्व-प्रतिस्रोत, चेव-और, बाहाहिं-दोनों भुजाओ से, सागरो-समुद्र को, तरियव्वो-तैरना (जैसे), दुत्तरो-दुस्तर है, (वैसे ही) गुणोदेही-गुणा के सागर (सयम) को तैरना दुष्कर है।

भावानुवाद-"जैसे आकाश गगा को स्रोत तथा प्रतिस्रोत विपरीत प्रवाह मे तैरना, दुस्तर है। जैसे भुजाओ से सागर को तैरना दुस्तर है, उसी प्रकार गुणोदधि-सयम सागर को तैरना भी दुष्कर है।"

38 बालू और असिधारा के दृष्टान्त से सयम वृत्ति की नीरसता

मूल गाथा- वालुयाकवले चेव, णिरस्साए उ संजमे।
असिधारागमण चेव, दुक्कर चरिउ तवो॥३८॥

सस्कृत छाया- वालुकाकवलश्चैव, नि स्वादस्तु सयम ।
असिधारागमन चैव, दुष्कर चरितु तप ॥३८॥

अन्वायर्थ-वालुया-बालू के, कवले-कवल (कौर) की, चेव-तरह, सजमे-सयम, णिरस्साए-नि स्वाद है चेव-तथा, तवो-तप का, चरिउ-आचरण, उ-तो, असिधारा-तलवार की धार पर, गमण-चलने जैसा, दुक्कर-दुष्कर है।

भावानुवाद-"बालू के कौर के समान सयम-नि स्वाद-स्वाद रहित है। तपश्चरण तो तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है।"

39 चारित्र की दुष्करता सर्प एव लोहे के जवो का दृष्टान्त

मूल गाथा- अही वेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्ता! दुच्चरे।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्कर॥३९॥

सस्कृत छाया- अहिरिवैकान्तदृष्ट्या , चारित्र पुत्र! दुष्कर ।
यवा लोहमयाश्चैव, चर्वयितव्या सुदुष्करा ॥३९॥

अन्वयार्थ-पुत्त-हे पुत्र! अही-साप, इव-की तरह, एगत-एकान्त, दिट्ठीए-दृष्टि से चरित्त-चारित्र धर्म में रमण दुच्चर-दुष्कर है, चेव-जैसे, लोहमया-लोहे के, जवा-यव (जौ), चावयव्वा-चबाना, सुदुक्करो-अति दुष्कर है।

भावानुवाद-"हे पुत्र! सर्प के समान एकाग्र-स्थिर दृष्टि से चारित्र धर्म का पालन करना महाकठिन है। जैसे लोहे

के चने चबाना कठिन है वैसे ही चारित्र पालन कठिन है–अति दुष्कर है।"

40 सयम की दुष्करता अग्नि के दृष्टान्त से

मूल गाथा- जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउ होइ सुदुक्करा।
तहा दुक्कर करेउ जे, तारुण्णे समणत्तण ॥४०॥

सस्कृत छाया- यथाग्निशिखा दीप्ता, पातु भवति सुदुष्करा।
तथा दुष्कर कर्तुं यत्, तारुण्ये श्रमणत्वम् ॥४०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, दित्ता-प्रज्वलित, अग्गीसिहा-अग्नि शिखा को, पाउ-पीना, सुदुक्करा-अत्यन्त दुष्कर, होइ-होता है, तहा-वैसे ही, जे-जो, तारुण्णे-युवावस्था मे, समणत्तण-श्रमण धर्म का पालन, करेउ-करता है, (वह) दुक्कर-दुष्कर है।

भावानुवाद-जैसे प्रज्वलित अग्निशिखा-ज्वाला को पीना दुष्कर होता है, वैसे ही युवावस्था मे श्रमण चर्या का पालन भी दुष्कर है।

41 वस्त्र की कोथली मे हवा भरने के समान सयम का पालन कठिन

मूल गाथा- जहा दुक्ख भरेउ जे, होइ वायस्स कोत्थलो।
तहा दुक्ख करेउ जे, कीवेण समणत्तण ॥४१॥

सस्कृत छाया- यथा दु ख भर्तुं यो, भवति वायो कोस्थल ।
तथा दु कर कर्तुं यत्, क्लीबेन श्रामण्यम् ॥४१॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, जे कोत्थलो-वस्त्र का जो कोथला (थैला), होइ-होता है, (उसे) वायस्स-हवा, भरेउ-भरना, दुक्ख-कठिन होता है, तहा-वैसे ही, जे कीवेण-कायर (क्लीव पुरुष) के द्वारा, समणत्तण-श्रमण धर्म का पालन, करेउ-करना, दुक्ख-कठिन होता है।

भावानुवाद-"जैसे वस्त्र के थैले को हवा से भरना कठिन है, वैसे ही कायर के द्वारा श्रमण धर्म का पालन करना भी कठिन है।"

42 श्रमणत्व की दुष्करता हेतु मेरुपर्वत का दृष्टान्त

मूल गाथा- जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करो मदरो गिरी।
तहा णिहुय णीसक, दुक्कर समणत्तणं ॥४२॥

सस्कृत छाया- यथा तुलया तोलयितु, दुष्करो मन्दरो गिरि ।
तथा निभृत निशक, दुष्कर श्रमणत्वम् ॥४२॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, मदरो गिरी-मेरुपर्वत को, तुलाए-तराजू से, तोलेउ-तोलना, दुक्करो-दुष्कर है, तहा वैस ही, णिहुय-निश्चल (और), णीसक-नि शक होकर, समणत्तण-श्रमण धर्म का पालन करना भी, दुक्कर दुष्कर है।

भावानुवाद-"जैसे सुमेरु पवत को तराजू से तोलना कठिन है, वैसे ही नि शक और निश्चल भाव से श्रमण धम का पालन भी दुष्कर है।"

43 भुजाओं से समुद्र पार करने के समान सयमवृत्ति का पालन दुष्कर

मूल गाथा- जहा भुयाहिं तरिउ, दुक्कर रयणायरो।
तहा अणुवसतेण, दुक्कर दमसागरो ॥४३॥

सस्कृत छाया- यथा भुजाभ्या तरितु, दुष्करो रत्नाकर ।
तथाऽनुपशान्तेन, दुष्करो दमसागर ॥४३॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, रयणायरो-रत्नाकर, (समुद्र) को, भुयाहिं-भुजाओ से, तरिउं-तैरना, दुक्कर-दुष्कर है, तहा-वैसे ही, अणुवसतेण-अनुपशान्त व्यक्ति के द्वारा, दम-दम (सयम) के, सागरो-सागर को तैरना, दुक्कर-दुष्कर है।

भावानुवाद-"जैसे भुजाओ से समुद्र को तैरना दुष्कर है, वैसे ही अनुपशान्त व्यक्ति के लिए सयम सागर को पार करना कठिन है।"

44 माता-पिता के आन्तरिक भावो का कथन

मूल गाथा- भुंज माणुस्सए भोए, पचलक्खणए तुम।
भुत्तभोगी तओ जाया! पच्छा धम्म चरिस्ससि ॥४४॥

सस्कृत छाया- भुक्ष्व मानुष्यकान् भोगान्, पचलक्षणकान् त्वम्।
भुक्तभोगी ततो जात! पश्चाद् धर्मं चरिष्यसि ॥४४॥

अन्वयार्थ-(अत) जाया-हे पुत्र! तुम-तुम, (पहले) पचलक्खणए-पाच लक्षणों वाले, माणुस्सए-मनुष्य सबधी भोए-भोगो का, भुंज-उपभोग कर, तओ-उसके, पच्छा-बाद, भुत्त भोगी-भुक्तभोगी होकर, धम्मं-श्रमण धर्म का, चरिस्ससि-आचरण करना।

भावानुवाद-"अत हे पुत्र! (हमारा तो कहना है) अभी तुम मनुष्य सबधी शब्दादि पाचों विषयो का सेवन-उपभोग करो। पहले भुक्तभोगी बनकर बाद में श्रमण धम का आचरण करना।"

45 युवराज मृगापुत्र द्वारा सयम वृत्ति की सुकरता का वर्णन

मूल गाथा- सो बितऽम्मापियरो, एवमेय जहा फुड।
इह लोए णिप्पिवासस्स, णत्थि किंचि वि दुक्कर ॥४५॥

सस्कृत छाया- स ब्रूतेऽम्बापितरौ, एवमेतद् यथास्फुटम्।
इह लोके निष्पिपासस्य, नास्ति किंचिदपि दुष्करम् ॥४५॥

अन्वयार्थ-सो-वह, मृगापुत्र, अम्मा पियरो-माता पिता से, बित-कहने लगा कि, जहा-फुड-(आपने) जैसा कहा, एवमेय-ऐसा ही है (किन्तु), इह लोए-इस लोक मे, णिप्पिवासस्स-तृष्णा रहित (पिपासा रहित) को, किंचिवि-कुछ भी, दुक्कर-दुष्कर, णत्थि-नहीं है।

भावानुवाद-मृगापुत्र-मृगापुत्र ने माता-पिता को उत्तर दिया-"जैसा आपने कहा वह सही है, किन्तु जो इस ससार के काम भोगो की तृष्णा-प्यास से मुक्त हो गया है, उसके लिए सयम साधना मे कुछ भी दुष्कर नहीं है।"

46 शारीरिक-मानसिक कष्टो का वर्णन

मूल गाथा- सारीरमाणसा चेव, वेयणाओ अणतसो।
मए सोढाओ भीमाओ, असइ दुक्खभयाणि य ॥४६॥

सस्कृत छाया- शारीरमानसश्चैव, वेदना अनन्तश।
मया सोढा भीमा, असकृद् दु खभयानि च ॥४६॥

अन्वयार्थ-मए-मैंने, सारीर-शारीरिक, चेव-और, माणसा-मानसिक, भीमाओ-भयकर, वेयणाओ-वेदनाए, अणतसो-अनन्तबार, सोढाओ-सहन की है, य-और, असइ-अनेक बार, दुक्ख-दु ख, और भयाणि-भय भी (अनुभव किये है)।

भावानुवाद-"मैने शारीरिक और मानसिक भीम-भयकर वेदनाए अनन्त बार सहन की है और अनेक बार महादु ख और महाभय भी सहन किये हैं।"

47 जरा मृत्यु रूप कान्तार एव चार गति रूप भयो का सहना दुष्कर

मूल गाथा- जरामरणकातारे, चाउरते भयागरे।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥४७॥

सस्कृत छाया- जरामरणकान्तारे, चातुरन्ते भयाकरे।
मया सोढानि भीमानि, जन्मानि मरणानि च ॥४७॥

अन्वयार्थ-मए-मैंने, चाउरते-चार गति रूप, भयागरे-भयो की आकर, (खान) मे, जरा-जरा (और), मरण-मृत्यु रूप, कान्तारे-कातार मे, भीमाणि-भयकर, जम्माणि-जन्म, य-और, मरणाणि-मरण के दु ख, सोढाणि-सहन किये हैं।

भावानुवाद-"मैंने नरकादि चार गति रूप वाले जरा-मृत्यु रूप भय के आकर ससार कान्तार में भयकर जन्म-मरण के दु ख सहे हैं।"

48 नरक गति के दु खो का वर्णन, उष्णता

मूल गाथा- जहा इह अगणी उण्हो, इत्तोऽणंतगुणे तहिं।
णरएसु वेयणा उण्हा, असाया वेइया मए॥४८॥

संस्कृत छाया- यथेहाग्निरुष्ण, इतोऽनन्तगुणस्तत्र।
नरकेषु वेदना उष्णा, असाता वेदिता मया॥४८॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, इह-यहा, अगणी-अग्नि, उण्हो-उष्ण है, इत्तो-इससे भी, अणंतगुणे-अनन्त गुणी अधिक अस्साया-असाता (दु ख) रूप, उण्हा-उष्ण, वेयणा-वेदना, मए-मैंने, तहिं-वहा, णरएसु-नरको म, वेइया-अनुभव की है।

भावानुवाद-"जैसे यहा अग्नि की उष्णता है, उससे भी अनन्तगुणी अधिक उष्ण-दु खो की वेदना-असाता मैंने नरक मे अनुभव की है।"

49 उष्णता के प्रतिपक्षी शीत स्पर्श जन्य दु ख

मूल गाथा- जहा इम इह सीय, इत्तोअणंतगुणो तहिं।
णरएसु वेयणा सीया, असाया वेइया मए॥४९॥

संस्कृत छाया- यथेदमिह शीतम्, इतोऽनन्तगुण तत्र।
नरकेषु वेदना शीता, असाता वेदिता मया॥४९।

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, इह-यहा, इम-यह, सीय-शीत है, इत्तो-इससे भी, अणंतगुणो-अनन्त गुणी अधिक तहिं-वहा, णरएसु-नरकों में, अस्साया-असाता (दु ख) रूप, सीया-शीत, वेयणा-वेदना, मए-मैंने, वेइया-अनुभव की है।

भावानुवाद-"जैसे यहा शीत है, उससे अनन्तगुणा अधिक दु-ख रूप शीत वेदना मैंने नरक में अनुभव की है।"

50 नरक की अन्य यातनाओं का वर्णन

मूल गाथा- कदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलंतमि, पक्कपुव्वो अणंतसो॥५०॥

संस्कृत छाया- क्रन्दन कन्दुकुम्भीषु, ऊर्ध्वपादोऽध शिरा।
हुताशने ज्वलति, पक्वपूर्वोऽनन्तश ॥५०॥

अन्वयार्थ-(मैं) नरक की, कदुकुभीसु-कन्दुकुम्भियो में, उड्ढपाओ-ऊचे पैर (और), अहोसिरो-नीचे सिर करके, जलंतमि-जलती हुई, हुयासणे-प्रज्वलित अग्नि मे, कदंतो-आक्रन्दन करता हुआ, अणंतसो-अनन्तबार, पुव्वो-पूर्व म, पक्क-पकाया गया हू।

भावानुवाद-"नरक की कन्दु कुम्भियो म मैं ऊपर पैर और नीचे सिर करके प्रज्वलित अग्नि म आक्रन्दन करता हुआ अनन्त बार पकाया गया हू।"

51 नरक गति की भयकर यातनाओ का दिग्दर्शन

मूल गाथा- महादवग्गिसकासे, मरुम्मि वइरवालुए।
कलम्बवालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणतसो ॥५१॥

सस्कृत छाया- महादवाग्निसकाशे, मरौ वज्रवालुकायाम्।
कदम्बवालुकाया च, दग्धपूर्वोऽनन्तश ॥५१॥

अन्वयार्थ-महा-भयकर, दवग्गी-दावाग्नि के, सकासे-सदृश, मरुम्मि-मरुप्रदेश मे (तथा), वइरवालुए-वज्रवालुका मे, य-और, कलम्बवालुयाए-कदम्ब वालुका मे, अणतसो-अनन्तबार (मै), दड्ढपुव्वो-पूर्व मे जलाया गया हू।

भावानुवाद-"महाभयकर दावानल के समान मरु प्रदेश मे तथा वज्र बालुका (वज्र के तुल्य कर्कश रेत) म और कदम्ब बालुका-तपी हुई नदी की रेत मे मैं अनन्त बार जलाया गया हू।"

52 नरक मे उत्पत्ति के समय के नाना प्रकार क कष्टो का वर्णन

मूल गाथा- रसतो कदुकुभीसु, उड्ढ बद्धो अबधवो।
करवत्तकरकयाईहिं, छिण्णपुव्वो अणतसो ॥५२॥

सस्कृत छाया- रसन् कन्दुकुम्भीपु, ऊर्ध्वं बद्धोऽबान्धव ।
करपत्रक्रकचै , छिन्नपूर्वोऽनन्तश ॥५२॥

अन्वयार्थ-अबधवो-स्वजन से रहित (असहाय), रसन्-आक्रन्दन करते हुए, कदुकुम्भीसु-कदुकुम्भी मे, उड्ढ-ऊचा, बद्धो-बाधकर, करवत्त-करवत, (आरा) और करकयाईहिं-क्रकचो (लघुशस्त्र) से, अणतसो-अनन्त बार (मैं), छिण्णपुव्वो-पहले छेदा गया हू।

भावानुवाद-'बन्धु-बान्धवो से विहीन-असहाय होकर रोता चिल्लाता हुआ मैं कन्दुकुम्भी मे ऊचा बाधा गया तथा करवत और आरे आदि शस्त्रो से अनन्त बार छेदा गया हूँ।'

53 नरक सम्बन्धी अन्य यातना का वर्णन

मूल गाथा- अइतिक्खकटगाइण्णे, तुगे सिबलिपायवे।
खेविय पासबद्धेण, कड्ढोकड्ढाहिं दुक्कर ॥५३॥

सस्कृत छाया- अतितीक्ष्णकण्टकाकीर्णे, तुगे शाल्मलिपादपे।
क्षेपित पाशबद्धेन, कर्षणापकर्षणैर्दुष्करम् ॥५३॥

अन्वयार्थ-अइ-अति, तिक्ख-तीक्ष्ण, कटग-काटों से, आइण्णे-आकीर्ण (व्याप्त), तुग-ऊचे, सिबलि-शाल्मलि, पायवे-वृक्ष पर, पासबद्धेण-पाश बध से, (मुझे) कड्ढो कड्ढाहिं-इधर उधर खींचकर, तथा खेविय-पूर्वोपार्जित, कर्मवश, दुक्कर-असह्य कष्ट दिये गये।

भावानुवाद-"अत्यन्त तीक्ष्ण काटो से व्याप्त ऊचे-ऊचे शाल्मलि-सेमल के वृक्ष पर रस्से आदि से पाश-बद्ध करके मुझे इधर-उधर खींचकर पूर्वबद्ध कर्मवश असह्य कष्ट दिये गये।"

54 कर्मों के प्रभाव से इक्षु की तरह पीलना

मूल गाथा- महाजतेसु उच्छू वा, आरसतो सुभेरव।
पीलिओऽमि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणतसो ॥54॥

संस्कृत छाया- महायन्त्रेष्विक्षुरिव, आरसन् सुभैरवम्।
पीडितोऽस्मि स्वकर्मभि, पापकर्माऽनन्तश ॥५४॥

अन्वयार्थ-(मैं) पावकम्मो-पापकर्म वाला, महाजतेसु-महायत्रो मे, उच्छूवा-इक्षु की तरह, सकम्मेहिं-अशुभ कर्मों के कारण, सुभेरव-अतिभयानक, आरसतो-आक्रन्दन करता हुआ, अणतसो-अनन्त बार, पीलिओऽमि पीला गया हू।

भावानुवाद-'अत्यन्त भयकर आक्रन्दन करता हुआ मैं पापकर्मा अपने कर्मों के कारण बडे-बडे यन्त्रों में गन्ने के समान अनन्त बार पीला गया हू।'

55 परमाधामी देवो द्वारा दिये गये कष्ट

मूल गाथा- कूवतो कोलसुणएहिं, सामेहि सबलेहि य।
पाडिओ फाडिओ छिण्णो, विप्फुरतो अणेगसो ॥55॥

संस्कृत छाया- कूजन् कोलशुनकै, श्यामै शबलैश्च।
पातित स्फाटित छिन्न, विस्फुरन्ननेकश ॥५५॥

अन्वयार्थ-कोल-सुअर, सुणएहिं-कुत्ते के रूप म, सामेहिं-श्याम, य-तथा, सबलेहिं-शबल नामक, परमाधामिक देवों द्वारा, विप्फुरतो-इधर उधर भागते हुए, कूवतो-चिल्लाते हुए (मुझे), अणगसो-अनेक बार, पाडिओ-नीचे गिराया (पटका) गया, फाडिओ-फाडा गया, (और) छिण्णो-छेदा गया।

भावानुवाद-'इधर-उधर भागते हुए और चिल्लाते हुए मुझे श्याम और शबल नामक परमाधामिक देवो द्वारा कुत्तों और सूअरो के रूप में अनेक बार गिराया गया, फाडा गया और छेदा गया।'

56 नरक की छेदन भेदन सम्बन्धी वेदना

मूल गाथा- असीहिं अयसिवण्णेहिं, भल्लीहिं पट्टिसेहि य।
छिण्णो भिण्णो विभिण्णो य, उववण्णो पावकम्मुणा ॥56॥

संस्कृत छाया- असिभिरतसीकुसुमवर्णै, भल्लीभि पट्टिशैश्च।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नश्च, उत्पन्न पापकर्मणा ॥५६॥

अन्वयार्थ-पावकम्मुणा-पाप कर्मों के कारण, (मैं) उववण्णो-नरक में उत्पन्न होकर अयसि-अलसी पुष्प के समान, वण्णेहिं-वर्ण वाले, असीहिं-तलवारो से, भल्लीहिं-भालों से, य-और पट्टिसेहिं-लोहे के दण्डों से, छिण्णो-छेदा गया भिण्णो-भेदा गया, य-और, विभिण्णो-खण्ड खण्ड कर दिया गया।

भावानुवाद-'पाप कर्मों के कारण नरक मे उत्पन्न होकर अलसी के फूलों के समान नीले रग की तलवारों से भालों

से और लोह-दण्डा से मै छेदा गया, भेदा गया और टुकडे-टुकडे कर दिया गया।'

57 यम देवो द्वारा दिये गये बहुत असह्य कष्ट

मूल गाथा- अवसो लोहरहे जुत्तो, जलते समिलाजुए।
चोइओ तोत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ ॥५७॥

सस्कृत छाया- अवशो लोहरथे युक्त , ज्वलति समिलायुते।
चोदितस्तोत्रयोक्त्रै , गवयो वा यथा पातित ॥५७॥

अन्वयार्थ-समिला जुए-समिला (लोहे की कील वाले जुए) से युक्त जुए वाले, जलते-जलते हुए, लोहरहे-लोहे के रथ मे (मैं), अवसो-विवश बना, जुत्तो-जोता गया हू, तोत्त-चाबुक (और), जुत्तेहिं-रस्सी से चोइओ-हाका, (प्रेरित किया) गया हू, वा-अथवा, रोज्झो-रोझ (गवय) की, जह-तरह, (पीटकर) पाडिओ-भूमि पर गिराया (पटका) गया हू।

भावानुवाद-समिला (जुए के छेदो मे लगाई जाने वाली कील) से युक्त जुए-जोडे वाले जलते हुए लोह रथ म मैं विवश होता हुआ जोता गया हू, चाबुक और रस्सी से हाका गया हू तथा रोझ की भाति पीटकर भूमि पर गिराया गया हू।

58 नरक सम्बन्धी अन्य यातना

मूल गाथा- हुयासणे जलतम्मि, चियासु महिसो विव।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥५८॥

सस्कृत छाया- हुताशने ज्वलति, चितासु महिष इव।
दग्ध पक्वश्चावश , पापकर्मभि प्रावृत ॥५८॥

अन्वयार्थ-पावकम्मेहिं-पापकर्मों से, पाविओ-घिरा हुआ, अवसो-पराधीन बना (मैं), चियासु-चिताओ मे, महिसो विव-भैंसे की तरह, जलतम्मि-जलती हुई, हुयासणे-अग्नि मे, दड्ढो-जलाया गया, य-और, पक्को-पकाया गया।

भावानुवाद-'मै पाप कर्मों से परिवृत परतन्त्र अग्नि की चिताओ मे भैंसे की तरह जलाया और पकाया गया हू।'

59 भयकर पक्षियो द्वारा नरक मे दी जाने वाली घोर वेदना

मूल गाथा- बला सडासतुडेहिं, लोहतुंडेहि पक्खिहिं।
विलुत्तो विलवतोऽहं, ढकगिद्धेहिंऽणतसो ॥५९॥

सस्कृत छाया- बलात् सदशतुण्डै , लोहतुण्डै पक्षिभि ।
विलुप्तो विलपन्नहम्, ढकगृध्रैरनन्तश ॥५९॥

अन्वयार्थ-लोहतुडेहिं-लोहे के समान कठोर मुख वाले (तथा), सडास तुडेहिं-सडासी जैसे मुखवाले, ढक-ढक और, गिद्धेहिं-गीध, पक्खिहिं-पक्षियो द्वारा, विलवतो-रोता विलखता हुआ, अह-मैं, वला-बलात्, (जबरन) अणतसो-अनन्त बार, विलुत्तो-विलुप्त किया (नोचा) गया हू।

भावानुवाद-"लोहे की सण्डासी जैसी कठोर चाच वाले ढक और गीध पक्षियो द्वारा मैं रोता बिलखता हुआ बलपूर्वक अनन्त बार नोचा गया हूँ।"

60 तीव्र पिपासा जन्य कष्टो का वर्णन

मूल गाथा- तण्हाकिलतो धावतो, पत्तो वेयरणि णइ।
जल पाहिति चिततो, खुरधाराहिं विवाइओ॥६०॥

सस्कृत छाया- तृष्णाक्लान्तो धावन्, प्राप्तो वैतरणीं नदीम्।
जल पास्यामीति चिन्तयन्, क्षुरधाराभिर्व्यापादित ॥६०॥

अन्वयार्थ-तण्हा-प्यास से, किलतो-व्याकुल होकर, धावतो-दौडता हुआ मैं, वेयरणि-वैतरणी, णइ-नदी पर पत्तो-पहुचा, जल-जल को, पाहि-पीऊगा, त्ति-इस प्रकार, चिततो-चिन्तन करता हुआ, खुर धाराहिं-छुरे का धार जैसी तीक्ष्ण जलधार से मैं, विवाइओ-चीरा गया (विनाश को प्राप्त हुआ)।

भावानुवाद-"प्यास से व्याकुल होकर मैं दौडता हुआ वैतरणी नदी पर पहुचा, जल पीऊगा यह सोच ही रहा था कि छुरे की धार जैसी तीक्ष्ण जलधारा से मैं चीरा गया।"

61 उष्णता की भयकरता एव तज्जन्य असह्य वेदना

मूल गाथा- उण्हाभितत्तो सपत्तो, असिपत्त महावणं।
असिपत्तेहिं पडतेहिं, छिण्णपुव्वो अणेगसो॥६१॥

सस्कृत छाया- उष्णाभितप्त सप्राप्त, असिपत्र महावनम्।
असिपत्रै पतद्भिश, छिन्नपूर्वोऽनेकश ॥६१॥

अन्वयार्थ-उण्हाभितत्तो-गर्मी से तप्त होकर, असिपत्त-असिपत्र, महावण-महावन में, सपत्तो-पहुचा (किन्तु) असिपत्तेहिं-(तलवार के समान तीक्ष्ण) असिपत्रो के, पडतेहिं-गिरने से, अणेगसो-अनेक बार, छिण्णपुव्वो-पूर्व मे छेदा गया।

भावानुवाद-"गर्मी से सन्तप्त होकर मैं शीतल छाया की खोज मे असि-पत्र महावन म पहुचा किन्तु वहा ऊपर से गिरते हुए असिपत्रो से-तलवार के समान तीक्ष्ण पत्रों स अनेक बार छेदा गया।"

62 मूसलो, गदाओं और त्रिशुलो से दिये गए कष्ट

मूल गाथा- मुग्गरेहि मुसुंढीहिं, सूलेहि मुसलेहिं य।
गयासभग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्ख अणतसो॥६२॥

संस्कृत छाया- मुद्गरैर्मुशण्डीभि , शूलैर्मुशलैश्च।
गदासभग्नगात्रै , प्राप्त दु खमनन्तश ॥६२॥

अन्वयार्थ-मुग्गरेहिं-मुद्गरो, मुसुढीहिं-मुसुण्डियो, सूलेहिं-शूलो, य-और, मूसलेहिं-मूसलो से, गयास-गदा से अगों को, भग्गगत्तेहिं-तोडने से, (मैंने) अणतसो-अनन्त बार, दुक्ख-दु ख को, पत्त प्राप्त किया है।

भावानुवाद-"सब तरफ से हताश हुए मेरे शरीर को मुद्गरो, मुसुण्डियो, शूलो और मूसलो से चूर-चूर कर दिया गया। ऐसा दु ख मैंने अनन्त बार भोगा है।"

63 यम देवो द्वारा दिये भयकर कष्टो का पुन वर्णन

मूल गाथा- खुरेहि तिक्खधारेहि, छुरियाहि कप्पणीहि य।
कप्पिओ फालिओ छिण्णो, उक्कित्तो य अणेगसो॥६३॥

संस्कृत छाया- क्षुरै तीक्ष्णधारै , क्षुरिकाभि कल्पनीभिश्च।
कल्पित पाटितश्छिन्न , उत्कृत्तश्चानेकश ॥६३॥

अन्वयार्थ-तिक्खधारेहिं-तीक्ष्ण धार वाले, खुरेहिं-क्षुरो से, छुरियाहिं-छुरियो से, य-और, कप्पणीहि-कैंचियो से (मैं), अणेगसो-अनेक बार, कप्पिओ-काटा गया हू, फालिओ-फाडा गया हू, छिण्णो-छेदा गया हू, य-और, उक्कित्तो-(मेरी) चमडी उधेडी गई है।

भावानुवाद-"तीक्ष्ण धार वाले छूरो से छुरियो और कैंचियो से मैं अनेक बार काटा गया हू, छेदा गया और फाडा गया। मेरी चमडी उतारी गई।"

64 मृग की भाति परवश होने से कूटपाशो से छल पूर्वक बाधना

मूल गाथा- पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अह।
वाहिओ बद्धरुद्धो वा, बहुसो चेव विवाइओ॥६४॥

संस्कृत छाया- पाशै कूटजालै , मृग इवावशोऽहम्।
वाहितो बद्धरुद्धो वा, बहुशश्चैव व्यापादित ॥६४॥

अन्वयार्थ-पासेहिं-पाशो, कूड जालेहिं-कूट जालो से, अवसो-विवश बने, मिओ वा-मृग की तरह, अह-मैं भी, बहुसो-बहुत बार वाहिओ-(छल पूर्वक) पकडा गया हू, बद्ध-बाधा गया हू, वा-और, रुद्धो-रोका गया हू, चेव-तथा, विवाइओ-विनष्ट किया गया हूं।

भावानुवाद-"पाशो और कूटजाला-छलबन्धनो से विवश बने मृग की तरह मैं भी अनेक बार छलपूर्वक पकडा गया, बाध कर रोका गया और विनष्ट कर दिया गया था।"

65 परलोक में जाकर नरक गति की वेदना का अनुभव

मूल गाथा- गलेहि मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अह।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणतसो॥६५॥

सस्कृत छाया- गलैर्मकरजालै, मत्स्य इवावशोऽहम्।
उल्लिखित पाटितो गृहीत, मारितश्चानन्तश ॥६५॥

अन्वयार्थ-गलेहिं-गलो (वडिशो) से तथा, मगरजालेहिं-मकराकार जालो से, मच्छो वा-मत्स्य की तरह, अवसो विवश बना हुआ, अह-मैं, अणतसो-अनन्त बार, उल्लिओ-खींचा गया, फालिओ-फाडा गया, गहिओ-पकडा गया, य-और, मारिओ-मारा गया हू।

भावानुवाद-''गला-मछली फसाने के काटों एव मगर को पकडने के जाला से मछली के समान विवश बन हुआ मैं अनन्त बार खींचा गया, फाडा गया, पकडा गया और मारा गया।''

66 निरपराध पक्षियो की भाति जालो द्वारा दिये गये कष्ट

मूल गाथा- वीदसएहिं जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव।
गहिओ लग्गो बद्धो य, मारिओ य अणतसो॥६६॥

सस्कृत छाया- विदशकैर्जालै, लेप्याभि शकुन इव।
गृहीतो लग्नो बद्धश्च, मारितश्चाऽनन्तश ॥६६॥

अन्वयार्थ-वीदसएहि-श्येनों (बाज पक्षिया) के द्वारा, जालेहिं-जालो के द्वारा, तथा लेप्पाहिं-वज्रलेपो के द्वारा सउणो-शकुन पक्षी की, विव-तरह (मैं), अणतसो-अनन्त बार, गहिओ-पकडा गया, लग्गो-चिपकाया गया य-तथा, बद्धो-बाधा गया, य-और, मारिओ-मारा गया।

भावानुवाद-''बाज-शिकारी पक्षिया, जालो तथा वज्रलेपा-चिपकाने वाले श्लेष्य द्रव्यो के द्वारा पक्षी की तरह मैं अनन्त बार पकडा गया, चिपकाया गया, जाला में बाधा गया और (अन्त में) मारा गया।''

67 हरे भरे वृक्षो की तरह काटना, चीरना, तराशना

मूल गाथा- कुहाडफरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव।
कुट्टिओ फालिओ छिण्णो, तच्छिओ य अणतसो॥६७॥

सस्कृत छाया- कुठारपरश्वादिभि, वार्धिकैर्द्रुम इव।
कुट्टित पाटितश्छिन्न, तक्षितश्चानन्तश ॥६७॥

अन्वयार्थ-वड्ढइहिं-बढई लोगो द्वारा, दुमो विव-वृक्ष की तरह (मैं), कुहाड-कुल्हाडी और फरसुमाईहिं-फरसे आदि से, अणतसो-अनन्त बार, कुट्टिओ-कूटा गया हू, फालिओ-फाड़ा (चीरा) गया हू, छिण्णो-छेदा गया हू, य-और, तच्छिओ-छीला गया हू।

भावानुवाद-''जैसे बढइ कुल्हाडे और फरसे आदि औजारों से वृक्ष को काटते हैं, चीरते हैं, टुकडे-टुकडे करते हैं, छेद करते हैं और छीलकर तराशते हैं, उसी प्रकार मैं भी अनन्त बार काटा गया, चीरा गया, टुकडे-टुकडे कर दिया गया, छेदा गया और छीलकर तराशा गया।''

68 चपेड़ों, मुष्टियो आदि से दिये गये कष्ट

मूल गाथा- चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं पिव।
ताडिओ कुट्टिओ भिण्णो, चुण्णिओ य अणतसो ॥६८॥

सस्कृत छाया- चपेटामुष्ट्यादिभि, कुमारैरय इव।
ताडित कुट्टितो भिन्न, चूर्णितश्चानन्तश ॥६८॥

अन्वयार्थ-कुमारेहिं-लुहारो के द्वारा, अय पिव-लोहे की भाति (मैं), चवेड-चपेट (और), मुट्ठि माईहिं-मुष्टि आदि से, अणतसो-अनन्त बार, ताडिओ-पीटा गया, कुट्टिओ-कूटा गया, भिण्णो-भेदन किया गया, य-और, चुण्णिओ-चूर्णित किया गया।

भावानुवाद-"जैसे लुहार लोहे को घन से कूटते-पीटते हैं, चूर चूर कर देते हैं, उसी प्रकार परमाधार्मिक देवो असुरा क द्वारा चपत, मुक्का आदि से अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, खण्ड-खण्ड किया गया और चूर-चूर कर दिया गया, चूर्ण बना दिया गया।"

69 नरक सम्बन्धी अन्य रोमाचकारी यातना का वर्णन

मूल गाथा- तत्ताइं तम्बलोहाइं, तउयाइं सीसयाणि य।
पाइओ कलकलताइं, आरसतो सुभेरवं ॥६९॥

सस्कृत छाया- तप्तानि ताम्रलोहादीनि, त्रपुकानि सिसकानि च।
पायित कलकलायमानानि, आरसन् सुभैरवम् ॥६९॥

अन्वयार्थ-सुभेरव-भयकर, आरसतो-आक्रन्द करते हुए भी (मुझे), कलकलताइं-कलकलाता हुआ, तत्ताइं-तपाया हुआ, (गर्मागर्म) तव-ताम्बा, लोहाइं-लोहा, तउयाइं-रागा, य-और, सीसयाणि-सीसा, पाइओ-पिलाया गया।

भावानुवाद-"अत्यन्त भयकर आक्रन्दन करते हुए भी मुझे (परमाधार्मिक असुरो द्वारा) कलकलाता गर्म ताम्बा, लोहा, रागा और सीसा पिलाया गया।"

70 शरीर को काटकर भुन कर खिलाना

मूल गाथा- तुहं पियाइं मसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य।
खाइओमि समसाइं, अग्गिवण्णाइंऽणेगसो ॥७०॥

सस्कृत छाया- तव प्रियाणि मासानि, खण्डानि सोल्लकानि च।
खादितोऽस्मि स्वमासानि, अग्निवर्णान्यनेकश ॥७०॥

अन्वयार्थ-तुह-तुझे, खडाइं-टुकडे-टुकडे किया हुआ, य-और, सोल्लगाणि-(शूल मे पिरोकर) पकाया हुआ, मसाइं-मास, पियाइं-प्रिय था (अत), समसाइं-अपने (मेरे) ही शरीर का मास (काटकर, भूनकर), अग्गिवण्णाइं-

संस्कृत छाया- गलैर्मकरजालै, मत्स्य इवावशोऽहम्।
उल्लिखित पाटितो गृहीत, मारितश्चानन्तश ॥६५॥

अन्वयार्थ-गलेहिं-गलो (बडिशो) से तथा, मगरजालेहिं-मकराकार जालो से, मच्छो वा-मत्स्य की तरह, अवसो-विवश बना हुआ, अह-मैं, अणतसो-अनन्त बार, उल्लिओ-खींचा गया, फालिओ-फाडा गया, गहिओ-पकडा गया, य-और, मारिओ-मारा गया हू।

भावानुवाद-"गलो-मछली फसाने के काटों एव मगर को पकडने के जालो से मछली के समान विवश बना हुआ मैं अनन्त बार खींचा गया, फाडा गया, पकडा गया और मारा गया।"

66 निरपराध पक्षियो की भाति जालो द्वारा दिये गये कष्ट

मूल गाथा- वीदसएहि जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव।
गहिओ लग्गो बद्धो य, मारिओ य अणतसो॥६६॥

संस्कृत छाया- विदशकैर्जालै, लेप्याभि शकुन इव।
गृहीतो लग्नो बद्धश्च, मारितश्चाऽनन्तश ॥६६॥

अन्वयार्थ-वीदसएहिं-श्येनो (बाज पक्षियो) के द्वारा, जालेहिं-जालो के द्वारा, तथा लेप्पाहिं-वज्रलेपो के द्वारा, सउणो-शकुन पक्षी की, विव-तरह (मैं), अणतसो-अनन्त बार, गहिओ-पकडा गया, लग्गो-चिपकाया गया, य-तथा, बद्धो-बाधा गया, य-और, मारिओ-मारा गया।

भावानुवाद-"बाज-शिकारी पक्षियो, जालो तथा वज्रलेपो-चिपकाने वाले श्लेष्य द्रव्या के द्वारा पक्षी की तरह मैं अनन्त बार पकडा गया, चिपकाया गया, जाला में बाधा गया और (अन्त मे) मारा गया।"

67 हरे भरे वृक्षो की तरह काटना, चीरना, तराशना

मूल गाथा- कुहाडफरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव।
कुट्टिओ फालिओ छिण्णो, तच्छिओ य अणतसो॥६७॥

संस्कृत छाया- कुठारपरश्वादिभि, वार्धिकै र्द्रुम इव।
कुट्टित पाटितश्छिन्न, तक्षितश्चानन्तश ॥६७॥

अन्वयार्थ-वड्ढईहिं-बढई लोगा द्वारा, दुमो विव-वृक्ष की तरह (मैं), कुहाड-कुल्हाडी और, फरसुमाईहि-फरस आदि से, अणतसो-अनन्त बार, कुट्टिओ-कूटा गया हू, फालिओ-फाडा (चीरा) गया हू, छिण्णो-छेदा गया हू य-और, तच्छिओ-छीला गया हू।

भावानुवाद-"जैसे बढई कुल्हाडे और फरसे आदि औजारो से वृक्ष को काटते हैं, चीरते हैं, टुकडे-टुकड करते हैं, छेद करते हैं और छीलकर तराशते हैं, उसी प्रकार मैं भी अनन्त बार काटा गया, चीरा गया, टुकडे-टुकडे कर दिया गया, छेदा गया और छीलकर तराशा गया।"

68 चपेडों, मुट्ठियो आदि से दिये गये कष्ट

मूल गाथा- चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं विव।
ताडिओ कुट्टिओ भिण्णो, चुण्णिओ य अणंतसो ॥६८॥

सस्कृत छाया- चपेटामुष्ट्यादिभि, कुमारैरय इव।
ताडित कुट्टितो भिन्न, चूर्णितश्चानन्तश ॥६८॥

अन्वयार्थ-कुमारेहिं-लुहारो के द्वारा, अय विव-लोहे की भाति (मैं), चवेड-चपेट (और), मुट्ठि माईहिं-मुष्टि आदि से, अणतसो-अनन्त बार, ताडिओ-पीटा गया, कुट्टिओ-कूटा गया, भिण्णो-भेदन किया गया, य-और, चुण्णिओ-चूर्णित किया गया।

भावानुवाद-"जैसे लुहार लोहे को घन से कूटते-पीटते हैं, चूर चूर कर देते हैं, उसी प्रकार परमाधार्मिक देवो असुरों के द्वारा चपत, मुक्का आदि से अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, खण्ड-खण्ड किया गया और चूर-चूर कर दिया गया, चूर्ण बना दिया गया।"

69 नरक सम्बन्धी अन्य रोमाचकारी यातना का वर्णन

मूल गाथा- तत्ताइं तम्बलोहाइं, तउयाइं सीसयाणि य।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरवं ॥६९॥

सस्कृत छाया- तप्तानि ताम्रलोहादीनि, त्रपुकानि सिसकानि च।
पायित कलकलायमानानि, आरसन् सुभैरवम् ॥६९॥

अन्वयार्थ-सुभेरव-भयकर, आरसतो-आक्रन्द करते हुए भी (मुझे), कलकलताइ-कलकलाता हुआ, तत्ताइ-तपाया हुआ, (गर्मागर्म) तंव-ताम्बा, लोहाइ-लोहा, तउयाइ-रागा, य-और, सीसयाणि-सीसा, पाइओ-पिलाया गया।

भावानुवाद-"अत्यन्त भयकर आक्रन्दन करते हुए भी मुझे (परमाधार्मिक असुरो द्वारा) कलकलाता गर्म ताम्बा लोहा, रागा और सीसा पिलाया गया।"

70 शरीर को काटकर भुन कर खिलाना

मूल गाथा- तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य।
खाइओमि समंसाइं, अग्गिवण्णाइंऽणेगसो ॥७०॥

सस्कृत छाया- तव प्रियाणि मासानि, खण्डानि सोल्लकानि च।
खादितोऽस्मि स्वमासानि, अग्निवर्णान्यनेकश ॥७०॥

अन्वयार्थ-तुह-तुझे, खडाइ-टुकडे-टुकडे किया हुआ, य-और, सोल्लगाणि-(शूल म पिरोकर) पकाया हुआ, मसाइ-मास, पियाइ-प्रिय था (अत), समसाइ-अपने (मेरे) ही शरीर का मास (काटकर, भूनकर), अग्गिवण्णाइ-

अग्नि जैसा लाल बनाकर, अणेगसो-अनेक बार, खाइओमि-मुझे खिलाया गया।

भावानुवाद-"तुझे टुकडे-टुकडे किया हुआ और तलकर सोले किया हुआ अथवा शूल म पिराकर पकाया हुआ मास अतिप्रिय था। यह स्मरण दिलाकर मेरे ही शरीर का मास काटकर ओर उसे तपाकर अग्नि जैसा लाल बनाकर मुझे अनेक बार खिलाया गया।"

71 मदिरा पान का जो कटुफल भोगना पड़ता है

मूल गाथा- तुह पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य।
पाइओमि जलतीओ, वसाओ रुहिराणि य॥७१॥

सस्कृत छाया- तव प्रिया सुरा सीधु , मेरका च मधूनि च।
पायितोऽस्मि ज्वलन्ती , वसा रुधिराणि च॥७१॥

अन्वयार्थ-तुह-तुझे, सुरा-सुरा, सीहू-सीधु, मेरओ-मेरक, य-और, महूणि-मधु से बनी मदिरा, पिया-प्रिय थी, (यह कहते हुए) जलतीओ-जलती हुई, वसाओ-चर्बी, य-और, रुहिराणि-खून (रुधिर) पाइओमि-मुझे पिलाया गया।

भावानुवाद-"तुझे सुरा, सीधु, मैरेय एव मधु आदि मदिराए अत्यन्त प्रिय थीं, यह याद दिलाकर मुझे जलता हुई चर्बी और रुधिर पिलाया गया।"

72 निरन्तर दु खमयी वेदना का अनुभव

मूल गाथा- णिच्च भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य।
परमा दुहसबद्धा, वेयणा वेइया मए॥७२॥

सस्कृन छाया- नित्य भीतेन त्रस्तेन, दु खितेन व्यथितेन च।
परमा दु खसबद्धा , वेदना वेदिता मया॥७२॥

अन्वयार्थ-मए-मैंने, णिच्च-सदैव, भीएण-भयभीत, तत्थेण-सत्रस्त, दुहिएण-दु खित, य-और, वहिएण व्यथित रहते हुए, परमा-अत्यन्त उत्कृष्ट, दुह सबद्धा-दु ख पूर्ण, वेयणा-वेदना का, वेइया-अनुभव किया।

भावानुवाद-"(इस प्रकार पूर्व जन्मो मे) मैंने नित्य ही भयभीत, सत्रस्त, दु खित और व्यथित रहते हुए अत्यन्त दु खद वेदनाए वेदी-भोगी हैं।"

73 नरक-दु खो का अनुभूत समुच्चय रूप से वर्णन

मूल गाथा- तिव्वचण्डप्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा।
महब्भयाओ भीमाओ, णरएसु वेइया मए॥७३॥

सस्कृत छाया- तीव्राश्चण्डप्रगाढाश्च, घोरा अतिदु सहाः।
महाभया भीमा , नरकेषु वेदिता मया॥७३॥

अन्वयार्थ-मए-मैंने, णरएसु-नरको में, तिव्व-तीव्र, चड-प्रचण्ड (और), प्पगाढाओ-अत्यन्त प्रगाढ, घोराओ-घोर, अइदुस्सहा-अत्यन्त दु सह, महब्भयाओ-महाभयकर, भीमाओ-भयकर वेदनाए, वेइया-अनुभव की है।

भावानुवाद-"तीव्र प्रचण्ड, प्रगाढ, घोर अति दु सह महाभयोत्पादक, भीम्म वेदनाओ का मैंने नरक मे अनुभव किया।"

74 नरक सम्बन्धी वेदनाओ की विशिष्टता का वर्णन

मूल गाथा- जारिसा माणुसे लोए, ताया! दीसति वेयणा।
एत्तो अणतगुणिया, णरएसु दुक्खवेयणा ॥७४॥

सस्कृत छाया- यादृश्या मानुष्ये लोके, तात! दृश्यन्ते वेदना।
इतोऽनन्तगुणिता, नरकेषु दु खवेदना ॥७४॥

अन्वयार्थ-ताया-पिताजी!, माणुसे लोए-मनुष्य लोक मे, जारिसा-जैसी, वेयणा-वेदनाए, दीसति-देखी जाती हैं, एत्तो-इससे, अणत गुणिया-अनन्त गुणी अधिक, दुक्ख वेयणा-दु खपूर्ण वेदनाए, णरएसु-नरको में होती है।

भावानुवाद-"हे पितृदेव! मनुष्य लोक मे जैसी वेदनाए देखी जाती हैं, नरक मे उनसे अनन्त गुणा अधिक दु ख वेदनाए हैं।"

75 सर्व गतियो मे वेदना के अस्तित्व का वर्णन

मूल गाथा- सव्वभवेसु अस्साया, वेयणा वेइया मए।
णिमिसतरमित्तपि, जे साया णत्थि वेयणा ॥७५॥

सस्कृत छाया- सर्वभवेष्वसाता, वेदना वेदिता मया।
निमेषान्तरमात्रमपि, यत्साता नास्ति वेदना ॥७५॥

अन्वयार्थ-मए-मैंने, सव्व-सभी, भवेसु-भवो (जन्मो) मे, अस्साया-असाता (दु ख रूप), वेयणा-वेदना का, वेइया-अनुभव किया है, णिमिसतर-मित्तपि-निमेषमात्र (एक पल) भी, जे-जहा, साया-सुख (साता) रूप, वेयणा-वेदना (अनुभूति) णत्थि-नहीं होती।

भावानुवाद-मैंने वहा सब जन्मो में प्राय दु ख रूप वेदना का ही अनुभव किया, पलक झपकने जितने समय भी सुख रूप वेदना वहा नहीं हैं।

76 माता पिता द्वारा अर्द्धस्वीकृति किन्तु निष्प्रतिकर्मता रूप कष्ट की सूचना

मूल गाथा- त बितऽम्मापियरो, छदेण पुत्त! पव्वया।
णवर पुण सामण्णे, दुक्ख णिप्पडिकम्मया ॥७६॥

सस्कृत छाया- त ब्रूतोऽम्बापितरौ, छन्दसा पुत्र! प्रव्रज।
न वर पुन श्रामण्ये, दु ख निष्प्रतिकर्मता ॥७६॥

अन्वयार्थ-अम्मापियरो-माता पिता ने, त-उस (मृगापुत्र) से, वित्त-कहा, पुत्त-पुत्र! छदण-स्वच्छा पूवक, पव्वया-प्रव्रज्या ग्रहण करे, (किन्तु) णवर-इतना विशेष है कि, सामण्णे-श्रामण्य जीवन म, पुण-फिर, णिप्पडिकम्मया-निष्प्रतिकर्मता, (रोगादि होने पर चिकित्सा न कराना) (यह), दुक्ख-अत्यन्त दु खरूप है।

भावानुवाद-माता-पिता ने मृगापुत्र से कहा-"हे पुत्र! तुम्हारी इच्छा है तो तुम भले ही सयम स्वीकार करो। किन्तु विशेष बात यह है कि श्रामण्य पर्याय मे निष्प्रतिकर्मता अर्थात् रुग्ण हो जाने पर चिकित्सा नहीं हो पाने का बडा दु ख है।"

77 मृगा पुत्र निष्प्रतिकर्म मृगवत् चर्या करूगा

मूल गाथा- सो बित्त अम्मापियरो! एवमेय जहाफुड।
पडिकम्म को कुणई, अरण्णे मियपक्खिण॥77॥

सस्कृत छाया- स ब्रूतेऽम्बापितरौ! एवमेतद्यथा स्फुटम्।
प्रतिकर्म क करोति, अरण्ये मृगपक्षिणाम्॥७७॥

अन्वयार्थ-सो-वह, (मृगापुत्र) वित-बोला, अम्मा पियरो-माता पिता, जहा फुड-जैसे आपने कहा, एवमेय-ऐसी ही है किन्तु, अरण्णे-जगल मे, मियपक्खिण-मृगादि पशु और पक्षियो की, पडिकम्म-प्रतिकर्म (चिकित्सा), को-कौन, कुणई-करता है।

भावानुवाद-उसने (मृगापुत्र ने) कहा-"जो आपने कहा वह ठीक है, किन्तु जगल मे रहने वाले निरीह हिरण आदि पशुओ और पक्षियो की चिकित्सा कौन करता है?"

78 किसी की सहायता बिना स्वच्छन्द रूप से मृग विचरण का दृष्टान्त

मूल गाथा- एगब्भूए अरण्णे वा, जहा उ चरई मिगो।
एव धम्म चरिस्सामि, सजमेण तवेण य॥78॥

सस्कृत छाया- एकभूतोऽरण्ये वा, यथा तु चरति मृग।
एव धर्म चरिष्यामि, सयमेन तपसा च॥७८॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, अरण्णे वा-जगल मे, उ-तो, मिगो-मृग, एगब्भूए-अकेला ही, चरई-विचरता है, एव-इसी प्रकार (मै भी), सजमेण-सयम य-और, तवेण-तप से (एकाकी होकर) धम्म-मुनिधर्म का, चरिस्सामि-आचरण करुगा।

भावानुवाद-"जैसे जगल मे मृग अकेला विचरता है वैसे ही मै भी सयम और तप के साथ एकाकी भाव म धमाचरण करूगा।"

79 मृगा पुत्र द्वारा रुग्ण मृग का उदाहरण

मूल गाथा- जहा मिगस्स आयको, महारण्णम्मि जायई।
अच्छत रुक्खमूलम्मि, को ण ताहे तिगिच्छई॥79॥

सस्कृत छाया- यथा मृगस्याऽऽतक , महारण्ये जायते।
तिष्ठन्त वृक्षमूले, कस्त तदा चिकित्सति ॥७९॥

अन्वयार्थ-जहा-जब, **महारण्णम्मि**-महारण्य म, **मिगस्स**-मृग के शरीर मे, **आयको**-शीघ्र घातक रोग, **जायई**-उत्पन्न हो जाता है, **ताहे**-तब, **रुक्खमूलम्मि**-वृक्ष के नीचे, **अच्छत**-बैठे हुए (उस मृग) की **कोण**-कौन **तिगिच्छई**-चिकित्सा करता है?

भावानुवाद-''महावन मे विचरते हुए मृग को जब आतक (शीघ्रघाती राग) उत्पन्न हो जाता है, तो वृक्ष के नीचे बैठे हुए उस पीडित मृग की कौन चिकित्सा करता है?''

80 पूर्वोक्त कथन को पुन पल्लवित करना

मूल गाथा- को वा से ओसह देइ, को वा से पुच्छई सुह।
को से भत्त च पाण वा, आहरित्तु पणामई ॥८०॥

सस्कृत छाया- को वा तस्मै औषध दत्ते, को वा तस्य पृच्छति सुखम्।
कस्तस्मै भक्त च पान वा, आहृत्य प्रणामयेत् ॥८०॥

अन्वयार्थ-को वा-कौन, **से**-उसे, **ओसह**-औषध, (दवाई) **देइ**-देता है, **कोवा**-कौन, **से**-उसे, **सुह**-सुख (स्वास्थ्य) की बात, **पुच्छई**-पूछता है? **को वा**-अथवा कौन, **से**-उसे, **भत्त च**-भक्त (खान) और, **पाण**-पान, (पीने) को **आहरित्तु**-लाकर, **पणामई**-देता है।

भावानुवाद-''कौन उसे ओषधि देता है? कौन उसकी सुखसाता-सुख की बात पूछता है? कौन उसे खाने-पीने के लिये भाजन-पानी लाकर देता है?''

81 मृगचर्या का वर्णन

मूल गाथा- जया से सुही होइ, तया गच्छइ गोयर।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥८१॥

सस्कृत छाया- यदा स सुखी भवति, तदा गच्छति गोचरम्।
भक्तपानस्यार्थं, वल्लराणि सरासि च ॥८१॥

अन्वयार्थ-जया-जब, **से**-वह, **सुही**-स्वस्थ (सुखी) **होइ**-हो जाता है, **तया**-तब (स्वय), **गोयर**-गोचर भूमि (चारागाह) मे **गच्छइ**-चला जाता है, **य**-और, **भत्त पाणस्स अट्ठाए**-भक्त पान (खाने पीने) के लिये, (वह) **वल्लराणि**-वल्लरो, (लता निकुजों), **य**-तथा, **सराणि**-जलाशया मे (जाता है)।

भावानुवाद-जब वह स्वस्थ हो जाता है तब स्वय ही गोचर भूमि मे जाता है और भोजन पानी के लिये लता-निकुजों एव जलाशयो पर पहुचता है।

82 मृगचर्या का ही आचरण करना

मूल गाथा- खाइत्ता पाणिय पाउ, वल्लरेहि सरेहि य।
मिगचारिय चरित्ता ण, गच्छइ मिगचारिय॥८२॥

संस्कृत छाया- स्वादित्वा पानीय पीत्वा, वल्लरेषु सरस्सु च।
मृगचर्या चरित्वा, गच्छति मृगचर्याम्॥८२॥

अन्वयार्थ-वल्लरेहिं-लता कुजों, वा-अथवा, सरेहिं-सरोवरो मे, खाइत्ता-खाकर (और) पाणिय-पानी, पाउ-पीकर, मिगचारिय-मृगचर्या का, चरित्ताण-आचरण करके, मिगचारिय-मृगचर्या को, गच्छई-चला जाता है।

भावानुवाद-"लता कुजों मे घास खाकर और जलाशयो मे पानी पीकर मृगचर्या मे विचरण करता हुआ वह मृग पुन अपनी मृगचारिक (मृगो की निवास भूमि) को स्वत ही चला जाता है।"

83 मृगचर्या की साधु वृत्ति से तुलना

मूल गाथा- एव समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए।
मिगचारिय चरित्ताण, उड्ढ पक्कमई दिस॥८३॥

संस्कृत छाया- एव समुत्थितो भिक्षु, एवमेवाऽनेकक।
मृगचर्यां चरित्वा, ऊर्ध्वं प्रक्रामते दिशम्॥८३॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, समुट्ठिओ-सयम में सावधान हुआ, भिक्खू-भिक्षा जीवी साधु, अणेगए-अनेक स्थानो मे स्थित होकर, एवमेव-इसी प्रकार, मिगचारिय-मृगचर्या से, चरित्ताण-आचरण कर, उड्ढदिस-ऊर्ध्व दिशा (मोक्ष) को, पक्कमइ-गमन करता है।

भावानुवाद-"इसी प्रकार सयम के प्रति समुद्यत अनियतचारी-अप्रतिबद्ध भिक्षु मृगचर्या के समान आचरण करके ऊर्ध्व दिशा-मोक्ष को प्राप्त करता है-गमन करता है।"

84 सहाय शून्य अकेला ही मृग सम विचरण एव निवास

मूल गाथा- जहा मिए एग अणेगचारी,
अणेगवासे धुवगोयरे य।
एव मुणी गोयरिय पविट्ठे,
णो हीलए णोवि य खिसएज्जा॥८४॥

संस्कृत छाया- यथा मृग एकोऽनेकचारी,
अनेकवासो ध्रुवगोचरश्च।

एव मुनिर्गोचर्या प्रविष्ट ,
नो हीलयेन्नोऽपि च खिसयेत् ॥८४॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, मिए-मृग, एग-अकेला, अणेगचारी-अनेक स्थानो मे विचरता है, अणेगवासे-अनेक स्थानो मे निवास करता है, य-और, धुवगोयरे-सदैव गोचरी स जीवनयापन करता है, एव-इसी प्रकार, गोयरिय-गोचरी के लिये, पविट्ठे-प्रविष्ट हुआ, मुणी-मुनि भी, णो हीलए-अवहेलना न करे, य-और, णोवि-खिसएज्जा (न मिलने पर) निन्दा न करे।

भावानुवाद-जैसे मृग एकाकी अनेक स्थानो पर भ्रमण करता है, अनेक स्थानो म रहता है, सदैव गोचर-चर्या से ही जीवन यापन करता है, वैसे ही गोचरी के लिये गया हुआ मुनि भी (भिक्षा न मिलने पर भी) निन्दा या अवज्ञा नहीं करता है।

85 मृगापुत्र द्वारा अपने माता पिता से कथन

मूल गाथा- मिगचारिय चरिस्सामि, एव पुत्ता! जहासुह।
अम्मापिऊहिंऽणुण्णाओ, जहाइ उवहिं तओ॥८५॥

सस्कृत छाया- मृगचर्या चरिष्यामि, एव पुत्र! यथासुखम्।
अम्बापितृभ्यामनुज्ञात , जहात्युपधि तथा॥८५॥

अन्वयार्थ-(मैं) मिगचारिय-मृगचर्या का, चरिस्सामि-आचरण करूगा, पुत्ता-हे पुत्र!, जहासुह-जैसे तुम्हे सुख हो, (वैसा करो) एव-इस प्रकार, अम्मा पिऊहिं-माता-पिता से, अणुण्णाओ-अनुमति पाकर, तओ-फिर (वह), उवहिं-उपधि का, जहाइ-त्याग करता है।

भावानुवाद-"मैं मृगचर्या का आचरण करूगा।"-मृगापुत्र के ऐसा कहने पर माता-पिता ने कहा-"पुत्र! जैसे तुम्हे सुख हो, वैसा करो।" इस प्रकार माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर मृगापुत्र ने उपधि (परिग्रह) का परित्याग किया।

86 माता-पिता द्वारा दीक्षा की अनुमति

मूल गाथा- मिगचारिय चरिस्सामि, सव्वदुक्खविमोक्खणि।
तुब्भेहिं अम्मऽणुण्णाओ, गच्छ पुत्ता! जहासुह॥८६॥

सस्कृत छाया- मृगचर्या चरिष्यामि, सर्वदु खविमोक्षिणीम्।
युष्माभ्यामनुज्ञात , गच्छ पुत्र! यथासुखम्॥८६॥

अन्वयार्थ-मृगापुत्र-अम्म-हे माता! तुब्भेहिं-(मैं) तुम्हारी, अणुण्णाओ-अनुमति पाकर, सव्वदुक्ख-सभी दु खो से, विमोक्खणि-विमुक्त करने वाली, मिगचारिय-मृगचर्या का, चरिस्सामि-आचरण करूगा। माता-पुत्त-हे पुत्र! जहासुह-जैसे तुम्हे सुख हो, गच्छ-वैसे चलो।

भावानुवाद-मृगापुत्र-'हे माता! मैं तुम्हारी अनुमति प्राप्त कर सभी दु खो का क्षय करने वाली मृगचारिका-मुनि चर्या का अनुसरण करूगा। माता-'हे पुत्र! जैसे तुम्हे सुख हो वैसे चलो।'

87 ससार के अनेक विध ममत्व को छोडना सर्प काचली का दृष्टान्त

मूल गाथा- एव सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ता ण बहुविह।
ममत्त छिदई ताहे, महाणागो व्व कचुय ॥87॥

सस्कृत छाया- एव सोऽम्बापितरौ, अनुमान्य बहुविधम्।
ममत्व छिनत्ति तदा, महानाग इव कञ्चुकम् ॥87॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, सो-वह, (मृगापुत्र) अम्मापियरो-माता पिता को, बहुविह-अनेक प्रकार से, अणुमाणित्ता-सम्मत्त करके, ताहे-उसी समय, ममत्त-ममत्व को (उसी प्रकार), छिदइ-त्याग देता है, व्व-जिस प्रकार, महाणागो-महानाग (सर्प), कचुय-कचुक (कैंचुली) को छाड देता है।

भावानुवाद-उपसहार-इस प्रकार मृगापुत्र ने माता-पिता को अनेक प्रकार स समझाकर दीक्षा के लिये अनुमत किया ओर जैसे सर्प केचुली को छोडता है उसी प्रकार सभी प्रकार से ममत्व का परित्याग कर देता है।

88 बाह्य उपाधि के परित्याग का वर्णन

मूल गाथा- इड्ढी वित्त च मित्ते य, पुत्तदार च णायओ।
रेणुय व पडे लग्ग, णिद्धुणित्ताण णिग्गओ॥88॥

सस्कृत छाया- ऋद्धि वित्त च मित्राणि च, पुत्रदारांश्च ज्ञातीन्।
रेणुकमिव पटे लग्न, निर्धूय निर्गत ॥88॥

अन्वयार्थ-पडे-कपडे मे, लग्ग-लगी हुई, रेणुय व-धूल की तरह (वह), इड्ढि-ऋद्धि, च-और, वित्त-धन, य तथा, मित्ते-मित्र, पुत्त-पुत्र, दार-स्त्री, च-और, णायओ-ज्ञाति जनो को, णिद्धुणित्ताण-झाडकर, णिग्गओ-(सयम यात्रा हेतु) निकल पडा।

भावानुवाद-वह ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, कलत्र और ज्ञाति जनो को तथा उनके प्रति ममत्व का इस प्रकार झटक कर साधना के लिये निकल पडा जैसे कपडे पर लगी रज-धूलि को झाड-झटक दिया जाता है।

89 बाह्य एव आभ्यन्तर उपाधि के परित्याग के पश्चात् की स्थिति

मूल गाथा- पचमहव्वयजुत्तो, पचहिं समिओ तिगुत्तिगुत्तो य।
सब्भितरबाहिरओ, तवोकम्मसि उज्जुओ॥89॥

सस्कृत छाया- पचमहाव्रतयुक्त, पचभि समितस्त्रिगुप्तिगुप्तश्च।
साभ्यन्तरबाह्ये, तप कर्मणि उद्युक्त ॥89॥

अन्वयार्थ-(वह) पच महव्वय-पाच महाव्रता से, जुत्तो-युक्त, पचहि समिओ-पाच समितिया स समित, य-और, तिगुत्ति-तीन गुप्तिया से, गुत्तो-गुप्त, सब्भितर-आभ्यतर, (और) बाहिरओ-बाह्य, तवोकम्मसि-तप कर्म में, उज्जुओ-उद्यत हो गया।

भावानुवाद-(फिर) वह पच महाव्रतो से युक्त, पच समितियो से समित, तीन गुप्तियो से गुप्त आभ्यन्तर और बाह्य तपो मे उद्यत (हो गया)।

90 उत्तमोत्तम गुणो को धारण करना

मूल गाथा- **णिम्ममो णिरहकारो, णिस्सगो चत्तगारवो।**
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य॥९०॥

सस्कृत छाया- **निर्ममो निरहकार , नि सगस्त्यक्तगौरव ।**
समश्च सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च॥९०॥

अन्वयार्थ-**णिम्ममो**-ममत्व रहित, **णिरहकारो**-अहकार रहित, **णिस्सगो**-सगरहित, **चत्तगारवो**-गर्व का त्यागी, **तसेसु**-त्रस, **य**-और, **थावरेसु**-स्थावरो, **य**-और, **सव्व भूएसु**-सभी जीवो पर, **समो**-समभावी हुआ।

भावानुवाद-(अब) वह ममत्व रहित, अहकार रहित, सग रहित, गौरव का त्यागी त्रस-स्थावर सभी जीवो पर समदृष्टि (हो गया)।

91 साधु के आन्तरिक उत्कृष्ट गुणो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।**
समो णिदापससासु, तहा माणावमाणओ॥९१॥

सस्कृत छाया- **लाभालाभे सुखे दु खे, जीविते मरणे तथा।**
समो निन्दाप्रशसयो , तथा मानापमानयो ॥९१॥

अन्वयार्थ-**लाभालाभे**-लाभ और अलाभ मे, **सुहे दुक्खे**-सुख और दु ख म, **तहा**-तथा, **जीविए-मरणे**-जीवन और मरण मे, **णिदा पससासु**-निन्दा और प्रशसा मे, **तहा**-तथा, **माणाव माणओ**-मान और अपमान म, **समो**-समभाव रखने वाला हुआ।

भावानुवाद-लाभ मे, अलाभ मे, सुख मे, दु ख मे, जीवन मे, मरण मे, निन्दा मे, प्रशसा मे एव मान अपमान मे समत्व भावी (बन गया)।

92 निदान और बन्धनादि से सर्वथा मुक्ति निर्ग्रन्थ जीवन

मूल गाथा- **गारवेसु कसाएसु, दडसल्लभएसु य।**
णियत्तो हाससोगाओ, अणियाणो अबधणो॥९२॥

सस्कृत छाया- **गौरवेभ्य कषायेभ्य , दण्डशल्यभयेभ्यश्च।**
निर्वृत्तो हास्यशोकात्, अनिदानोऽबान्धव ॥९२॥

अन्वयार्थ-**गारवेसु**-त्रिविध गौरवा (गर्वो) से, **कसाएसु**-चार विषयो से, **दड**-त्रिविध दण्ड, **सल्ल**-त्रिविध शल्य, **य**-और, **भएसु**-सप्तविध भयो से, **हास**-हास्य, (और) **सोगाओ**-शोक से, **णियत्तो**-निवृत्त हुआ, **अणियाणो**-निदान से रहित, **अबधणो**-बन्धन से रहित हो गया।

भावानुवाद-मह गौरव, कपाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और बन्धन से मुक्त (हो गया)।

93 सयमानुकूल क्रिया और भावो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **अणिस्सिओ इह लोए, परलोए अणिस्सिओ।**
वासीचदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा॥९३॥

सस्कृत छाया- **अनिश्रित इह लोके, परलोकेऽनिश्रित ।**
वासीचन्दकल्पश्च, अशनेऽनशने तथा॥९३॥

अन्वयार्थ-इह-इस, लोए-लोक मे, अणिस्सिओ-अनिश्रित, तथा परलोए-परलोक मे भी, अणिस्सिओ-अनिश्रित एव, वासी-वसूले से काटने, (अथवा) चदण-चदन लगाने पर भी, कप्पो-समकल्प (समभाव) वाला, तहा-इसी प्रकार, असणे-आहार मिलने, य-और, अणसणे-आहार के न मिलने पर भी समभावी रहा।

भावानुवाद-इस लोक और परलोक मे अप्रतिबद्ध-अनासक्त, वसूले के काटने या चन्दन लगाए जाने पर भी तथा आहार मिलने या न मिलने पर भी समत्वनिष्ठ (हो गया)।

94 मृगा पुत्र के आन्तरिक विशुद्ध आचार का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवे।**
अज्झप्पझाणजोगेहिं, पसत्थदमसासणे॥९४॥

सस्कृत छाया- **अप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्य, सर्वत पिहितास्रव ।**
अध्यात्मध्यानयोगै, प्रशस्त दमशासन ॥९४॥

अन्वयार्थ-अप्पसत्थेहिं-अप्रशस्त, दारेहिं-द्वारा से, सव्वओ-सर्व प्रकार से, पिहियासवे-पिहिताश्रव (आश्रव निरोधक) होकर, (मृगापुत्र) अज्झप्प-अध्यात्म सबन्धि, झाण-ध्यान, जोगहिं-योगो से, पसत्थ-प्रशस्त, दम-सयम (दम), सासणे-(और) शासन मे लीन हो गया।

भावानुवाद-इस प्रकार महर्षि मृगापुत्र अप्रशस्त आस्रव द्वारो (अशुभ कर्म पुद्गलो के आने के हेतुओ) के सर्वप्रकार से निरोधक बनकर अध्यात्म ध्यान योग के प्रशस्त सयम शासन मे लीन हो गया।

95 अध्यात्म योग के सेवन का फल का वर्णन

मूल गाथा- **एव णाणेण चरणेण, दसणेण तवेण य।**
भावणाहिं य सुद्धाहिं, सम्म भावेत्तु अप्पय॥९५॥

सस्कृत छाया- **एव ज्ञानेन चरणेन, दर्शनेन तपसा च।**
भावनाभिश्च शुद्धाभि, सम्यग् भावयित्वाऽऽत्मानम् ॥९५॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, णाणेण-ज्ञान से, चरणेण-चारित्र से, दसणेण-दर्शन से, य-और, तवेण-तपस्या से,

य-तथा, सुद्धाहिं-विशुद्ध, भावणाहिं-भावनाओ से, अप्पय-आत्मा को, सम्म-सम्यक् प्रकार से, भावेत्तु-भावित करके-

भावानुवाद-इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप से तथा विशुद्ध भावनाओ से अपनी आत्मा को सम्यक्तया भावित कर-

96 महर्षि मृगा पुत्र ने सिद्धि प्राप्त की

मूल गाथा- **बहुयाणि उ वासाणि, सामण्णमणुपालिया।**
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धि पत्तो अणुत्तर ॥९६॥

सस्कृत छाया- **बहुकानि तु वर्षाणि, श्रामण्यमनुपाल्य।**
मासिकेन तु भक्तेन, सिद्धि प्राप्तोऽनुत्तराम् ॥९६॥

अन्वयार्थ-उ-तथा, बहुयाणि-बहुत, वासाणि-वर्षों तक, सामण्ण-श्रमण धर्म का, अणुपालिया-पालन कर, (अन्त मे) य-और, मासिएण-एक मास का, भत्तेण-भक्त प्रत्याख्यान (अनशन) करके, (उसने) अणुत्तर-श्रेष्ठ, सिद्धि-मोक्षगति, पत्तो-पाप्त की।

भावानुवाद-बहुत वर्षों तक मुनि धर्म का पालन करके अन्त मे एक मास का अनशन कर मृगापुत्र अनुत्तर सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

97 शुद्ध मनोवृत्ति और तदनुकुल आचार का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **एव करति सबुद्धा, पडिया पवियक्खणा।**
विणियट्टति भोगेसु, मियापुत्तो जहा रिसी ॥९७॥

सस्कृत छाया- **एव कुर्वन्ति सबुद्धा , पण्डिता प्रविचक्षणा ।**
विनिवर्तन्ते भोगेभ्य , मृगापुत्रो यथा ऋषि ॥९७॥

अन्वयार्थ-सबुद्धा-सम्बुद्ध, पडिया-पण्डित, (और) पवियक्खणा-प्रविचक्षण साधक, एव-ऐसा ही, करति-करते हैं, (वे) भोगेसु-भोगो से, (वैसे ही) विणियट्टति-निवृत्त होते हैं, जहा-जैसे कि, रिसी-ऋषि, मियापुत्ते-मृगापुत्र निवृत्त हुए।

भावानुवाद-मृगापुत्र ऋषि जैसे तरुणवय मे भोगो से निवृत्त हुए वैसे ही सम्बुद्ध-तत्त्वज्ञ, पण्डित एव विचक्षण साधक भी काम भोगा से निवृत्त होते हैं।

98 मृगा पुत्र के समान निर्ग्रन्थ धर्म के आचरण का उपदेश

मूल गाथा- **महापभावस्स महाजसस्स, मियाइपुत्तस्स णिसम्म भासिय।**
तवप्पहाण चरिय च उत्तम, गइप्पहाण च तिलोगविस्सुय ॥९८॥

संस्कृत छाया- महाप्रभावस्य महायशसः, मृगाया पुत्रस्य निशम्य भाषितम्।
तप प्रधान चारित्र चोत्तम, प्रधानगति च त्रिलोकविश्रुताम् ॥९८॥

अन्वयार्थ-महापभावस्स-महाप्रभावशाली, महाजसस्स-महायशस्वी, मियाइ-मृगारानी के, पुत्तस्स-पुत्र के, तवप्पहाण-तप प्रधान, तिलोग-त्रिलोक, विस्सुय-विश्रुत, च-एव, गइप्पहाण-मुक्ति रूप प्रधान गति वाले, एव-एव, उत्तम चरिय-उत्तम चरित्र (एव), भासिय-कथन को, णिसम्म-सुनकर के।

भावानुवाद-महान् प्रभावक, महान यशस्वी मृगापुत्र के तप प्रधान, त्रिलोक विश्रुत एव मोक्ष गति रूप से प्रधान उत्तम चरित्र के कथन का श्रवण करके-

99 साधको के लिये कर्त्तव्य निर्देश

मूल गाथा- वियाणिया दुक्खविवद्धण धण, ममत्तबध च महाभयावह।
सुहावह धम्मधुर अणुत्तर, धारेज्जा णिव्वाणगुणावह मह ॥९९॥

त्ति बेमि।

इति मियापुत्तीज्ज एगुणवीसइम अज्झयण समत्त ॥१९॥

संस्कृत छाया- विज्ञाय दुःखविवर्धन धन, ममत्वबन्ध च महाभयावहम्।
सुखावहा धर्मधुरामनुत्तरा, धारयध्व निर्वाणगुणावहा महतीम् ॥९९॥

इति ब्रवीमि

इति मृगापुत्रीयमध्ययन समाप्त

अन्वयार्थ-धण-धन को, दुक्ख विवड्ढण-दु ख वर्द्धक, च-और, ममत्त बध-ममत्व बधन को, महब्भयावहे-महाभयकर, वियाणिया-जानकर, णिव्वाण-निर्वाण के, गुणावह-गुणो को प्राप्त कराने वाली, सुहावह-सुखावह, (अनन्त सुखदायक) अणुत्तर-अनुत्तर, मह-महती, धम्मधुर-धर्मधुरा को धारेज्जा-धारण करो।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-धन को दु ख सवर्धक तथा ममत्व बन्धन को महाभयावह समझकर मोक्ष गुणो को प्राप्त कराने वाली एव अनन्त सुखदायक अनुत्तर धर्म की महाधुरा को धारण करो।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार मृगापुत्रीय उन्नीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

❐❐❐

महानिर्ग्रन्थीय - विशति अध्ययन

उत्थानिका

अनेक बार मानव-मानस भौतिकवाद से इतना अधिक ग्रस्त हो जाता है कि उसे अनेक शब्दो को अपनी धारणाओ के अनुसार परिभाषित करना पडता हे, जबकि उसकी वे परिभाषाए एकदम विपरीत सिद्ध होती हैं। यह समस्या आज की या शताब्दियो की नहीं, अनन्त-अनन्तकाल से चली आ रही है। अनादि काल से आत्माए मिथ्यात्व मे रमण करती आ रही हैं और उनकी दृष्टि नितान्त भौतिकवादी दृष्टि ही है। वे भौतिक तत्त्वो की प्रचुरता को ही अपना सब कुछ या अपनी सनाथता का कारण मानती है। धन-वैभव आदि भौतिक साधनो एव माता, पिता, पुत्र, कलत्र आदि सामयिक सगी परिजनो को ही अपना सुरक्षा कवच मानती हैं, जो कि वास्तव मे मकडी के जाल या रेशम के कीडे द्वारा निर्मित अपनी सुरक्षा खोली के समान सरक्षक नहीं विघातक ही सिद्ध होते हैं और उस समय अपनी सम्पन्नता या सनाथता की उनकी परिभाषा उलट जाती है। जिसे रक्षक समझा था वह भक्षक-सहारक सिद्ध हो जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन मे एक जीवन्त घटना के द्वारा इस भौतिक सरक्षणवादी दृष्टि को एक करारा उत्तर दिया गया है और यह बताया गया है कि जिन बाह्य पदार्थो को अपनी सनाथता का कारण समझा जा रहा है, वास्तव मे वे हमे एकदम अनाथ बना देन वाले हैं।

परम सनाथ महानिर्ग्रन्थ मुनि अनाथी ने सम्राट श्रेणिक को अनाथ और सनाथ का जो स्वरूप बोध करवाया वही इस अध्ययन का मूल प्रतिपाद्य है। हमारी अनाथता पर सापेक्ष है, जबकि हमारी सनाथता स्व-सापेक्ष। राजा श्रेणिक जो अपने आपको परम सनाथ मानता था, वह कैसे स्वय को अनाथ मानने लग जाता है, उसे जानने के लिए घटना के मूल केन्द्र तक पहुचना आवश्यक है। अनाथ और सनाथ का निर्णय तो राजा श्रेणिक और महामुनि अनाथी के सवाद से ही होगा।

मगध सम्राट श्रेणिक एक बार राजगृह के बाहर पर्वत की तलहटी मे बने सुविस्तृत उद्यान 'मण्डित कुक्षि' मे भ्रमण करने को चले गए। वहा उन्होने एक शान्त, दान्त, तेजस्वी, ध्यान समाधि मे लीन सुकुमार तरुण मुनि को देखा। उनके नयनाभिराम सौन्दर्य, सुगठित-सुडौल देह, विशाल भाल और तेजस्वी नेत्रा को देखकर राजा आश्चर्य म निमग्न हो गया। वह विचार करने लगा कि इतने तेजस्वी सौन्दर्य निधि व्यक्ति को इस तारुण्य म सयम क्या लना पडा? आखिर उसने वन्दन-नमन के साथ अपनी जिज्ञासा मुनि प्रवर के चरणा मे रख ही दी। राजा ने अत्यन्त विनय भरे स्वरा मे पूछा-' भगवन्! इस तरुण सुखभोग की अवस्था मे आपने मुनिव्रत क्यो स्वीकार किया? आपका यह यौवन और दीप्तिमन्त शरीर योग मे जलाने के लिए नहीं, सुखभोग के लिए है।'

मुनि ने सहज किन्तु गभीर स्वर मे कहा-'राजन्! मैं अनाथ था, मेरा कोई सहायक नहीं था, अत मैं मुनि बन गया।' मुनि के अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व को देखते हुए इस उत्तर पर राजा श्रेणिक को विश्वास तो नहीं हुआ, फिर भी उसने कहा-'यदि आपका कोई नाथ नहीं है, तो चलो मैं आपका नाथ बनता हू। विवशता मे लिया हुआ मुनिव्रत

उचित नहीं है। चलिये मैं आपको समस्त सुखभोग की सामग्री उपलब्ध करा देता हू।'

मुनि ने सहज सस्मित कहा-"राजन्! तुम स्वय ही अनाथ हो, तुम मेरे नाथ कैसे बन सकते हो? जो स्वय अनाथ हो जाता है, वह दूसरो का नाथ कैसे बन सकता है?"

राजा मुनि के इस अप्रत्याशित उत्तर से हतप्रभ रह गया। उसे अत्यन्त विस्मय हुआ कि मुनि असत्य कैसे बोल सकते हैं। उसने अपने समग्र वैभव, अपनी अतुल समृद्धि का जिक्र करते हुए कहा कि आप कैसी बात कर रहे हैं, मेरे पास हाथी, घोडे, रथ, राज्य, सोना और अथाह सम्पत्ति है। मैं इन सबका नाथ हू, स्वामी हू। फिर आप मुझे अनाथ कैसे कह रहे हैं? कहीं आप मिथ्या तो नहीं कह रहे हैं?

अब मुनि के लिए राजा के मन को पूर्णतया समाहित करना आवश्यक हो गया। अत उन्होने राजा से कहा-'राजन्! अनाथ और सनाथ की परिभाषा तुम नहीं जानते हो। तुमने जो सनाथ की परिभाषा अपने दिमाग में बिठा रखी है, वह सही नहीं है। मै तुम्हे सुनाता हू-अनाथ-सनाथ की परिभाषा। तुम जरा एकाग्रचित्त से सुनो।' और मुनि ने अपने जीवन की हृदय स्पर्शी घटना सुनाना प्रारभ की-

'राजन्! धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य और बहुत अधिक परिजन होने मात्र से कोई सनाथ नहीं हो जाता है। इन सबके होने पर भी व्यक्ति अनाथ कैसे होता है, यह मैं बताता हू-मै अपने पिता का प्रिय पुत्र था। पिताजी के पास धन-ऐश्वर्य की कोई कमी नहीं थी। परिजनो मे माता-पिता, छोटे-बडे भाई-बहिन और पत्नी सभी कोई थे, किन्तु एक बार जब मेरी आखा मे तीव्र वेदना हुई तो उस समय उस असह्य पीडा से मुझे कोई बचा नहीं सका। मैं वेदना से ग्रस्त हो छटपटाता रहा, अच्छे से अच्छे चिकित्सक मेरी उस वेदना को शमित नहीं कर सके। यह प्रचुर सम्पदा मेरे कोई काम नहीं आयी। धन सम्पदा या कोई परिजन मेरी वेदना कम नहीं कर सके। मेरा कोई त्राता-रक्षक नहीं था। पत्नी पास मे बैठी आसू बहाती रही, मा, भाई बहिन सभी कोई आकुल-व्याकुल होते रहे, मन चाहा धन देकर उपचार के प्रयास करते रहे, किन्तु मेरी पीडा को जरा भी कम नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता थी। राजन्! जिन पर गर्व करता था और अपने आप को सनाथ मानता था वे सब जब कोई कार्यकारी नहीं हुए तो किसके आधार पर मैं अपने आपको सनाथ कहता?'

एक दिन रुग्ण शय्या पर सोये-सोये मैंने विचार किया कि ये बाहर के धन-परिजन आदि के सब आश्रय झूठे हैं, ये मुझे शाति नहीं दे सकते। अत इन झूठे आश्रयो को छोडे बिना और आत्माश्रय मे प्रवेश किए बिना शान्ति नहीं मिल सकती है। जब तक इस दु ख और पीडा के मूलबीज कर्म का विदारण-विनाश नहीं होगा, यह पीडा नहीं मिट सकती है। मैंने निर्णय लिया कि प्रात काल होते ही इन झूठे आश्रयों को छोड कर्म निर्जरा हेतु श्रमण दीक्षा स्वीकार कर लूगा और ज्यो-ज्यो मेरा यह सकल्प दृढ से दृढतर होता गया, मेरी वेदना भी शमित होती गई। प्रात काल होते-होते तो मेरी समस्त पीडा शान्त हो गई और मै मुनि बन गया। तब मैं अपना नाथ बन गया। राजन्! आत्मा स्वय ही स्वय का नाथ या अनाथ बन सकती है। दूसरा कोई किसी का नाथ नहीं बन सकता है।

और एक बात और सुनो। मुनि का परिवेश धारण कर लेने मात्र से भी कोई अपना नाथ नहीं बन जाता है। मुनि जीवन की सूक्ष्मतम चर्याओ, कठोर व्रतावलियो का जो पूर्णरूपेण पालन करता है, वही सनाथ कहलाता है। मुनि बनकर के भी जो विषय, कषाय और प्रमाद म लिप्त रहता है, सुविधावादी और सुविधाभोगी सुख शैलिया बन जाता है, वीतरागमार्ग से विपरीत आचरण कर अपने साध्य को भूल जाता है, वह सनाथ होकर पुन अनाथ बन जाता है।

मुनि प्रवर की इस आत्मानुभूति से उद्‌भूत गभीर वाणी को सुनकर राजा अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने यह स्वीकार किया कि सही अर्थों में आप ही सनाथ है, मैं अनाथ हू। मुनि श्री ने राजा को सोचने समझने की एक नई दृष्टि दी, उसकी चिन्तन धारा एव जीवनशैली को परिवर्तित कर दिया। राजा भाव विभोर होकर परिवार सहित धर्म मे प्रवृत्त हुआ। उसने श्रद्धा युक्त भावभीनी वन्दना की और अपनी ओर से ध्यान म विघ्न डालने की मुनिश्री से क्षमा याचना की।

□□□

महानिर्ग्रन्थीय - विंशति अध्ययन

सूक्ति साराश

साधनागत प्रभाव-विरोधी को भी झुकने को बाध्य कर देता है।
साधक व्यक्तित्व में एक सहज प्रभावकता होती है,
जो सबको अपनी ओर आकर्षित करती है।

ससार म सभी प्राणी अनाथ ही है,
क्योंकि वे किसी दूसरे के आश्रय पर टिके है।
अनाथता का मापदण्ड बाह्य वैभव या समृद्ध परिवार से नहीं किया जा सकता है।

पहले स्वय अपने स्वामी-नाथ बनो,
फिर किसी पर अधिकार करने का प्रयास करो।
जो स्वय अनाथ है, वह दूसरा का नाथ कैसे हो सकता है?
यो यहा कोई किसी का नाथ नहीं है।

किसी पर अधिकार जमाने से नाथत्व-स्वामित्व नहीं आता।
जो स्व का नाथ हा जाता है वह किसी पर अधिकार का प्रयास नहीं करता,
वह स्वत जगन्नाथ हो जाता है।

अस्थिर पदार्थों से कोई कब तक सनाथ बना रह सकता है।
हाथी, घोडे, वैभव, परिजन या राज्य-सत्ता सनाथता के आधार नहीं है।

जिस शक्ति के बल पर हम सनाथता का अनुभव कर रहे थे,
वह शक्ति ही अनाथत्व का बोध दे सकती है।
जब शरीर वेदना से व्याकुल हो और कोई वैभव या परिजन उस वेदना का
शमन नहीं कर पाते हो, तब बोध होता है अपनी अनाथता का।

पहचानो आत्म शक्ति को, क्षण भर म स्वय के ही नहीं लोक के नाथ हो जाओगे।
आत्मा के शक्ति-सामर्थ्य का बोध होते ही व्यक्ति स्वोन्मुखी हो जाता है
और वहीं वह अपना नाथ स्वय हो जाता है।

अपने दु ख-सुख के निमित्त का आरोपण दूसरो पर मत करो।
अपने दु ख-सुख के आधार हम स्वय हैं, हमारे अपने द्वारा कृत
कर्म ही उसके जिम्मेदार हैं।

> **अपना आधार स्वय को मानो, अपनी किसी क्रिया**
> **का आरोपण दूसरे पर मत करो।**
> अपने मित्र हम स्वय हैं तो अपने शत्रु भी हम स्वय है।
> सन्मार्ग पर गतिशील हमारी वृत्तिया अपनी मित्र बन जाती हैं और
> कुपथ पर गतिशील शत्रु।

व्रत भग करने वाला कायर व्यक्ति भी स्वय अनाथ है।
यह भी एक भिन्न प्रकार की अनाथता है कि साधुत्व स्वीकार करने के
पश्चात् भी व्यक्ति कायर होकर गृहीत व्रता को भग्न कर देते हैं।

> **मर्यादा पर स्थिर रहो, अनाथ नहीं बनोगे।**
> गृहीत मर्यादाओ के प्रति सजगता व्यक्ति को सनाथ बना देती है।
>
> **जीवन की बहुमूल्यता को समझो, सदा-सदा के लिए जगन्नाथ बन जाओ।**
> काल कूट विप एक जीवन को समाप्त करता है पर कुगृहीत धर्म अर्थात् मर्यादा भग
> अनेको जन्मो के लिए अनाथ बना देता है।

अपने बुरे विचार ही हमारा अहित करत है।
कण्ठ छेद करने वाला शत्रु वह नुकसान नहीं करता, जो अपनी दु स्थित आत्मा
कर देती है। दुर्विचारा से बचो, जो कई जन्म बर्बाद कर देत हैं।

> **थोड़ा-सा आत्म नियत्रण सदैव के लिए जगन्नाथ बना देता है।**
> अनाथता-सनाथता का सम्यग्बोध प्राप्त कर अनन्त काल की
> अनाथता से ऊपर उठ जाओ।

□□□

अह महाणियंठिज्जं वीसइमं अज्झयणं

अथ महानिर्ग्रन्थीयं विंशतितममध्ययनम्

महानिर्ग्रन्थीय

1 मोक्ष और धर्म के अनुशासन कथन की प्रतिज्ञा

मूल गाथा- **सिद्धाण णमो किच्चा, सजयाण च भावओ।**
अत्थधम्मगइ तच्च, अणुसिट्ठि सुणेह मे ॥1॥

सस्कृत छाया- **सिद्धान् नमस्कृत्य, सयतीश्च भावत ।**
अर्थधर्मगति तथ्याम्, अनुशिष्टि श्रुणुत मम ॥१॥

अन्वयार्थ-सिद्धाण-सिद्धों को, च-और, सजयाण-सयतो को, भावओ-भावपूर्वक, णमो-नमस्कार, किच्चा-करके, अत्थ-अर्थ (मोक्ष), और धम्म गइ-धर्म का बोध कराने वाले, तच्च-तथ्यपूर्ण, अणुसिट्ठि-अनुशिक्षा को, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-सिद्धो और सयतो-साधुओ को भावपूर्ण नमन करके मैं अर्थ-साध्य (मोक्ष) और धर्म साधन के स्वरूप का ज्ञान कराने वाली तथ्यपूर्ण अनुशिष्टि-अनुशासन (शिक्षा) का निरूपण करता हू उसे सुनो।

2 महाराजा श्रेणिक की प्रभूत रत्न सामग्री एव विहार यात्रा का उल्लेख

मूल गाथा- **पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो।**
विहारजत्त णिज्जाओ, मण्डिकुच्छिसि चेइए॥२॥

सस्कृत छाया- **प्रभूतरत्नो राजा, श्रेणिको मगधाधिप ।**
विहारयात्रया निर्यात , मण्डितकुक्षौ चैत्ये ॥२॥

अन्वयार्थ-पभूय-प्रचुर, रयणो-रत्नो से सम्पन्न, मगहाहिवो-मगध देश का अधिपति, सेणिआ-श्रेणिक, राया-राजा, मडि-मण्डित, कुच्छिसि-कुक्षि नामक, चेइए-चैत्य (उद्यान) मे, विहारजत्त-विहार यात्रा के लिए, णिज्जाओ-(नगर से) निकला।

भावानुवाद-गज, अश्व एव मणि-माणिक्य आदि प्रभूत रत्नो से समृद्ध मगधाधिपति राजा श्रेणिक [illegible]

चैत्य-उद्यान मे विहार यात्रा-परिभ्रमण हेतु नगर से निकला।

3 मडित कुक्षि नामक उद्यान की शोभा का वर्णन

मूल गाथा- णाणादुमलयाइण्ण, णाणापक्खिणिसेविय।
णाणाकुसुमसछण्ण, उज्जाण णदणोवम ॥3॥

सस्कृत छाया- नानाद्रुमलताकीर्णं, नानापक्षिनिषेवितम्।
नानाकुसुमसछन्नम्, उद्यान नन्दनोपमम् ॥३॥

अन्वयार्थ-(वह) उज्जाण-उद्यान, णाणा-नाना प्रकार के, दुम-वृक्ष (और), लया-लताओं से, आइण्णं-आकीर्ण, (आच्छादित), णाणा-नाना प्रकार के, पक्खि-पक्षियो से, णिसेविय-परिसेवित (और), णाणा-नाना प्रकार के, कुसुम-कुसुमो (पुष्पो) से, सछण्ण-आच्छादित, णदणोवम-नन्दनवन के समान था।

भावानुवाद-वह उद्यान अनेक प्रकार के वृक्षो एव लता कुजो से आकीर्ण-घिरा हुआ था, विविध प्रकार के पक्षियो द्वारा परिसेवित था तथा अनेक प्रकार के पुष्पो से अच्छी तरह आच्छादित था। अधिक क्या, वह नन्दन वन के समान ही था।

4 उद्यान मे तेजस्वी तरुण मुनि को देखना

मूल गाथा- तत्थ सो पासई साहु, सजय सुसमाहिय।
णिसण्ण रुक्खमूलम्मि, सुकुमाल सुहोइय ॥4॥

सस्कृत छाया- तत्र स पश्यति साधु, सयत सुसमाहितम्।
निषण्ण वृक्षमूले, सुकुमार सुखोचितम् ॥४॥

अन्वयार्थ-तत्थ-उस उद्यान में, सो-उस (राजा) ने, रुक्खमूलम्मि-वृक्ष के नीचे णिसण्ण-बैठे हुए, सजय-एक सयत, सुसमाहिय-समाधि सम्पन्न, सुकुमाल-सुकुमार, (एव) सुहोइय-सुखोचित, साहु-साधु को, पासई-देखा।

भावानुवाद-उस राजा ने वहा उद्यान मे वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक सयत, समाधि सम्पन्न सुकुमार एव सुखोचित-सुखोपभोग के योग्य मुनि को देखा।

5 साधु के अतुल आकर्षक रूप का निरूपण

मूल गाथा- तस्स रुव तु पासित्ता, राइणो तम्मि सजए।
अच्चतपरमो आसी, अउलो रुवविम्हओ ॥5॥

सस्कृत छाया- तस्य रूप तु दृष्ट्वा, राजा तस्मिन् सयते।
अत्यन्तपरम आसीत्, अतुलो रूपविस्मय ॥५॥

अन्वयार्थ-तस्स-उस (साधु) के, रुव-रूप को, पासित्ता (तु)-देखकर, राइणो-राजा को तम्मि-उस, संजए-सयत (साधु) के प्रति, अच्चतपरमो-अत्यन्त अधिक, अउलो-अतुलनीय, रूवविम्हओ-रूप विस्मय, आसी-हुआ।

भावानुवाद-उस मुनि के निरुपम रूप को देखकर राजा का उस सयति के प्रति अतीव आकर्षण बढ गया और उस रूप के प्रति उसे अत्यन्त विस्मय हुआ।

6 साधु के विशिष्ट व्यक्तित्व से राजा विस्मित

मूल गाथा- **अहो! वण्णो अहो! रुव, अहो अज्जस्स सोमया।**
अहो! खती अहो! मुत्ती, अहो भोगे असगया॥६॥

सस्कृत छाया- **अहो वर्णो अहो रूपम्, अहो आर्यस्य सौम्यता।**
अहो क्षान्ति अहो! मुक्ति , अहो भोगेऽसगता॥६॥

अन्वयार्थ-अहो-आश्चर्य मय, वण्णो-वर्ण है अहो-आश्चर्यकारी, रूव-रूप है, अहो-आश्चर्यमयी, अज्जस्स-आर्य की, सोमया-सौम्यता है, अहो-आश्चर्य रूप, खती-क्षमा है, अहो-आश्चर्यकारी, मुत्ती-मुक्ति है, अहो-आश्चर्यमयी, भोगे-भोगो मे, असगया-नि स्पृहता है।

भावानुवाद-अहो! कैसा (सुन्दर) वर्ण-रग है। अहो! कैसा (दिव्य) रूप है। अहो! इस आर्य मुनि की कैसी सौम्यता है। अहो! कैसी क्षान्ति है। अहो! कैसी मुक्ति-निर्लोभता है। अहो! भोगो के प्रति कैसी असगता-अनासक्ति है।

7 श्रेणिक नृप का सविनय प्रश्न वन्दनादि का निरूपण

मूल गाथा- **तस्स पाए उ वदित्ता, काऊण य पयाहिण।**
णाइदूरमणासण्णे, पजली पडिपुच्छई॥७॥

सस्कृत छाया- **तस्य पादौ तु वन्दित्वा, कृत्वा च प्रदक्षिणाम्।**
नातिदूरमनासन्न , प्राञ्जलि परिपृच्छति॥७॥

अन्वयार्थ-तस्स-उस (मुनि) के, पाएउ-चरणो मे, वदित्ता-वदना कर, य-और, पयाहिण-प्रदक्षिणा, काऊण-करके (राजा), णाइदूर-न तो अति दूर (और), अणासण्णे-न ही अति निकट, पजली-हाथ जोडकर, पडिपुच्छई-पूछने लगा।

भावानुवाद-मुनि के चरणो में प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दन करके न अधिक दूर और न अधिक निकट अर्थात् उचित स्थान पर खडे रहकर राजा प्राञ्जलिबद्ध हाथ जाड कर मुनि प्रवर से पूछने लगा।

8 तरुण वय मे प्रव्रजित क्यो

मूल गाथा- **तरुणोऽसि अज्जो! पव्वइओ, भोगकालम्मि सजया।**
उवट्ठिओऽसि सामण्णे, एयमट्ठ सुणेमि ता॥८॥

सस्कृत छाया- **तरुणोऽस्यार्य! प्रव्रजित , भोगकाले सयत ।**
उपस्थितोऽसि श्रामण्ये, एतमर्थं श्रृणोमि तावत्॥८॥

अन्वयार्थ-अज्जो-हे आर्य! तरुणोऽसि-तुम तरुण हो, सजया-हे सयत!, भोगकालम्मि-भोग काल में, पव्वइओ-प्रव्रजित हुए हो, (तथा) सामण्णे-श्रमण धर्म के पालन मे, उवट्ठिओऽसि-उपस्थित हुए हो, एयमट्ठ-इस अर्थ को (मै), त्ता-तुमसे, सुणेमि-सुनना चाहता हू।

भावानुवाद-राजा श्रेणिक-'हे आर्य! तुम अभी तरुण हो। फिर हे सयत! इस भोगोचित काल म तुम प्रव्रजित हुए हो, श्रामण्य धर्म के परिपालन हेतु उद्यत हुए हो। इसका कारण क्या है मैं भी तो सुनूँ।'

9 मुनि ने कहा-मै अनाथ था

मूल गाथा- **अणाहोमि महाराय! णाहो मज्झ ण विज्जई।**
अणुकम्पग सुहिं वावि, कचि णाभिसमेमह ॥९॥

सस्कृत छाया- **अनाथोऽस्मि महाराज! नाथो मम न विद्यते।**
अनुकम्पक सुहृद वापि, कचिन्नाभिसमेम्यहम् ॥९॥

अन्वयार्थ-महाराय-हे महाराज! अणाहोमि-मैं अनाथ हू, मज्झ-मेरा (कोई), णाहो-नाथ, ण विज्जई-नहीं है, अणुकपग-अनुकम्पा करने वाले, कचि-किसी, सुहिं वावि-सुहृद (मित्र) को भी, अहं-मैं, णाभिसमेह-नहीं पा रहा हूँ।

भावानुवाद-मुनि-'महाराज! मैं अनाथ हू (था), मेरा कोई नाथ नहीं है (था) मुझ पर अनुकम्पा करने वाले या किसी सुदृढ-मित्र को मैं नहीं पा रहा हूँ।'

10 राजा श्रेणिक के मनोगत भावो का व्यग्यपूर्ण कथन

मूल गाथा- **तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।**
एव ते इड्ढिमतस्स, कह णाहो ण विज्जई॥१०॥

सस्कृत छाया- **तत स प्रहसितो राजा, श्रेणिको मगधाधिप ।**
एव ते ऋद्धिमत , कथ नाथो न विद्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ-तओ-यह सुनकर, सो-वह, मगहाहिवो-मगधाधिपति, सेणिओ-श्रेणिक, राया-राजा, पहसिओ-जोर से हसा (और मुनि से बोला), एव-इस प्रकार ते-तुम्हारे जैसे, इड्ढिमतस्स-ऋद्धि सम्पन्न के, णाहो-कोई नाथ, कह-कैसे, ण विज्जई-नहीं है?

भावानुवाद-यह सुनकर वह मगध नरेश राजा श्रेणिक जोर से हसा (और मुनि से बोला)-'इस प्रकार के तुम्हारे जैसे रूपादि ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति का कोई कैसे नाथ नहीं है?'

11 मुझे नाथ मानकर भोगो को भोगो-श्रेणिक कथन

मूल गाथा- **होमि णाहो भयताण, भोगे भुजाहि सजया!**
मित्तणाइपरिवुडो, माणुस्स खु सुदुल्लह ॥११॥

सस्कृत छाया- **भवामि नाथो भदन्ताना, भोगान् भुक्ष्व सयत।**
मित्रज्ञातिपरिवृत (सन्), मानुष्य खलु सुदुर्लभम्॥११॥

अन्वयार्थ-(मैं) भयताण-आप भदन्त का, णाहो-नाथ, होमि-बन जाता हू, सजया-हे सयत। मित्त-मित्र, णाइ-ज्ञाति जनो से, परिवुडो-परिवृत, भोगे-भोगो को, भुजाहि-भोगो, माणुस्स-यह मनुष्य जन्म, खु-निश्चय ही, सुदुल्लह-अति दुर्लभ है।

भावानुवाद-राजा श्रेणिक-'भदन्त। मैं तुम्हारा नाथ होता हू। हे मुनिवर। मित्र और परिजनो के साथ रहकर भोगो को भोगो। यह मनुष्य जन्म निश्चित ही दुर्लभ है।'

12 मुनि ने कहा-तुम स्वय अनाथ हो

मूल गाथा- **अप्पणावि अणाहोऽसि, सेणिया! मगहाहिवा!**
अप्पणा अणाहो सतो, कह णाहो भविस्ससि॥१२॥

सस्कृत छाया- **आत्मनाप्यनाथोऽसि, श्रेणिक। मगधाधिप!**
आत्मनाऽनाथो सन्, कथ नाथो भविष्यसि॥१२॥

अन्वयार्थ-सेणिया-हे श्रेणिक, मगहाहिवा-हे मगधाधिप। तुम, अप्पणावि-स्वय भी, अणाहोऽसि-अनाथ हो, अप्पणा-स्वय, अणाहो-अनाथ, सतो-होते हुए (तुम), णाहो-(दूसरा के) नाथ, कह-कैसे, भविस्ससि-हो सकोगे?

भावानुवाद-मुनि-'हे श्रेणिक। तुम स्वय अनाथ हो। मगधाधिप। जब तुम स्वय अनाथ हो तो किसी के नाथ कैसे हो सकोगे?'

13 महाराजा श्रेणिक का आश्चर्य पूर्वक विस्मित होना

मूल गाथा- **एव वुत्तो णरिंदो सो, सुसभतो सुविम्हिओ।**
वयण असुयपुव्व, साहुणा विम्हयण्णिओ॥१३॥

सस्कृत छाया- **एवमुक्तो नरेन्द्र स, सुसभ्रान्त सुविस्मित।**
वचनमश्रुतपूर्व, साधुना विस्मयान्वित॥१३॥

अन्वयार्थ-(पहले से) विम्हयण्णिओ-विस्मित, सो-वह, णरिंदो-राजा, साहुणा-मुनि के द्वारा, एव-इस प्रकार, वुत्तो-कहे जाने पर, अस्सुयपुव्व-अश्रुत पूर्व, वयण-वचन को सुनकर, सुविम्हिओ-अधिक विस्मित (एव), सुसभतो-अधिक सम्भ्रान्त (सशयाकुल) हो गया।

भावानुवाद-वह राजा श्रेणिक पहले से ही विस्मित तो था ही, अब तो मुनि से अश्रुत पूर्व (पूर्व मे कभी नहीं सुना गया ('अनाथ') यह वचन सुनकर और भी अधिक सम्भ्रान्त-व्याकुल और विस्मित हो गया।

14 महाराजा श्रेणिक द्वारा राज्य समृद्धि आदि से अपना परिचय देना

मूल गाथा- अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुर अंतेउर च मे।
भुंजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे॥१४॥

संस्कृत छाया- अश्वा हस्तिनो मनुष्या मे, पुरमन्त पुर च मे।
भुनज्मि मानुष्यान्भोगान्, आज्ञैश्वर्यं च मे॥१४॥

अन्वयार्थ-वह बोला-मे-मेरे पास, अस्सा-घोडे हैं, हत्थी-हाथी हैं, मणुस्सा-(सेवक) मनुष्य हैं, मे-मेरा, पुर नगर, च-और, अतेउर-अन्त पुर है, (मैं) माणुसे-मनुष्य जीवन सबधी, भोगे-कामभोगा को, भुजामि-भोग रहा हू, आणा-आज्ञा, च-और, इस्सरियं-ऐश्वर्य, मे-मेरे हैं।

भावानुवाद-राजा श्रेणिक-'मेरे पास अश्व, हाथी, नगर और अन्त पुर है। मैं मनुष्य जीवन मे उपलब्ध सभी सुख भोगो को भोग रहा हू। मेरे पास आज्ञा-शासन और ऐश्वर्य-प्रभुता भी है।'

15 विस्मित श्रेणिक ने कहा 'मै अनाथ कैसे'

मूल गाथा- एरिसे सपयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए।
कह अणाहो भवई, मा हु भंते! मुसं वए॥१५॥

संस्कृत छाया- ईदृशे सम्पदग्रे, समर्पितसर्वकामे।
कथमनाथो भवति, मा खलु भदन्त। मृषा वदतु॥१५॥

अन्वयार्थ-एरिसे-इस प्रकार की, सपयग्गम्मि-प्रधान सम्पदा मे, सव्वकाम-सभी काम भाग, समप्पिए-समर्पित हैं, (फिर मैं) कह-कैसे, अणाहो-अनाथ, भवई-हूँ, भते-भदन्त!, (आप) मुस-झूठ, मा हु वए-नहीं बोलें।

भावानुवाद-'इस प्रकार की उत्कृष्ट सम्पदा, जिससे कि सभी प्रकार के कामभोग प्राप्त होते हैं, विद्यमान होते हुए भी कोई कैसे अनाथ होता है? भदन्त, आप मिथ्या वचन न कहें।'

16 अनाथ शब्द का रहस्योद्घाटन

मूल गाथा- ण तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं च पत्थिवा!
जहा अणाहो भवई, सणाहो वा णराहिवा!॥१६॥

संस्कृत छाया- न त्वं जानीषेऽनाथस्य, अर्थं प्रोत्था च पार्थिव!
यथाऽनाथो भवति, सनाथो वा नराधिप!॥१६॥

अन्वयार्थ-पत्थिवा-हे पृथ्वी पति! हे राजन्! तुम-तुम, अणाहस्स-अनाथ के, अत्थं-अर्थ को, च-अथवा, पोत्थं-उसकी उत्पत्ति को, ण जाणे-नहीं जानते (कि), णराहिवा-हे नराधिप!, जहा-जिस प्रकार, (व्यक्ति), अणाहो-अनाथ, वा-अथवा, सणाहो-सनाथ, भवई-होता है।

भावानुवाद-मुनि-'हे पृथ्वीपति-राजन्! तुम अनाथ शब्द के अथ और उसकी उत्पत्ति या परमार्थ को नहीं जानते

हो। नराधिप! तुम्हे यह भी ज्ञात नहीं है कि मानव अनाथ या सनाथ कैसे होता है?'

17 अभिधेय और उत्थान की आवश्यकता का दिग्दर्शन

मूल गाथा- सुणेह मे महाराय! अव्वक्खित्तेण चेयसा।
जहा अणाहो भवई, जहा मेय पवत्तिय ॥17॥

संस्कृत छाया- श्रृणु मे महाराज! अव्याक्षिप्तेन चेतसा।
यथाऽनाथो भवति, यथा मयैतत् प्रवर्तितम् ॥१७॥

अन्वयार्थ-महाराय-हे महाराज! अव्वक्खित्तेण-विक्षेपरहित, चेयसा-चित्त से, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो कि, जहा-जैसे कि, अणाहो-अनाथ, भवई-होता है, य-और, जहा-जिस भाव से, मे-मैंने, इय-इस अनाथता की, पवत्तिय-प्रवृत्ति प्ररूपणा की है।

भावानुवाद-''महाराज! अनाकुल-एकाग्रचित्त से मुझ से सुनो कि कैसे कोई अनाथ होता है और किस भाव से मैंने उसका प्रयोग किया है?''

18 मुनिराज द्वारा अपनी पूर्वचर्या का वर्णन

मूल गाथा- कोसंबी णाम णयरी, पुराणपुरभेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूयधणसंचओ ॥18॥

संस्कृत छाया- कौशाम्बी नाम्नी नगरी, पुराणपुरभेदिनी।
तत्रासीत् पिता मम, प्रभूतधनसञ्चय ॥१८॥

अन्वयार्थ-पुराण-प्राचीन, पुर-नगरा को, भेयणी-भेदन करने वाली, कोसंबी-कौशाम्बी, णाम-नामक, णयरी-नगरी थी, तत्थ-वहा, मज्झ-मेरे, पिया-पिता, आसी-रहते थे, (उनके पास) पभूय-प्रचुर, धण-धन का, संचओ-संचय था।

भावानुवाद-''सुन्दरता में प्राचीन नगरो को परास्त करने वाली सुन्दर 'कौशाम्बी' नामक नगरी थी। वहा मेरे पितृदेव थे, उनके पास प्रचुर-प्रभूत धन का संग्रह था।''

19 स्वानुभूत अनाथता की अपेक्षा से

मूल गाथा- पढमे वए महाराय! अउला मे अच्छिवेयणा।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगत्तेसु पत्थिवा! ॥19॥

संस्कृत छाया- प्रथमे वयसि महाराज! अतुला मेऽक्षिवेदना।
अभूद् विपुलो दाह, सर्वगात्रेषु पार्थिव! ॥१९॥

अन्वयार्थ-महाराय-हे महाराज! पढमे-प्रथम, वए-वय (यौवनावस्था) म, मे-मेरे, अच्छि-आखा में, अउला-अतुल, (असह्य) वेयणा-वेदना (उत्पन्न हुई), पत्थिवा-हे पार्थिव!, सव्वगत्तेसु-सभी अगों में मर विउलो-

अत्यन्त, दाहो-जलन, अहोत्था-होने लगी।

भावानुवाद-''महाराज! यौवन के प्रथम-प्रारम्भ मे ही मेरे नेत्रो मे असह्य वेदना उत्पन्न हो गई। पार्थिव! समस्त शरीर के सभी अगो मे अत्यन्त जलन हो रही थी।''

20 अक्षिगत वेदना का दिग्दर्शन

मूल गाथा- सत्थं जहा परमतिक्ख, सरीरविवरतरे।
पवेसेज्ज अरी कुद्धो, एव मे अच्छिवेयणा ॥२०॥

सस्कृत छाया- शस्त्र यथा परमतीक्ष्ण, शरीरविवरान्तरे।
प्रवेशयेदरि क्रुद्ध, एव मेऽक्षिवेदना ॥२०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, कुद्धो-क्रुद्ध, अरी-शत्रु, सरीर-शरीर के, विवरतरे-छिद्रा में, परम-अत्यन्त, तिक्ख-तीक्ष्ण, सत्थ-शस्त्र, पवेसेज्ज-भोक दे (घुसेड दे), एव-ऐसी ही, मे-मेरी, अच्छि-आखों मे, वेयणा-भयकर वेदना हो रही थी।

भावानुवाद-जैसे कोई क्रुद्ध शत्रु शरीर के छिद्रा-मर्म स्थानो मे अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र घोप दे,ऐसी भयकर वेदना मेरी आखों मे थी।

21 दाह जन्य वेदना का वर्णन

मूल गाथा- तिय मे अतरिच्छ च, उत्तमग च पीडई।
इदासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥

सस्कृत छाया- त्रिक मे अन्तरेच्छ च, उत्तमाग च पीडयति।
इन्द्राशनिसमा घोरा, वेदना परमदारुणा ॥२१॥

अन्वयार्थ-इदा सणिसमा-इन्द्र के वज्र के समान, घोरा-अति भयकर, परमदारुणा-अत्यन्त दारुण, वेयणा-वेदना,मे-मेरे, तिय-कटि, च-और, अतरिच्छ-हृदय, च-और, उत्तमग-मस्तक को, पीडई-पीडित कर रही थी।

भावानुवाद-इन्द्र के वज्र प्रहार से जैसी भयकर वेदना होती है, वैसी ही महाघोर वेदना मेरे त्रिक-कटि भाग में, अन्तरेच्छ-हृदय स्थान मे और उत्तमाग मस्तिष्क में हो रही थी।

22 चिकित्सा शास्त्र मे निष्णात वैद्यो का उल्लेख

मूल गाथा- उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामततिगिच्छगा।
अबीया सत्थकुसला, मतमूलविसारया ॥२२॥

सस्कृत छाया- उपस्थिता ममाचार्या, विद्यामन्त्रचिकित्सका।
अद्वितीया शास्त्रकुशला, मन्त्रमूलविशारदा ॥२२॥

अन्वयार्थ-विज्जा-विद्या, (और) मत-मत्र के द्वारा, तिगिच्छगा-चिकित्सा करने वाले, मत-मन्त्र (और), मूल-मूल, (जडी बूटियो के प्रयोग) मे विसारया-विशारद, (तथा) अवीया-अद्वितीय, सत्थकुसला-शास्त्र कुशल, आयरिया-आयुर्वेदाचार्य, मे-मेरी, चिकित्सा के लिए, उवट्ठिया-उपस्थित हुए।

भावानुवाद-"मेरी उस वेदना की उपशान्ति हेतु विद्या और मत्र के द्वारा चिकित्सा करने वाले मत्र और मूल विद्या मे विशारद, अद्वितीय शास्त्र कुशल आयुर्वेदाचार्य उपस्थित थे।"

23 उनके चिकित्सा क्रम का वर्णन

मूल गाथा- ते मे तिगिच्छ कुव्वति, चाउप्पाय जहाहिय।
ण य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया॥२३॥

सस्कृत छाया- ते मे चिकित्सा कुर्वन्ति, चतुष्पादा यथाख्याताम्।
न च दु खाद् विमोचयन्ति, एषा ममाऽनाथता॥२३॥

अन्वयार्थ-ते-उन्होने, मे-मेरी, जहा-जैसे, हिय-हित होवे, वैसे-चाउप्पाय-चातुष्पाद, तिगिच्छ-चिकित्सा, कुव्वति-की, य-किन्तु, (मुझे) दुक्खा-दु ख से, विमोयति-विमुक्त नहीं कर पाए, एसा-यही, मज्झ-मेरी, अणाहया-अनाथता थी।

भावानुवाद-"उन्होने मेरे हितार्थ रोग शमन के लिए वैद्य, रोग, पथ्य और परहेज रूप से चतुष्पाद चिकित्सा की किन्तु वे मुझे इस रोग के दु ख से मुक्त नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता थी।"

24 बहुमूल्य पदार्थ भी रोग मिटाने में असमर्थ

मूल गाथा- पिया मे सव्वसारपि, दिज्जाहि मम कारणा।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया॥२४॥

सस्कृत छाया- पिता मे सर्वसारमपि, अदान्मम कारणात्।
न च दु खाद्विमोचयति, एषा ममाऽनाथता॥२४॥

अन्वयार्थ-मे-मेरे, पिया-पिता, ममकारणा-मेरे लिए, सव्वसारपि सवश्रेष्ठ (बहुमूल्य) पदार्थ भी, दिज्जाहि-उन वैद्यो को देने के लिए तत्पर थे, य-फिर भी वे मुझे, दुक्खा-दु ख से, ण-नहीं, विमोएइ-छुडा सके, एसा-यह, मज्झ-मेरी, अणाहया-अनाथता है।

भावानुवाद-"मेरे पिता ने मेरी व्याधि की उपशान्ति हेतु चिकित्सकों को सर्वसार अर्थात् सर्वोत्तम बहुमूल्य वस्तुए दी, किन्तु वे मुझे दु ख से मुक्त नहीं कर सके। यही मेरी अनाथता थी।"

25 मेरी माता भी दु खो से मुक्त नहीं कर सकी

मूल गाथा- मायाऽवि मे महाराय। पुत्तसोगदुहट्टिया।
ण य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया॥२५॥

संस्कृत छाया- माताऽपि मे महाराज! पुत्रशोकदु खार्ता।
न च दु खाद्विमोचयन्ति, एषा ममाऽनाथता ॥२५॥

अन्वयार्थ-महाराय-हे महाराज!, य-और, मे-मेरी, माया-माता, पुत्तसोग-पुत्र शोक के, दुहट्ठिया-दु ख स पीडित हुई (किन्तु), दुक्खा-दु ख से, (मुझे) ण य विमोयति-मुक्त न कर सकी, एसा-यह, मज्झ-मरी अणाहया-अनाथता थी।

भावानुवाद-'राजन्! वात्सल्य मूर्ति मेरी माता पुत्र शोक के दु ख से पीडित रहती थी, किन्तु वह भी मुझे दु ख से मुक्त नहीं कर सकी, यही मेरी अनाथता थी।'

26 सहोदर भाइयो की सहायता से भी रोग विमुक्त नहीं

मूल गाथा- भायरो मे महाराय! सगा जेट्ठकणिट्ठगा।
ण य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया ॥२६॥

संस्कृत छाया- भ्रातरो मे महाराज! स्वका ज्येष्ठकनिष्ठका।
न च दु खाद्विमोचयन्ति, एषा ममाऽनाथता ॥२६॥

अन्वयार्थ-महाराय-हे महाराज!, मे-मेरे, सगा-सगे, जेट्ठ-बडे (और), कणिट्ठगा-छोटे, भायरो-भाई (भी), दुक्खा-दु ख से, ण य विमोयति-(मुझे) मुक्त नहीं कर सके, एसा-यह, मज्झ-मेरी, अणाहया-अनाथता थी।

भावानुवाद-'महाराज! मेरे बडे और छोटे सभी सहोदर भाई मुझे दु ख से मुक्त नहीं कर सके, यह मेरी अनाथता थी।'

27 भगिनी भी दु ख मे सवेदना प्रकट करने मे असमर्थ

मूल गाथा- भइणीओ मे महाराय! सगा जेट्ठकणिट्ठगा।
ण य दुक्खा विमोयति, एसा मज्झ अणाहया ॥२७॥

संस्कृत छाया- भगिन्यो मे महाराज! स्वका ज्येष्ठकनिष्ठका।
न च दु खाद्विमोचयन्ति, एषा ममाऽनाथता ॥२७॥

अन्वयार्थ-महाराय-महाराज!, मे-मेरी, सगा-सगी, जेट्ठ-बडी (और), कणिट्ठगा-छोटी, भइणीओ-बहनें (भी), दुक्खा-दु ख से, (मुझे) ण य विमोयति-मुक्त नहीं कर सकी, एसा-यह, मज्झ-मेरी, अणाहया-अनाथता थी।

भावानुवाद-'महाराज! मरी बडी और छोटी सगी बहिने भी दु ख से मुक्त नहीं कर सकी, यह मेरी अनाथता थी।'

28 मेरी पतिव्रता भार्या भी रोग विमुक्त करने मे असमर्थ

मूल गाथा- भारिया मे महाराय! अणुरत्ता अणुव्वया।
असुपुण्णेहि णयणेहिं, उर मे परिसिंचई ॥२८॥

सस्कृत छाया- भार्या मे महाराज! अनुरक्ताऽनुव्रता।
अश्रूपूर्णाभ्या नयनाभ्याम्, उरो मे परिसिञ्चति ॥२८॥

अन्वयार्थ-महाराय-महाराज!, मे-मुझ मे, अणुरत्ता-अनुरक्ता (और), अणुव्वया-अनुव्रता (पतिव्रता) भारिया-पत्नी, (भार्या) असुपुण्णेहिं-अश्रुपूर्ण, णयणेहिं-नेत्रो से, मे-मेरे, उर-वक्षस्थल, (छाती) को परिसिचई-भिगोती (सींचती) रहती थी।

भावानुवाद-'महाराज! मुझ मे पूर्ण अनुरक्ता और अनुव्रता-पतिव्रता मेरी पत्नी मरे दु ख से दु खित अश्रुपूर्ण नेत्रो से मेरे वक्ष स्थल (छाती) को भिगोती रहती थी।'

29 अपनी स्त्री के विशिष्ट गुणो का वर्णन

मूल गाथा- अण्ण पाण च ण्हाण च, गधमल्लविलेवण।
मए णायमणाय वा, सा बाला णेव भुजई॥२९॥

सस्कृत छाया- अन्न पान च स्नान च, गन्ध माल्य विलेपनम्।
मया ज्ञातमज्ञात वा, सा बाला नैव भुक्ते ॥२९॥

अन्वयार्थ-सा-वह, बाला-बाला (नवयुवती), मए-मेरे से णाय-जाने (या), अणाय-अजाने मे (कदापि), अण्ण-अन्न, पाण-पान, च-तथा, ण्हाण च-स्नान और, गध-गन्ध, मल्ल-माल्य (और) विलेवण-विलेपन का, णेव भुजई-उपभोग नहीं करती थी।

भावानुवाद-'वह बाला मेरे प्रत्यक्ष या परोक्ष मे भी कभी भी अन्न-पान, स्नान, गन्ध, माल्य और विलेपन का उपभोग नहीं करती थी।'

30 अत्यन्त स्नेह के वशीभूत हुई स्त्री भी असमर्थ

मूल गाथा- खण पि मे महाराय! पासाओ मे ण फिट्टई।
ण य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया॥३०॥

सस्कृत छाया- क्षणमपि मे महाराज! पार्श्वतो मे नापयति।
न च दु खाद्विमोचयति, एषा ममाऽनाथता ॥३०॥

अन्वयार्थ-महाराय-हे महाराज, (वह) खणपि-एक क्षण भर भी, मे-मरे, पासाओ-पास से, ण फिट्टई-दूर नहीं होती थी (फिर भी वह), दुक्खा-दु ख से मुझे, ण य विमोएइ-मुक्त नहीं कर सकी, एसा-यही, मज्झ-मेरी, अणाहया-अनाथता थी।

भावानुवाद-'राजन्! वह एक क्षण के लिए भी मुझ से अलग नहीं होती थी, फिर भी वह मुझे दु ख मे नहीं छुडा सकी, यही मेरी अनाथता थी।'

31 अनन्त वेदना का कथन

मूल गाथा- तओऽहं एवमाहंसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो।
वेयणा अणुभविउ जे, ससारम्मि अणतए॥३१॥

सस्कृत छाया- ततोऽहमेवमब्रुवम्, दु क्षमा हु पुन पुन ।
वेदनाऽनुभवितु या, ससारेऽनन्तके॥३१॥

अन्वयार्थ-तओ-तब, अह-मैं, एव-इस प्रकार, आहसु-कहने लगा कि, अणतए-(इस) अनन्त, ससारम्मि ससार मे, पुणो-पुणो-बार-बार, जे-जिस, वेयणा-वेदना का, अणुभविउ-अनुभव करना होता है, (वह) हु-वास्तव मे, दुक्खमा-दु सह है।

भावानुवाद-तब (सब ओर से निराश-असहाय होने पर) मैंने इस प्रकार विचार किया-'प्राणी को इस अनन्त ससार मे पुन पुन इस असह्य वेदना का अनुभव करना होता है, यह निश्चित ही दु खरूप है।'

32 अनगार वृत्ति धारण करने की आकाक्षा

मूल गाथा- सय च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ।
खतो दतो णिरारभो, पव्वए अणगारिय॥३२॥

सस्कृत छाया- सकृच्च यदि मुच्ये, वेदनाया विपुलाया इत ।
क्षान्तो दान्तो निरारम्भ , प्रव्रजाम्यनगारिताम्॥३२॥

अन्वयार्थ-जइ-यदि, (मैं) इओ-इस, विउला-विपुल, वेयणा-वेदना से, सय च-एक बार भी, मुच्चेज्जा-मुक्त हो जाऊ, (तो) खतो-क्षान्त, दतो-दान्त, (और) णिरारभो-आरम्भ रहित होकर, अणगारिय-अनगार वृत्ति म, पव्वए-प्रव्रजित हो जाऊगा।

भावानुवाद-यदि इस विपुल वेदना से एक बार भी मुक्त हो जाऊ तो मैं क्षान्त, दान्त और निरारम्भ होकर अनगार वृत्ति में प्रव्रजित-दीक्षित हो जाऊगा।

33 रात्रि गमन-वेदना शमन

मूल गाथा- एव च चिंतइत्ताण, पसुत्तो मि णराहिवा!
परियत्तंतीए राइए, वेयणा मे खय गया॥३३॥

सस्कृत छाया- एव च चिन्तयित्वा, प्रसुप्तोऽस्मि नराधिप!
परिवर्तमानाया रात्रौ, वेदना मे क्षय गता॥३३॥

अन्वयार्थ-णराहिवा-हे नराधिप, एव च-इस प्रकार, चिंतइत्ताण-चिन्तन करके, पसुत्तोमि-मैं सो गया राइए-रात्रि के, परियत्ततीए-व्यतीत होने पर, मे-मेरी, वयणा-वदना, खयं-क्षय, (शान्त) गया-हो गई।

भावानुवाद-नरनाथ! मैं इस प्रकार का चिन्तन करके सो गया। रात्रि व्यतीत होने के साथ-साथ मरी वदना भी शान्त हो गई।

34 वेदना शान्त होने के अनन्तर की स्थिति

मूल गाथा- तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बधवे।
खतो दतो णिरारभो, पव्वइओ अणगारिय ॥३४॥

संस्कृत छाया- तत कल्य प्रभाते, आपृच्छय बान्धवान्।
क्षान्तो दान्तो निरारम्भो, प्रव्रजितोऽनगारिताम् ॥३३॥

अन्वयार्थ-तओ-इसके बाद, पभायम्मि-प्रभात काल मे, कल्ले-कल्प (स्वस्थ) होने पर, बधवे-(मैं) बन्धुजनो को, आपुच्छित्ताण-पूछ कर, खतो-क्षमायुक्त, दतो-दान्त (और), णिरारभो-निरारम्भी होकर, अणगारिय-अनगार वृत्ति मे पव्वइओ-प्रव्रजित हो गया।

भावानुवाद-'तदनन्तर प्रात काल मे स्वस्थ होते ही मैं अपने बाधवो-परिजना से पूछकर क्षान्त, दान्त एव निरारम्भ होकर अनगार वृत्ति मे दीक्षित हो गया।'

35 मुनि ने कहा-'मे ऐसे सनाथ हुआ'

मूल गाथा- तोऽह णाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसि चेव भूयाण, तसाण थावराण य ॥३५॥

संस्कृत छाया- ततोऽह नाथो जात, आत्मनश्च परस्य च।
सर्वेषा चैव भूताना, त्रसाना स्थावराणा च ॥३५॥

अन्वयार्थ-तो-तब से, अह-मैं, अप्पणो-अपना, य-और, परस्स-दूसरा का, (तथा) तसाण-त्रस, य-और, थावराण-स्थावर, सव्वेसि-सभी, चेव-ही, भूयाण-प्राणियो का, णाहो-नाथ, जाओ-हो गया।

भावानुवाद-'तब से मैं अपना और दूसरो का त्रस एव स्थावरो का सभी जीवो का नाथ हो गया।'

36 आत्मा ही वैतरणी नदी, कूट शाल्मली वृक्ष एव नदन वन है

मूल गाथा- अप्पा णइ वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे णदण वण ॥३६॥

संस्कृत छाया- आत्मा नदी वैतरणी, आत्मा मे कूटशाल्मली।
आत्मा कामदुधा धेनु, आत्मा मे नन्दन वनम् ॥३६॥

अन्वयार्थ-अप्पा-(मेरी) आत्मा ही, वेयरणी-वैतरणी, णइ-नदी है, (और) मे-मेरी, अप्पा-आत्मा ही, कूड सामली-कूट शाल्मली वृक्ष, अप्पा-आत्मा ही, कामदुहा धेणू-कामदुधा धेनु है, (और) मे-मेरी, अप्पा-आत्मा ही, णदण वण-नन्दन वन है।

भावानुवाद-(हे राजन्! यह स्पष्ट है कि) मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है अपनी आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है, इनके समान दु खद है और मेरी आत्मा ही कामदुधा-कामधेनु और आत्मा ही नन्दन वन है-सुखद है।

37 आत्मा ही अनाथ-सनाथ आदि होती है-मुनि का उपदेश

मूल गाथा- अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ॥37॥

संस्कृत छाया- आत्मा कर्ता विकर्ता च, दुःखाना च सुखाना च।
आत्मा मित्रममित्रञ्च दुष्प्रस्थित सुप्रस्थित ॥३७॥

अन्वयार्थ-अप्पा-आत्मा, दुहाण-दुःखो, य-और, सुहाण य-सुखो का, कत्ता-कर्ता है, (वही) विकत्ता-विकर्ता-भोक्ता है, सुप्पट्ठिओ-सत्प्रवृत्ति (सुमार्ग) मे स्थित, अप्पा-आत्मा ही, मित्त-मित्र है, च-और, दुप्पट्ठिय-दुष्प्रवृत्ति, (कुमार्ग) मे स्थित आत्मा, अमित्त-शत्रु है।

भावानुवाद-'आत्मा ही अपने सुखो और दुःखो का कर्त्ता है और वही विकर्त्ता-भोक्ता है, सन्मार्ग पर स्थित अपना आत्मा ही अपना मित्र है और असत् मार्ग पर स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।'

38 अनाथता का एक और भी स्वरूप है

मूल गाथा- इमा हु अण्णा वि अणाहया णिवा!
तमेगचित्तो णिहुओ सुणेहि।
णियंठधम्मं लहियाण वि जहा,
सीयंति एगे बहुकायरा णरा॥38॥

संस्कृत छाया- इयं खल्वन्याप्यनाथता नृप!,
तामेकचित्तो निभृत शृणु।
निर्ग्रन्थधर्मं लब्ध्वाऽपि यथा,
सीदन्त्येके बहुकातरा नरा ॥३८॥

अन्वयार्थ-णिवा-हे नृप!, इमा-यह (एक), अण्णावि-और भी, हु-वास्तव मे, अणाहया-अनाथता है, त-उसे, णिहुओ-शान्त (और), एगचित्तो-एकाग्रचित्त (होकर), सुणेहि-सुनो, जहा-जैसे कि, एगे-कोई-कोई, बहु-बहुत ही, कायरा-कायर णरा-पुरुष, णियठ धम्मं-निर्ग्रन्थ धर्म को, लहियाण-पाकर, वि-भी, सीयंति-खिन्न हो जाते हैं।

भावानुवाद-राजन्! यह एक-दूसरी प्रकार की भी अनाथता है। शान्त और एकाग्रचित्त से उसे सुनो। अनेक ऐसे कायर व्यक्ति होते हैं जो निर्ग्रन्थ धर्म को प्राप्त करके भी खिन्न हो जाते हैं, स्वीकृत मुनि धर्म का यथावत् पालन नहीं करते हैं।

39 सनाथ से अनाथ हुए मुनियो के कृत्यो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं,
सम्मं च णो फासयई पमाया।

अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
ण मूलओ छिंदइ बंधणं से ॥३९॥

संस्कृत छाया- यः प्रव्रज्य महाव्रतानि,
सम्यक् च नो स्पृशति प्रमादात्।
अनिगृहीतात्मा च रसेषु गृद्ध,
न मूलत छिनत्ति बंधनं स ॥३९॥

अन्वयार्थ-जो-जो (साधक), पव्वइत्ताण-दीक्षित होकर पमाया-प्रमादवश, महव्वयाइ-महाव्रतो का, सम्म-भली भाति, णो फासयई-सेवन नहीं करता, य-तथा, अणिग्गहप्पा-इन्द्रिय निग्रह से रहित, य-और, रसेसु-रसो मे, गिद्धे-आसक्त है, से-वह, मूलओ-मूल से, बंधण-बंधन का, ण छिंदइ-उच्छेदन नहीं कर सकता।

भावानुवाद-"जो प्रव्रजित होकर, प्रमादवश महाव्रतो का सम्यक् रूप से, स्पर्शन-पालन नहीं करता है, जो आत्मा इन्द्रियों और मन का निग्रह नहीं करता और रसो मे आसक्त है, वह राग-द्वेष रूप बन्धनो का मूल से छेद नहीं करता है।"

40 पाच समितियो मे किंचिन्मात्र भी उपयोग नहीं रखना

मूल गाथा- आउत्तया जस्स ण अत्थि काइ,
इरियाए भासाए तहेसणाए।
आयाण-णिक्खेव-दुगुंछणाए,
ण वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

संस्कृत छाया- आयुक्तता यस्य नास्ति कापि,
ईर्याया भाषाया तथैषणायाम्।
आदाननिक्षेपजुगुप्सनायु,
न वीरयातमनुयाति मार्गम् ॥४०॥

अन्वयार्थ-इरियाए-ईर्या मे, भासाए-भाषा मे, तह-तथा, एसणाए-एषणा मे, आयाण-आदान, णिक्खेव-निक्षेप मे, (और) दुगंछणाए-जुगुप्सा जनक, (उच्चार प्रस्रवण परिष्ठापन) मे, जस्स-जिसकी, काइ-कुछ भी, आउत्तया (यतना) उपयोगयुक्तता, ण अत्थि-नहीं है (वह उस), वीरजाय-वीरयात-वीरसेवित, मग्ग-मार्ग का, ण अणुजाइ-अनुसरण नहीं कर सकता।

भावानुवाद-"जिसकी ईर्या, भाषा, एषणा तथा आदान निक्षेप और उत्सर्ग-उच्चार प्रस्रवण परिष्ठापन म किंचित् भी आयुक्तता-सजगता नहीं है, वह उस मार्ग का अनुसरण नहीं करता, जिस पर कि वीर पुरुष चले हैं।"

41 तप नियमो से भ्रष्ट होना ससार स अनिवृत्ति

मूल गाथा-

चिर पि से मुण्डरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तवणियमेहि भट्ठे।
चिर पि अप्पाण किलेसइत्ता,
ण पारए होइ हु सपराए॥४१॥

सस्कृत छाया-

चिरमपि स मुण्डरुचिर्भूत्वा,
अस्थिरव्रतस्तपोनियमेभ्यो भ्रष्ट।
चिरमप्यात्मान क्लेशयित्वा,
न पारगो भवति खलु सपरायस्य॥४१॥

अन्वयार्थ-जो अथिरव्वए-व्रतो मे अस्थिर है, तव-तप (तथा), णियमेहिं-नियमो से, भट्ठे-भ्रष्ट है, से-वह, चिरपि-चिरकाल पर्यन्त, मुण्डरुई-मुण्डरुचि, भवित्ता-होकर (तथा), चिरपि-चिरकाल तक, अप्पाण-आत्मा को, किलेसइत्ता-क्लेशित करके, हु-निश्चय ही, सपराए-ससार से, पारए-पारगामी (पार), ण होइ-नहीं हो सकता।

भावानुवाद-'जो अहिसा आदि व्रतो मे अस्थिर है, तप और नियमो से भ्रष्ट है, वह चिरकाल तक मुण्डरुचि (केवल द्रव्य से सिर मुण्डाते रहने वाला) रहकर, चिरकाल तक आत्मा को कष्ट देकर भी वह ससार (जन्म-मरण) से पार नहीं हो सकता।'

42 द्रव्य मुण्डित के विशिष्ट स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा-

पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे,
अयतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु॥४२॥

सस्कृत छाया-

पुल्लेव मुष्टिर्यथा स असार,
अयन्त्रित कूटकार्षापण इव।
राढामणिर्वैडूर्यप्रकाश,
अमहार्घको भवति खलु ज्ञेषु॥४२॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, पोल्लेव-पोली, मुट्ठी-मुट्ठी, असारे-असार है, वा-अथवा, कूड-कूट, कहावणे-कार्षापण (खोटा सिक्का), अयतिए-अयत्रित (अप्रमाणित) है, य-और, राढामणी-काच की मणि, वरुलिय-वैडूर्यमणि की तरह प्पगासे-प्रकाशित होती है, (किन्तु), जाणएसु-जानने वाला (विज्ञ पुरुषों) की दृष्टि मे, स-वह, हु-निश्चय ही, अमहग्घए-मूल्यहीन, होइ-होती है।

भावानुवाद-जैसे पोली (खाली) मुट्ठी असार होती है अथवा जैसे खोटा सिक्का अनियत्रित-अप्रमाणित होता ह, जैसे काच की मणि वैडुर्यमणि के समान चमकने पर भी विज्ञ-पुरुषो की दृष्टि मे वह मूल्यहीन है, वैसे ही विज्ञ-पुरुषों की दृष्टि मे उस द्रव्यलिगी मुनि का कोई मूल्य नहीं है।"

43 सयम के त्याग और असयम के अनुसरण का फल

मूल गाथा-
कुसीललिग इह धारइत्ता,
इसिज्झय जीविय बूहइत्ता।
असजए सजयलप्पमाणे,
विणिग्घायमागच्छइ से चिरपि ॥४३॥

सस्कृत छाया-
कुशीललिगमिह धारयित्वा,
ऋषिध्वज जीवित बृहयित्वा।
असयत सयत लपन्,
विनिघातमागच्छति स चिरमपि ॥४३॥

अन्वयार्थ-जो इह-इस जन्म मे, कुसील लिग-कुशील लिग को, धारइत्ता-धारण कर, तथा इसिज्झय-ऋषि ध्वज से, जीविय-जीवन का, बूहइत्ता-पोषण कर, असजए-असयत होने पर भी (म), सजय-सयत हू इस प्रकार लप्पमाण-बोलता हुआ से-वह, चिरपि-चिरकाल तक, विणिग्घाय-विनिघात (आत्मघात) को, आगच्छइ-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-'जो आचरण भ्रष्टो का वेप धारण करके, ऋषि ध्वज (रजोहरण आदि मुनि चिन्ह) धारण करके अपनी आजीविका चलाता है और असयमी होते हुए भी स्वय को सयमी कहलाता है, वह चिरकाल तक विनिघात-विनाश को प्राप्त होता है।'

44 असयम मय जीवन का कुफल

मूल गाथा-
विस तु पीय जह कालकूड,
हणाइ सत्थ जह कुग्गहीय।
एसो वि धम्मो विसओववण्णो,
हणाइ वेयाल इवाविवण्णो ॥४४॥

सस्कृत छाया-
विष तु पीत यथा कालकूट,
हिनस्ति शस्त्र यथा कुगृहीतम्।
एषोऽपि धर्मो विषयोपपन्न,
हन्ति वेताल इवाविपन्न ॥४४॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, पीय-पिया हुआ कालकूड-कालकूट, विस-विष (प्राणो का), हणाइ-घात कर देते हैं,

41 तप नियमो से भ्रष्ट होना ससार से अनिवृत्ति

मूल गाथा- चिर पि से मुण्डरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तवणियमेहिं भट्ठे ।
चिर पि अप्पाण किलेसइत्ता,
ण पारए होइ हु सपराए ॥४१॥

सस्कृत छाया- चिरमपि स मुण्डरुचिर्भूत्वा,
अस्थिरव्रतस्तपोनियमेभ्यो भ्रष्ट ।
चिरमप्यात्मान क्लेशयित्वा,
न पारगो भवति खलु सपरायस्य ॥४१॥

अन्वयार्थ-जो अथिरव्वए-व्रतो में अस्थिर है, तव-तप (तथा), णियमेहिं-नियमो से, भट्ठे-भ्रष्ट है स-वह, चिरपि-चिरकाल पर्यन्त, मुण्डरुई-मुण्डरचि, भवित्ता-होकर (तथा), चिरपि-चिरकाल तक, अप्पाण-आत्मा का किलेसइत्ता-क्लेशित करके, हु-निश्चय ही, सपराए-ससार से, पारए-पारगामी (पार), ण होइ-नहीं हो सकता।

भावानुवाद-'जो अहिसा आदि व्रता मे अस्थिर है, तप और नियमा से भ्रष्ट है, वह चिरकाल तक मुण्डरुचि (केवल द्रव्य से सिर मुण्डाते रहने वाला) रहकर, चिरकाल तक आत्मा का कष्ट देकर भी वह ससार (जन्म-मरण) से पार नहीं हो सकता।'

42 द्रव्य मुण्डित के विशिष्ट स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे,
अयतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥४२॥

सस्कृत छाया- पुल्लेव मुष्टिर्यथा स असार ,
अयन्त्रित कूटकार्षापण इव।
राढामणिर्वैडूर्यप्रकाश ,
अमहार्घको भवति खलु ज्ञेषु ॥४२॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, पोल्लेव-पोली, मुट्ठी-मुट्ठी, असारे-असार है, वा-अथवा, कूड-कूट, कहावण-कार्षापण (खोटा सिक्का), अयतिए-अयत्रित (अप्रमाणित) है, य-और, राढामणी-काच की मणि, वेरुलिय-वैडूर्यमणि की तरह, प्पगासे-प्रकाशित होती है, (किन्तु), जाणएसु-जानने वालो (विज्ञ पुरुषो) की दृष्टि में, से-वह, हु-निश्चय ही अमहग्घए-मूल्यहीन, होइ-होती है।

भावानुवाद-जैमे पोली (खाली) मुट्ठी असार होती है अथवा जैसे खोटा सिक्का अनियत्रित-अप्रमाणित हाता है जैसे काच की मणि वैडुर्यमणि के समान चमकने पर भी विज्ञ-पुरुषा की दृष्टि मे वह मूल्यहीन है, वैसे ही विज्ञ-पुरुषों की दृष्टि मे उस द्रव्यलिगी मुनि का कोई मूल्य नहीं है।"

43 सयम के त्याग और असयम के अनुसरण का फल

मूल गाथा- कुसीललिग इह धारइत्ता,
इसिज्झय जीविय बूहइत्ता।
असजए सजयलप्पमाणे,
विणिग्घायमागच्छइ से चिरपि ॥४३॥

सस्कृत छाया- कुशीललिगमिह धारयित्वा,
ऋषिध्वज जीवित बृहयित्वा।
असयत सयत लपन्,
विनिघातमागच्छति स चिरमपि ॥४३॥

अन्वयार्थ-जो इह-इस जन्म मे, कुसील लिग-कुशील लिग का, धारइत्ता-धारण कर, तथा इसिज्झय-ऋषि ध्वज से, जीविय-जीवन का, बूहइत्ता-पोषण कर, असजए-असयत होने पर भी (मैं) सजय-सयत हू इस प्रकार लप्पमाण-बोलता हुआ से-वह, चिरपि-चिरकाल तक, विणिग्घाय-विनिघात (आत्मघात) का, आगच्छइ-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-'जो आचरण भ्रष्टो का वेष धारण करके, ऋषि ध्वज (रजोहरण आदि मुनि चिन्ह) धारण करके अपनी आजीविका चलाता है और असयमी होते हुए भी स्वय का सयमी कहलाता है, वह चिरकाल तक विनिघात-विनाश को प्राप्त होता है।'

44 असयम मय जीवन का कुफल

मूल गाथा- विस तु पीय जह कालकूड,
हणाइ सत्थ जह कुग्गहीय।
एसो वि धम्मो विसओववण्णो,
हणाइ वेयाल इवाविवण्णो ॥४४॥

सस्कृत छाया- विष तु पीत यथा कालकूट,
हिनस्ति शस्त्र यथा कुगृहीतम्।
एषोऽपि धर्मो विषयोपपन्न,
हन्ति वेताल इवाविपन्न ॥४४॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, पीय-पिया हुआ कालकूड-कालकूट, विस-विष (प्राणों का), हणाइ-घात कर देता है,

(तथा), जह-जैसे, कुग्गहीय-कुग्रहित, (उल्टा पकडा हुआ), सत्थ-शस्त्र, हणाइ-विनाश कर देता है हव अविवण्णो-अनियत्रित (वश म नहीं किया हुआ), वेयाल-वैताल (पिशाच), साधक को मार डालता है, इव-इसी तरह, विसओ-विषय विकारो से, विवण्णो-युक्त, एसो-यह, धम्मो-निर्ग्रन्थ धर्म, वि-भी, (विनाशकर होता है)।

भावानुवाद-"जैसे पिया हुआ कालकूट-विष प्राणो का नाश करता है, उलटा पकडा हुआ शस्त्र अपना ही घात कर देता है, अनियत्रित वेताल साधक को ही मार डालता है, वैसे ही शब्दादि विषयो से युक्त धर्म भी द्रव्य लिगी के विनाश-दुर्गति पतन का कारण होता है।"

45 सयम रहित साधु के लक्षणों का वर्णन

मूल गाथा- जे लक्खण सुविण पउजमाणे, णिमित्तकोउहलसंपगाढे।
कुहेडविज्जासवदारजीवी, ण गच्छई सरण तम्मि काले ॥४५॥

सस्कृत छाया- यो लक्षण स्वप्न प्रयुञ्जान, निमित्तकौतूहलसप्रगाढ।
कुहेटकविद्यास्रवद्वारजीवी, न गच्छति शरण तस्मिन् काले ॥४५॥

अन्वयार्थ-जे-जो, लक्खण-लक्षण और, सुविण-स्वप्न का, पउंजमाणे-प्रयोग करता है, णिमित्त-निमित्त शास्त्र, (और) कोऊहल-कौतुहल मे, सपगाढे-आसक्त है, कुहेड-असत्य और आश्चर्योत्पादनी, विज्जा-विद्याओं से, (तथा) आसव दार-आश्रव द्वारो से, जीवी-जीवन व्यतीत करने वाला, तम्मि काले-उस (कर्म भोगने के) समय मे, सरण-किसी की शरण को, ण गच्छई-प्राप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-"जो साधक लक्षण और स्वप्न विद्या इनके शुभाशुभ फल का निर्देश करता है, निमित शास्त्र और कौतुक-इन्द्रजाल आदि कार्यों मे आसक्त रहता है तथा असत्य विद्याओ से आश्चर्य उत्पन्न करने वाली कुहक विद्याओं-मन्त्र-तन्त्रा से आजीविका चलाता है अथवा हिसा आदि आश्रव द्वारो म प्रवृत्त होता है, वह कर्मफल-भोग के समय किसी की शरण प्राप्त नहीं कर सकता है।"

46 मुनि वृत्ति-चरित्र व्रत की विराधना का फल

मूल गाथा- तमतमेणेव उ से असीले,
सया दुही विप्परियामुवेइ।
सधावई णरगतिरिक्खजोणि,
मोण विराहेत्तु असाहुरूवे ॥४६॥

सस्कृत छाया- तमस्तमसैव तु स अशील,
सदा दु खी विपर्यासमुपैति।
स धावति नरकतिर्यग्योनि,
मौन विराध्याऽसाधुरूप ॥४६॥

अन्वयार्थ-से-वह, असीले-शील रहित (साधु), तमंतमणेव-तमस्तम (घोर अज्ञान अधकार) से, विप्परियासं-

विपरीत दृष्टिकोण, उवेइ-प्राप्त करता है, असाहुरूवे-असाधु रूप, मोण-मुनि धर्म की, विराहेत्तु-विराधना करके, सया-सदा, दुही-दु खी होकर, णरग-नरक (और), तिरिक्ख जोणि-तिर्यंच योनियों मे, सधावइ-आवागमन करता रहता है।

भावानुवाद-"वह शील भ्रष्ट साधु अपने तमस्तम अज्ञानान्धकार के कारण विपरीत दृष्टि को प्राप्त होता है। परिणामत वह असाधु रूप साधु मुनि धर्म की विराधना कर सतत दु ख भोगता हुआ नरक और तिर्यंच गतियो मे आवागमन करता रहता है।"

47 सयम की विराधना करके नरकादि गति को प्राप्त कुशील पुरुष

मूल गाथा- उद्देसिय कीयगड णियाग,
ण मुचई किचि अणेसणिज्ज।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इत्तो चुए गच्छइ कट्टु पाव ॥४७॥

सस्कृत छाया- औद्देशिक क्रीतकृत नियाग,
न मुञ्चति किञ्चिदनेषणीयम्।
अग्निरिव सर्वभक्षी भूत्वा,
इतश्च्युतो (दुर्गति) गच्छति कृत्वा पापम् ॥४७॥

अन्वयार्थ-जो साधु उद्देसिय-औद्देशिक, कीयगड-क्रीतकृत, णियाग-नित्य पिड, किचि-थोडा सा भी, अणेसणिज्ज-अनेषणीय आहार, ण मुचई-नहीं छोडता, अग्गी-अग्नि की, विवा-तरह, सव्व-भक्खी-सर्वभक्षी, भवित्ता-होकर, पाव-पाप कर्म, कट्टु-करके, इतो-यहा से, चुए-च्यवकर, गच्छई-(नरकादि में) जाता है।

भावानुवाद-'जो औद्देशिक, क्रीत-कृत खरीदा हुआ, नियाग-नित्यपिण्ड आदि के रूप मे किचित् भी अनेषणीय आहार नहीं छोडता है, वह अग्नि के समान सर्व भक्षी साधु पाप कर्म करके यहा से मरकर दुर्गति मे जाता है।'

48 सयम का विराधक आत्मा किस कोटि तक अनर्थ करने वाला होता है

मूल गाथा- ण त अरी कठछित्ता करेइ,
ज से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से णाहिई मच्चुमुह तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥४८॥

सस्कृत छाया- न तदरि कण्ठछेत्ता करोति,
यत्तस्य करोत्यात्मीया दुरात्मता।
स ज्ञास्यति मृत्युमुख तु प्राप्त,
पश्चादनुतापेन दयाविहीन ॥४८॥

अन्वयार्थ-ज-जो (अनर्थ), से-उसकी, अप्पणिया-अपनी, दुरप्पा-दुरात्मा, करे-करती है, ते-वह, कठछिन्न कठ (गला) काटने वाला, अरी-शत्रु भी, ण करेइ-नहीं करता, इसको दयाविहूणो-दयाविहीन मनुष्य, पच्छाणुताव पश्चाताप पूर्वक, णाहिई-(तभी) जानेगा, (जब) से-वह, मच्चुमुह-मृत्यु के मुख में, पत्ते-पहुचेगा।

भावानुवाद-'कुमार्ग मे दुष्प्रवृत्त वह साधु वेषधारी दुरात्मा अपनी आत्मा का जैसा अनर्थ करता है, वैसा तो अनर्थ कठ छेदन करने वाला वैरी भी नहीं करता है। इस सत्य का वह दयाविहीन-सयम रहित साधु पश्चाताप पूर्वक तभ जानेगा, जब वह मृत्यु के मुह मे पहुचेगा।'

49 द्रव्य लिगी द्रव्य वृत्ति की आलोचना

मूल गाथा- णिरट्ठिया णग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठ विवज्जासमेइ।
इमे वि से णत्थि परे वि लोए,
दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ॥४९॥

सस्कृत छाया- निरर्थिका नाग्न्यरुचिस्तु तस्य,
य उत्तमार्थं विपर्यासमेति।
अयमपि तस्य नास्ति परोऽपिलोक,
द्विधापि स क्षीयते तत्र लोके ॥४९॥

अन्वयार्थ-जे-जो (साधक), उत्तमट्ठ-उत्तम अर्थ (मोक्ष) को, विवज्जास-विपरीत रूप में, उवेइ धारण करता है तस्स-उसकी, णग्गरुई-नग्न रुचि, णिरट्ठिया-व्यर्थ है, इमे-यह, लोए-लोक, वि-भी, से-उस का, णत्थि नहीं है, परे वि-परलोक भी नहीं है, तत्थ-वहा पर, लोए-दोनो लोक में, स-वह, दुहओ वि-दोनों प्रकार से, झिज्जइ भ्रष्ट हो जाता है।

भावानुवाद-'जो उत्तमार्थ-मुक्ति साधना में विपरीत दृष्टि रखता है, उसका श्रामण्य के प्रति रुचि निरर्थक है। उसके लिए न तो यह लोक है और न परलोक। दोनो लोक के प्रयोजन से शून्य वह उभय भ्रष्ट भिक्षु निरन्तर चिन्ता में क्षीण होता जाता है।'

50 द्रव्य लिगी कुशील साधु की स्वेच्छा चारिता के फल का प्रदर्शन

मूल गाथा- एमेवऽहाछद कुसीलरुवे,
मग्ग विराहित्तु जिणुत्तमाण।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा,
णिरट्ठसोया परियावमेइ ॥५०॥

सस्कृत छाया- एवमेव यथाछन्दकुशीलरूप,
मार्गं विराध्य जिनोत्तमानाम्।

कुररीव भोगरसानुगृद्धा,
निरर्थशोका परितापमेति ॥५०॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, अहाछद-स्वेच्छाचारी, (भ्रष्ट) साधु कुसीलरूवे-कुशील वेष मे, जिणुत्तमाण-जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम, मग्ग-मार्ग की, विराहित्तु-विराधना करके, भोगरसाणु-भोगरसो मे, गिद्धा-आसक्त होकर, णिरट्ठसोया-निरर्थक शोक करने वाली, कुररी-कुररी (गीध पक्षिणी) की, विवा-तरह, परियाव-परिताप को प्राप्त होता है।

भावानुवाद-'इसी प्रकार स्वछन्द और कुशील रूप साधु भी जिनेश्वर भगवन्तो के मार्ग की विराधना करके उसी प्रकार सन्ताप को प्राप्त होता है जिस प्रकार कि भोग रसों मे आसक्त निरर्थक शोक करने वाली कुररी पक्षिणी परिताप को प्राप्त होती है।'

51 विचरण शील पुरुष के कर्त्तव्य का दिग्दर्शन

मूल गाथा- सोच्चाण मेहावि सुभासिय इम,
अणुसासण णाणगुणोववेय।
मग्ग कुसीलाण जहाय सव्व,
महाणियठाण वए पहेण ॥51॥

सस्कृत छाया- श्रुत्वा मेधाविन् सुभाषितमिद,
अनुशासन ज्ञानगुणोपपेतम्।
मार्ग कुशीलाना हित्वा सर्वं,
महानिर्ग्रन्थाना व्रजे पथा ॥५१॥

अन्वयार्थ-मेहावि-मेधावी साधक, इम-इस, सुभासिय-सुभाषित को (एव) णाण-ज्ञान, गुणोववेय-गुणो से युक्त, अणुसासण-अनुशासन को, सोच्चाण-सुनकर, कुसीलाण-कुशीलियों के, सव्व-सव, मग्ग-मार्ग को, जहाय-छोडकर, महाणियठाण-महानिर्ग्रन्थियो के, पहेण-मार्ग से, वए-गमन करे।

भावानुवाद-'मेधावी साधक इस उपयुक्त सुभाषित एव ज्ञान गुण से समन्वित हित शिक्षा को सुनकर आचारहीन-कुशील व्यक्तियो के सब मार्गों को छोडकर महानिर्ग्रन्थता के प्रशस्त पथ पर चले।'

52 महानिर्ग्रन्थ मार्ग के अनुसरण का फल

मूल गाथा- चरित्तमायारगुणण्णिए तओ,
अणुत्तर सजम पालियाण।
णिरासवे सखवियाण कम्म,
उवेइ ठाण विउलुत्तम धुव ॥52॥

सस्कृत छाया- चारित्राचारगुणान्वितस्तत ।
अनुत्तर सयम पालयित्वा।

णिरास्रव सक्षपय्य कर्म,
उपैति स्थान विपुलोत्तम ध्रुवम्॥५२॥

अन्वयार्थ-चरित्त-चारित्र, आयार-आचार, गुणण्णिए-ज्ञानादि गुणों से युक्त, णिरासवे-आश्रव रहित होकर, तओ-तदनन्तर, अणुत्तर-उत्कृष्ट, सजमं-शुद्ध सयम का, पालियाण-पालन कर, कम्मं-कर्मों का, संखविय-क्षय करके, विउल-विपुल, उत्तम-उत्तम, धुव-ध्रुव, ठाण-स्थान को, उवेइ-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-चारित्राचार एव ज्ञानादि गुणा से सम्पन्न साधक आस्रव रहित होता है। वह आस्रव रहित कर्म बन्धहेतुओ से मुक्त साधक अनुत्तर-सर्वोच्च शुद्ध सयम का पालन करके, कर्मों का क्षय करके विपुल उत्तम एव शाश्वत मुक्ति स्थान को प्राप्त करता है।

53 सनाथता व उसके अतिम फल का उपदेश

मूल गाथा- एवुग्गदंते वि महातवोधणे,
महामुणी महापइण्णे महायसे।
महाणियंठिज्जमिण महासुय,
से काहए महया वित्थरेण॥५३॥

सस्कृत छाया- एवमुग्रो दान्तोऽपि महातपोधन,
महामुनिर्महाप्रतिज्ञो महायशा।
महानिर्ग्रन्थीयमिद महाश्रुत,
स कथयति महता विस्तरेण॥५३॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, उग्ग-प्रधान, दंते वि-दान्त, महातवोधण-महान् तपोधन, महापइण्णे-महान् प्रतिज्ञ, महायसे-महान् यशस्वी, से-उस, महामुणी-महामुनि ने, इण-इस, महाणियंठिज्जं-महानिर्ग्रन्थीय, महासुयं-महाश्रुत का, महया-बडे, वित्थरेण-विस्तार से, काहए-कथन किया है।

भावानुवाद-इस प्रकार कर्मक्षय करने में उग्र-दान्त, जितेन्द्रिय महान् तपोधन, महा-दृढ प्रतिज्ञ, महायशस्वी उस महामुनि ने अति विस्तार के साथ इस महानिग्रन्थीय महाश्रुत का प्रतिपादन किया।

54 राजा श्रेणिक का हर्षित होना

मूल गाथा- तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली।
अणाहत्त जहाभूय, सुट्ठु मे उवदंसियं॥५४॥

सस्कृत छाया- तुष्टश्च खलु श्रेणिको राजा, इदमुदाह कृताञ्जलि।
अनाथत्व यथाभूत, सुष्ठु मे उपदर्शितम्॥५४॥

अन्वयार्थ-सेणिओ-श्रेणिक, राया-राजा, तुट्ठो-सतुष्ट हुआ, य-और, कयंजली-हाथ जोड़ कर इस प्र

प्रकार, उदाहु-कहने लगा, अणाहत्त-अनाथता का, जहाभूय-यथार्थ स्वरूप, मे-मुझे, सुदठु-भली भाति, उवदसिय-बताया है।

भावानुवाद-(मुनि के द्वारा प्रदत्त समाधान से) राजा श्रेणिक सन्तुष्ट हुआ और हाथ जोड कर इस प्रकार बोला-'भदन्त! आपने मुझे अनाथता का यथार्थ स्वरूप समझाया है।'

55 तुष्ट राजा द्वारा मुनि का अभिनन्दन

मूल गाथा-

तुज्झ सुलद्ध खु मणुस्सजम्म,
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी!
तुब्भेह सणाहा य सबधवा य,
ज भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाण ॥५५॥

सस्कृत छाया-

त्वया सुलब्ध खलु मानुष्य जन्म,
लाभा सुलब्धाश्च त्वया महर्षे!
यूय सनाथाश्च सबान्धवाश्च,
यद्भवन्त स्थिता मार्गे जिनोत्तमानाम् ॥५५॥

अन्वयार्थ-राजा श्रेणिक-महेसी-हे महर्षि! तुज्झ-तुम्हारा, मणुस्स जम्म-मनुष्य जन्म, खु-वास्तव में, सुलद्ध-सुलब्ध हुआ, य-और, तुमे-तुम्हारी, लाभा-उपलब्धिया (लाभ) भी, सुलद्धा-प्राप्त हुई, तुब्भे-तुम ही, सणाहा-(वास्तव मे) सनाथ, य-और, सबधवा य-सबान्धव हो, ज-जिससे, भे-तुम, जिणुत्तमाण-जिनेश्वरो के, मग्गे-मार्ग मे, ठिया-स्थित हो।

भावानुवाद-राजा श्रेणिक-'हे महर्षि! आपका मनुष्य जन्म प्राप्त करना सार्थक सिद्ध हुआ, आपकी सभी उपलब्धिया सफल हैं। सही अर्थों मे आप ही सनाथ एव सबान्धव है, क्योकि जिनोपदिष्ट मार्ग मे स्थित हो।'

56 अनाथो के नाथ से क्षमापना की आकाक्षा

मूल गाथा-

तसि णाहो अणाहाण, सव्वभूयाण सजया!,
खामेमि ते महाभाग! इच्छामि अणुसासिउ ॥५६॥

सस्कृत छाया-

त्वमसि नाथोऽनाथाना, सर्वभूताना सयत!
क्षमे त्वा महाभाग! इच्छाम्यनुशासयितुम् ॥५६॥

अन्वयार्थ-सजया-हे सयत, त-तुम, अणाहाण-अनाथो के, सव्वभूयाण-सब जीवो के, णाहो-नाथ सि-हो, महाभाग!-हे महाभाग!, (मैं) ते-तुमसे, खामेमि-क्षमा चाहता हू, अणुसासिउ-अनुशासित होना, इच्छामि-चाहता हू।

भावानुवाद-हे सयत! आप ही अनाथो के नाथ एव सब जीवों के नाथ हैं। हे महाभाग! मैं आपसे क्षमा याचना करता हू और मैं आपसे शिक्षा प्राप्त करना चाहता हू।

57 अपने अपराध के लिए क्षमा याचना

मूल गाथा- पुच्छिऊण मए तुब्भ, झाणविग्घो य जो कओ।
णिमंतिया य भोगेहिं, त सव्व मरिसेहि मे ॥५७॥

संस्कृत छाया- पृष्टवा मया युष्माकं, ध्यानविघातस्तु य कृतः।
निमन्त्रितास्च भोगै , तत् सर्वं मर्षयन्तु मे ॥५७॥

अन्वयार्थ-य-और, मए-मैंने, तुब्भ-तुमसे, पुच्छिऊण-प्रश्न पूछकर, जो-जो, झाण-ध्यान में, विग्घो विघ्न कओ-किया, य-और, भोगेहिं-भोगो के द्वारा, णिमतिओ-निमत्रण दिया, त-उन, सव्वं-सबके लिए मे मुझ मरिसेहि-क्षमा करें।

भावानुवाद-आपसे प्रश्न पूछ कर मैंने आपके ध्यान म जो विघ्न किया और भोगा के उपभोग क लिए आमंत्र किया उस सब अपराध के लिए मुझे क्षमा करे।

58 महाराज श्रेणिक को धर्म बोध की प्राप्ति का वर्णन

मूल गाथा- एव थुणिताण स रायसीहो, अणगारसीह परमाइ भत्तिए।
सओरोहो सपरियणो सबन्धवो, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥५८॥

संस्कृत छाया- एव स्तुत्वा स राजसिंह , अनगारसिंह परमया भक्त्या।
सावरोध सपरिजन सबान्धव , धर्मानुरक्तो विमलेन चेतसा ॥५८॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, स-उस, रायसीहो-राजसिह (श्रेणिक) ने, अनगार सीह-अनगार सिंह की, परमा भत्तिए-परम भक्ति से, थुणिताण-स्तुति कर, विमलेण-निर्मल, चेयसा-चित्त से, सओरोहो-अन्त पुर (रानियों) सहित, य-और, सबधवो-बन्धुजन सहित, धम्माणुरत्तो-धर्म म अनुरक्त हो गया।

भावानुवाद-इस प्रकार राजसिह राजाओं मे सिंहवत् सम्राट श्रेणिक अनगार सिंह अनाथी मुनि की परम भक्ति पूर्वक स्तुति करके अन्त पुर एव अन्य परिजनों क साथ धर्म मे अनुरक्त हो गया।

59 मुनि के प्रति कृतज्ञता भक्ति पूवक वन्दन

मूल गाथा- उससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिण।
अभिवदिऊण सिरसा, अइयाओ णराहिवो ॥५९॥

संस्कृत छाया- उच्छ्वसितरोमकूप , कृत्वा च प्रदक्षिणाम्।
अभिवन्द्य शिरसा, अतियातो नराधिप ॥५९॥

अन्वयार्थ-णराहियो-नराधिप रोम कूयो-रोम कूप से उससिय-उच्छ्वसित होकर, पयाहिणं-प्रदक्षिणा, (मुनि को) काऊण-करके, य-और सिरसा-मस्तक से, अभिवदिऊण-वन्दना करके, अइयाओ-लौट गए।

भावानुवाद-(उम समय) राजा के रोम-रोम मे उल्लास व्याप्त हो रहा था। वह राजा मुनि की प्रदक्षिणा और नतसिर वन्दना करके लौट गया।

60 महानिर्ग्रन्थ अनाथी मुनि का अप्रतिबद्ध विहार

मूल गाथा- इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदडविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुह विगयमोहो ॥६०॥

त्ति बेमि।

इति महाणियठिज्ज अज्झयण समत्त ॥६०॥

सस्कृत छाया- इतरोऽपि गुणसमृद्ध , त्रिगुप्तिगुप्तस्त्रिदण्डविरतश्च।
विहग इव विप्रमुक्त , विहरति वसुधाया विगतमोह ॥

इति ब्रवीमि

इति महानिर्ग्रन्थीय विशतितममध्ययन समाप्तम् ॥६०॥

अन्वयार्थ-इयरो-इतर (अन्य मुनि) भी, गुण-गुणो से, समिद्धो-समृद्ध, तिगुत्ति-तीन गुप्तियो से, गुत्तो-गुप्त य-और, तिदड-तीन दडो से, विरओ-विरत, विहग-पक्षी की, इव-तरह, विप्पमुक्को-बधनों स रहित, विगयमोहो-मोह रहित होकर, वसुह-वसुधा पर, विहरइ-विचरण करने लगा।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इधर गुणों से समृद्ध, गुप्तित्रय से सगुप्त तीन दण्डो से विरत मोहमुक्त अनाथी मुनि पक्षी की तरह विप्रमुक्त-अप्रतिबद्ध होकर वसुधा पर विहार करने लगे।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार महानिर्ग्रन्थीय बीसवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

□□□

समुद्रपालीय - एकविंशम् अध्ययन

उत्थानिका

अनादि काल से अज्ञान और प्रमाद के प्रवाह मे बहती हुई आत्मा को कौनसा क्षण या कौनसा लघुतम निमित्त जागृति का सन्देश दे जाता है, यह कह पाना बहुत कठिन है। आगम ज्ञान की सामान्य-सी जानकारी क्षणभर में मोह ममता की सुदृढ जाल को जला कर राख बना सकती है। बाहर के हजारो-हजार दृश्य आत्म-जागरण में निमित्त नहीं बन पाते हैं या हजारो उपदेश जीवन में कोई परिवर्तन नहीं ला सकते, किन्तु एक साधारण-सा दृश्य आत्मा की सम्पूर्ण दृष्टि को ही बदल देता है।

यही छोटा-सा किन्तु महतम सन्देश देता है प्रस्तुत समुद्रपालीय अध्ययन-

श्रेष्ठि कुमार समुद्रपाल मदमाते यौवन के सुखोपभोगो मे मग्न था। उसके चारों ओर भोग सामग्री बिखरी पड़ी थी और वह उसमे आकण्ठ डूबा भी था, किन्तु एक मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधी को देखकर सहसा श्रेष्ठि कुमार का चिन्तन आगम ज्ञान की ओर मुड़ गया और वह कर्म-फल की परिणति पर विचार करने लगा। 'सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवति, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला भवति' की आगम वाणी उसके चिन्तन का सूत्र बन गई और उसको आत्म-जागरण का बोध प्राप्त हो गया।

प्रस्तुत अध्ययन मे समुद्रपाल के जन्म, जीवन और वैराग्य के वर्णन के साथ उनके मुनि जीवन की साधना प्रक्रिया का भी उल्लेख किया गया है। साथ ही मुनि जीवन के कुछ प्रमुख आधारो या गुणो का भी प्रतिपादन किया गया है कि मुनि जीवन में समत्व का भावगुण होना नितान्त आवश्यक है। मुनि प्रिय और अप्रिय दोनो ही स्थितियों मे समभावी बना रहे। इसी प्रकार तितिक्षा, सरलता, अहंकार शून्यता, अनासक्ति, अदीनता क्षमा, दया, सहिष्णुता, मोह विजय, ममत्वत्याग अप्रमतता आदि गुणो का विकास मुनि जीवन में नितान्त आवश्यक है। इन गुणों से युक्त मुनि ही अपनी संयम यात्रा में निर्बाध विचरण कर सकता है और इसी उच्चतम साधना के द्वारा विशुद्ध संयम की आराधना के द्वारा विशुद्ध महर्षि समुद्रपाल सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए थे।

मूल ग्रन्थ के अध्ययन के पूर्व घटना के मूल हार्द को संक्षिप्त रूप से समझ लेना अधिक उपयुक्त होगा।

अंग देश की राजधानी चम्पानगरी का पालित नामक व्यापारी प्रभु महावीर की शिक्षाओं का हृदयंगम करने वाला, आगम ज्ञान में निष्णात और दृढ श्रद्धा सम्पन्न था। वह महावीर का श्रावक-शिष्य था। वह व्यापार हेतु जल मार्ग से दूर-सुदूर देशो की यात्रा किया करता था। एक बार वह समुद्र यात्रा करता हुए पिहुण्ड नगर गया। वहां वह बहुत समय तक रुका। वहां उसके प्रामाणिकता, कार्य दक्षता एवं मिलनसारिता आदि गुणों का प्रभाव सम्पन्न जन पर एवं श्री सम्पन्ना पर भी पड़ा। अतः वहाँ के एक सम्पन्न व्यापारी ने अपनी पुत्री का विवाह गुणी श्रेष्ठि पालित

के साथ कर दिया। पालित श्रावक अपनी गर्भवती पत्नी को लेकर समुद्र मार्ग से जब स्वदेश-चम्पानगरी आ रहा था तो मार्ग मे जहाज मे ही उसकी पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया। समुद्र मे जन्म होने के कारण उसका नाम 'समुद्रपाल' रखा गया। 'समुद्रपाल' बालक अत्यन्त सुन्दर था, यथोचित रीति से उसका लालन-पालन होने लगा। वह बहत्तर कलाओ एव अनेक विद्याओ मे पारगत हुआ तो एक गुणवती सुरूपा कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया गया। वह अपने महलों मे आमोद-प्रमोद पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

एक दिन वह झरोखे मे बैठा हुआ राजमार्ग की ओर देख रहा था कि उसकी दृष्टि नगर आरक्षको द्वारा मृत्युदण्ड प्राप्त एक अपराधी को वध भूमि पर ले जाते हुए पडी। उन दिनो की प्रथा के अनुसार प्राणदण्ड के अपराधी को लाल कपडे पहना कर लाल कनेर के फूलो की माला पहनायी जाती थी। नगे सिर पर लाल चदन का लेप किया जाता था। गधे पर बिठा कर नगर मे घुमाया जाता था और उसके दुष्कर्मों की घोषणा की जाती थी, ताकि अन्य व्यक्तियो को यह समझ मे आ जाए कि अपराध करने वालो को इस प्रकार दण्ड दिया जाता है। फलत इस आतक से भविष्य मे कोई भी व्यक्ति वैसा अपराध न करे।

समुद्रपाल ने उस अपराधी और उसके साथ चल रहे जन-समूह को देखा। उसके विचारो मे चिन्तन की बिजली कोधी। उसका चिन्तन अपराधी तक ही सीमित नहीं रहा। वह अपराध के कारण और परिणाम तक पहुच गया। कर्म बन्धन और कर्मफल भोग तक उसका चिन्तन दौड गया। निष्कर्ष मे उसने चिन्तन किया-'कर्मों का यथोचित फल अवश्य मिलता है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा मिलता है और बुरे कर्मों का बुरा फल।' कर्म बन्धन और कर्म मुक्ति की प्रक्रियाओ पर विचार करते हुए भी उसका चिन्तन स्वकेन्द्र की ही परिक्रमा करने लगा। उसने सोचा-आज मैं सुख-सुविधाओ मे निमग्न हू, यह मेरे पूर्वकृत शुभ कर्मों का फल है, किन्तु भोगा मे आसक्त होकर आज मैं जो कर्म कर रहा हू, इनका फल भी मुझे ही भोगना पडेगा और फिर क्या मेरी इस अपराधी जैसी दशा नहीं हो सकती है?

बहुत गहरे चिन्तन मे डूबने पर उसे ससार से विरक्ति हो गई। अत मे माता-पिता से अनुमति लेकर वह दीक्षित हो जाता है। अपने सभी मोह बधनो सवधी आसक्ति-भावो का परित्याग कर मुनि जीवन की आराधना एव सयम साधना म लीन हो गया और अत मे मुक्ति प्राप्त की।

□□□

समुद्रपालीय - एकविशम् अध्ययन

सूक्ति साराश

आगमिक विद्वत्ता पर केवल साधुओ का ही अधिकार नहीं है,
श्रावक भी आगम वेत्ता होते है।
महावीर के उपासको को आगमा में कोविद (विद्वान्) हाना चाहिए।
विद्वान् श्रावक महाप्रज्ञ होते हैं।

गृहस्थ जीवन मे जितनी व्यवहार-कुशलता अपेक्षित है
उससे बढ कर साधक के लिए आत्म-कुशलता।
ससार के परस्पर सम्बन्ध भी व्यवहार-कुशलता की अपेक्षा रखते हैं
तो साधक को तो व्यवहार-कुशल ही नहीं आत्म-कुशल होना चाहिए।

प्रत्येक घटना की सूक्ष्मता मे जाओ कोई भी जागरण की निमित्त बन सकती है।
वध्य अपराधी को देख कर भी आत्म जागरण हो सकता है,
उसके लिए केवल उपदेश ही आवश्यक नहीं है।

कर्म एव कर्म फल पर होने वाला प्रगाढ़ विश्वास ही जागृति का सदेश है।
किसी को अशुभ कर्मों का परिणाम भोगते देखकर भी आत्म जागृति का सदश
प्राप्त हो सकता है।

सुसमाहितेन्द्रियता साधना का प्रमुख अग है।
साधक वह होता है जो सुसमाहितेन्द्रिय अथात् अन्तर्मुखी हो।

काल-क्षेत्र का प्रतिलेखन भी साधना का प्रमुख अंग है।
काल एव क्षेत्र की समीक्षा करके विचरण करने वाला साधक कभी खेदित
नहीं हाता है।

जो निर्भय होता है वही साधना मे गति कर सकता है।
साधक कायर नहीं सिहवत् पराक्रमी हाता है, वह कभी भी कहीं भी
भयभीत नहीं होता।

विचक्षणता का अर्थ है सदैव आत्म-स्थिति मे स्थिर रहना।
साधक विचक्षण हाता है वह राग-द्वेष के झझावातों में भी मेरु पर्वत
की तरह अकम्प रहता है।

आत्म-पराक्रम से ही परम सिद्धि प्राप्त हो सकती है।
परमार्थ की सिद्धि म गतिशील साधक बाहर के सारे व्यवधाना को वैसे ही
काट देता है जैसे युद्ध म शीर्ष-अग्रभाग म खड़ा गजराज।

❑❑❑

अह समुद्दपालीयं एगवीसइमं अज्झयणं

अथ समुद्रपालीयमेकविंशमध्ययनम्

समुद्रपालीय

1 भगवान् महावीर के प्रज्ञावान् श्रावक का वर्णन

मूल गाथा- चपाए पालिए णाम, सावए आसी वाणिए।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो॥1॥

संस्कृत छाया- चम्पाया पालितो नाम, श्रावक आसीद् वणिक्।
महावीरस्य भगवत, शिष्य स तु महात्मन ॥१॥

अन्वयार्थ-चपाए-चम्पा नगरी म, पालिए-पालित, णाम-नामक, वाणिए-वणिक्, सावए-श्रावक, आसी-था सो उ-वह, महप्पणो-महात्मा, भगवओ-भगवान्, महावीरस्स-महावीर का, सीसो-शिष्य था।

भावानुवाद-चम्पानगरी मे 'पालित' नामक व्यापारी रहता था। वह महान् आत्मा-महापुरुष भगवान् महावीर का श्रावक-शिष्य था।

2 पालित श्रावक और उसका व्यवसायार्थ विदेश गमन

मूल गाथा- णिग्गथे पावयणे, सावए से वि कोविए।
पोएण ववहरते, पिहुड णगरमागए॥2॥

संस्कृत छाया- नैर्ग्रन्थे प्रावचने, श्रावक सोऽपि कोविद ।
पोतेन व्यवहरन्, पिहुण्ड नगरमागत ॥२॥

अन्वयार्थ-से-वह, सावए-श्रावक, णिग्गथे-निर्ग्रन्थ, पावयणे-प्रवचन का, विकोविए-विशिष्ट विद्वान था (एक बार), पोएण-पोत से, ववहरते-व्यापार करता हुआ (वह), पिहुड-पिहुण्ड, णगर-नगर में, आगए-आ पहुचा।

भावानुवाद-वह श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन में उसके तत्त्व ज्ञान में पडित था। एक बार वह पोत-पानी के जहाज में व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नगर मे आया।

टिप्पणी-कुछ जैन परम्पराए यह मानती है कि श्रावक को शास्त्र नहीं पढना चाहिए। प्रस्तुत गाथा में आगत 'कोविए' शब्द यह सिद्ध करता है कि पालित श्रावक पण्डित-विद्वान् था, अत वह आगमों का ज्ञाता था।

भावानुवाद-वह पालित श्रावक चम्पानगरी मे अपने घर पर सकुशल पहुच गया। वह सुखोचित सुकुमाल बालक उसके घर मे सानद बडा होने लगा।

6 समुद्रपाल की शिक्षण योग्यता

मूल गाथा- बावत्तरीकलाओ य, सिक्खिए णीइकोविए।
जोव्वणेण य सपण्णे, सुरुवे पियदसणे ॥६॥

सस्कृत छाया- द्वासप्ततिकलाश्च, शिक्षितो नीतिकोविद ।
यौवनेन च सम्पन्न , सुरूप प्रियदर्शन ॥६॥

अन्वयार्थ-(उसने) बावत्तरी-बहत्तर, कलाओ-कलाए, सिक्खिए-सीखी, य-और, (वह) णीइ-नीति, कोविए-निपुण हो गया, जोव्वणेण-यौवन से, सपण्णे-सम्पन्न होने पर, (वह) पियदसणे-प्रियदर्शन, य-और, सुरूवे-सुरूप (लगने लगा)।

भावानुवाद-उस समुद्रपाल ने बडे होकर बहत्तर कलाए सीखी और वह नीति शिक्षा मे कोविद-विद्वान् हो गया। वह यौवन को प्राप्त होने पर सभी को सुन्दर और प्रियदर्शन लगने लगा।

7 विवाह और सुखपूर्वक जीवनयापन

मूल गाथा- तस्स रूववइ भज्ज, पिया आणेइ रूविणी।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुदगो जहा ॥७॥

सस्कृत छाया- तस्य रूपवतीं भार्यां, पिताऽऽनयति रूपिणीम्।
प्रसादे क्रीडति रम्ये, देवो दोगुन्दको यथा ॥७॥

अन्वयार्थ-तस्स-उसके, पिया-पिता ने, रूविणी-रूपिणी नाम की, रूववइ-रूपवती, भज्ज-भार्या, आणेइ-लाकर दी (विवाह कर दिया) (वह उसके साथ), रम्मे-रमणीय पासाए-प्रासाद में दोगुदगो-दोगुन्दक, देवो-देवो के जहा-जैसे, कीलए-क्रीडा करने लगा।

भावानुवाद-उसके पिता ने उसके लिए रूपिणी नामक कन्या पत्नी के रूप मे ला दी अर्थात् उसका विवाह कर दिया। वह अपनी पत्नी के साथ दो-गुन्दक देव के समान सुरम्य महलों में क्रीडा करने लगा।

8 समुद्र पाल द्वारा अपराधी व्यक्ति पर दृष्टि

मूल गाथा- अह अण्णया कयाई, पासायालोयणे ठिओ।
वज्झमडणसोभाग, वज्झ पासइ वज्झग ॥८॥

सस्कृत छाया- अथान्यदा कदाचित्, प्रसादालोकने स्थित ।
वध्यमण्डनशोभाक, वध्य पश्यति वध्यगम् ॥८॥

अन्वयार्थ-अह-तदनन्तर अण्णया-किसी समय, कयाई-कदाचित्, पासायालोयणे-प्रासाद के गवाक्ष (झरोखे) मे, ठिओ-बैठा हुआ, वज्झ मडण सोभाग-वध्य जनोचित मण्डनो (चिन्हो) से शोभित, वज्झं-वध्यजन को, वज्झग-वध्यस्थान पर (ले जाते हुए चोर को), (उसने) पासइ-देखा।

भावानुवाद-एक बार महल के झरोखे (बालकनी) में बैठे हुए उसने वध्य-योग्य चिन्हों से सयुक्त एक वध्य (मृत्यु दण्ड प्राप्त अपराधी) को वध के लिए वध्य स्थान की ओर ले जाते हुए देखा।

9 समुद्रपाल को ससार से वैराग्य-प्रतिबुद्ध

मूल गाथा- त पासिऊण सविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहो असुहाण कम्माण, णिज्जाण पावग इमं॥९॥

सस्कृत छाया- त दृष्ट्वा सविग्न , समुद्रपाल: इदमब्रवीत्।
अहो अशुभाना कर्मणा, निर्याण पापकमिदम्॥९॥

अन्वयार्थ-त-उसको, पासिऊण-देखकर, संविग्गो-सवेग प्राप्त, समुद्दपालो-समुद्रपाल, इणं-इस प्रकार अब्बवी कहने लगा, अहो-आश्चर्य है, इम-यह, असुहाण-अशुभ, कम्माण-कर्मों का, पावगं-पापकारी, णिज्जाण-निर्याण-परिणाम है।

भावानुवाद-उस अपराधी को देखकर सवेग भावना से भावित अत करण-समुद्रपाल ने मन ही मन इस प्रकार कहा-'अहो! यह अशुभ कर्मों का पाप रूप अशुभ-दु खद परिणाम ही है।'

10 समुद्रपाल को प्रव्रज्या की उपलब्धि

मूल गाथा- सबुद्धो सो तहि भगव, परमसवेगमागओ।
आपुच्छऽम्मापियरो, पव्वए अणगारिय॥१०॥

सस्कृत छाया- सबुद्ध स तत्र भगवान्, परमसवेगमागत ।
आपृच्छ्य मातापितरौ, प्रव्रजितोऽनगारिताम्॥१०॥

अन्वयार्थ-सो-वह (समुद्रपाल), भगव-भगवान्, परम-उत्कृष्ट, सवेग-सवेग को, आगओ-प्राप्त हुआ (और) तहिं-वहीं पर (बैठा-बैठा), सबुद्धो-सम्बुद्ध हो गया (फिर), अम्मापियरो-माता-पिता को, आपुच्छ-पूछ कर अणगारिय-अनगारिता (मुनि धर्म) म, पव्वए-प्रव्रजित हुआ।

भावानुवाद-वह समुद्रपाल महान् आत्मा (भगवान्) परम सवेग भाव को प्राप्त हुआ और वहीं गवाक्ष में ही संबुद्ध प्रतिबुद्ध हो गया। माता-पिता की अनुज्ञा प्राप्त कर उसने अनगारिक-श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली।

11 तत्त्व विषयक बोध एव आचरण

मूल गाथा- जहित्तु सग च महाकिलेस, महतमोह कसिण भयावह।
परियायधम्म चऽभिरोयएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य॥११॥

सस्कत छाया- हित्वा सग च महाक्लेश, महामोह कृत्स्न भयानकम्।
पर्यायधर्मं चाभिरोचयति, व्रतानि शीलानि परीषहाश्च ॥११॥

अन्वयार्थ-(दीक्षित हाने पर) महाकिलेस-महाक्लेशकारी, महतमोह-महामोहजनक, च-और, कसिण-सम्पूर्ण (कृष्ण लेश्या रूप), भयावह-भयावह, सग-आसक्ति का, जहित्तु-त्याग करके, परियाय-पर्याय (प्रव्रज्या), धम्म-धर्म मे, वयाणि-व्रतो मे, सीलाणि-शीलो मे, य-तथा, परीसहे-परीषहो को सहने मे, अभिरोयएज्जा-अभिरुचि रखें।

भावानुवाद-मुनि समुद्रपाल वैराग्य भाव से दीक्षित होकर ससार के समस्त बाह्याभ्यन्तर सग को महाक्लेशकारी, महामोहजनक एव महाभयकर जानकर परित्याग कर देते हैं और सयम पर्याय म, व्रत मे, शील मे और परीषहो मे उन्हे जीतने मे अभिरुचि रखते हैं।

12 सयमशील पुरुष के कर्त्तव्य का दिग्दर्शन

मूल गाथा- अहिंस सच्च च अतेणग च, तत्तो य बभ अपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पचमहव्वयाणि, चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विऊ ॥१२॥

सस्कृत छाया- अहिसा सत्य चास्तनेक च, ततश्चाब्रह्मापरिग्रह च।
प्रतिपद्य पच महाव्रतानि, चरति धर्मं जिनदेशित विद्वान् ॥१२॥

अन्वयार्थ-विऊ-विद्वान मुनि, अहिंस-अहिसा, सच्च-सत्य, च-और, अतेणग च-अस्तेय, तत्तो य-उसके पश्चात्, बभ-ब्रह्मचर्य, च-और, अपरिग्गह-अपरिग्रह, पच महव्वयाणि-इन पाच महाव्रतों को पडिवज्जिया-स्वीकार करके, जिणदेसिय-जिनोपदिष्ट, धम्म-धर्म का, चरिज्ज-आचरण करे।

भावानुवाद-विद्वान-प्रज्ञाशील मुनि व्रतो की विशुद्ध आराधना के लिए अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-इन पाच महाव्रतो को स्वीकार करके जिनोपदिष्ट धर्म का आचरण-अनुशीलन करे।

13 भिक्षुक कर्त्तव्य का निर्देश

मूल गाथा- सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकपी, खंतिक्खमे सजयबभयारी।
सावज्जजोग परिवज्जयतो, चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइदिए ॥१३॥

सस्कृत छाया- सर्वेषु भूतेषु दयानुकम्पी, क्षान्तिक्षम सयतब्रह्मचारी।
सावद्ययोग परिवर्जयन्, चरेद् भिक्षु सुसमाहितेन्द्रिय ॥१३॥

अन्वयार्थ-इदिए-इन्द्रियों को, सुसमाहि-सुसमाहित, (नियत्रित रखने वाला), भिक्खू-भिक्षु, सव्वेहिं-सभी, भूएहिं-प्राणियो के प्रति, दयाणुकपी-दयालु (अनुकम्पा रखने वाला), खतिक्खमे-क्षातिक्षम, सजय-सयत, बभयारी-ब्रह्मचारी होकर, सावज्जजोग-सावद्य योग का, परिवज्जयतो-परित्याग करता हुआ, चरिज्ज-विचरण करे।

भावानुवाद-इन्द्रिया और मन को सम्यक् नियत्रित करने वाला वह भिक्षु सब प्राणियो के प्रति अनुकम्पा शील एव क्षमाशील दुर्वचनो को सहन करने वाला बनकर सयमी और ब्रह्मचारी हाकर सदैव सावद्य योग-पाप का परित्याग करके विचरण करे।

अन्वयार्थ-अह-तदनन्तर, अण्णया-किसी समय, कयाई-कदाचित्, पासायालोयणे-प्रासाद के गवाक्ष (झरोखे) मे, ठिओ-बैठा हुआ, वज्झ मडण सोभाग-वध्य जनोचित मण्डनो (चिन्हो) से शाभित, वज्झ-वध्यजन का, वज्झग-वध्यस्थान पर (ले जाते हुए चोर को), (उसने) पासइ-देखा।

भावानुवाद-एक बार महल के झरोखे (बालकनी) मे बैठे हुए उसने वध्य-योग्य चिन्हो से सयुक्त एक वध्य (मृत्यु दण्ड प्राप्त अपराधी) को वध के लिए वध्य स्थान की ओर ले जाते हुए देखा।

9 समुद्रपाल को ससार से वैराग्य-प्रतिबुद्ध

मूल गाथा- त पासिऊण सविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहो असुहाण कम्माण, णिज्जाण पावग इम ॥९॥

सस्कृत छाया- त दृष्ट्वा सविग्न, समुद्रपाल इदमब्रवीत्।
अहो अशुभाना कर्मणा, निर्याण पापकमिदम् ॥९॥

अन्वयार्थ-त-उसको, पासिऊण-देखकर, सविग्गो-सवेग प्राप्त, समुद्दपालो-समुद्रपाल, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगा, अहो-आश्चर्य है, इम-यह, असुहाण-अशुभ, कम्माण-कर्मों का, पावग-पापकारी, णिज्जाण-निर्याण-परिणाम है।

भावानुवाद-उस अपराधी को देखकर सवेग भावना से भावित अत करण-समुद्रपाल ने मन ही मन इस प्रकार कहा-'अहो! यह अशुभ कर्मों का पाप रूप अशुभ-दु खद परिणाम ही है।'

10 समुद्रपाल को प्रव्रज्या की उपलब्धि

मूल गाथा- सबुद्धो सो तहि भगव, परमसवेगमागओ।
आपुच्छऽम्मापियरो, पव्वए अणगारिय ॥१०॥

सस्कृत छाया- सबुद्ध स तत्र भगवान्, परमसवेगमागत।
आपृच्छ्य माता पितरौ, प्रव्रजितोऽनगारिताम् ॥१०॥

अन्वयार्थ-सो-वह (समुद्रपाल), भगव-भगवान्, परम-उत्कृष्ट, सवेग-सवेग को, आगओ-प्राप्त हुआ, (और) तहि-वहीं पर (बैठा-बैठा), सबुद्धो-सम्बुद्ध हो गया (फिर), अम्मापियरो-माता-पिता को, आपुच्छ-पूछ कर अणगारिय-अणगारिता (मुनि धर्म) मे, पव्वए-प्रव्रजित हुआ।

भावानुवाद-वह समुद्रपाल महान् आत्मा (भगवान्) परम सवेग भाव को प्राप्त हुआ और वहीं गवाक्ष म ही सबुद्ध-प्रतिबुद्ध हो गया। माता-पिता की अनुज्ञा प्राप्त कर उसने अनगारिक-श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली।

11 तत्त्व विषयक बोध एवं आचरण

मूल गाथा- जहित्तु सग च महाकिलेस, महतमोह कसिण भयावह।
परियायधम्म चऽभिरोयएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥११॥

संस्कृत छाया- **हित्वा सग च महाक्लेश, महामोह कृत्स्न भयानकम्।**
पर्यायधर्मं चाभिरोचयति, व्रतानि शीलानि परीषहाश्च ॥११॥

अन्वयार्थ-(दीक्षित होने पर) महाकिलेस-महाक्लेशकारी, महतमोह-महामोहजनक, च-और, कसिण-सम्पूर्ण (कृष्ण लेश्या रूप), भयावह-भयावह, सग-आसक्ति का, जहित्तु-त्याग करके, परियाय-पर्याय (प्रव्रज्या), धम्म-धर्म मे, वयाणि-व्रतो मे, सीलाणि-शीलो मे, य-तथा, परीसहे-परीषहो को सहने मे, अभिरोयएज्जा-अभिरुचि रखे।

भावानुवाद-मुनि समुद्रपाल वैराग्य भाव से दीक्षित हाकर ससार के समस्त बाह्याभ्यन्तर सग को महाक्लेशकारी, महामोहजनक एव महाभयकर जानकर परित्याग कर देते हैं और सयम पर्याय मे, व्रत मे, शील म और परीषहो मे उन्हे जीतने मे अभिरुचि रखते हैं।

12 सयमशील पुरुष के कर्त्तव्य का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **अहिंस सच्च च अतेणग च, तत्तो य बभ अपरिग्गह च।**
पडिवज्जिया पचमहव्वयाणि, चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विऊ ॥12॥

संस्कृत छाया- **अहिसा सत्य चास्तेनक च, ततश्चाब्रह्मापरिग्रह च।**
प्रतिपद्य पच महाव्रतानि, चरति धर्मं जिनदेशित विद्वान् ॥१२॥

अन्वयार्थ-विऊ-विद्वान मुनि, अहिंस-अहिसा, सच्च-सत्य, च-और, अतेणग च-अस्तेय, तत्तो य-उसके पश्चात्, बभ-ब्रह्मचर्य, च-और, अपरिग्गह-अपरिग्रह, पच महव्वयाणि-इन पाच महाव्रतों को, पडिवज्जिया-स्वीकार करके, जिणदेसिय-जिनोपदिष्ट, धम्म-धर्म का, चरिज्ज-आचरण करे।

भावानुवाद-विद्वान-प्रज्ञाशील मुनि व्रतो की विशुद्ध आराधना के लिए अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-इन पाच महाव्रतो को स्वीकार करके जिनोपदिष्ट धर्म का आचरण-अनुशीलन करे।

13 भिक्षुक कर्त्तव्य का निर्देश

मूल गाथा- **सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकपी, खतिक्खमे सजयबभयारी।**
सावज्जजोग परिवज्जयतो, चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइदिए ॥13॥

संस्कृत छाया- **सर्वेषु भूतेषु दयानुकम्पी, क्षान्तिक्षम सयतब्रह्मचारी।**
सावद्ययोग परिवर्जयन्, चरेद् भिक्षु सुसमाहितेन्द्रिय ॥१३॥

अन्वयार्थ-इदिए-इन्द्रिया को, सुसमाहि-सुसमाहित, (नियत्रित रखने वाला), भिक्खू-भिक्षु सव्वेहिं-सभी, भूएहिं-प्राणियो के प्रति, दयाणुकपी-दयालु (अनुकम्पा रखने वाला), खतिक्खमे-क्षातिक्षम, सजय-सयत, बंभयारी-ब्रह्मचारी होकर, सावज्जजोग-सावद्य योग का, परिवज्जयतो-परित्याग करता हुआ, चरिज्ज-विचरण करे।

भावानुवाद-इन्द्रिया और मन को सम्यक् नियत्रित करने वाला वह भिक्षु सब प्राणियों के प्रति अनुकम्पा शील एव क्षमाशील दुर्वचनो को सहन करने वाला बनकर सयमी और ब्रह्मचारी हाकर सदैव सावद्य योग-पाप का परित्याग करके विचरण करे।

14 मुनि धर्मोचित्त आचार का वर्णन

मूल गाथा- **कालेण काल विहरेज्ज रट्ठे, बलाबल जाणिय अप्पणो य।**
सीहो व सद्देण ण सतसेज्जा, वयजोग सुच्चा ण असब्भमाहु ॥14॥

संस्कृत छाया- **कालेन काल विहरेत् राष्ट्रे, बलाबल ज्ञात्वाऽऽत्मनश्च।**
सिंह इव शब्देन न सन्त्रस्येत् वाग्योग, श्रुत्वा नासभ्य ब्रूयात् ॥१३॥

अन्वयार्थ-(मुनि) कालेण काल-यथा समय (समय के अनुसार), अप्पणो-अपने, बलाबल-बलाबल को, जाणिय-जानकर, रट्ठे-राष्ट्रो मे, विहरेज्ज-विचरण करे, य-और, सीहो-सिह की, व-तरह, सद्देण-(भयोत्पादक) शब्द से, (सुनकर), ण सतसेज्जा-सन्त्रस्त न हो, वयजोग-वचन योग, सुच्चा-सुनकर, असब्भ-असभ्य वचन, ण आहु-न बोले।

भावानुवाद-(वह) साधु अपने बलाबल को देखकर समयानुसार-काल मर्यादा को ध्यान मे रखते हुए राष्ट्र में विचरण करे। सिह की भाति भयानक शब्द सुनकर भी भयभीत नहीं हो तथा असभ्य वचनो को सुनकर भी असभ्य वचन का उच्चारण नहीं करे-किसी को भयभीत नहीं करे।

15 मुनिवृत्ति के सागोपाग आचरण का निर्देश

मूल गाथा- **उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा, पियमप्पिय सव्व तितिक्खएज्जा।**
ण सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा, ण यावि पूय गरह च सजए ॥15॥

संस्कृत छाया- **उपेक्षमाणस्तु परिव्रजेत्, प्रियमप्रिय सर्व तितिक्षेत्।**
न सर्वं सर्वत्राभिरोचयेत्, न चापि पूजा गर्हा च सयत ॥१५॥

अन्वयार्थ-सजए-सयत साधु, उ-तो, उवेहमाणो-उपेक्षा करता हुआ, परिव्वएज्जा-(सयम मार्ग मे) विचरण करे, पिय-प्रिय (और), अप्पिय-अप्रिय, सव्व-सबको, तितिक्खएज्जा-सहन करे, सव्वत्थ-सर्वत्र, सव्व-सबको, अभिरोयएज्जा-अभिलाषा नहीं करे, पूय-पूजा, च-और, ण-नहीं, गरह-गर्हा (निदा) को, यावि-भी चाहे।

भावानुवाद-(वह) सयती-साधक प्रतिकूलताओ अथवा भौतिक सुख सुविधाओ की उपेक्षा करता हुआ विचरण करे। प्रिय-अप्रिय अर्थात् अनुकूल-प्रतिकूल सभी सयोगो-परीषहा को सहन करे। सर्वत्र सब प्रकार के देखे-सुने गये अच्छे पदार्थों की इच्छा नहीं करे। पूजा और गर्हा की कामना नहीं करे।

16 उपसर्गो का शान्ति पूर्वक सहना

मूल गाथा- **अणेगछदामिह माणवेहिं, जे भावओ सपगरेइ भिक्खू।**
भयभेरवा तत्थ उइति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥16॥

संस्कृत छाया- **अनेकछदासीह मानवेषु, यान्भावत सप्रकरोति भिक्षु।**
भयभैरवास्तत्रोद्यन्ति भीमा, दिव्या मानुष्या अथवा तैरश्चा ॥१६॥

अन्वयार्थ-इह-इस लोक मे, माणवेहिं-मनुष्यो के द्वारा, अणेग-अनेक प्रकार के, छदा-अभिप्राय (प्राप्त होते हैं), जे-जिन्हे, भिक्खू-साधु, भावओ-भाव से, सपगेइ-ग्रहण करे, तत्थ-वहा (साधु जीवन में), दिव्वा-देवकृत, मणुस्सा-मनुष्य कृत, अदुवा-अथवा, तिरिच्छा-तिर्यंच कृत, भयभेरवा-भयोत्पादक (भयकर), एव भीमा-अतिरौद्र, उइति-उदय होते हैं (उन्हे शान्ति पूर्वक सहन करे)।

भावानुवाद-यहा ससार मे मनुष्यो की अनेक प्रकार की रुचिया होती है। अत वह देवकृत, मनुष्यकृत एव तिर्यंचकृत भयानक भीषण उपसर्गों को शाति से सहन करे।

17 समुद्रपाल मुनि की सयम दृढता का परिचय

मूल गाथा- **परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयति जत्था बहुकायरा णरा।**
से तत्थ पत्ते ण वहिज्ज पडिए, सगामसीसे इव णागराया॥१७॥

सस्कृत छाया- **परीषहा दुर्विषहा अनेके, सीदन्ति यत्र बहुकातरा नरा।**
स तत्र प्राप्तो नाव्यथत पण्डित, सग्रामशीर्ष इव नागराज ॥१७॥

अन्वयार्थ-अणेगे-अनेक, दुव्विसहा-दु सह, परीसहा-परीषहो मे, जत्था-जिनमे, वहु-बहुत से, कायरा-कायर, णरा-मनुष्य सीयति-खिन्न (शिथिल) होते हैं (किन्तु), पडिए-पडित, तत्थ-वहा पर, से-उनके, पत्ते-(परीषहो के) प्राप्त होने पर, सगाम सीसे-सग्राम म सिर (मोर्चे) पर रहने वाले, णागराया-नागराज (हाथी) की, इव-तरह, ण वहिज्ज-व्यथित न होवे।

भावानुवाद-बहुत से कायर व्यक्ति असह्य परीषह प्राप्त होने पर खेद अथवा शोक को प्राप्त होते हैं, किन्तु सयमी साधक सकटो या परीषहा के उपस्थित होने पर युद्ध मे सबसे आगे रहने वाले नागराज-हाथी की तरह खेदित नहीं होवे।

18 पुन समुद्रपाल मुनि की दृढता का परिचय

मूल गाथा- **सीओसिणा दसमसगा य फासा, आयंका विविहा फुसति देह।**
अकुक्कुओ तत्थऽहियासएज्जा, रयाइ खेवेज्ज पुराकडाइ॥१८॥

सस्कृत छाया- **शीतोष्णा दशमशकाश्च स्पर्शा , आतका विविधाश्च स्पृशन्ति।**
देहम् अकुत्कुचस्तत्राधिसहेत, रजासि क्षपयेत् पुराकृतानि ॥१८॥

अन्वयार्थ-सीओसिणा-शीतोष्ण, दसमसगा-दश-मशक, य-तथा, फासा-तृणादि स्पश (एव), विविहा-विविध प्रकार के, आयका-आतक (घातक रोग), देह-शरीर को, फुसति-स्पर्श करे, तत्थ-वहा, अकुक्कुओ-कुत्सित शब्दोच्चारण न करता हुआ, अहियासएज्जा-समभाव से सहन करे (और), पुराकडाइ-पूवकृत रयाइ-कमरजा को खेवेज्ज-दूर कर दे।

भावानुवाद-जब भिक्षु को शीत, उष्ण, डास, मच्छर, तृणस्पर्श तथा अन्य अनेक प्रकार के आतक स्पश करें तब वह अभद्र कुत्सित शब्दा का आचरण नहीं करता हुआ, उन्हें समत्वपूर्वक सहन कर और इस प्रकार पूवकृत कर्मों का क्षय करे।

19 वर्तमान मुनियो को अनुकरण करने का उपदेश

मूल गाथा- पहाय राग च तहेव दोस, मोह च भिक्खू सयय वियक्खणे।
मेरुव्व वाएण अकपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ॥१९॥

सस्कृत छाया- प्रहाय राग च तथैव द्वेष, मोह च भिक्षु सतत विचक्षण ।
मेरुरिव वातेनाकम्पमान , परीषहान् गुप्तात्मा सहेत ॥१७॥

अन्वयार्थ-वियक्खणे-विचक्षण, भिक्खू-भिक्षु, सयय-निरन्तर, राग च-राग, दोस च-द्वेष, तहेव-तथा, मोह मोह को, पहाय-छोडकर, वाएण-वायु से, अकपमाणो-अकम्पित, मेरुव्व-मेरु की तरह, आयगुत्ते-आत्म गुप्त बनकर, परीसहे-परीषहो को, सहेज्जा-सहन करे।

भावानुवाद-विचक्षण भिक्षु अनवरत राग-द्वेष और मोहभाव का त्याग करके वायु से अकम्पित सुमेरु पर्वत के समान आत्म-गुप्त बनकर परीषहो को सहन करे।

20 फल निर्देश पूर्वक साधु के कर्त्तव्य का निर्देश

मूल गाथा- अणुण्णए णावणए महेसी, ण यावि पूय गरह च सजए।
से उज्जुभाव पडिवज्ज सजए, णिव्वाणमग्ग विरए उवेइ ॥२०॥

सस्कृत छाया- अनुन्नतो नावनतो महर्षि, न चापि पूजा गर्हा च सयत ।
स ऋजुभाव प्रतिपद्य सयत , निर्वाणमार्गं विरत उपैति ॥२०॥

अन्वयार्थ-महेसी-महर्षि, अणुण्णए-(पूजा म) अनुन्नत, णावणए-(गर्हा में) अवनत न होए, यावि-तथा, पूय-पूजा, च-और, गरह-गर्हा मे, सजए-सयत रहे (और), स-वह, संजए-सयमी साधु, विरए-विरत होकर, उज्जुभाव-ऋजुभाव (सरलता) को, पडिवज्ज-स्वीकार करके ही, णिव्वाणमग्ग-निर्वाण मार्ग को, उवेइ-प्राप्त करता है।

भावानुवाद-सत्कार-सम्मान मे गर्वोन्नत और गर्हा-तिरस्कार मे अवनत नहीं होने वाला महर्षि (समुद्रपाल) पूजा और गर्हा में व्यथित नहीं होता। वह समत्व योगी विरत-सयति ऋजु भाव सरलता को अगीकार करके निर्वाण मार्ग को प्राप्त करता है।

21 निर्ममत्व और अकिचनता को धारण करना

मूल गाथा- अरइरइसहे पहीणसथवे, विरए आयहिए पहाणव।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिण्णसोए अममे अकिचणे ॥२१॥

सस्कृत छाया- अरतिरतिसह प्रहीणसस्तव , विरत आत्महित प्रधानवान्।
परमार्थपदेषु तिष्ठति, छिन्नशोकोऽममोऽकिञ्चन ॥२१॥

अन्वयार्थ-(वह) अरइ-अरति (और), रइ-रति को, सहे-सहन करता है, पहीणसंथवे-सस्तव का त्यागी, विरए-रागादि से निवृत्त, आयहिए-आत्महित का साधक है, पहाणव-प्रधानवान है, परमट्ठपएहिं-परमार्थ पद में

चिट्ठइ-स्थित रहता है, छिण्णसोए-शोक रहित है, अममे-ममता-मूर्च्छा रहित है, अकिंचणे-अकिंचन (निष्परिग्रही) है।

भावानुवाद-जो साधु रति और अरति को समता पूर्वक सहन करता है, सासारिक जनो के परिचय से दूर रहता है, पापो से निवृत्त है, आत्महित के प्रति जागृत है, प्रधानवान् सयमशील है, शोक-सताप रहित है, ममत्व रहित और अकिंचन है वह सम्यग्दर्शन आदि मोक्ष पदो मे स्थित रहता है।

22 मुनि धर्मोचित्त विषय का वर्णन

मूल गाथा- विवित्तलयणाइ भएज्ज ताई, णिरोवलेवाइ असथडाई।
इसीहिं चिण्णाइ महायसेहिं, काएण फासेज्ज परीसहाइ ॥२१॥

सस्कृत छाया- विविक्तलयनानि भजेत त्रायी, निरुपलेपान्यसस्कृतानि।
ऋषिभिश्चीर्णानि महायशोभि , कायेन स्पृशेत् परिषहान् ॥२१॥

अन्वयार्थ-ताई-षट्कायिक जीवो का रक्षक मुनि, महायसेहिं-महायशस्वी, इसीहिं-ऋषियो के द्वारा, चिण्णाइ-आचरित, णिरोवलेवाइ-उपलेप से रहित, असथडाइ-असस्कृत (बीजादि से रहित), विवित्त-विविक्त (एकान्त), लयणाइ-आवास स्थानो का, भएज्ज-सेवन करे, परीसहाइ-परीषहा को, काएण-काया (शरीर) से, फासेज्ज-स्पर्श (सहन) करे।

भावानुवाद-त्रायी-षट्काय रक्षक मुनि महान यशस्वी ऋषियो द्वारा अगीकृत लेपादि कर्म से रहित असस्कृत, बीजादि से रहित, विविक्त-लयन-एकान्त स्थानो मे सयम की आराधना करे, परीषहो को सहन करे।

23 समुद्रपाल ऋषि की ज्ञान सम्पत्ति का दिग्दर्शन

मूल गाथा- सण्णाणणाणोवगए महेसी, अणुत्तर चरिउ धम्मसचय।
अणुत्तरे णाणधरे जससी, ओभासई सूरिएवऽतलिक्ख ॥२३॥

सस्कृत छाया- सज्ञानज्ञानोपगतो महर्षि , अनुत्तर चरित्वा धर्मसचयम्।
अनुत्तरो ज्ञानधरो यशस्वी, अवभासते सूर्य इवान्तरिक्षे ॥२३॥

अन्वयार्थ-अणुत्तर-अनुत्तर (प्रधान), धम्मसचय-धर्म सचय का, चरिउ-आचरण करके, णाण-श्रुतज्ञान से, णाणोवगए-(विशिष्ट) ज्ञान युक्त होकर, स-वह, जससी-यशस्वी, महेसी-महर्षि (समुद्रपाल), अणुत्तरे-अनुत्तर, णाणधरे-ज्ञानधारी होकर, अतलिक्ख-अतरिक्ष में, सूरिएव-सूर्य की तरह, ओभासइ-प्रकाशमान होने लगा।

भावानुवाद-इस प्रकार श्रुतज्ञान के निर्मल प्रकाश को प्राप्त करके अनुत्तर धर्म सचय का आचरण करके अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ ज्ञान के धारक यशस्वी महर्षि अन्तरिक्ष में सूर्य की तरह धर्म-शासन में प्रकाशमान होते हैं।

24 समुद्रपाल महर्षि सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए-उपसहार

मूल गाथा- दुविह खवेऊण य पुण्णपाव, णिरजणे सव्वओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समुद्द व महाभवोघ, समुद्दपाले अपुणरागम गए॥२४॥
त्ति बेमि।

इति समुद्दपालीय एगविसइम अज्झयण समत्त।

सस्कृत छाया- द्विविध क्षपयित्वा च पुण्यपाप, निरजन सर्वतो विप्रमुक्त।
तीर्त्वा समुद्रमिव महाभवौघ, समुद्रपालोऽपुनरागमा गत ॥२४॥

इति ब्रवीमि

इति समुद्रपालीयमेकविशमध्ययन समाप्तम्॥

अन्वयार्थ-पुण्ण-पुण्य (और), पाव-पाप, दुविह-दोनो का, खवेऊण-क्षय करके, णिरजणे-कर्म सग से रहित, य-और, सव्वओ-सब प्रकार से, विप्पमुक्के-विमुक्त होकर, समुद्द व-समुद्र की भाति, महाभवोघ-विशाल ससार-प्रवाह को, तरित्ता-तैर कर, समुद्दपाले-महर्षि समुद्रपाल, अपुणरागम-अपुनरावृत्ति पद (मोक्षपद) को गए-प्राप्त हुए।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-समुद्रपाल मुनि दोनो प्रकार के पुण्य पाप या घाती-अघाती रूप कर्मों का क्षय करके सयम में निश्चल और सर्वतोभावेन मुक्त होकर समुद्र की भाति विशाल ससार-प्रवाह को पार करके अपुनरागमन-मोक्ष को गए।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार समुद्रपालीय इक्कीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

रथनेमीय - द्वाविंशम् अध्ययन

उत्थानिका

प्रस्तुत बाईसवे अध्ययन मे जीवन के विभिन्न उतार-चढावो, वासना के तूफानी आवेगो एव एक तेजस्वी नारी के सचोट वचनो से आवेगो के शमन की मर्मस्पर्शी घटना का चित्रण किया गया है। घटना और उसके साथ जुडा हुआ शीलमूर्ति नारी का सशक्त उपदेश इतना जीवन्त है कि भटके हुए या सामान्य से वासना के निमित्तो से भटक जाने वाले साधको के लिए युगो-युगो तक दीप स्तम्भ का कार्य करेगा, उन्हे भटकाव से बचाने मे, साधना मे स्थिर करने मे सहयोगी होगा।

अध्ययन के पूर्वार्ध मे 22वे तीर्थंकर प्रभु अरिष्टनेमि के जन्म, बाल्यकाल, राजीमती के साथ सगाई, विवाह हेतु बारात लेकर जाना और पशुओ की आर्त्त पुकार सुनकर पुन लौट जाने के वर्णन के साथ दीक्षा और परिनिर्वाण तक का वर्णन हुआ है जिसे प्रासगिक वर्णन कहा जा सकता है। वास्तव मे जो सन्देश शाश्वत है, साधक चित्त की स्थिरता का आवश्यक अग है, उसका प्रारभ तो अध्ययन के उत्तरार्ध मे हुआ है जिसमे साधना से भग्नचित्त रथनेमि को राजीमती अपने कुल-गौरव एव श्रमण जीवन के महत्व के प्रति सावचेत करती है। यही नहीं उसे सशक्त शब्दो मे फटकार और धिक्कार देती हुई वमन किए विष को ग्रहण करने वाले गन्धन कुल के सर्प से उपमित करती हैं। महासती राजीमती का उद्‌बोधन रथनेमि को पुन सयम मार्ग के प्रति स्थिर कर देता है और अत में दोनो मुक्तिगामी होते हैं।

इस मर्म स्पर्शी घटना का क्रम इस प्रकार है-

राज्य लक्षणो से युक्त महाराज समुद्रविजय व्रज-मण्डल के एक क्षेत्र सोरियपुर (शौर्यपुर) में राज्य करते थे। उनके चार पुत्र थे-अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि और दृढनेमि। समुद्रविजय क लघु भ्राता थे-वसुदेव, उनके दो पुत्र थे-कृष्ण और बलराम।

अरिष्टनेमि श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। प्रति वासुदेव जरासध के आक्रमण से यादव जाति के ये सभी क्षत्रिय व्रज मण्डल को छोडकर सौराष्ट्र चले गये, जहा उन्होने द्वारिका नगरी का सृजन किया और श्रीकृष्ण ने अपने प्रबल पराक्रम से विशाल राज्य की स्थापना की।

राजकुमार अरिष्टनेमि महान् तेजस्वी शान्तिपुञ्ज और प्रतिभाशाली युवक थे। ये भोग वासना से-इन्द्रिय जन्य विषयो के आकर्षण से सर्वथा विरक्त रहते थे। वैवाहिक बन्धनों में बधने की उनकी जरा भी रुचि नहीं थी, तथापि श्रीकृष्ण के अतीव आग्रह होने पर उन्होंने मौन धारण कर लिया। ''मौनम् स्वीकृति लक्षण'' के आधार पर श्रीकृष्ण ने भोजकुल के राजा उग्रसेन से उनकी पुत्री राजीमती का अरिष्टनेमि के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा

जो सहर्ष स्वीकृत हो गया। राजकुमार अरिष्टनेमि दुल्हे के रूप मे सुसज्ज होकर बडी बारात के साथ श्रीकृष्ण की प्रमुखता मे उग्रसेन के यहा पहुचे। बारात विवाह मण्डप के निकट पहुची तो करुणामूर्ति अरिष्टनेमि की दृष्टि एक वाडे पर पडी जहा पिञ्जरों में बद अनेक पशु-पक्षी आर्तनाद कर रहे थे। राजकुमार अरिष्टनेमि ने अपने सारथी से पूछा-''यहा इन पशु-पक्षियो को क्यो बन्द कर रखा है?'' सारथी ने विनम्रता पूर्वक कहा-''आपके विवाह में आगत अतिथियो के भोजन हेतु इन्हे यहा बन्द किया गया है।''

अनन्त कारुणिक राजकुमार अरिष्टनेमि का हृदय अनुकम्पित हो गया। उन्होने सारथी को सकेत दिया और सारथी ने बाडो और पिञ्जरो के द्वार खोल दिए। सभी पशु-पक्षी बन्धनमुक्त हो प्रसन्नता पूर्वक वन-गगन की ओर दौड पडे। राजकुमार अरिष्टनेमि भी विवाह को हिंसा का हेतु और बन्धन का कारण मानकर यहा से लौट गये। बहुत कुछ समझाने पर भी वह विवाह के लिए तैयार न हुए। अन्त मे वर्षीदान देकर वह प्रव्रजित हो गये। उधर राजीमता ने यह सब वृत्त सुना तो वह शोक मग्न हो गई। माता-पिता ने और उनकी सहेलियो ने उन्हे बहुत समझाया। दूसरे राजकुमार से विवाह का प्रस्ताव रखा, किन्तु वह इसके लिए तैयार नहीं हुई। 'मन से जिन्हे पति स्वीकार कर लिया, वह साधना मे जा रहे हैं, तो मुझे पीछे क्यो रहना चाहिए' इसी निष्ठा के साथ उसके भीतर वैराग्य सागर हिलोरें लेने लगा। यहा तक कि प्रभु अरिष्टनेमि के लघुभ्राता राजकुमार रथनेमि स्वय अपने साथ विवाह का प्रस्ताव लेकर राजीमती के पास पहुचे तो राजीमती ने उन्हें प्रबोधित करने हेतु खीर को पुन उसी कटोरे मे वमन करके रथनेमि से कहा कि आप इसे ग्रहण कर ले। रथनेमि के यह कहने पर कि वमन की हुई वस्तु को तो कौओ, कुत्ते खाते हैं, राजीमती ने कहा-'मैं भी आपके भ्राता द्वारा वमन (परित्याग) कर दी गई हू, फिर आप मुझे कैसे ग्रहण करना चाहते हैं?'

और रथनेमि भी उद्बोधित हो दीक्षित हो गए और राजीमती भी अनेक राजकन्याओ के साथ प्रव्रजित हो गई।

एक बार अनेक साध्वियों से परिवृत्त राजीमती रैवतक पर्वत पर प्रभु अरिष्टनेमि को वदन करने जा रही थी। किन्तु मार्ग मे ही भयकर आधी, तूफान और वर्षा ने सबको इधर-उधर सुरक्षा स्थल खोजने के लिए बाध्य कर दिया। सब इधर-उधर बिखर गई। राजीमती एक गुफा मे पहुच कर अधेरे में अपने कपडे सुखाने लगी। सयोगत उसी गुफा में मुनि रथनेमि भी ध्यान साधना मे मग्न थे। उनकी दृष्टि सहसा राजीमती के निर्वस्त्र शरीर पर पडी और उसका चित वासनाकुल हो गया। वह कामातुर होकर राजीमति से विषय सेवन की याचना करने लगता है। राजीमती क्षण भर तो एकान्त गुफा मे पुरुष की आवाज और अस्तित्व से चौंकी, लेकिन शीघ्र ही सावधान-सजग-सयत होकर अपने अगो को गोपित करती हुई रथनेमि को दृढता के साथ सयम मे स्थिर करते हुए कहने लगी-'रथनेमि! तुम अपने कुल गौरव का विचार करो। मैं तुम्हारे भाई की परित्यक्ता हू और तुम इस रूप मे वमन को पुन ग्रहण करने जैसा हीन प्रस्ताव रख रहे हो। तुम्हे इस प्रकार के साधक जीवन मे घृणित प्रस्ताव रखते हुए लज्जा आनी चाहिए।' राजीमती ने अकुश से हाथी की तरह रथनेमि को अपने उपदेश एव धिक्कार वचन रूप अकुश से वश में कर लिया। रथनेमि को अपनी भूल का अहसास हुआ और वह पुन सयम में स्थिर हुआ।

प्रस्तुत अध्ययन मे राजीमती द्वारा रथनेमि को दिया गया सन्देश इतना जीवन्त एव दीप्तिमन्त है कि युगों-युगों तक साधक-साधिकाओं के लिए प्रदीप स्तम्भ का कार्य करने वाला है।

एक नारी के द्वारा पुरुष को अपने साधना पथ पर स्थिर करने की यह घटना विरल है, किन्तु मानो यह नारी के जगदम्बा, शक्ति-रूपा स्वरूप को व्यक्त करती है।

□□□

रथनेमीय - द्वाविंशम् अध्ययन

सूक्ति सारांश

महान् आत्माओं के आचरण के प्रति सशयशील मत बनो।
महापुरुषो द्वारा आचरित प्रत्येक कर्म अपने पीछे महान् रहस्य
लिए हुए होता है। अरिष्टनेमि का अपने अविवाहित रहने को जानते हुए
भी मौन स्वीकृति देना इसी को ध्वनित करता है।

करुणाहीन व्यक्ति कभी महापुरुष नहीं बन सकता है।
दु खी प्राणियो को देखते ही करुणार्द्र हो जाना महान् व्यक्ति की
स्वभावगत विशेषता होती है।

समस्त सम्पदा लुटा कर भी एक प्राणी की रक्षा किया जाना श्रेष्ठ है।
प्राणी रक्षा के सामने आभूषण क्या किसी भी प्रकार के वैभव का कोई मूल्य नहीं होता है।

मुक्ति चाहते हो तो जीव-हिंसा से बचो।
प्राणी हिसा अनेक जन्मा के वैर को बढा देती है, जन्म-मरण की वृद्धि
का कारण बनती है।

बुरा से बुरा प्रसग भी आत्म जागृति मे निमित्त बन सकता है,
उसे उस रूप मे ग्रहण करो।
किसी के द्वारा परित्यक्त होना भी जागरण का निमित्त बन सकता है,
यह कर दिखाया राजीमती राजकुमारी ने।

साधक के लिए एकान्त-स्त्री ससर्ग सर्वथा वर्ज्य है।
एकान्तवास और स्त्री सयोग चरमशरीरी आत्माओं क मन को भी
विचलित कर देता है, तो सामान्य साधक का तो कहना ही क्या है?

मनुष्य जीवन दुर्लभ है यह बात भोग-दृष्टि से नहीं त्याग दृष्टि स समझना चाहिए।
इससे बढकर मनुष्य जीवन की दुर्लभता का क्या उपहास हो सकता है कि उसे भोगा के लिए
दुर्लभ माना जाए। भग्न चित्त रथनेमि का यह चिन्तन है।

जाग्रत चेता नारी ने अनेक पुरुषो को मार्ग दिखाया।
स्थिर चित्त नारी मे वह सामर्थ्य है जो अच्छे-अच्छे पुरुषा में नहीं हो
सकती है।

मृत्यु एक जीवन को नष्ट करती है पर कामभोग अनेक जन्मो को बिगाड़ सकते है।
वमन किए कामभोगो की पुन आकाक्षा करने की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना
श्रेष्ठ कहा है।

आनुवाशिक सस्कारो का अपना महत्त्व है।

जाति-मातृ पक्ष एव कुल-पितृ पक्ष की श्रेष्ठता श्रेष्ठ सस्कारो के
आरोपण म निमित्त बनती है। जाति कुल सम्पन्न शीघ्र सम्भल जाता है।

साधना के प्रति स्थित चित्त रहो, सक्लेश खेद निकट नहीं आएगा।

हड वनस्पति के समान अस्थिरात्मा बार-बार स्खलित होकर पद-पद पर खेदित होती है।

□□□

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणं

अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

रथनेमीय

1 वसुदेव राजा के लक्षणो का निर्देश

मूल गाथा- सोरियपुरम्मि णयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेवे त्ति णामेण, रायलक्खणसजुए॥1॥

सस्कृत छाया- शौर्यपुरे नगरे, आसीद्राराजा महर्द्धिक ।
वसुदेव इति नाम्ना, राजलक्षणसयुत ॥१॥

अन्वयार्थ-सोरियपुरम्मि-सोरियपुर, णयरे-नगर मे, रायलक्खण-राज लक्षणो से सजुए-सयुक्त महिड्ढिए-महा ऋद्धि वाला, वसुदेवे-वसुदेव, त्ति-इस प्रकार, णामेण-नाम का, राया-राजा, आसि-था।

भावानुवाद-सोरियपुर नगर मे राज-लक्षणा से सयुक्त 'वसुदेव' नामक महान् ऋद्धि सम्पन्न राजा था।

2 वसुदेव पुत्र वलदेव-कृष्ण का परिचय

मूल गाथा- तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा।
तासि दोण्ह दुवे पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा॥2॥

सस्कृत छाया- तस्य भार्ये द्वे आस्ताम्, रोहिणी देवकी तथा।
तयोर्द्वयोर्द्वौ पुत्रौ, इष्टौ रामकेशवौ॥२॥

अन्वयार्थ-तस्स-उसके, रोहिणी-रोहिणी, तहा-तथा, देवइ-देवकी, दुवे-दो, भज्जा-भार्याए (पत्निया), आसी-थी, तासि-उन, दोण्ह-दोनो के भी, राम-राम (वलदेव) और केसवा-केशव (श्रीकृष्ण), दुवे-ये दो, इट्ठा-प्रिय, पुत्ता-पुत्र थे।

भावानुवाद-उसके दो पत्निया थी-रोहिणी और देवकी। उन दोना के दो प्रिय पुत्र थे-रोहिणी के राम (वलदेव) और देवकी के केशव (श्रीकृष्ण)।

3 समुद्र विजय की समृद्धि का वर्णन

मूल गाथा- सोरियपुरम्मि णयरे, आसि राया महिड्ढिए।
समुद्दविजए णाम, रायलक्खणसजुए॥३॥

सस्कृत छाया- शौर्यपुरे नगरे, आसीद् राजा महर्द्धिक ।
समुद्रविजयो नाम, राजलक्षणसयुत ॥३॥

अन्वयार्थ-सोरियपुरम्मि-सौरीपुर, णयरे-नगर मे, राय लक्खणे-राजलक्षणो से, सजुए-सयुक्त, समुद्दविजए-समुद्रविजय, णाम-नामक, महिड्ढिए-महान् ऋद्धि सम्पन्न, राया-राजा, आसी-था।

भावानुवाद-सौरियपुर (शौर्यपुर) नगर मे ही राज-लक्षणो से मण्डित महान् ऋद्धिशाली समुद्रविजय नामक राजा भी था।

4 बाइसवे तीर्थंकर के जन्म का वर्णन

मूल गाथा- तस्स भज्जा सिवा णाम, तीसे पुत्तो महायसो।
भगव अरिट्ठणेमि त्ति, लोगणाहे दमीसरे॥४॥

सस्कृत छाया- तस्य भार्या शिवा नाम्नी, तस्या पुत्रो महायशा ।
भगवानरिष्टनेमिरिति, लोकनाथो दमीश्वर ॥४॥

अन्वयार्थ-तस्स-उसकी, सिवा-शिवा, णाम-नाम की, भज्जा-भार्या थी, तीसे-उसका, पुत्तो-पुत्र, महायसो-महायशस्वी, दमीसरे-जितेन्द्रियो में श्रेष्ठ, लोगणाहे-लोक नाथ, भगव-भगवान्, अरिट्ठणेमि-अरिष्टनेमि, त्ति-इस नाम से प्रसिद्ध था।

भावानुवाद-समुद्र विजय राजा की शिवा नामक पत्नी थी, उसके अरिष्टनेमि नामक महान् यशस्वी पुत्र था, जितेन्द्रिय मे उत्तम, लोकनाथ था।

5 समुद्र विजय पुत्र-भगवान् अरिष्ट नेमि का परिचय

मूल गाथा- सोऽरिट्ठणेमिणामो उ लक्खणस्सरसजुओ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी॥५॥

सस्कृत छाया- सोऽरिष्टनेमिर्नामास्तु, स्वरलक्षणसयुत ।
अष्टसहस्रलक्षणधर, गौतम कालकच्छवि ॥५॥

अन्वयार्थ-सो-वह, अरिट्ठणेमि-अरिष्टनेमि, णामो-नाम वाला, लक्खणस्सर-लक्षण (और) सुस्वर से, सजुओ-सयुक्त था, (वह) अट्ठ सहस्स-एक हजार आठ, लक्खण-शुभ लक्षणो का, धरो-धारक भी था, (वह) गोयमो-गौतम गौत्रीय, (और) कालगच्छवी-श्याम वर्ण वाला था।

भावानुवाद-वह अरिष्टनेमि नामक कुमार सुस्वरत्व एव गाम्भीर्य आदि सुलक्षणों से युक्त था। एक हजार आठ

लक्षणो का धारक था। वह गौतम गौत्रीय एव श्याम वर्ण वाला था।

6 शरीर का सहनन एव बाह्याकृति का वर्णन

मूल गाथा- वज्जरिसहसघयणो, समचउरसो झसोयरो।
तस्स राईमई कण्ण, भज्ज जायइ केसवो॥६॥

सस्कृत छाया- वज्रऋर्षभ (नाराच) सहनन, समचतुरस्रो झषोदर ।
तस्य राजीमतीं कन्या, भार्यार्थं याचते केशव ॥६॥

अन्वयार्थ-वज्ज रिसह-वज्र ऋषभ नाराच, सघयणो-सहनन, (और) समचउरसो-समचतुरस्र सस्थान वाला था, झसोयरो-मत्स्य के समान उदर था, राईमइ-राजीमती, कण्ण-कन्या, तस्स-उसकी, भज्ज-भार्या बने (इस हेतु), केसवो-केशव ने, जायइ-याचना की।

भावानुवाद-वह अरिष्टनेमि कुमार वज्रऋषभ नाराच सहनन (वज्र के समान अभेद्य शरीर) वाला था। उनके शरीर का सस्थान (आकार) समचतुरस्र था। मछली के उदर के समान कोमल उदर था। कृष्ण ने उनके लिए भार्या (पत्नी) के रूप मे राजीमती (उग्रसेन की पुत्री) की याचना उग्रसेन से की।

7 राजीमती के गुण और सौन्दर्य का वर्णन

मूल गाथा- अह सा रायवरकण्णा, सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खणसपण्णा, विज्जुसोयामणिप्पभा॥७॥

सस्कृत छाया- अथ सा राजवरकन्या, सुशीला चारुप्रेक्षिणी।
सर्वलक्षणसम्पन्ना, विद्युत्सौदामिनीप्रभा॥७॥

अन्वयार्थ-अह-क्योकि, सा-वह, रायवर-राजश्रेष्ठ की, (उग्रसेन की) कण्णा-कन्या, सुसीला-सुशील, चारु पेहिणी-सुन्दर दर्शन वाली, सव्व-सभी, लक्खण-लक्षणो से, सपण्णा-सम्पन्न थी, विज्जु-अतिदीप्त, सोयामणि-बिजली के समान, प्पभा-प्रभा वाली थी।

भावानुवाद-महाराज उग्रसेन की वह कन्या सुशील, नयनाभिराम सर्वलक्षण सम्पन्न थी। उसकी कान्ति विद्युत की प्रभा जैसी थी।

8 राजीमती की याचना पर पिता उग्रसेन का कथन

मूल गाथा- अहाह जणओ तीसे, वासुदेव महिड्ढिय।
इहागच्छउ कुमारो, जा से कण्ण ददामि ह॥८॥

सस्कृत छाया- अथाह जनकस्तस्या वासुदेव महर्द्धिकम्।
इहागच्छतु कुमार येन तस्मै कन्या ददाम्यहम्॥८॥

अन्वयार्थ-अह-तदन्तर, तीसे-उस (राजीमती) के, जणओ-पिता (उग्रसेन) ने, महिड्ढिय-महान् ऋद्धि सम्पन्न,

वासुदेव-वासुदेव श्रीकृष्ण से, आह-कहा, कुमारो-नेमि कुमार, इह-यहा, आगच्छउ-आये, जा-तो, अह-मैं, से-उन्हें कण्ण-कन्या (राजीमती) ददामिह-दे सकता हू।

भावानुवाद-उसके पिता (उग्रसेन) ने महान् ऋद्धि सम्पन्न वासुदेव श्रीकृष्ण से कहा-"कुमार अरिष्टनेमि यहा (बारात लेकर) आए तो मैं अपनी कन्या उनके लिए दे सकता हू (इसका विवाह उनके साथ कर सकता हू।)"

9 विवाह के लिए दूल्हे के रूप मे सुसज्जित अरिष्टनेमि

मूल गाथा- सव्वोसहीहिं ण्हविओ, कयकोउयमगलो।
दिव्वजुयलपरिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ॥९॥

संस्कृत छाया- सर्वौषधिभि स्नपित, कृतकौतुकमगल ।
दिव्ययुगलपरिहित, आभरणैर्विभूषित ॥९॥

अन्वयार्थ-(अरिष्टनेमि कुमार को) सव्वोसहीहिं-सर्वौषधियो से, ण्हविओ-स्नान कराया गया, कयकोउय मगलो-कौतुक एव मगल किये गए, दिव्व-दिव्य, जुयल-वस्त्र युगल, परिहिओ-पहनाया गया, (एव) आभरणेहिं-आभूषणा से विभूसिओ-विभूषित किया गया।

भावानुवाद-अनन्तर अरिष्टनेमि कुमार को सभी औषधिया से युक्त जल से स्नान कराया गया। यथा विधि कौतुक मगल किए गए। दिव्य वस्त्र युगल पहनाया गया और आभूषणो से विभूषित किया गया।

10 वर का बारात के रूप मे घर से निकलना

मूल गाथा- मत्त च गधहत्थिं च, वासुदेवस्स जेट्ठग।
आरूढो सोहए अहिय, सिरे चूडामणी जहा॥१०॥

संस्कृत छाया- मत्त च गन्धहस्तिन, वासुदेवस्य ज्येष्ठकम्।
आरूढ शोभतेऽधिक, शिरसि चूडामणिर्यथा॥१०॥

अन्वयार्थ-वासुदेवस्स-वासुदेव (श्रीकृष्ण) के, जेट्ठग-सबसे बडे, मत्त-मत्त, गधहत्थिं-गन्धहस्ती पर, (अरिष्टनेमि) आरूढो-(जब) आरूढ हुए (तो), सिरे-सिर पर चूडामणी-चूडामणि, जहा-जैसे, अहिय-बहुत अधिक, सोहए-शोभा पा रहे थे।

भावानुवाद-वासुदेव के सर्वज्येष्ठमत्त गध हस्ती पर आरूढ अरिष्टनेमि सिर पर मुकुट में जडे हुए चूडामणि की भाति बहुत अधिक सुशोभित हो रहे थे।

11 गध हस्ती पर आरूढ सुशोभित राजकुमार का वर्णन

मूल गाथा- अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए।
दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिओ॥११॥

संस्कृत छाया- अथोच्छ्रितन छत्रेण, चामराभ्या च शोभित ।
दशार्हचक्रेण च स , सर्वत परिवारित ॥११॥

अन्वयार्थ-अह-तदनन्तर, ऊसिएण-ऊचे, छत्तेण-छत्र से, य-तथा, चामराहिं-चामरो से, सोहिए-सुशोभित थे, य-और, दसार-दशार्ह, चक्केण-चक्र से, सो-वह, सव्वओ-चारों ओर से, परिवारिओ-परिवृत (घिरे हुए) थे।

भावानुवाद-वे अरिष्टनेमि उच्च छत्र से तथा चामरो से सुशोभित थे। दसो दशार्ह-यादवो समुद्र विजय आदि यादव पुरुषो के समूह से सर्वत परिवृत्त थे।

12 राजकुमार की चतुरगिनी सेना का वर्णन

मूल गाथा- चउरगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कम।
तुरियाण सण्णिणाएण, दिव्वेण गगण फुसे॥१२॥

संस्कृत छाया- चतुरगिण्या सेनया, रचितया यथाक्रमम्।
तूर्याणा सन्निनादेन, दिव्येन गगनस्पृशा॥१२॥

अन्वयार्थ-जहक्कम-यथाक्रम से, रइयाए-सुसज्जित, चउरगिणीए-चतुरगिणी, सेणाए-सेना से, (और) तुरियाण-वाद्यो के, दिव्वेण-दिव्य सण्णिणाएण-विशेष नाद से, गगण-आकाश को, फुसे-स्पर्श किया था।

भावानुवाद-यथाक्रम से चतुरगिणी सेना सजाई हुई थी। वाद्यो का गगन स्पर्शी दिव्य निनाद वायुमण्डल मे व्याप्त हो रहा था।

13 वृष्णिपुगव का भवन से निकलना

मूल गाथा- एयारिसीए इड्ढीए, जुईए उत्तमाइ य।
णियगाओ भवणाओ, णिज्जाओ वण्हिपुंगवो॥१३॥

संस्कृत छाया- एतादृश्या ऋद्ध्या, द्युत्या उत्तमया च।
निजकात् भवनात्, निर्यातो वृष्णिपुगव ॥१२॥

अन्वयार्थ-एयारिसीए-इस प्रकार की, उत्तमाइ-उत्तम, इड्ढीए-ऋद्धि, य-और, जुईए-द्युति के साथ (वह), वण्हिपुगवो-वृष्णिपुगव (यादवो मे प्रधान, नेमिकुमार), णियगाओ-अपने, भवणाओ-भवन से, णिज्जाओ-निकले।

भावानुवाद-इस प्रकार की उत्तम ऋद्धि और दिव्य द्युति के साथ वे वृष्णि-पुगव नेमि कुमार अपने भवन स प्रस्थित हुए।

14 अत्यन्त सत्रस्त हुए प्राणियो को देखना

मूल गाथा- अह सो तत्थ णिज्जतो, दिस्स पाणे भयद्दुए।
वाडेहिं पजरेहिं च, सण्णिरुद्धे सुदुक्खिए॥१४॥

संस्कृत छाया- अथ स तत्र निर्यन्, दृष्ट्वा प्राणिनो भयद्रुतान्।
वाटकै पञ्जरैश्च, सन्निरुद्धान् सुदुःखितान् ॥१४॥

अन्वयार्थ-अह-इसके पश्चात्, तत्थ-वहा पर, णिन्जतो-निकलते (गुजरते) हुए, सो-उस (नेमि कुमार) न, वाडेहिं-वाडो से, च-और, पजरेहि-पिजरो से, सण्णिरुद्धे-बद रोके हुए, भयद्दुए-भय से त्रस्त, सुदुक्खिए-अत्यन्त दु खित, पाणे-प्राणिया को, दिस्स-देखा।

भावानुवाद-अनन्तर जब अरिष्टनेमि कुमार बारात के साथ आगे बढे तो उन्होंने बाडे और पिजरा में अवरुद्ध भयग्रस्त एव अत्यन्त दु खित प्राणियों को देखा।

15 बाड़े मे बद्ध पशुओ को देख सारथी से पृच्छा

मूल गाथा- जीवियत तु सपत्ते, मसट्ठा भक्खियव्वए।
पासित्ता से महापण्णे, सारहिं इणमब्बवी ॥१५॥

संस्कृत छाया- जीवितान्त तु सम्प्राप्तान्, मासार्थं भक्षयितव्यान्।
दृष्ट्वा स महाप्राज्ञ , सारथिमिदमब्रवीत् ॥१५॥

अन्वयार्थ-(वे प्राणी) जीवियत तु-जीवन की अतिम स्थिति को, सपत्ते-सम्प्राप्त थ, मसट्ठा-मास के लिए, भक्खियव्वए-खाये जाने वाले थे, से-उन्हे, पासित्ता-देखकर, से-वह, महापण्णे-महाप्राज्ञ (अरिष्ट नेमि), सारहिं-सारथी को, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे।

भावानुवाद-वे प्राणी जीवन की अन्तस्थिति (मृत्यु) के अभिमुख थे, मास के लिए खाये जाने वाले थे। महाप्रज्ञ अरिष्टनेमि ने उन्हे देखकर सारथी को इस प्रकार कहा।

16 अरिष्टनेमि कुमार द्वारा सारथी से प्रश्न

मूल गाथा- कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहिं पजरेहिं च, सण्णिरुद्धा य अच्छहिं ॥१६॥

संस्कृत छाया- कस्यार्थमिमे प्राणिन , एते सर्वे सुखैषिण ।
वाटकै पञ्जरैश्च, सन्निरुद्धाश्च तिष्ठन्ति ॥१६॥

अन्वयार्थ-सुहेसिणो-सुख के अभिलाषी, इमे-ये, सव्वे-सब, पाणा-प्राणी, कस्स-किस, अट्ठा-अर्थ से, इमे-इन, वाडेहिं-वाडा से, य-और, पजरेहिं-पिजरों से, सण्णिरुद्धा-रोके हुए, अच्छहिं-रखे हैं?

भावानुवाद-ये सब सुखाभिलाषी प्राणी इन बाडो एव पिजरों म किसलिए बद किए गए हैं?

17 श्री नेमि कुमार के पूछने पर सारथी का कथन

मूल गाथा- अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झ विवाहकज्जम्मि, भोयावेउ बहु जण ॥१७॥

संस्कृत छाया- अथ सारथिस्ततो भणति, एते भद्रास्तु प्राणिन ।
युष्माक विवाहकार्ये, भोजयितु बहु जनम् ॥१७ ॥

अन्वयार्थ-अह-यह सुनकर, तओ-तब, सारही-सारथी, भणइ-बोला, एए-ये, भद्दा-भद्र, पाणिणो-प्राणी, तुज्झ-तुम्हारे, विवाह-विवाह, कज्जम्मि-कार्य मे, बहु-बहुत से, जण-लोगो को, भोयावेऊ-मास खिलाने के लिए है।

भावानुवाद-अरिष्टनेमि के इस प्रश्न पर सारथी उत्तर देता है-"इन भद्र प्राणियो को आपके विवाह में बहुत से व्यक्तियो को मास खिलाने के लिए एकत्रित किया गया है।"

18 मन मे विचारित एव तदनुकूल आचरित व्यवहार का वर्णन

मूल गाथा- सोऊण तस्स वयण, बहुपाणिविणासण।
चिंतेइ से महापण्णे, साणुक्कोसे जिएहि ऊ॥१८॥

संस्कृत छाया- श्रुत्वा तस्य वचन, बहुप्राणिविनाशनम्।
चिन्तयति स महाप्राज्ञ , सानुक्रोशो जीवेषु तु ॥१८ ॥

अन्वयार्थ-तस्स-उस सारथी के, बहु-बहुत से, पाणि-प्राणियो के, विणासण-विनाश सबधी, वयण-वचन को, सोऊण-सुन कर, जिएहि उ-जीवो के प्रति हितैषी, साणुक्कोसे-करुणा मय हृदय होकर, से-वह, महापण्णे-महाप्रज्ञ (नेमि कुमार), चिंतेइ-मन मे चिन्तन करने लगे।

भावानुवाद-अनेक प्राणियो के विनाश सबधी सारथी के वचन सुन कर जीव जगत् के प्रति करुणार्द्र-हृदय महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि कुमार इस प्रकार चिन्तन करने लगे-

19 अरिष्टनेमि के मानसिक चिन्तन की प्रस्तुति

मूल गाथा- जइ मज्झ कारणा एए, हम्मति सुबहूजिया।
ण मे एय तु णिस्सेस, परलोगे भविस्सई॥१९॥

संस्कृत छाया- यदि मम कारणादेते, हन्यन्ते सुबहवोजीवा ।
न मे एतत्तु निःश्रेयस, परलोके भविष्यति ॥१९ ॥

अन्वयार्थ-जइ-यदि, मज्ज-मेरे, कारणा-निमित्त से, एए-ये, सु बहु-बहुत से, जिया-जीव, हम्मति-मारे जाते हैं, तु-तो, एय-यह, परलोगे-परलोक मे, मे-मेरे लिए, णिस्सेस-श्रेयस्कर, ण-नहीं, भविस्सई-होगा।

भावानुवाद-"यदि मेरे (विवाह) के निमित्त से इन बहुत से प्राणियो की घात-हिसा होती है, तो यह मेरे लिए परलोक मे हितकर नहीं होगा।"

20 परम दयालु भगवान् द्वारा आभूषणो का त्याग

मूल गाथा- सो कुडलाण जुयल, सुत्तग च महायसो।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामए॥२०॥

संस्कृत छाया- स कुण्डलयोर्युगलं, सूत्रकं च महायशाः ।
आभरणानि च सर्वाणि, सारथये प्रणामयति ॥२०॥

अन्वयार्थ-(अत) सो-उस, महायसो-महायशस्वी ने, कुडलाण-कुडलों का, जुयलं-युगल, सुत्तग-सूत्रक (करधनी), च-और, सव्वाणि य-अन्य सभी, आभरणाणि-आभूषण, सारहिस्स-सारथी को, पणामए-दे दिए।

भावानुवाद-(अरिष्टनेमि के सकेत पर सारथी के द्वारा प्राणियो को बन्धन मुक्त कर देने पर) उन महायशस्वी अरिष्टनेमि ने सारथी को अपना कुण्डल युगल कटि सूत्र एव अन्य सभी आभूषण उतार कर दे दिए।

21 विवाह की इच्छा का सर्वथा त्याग

मूल गाथा- मणपरिणामे य कए, देवा य जहोइय समोइण्णा।
सव्विड्ढिइ सपरिसा, णिक्खमण तस्स काउ जे ॥२१॥

संस्कृत छाया- मन परिणामे च कृते, देवाश्च यथोचित समवतीर्णा ।
सर्वर्द्ध्या सपरिषद , निष्क्रमण तस्य कर्तुं ये ॥२१॥

अन्वयार्थ-(इसके पश्चात्) जे-जब, मण-परिणामे य कए-(जब नेमिकुमार ने) मन म, (दीक्षा का) परिणाम किया, (तभी) तस्स-उनके, जहोइय-यथोचित, णिक्खमण-अभिनिष्क्रमण, काउ-करने के लिए, देवा-देवता, सव्विड्ढिए-सर्व ऋद्धि, य-और, सपरिसा-परिषद के साथ, समोइण्णा-अवतीर्ण हुए।

भावानुवाद-समस्त आभूषणो के प्रदान के बाद उनके मन मे दीक्षा के परिणाम भाव उत्पन्न होते ही देवता अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि और परिषदा के साथ उनका दीक्षा महोत्सव-अभिनिष्क्रमण मनाने के लिए स्वर्ग से उतर कर वहा आ गए।

22 करुणार्द्र अरिष्टनेमि का अभिनिष्क्रमण

मूल गाथा- देवमणुस्सपरिवुडो, सिवियारयण तओ समारुढो।
णिक्खमिय बारगाओ, रेवययम्मि ठिओ भयव ॥२२॥

संस्कृत छाया- देवमनुष्यपरिवृत , शिबिकारत्न तत समारूढ ।
नि ष्क्रम्य द्वारकात , रैवतके, स्थितो भगवान् ॥२२॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, देव-देवा, (और) मणुस्स-मनुष्यों से, परियुडो-परिवृत (घिरे हुए), भयवं-भगवान् (अरिष्टनेमि), सिवियारयण-शिविका रत्न पर, समारूढो-आरूढ हुए, बारगाओ-द्वारका नगरी से, णिक्खमिय-निकल कर, रेवयम्मि-रैवतक पर्वत पर, ठिओ-स्थित हुए।

भावानुवाद-अनन्तर देवो और मनुष्यों से घिरे हुए भगवान् अरिष्टनेमि शिविकारत्न पर आरूढ हुए तथा द्वारिका नगरी से निकल कर रेवतक पर्वत पर स्थित हुए-रुके।

23 रेवत गिरी पर प्रव्रज्या ग्रहण

मूल गाथा- उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तमाओ सीयाओ।
साहस्सीए परिवुडो, अह णिक्खमई उ चित्ताहिं ॥२३॥

संस्कृत छाया- उद्यान सम्प्राप्त , अवतीर्ण उत्तमाया शिविकाया ।
सहस्रेण परिवृत , अथ निष्क्रामति तु चित्रानक्षत्रे ॥२३॥

अन्वयार्थ-उज्जाण-उद्यान मे, सपत्तो-पहुच कर, उत्तमाओ-उस उत्तम, सीयाओ-शिविका से, ओइण्णो-उतरे, अह-तत्पश्चात, साहस्सीए-एक हजार पुरुषो से, परिवुडो-घिरे हुए, (उ-अलकारार्थ), चित्ताहिं-चित्रा नक्षत्र में, णिक्खमई-निष्क्रमण किया (श्रमण वृत्ति ग्रहण की)।

भावानुवाद-वहा सहस्राम्रवन उद्यान मे पहुच कर वे उत्तम शिविका से नीचे उतरे और एक हजार प्रधान व्यक्तियो के साथ उन्होने चित्रा नक्षत्र मे अभिनिष्क्रमण किया-दीक्षा ली।

24 अरिष्टनेमि द्वारा केश लुचन

मूल गाथा- अह सो सुगधगधिए, तुरिय मउकुचिए।
सयमेव लुचइ केसे, पचमुट्ठीहिं समाहिओ ॥२४॥

संस्कृत छाया- अथ स सुगन्धगन्धिकान्, त्वरित मृदुकुञ्चितान्।
स्वयमेव लुञ्चति केशान्, पञ्चमुष्टिभि समाहित ॥२४॥

अन्वयार्थ-अह-इसके पश्चात्, सो-उस, समाहिओ-समाधि सम्पन्न (अरिष्टनेमि) ने, सुगध गधिए-सुगन्ध से सुरभित, मउ-कोमल (और), कुचिए-घुघराले, केसे-केशो का, तुरिय-तुरन्त, सयमेव-स्वयमेव, पचमुट्ठीहिं-पचमुष्टि, लुचइ-लोच किया।

भावानुवाद-तदनतर, समाधिवन्त अरिष्टनेमि ने शीघ्र अपने सुगन्ध से सुरभित कोमल एव घुघराले बालो का स्वय अपने हाथो से पचमुष्टि-लोच किया।

25 श्री कृष्ण द्वारा अभिनन्दन एव मगल भावना

मूल गाथा- वासुदेवो य ण भणइ, लुत्तकेस जिइदिय।
इच्छियमणोरह तुरिय, पावसु त दमीसरा ॥२५॥

संस्कृत छाया- वासुदेवस्य त भणति, लुप्तकेश जितेन्द्रियम्।
ईप्सितमनोरथ त्वरित, प्राप्नुहि त्व दमीश्वर! ॥२५॥

अन्वयार्थ-वासुदेवो-वासुदेव (श्रीकृष्ण) ने, ण-उस, लुत्तकेस-लुप्तकेश, य-और, जिइंदिय-जितेन्द्रिय (श्री नेमिनाथ) से, भणइ-(इस प्रकार) कहा-दमीसरा-हे दमीश्वर! त-तुम, इच्छिय-अभीष्ट, मणोरह-मनोरथ को, तुरिय-शीघ्र, पावसु-प्राप्त करो।

भावानुवाद-(उस समय) वासुदेव श्रीकृष्ण ने लुन्चित केश और जितेन्द्रिय श्री अरिष्टनेमि को कहा-'हे दमीश्वर! तुम अपने अभीष्ट मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करो।'

26 आशीर्वाद युक्त वचनो का वर्णन

मूल गाथा- णाणेण दसणेण य, चरित्तेण तवेण य।
खतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य॥२६॥

संस्कृत छाया- ज्ञानेन दर्शनेन च, चारित्रेण तपसा च।
क्षान्त्या मुक्त्या, वर्धमानो भव च॥२६॥

अन्वयार्थ-(तुम) णाणेण-ज्ञान से, दसणेण-दर्शन से, च-और, चरित्तेण-चारित्र से, य-तथा, तवेण-तप से, य-एव, खतीए-क्षमा से, चेव-और, मुत्तीए-निर्लोभता (मुक्ति) से, वड्ढमाणो भवाहि य-आगे बढ़ता रहो।

भावानुवाद-हे मुनीश्वर! तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप तथा क्षमा व निर्लोभता के द्वारा आगे बढ़ते रहो।

27 कृष्ण का पुन द्वारिकापुरी की तरफ प्रस्थान

मूल गाथा- एव ते रामकेसवा, दसारा य बहू जणा।
अरिट्ठणेमि वदित्ता, अइगया बारगापुरिं॥२७॥

संस्कृत छाया- एव तौ रामकेशवौ, दशार्हाश्च बहुजना।
अरिष्टनेमि वन्दित्वा, अभिगता द्वारकापुरीम्॥२७॥

अन्वयार्थ-एव-इस तरह, ते-वे (दोनो बधु), रामकेसवा-राम और केशव, य-तथा, दसारा-दशार्ह यदुश्रेष्ठ, बहू-बहुत से, जणा-मनुष्य, अरिट्ठणेमिं-अरिष्टनेमि मुनि को, वदित्ता-वन्दना करके, बारगापुरिं-द्वारिकापुरी को, अइगया-लौट गए।

भावानुवाद-इस प्रकार बलराम, केशव (श्रीकृष्ण) दशार्ह यादवगण एव बहुत से अन्य व्यक्ति अरिष्टनेमि को वन्दन करके द्वारिकापुरी को लौट आए।

28 नेमिकुमार की प्रव्रज्या सुनकर शोकाकुल राजीमती

मूल गाथा- सोऊण रायकण्णा, पव्वज्ज सा जिणस्स उ।
णीहासा य णिराणदा, सोगेण य समुत्थिया॥२८॥

संस्कृत छाया- श्रुत्वा राजकन्या, प्रव्रज्या सा जिनस्य तु।
निर्हास्या च निरानन्दा, शोकेन तु (समवसृता) समुत्थिता॥२८॥

अन्वयार्थ-उ-तब, जिणस्स-तीर्थंकर अरिष्टनेमि की, पव्वज्ज-प्रव्रज्या को, सोऊण-सुनकर, सा-वह, रायकण्णा-राज कन्या (राजीमती), णीहासा-हास्य रहित य-और, णिराणंदा-आनन्द रहित हो गई, य-तथा, सोगेण-शोक से समुत्थिया-व्याप्त (मूर्च्छित) हो गई।

भावानुवाद-राजकुमार अरिष्टनेमि की दीक्षा की बात सुनकर राजकन्या राजीमती के हास्य और आनन्द समाप्त हो गए, वह शोकमग्न हो गई।

29 प्रतिबुद्ध राजीमती के विचारो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- राईमई विचितेइ, धिरत्थु मम जीविय।
जाऽह तेण परिच्चत्ता, सेय पव्वइउ मम॥२९॥

सस्कृत छाया- राजीमती विचिन्तयति, धिगस्तु मम जीवितम्।
याऽह तेन परित्यक्ता, श्रेय प्रव्रजितु मम॥२९॥

अन्वयार्थ-राईमई-राजीमती ने, विचितेइ-सोचा (चिन्तन किया), मम-मेरे, जीविय-जीवन को, धिरत्थु-धिक्कार है, जाऽह-जो कि मैं, तेण-उन (अरिष्टनेमि) के द्वारा, परिच्चत्ता-परित्यक्ता (त्यागी हुई) हू, (अत) पव्वइउ-प्रव्रजित होना ही, मम-मेरे लिए, सेय-श्रेयस्कर है।

भावानुवाद-राजीमती विचार करने लगी-'मेरे जीवन को धिक्कार है, जो कि मैं अरिष्टनेमि के द्वारा परित्यक्ता हो गई हू। मैं उनसे त्यागी गई हू। अब मेरे लिए प्रव्रजित होना ही श्रेयस्कर है।'

30 राजीमती की धीरता और वैराग्य की उत्कृष्ट भावना

मूल गाथा- अह सा भमरसण्णिभे, कुच्चफणगप्पसाहिए।
सयमेव लुचई केसे, धिइमता ववसिया॥३०॥

सस्कृत छाया- अथ सा भ्रमरसन्निभान्, कूर्चफणकप्रसाधितान्।
स्वयमेव लुञ्चति केशान्, धृतिमती व्यवसिता॥३०॥

अन्वयार्थ-अह-इस विचार के अनन्तर, धिइमता-धैर्य वाली, ववसिया-कृत निश्चयी, सा-उस राजीमती ने, कुच्च-कूर्च (ब्रुश) और फणग-कघी से, प्पसाहिए-सवारे हुए, भमर सण्णिभे-भवरे के समान काले केशो का, सयमेव-स्वयमेव, लुचइ-लोच किया।

भावानुवाद-यह विचार कर धैर्यवती कृत निश्चया राजीमती ने कूर्च और कघी से सवारे हुए अपने भ्रमर जैसे काले बालो का स्वय अपने हाथो से ही लुचन कर लिया।

31 वासुदेव और समुद्र विजय आदि का आशीर्वचन

मूल गाथा- वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेस जिइदिय।
ससारसागर घोर, तर कण्णे। लहुं लहुं॥३१॥

सस्कृत छाया- वासुदेवस्य ता भणति, लुप्तकेशाजितेन्द्रियाम्।
ससारसागर घोर, तर कन्ये। लघु लघु॥३१॥

अन्वयार्थ-वासुदेवो-वासुदेव (श्रीकृष्ण) ने, लुत्तकेस-लुप्त केश, य-और, जिइदिय-जितेन्द्रिय, ण-उस (राजीमती)

से, भणइ-कहा, कण्णे-हे कन्ये! घोर-घोर, ससार-सागर-ससार-समुद्र को, लहुं लहु-शीघ्रातिशीघ्र, तर-पार कर।

भावानुवाद-लुंचित केशा एव जितेन्द्रिय उस राजीमती को वासुदेव ने कहा-"हे कन्ये! इस घोर-भयकर दुस्तर ससार सागर को तू शीघ्रातिशीघ्र पार कर।"

32 अनेक महिलाओ के साथ दीक्षा ग्रहण

मूल गाथा- सा पव्वइया सती, पव्वावेसी तहिं बहु।
सयण परियण चेव, सीलवता बहुस्सुया॥३२॥

सस्कृत छाया- सा प्रव्रजिता सती, प्रव्राजयामास तत्र बहून्।
स्वजनान् परिजनांश्चैव, शीलवती बहुश्रुता॥३२॥

अन्वयार्थ-सीलवता-शीलवती (और), बहुस्सुया-बहुश्रुत, (तथा) पव्वइया-प्रव्रजित, सती-होती हुई, सा-उस, (राजीमति) ने, तहिं-वहीं पर, बहु-बहुत से, सयण-स्वजनो, चेव-और परियण-परिजनो को, पव्वावेसी-प्रव्रजित कराया।

भावानुवाद-उस शीलवती और बहुश्रुता राजीमती ने दीक्षित होकर वहा द्वारिकापुरी में अन्य अनेक स्वजनों-परिजनो को दीक्षित किया।

33 रैवतक-गिरि गुफा मे गमन

मूल गाथा- गिरिं रेवतय जंती, वासेणुल्ला उ अतरा।
वासते अधयारम्मि, अतो लयणस्स सा ठिया॥३३॥

सस्कृत छाया- गिरिं रैवतक यान्ती, वर्षेणार्द्रा त्वन्तरा।
वर्षत्यन्धकारे, अन्तरा लयनस्य सा स्थिता॥३३॥

अन्वयार्थ-रेवतय-रैवतक, गिरिं-पर्वत पर, जती-जाती हुई, (वह) अंतरा उ-बीच में, वासेणुल्ला-वर्षा से भीग गइ, वासत-वर्षा के होते हुए, अधयारम्मि-अधकार मे, सा-वह, लयणस्स-गुफा के, अंतो-भीतर, ठिया-ठहर गइ।

भावानुवाद-(प्रभु अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ) रैवतक पर्वत पर जाती हुई महासती राजीमती मार्ग में ही वर्षा से भीग गई। वर्षा जोरो से हो रही थी (आधी-तूफान से) अधकार छा गया था। अत वह एक गुफा के अदर जाकर ठहर गई।

34 राजीमती को देखकर काम विह्वल रथनेमि

मूल गाथा- चीवराइ विसारंती, जहाजायत्ति पासिया।
रहणेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो य तीइ वि॥३४॥

सस्कृत छाया- चीवराणि विस्तारयन्ती, यथाजातेति दृष्टवा।
रथनेमिर्भग्नचित्त , पश्चाद् दृष्टश्च तयाऽपि ॥३४॥

अन्वयार्थ-चीवराइ-भीगे हुए वस्त्रो को, विसारती-फैलाती हुई (राजीमती को), जहाजायत्ति-यथाजात (नग्न रूप) में, पासिया-देख कर, रहणेमि-रथनेमि, भग्गचित्तो-भग्न चित्त हो गया, पच्छा-बाद मे, तीइ वि-उसने (राजीमती ने) भी, (रथनेमि को) दिट्ठो-देखा।

भावानुवाद-गीले वस्त्रो को सुखाने के लिए वस्त्रों को फैलाती हुई राजीमती को यथाजात (नग्न) रूप मे (गुफा मे पूर्व से ही ध्यानस्थ बैठे हुए) रथनेमि ने देखा तो उसका मन विचलित हो गया। पश्चात् राजीमती ने भी उसे देखा।

35 राजीमती के रूप लावण्य से रथनेमि का सयम से विचलन

मूल गाथा- भीया य सा तहिं दट्ठु, एगते सजय तय।
बाहाहिं काउ सगोप्फ, वेवमाणी णिसीयई ॥३५॥

सस्कृत छाया- भीता च सा तत्र दृष्ट्वा, एकान्ते सयत तकम्।
बाहुभ्या कृत्वा सगोफ, वेपमाना निषीदति ॥३५॥

अन्वयार्थ-य-और, तहिं-वहा, एगते-एकान्त में, तय-उस, सजय-सयत को, दट्ठु-देखकर, सा-वह, (राजीमती) भीया-भयभीत हो गई, वेवमाणी-कापती हुई, (वह) बाहाहिं-अपनी दोनो भुजाओ से, सगोप्फ-स्तनादि अगो को, गोपन (ढक) काऊ-करके, णिसीयई-बैठ गई।

भावानुवाद-वहा एकान्त मे उस रथनेमि साधु को देखकर वह भयभीत हो गई। भय से कम्पित होती हुई वह अपनी दोनो भुजाओ से शरीर को वेष्टित-आवृत्त करके बैठ गई।

36 डरती एव कापती हुई राजीमती को देखना

मूल गाथा- अहसोऽवि रायपुत्तो, समुद्दविजयगओ।
भीयं पवेविय दट्ठु, इम वक्कमुदाहरे ॥३६॥

सस्कृत छाया- अथ सोऽपि राजपुत्र , समुद्रविजयागज ।
भीता प्रवेपिता दृष्ट्वा, इद वाक्यमुदाहृतवान् ॥३६॥

अन्वयार्थ-अह-तदनन्तर, समुद्दविजयगओ-समुद्र विजय के अगज (पुत्र), सो-उस, रायपुत्तोवि-राजपुत्र ने भी (राजीमती को), भीय-भयभीत, पवेविय-कापती हुई, दट्ठु-देखकर, इम-इस प्रकार का, वक्क-वचन, उदाहरे-कहा।

भावानुवाद-उस समय समुद्र विजय के अगजात उस राजपुत्र रथनेमि ने राजीमती को भयभीत और कापती हुई देखा तो इस प्रकार वचन कहा-

37 रथनेमि साधु द्वारा सती राजीमती को निर्भयता का कथन

मूल गाथा- रहणेमी अह भद्दे! सुरुवे! चारुभासिणी!
मम भयाहि सुअणु! ण ते पीला भविस्सई॥37॥

संस्कृत छाया- रथनेमिरहं भद्रे! सुरूपे! चारुभाषिणि!
मा भजस्व सुतनो! न ते पीडा भविष्यति॥37॥

अन्वयार्थ-भद्दे-हे भद्रे! अह-मैं, रहणेमी-रथनेमि हू, सुरूवे-हे सुरूपे! चारुभासिणी-हे मधुर भाषिणी! सुअणु हे सुन्दरागी!, ते-तुझे, पीला-कोई पीडा (कष्ट), ण-नहीं, भविस्सई-होगी, मम-मुझको (पति रूपेण), भयाहि सेवन कर ले।

भावानुवाद-रथनेमि-'भद्रे! मैं रथनेमि हू। हे सुन्दरी! हे चारु भाषिणी! तू मुझे स्वीकार कर। हे सुगठित शरीरा! तुझे कोई पीडा नहीं होगी।'

38 रथनेमि द्वारा राजीमती से भोग याचना

मूल गाथा- एहि ता भुजिमो भोए, माणुस्स खु सुदुल्लह।
भुत्तभोगी तओ पच्छा, जिणमग्ग चरिस्सामो॥38॥

संस्कृत छाया- ऐहि तावद् भुञ्जीवहि भोगान्, मानुष्य खलु सुदुर्लभम्।
भुक्तभोगी तत पश्चात्, जिनमार्गं चरिष्याव॥38॥

अन्वयार्थ-एहि-इधर आओ, ता-पहले, (हम दोनों) भोए-भोगो को, भुजिमो-भोग लें, माणुस्सं-मनुष्य जन्म खु-निश्चय ही, सुदुल्लह-अत्यन्त दुर्लभ है, तओ-उसके बाद, भुत्त भोगी-भोगों को भोगकर, पच्छा-पश्चात् (हम दोनों), जिणमग्गं-जिनमार्ग को, चरिस्सामो-आचरण करेंगे।

भावानुवाद-आओ, पहले हम दोनों भोगो को भोग ले। निश्चय ही यह मनुष्य जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। हम यथारुचि काम भोगा का सेवन कर लेने के पश्चात फिर से जिनमार्ग श्रमण धर्म पर चल पडेंगे।

39 राजीमती द्वारा आत्मा-शरीर को वस्त्रों से ढाकना

मूल गाथा- दट्ठूण रहणेमि त, भग्गुज्जोय पराजियं।
राईमई असभता, अप्पाण सवरे तहिं॥39॥

संस्कृत छाया- दृष्ट्वा रथनेमि त, भग्नोद्योगपराजितम्।
राजीमत्यसम्भ्रान्ता, आत्मान समवारीत् तत्र॥39॥

अन्वयार्थ-भग्गुज्जोय-(सयम से) भग्न चित्त, पराजियं-स्त्री परीषह से पराजित, तं-उस, रहणेमिं-रथनेमि को, दट्ठूण-देखकर राईमई-राजीमती साध्वी, असभंता-सभ्रान्त न हुई, (घबराई नहीं) तहिं-वहा पर अप्पाण-

अपने शरीर को, सवरे-आवृत्त कर (ढक) लिया।

भावानुवाद-सयम के प्रति भग्नोद्योग-उत्साहहीन तथा काम-पराजित उस रथनेमि को देखकर राजीमती ने बिना भयभीत हुए-घबराए बिना वस्त्रो से अपने तन को पुन ढक लिया।

40 जाति कुल और शील की रक्षा करना

मूल गाथा- अह सा रायवरकण्णा, सुट्ठिया णियमव्वए।
जाई कुल च सील च, रक्खमाणी तय वए॥४०॥

सस्कृत छाया- अथ सा राजवरकन्या, सुस्थिता नियमव्रते।
जातिं कुल च शील च, रक्षन्ती तकमवदत्॥४०॥

अन्वयार्थ-अह-तदनन्तर, णियमव्वए-नियमों और व्रतो मे, सुट्ठिया-सुस्थित, सा-उस, रायवरकण्णा-श्रेष्ठ राजकन्या, (राजीमती) ने, जाई-जाति, कुल-कुल, च-और, सील च-शील की, रक्खमाणी-रक्षा करते हुए, तय-उस (रथनेमि) मे, वए-कहा-

भावानुवाद-अनन्तर अपने नियम-व्रतो मे सुस्थिर रहने वाली वह श्रेष्ठ राजकन्या राजीमती जाति, कुल एव शील की रक्षा करती हुई उस रथनेमि से कहने लगी-

41 राजीमती का वक्तव्य

मूल गाथा- जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण णलकुब्बरो।
तहा वि ते ण इच्छामि, जइ सि सक्ख पुरदरो॥४१॥

सस्कृत छाया- यद्यसि रूपेण वैश्रमण , ललितेन नलकूबर ।
तथापि त्वा नेच्छामि, यद्यसि साक्षात् पुरदर ॥४१॥

अन्वयार्थ-जइ-यदि, रूवेण-रूप से (तू), वेसमणो-वैश्रमण, (कुबेर) सि-है, ललिएण-ललित कलाओं में, णलकुबरो सि-नल कुबेर के समान हैं, जइ-यदि (तू), सक्ख-साक्षात्, पुरदरो सि-इन्द्र भी है, तहा वि-तो भी, ते-तुझे, ण-नहीं, इच्छामि-चाहती हू।

भावानुवाद-"यदि तू रूप सौन्दर्य में वैश्रमण-देव के समान हो, लालित्य-कला में नल कुबेर के समान हो, अधिक क्या तू साक्षात् इन्द्र भी हो, तब भी मैं तेरी इच्छा नहीं करती हू।"

42 सती धर्म का परिचय अगन्धन कुलोत्पन्न सर्प का दृष्टात

मूल गाथा- पक्खदे जलिय जोइ, धूमकेउ दुरासय।
णेच्छति वतय भोतु, कुले जाया अगधणे॥४२॥

सस्कृत छाया- प्रस्कन्दन्ते ज्वलित ज्योतिषम्, धूमकेतु दुरासदम्।
नेच्छन्ति वान्त भोक्तु, कुले जाता अगन्धने॥४२॥

अन्वयार्थ-अगधणे-अगन्धन, कुले-कुल में, जाया-उत्पन्न हुए (सर्प), धूमकेउ-धुआ निकलती, जलिय-प्रज्वलित, दुरासय-दुष्प्रवेश, जोइ-अग्नि में, पक्खदे-गिर पडते हैं (किन्तु), वतय-वमन किए हुए विष को, भोत्तु-पुन पीने की, णेच्छति-इच्छा नहीं करते।

भावानुवाद-अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प धूमध्वजवाली, प्रज्वलित, भयकर दुष्प्रवेश्य अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु वमन किये (उगले) हुए अपने विष को पुन पीने की इच्छा नहीं करते हैं।

43 असयत जीवन की अपेक्षा मरना श्रेष्ठ

मूल गाथा- धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो त जीवियकारणा।
वतं इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे ॥४३॥

सस्कृत छाया- धिगस्तु त्वामयश कामिन्, यत् त्व जीवितकारणात्।
वान्तमिच्छस्यापातु, श्रेयस्ते मरण भवेत् ॥४३॥

अन्वयार्थ-अजसोकामी-हे अपयश के कामी। ते-तुझे, धिरत्थु-धिक्कार है, जो-जो कि, त-तू, जीवियकारणा-(असयमी) जीवन के लिए, वत-वमन किये हुए को, (पुन) आवेउ-भोगने की, इच्छसि-इच्छा करता है, (इसकी अपेक्षा) ते-तेरे लिए, मरण-मर जाना, सेय-श्रेष्ठ, भवे-है।

भावानुवाद-"हे अपयश के कामी! धिक्कार है तुझे कि तू भोग जीवन के लिए वमन किये (त्यागे) गए भोगो का पुन भोगने की इच्छा करता है। इससे तो तेरा मरना अच्छा है।"

44 निश्चल होकर सयम का आराधन करना

मूल गाथा- अह च भोगरायस्स, त चऽसि अधगवण्हिणो।
मा कुले गधणा होमो, सजम णिहुओ चर ॥४४॥

सस्कृत छाया- अह च भोगराजस्य, त्व चास्यन्धकवृष्णे।
मा कुले गन्धना भूम, सयम निभृतश्चर ॥४४॥

अन्वयार्थ-अह च-और मैं, भोगरायस्स-भोगराज (उग्रसेन) की पुत्री हू, च-और त-तू, अंधगवण्हिणो-अन्धक वृष्णि का पुत्र, असि-है, गंधणा-गन्धन, कुले-कुल में उत्पन्न हुए के समान, मा होमो-मत बन, (तू) णिहुओ-स्थिर होकर, सजम-सयम का, चर-आचरण कर।

भावानुवाद-"मैं भोजराज उग्रसन की पुत्री हू और तुम अन्धकवृष्णि-समुद्रविजय के पुत्र हो, हम गन्धन कुल के सप के समान न बने। अत तुम स्थिर चित्त होकर सयम का पालन करो।"

45 वायु से प्रेरित हड वनस्पति की तरह अस्थिर आत्मा का होना

मूल गाथा- जइ तं काहिसि भाव, जा जा दिच्छसि णारिओ।
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्सासि ॥४५॥

सस्कृत छाया- यदि त्व करिष्यसि भाव, या या दृश्यसि नारी ।
वाताविद्ध इव हठ , अस्थितात्मा भविष्यसि ॥४५॥

अन्वयार्थ-त-तुम, जा-जा-जिन-जिन, णारिओ-स्त्रियो को, दिच्छसि-देखेगा, जइ-यदि, (उन-उन पर) भाव-बुरे भाव, काहिसि-करेगा (तो तू) वायाविद्धो-वायु से प्रेरित, हडो व्व-हड नामक वनस्पति की तरह, अट्ठिअप्पा-अस्थिर आत्मा वाले, भविस्ससि-हो जाओगे।

भावानुवाद-"जब-जब भी या जो-जो भी नारिया तू देखेगा, यदि उनके साथ राग भाव करेगा तो वायु से प्रेरित (कम्पित) हड नामक वनस्पति के समान तू अस्थिरात्मा बन जाएगा।"

46 सयम का अनीश्वर होना

मूल गाथा- गोवालो भडवालो वा, जहा तद्दव्वणिस्सरो।
एव अणिस्सरो त पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥४६॥

सस्कृत छाया- गोपालो भण्डपालो वा, यथा तद्द्रव्यानीश्वर ।
एवमनीश्वरस्त्वमपि, श्रामण्यस्य भविष्यसि ॥४६॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, गोवालो-गोपाल, वा-अथवा, भडवालो-भाण्डपाल, तद्दव्व-उस द्रव्य का, अणिस्सरो-ईश्वर नहीं होता, एव-इसी प्रकार, तपि-तू भी, सामण्णस्स-श्रमण भाव का, अणिस्सरो-अनीश्वर, भविस्ससि-होगा।

भावानुवाद-"जिस प्रकार गोपाल अथवा भाण्डपाल, गायो एव पात्रादि द्रव्यो का स्वामी नहीं होता, उसी प्रकार तुम भी श्रामण्य भाव-मोक्ष मार्ग के अधिकारी नहीं हो सकोगे।"

47 सती राजीमती के सुभाषित वचनो का विलक्षण प्रभाव

मूल गाथा- तीसे सो वयण सोच्चा, सजयाइ सुभासियं।
अकुसेण जहा णागो, धम्मे सपडिवाइओ ॥४७॥

सस्कृत छाया- तस्या स वचन श्रुत्वा, सयताया सुभाषितम्।
अकुशेन यथा नाग धर्मे सम्प्रतिपादित ॥४७॥

अन्वयार्थ-तीसे-उस, सजयाइ-सयमवती (राजीमती) के, सुभासिय-सुभाषित, वयण-वचनो को, सोच्चा-सुन कर, सो-वह (रथनेमि), धम्मे-धर्म मे, सपडिवाइओ-स्थिर हो गया, जहा-जैसे, णागो-हाथी, अकुसेण-अकुश से, स्थिर हा जाता है।

भावानुवाद-उस सयमशील राजीमती के सुभाषित वचनो को सुनकर रथनेमि धर्म के प्रति सम्यग् रूप से वैसे ही स्थिर हो गए, जैसे अकुश से हाथी वश में हो जाता है।

48 आत्मा को धर्म मे स्थापित करने का क्रम-उपसहार

मूल गाथा- कोह माण णिगिण्हित्ता, माय लोभ च सव्वसो।
इदियाइ वसे काउ, अप्पाणं उवसहरे ॥४८॥

संस्कृत छाया- क्रोध मान निगृह्य, माया लोभ च सर्वशः।
इन्द्रियाणि वशीकृत्य, आत्मानमुपसमाहरत् ॥४६॥

अन्वयार्थ-(रथनेमि ने) कोह-क्रोध, माण-मान, माय-माया, च-और, लोभं-लोभ को, सव्वसो-पूर्णतया, णिगिण्हत्ता-निग्रह करके (तथा), इंदियाइं-इन्द्रियों को, वसे-वश में, काउ-करके, अप्पाणं-अपनी आत्मा का, उवसहरे-उपसहार किया।

भावानुवाद-अनन्तर रथनेमि ने क्रोध, मान, माया व लोभ का सम्यग् निग्रह करके, इन्द्रियों को वश मे करके अपना आत्मा को अधर्म से हटाकर धर्म मे स्थिर उपसहृत किया।

49 निश्चल भाव से श्रमण वृत्ति का पालन

मूल गाथा- मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ।
सामण्णं णिच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥४९॥

संस्कृत छाया- मनोगुप्तो वचोगुप्त, कायगुप्तो जितेन्द्रिय।
श्रामण्यं निश्चलमस्प्राक्षीत्, यावज्जीवं दृढव्रत ॥४९॥

अन्वयार्थ-मणगुत्तो-मनोगुप्त, वयगुत्तो-वचनगुप्त, (और) कायगुत्तो-कायगुप्त होकर, जिइंदिओ-जितेन्द्रिय, (और) दढव्वओ-व्रता मे दृढ हो गया, (तत्पश्चात्) जावज्जीवं-जीवन पर्यन्त, णिच्चलं-निश्चल भाव से, सामण्णं-श्रमण भाव का, फासे-स्पर्श (पालन) किया।

भावानुवाद-मन, वचन और काया से गुप्त होकर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके वह व्रतो में सुदृढ हो गया। फिर जीवनपर्यन्त निश्चलता पूर्वक श्रमणत्व का पालन करता रहा।

50 कर्मक्षय करके सर्वथा मुक्त होना

मूल गाथा- उग्गं तवं चरित्ताणं, जाया दोण्णि वि केवली।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥५०॥

संस्कृत छाया- उग्रं तपश्चरित्वा, जातौ द्वावपि केवलिनौ।
सर्वं कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं प्राप्तावनुत्तराम् ॥५०॥

अन्वयार्थ-उग्गं-उग्र, तवं-तप का, चरित्ताणं-आचरण करके, दोण्णिवि-दोनों (राजीमती और रथनेमि), केवली-केवल ज्ञानी, जाया-हुए, (तथा) सव्वं-समस्त, कम्मं-कर्मों का, खवित्ताणं-क्षय करके, अणुत्तरं-अनुत्तर (प्रधान), सिद्धिं-सिद्धि (मुक्ति) को, पत्ता-प्राप्त हुए।

भावानुवाद-उग्र तप का आचरण करके राजीमती एव रथनेमि दोनो ही केवल ज्ञानी हो गए, अन्त में सब कर्मों का क्षय करके उन्होंने अनुत्तर सिद्धि गति-मुक्ति को प्राप्त की।

51 दोनो महान् आत्माओ से प्रेरणा-उपसहार

मूल गाथा- एव करेति सबुद्धा, पडिया पवियक्खणा।
विणियट्टति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ॥५१॥

त्ति बेमि।

इति रहनेमिय बाइसम अज्झयण समत ॥२२॥

सस्कृत छाया- एव कुर्वन्ति सबुद्धा, पण्डिता प्रविचक्षणा।
विनिवर्तन्ते भोगेभ्य, यथा स पुरुषोत्तम ॥५१॥

इति ब्रवीमि

इति रथनेमीय द्वाविशतितमध्ययन समाप्तम् ॥२२॥

अन्वयार्थ-सबुद्धा-सम्बुद्ध, पडिया-पडित (और) पवियक्खणा-विचक्षण लोग, एव-ऐसा ही, करेति-करते हैं, (वि) भोगेसु-भोगो से, विणियट्टति-निवृत्त हो जाते हैं, जहा-जैसे, से-वह, परिसुत्तमो-पुरुषो म उत्तम (रथनेमि) निवृत्त हुआ।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-सम्बुद्ध, पण्डित और विचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं, पुरुषोत्तम रथनेमि के समान वे भोगो से विरक्त हो जाते है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार रथनेमीय बाईसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

केशि-गौतमीय - त्रयोविंशम् अध्ययन

उत्थानिका

जिनशासन की दो भिन्न-भिन्न परम्पराओं के मिलन का ऐतिहासिक, रोचक एवं तत्त्वस्पर्शी विवेचन प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य है। काल के थपेड़ों का प्रभाव केवल जड़ पदार्थों तक ही सीमित नहीं रहता है, वह चेतना की मौलिक शक्ति प्रज्ञा, बुद्धि किंवा चिन्तनी शक्ति को भी नहीं छोड़ता है। काल के प्रभाव से दैहिक ह्रास-विकास को तो हम सहज रूप से समझ-स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु उसी काल का प्रभाव हमारी प्रज्ञा शक्ति पर अति सूक्ष्म रूप से होता है, जिसे कुछ व्यक्ति ही समझ पाते हैं।

तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ एवं चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर की अत्यन्त निकटतम परम्पराओं में भी काल के सामान्य से अन्तराल ने बहुत कुछ भिन्नताएँ ला दी थीं। वे भिन्नताएँ क्या-क्या और किन विषयों में थी? उनका समन्वय किस रूप में किस औदार्य भाव के द्वारा हुआ? यह सब भाव प्रवाही ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत अध्ययन में हुआ है।

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर थे-श्रमण केशीकुमार और भगवान् महावीर के प्रथम गणधर थे-गौतम। दोनों की विद्वत्ता, पाण्डित्य, व्यवहार कुशलता एवं उदारता जन विश्रुत थी। एक बार दोनों महान् विभूतियों का अपने-अपने शिष्य संघ के साथ श्रावस्ती नगरी में आगमन हुआ।

चूंकि भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के धर्म शासनों में काल के प्रभाव के कारण आचार परम्परा में कुछ भिन्नताएँ थी, अतः जब दोनों परम्पराओं के साधु नगर में भिक्षार्थ गए तो एक-दूसरे के आचार भेद को देखकर चिन्तन करने लगे-एक ही लक्ष्य के साधना क्रम में यह भिन्नता क्यों? दोनों के शिष्यों ने अपने-अपने अनुशास्ता आराध्य गुरु के समक्ष जिज्ञासा व्यक्त की तो प्रज्ञानिधि गौतम गणधर ने विचार किया प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा पुरातन है अतः यह मेरा ज्येष्ठ कुल हो जाता है, अस्तु मुझे ही श्री केशी कुमार श्रमण के समक्ष उपस्थित होकर सभी शंकाओं का समाधान कर लेना चाहिए। यह विचार कर अपनी व्यवहार कुशलता में सुदक्ष गौतम स्वामी अपने शिष्य समुदाय के साथ तिन्दुक उद्यान में गए जहां केशीकुमार श्रमण ठहरे हुए थे। केशीकुमार श्रमण ने महाप्राज्ञ गौतम का आसन प्रदान आदि के द्वारा यथोचित स्वागत किया। दोनों महापुरुषों के मध्य जो आध्यात्मिक चर्चा हुई उसी का प्रतिपादन प्रस्तुत अध्ययन में हुआ है।

श्रमण केशी कुमार ने गौतम के सम्मुख अपनी प्रथम जिज्ञासा रखते हुए कहा-"हमारा लक्ष्य एक होते हुए भी हमारी साधना पद्धति एवं आचार मर्यादा में इतनी भिन्नता क्यों है? कोई श्वेत वस्त्र धारक है तो कोई रंगीन, कोई चातुर्याम संवर धर्म का पालन करता है तो कोई पंचयाम? इस भिन्नता का मूल आधार क्या हो सकता है?"

गौतम स्वामी ने सम्मान युक्त शब्दो मे कहा-"भन्ते। यह निर्विवाद है कि हमारा मौलिक लक्ष्य एक ही है। एक लक्ष्य की उपलब्धि के लिए साधना क्रम एक ही होना चाहिए और वस्तुत हमारी साधना पद्धति मे कोई मौलिक भेद भी नहीं है। जो कुछ भिन्नता दिखाई दे रही है, वह विवक्षा भेद के कारण ही है और वह भी काल क्रमागत बुद्धि-शक्ति अथवा प्रज्ञा के उत्कर्ष-अपकर्ष के कारण हैं।"

भगवान् पार्श्वनाथ के समय के तथा उससे पूर्व द्वितीय तीथकर तक के लोग अति सरल प्रकृति एव प्रखर प्रज्ञा सम्पन्न होते थे। वे सक्षेप मे प्रतिपादित विषय को सुगमता पूर्वक समझ लेते और सरलता पूर्वक स्वीकार कर लेते थे, अत उनके लिए नियमो-मर्यादाओ के फैलाव की आवश्यकता नहीं होती थी। एक छोटी-सी बात वे सहज रूप म विस्तार पूर्वक समझ लेते, अत उनके लिए सचेल-अचेल अर्थात् रगीन वस्त्र या सफेद वस्त्रो से कोई अन्तर नहीं पडता है, अत उनके लिए चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन प्रासगिक ही था। किन्तु प्रभु महावीर के शासन के व्यक्तियो की प्रज्ञा भी क्षीण हुई है और सरलता भी नष्ट-भ्रष्ट होती चली गई, बुद्धि मे जडत्व और कुटिलता का प्रवेश हो गया, अत उन्हे कोई भी विषय समझाने के लिए भिन्न-भिन्न करके समझाना आवश्यक हो गया। इसी दृष्टि से महावीर ने पचयाम याने पाच महाव्रत वाले धर्म का प्रतिपादन किया। वस्तुत परिपालना दोनो परम्पराओ मे पाचो महाव्रता की ही है, केवल प्रतिपादन की शैली मे ही अन्तर हुआ, जो आम व्यक्तियो की प्रज्ञा को दृष्टि में रखकर किया गया है।

गौतम प्रभु के सहज-सुगम समाधान से केशीकुमार श्रमण ही नहीं, उनके शिष्यगण एव अन्य हजारा श्रोता, जिनमें देव भी थे, प्रसन्न हो गए। उन्हे आत्म तुष्टि हुई। केशी कुमार श्रमण ने सही समझ के साथ ही चतुर्याम धर्म से पचयाम धर्म-प्रभु महावीर के शासन मे प्रवेश किया। इस प्रकार पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा ने कालगत परिवर्तन के आधार पर प्रभु महावीर की शरण ग्रहण की।

प्रस्तुत अध्ययन मे वर्तमान परिवेश के लिए दृष्टिबोधक दो-तीन बातें सामने आती हैं। प्रथम तो दो परम्पराओं का मिलन कितना सौहार्द्रपूर्ण हो सकता है, यदि एक परम्परा के मुखिया में भी विचारो की उदारता-समन्वय की भावना हो तो। गौतम स्वामी का वहा जाना उनके बडप्पन का द्योतक है तो केशी श्रमण के द्वारा किया गया उनका सत्कार और फिर अपने आग्रह का परित्याग कर यथार्थ का स्वीकार करना भी कम महानता नहीं है।

इसी से जुडी हुई दूसरी बात है-समन्वय के विचार उत्तम होते हुए भी समन्वय शुद्ध सैद्धान्तिक समझ के बाद ही हो सकता है। बिना सैद्धान्तिक धरातल के किया गया समन्वय अस्थायी होता है। केशी श्रमण ने शुद्ध सैद्धान्तिकता को समझा उसके पश्चात् अपनी परम्परागत साधना पद्धति से रूपान्तरित हुए।

तीसरी सबसे महत्वपूर्ण बात इस अध्ययन से यह व्यक्त होती है कि केशी श्रमण ज्येष्ठ कुल से सम्बन्धित होते हुए भी इस अहकार से ग्रसित नहीं थे कि मैं बडा हू, मैं गौतम से प्रश्न कैसे पूछू?

छोटे-बडे के भेद को भुलाकर उन्होने बडी सहजता से गौतम के समक्ष अपनी जिज्ञासाए रखीं और गौतम ने भी बडे आदर भाव के साथ विनयपूर्वक जिज्ञासाओं का समाधान किया।

उन जिज्ञासा-समाधानो मे अनेक ऐसे समाधान हैं जो आम व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन को भी छूते हैं और उसे समरस बनाने में सहकार करते हैं।

चले मूलग्रन्थ से ही समाधान प्राप्त करे-

केशि-गौतमीय - त्रयोविंशम् अध्ययन

सूक्ति साराश

भाव साधना के साथ द्रव्य साधना म भी एक रूपता आवश्यक है। एक ही लक्ष्य से की जाने वाली साधना के विविध रूप साधका के मन मे सशय उत्पन्न कर देते हैं अत व्यवहार गत साधनाग में भी एक रूपता आवश्यक है।

गुरु के द्वारा उपेक्षित शिष्य मार्ग च्युत हो सकता है। 'शिष्य वर्ग की शकाओ की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए', यह निदर्शन प्रस्तुत किया है गणधर गौतम एव केशी कुमार श्रमण ने।

गुरु का गुरुत्व शिष्य की सतुष्टि पर अवलम्बित है। शिष्यो की मानसिक सतुष्टि के लिए गुरु द्वारा अपने अह का त्याग भी आवश्यक है, यह उदाहरण प्रस्तुत किया है गणधर गौतम ने केशी कुमार श्रमण के यहा जाकर।

परस्पर भिन्न विचारो के मिलन से भी तत्त्वज्ञान का निष्कर्ष-नवनीत निकाला जा सकता है। साम्प्रदायिक सद्भाव का श्रेष्ठतम उदाहरण है केशी गौतम का सम्मिलन एव ज्ञान विमर्श।

विवाद का मुख्य कारण व्यवहार भेद नहीं, मनोभेद होता है। एक ही कार्य के लिए भिन्न प्रकार का आचार-व्यवहार काल गत प्रभाव क कारण हो सकता है, अत उसमें विवाद को नहीं खोजना चाहिए।

साधना का आधार है सहजता एव प्रतिभा सम्पन्नता। विशुद्ध साधना के लिए ऋजुता के साथ प्राज्ञता भी अपेक्षित है। वक्रता व मूढता में साधना नहीं हो सकती है।

मनोविजय साधना का मूल आधार है। एक दुर्मन को जीत लेने पर सभी इन्द्रियों एव कषायों पर विजय साधी जा सकती है।

व्यक्ति बाहर के जंजीर आदि के बन्धनों से नहीं आन्तरिक वृत्तियों से बंधता है। ससार में राग-द्वेष एव स्नेह भयकर बन्धन हैं। इन बन्धनों से मुक्त हुए कि सभी बन्धनों से मुक्त हो।

कटु फल प्रदायिनी तृष्णा वेल को समाप्त कर दो।
भव तृष्णा रूपी लता बडे भयकर फल देने वाली है, उसे उखाड फेको,
सहज मधुर फल देने वाली लता हस्त गत हो जाएगी।

यदि अपनी आन्तरिक सुरक्षा चाहते हो तो ज्ञान एव समता रूप
जल से कषायाग्नि का शमन करो।
बाहर की अग्नि व्यक्ति को उतनी हानि नहीं पहुचाती है,
जितनी आन्तरिक कषायाग्नि।

साधना की सिद्धि मन के नियन्त्रित होने पर सहज हो जाती है।
अनियन्त्रित मन दुष्ट अश्व की तरह उत्पथ पर ले जाता है,
इसे श्रुत ज्ञान रूपी लगाम से वश मे करो।

विभिन्न साधना पद्धतियो को छोड़ कर केवल एक वीतराग
पद प्राप्ति के पथ पर ही चलो।
वीतरागता का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है, इस मार्ग पर चलने वाला
कभी खेदित नहीं होता।

जन्म-मरण से मुक्ति का एक ही आधार है वीतराग धर्म,
उसी की शरण ग्रहण करो।
यह सम्पूर्ण ससार, चाहे स्थल या जल एक महासागर ही है, इसमे जन्म-जरा व
मरण से प्राणी सत्रस्त हैं उनके लिए केवल एक धर्म ही शरण रूप द्वीप है।

सुरक्षित उस पार पहुचना है तो अनाचरण से बचो।
छिद्रो वाली नौका डुबो देती है वैसे ही सामान्य-सा अनाचरण
जीवन नौका को डुबा देता है।

शरीर का उपयोग नौका की तरह करो। यह अवश्य ही बधनो से मुक्त कर देगा।
शरीर रूपी नौका का नाविक चैतन्य-आत्मा है यह ससार महासमुद्र है,
साधक आत्माए इस नौका के सहारे पार हो जाती है।

सूर्य की उपासना नहीं, आत्म प्रकाश की उपासना करो
वही मार्ग दिखायेगा।
वीतराग आत्माओं के ज्ञान प्रकाश के समक्ष हजारो सूर्य
भी फीके पड जाते हैं।

शाश्वत-ध्रुव शान्ति चाहिए तो केवल मुक्ति-वीतरागता की उपासना करो।
ससार दु खों का केन्द्र है तो शान्ति का एक स्थान भी है जहा किसी भी
प्रकार का सक्लेश नहीं है, यह शाश्वत ध्रुव स्थान है सिद्धालय। □□□

केशि-गौतमीय - त्रयोविंशम् अध्ययन

सुक्ति साराश

भाव साधना के साथ द्रव्य साधना मे भी एक रूपता आवश्यक है।
एक ही लक्ष्य से की जाने वाली साधना के विविध रूप साधको के मन मे सशय उत्पन्न कर देते हैं अत व्यवहार गत साधनागो मे भी एक रुपता आवश्यक है।

गुरु के द्वारा उपेक्षित शिष्य मार्ग च्युत हो सकता है।
'शिष्य वर्ग की शकाओ की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए', यह निदर्शन प्रस्तुत किया है गणधर गौतम एव केशी कुमार श्रमण ने।

गुरु का गुरुत्व शिष्य की सतुष्टि पर अवलम्बित है।
शिष्यो की मानसिक सतुष्टि के लिए गुरु द्वारा अपने अह का त्याग भी आवश्यक है, यह उदाहरण प्रस्तुत किया है गणधर गौतम ने केशी कुमार श्रमण के यहा जाकर।

परस्पर भिन्न विचारो के मिलन से भी तत्त्वज्ञान का निष्कप-नवनीत निकाला जा सकता है।
साम्प्रदायिक सद्भाव का श्रेष्ठतम उदाहरण है केशी गौतम का सम्मिलन एव ज्ञान विमर्श।

विवाद का मुख्य कारण व्यवहार भेद नहीं, मनोभेद होता है।
एक ही कार्य के लिए भिन्न प्रकार का आचार-व्यवहार काल गत प्रभाव के कारण हो सकता है, अत उसमे विवाद को नहीं खोजना चाहिए।

साधना का आधार है सहजता एव प्रतिभा सम्पन्नता।
विशुद्ध साधना के लिए ऋजुता के साथ प्राज्ञता भी अपेक्षित है।
वक्रता व मूढता मे साधना नहीं हो सकती है।

मनोविजय साधना का मूल आधार है।
एक दुर्मन को जीत लेने पर सभी इन्द्रियो एव कषायो पर विजय साधी जा सकती है।

व्यक्ति बाहर के जंजीर आदि के बन्धनो से नहीं आन्तरिक वृत्तियो से बधता है।
ससार मे राग-द्वेष एव स्नेह भयकर बन्धन हैं। इन बन्धनो से मुक्त हुए कि सभी बन्धनो से मुक्त हो जाओगे।

कटु फल प्रदायिनी तृष्णा बेल को समाप्त कर दो।
भव तृष्णा रूपी लता बडे भयकर फल देने वाली है, उसे उखाड फेको,
सहज मधुर फल देने वाली लता हस्त गत हो जाएगी।

यदि अपनी आन्तरिक सुरक्षा चाहते हो तो ज्ञान एव समता रूप
जल से कषायाग्नि का शमन करो।
बाहर की अग्नि व्यक्ति को उतनी हानि नहीं पहुचाती है,
जितनी आन्तरिक कषायाग्नि।

साधना की सिद्धि मन के नियन्त्रित होने पर सहज हो जाती है।
अनियन्त्रित मन दुष्ट अश्व की तरह उत्पथ पर ले जाता है,
इसे श्रुत ज्ञान रूपी लगाम से वश मे करो।

विभिन्न साधना पद्धतियो को छोड़ कर केवल एक वीतराग
पद प्राप्ति के पथ पर ही चलो।
वीतरागता का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है, इस मार्ग पर चलने वाला
कभी खेदित नहीं होता।

जन्म-मरण से मुक्ति का एक ही आधार है वीतराग धर्म,
उसी की शरण ग्रहण करो।
यह सम्पूर्ण ससार, चाहे स्थल या जल एक महासागर ही है, इसमे जन्म-जरा व
मरण से प्राणी सत्रस्त हैं उनके लिए केवल एक धर्म ही शरण रूप द्वीप है।

सुरक्षित उस पार पहुचना है तो अनाचरण से बचो।
छिद्रा वाली नौका डुबो देती है वैसे ही सामान्य-सा अनाचरण
जीवन नौका को डुबा देता है।

शरीर का उपयोग नौका की तरह करो। यह अवश्य ही बधनो से मुक्त कर देगा।
शरीर रूपी नौका का नाविक चैतन्य-आत्मा है यह ससार महासमुद्र है,
साधक आत्माए इस नौका के सहारे पार हो जाती है।

सूर्य की उपासना नहीं, आत्म प्रकाश की उपासना करो
वही मार्ग दिखायेगा।
वीतराग आत्माओ के ज्ञान प्रकाश के समक्ष हजारो सूर्य
भी फीके पड जाते हैं।

शाश्वत-ध्रुव शान्ति चाहिए तो केवल मुक्ति-वीतरागता की उपासना करो।
ससार दु खो का केन्द्र है तो शान्ति का एक स्थान भी है जहा किसी भी
प्रकार का सक्लेश नहीं है, वह शाश्वत ध्रुव स्थान है सिद्धालय। □□□

अह केसिगोयमिज्जं तेवीसइमं अज्झयणं

अथ केशिगौतमीयं त्रयोविंशमध्ययनम्

केशि गौतमीय

1 तीर्थंकर पार्श्वनाथ का वर्णन

मूल गाथा- जिणे पासिति णामेण, अरहा लोगपूइओ।
संबुद्धप्पा य सव्वण्णू, धम्मतित्थयरे जिणे ॥1॥

संस्कृत छाया- जिनः पार्श्व इति नाम्ना, अर्हन् लोकपूजितः ।
संबुद्धात्मा च सर्वज्ञ , धर्मतीर्थकरो जिनः ॥१॥

अन्वयार्थ-जिणे-रागद्वेष को जीतने वाले, अरहा-देवो द्वारा पूजित-अर्हत, लोग पूइओ-लोक मे पूजित, संबुद्धप्पा-सम्बुद्ध आत्मा वाले, सव्वण्णू-सर्वज्ञ, धम्म तित्थयरे-धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, जिणे-समस्त कर्मों का क्षय करने वाले, पासित्ति-पार्श्व इस, णामेण-नामक भगवान् थे।

भावानुवाद-पार्श्व नामक जिनेश्वर अर्हन्-वन्दनीय, लोकपूजित, सम्बुद्धात्मा-तत्त्वज्ञानी, सर्वज्ञ, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक एव कर्म विजेता-वीतराग थे।

2 उनके शिष्य केशी कुमार श्रमण

मूल गाथा- तस्स लोगपईवस्स, आसी सीसे महायसे।
केसीकुमार समणे, विज्जाचरणपारगे ॥2॥

संस्कृत छाया- तस्य लोकप्रदीपस्य, आसीच्छिष्यो महायशा ।
केशीकुमारश्रमण , विद्याचरणपारग ॥२॥

अन्वयार्थ-लोग पईवस्स-लोकप्रदीप, तस्स-उस (पार्श्वनाथ भगवान) के, विज्जा चरण-विद्या (और) चारित्र के, पारगे-पारगामी, महायसे-महायशस्वी, समणे-श्रमण, केसी कुमार-केशी कुमार, सीसे-शिष्य आसी-थे।

भावानुवाद-उन लोक प्रदीप समस्त जग-प्रकाशक भगवान् पार्श्वनाथ के ज्ञान और चारित्र के पारगामी महायशस्वी 'केशीकुमार श्रमण' शिष्य थे।

3 केशी श्रमण का सशिष्य श्रावस्ती मे पदार्पण

मूल गाथा- ओहिणाणसुए बुद्धे, सीससघसमाउले।
गामाणुगाम रीयते, सावत्थि णगरिमागए॥3॥

सस्कृत छाया- अवधिज्ञानश्रुताभ्या बुद्ध, शिष्यसघसमाकुल।
ग्रामानुग्राम रीयमाण, श्रावस्तीं नगरीमागत ॥३॥

अन्वयार्थ-ओहिणाण-अवधिज्ञान, सुए-श्रुत ज्ञान से, बुद्धे-तत्त्वो को जानने वाले, सीस सघ-शिष्य समुदाय से, समाउले-व्याप्त, (आकीर्ण) गामाणुगाम-ग्रामानुग्राम, रीयते-विचरते हुए श्रमण केशी कुमार, साव्वत्थि-श्रावस्ती नामक, णगरि-नगरी मे, आगए-पधारे।

भावानुवाद-वे अवधिज्ञान और श्रुतज्ञान-मतिज्ञान से युक्त तत्त्वज्ञ थे। अपने शिष्य सघ से परिवृत्त ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वे श्रावस्ती नगरी मे आए।

4 नगरी मे ठहरने के स्थान का वर्णन

मूल गाथा- तिंदुय णाम उज्जाण, तम्मी णगरमण्डले।
फासुए सिज्जसथारे, तत्थ वासमुवागए॥4॥

सस्कृत छाया- तिन्दुक नामोद्यान, तस्मिन् नगरमण्डले।
प्रासुके शय्यासस्तारे, तत्र वासमुपागत ॥४॥

अन्वयार्थ-तम्मि-उस, णगरमडले-नगर के समीप, तिदुय-तिन्दुक, णाम-नाम का, उज्जाण-उद्यान था, तत्थ-वहा, फासुए-प्रासुक, (जीव रहित) सिज्ज-शय्या, सथारे-सस्तारक पर, वास-निवास (अवस्थान) को, उवागए-प्राप्त हुए (ठहरे)।

भावानुवाद-उस नगरी के समीप तिन्दुक नामक स्थान-उद्यान था। वहा प्रासुक-जीव जन्तु रहित निर्दोष शय्या और सस्तारक-पीढ-फलग से युक्त स्थान मे वे ठहर गए।

5 वर्द्धमान तीर्थंकर भगवान् महावीर का शासन

मूल गाथा- अह तेणेव कालेण, धम्मतित्थयरे जिणे।
भगव वद्धमाणि त्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए॥5॥

सस्कृत छाया- अथ तस्मिन्नेव काले, धर्मतीर्थकरो जिन।
भगवान् वर्धमान इति, सर्वलोक विश्रुत ॥५॥

अन्वयार्थ-अह-अनन्तर, तेणेव-उसी, कालेण-काल मे, धम्मतित्थयर-धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, जिण-रागद्वेष को जीतने वाले, भगव-भगवान्, वद्धमाणि त्ति-वर्द्धमान इस नाम से, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक मे विस्सुए-विश्रुतरूप से प्रसिद्ध थे।

भावानुवाद-इधर उसी समय मे धर्मतीर्थ के सस्थापक जिन-वीतरागी भगवान् वर्द्धमान समस्त लोक म विख्यात थे।

6 प्रधान शिष्य गौतम स्वामी का वर्णन

मूल गाथा- तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे।
भगव गोयमे णाम, विज्जाचरणपारगे ॥६॥

सस्कृत छाया- तस्य लोकप्रदीपस्य,आसीच्छिष्यो महायशा ।
भगवान् गौतमो नाम, विद्याचरणपारग ॥६॥

अन्वयार्थ-लोगपईवस्स-लोक मे दीपक के समान, तस्स-उस, (भगवान वर्द्धमान के) विज्जा-विद्या, (और) चरण-चारित्र, के पारगे-पारगामी, महायसे-महायशस्वी, भगव-भगवान्, गोयमे-गौतम, सीसे-शिष्य, आसी-थे।

भावानुवाद-उन लोक प्रदीप भगवान् वर्द्धमान के ज्ञान और चारित्र के पारगामी महायशस्वी शिष्य भगवान् गौतम थे।

7 गौतम स्वामी की विद्या और चारित्र के साथ प्रभाविकता का दिग्दर्शन

मूल गाथा- बारसगविऊ बुद्धे, सीससघसमाउले।
गामाणुगाम रीयते, सेऽवि सावत्थिमागए॥७॥

सस्कृत छाया- द्वादशाङ्गविद् बुद्ध , शिष्यसघसमाकुल ।
ग्रामानुग्राम रीयमाण सोऽपि श्रावस्तीमागत ॥७॥

अन्वयार्थ-बारसग-द्वादशाग के, विऊ-ज्ञाता, बुद्धे-तत्वज्ञानी, सीस संघ-शिष्य समुदाय से, समाउले-व्याप्त, गामाणुगाम-ग्रामानुग्राम, रीयते-विचरते हुए, सेऽवि-वे (गौतम स्वामी) भी, सावत्थि-श्रावस्ती नगरी में, आगए-पधारे।

भावानुवाद-बारह अगों के ज्ञाता, तत्त्वज्ञानी गौतम भी शिष्य सघ से परिवृत्त ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी मे आये।

8 गौतम गणधर का भी सशिष्य श्रावस्ती मे पर्दापण

मूल गाथा- कोट्ठग णाम उज्जाण, तम्मि णगरमण्डले।
फासुए सिज्जसथारे, तत्थ वासमुवागए॥८॥

सस्कृत छाया- कोष्ठक नामोद्यान, तस्मिन्नगरमण्डले।
प्रासुके शय्यासस्तारे, तत्र वासमुपागत ॥८॥

अन्वयार्थ-तम्मि-उस, णगरमडले-श्रावस्ती नगरी के समीप, कोट्ठग-कोष्ठक, णाम-नाम का, उज्जाण-उद्यान था, तत्थ-वहा, फासुए-प्रासुक (जीव रहित), सिज्ज-शय्या, सथारे-सस्तारक में, वास-निवास का, उवागए-प्राप्त किया।

भावानुवाद-उस श्रावस्ती नगरी के निकट कोष्ठक नामक उद्यान था, वे गौतम स्वामी वहा प्रासुक शय्या एव सस्तारक से युक्त स्थान मे ठहर गए।

9 दोनों के दान्त और समाहित चित होने का वर्णन

मूल गाथा- केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे।
उभओवि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया॥९॥

सस्कृत छाया- केशीकुमार श्रमण, गौतमश्च महायशा।
उभावपि तत्र व्यहार्ष्टाम्, आलीनौ सुसमाहितौ॥९॥

अन्वयार्थ-महायसे-महान् यशस्वी, केसी कुमार-केशी कुमार, समणे-श्रमण, य-और, गोयमे-गौतम स्वामी, उभओ-दोनो ही, तत्थ-वहा, (श्रावस्ती नगरी मे) विहरिंसु-विचरते थे, (वे दोनो) अल्लीणा-इन्द्रियो को वश म रखने वाले, (तीन गुप्तियो से गुप्त) सुसमाहिया-समाधि से युक्त थे।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण एव महायशस्वी गौतम-दोनो ही आत्मलीन और सुसमाहित-सम्यक् समाधि से सम्पन्न होकर वहा विचरते थे।

10 दोनो के शिष्य समूह के अन्त करण मे शका उत्पन्न

मूल गाथा- उभओ सीससघाण, सजयाण तवस्सिण।
तत्थ चिंता समुप्पण्णा, गुणवताण ताइण॥१०॥

सस्कृत छाया- उभयो शिष्यसघाना, सयताना तपस्विनाम्।
तत्र चिन्ता समुत्पन्ना, गुणवता त्रायिणाम्॥१०॥

अन्वयार्थ-उभओ-दोनो के, सजयाण-सयत, तवस्सिण-तपस्वी, गुणवताण-गुणवान्, (और) ताइण-छह काय जीवो के रक्षक, सीस सघाण-शिष्य समूह को, (मन म) तत्थ-वहा पर चिता-चिन्ता, समुप्पण्णा-उत्पन्न हुई कि-

भावानुवाद-उन दोनो के सयमी, तपस्वी, गुण सम्पन्न और षट्काय सरक्षक शिष्य-समुदाय को चिन्तन-सशय उत्पन्न हुआ कि-

11 सन्देह अथवा शका के सम्बन्ध म विचार

मूल गाथा- केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो व केरिसो।
आयारधम्मपणिही, इमा वा सा व केरिसी॥११॥

सस्कृत छाया- कीदृशो वाय धर्म, अय धर्मो वा कीदृश।
आचारधर्मप्रणिधि, अय वा सा वा कीदृश॥११॥

अन्वयार्थ-इमो-यह, हमारा धम्मो-धर्म, केरिसो-कैसा है, वा-और, इमो-यह इनका, धम्मो-धर्म, केरिसो-कैसा है, वा-तथा, इमा-यह हमारी, आयार-आचार, धम्म-धर्म, पणिहि-प्रणिधि केरिसि-कैसी है व-और सा-

उनकी (आचार धर्म प्रणिधि कैसी है?)

भावानुवाद-'यह कैसा धर्म है? और यह कैसा धर्म है? यह हमारी आचार-प्रणिधि-धर्म साधना की व्यवस्था कैसी है और यह इनकी व्यवस्था कैसी है?'

12 सदेहो का स्पष्टीकरण

मूल गाथा- **चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पचसिक्खिओ।**
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी॥१२॥

संस्कृत छाया- **चातुर्यामश्च यो धर्म , योऽय पचशिक्षित ।**
देशितो वर्धमानेन, पार्श्वेण च महामुनिना॥१२॥

अन्वयार्थ-महामुणी-महामुनि, पासेण-पार्श्वनाथ ने, जो-जो, चाउज्जामो-चतुर्याम रूप, धम्मो-धर्म, देसिओ-कहा है, य-और, वद्धमाणेण-वर्द्धमान स्वामी ने, जो-जो, इमो-यह, पचसिक्खिओ-पाच शिक्षा रूप धर्म कहा है।

भावानुवाद-'महामुनि पार्श्वनाथ के द्वारा देशित-प्रतिपादित यह चतुर्याम धर्म है और यह महामुनीश्वर वर्द्धमान द्वारा प्रणीत पच-शिक्षात्मक धर्म है।'

13 दोनो तीर्थों के अन्तर पर चिन्तन

मूल गाथा- **अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सतरुत्तरो।**
एगकज्जपवण्णाण, विसेसे किण्णु कारण॥१३॥

संस्कृत छाया- **अचेलकश्च यो धर्म , योऽय सान्तरोत्तर ।**
एककार्यप्रपन्नयो , विशेषे कि नु कारणम्॥१३॥

अन्वयार्थ-(भगवान् वर्धमान स्वामी ने) जो-जो, अचेलगो-अचेलक-अल्प मूल्य वस्त्र रूप धम्मो-धर्म कहा है, य-और, (भगवान् पार्श्वनाथ ने) जो-जो, इमो-यह, सतरोत्तरो-बहुमूल्य अथवा प्रधान वस्त्ररूप धर्म कहा है, तो एगकज्ज-एक ही कार्य में, पवण्णाण-प्रवृत्त दोना के बाह्य आचार में, विसेसे-इस विशेष अन्तर का, किण्णु-क्या, कारण-कारण है?

भावानुवाद-प्रभु महावीर ने जो यह अचलेक श्वेत एव अल्प वस्त्र वाला धर्म बताया है और भगवान् पार्श्वनाथ ने जो यह सन्तरुत्तरो-वर्णादियुक्त बहुमूल्य वस्त्र रखने वाला धर्म बताया है, तो एक ही कार्य उद्देश्य म प्रवृत्त इन दोनों के बाह्य आचार मे इस विशेष अन्तर का क्या कारण है?

14 शिष्यो के तर्कानुसार केशी गौतम मिलन

मूल गाथा- **अह ते तत्थ सीसाण, विण्णाय पवितक्किय।**
समागमे कयमई, उभओ केसिगोयमा॥१४॥

संस्कृत छाया- अथ तौ तत्र शिष्याणां, विज्ञाय प्रवितर्कितम्।
समागमे कृतमती, उभौ केशिगौतमौ ॥१४॥

अन्वयार्थ-अह-इसके बाद, तत्थ-वहा पर, सीसाण-अपने शिष्यो की, पवितक्किय-प्रवितर्कित, (तर्करूप शका) को, विण्णाय-जानकर, ते-उन, केसीगोयमा-केशी स्वामी (और) गौतम स्वामी, उभओ-दोनो ने, समागमे-परस्पर मिलने का, कयमई-विचार किया।

भावानुवाद-तदनन्तर केशी और गौतम दोनो ने ही अपने शिष्यो के शकायुक्त विचार विमर्श को जानकर परस्पर मिलने का विचार किया।

15 सत्पुरुषोचित गुण-समुदाय का दिग्दर्शन

मूल गाथा- गोयमे पडिरुवण्णू, सीससघसमाउले।
जेट्ठ कुलमवेक्खतो, तिदुय वणमागओ ॥१५॥

संस्कृत छाया- गौतम प्रतिरूपज्ञ, शिष्यसघसमाकुल।
ज्येष्ठ कुलमपेक्षमाण, तिन्दुक वनमागत ॥१५॥

अन्वयार्थ-(केशी कुमार को) जेट्ठ-ज्येष्ठ, कुल-कुल का, अवेक्खतो-मानकर, पडिरूवण्णू-प्रतिरूपज्ञ, (विनय धर्म के ज्ञाता) गोयमे-गौतम स्वामी, सीससघ-शिष्य समुदाय से, समाउले-व्याप्त, तिदुय-तिदुक, वण-वन (उद्यान) मे, आगओ-आए।

भावानुवाद-केशी कुमार को ज्येष्ठ कुल का मानकर यथोचित विनय व्यवहार से परिचित गौतम अपने शिष्य सघ के साथ तिन्दुक वन मे आये।

16 केशी कुमार श्रमण की विशिष्ट योग्यता का परिचय

मूल गाथा- केसीकुमार समणे, गोयम दिस्समागय।
पडिरुव पडिवत्ति, सम्म सपडिवज्जई ॥१६॥

संस्कृत छाया- केशीकुमार श्रमण, गौतम दृष्ट्वागतम्।
प्रतिरूपा प्रतिपत्तिं, सम्यक् सप्रतिपद्यते ॥१६॥

अन्वयार्थ-केसी कुमार-केशी कुमार, समण-श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी को, आगय-आते हुए, दिस्स-देखकर, (बहुमानपूर्वक) पडिरूव-प्रतिरूप, पडिवत्ति-प्रतिपत्ति, (सत्कार-सम्मान) सम्म-सम्यक् प्रकार से, सपडिवज्जइ-करने लगे।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण गौतम को आते देख कर बहुमान पूर्वक उनकी प्रतिरूप प्रतिपत्ति-सत्कार सम्मान किया।

17 केशीकुमार द्वारा किये गए सन्मान का वर्णन

मूल गाथा- पलाल फासुय, पचम कुसतणाणि य।
गोयमस्स णिसेज्जाए, खिप्प सपणामए॥१७॥

सस्कृत छाया- पलाल प्रासुक तत्र, पचम कुशतृणानि च।
गौतमस्य निषद्यायै, क्षिप्र सप्रणामयति॥१७॥

अन्वयार्थ-(केशी कुमार श्रमण ने) तत्थ-वहीं, गोयमस्स-गौतमस्वामी के, णिसेज्जाए-बैठने के लिए, फासुय-प्रासुक, पलाल-पलाल, (शाली, व्रीहि, कोद्रव, राल यह चार) य-और, पचम-पाचवा, कुसतणाणि-डाभ के तृण, (ये पाच प्रकार के पलाल), खिप्प-शीघ्र, सपणामए-समर्पित किये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण ने वहा गौतम स्वामी को बैठने के लिए आसन हेतु शीघ्र ही प्रासुक पलाल अर्थात शाली, व्रीहि, कोद्रव और राल यह चार और पाचवा कुश-तृण, यह पाच प्रकार का पलाल समर्पित किया।

18 केशी एव गौतम को चन्द्रमा एव सूर्य से उपमा

मूल गाथा- केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे।
उभओ णिसण्णा सोहति, चदसूरसमप्पभा॥

सस्कृत छाया- केशीकुमार श्रमण, गौतमश्च महायशा।
उभौ निषण्णौ शोभेते, चन्द्रसूर्यसमप्रभौ॥१८॥

अन्वयार्थ-केसीकुमार समणे-केशी कुमार श्रमण, य-और, महायस-महायशस्वी, गोयमे-गौतम स्वामी, उभओ-दोनो ही, णिसण्णा-बैठे हुए, चदसूर-चन्द्र और सूर्य की, समप्पभा-प्रभा के समान, सोहति-शोभित हो रहे थे।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण और महायशस्वी गौतम दोनो ही बैठे हुए चन्द्र और सूर्य की प्रभा के समान सुशोभित हो रहे थे।

19 दोनो महात्माओ के समागम पर हजारो दर्शकगण

मूल गाथा- समागया बहू तत्थ, पासडा कोउगा मिया।
गिहत्थाण अणेगाओ, साहस्सीओ समागया॥१९॥

सस्कृत छाया- समागता बहवस्तत्र, पाषण्डा कौतुकान्मृगा।
गृहस्थानामनेकाना, सहस्त्राणि समागतानि॥१९॥

अन्वयार्थ-(उन दोनों महामुनियो के सवाद सुनने के लिए) गिहत्थाण-गृहस्था के, अणेगाओ-अनेक, साहस्सीओ-सहस्त्र, (हजारो गृहस्थ) तत्थ-वहा पर, समागया-आये, (और) बहू-बहुत से, मिया-मृग के समान अज्ञानी पासडा-पाखडी लोग (और) कोउगा-कुतूहली लोग भी, समागया-वहा आकर इकट्ठे हुए।

भावानुवाद-उस समय वहा पर उन दोनों महामुनियो के सवाद को सुनने के लिए तथा कुछ कौतूहल की अबोध

दृष्टि से वहा दूसरे सम्प्रदायो के बहुत पाषण्ड-परिव्राजक और हजारो गृहस्थ भी आ गए।

20 देव दानवादि का भी समागम

मूल गाथा- देवदाणवगधव्वा, जक्खरक्खसकिण्णरा।
अदिस्साण च भूयाण, आसी तत्थ समागमो॥२०॥

सस्कृत छाया- देवदानवगन्धर्वा, यक्षराक्षसकिन्नरा।
अदृश्याना च भूतानाम्, आसीत् तत्र समागम ॥२०॥

अन्वयार्थ-देव-देवता, दाणव-दानव, गधव्वा-गन्धर्व, जक्ख-यक्ष, रक्खस-राक्षस, (और) किण्णरा-किन्नर देव, च-और, अदिस्साण-अदृश्य, भूयाण-भूता का, तत्थ-वहा, समागमो-समागम, आसी-लग गया।

भावानुवाद-वहा तिन्दुक वन मे देव (ज्योतिषी और वैमानिक) दानव (भवनपति) गन्धर्व-यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि व्यन्तर देव और अदृश्य भूतो का एक बडा समागम हो गया-वहा मेला-सा लग गया।

21 महर्षियों के धार्मिक वार्तालाप का आरम्भ

मूल गाथा- पुच्छामि ते महाभाग! केसी गोयममब्बवी।
तओ केसि बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥२१॥

सस्कृत छाया- पृच्छामि त्वा महाभाग! केशी गौतममब्रवीत्।
तत केशिन ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥२०॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण ने, गोयम-गौतम स्वामी से, अब्बवी-कहा कि, महाभाग-हे महाभाग! (मैं) ते-आप से, पुच्छामि-कुछ पूछना चाहता हू, तओ-तब, केसि-केशी कुमार श्रमण के, बुवत-(इस प्रकार) बोलने पर, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण ने गौतम स्वामी से कहा-'हे महाभाग! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हू।' तब केशी श्रमण के इस प्रकार बोलने पर गौतम स्वामी कहने लगे-

22 भाषा समिति का सुन्दरता से उपयोग

मूल गाथा- पुच्छ भते! जहिच्छ ते, केसि गोयम-मब्बवी।
तओ केसी अणुण्णाए, गोयम इणमब्बवी॥२२॥

सस्कृत छाया- पृच्छतु भदन्त! यथेष्ट ते, केशिन गौतमोऽब्रवीत्।
तत केशी अनुज्ञात, गौतममिदमब्रवीत्॥२२॥

अन्वयार्थ-गोयम-गौतम स्वामी ने, केसि-केशी कुमार, श्रमण को, अब्बवी-कहा कि, भंते-हे भगवन्, ते-आपकी, जहिच्छ-जैसी इच्छा हो, पुच्छ-पूछिए तओ-इसके बाद, अणुण्णाए-अनुमति प्राप्त होने पर केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इण-इस प्रकार अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-गौतम स्वामी ने केशी कुमार श्रमण को कहा-'हे भन्ते! आपकी जैसी इच्छा हो पूछिये।' अनन्तर अनुज्ञा प्राप्त करके केशीकुमार श्रमण ने गौतम को इस प्रकार कहा-

23 सख्यागत भेद ही शका का स्पष्ट कारण

मूल गाथा- चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी॥२३॥

सस्कृत छाया- चातुर्यामश्च यो धर्म , योऽय पचशिक्षित ।
देशितो वर्धमानेन, पार्श्वेण च महामुनिना॥२३॥

अन्वयार्थ-प्रथम प्रश्न महामुणी-महामुनि, पासेण-भगवान् पार्श्वनाथ ने, जो-जो, चाउज्जामो-चातुर्याम, धम्मो-धर्म, देसिओ-कहा है, य-और, वद्धमाणेण-भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, जो-जो, इमो-यह, पचसिक्खिओ-पाच शिक्षात्मक धर्म (कहा है)।

भावानुवाद-"महामुनि भगवान् पारवनाथ ने यह चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया है और यह जो पच शिक्षात्मक धर्म है इसका प्रतिपादन महामुनि वर्द्धमान ने किया है।"

24 धार्मिक नियमो मे भेद का कारण क्या?

मूल गाथा- एगकज्जपवण्णाण, विसेसे किण्णु कारण।
धम्मे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ ण ते॥२४॥

सस्कृत छाया- एककार्यप्रपन्नयो , विशेषे किन्नु कारणम्।
धर्मे द्विविधे मेधाविन्! कथ विप्रत्ययो न ते॥२४॥

अन्वयार्थ-एगकज्ज-एक ही कार्य के लिए, पवण्णाण-प्रवृत्त होने पर, परस्पर विसेसे-इस विशेष भिन्नता का, किण्णु-क्या, कारण-कारण है, (इस) दुविहे-दो प्रकार के, धम्मे-धर्म के विषय में, मेहावी-हे मेधाविन्! कह-क्या, ते-आपको, विप्पच्चओ-सशय, ण-नहीं होता।

भावानुवाद-"एक ही उद्देश्य के लिए प्रवृत्त होने पर परस्पर इस विशेषता-भिन्नता का क्या कारण है? हे मेधाविन्! इन दो प्रकार के धर्मों म क्या आपको सदेह-सशय नहीं होता है?"

25 धम तत्त्व का ज्ञान सम्यक् बुद्धि द्वारा

मूल गाथा- तओ केसि बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी।
पण्णा समिक्खए धम्म, तत्त तत्तविणिच्छिय॥२५॥

सस्कृत छाया- तत केशिन ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्।
प्रज्ञा समीक्षते धर्म, तत्त्व तत्त्वविनिश्चयम्॥२५॥

अन्वयार्थ-तओ-इसके बाद, वुवत-इस प्रकार कहते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे कि, तत्त-जीवादि तत्त्वो का, विणिच्छिय-जिसम निश्चय किया जाता है, धम्म-(ऐसे) धर्म, तत्त-तत्त्व को, पण्णा-बुद्धि ही, समिक्खए-ठीक समझ सकती है, (अर्थात् बुद्धि के द्वारा ही तत्त्वो का निर्णय होता है)।

भावानुवाद-अनन्तर केशी के कहने पर गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा-''जीवादि तत्त्वो का निश्चय निर्णय जिसमे होता है, ऐसे धर्मतत्त्व की समीक्षा सम्यक् प्रज्ञा के द्वारा होती है अर्थात् बुद्धि से तत्त्व का निणय होता है।''

26 गौतम द्वारा केशी की प्रथम पृच्छा का समाधान

मूल गाथा- **पुरिमा उज्जुजडा उ, वक्कजडा य पच्छिमा।**
मज्झिमा उज्जुपण्णा उ, तेण धम्मे दुहा कए॥२६॥

सस्कृत छाया- **पूर्वे ऋजुजडास्तु, वक्रजडाश्च पश्चिमा ।**
मध्यमा ऋजुप्रज्ञास्तु, तेन धर्मो द्विधा कृत ॥२६॥

अन्वयार्थ-पुरिमा-पहले तीर्थंकर के साधु, उ-तो, उज्जुजडा-ऋजुजड होते हैं, उ-और, पच्छिमा-अन्तिम तीर्थंकर के साधु, वक्कजडा-वक्रजड होते हैं, य-और, मज्झिमा-मध्य के, (बाईस तीर्थंकरा के) साधु, उज्जुपण्णा-ऋजुप्राज्ञ होते हैं, तेण-इसलिए, धम्मे-धर्म, दुहा-दो प्रकार का, कए-कहा गया है।

भावानुवाद-प्रथम-पहले तीर्थंकर के व्यक्ति (साधु) ऋजु और जड भद्र और अल्पमति होते हैं और पश्चिम-अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र-कुटिल और जड-मद मति होते हैं। बीच के बाईस तीथकरो के साधु ऋजु प्राज्ञ-सरल और प्रतिभा सम्पन्न होते हैं। अत यह दो प्रकार का धर्म कहा है।

27 दुर्विशोध्य दुरनुपालक अथवा सुविशोध्य सुपालक कल्प

मूल गाथा- **पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाण दुरणुपालओ।**
कप्पो मज्झिमगाण तु, सुविसोज्झो सुपालओ॥२७॥

सस्कृत छाया- **पूर्वेषा दुर्विशोध्यस्तु, चरमाणा दुरनुपालक ।**
कल्पो मध्यमगाना तु, सुविशोध्य सुपालक ॥२७॥

अन्वयार्थ-पुरिमाण-पहले तीर्थंकर के साधुआ का, कप्पो-कल्पाचार, दुव्विसोज्झो-दुर्विशोध्य है, उ-और, चरिमाण-अन्तिम तीर्थंकर के साधुओ का आचार, दुरणुपालओ-दुरनुपालक है, तु-और मज्झिमगाण-मध्य के (बाइस तीर्थंकरों) के साधुओ का आचार, सुविसोज्झो-सुविशोध्य (और), सुपालओ-सुपालक है।

भावानुवाद-प्रथम तीर्थंकर के साधुओ द्वारा कल्प-आचार धर्म की समझ दुर्विशोध्य है अर्थात् यथावत् समझना कठिन होता है। अन्तिम तीर्थंकर के साधुआ द्वारा आचार का यथा निर्दिष्ट पालन कठिन है। मध्यवर्ती तीर्थंकरो के मुनियो द्वारा आचार का यथावत् ग्रहण और पालन सरल होता है।

28 केशी कुमार द्वारा दूसरे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥२८॥

सस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मे, त मा कथय गौतम!॥२८॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा-बुद्धि, साहु-साधु-श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा इमो-यह ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम! त-उसके विषय मे भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया। हे गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।"

29 लिग विषयक दूसरे प्रश्न का वर्णन

मूल गाथा- अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सतरुत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा॥२९॥

सस्कृत छाया- अचेलकश्च यो धर्म , योऽय सान्तरोत्तर ।
देशितो वर्धमानेन, पार्श्वेण च महायशसा॥२९॥

अन्वयार्थ-द्वितीय प्रश्न महाजसा-महायशस्वी, वद्धमाणेण-भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, जो-जो यह, अचेलगो-अचेलक रूप, धम्मो-धर्म, देसिओ-कहा है, य-और, पासेण-भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने, जो-जो, इमो-यह, सतरुत्तरो-बहुमूल्य वस्त्र रूप धर्म, कहा है।

भावानुवाद-"महामुनीश्वर वर्द्धमान ने यह अचेलक धर्म निरूपित किया है और महायशस्वी पार्श्वनाथ ने जो यह सान्तरोत्तर (रगीन और बहुमूल्य वस्त्र वाला) धर्म बताया है।"

30 दोनो महापुरुषो के लिग-वेश म अन्तर क्यो

मूल गाथा- एगकज्जपवण्णाण, विसेसे किण्णु कारण।
लिगे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ ण ते॥३०॥

सस्कृत छाया- एककार्यप्रपन्नयो , विशेषे किन्नु कारणम्।
लिगे द्विविधे मेधाविन्, कथ विप्रत्ययो न ते॥३०॥

अन्वयार्थ-एगकज्ज-एक ही कार्य के लिए, पवण्णाण-प्रवृत्ति करने वालों में परस्पर, विसेसे-विशेष अन्तर का, किण्णु-क्या, कारण-कारण है? मेहावि-हे मेधाविन्! लिगे-बाह्य वेश के, दुविह-दो भेद होने से, कि-क्या, ते-आपके मन में, विप्पच्चओ-विप्रत्यय-सदेह, ण-उत्पन्न नहीं होता है?

भावानुवाद-एक ही कार्य-लक्ष्य के प्रति समर्पित दोनो मे इस भिन्नता का कारण क्या है? हे मेधाविन् प्रज्ञापुरुष। लिग-बाह्य-वेश के इन दो भेदो पर आपको सशय कैसे नहीं होता है?

31 गौतम द्वारा केशी श्रमण की द्वितीय पृच्छा का समाधान

मूल गाथा- केसिमेव बुवाण तु, गोयमो इणमब्बवी।
विण्णाणेण समागम्म, धम्मसाहणमिच्छिय॥३१॥

सस्कृत छाया- केशिनमेव ब्रुवाण तु, गौतम इदमब्रवीत्।
विज्ञानेन समागम्य, धर्मसाधनमीप्सितम्॥३१॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, बुवाण-कहते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे (भगवान् पार्श्वनाथ एव भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने), विण्णाणेण-विज्ञान, (केवल ज्ञान) द्वारा समागम्म-जानकर (यथायोग्य), धम्मसाहण-धर्म साधन, (धर्म उपकरणो) की, इच्छिय-आज्ञा दी है।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण के यह कहने पर गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा-"भगवान् पार्श्वनाथ एव प्रभु महावीर द्वारा विज्ञान-केवल ज्ञान से धर्म के साधनो-उपकरणो को अच्छी तरह जानकर ही उनकी अनुज्ञा दी गई है।"

32 सयम निर्वाह रक्षा एव पहचान हेतु लिग का प्रयोजन

मूल गाथा- पच्चयत्थ च लोगस्स, णाणाविह विगप्पण।
जत्तत्थ गहणत्थ च, लोगे लिगपओयण॥३२॥

सस्कृत छाया- प्रत्ययार्थं च लोकस्य, नानाविधविकल्पनम्।
यात्रार्थं ग्रहणार्थं च, लोके लिगप्रयोजनम्॥३२॥

अन्वयार्थ-णाणाविह-नानाविध, विगप्पण-विकल्पन, (अर्थात् अनेक उपकरणो की कल्पना) लोगस्स-लोगों की, पच्चयत्थ-प्रतीति (एव विश्वास) के लिए, च-और, जत्तत्थ-सयम यात्रा के निर्वाह हेतु, च-तथा, गहणत्थं-ज्ञानादि ग्रहण हेतु, लोगे-लोक में, लिग-लिग (वेष) का, पओयण-प्रयोजन है।

भावानुवाद-अनेक प्रकार के उपकरणो की कल्पना लोगो की प्रतीति के लिए है। सयम यात्रा के निर्वाह हेतु तथा ज्ञानादिग्रहण हेतु अथवा "मैं श्रमण हू" इसका सतत बोध रखने के लिए लोक में लिग का प्रयोजन है।

33 मोक्ष के सद्भूत साधन ज्ञान दर्शन और चारित्र

मूल गाथा- अह भवे पइण्णा उ, मोक्खसब्भूयसाहणा।
णाण च दसण चेव, चरित्त चेव णिच्छए॥३३॥

सस्कृत छाया- अथ भवेत्प्रतिज्ञा तु, मोक्षसद्भूतसाधनानि।
ज्ञान च दर्शन चैव, चारित्र चैव निश्चये॥३३॥

28 केशी कुमार द्वारा दूसरे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥२८॥

सस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मे, त मा कथय गौतम!॥२८॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा-बुद्धि, साहु-साधु-श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम! त-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया। हे गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।"

29 लिग विषयक दूसरे प्रश्न का वर्णन

मूल गाथा- अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सतरुत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा॥२९॥

सस्कृत छाया- अचेलकश्च यो धर्म, योऽय सान्तरोत्तर।
देशितो वर्धमानेन, पार्श्वेण च महायशसा॥२९॥

अन्वयार्थ-द्वितीय प्रश्न महाजसा-महायशस्वी, वद्धमाणेण-भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, जो-जो यह, अचेलगो-अचेलक रूप, धम्मो-धर्म, देसिओ-कहा है, य-और, पासेण-भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने, जो-जो, इमो-यह, सतरुत्तरो-बहुमूल्य वस्त्र रूप धर्म, कहा है।

भावानुवाद-"महामुनीश्वर वर्द्धमान ने यह अचेलक धर्म निरूपित किया है और महायशस्वी पार्श्वनाथ ने जो यह सान्तरोत्तर (रगीन और बहुमूल्य वस्त्र वाला) धर्म बताया है।"

30 दोनो महापुरुषो के लिग-वेश मे अन्तर क्यो

मूल गाथा- एगकज्जपवण्णाण, विसेसे किण्णु कारण।
लिगे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ ण ते॥३०॥

सस्कृत छाया- एककार्यप्रपन्नयो, विशेषे किन्नु कारणम्।
लिगे द्विविधे मेधाविन्, कथ विप्रत्ययो न ते॥३०॥

अन्वयार्थ-एगकज्ज-एक ही कार्य के लिए पवण्णाण-प्रवृत्ति करने वालो में परस्पर, विसेसे-विशेष अन्तर का, किण्णु-क्या, कारणं-कारण है? मेहावि-हे मेधाविन्!, लिगे-बाह्य वेश के, दुविहे-दो भेद होने से किं-क्या ते-आपके मन में विप्पच्चओ-विप्रत्यय-सदेह, ण-उत्पन्न नहीं होता है?

भावानुवाद-एक ही कार्य-लक्ष्य के प्रति समर्पित दोनो मे इस भिन्नता का कारण क्या है? हे मेधाविन् प्रज्ञापुरुष। लिग-बाह्य-वेश के इन दो भेदो पर आपको सशय कैसे नहीं होता है?

31 गौतम द्वारा केशी श्रमण की द्वितीय पृच्छा का समाधान

मूल गाथा- केसिमेव बुवाण तु, गोयमो इणमब्बवी।
विण्णाणेण समागम्म, धम्मसाहणमिच्छिय ॥31॥

सस्कृत छाया- केशिनमेव ब्रुवाण तु, गौतम इदमब्रवीत्।
विज्ञानेन समागम्य, धर्मसाधनमीप्सितम् ॥३१॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, बुवाण-कहते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे (भगवान् पार्श्वनाथ एव भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने), विण्णाणेण-विज्ञान, (केवल ज्ञान) द्वारा समागम्म-जानकर (यथायोग्य), धम्मसाहण-धर्म साधन, (धर्म उपकरणो) की, इच्छिय-आज्ञा दी हैं।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण के यह कहने पर गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा-"भगवान् पार्श्वनाथ एव प्रभु महावीर द्वारा विज्ञान-केवल ज्ञान से धर्म के साधनो-उपकरणो को अच्छी तरह जानकर ही उनकी अनुज्ञा दी गई है।"

32 सयम निर्वाह रक्षा एव पहचान हेतु लिग का प्रयोजन

मूल गाथा- पच्चयत्थ च लोगस्स, णाणाविह विगप्पण।
जत्तत्थ गहणत्थ च, लोगे लिगपओयण ॥32॥

सस्कृत छाया- प्रत्ययार्थं च लोकस्य, नानाविधविकल्पनम्।
यात्रार्थं ग्रहणार्थं च, लोके लिगप्रयोजनम् ॥३२॥

अन्वयार्थ-णाणाविह-नानाविध, विगप्पण-विकल्पन, (अर्थात् अनेक उपकरणो की कल्पना) लोगस्स-लागो की, पच्चयत्थ-प्रतीति (एव विश्वास) के लिए, च-और, जत्तत्थ-सयम यात्रा के निर्वाह हेतु, च-तथा, गहणत्थ-ज्ञानादि ग्रहण हेतु, लोगे-लोक मे, लिग-लिग (वेष) का, पओयण-प्रयोजन है।

भावानुवाद-अनेक प्रकार के उपकरणो की कल्पना लोगो की प्रतीति के लिए है। सयम यात्रा के निर्वाह हेतु तथा ज्ञानादिग्रहण हेतु अथवा "मैं श्रमण हू" इसका सतत बोध रखने के लिए लोक मे लिग का प्रयोजन है।

33 मोक्ष के सद्भूत साधन ज्ञान दर्शन और चारित्र

मूल गाथा- अह भवे पइण्णा उ, मोक्खसब्भूयसाहणा।
णाण च दसण चेव, चरित्त चेव णिच्छए ॥33॥

सस्कृत छाया- अथ भवेत्प्रतिज्ञा तु, मोक्षसद्भूतसाधनानि।
ज्ञान च दर्शन चैव, चारित्र चैव निश्चये ॥३३॥

28 केशी कुमार द्वारा दूसरे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥२८॥

सस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मे, त मा कथय गौतम!॥२८॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा-बुद्धि, साहु-साधु-श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम! त-उसके विषय मे भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया। हे गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।"

29 लिग विषयक दूसरे प्रश्न का वर्णन

मूल गाथा- अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सतरुत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा॥२९॥

सस्कृत छाया- अचेलकश्च यो धर्म, योऽय सान्तरोत्तर।
देशितो वर्धमानेन, पार्श्वेण च महायशसा॥२९॥

अन्वयार्थ-द्वितीय प्रश्न महाजसा-महायशस्वी, वद्धमाणेण-भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने, जो-जो यह, अचेलगो-अचेलक रूप, धम्मो-धर्म, देसिओ-कहा है, य-और, पासेण-भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने, जो-जो, इमा-यह, सतरुत्तरो-बहुमूल्य वस्त्र रूप धर्म, कहा है।

भावानुवाद-"महामुनीश्वर वर्द्धमान ने यह अचेलक धर्म निरूपित किया है और महायशस्वी पार्श्वनाथ ने जो यह सान्तरोत्तर (रगीन और बहुमूल्य वस्त्र वाला) धर्म बताया है।"

30 दोनो महापुरुषो के लिग-वेश म अन्तर क्या

मूल गाथा- एगकज्जपवण्णाण, विसेसे किण्णु कारण।
लिगे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ ण ते॥३०॥

सस्कृत छाया- एककार्यप्रपन्नयो, विशेषे किन्नु कारणम्।
लिगे द्विविधे मेधाविन्, कथ विप्रत्ययो न ते॥३०॥

अन्वयार्थ-एगकज्ज-एक ही कार्य के लिए पवण्णाणं-प्रवृत्ति करने वालो में परस्पर विसेसे-विशेष अन्तर का किण्णु-क्या, कारण-कारण है? मेहावि-हे मेधाविन्!, लिग-बाह्य वेश के, दुविहे-दो भेद होने से, कि-क्या ते-आपके मन में, विप्पच्चओ-विप्रत्यय-सदेह, ण-उत्पन्न नहीं होता है?

भावानुवाद-एक ही कार्य-लक्ष्य के प्रति समर्पित दोनो मे इस भिन्नता का कारण क्या है? हे मेधाविन् प्रज्ञापुरुष। लिग-वाह्य-वेश के इन दो भेदो पर आपको सशय कैसे नहीं होता है?

31 गौतम द्वारा केशी श्रमण की द्वितीय पृच्छा का समाधान

मूल गाथा- केसिमेव बुवाण तु, गोयमो इणमब्बवी।
विण्णाणेण समागम्म, धम्मसाहणमिच्छिय ॥31॥

सस्कृत छाया- केशिनमेव बुवाण तु, गौतम इदमब्रवीत्।
विज्ञानेन समागम्य, धर्मसाधनमीप्सितम् ॥31॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, बुवाण-कहते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे (भगवान् पार्श्वनाथ एव भगवान् वर्द्धमान स्वामी ने), विण्णाणेण-विज्ञान, (केवल ज्ञान) द्वारा समागम्म-जानकर (यथायोग्य), धम्मसाहण-धर्म साधन, (धर्म उपकरणों) की, इच्छिय-आज्ञा दी है।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण के यह कहने पर गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा-"भगवान् पार्श्वनाथ एव प्रभु महावीर द्वारा विज्ञान-केवल ज्ञान से धर्म के साधना-उपकरणों को अच्छी तरह जानकर ही उनकी अनुज्ञा दी गई है।"

32 सयम निर्वाह रक्षा एव पहचान हेतु लिग का प्रयोजन

मूल गाथा- पच्चयत्थ च लोगस्स, णाणाविह विगप्पण।
जत्तत्थ गहणत्थ च, लोगे लिगपओयण ॥32॥

सस्कृत छाया- प्रत्ययार्थं च लोकस्य, नानाविधविकल्पनम्।
यात्रार्थं ग्रहणार्थं च, लोके लिगप्रयोजनम् ॥32॥

अन्वयार्थ-णाणाविह-नानाविध, विगप्पण-विकल्पन, (अर्थात् अनेक उपकरणों का कल्पना) लोगस्स-लोगो की, पच्चयत्थ-प्रतीति (एव विश्वास) के लिए, च-और, जत्तत्थ-सयम यात्रा के निर्वाह हेतु, च-तथा, गहणत्थ-ज्ञानादि ग्रहण हेतु लोगे-लोक मे, लिग-लिग (वेष) का पओयण-प्रयोजन है।

भावानुवाद-अनेक प्रकार के उपकरणो की कल्पना लोगो की प्रतीति के लिए है। सयम [illegible] निर्वाह हेतु तथा ज्ञानादिग्रहण हेतु अथवा "मैं श्रमण हू" इसका सतत बोध रखने के लिए लोक में लि[illegible] [illegible] है।

33 मोक्ष के सद्भूत साधन ज्ञान दर्शन और चारित्र

मूल गाथा- अह भवे पइण्णा उ, मोक्खसब्भूयसाहणा।
णाण च दसण चेव, चरित्तं चेव णिच्छए ॥33॥

सस्कृत छाया- अथ भवेत्प्रतिज्ञा तु, मोक्षसद्भूतसाधनानि।
ज्ञान च दर्शन चेव, चारित्र चैव निश्चये ॥33॥

अन्वयार्थ-अह-अय (दोना तीर्थंकरा की), पइण्णा-प्रतिज्ञा, उ-तो यही, भवे-है कि, णिच्छए-निश्चय में मोक्ख-मोक्ष के, सब्भूय-वास्तविक, साहणा-साधन, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, च-और, चरित्त-चारित्र ही है।

भावानुवाद-वास्तव मे दोनो (पार्श्वनाथ एव महावीर) तीर्थंकरो की प्रतिज्ञा-प्ररूपणा तो यही एक ही है कि मोक्ष के वास्तविक साधन ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही है।

34 केशी कुमार द्वारा उत्तर प्राप्ति पर तीसरे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥३४॥

सस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम!॥३४॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयम-हे गौतम, त-उसके विषय में भी, म-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दूर कर दिया है। मेरा और भी सशय है। गौतम! उस विषय मे भी मुझे कहे-मेरा यह सशय भी दूर करे।"

35 शत्रु पर विजय सबधी तीसरे प्रश्न का वर्णन

मूल गाथा- अणेगाण सहस्साण, मज्झे चिट्ठसि गोयमा!
ते य ते अहिगच्छति, कह ते णिज्जिया तुमे॥३५॥

सस्कृत छाया- अनेकाना सहस्राणा, मध्ये तिष्ठसि गौतम।
ते च त्वामभिगच्छन्ति, कथ ते निर्जितास्त्वया॥३५॥

अन्वयार्थ-तीसरा प्रश्न गोयमा-हे गौतम!, आप अणेगाण-अनेक, सहस्साण-हजारो शत्रुओ के, मज्झे-मध्य मे, चिट्ठसि-खडे हो, य-और, ते-वे, तुमे-आपको, अहिगच्छति-जीतना चाहते हैं, ते-आपने ते-उन सबको, कह-कैसे, णिज्जिया-जीत लिया है?

भावानुवाद-"गौतम! आप अनेक सहस्र शत्रुओ के मध्य खडे हैं, ये आपको जीतना चाहते हैं-आक्रमण कर रहे हैं, आपने उन्हें कैसे जीत लिया है?"

36 एक को जीतने पर सभी शत्रुओ पर विजय-गुप्तोपमालकार

मूल गाथा- एगेजिए जिया पच, पंचजिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताण, सव्वसत्तू जिणामह॥३६॥

सस्कृत छाया- एकस्मिन् जिते जिता पञ्च, पञ्चसु जितेषु जिता दश।
दशधा तु जित्वा, सर्वशत्रून् जयाम्यहम्॥३६॥

अन्वयार्थ-एगे-एक के, जिए-जीतने पर, पच-पाच, जिया-जीते गए, (और पाच के) पच जिए-जीतने पर, दस-दस, जिया-जीते गए, उ-और, दसहा-दसा शत्रुआ को, जिणित्ताण-जीत कर, अह-मैंने, सव्वसत्तू-सभी शत्रुओ को, जिणा-जीत लिया है।

भावानुवाद-गणधर गौतम-"एक के जीत लेने पर पाच जीत लिये गय और पाच के जीत लेने पर दस जीते गए। दसो को जीत कर मैंने सभी शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर ली।"

37 पाच और दश शत्रु कौन से है एव किससे विजय प्राप्त की

मूल गाथा- सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
तओ केसि बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥३७॥

सस्कृत छाया- शत्रवश्च इति के उक्ता, केशी गौतममब्रवीत्।
तत केशिन ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥३७॥

अन्वयार्थ-(विपय को स्पष्ट करने हेतु) केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे कि, सत्तू-वे शत्रु, के-कौन से, वुत्ते-कहे गये है? तओ-इसके पश्चात्, तु-उक्त प्रकार से बुवत-प्रश्न करते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-(विपय को स्पष्ट करन हेतु) केशी कुमार श्रमण ने गौतम को पूछा-"ये शत्रु कौन से कहे गये हैं?" इस प्रकार पूछते हुए केशी कुमार श्रमण को गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा-

38 आत्मा कपाय और इन्द्रिया शत्रु रूप है

मूल गाथा- एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इदियाणि य।
ते जिणित्तु जहाणाय, विहरामि अह मुणी॥३८॥

सस्कृत छाया- एक आत्माऽजित शत्रु, कपाया इन्द्रियाणि च।
तान् जित्वा यथान्याय, विहराम्यह मुने।॥३८॥

अन्वयार्थ-मुणी-हे मुने! अजिए-अविजित, (अवशीकृत) एगप्पा-एक अपनी आत्मा ही सत्तू-शत्रु है, य-और, कसाया-कपाय (तथा) इदियाणि-इन्द्रिया भी शत्रु हैं, ते-उनको, जहाणायं-न्यायपूर्वक, जिणित्तु-जीत कर, अह-मैं, विहरामि-विचरता हू।

भावानुवाद-गणधर गौतम-"गौतम स्वामी कहते हैं-हे मुनीश्वर! अविजित अथवा अवशीकृत एक अपनी आत्मा ही शत्रु है। कपाय और इन्द्रिया भी शत्रु हैं। उन्हे जीत कर वश में करके मैं नीति के अनुसार विचरण करता हू।"

39 केशी कुमार द्वारा उत्तर प्राप्ति पर चौथे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥३९॥

संस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे संशयोऽयम्।
अन्योऽपि संशयो मम, तं मां कथय गौतम।।३९।।

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, संसओ-संशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, संसओ-संशय है, गोयम-हे गौतम!, तं-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है, आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी संशय है, उसके विषय में भी मुझे कुछ कहें।"

40 पाश से मुक्त और लघुभूत होकर किस प्रकार विचरना

मूल गाथा- दीसंति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कहं तं विहरसी मुणी।।४०।।

संस्कृत छाया- दृश्यन्ते बहवो लोके, पाशबद्धाः शरीरिणः।
मुक्तपाशो लघुभूतः, कथं त्वं विहरसि मुने।।४०।।

अन्वयार्थ-चौथा प्रश्न केशी कुमार श्रमण पूछते हैं-लोए-लोक में, बहवे-बहुत से, सरीरिणो-प्राणी, पासबद्धा-पाश में बंधे हुए, दीसंति-दिखाई देते हैं, (किन्तु) मुणी-हे मुने!, तं-आप, मुक्क पासो-बन्धन से मुक्त होकर, लहुब्भूओ-(वायु के समान) लघुभूत (हल्के) होकर कहं-कैसे, विहरसि-विचरते हो।

भावानुवाद-केशी कुमार पूछते हैं-"इस संसार में बहुत से सांसारिक प्राणी पाश-बन्धन में बंधे हुए दिखाई देते हैं। हे मुने! आप बन्धन से मुक्त और लघुभूत अप्रतिबद्ध होकर कैसे विचरण करते हो?"

41 पाश छेदन करके मुक्त पाश विचरण

मूल गाथा- ते पासे सव्वसो छित्ता, णिहंतूण उवायओ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी।।४१।।

संस्कृत छाया- तान् पाशान् सर्वशः छित्त्वा, निहत्योपायतः।
मुक्तपाशो लघुभूतः, विहराम्यहं मुने।।४१।।

अन्वयार्थ-गौतम गणधर-मुणी-हे मुने!, उवायओ-उपाय द्वारा, ते-उन, पासे-पाश (बन्धनों) को, सव्वसो-सर्वथा प्रकार से, छित्ता-छेदन कर, एवं णिहंतूण-सर्वथा नाश करके, अहं-मैं मुक्क पासो-मुक्त पाश (बन्धन रहित) होकर, लहुब्भूओ-लघुभूत होकर, विहरामि-विचरता हूँ।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"हे मुनिवर! उन बन्धनों को सर्वथा रूप से काट कर उपायों द्वारा पूर्णतः नष्ट करके मैं बन्धन मुक्त और लघुभूत अप्रतिबद्ध विहारी होकर विचरण करता हूँ।"

42 वे पाश कौन से? केशी कुमार का प्रश्न

मूल गाथा- पासा य इइ के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी।।४२।।

संस्कृत छाया- पाशाश्चेति के उक्ता, केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्।।४२।।

अन्वयार्थ-(विषय को स्पष्ट करने हेतु) य-और, केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-पूछने लगे कि, पासा-वे पाश, के-कौन से, वुत्ता-कहे गये हैं, एव-इस प्रकार, बुवत-प्रश्न करते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"गौतम! वे बन्धन कौन से है? इस प्रकार केशी श्रमण ने गौतम से पूछा। केशी श्रमण के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-

43 राग द्वेषादि स्नेह रूप पाश की भयकरता

मूल गाथा- रागद्दोसादओ तिव्वा, णेहपासा भयकरा।
ते छिंदित्तु जहाणाय, विहरामि जहक्कम।।४३।।

संस्कृत छाया- रागद्वेषादयस्तीव्रा, स्नेहपाशा भयकरा।
तान् छित्त्वा यथान्याय, विहरामि यथाक्रमम्।।४३।।

अन्वयार्थ-तिव्वा-तीव्र, रागद्दोसादओ-राग द्वेष आदि मोह, णेहपासा-(धनधान्य पुत्रादि) स्नेह रूपी पाश, भयकरा-बडे भयकर हैं, ते-उनका, जहाणाय-यथान्याय युक्त, छिंदित्ता-छेदन करके, मैं जहक्कम-यथा क्रम (शान्ति पूर्वक), विहरामि-विचरता हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"तीव्र राग द्वेषादि मोह और स्नेह पाश के भयकर बन्धन हैं, उन्हें यथा न्याय काटकर मैं यथाक्रम नीति-आचार के अनुसार विचरण करता हू।"

44 केशी कुमार द्वारा पचम प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा।।४४।।

संस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम।।४४।।

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु-श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, संसओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी संसओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम, तं-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी संशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।"

45 विष रूप फलो की प्रदाता लता को कैसे उखेड़ा

मूल गाथा- अंतोहिययसंभूया, लया चिट्ठइ गोयमा!
फलेइ विसभक्खीणि, साउ उद्धरिया कहं?॥45॥

सस्कृत छाया- अन्तर्हृदयसंभूता, लता तिष्ठति गौतम!
फलति विषभक्ष्याणि, सा तूद्धृता कथम् (उत्पाटिता)? ॥45॥

अन्वयार्थ-पाचवा प्रश्न गोयमा-हे गौतम!, हियय-हृदय के, अंतो-भीतर, संभूया-उत्पन्न हुई, लया-एक लता चिट्ठइ-ठहरती है, (वह) विस-विष के समान, भक्खीणि-जहरीले, फलेइ-फल देती है, साउ-उसे (आपने) कहं-किस प्रकार, उद्धरिया-उखाड फैंका है?

भावानुवाद-"हे गौतम! हृदय के अन्तर उत्पन्न हुई एक लता है, वह लता विषैले फल देती है, उस लता को आपने किस प्रकार उखाड फैंका है?"

46 सर्व प्रकार से छेदन, भेदन करके उखाड़ना

मूल गाथा- तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं।
विहरामि जहाणायं, मुक्कोमि विसभक्खणं॥46॥

सस्कृत छाया- तां लतां सर्वतश्छित्त्वा, उद्धृत्य समूलिकाम्।
विहरामि यथान्याय, मुक्तोऽस्मि विषभक्षणात्॥46॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-तं-उस, लयं-लता को, सव्वसो-सर्वथा, छित्ता-छेदन कर, समूलियं-मूल सहित उद्धरित्ता-उखाड कर, जहाणायं-यथा न्याय युक्त, विहरामि-विचरता हू (एव), विस-विष समान फल, भक्खणं-खाने से, मुक्कोमि-मैं मुक्त हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"उस लता को पूर्णत काटकर तथा जड से समूल नष्ट करके मैं नीति धर्म के अनुसार विचरण करता हू, अत मैं विषफल खाने से मुक्त रहता हू।"

47 वह लता कौन सी

मूल गाथा- लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥47॥

सस्कृत छाया- लता चेति का उक्ता, केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेवं ब्रुवन्तं तु, गौतम इदमब्रवीत्॥47॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयमं-गौतम स्वामी को, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे कि, सम्म-

वह लता, का-कौन सी, वुत्ता-कही गई है, एव-इस प्रकार, बुवत-कहते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गायमो-गौतम स्वामी, इणा-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"केशी कुमार श्रमण गौतम से पूछने लगे कि वह लता कौनसी है?" इस प्रकार केशी कुमार के पूछने पर गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा-

48 तृष्णा रूप विष लता का सेवन

मूल गाथा- भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।
तमुच्छित्तु जहाणाय, विहरामि महामुणी।॥४८॥

संस्कृत छाया- भवतृष्णा लतोक्ता, भीमा भीमफलोदया।
तामुच्छित्त्य यथान्याय, विहरामि महामुने।॥४८॥

अन्वयार्थ-महामुणी-हे महामुनि, भव-ससार मे, तण्हा-तृष्णा रूपी, लया-लता, वुत्ता-कही गयी है, भीमा-वह अत्यन्त भयकर है, (तथा) भीम-भयकर, फलोदया-फल देने वाली है, त-उसको जहाणाय-यथा न्याय युक्त, उच्छित्तु-उच्छेदन करके, विहरामि-(शान्ति पूर्वक) विचरता हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"हे महामुने। इस ससार मे तृष्णा रूपी महालता कही गई है, जो भयकर है और भयकर दु खद फल देने वाली है, उसका समूलोच्छेद करके मैं नीतिपूर्वक विचरण करता हू।"

49 केशी कुमार द्वारा छठे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा।॥४९॥

संस्कृत छाया- साधु गौतम। प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम।॥४९॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम!, ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम, त-उसके विषय म भी मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय में भी मुझे कुछ कहे।"

50 सप्रज्वलित अग्नि की शाति कैसे

मूल गाथा- संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा।
जे डहति सरीरत्था, कह विज्झाविया तुमे॥५०॥

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहें।"

45 विष रूप फलो की प्रदाता लता को कैसे उखेड़ा

मूल गाथा- अतोहिययसभूया, लया चिट्ठइ गोयमा!
फलेइ विसभक्खीणि, साउ उद्धरिया कह?॥४५॥

सस्कृत छाया- अन्तर्हृदयसभूता, लता तिष्ठति गौतम।
फलति विषभक्ष्याणि, सा तूद्धृता कथम् (उत्पाटिता)?॥४५॥

अन्वयार्थ-पाचवा प्रश्न गोयमा-हे गौतम!, हियय-हृदय के, अतो-भीतर, सभूया-उत्पन्न हुई, लया-एक लता, चिट्ठइ-ठहरती है, (वह) विस-विष के समान, भक्खीणि-जहरीले, फलेइ-फल देती है, साउ-उसे (आपने), कह-किस प्रकार, उद्धरिया-उखाड फैंका है?

भावानुवाद-"हे गौतम! हृदय के अन्तर उत्पन्न हुई एक लता है, वह लता विषैले फल देती है, उस लता को आपने किस प्रकार उखाड फैंका है?"

46 सर्व प्रकार से छेदन, भेदन करके उखाड़ना

मूल गाथा- त लय सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलिय।
विहरामि जहाणाय, मुक्कोमि विसभक्खण॥४६॥

सस्कृत छाया- ता लता सर्वतश्छित्त्वा, उद्धृत्य समूलिकाम्।
विहरामि यथान्याय, मुक्तोऽस्मि विषभक्षणात्॥४६॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-त-उस, लय-लता को, सव्वसो-सर्वथा, छित्ता-छेदन कर, समूलियं-मूल सहित, उद्धरित्ता-उखाड कर, जहाणाय-यथा न्याय युक्त, विहरामि-विचरता हू (एव), विस-विष समान फल, भक्खण-खाने से, मुक्कोमि-मै मुक्त हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"उस लता को पूर्णत काटकर तथा जड से समूल नष्ट करके मैं नीति धर्म के अनुसार विचरण करता हू, अत मैं विषफल खाने से मुक्त रहता हू।"

47 वह लता कौन सी

मूल गाथा- लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥४७॥

सस्कृत छाया- लता येति का उक्ता, केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥४७॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी को, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे कि, लया-

वह लता, का-कौन सी, वुत्ता-कही गई है, एव-इस प्रकार, बुवत-कहते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण का, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"केशी कुमार श्रमण गौतम से पूछने लगे कि यह लता कौनसी है?" इस प्रकार केशी कुमार के पूछने पर गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा-

48 तृष्णा रूप विष लता का सेवन

मूल गाथा- भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।
तमुच्छित्तु जहाणाय, विहरामि महामुणी!॥४८॥

सस्कृत छाया- भवतृष्णा लतोक्ता, भीमा भीमफलोदया।
तामुच्छित्त्य यथान्याय, विहरामि महामुने।॥४८॥

अन्वयार्थ-महामुणी-हे महामुनि, भव-ससार मे, तण्हा-तृष्णा रूपी, लया-लता, वुत्ता-कही गयी है, भीमा-यह अत्यन्त भयकर है, (तथा) भीम-भयकर, फलोदया-फल देने वाली है, त-उसको, जहाणाय-यथा न्याय युक्त उच्छित्तु-उच्छेदन करके, विहरामि-(शान्ति पूर्वक) विचरता हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"हे महामुने! इस ससार मे तृष्णा रूपी महालता कही गई है, जो भयकर है और भयकर दु खद फल देने वाली है, उसका समूलोच्छेद करक मैं नीतिपूर्वक विचरण करता हू।"

49 केशी कुमार द्वारा छठे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥४९॥

सस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम!॥४९॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम!, ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णा-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम, त-उसके विषय मे भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।"

50 सप्रज्वलित अग्नि की शाति कैसे

मूल गाथा- सपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा!।
जे डहति सरीरत्था, कह विज्झाविया तुमे॥५०॥

संस्कृत छाया- सप्रज्वलिता घोरा , अग्नयस्तिष्ठन्ति गौतम।
ये दहन्ति शरीरस्था , कथ विध्यापितास्त्वया? ॥५०॥

अन्वयार्थ-छठा प्रश्न गोयमा-हे गौतम, घोरा-भयकर, सपज्जलिया-सप्रज्वलित, अग्गी-एक अग्नि, चिट्ठइ-ठहरती है, जे-जो, सरीरत्था-शरीर मे (रह कर), डहति-(आत्मगुणो को) जलाती है, तुमे-आपने, कह-किस प्रकार, विज्झाविया-(उसे) बुझाया है?

भावानुवाद-हे गौतम! महाप्रचण्ड अग्निया जल रही हैं, जो अन्तर मे रहकर जीवो को जलाती हैं, उन्हे आपने कैसे बुझाया?

51 महामेघ के प्रसूत से उत्तम जल का ग्रहण करना

मूल गाथा- महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तम।
सिचामि सयय तें उ, सित्ता णो व डहति मे॥५१॥

संस्कृत छाया- महामेघप्रसूतात्, गृहीत्वा वारि जलोत्तमम्।
सिञ्चामि सतत देह, सिक्ता नो च दहन्ति माम्॥५१॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-महामेह-महामेघ के, प्पसूयाओ प्रसूत से (उत्पन्न हुई), जलुत्तम-जलो मे उत्तम, वारि-जल को, गिज्झ-ग्रहण करके मैं, ते-उस (अग्नि) को, सयय-सतत-निरतर, सिचामि-सींचता हू (अत) सित्ता-सिचन की हुई (वह अग्नि), मे-मुझे (मेरे आत्मगुणो को), णो-नहीं, डहति-जलाती है।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"महामेघ से प्रसूत पवित्र जल को ग्रहण करके मैं उन अग्निया का अनवरत सिचन करता हू, अत सिचन की गई अग्निया मुझे नहीं जलाती।"

52 अग्निया कौनसी

मूल गाथा- अग्गी य इइ के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
केसीमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥५२॥

संस्कृत छाया- अग्नयश्चेति के उक्ता , केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥५२॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-पूछने लगे कि, अग्गी-वह अग्नि, के-कौनसी, वुत्ता-कही गई है, य-और, (महामेघ व जल कौनसा है?) एव-इस प्रकार, बुवत-बोलते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"वे अग्निया कौनसी हैं?" केशी कुमार श्रमण ने गौतम को पूछा। केशी कुमार श्रमण के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-

53 कषाय रूप अग्नि को श्रुत शीलतप रूप जल से सींचना

मूल गाथा- कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जलं।
सुयधाराभिहया संता, भिण्णा हु ण डहंति मे॥५३॥

संस्कृत छाया- कषाया अग्नय उक्ता, श्रुतशीलतपो जलम्।
श्रुतधाराभिहता सन्त, भिन्ना खलु न दहन्ति माम्॥५३॥

अन्वयार्थ-कसाया-कषाय रूप, अग्गिणो-अग्नि, वुत्ता-कही गई है, सुय-श्रुत, सील-शील, तवो-तप रूप जल-जल कहा गया है, सुय धाराभिहया-श्रुत धारा से ताडित, संता-की हुई, भिण्णा-भिन्न (नष्ट) की हुई, (यह अग्नि), हु-निश्चय ही, मे-मुझे, ण-नहीं, डहंति-जलाती है

भावानुवाद-गौतम गणधर-''कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) अग्निया है। श्रुतज्ञान, श्रुतादि रूप जलधारा से सिंचित की जाने पर शील-सदाचार और तप रूप जल है, से बुझी हुई या नष्ट हुई अग्नि मुझे नहीं जलाती है।''

54 केशी कुमार द्वारा सातवे प्रश्न का उल्लेख

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥५४॥

संस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे संशयोऽयम्।
अन्योऽपि संशयो मम, तं मा कथय गौतम!॥५४॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु-श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, संसओ-संशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झं-मेरा, अण्णोवि-और भी, संसओ-संशय है, गोयमा-हे गौतम! तं-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-''हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी संशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।''

55 अश्व निग्रह सम्बन्धी प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम! आरुढो कहं, तेण ण हीरसि॥५५॥

संस्कृत छाया- अयं साहसिको भीमः, दुष्टाश्वः परिधावति।
यस्मिन् गौतम! आरूढः कथं, तेन न ह्रियसे॥५५॥

अन्वयार्थ-सातवा प्रश्न-गोयम-हे गौतम! अयं-यह साहसिओ-साहसिक, भीमो-भयंकर, दुट्ठस्सो-दुष्ट अश्व परिधावई-भागता है, जंसि-उस पर, आरूढो-चढ़े हुए (आप), तेण-उस (घोड़े) द्वारा, दुष्ट मार्ग में कहं-कैसे (क्यों), ण-नहीं हीरसि-ले जाये जाते हो?

भावानुवाद-हे गौतम! यह साहसिक, भयकर दुष्ट अश्व दौड रहा है, आप उस पर चढे हुए हैं। वह आपको उन्म
मे कैसे नहीं ले जाता है?

56 श्रुतरूप रस्सी से बाधना

मूल गाथा- पहावत णिगिण्हामि, सुयरस्सी समाहिय।
ण मे गच्छइ उम्मग्ग, मग्ग च पडिवज्जई॥५६॥

सस्कृत छाया- प्रधावन्त निगृह्णामि, श्रुतरश्मिसमाहितम्।
न मे गच्छत्युन्मार्गं, मार्गं च प्रतिपद्यते॥५६॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-(हे मुनि), पहावत-भागते हुए (दुष्ट घोडे) को, सुय रस्सी-श्रुत ज्ञान रूपी रस्सी समाहिय-बाध कर, णिगिण्हामि-मैं वश कर लेता हू वह, मे-मुझे, उम्मग्ग-उन्मार्ग मे, ण-नहीं, गच्छइ-ले ज है, च-किन्तु, मग्ग-सन्मार्ग मे ही, पडिवज्जई-प्रवृत्ति कराता है।

भावानुवाद-गौतम स्वामी-"हे मुने! उन्मार्ग की ओर गतिशील उस अश्व को श्रुतज्ञान रूपी लगाम बाधकर मैं व मे कर लेता हू। अत मेरा वशीकृत वह अश्व मुझे उन्मार्ग पर नहीं ले जाता है, अपितु वह सन्मार्ग पर ही चल है।"

57 वह अश्व कौनसा है?

मूल गाथा- आसे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥५७॥

सस्कृत छाया- अश्वश्चेति क उक्त , केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥५७॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे, य-वि आसे-वह अश्व (घोडा), के-कौनसा, वत्ते-कहा गया है?, एव-इस प्रकार, बुवत-बोलते हुए, केसि-केश कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम [illegible] प्रकार, अब्बवी-कहने [illegible]

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण ने गौ[illegible] अश्व कौनसा क[illegible] श्रमण के पूछने प
गौतम ने यो कहा-

अन्वयार्थ-मणो-मन रूपी, साहसिओ-साहसिक, भीमो-भयकर, दुट्ठस्सो-दुष्ट घोडा, परिधावई-भागता रहता है, त-उस (मनरूपी घोडे) को, सम्म-सम्यक् प्रकार से, धम्म सिक्खाइ-धर्म की शिक्षा द्वारा, कथग-जातिवान घोडे की तरह, णिगिण्हामि-मैं वश मे रखता हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-''मन ही साहसी, भयकर, दुष्ट अश्व है जो चारो तरफ दौडता है, उसे मैं सम्यग् प्रकार से वश म करता हू। धर्म शिक्षा के द्वारा अश्व उत्तम जाति का हो गया है।''

59 केशी कुमार द्वारा उत्तर प्राप्ति पर आठवे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥५९॥

सस्कृत छाया- साधु गौतम। प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम।॥५९॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम!, ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम!, त-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-''हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है, आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।''

60 सन्मार्ग पर चलते हुए भ्रष्टता न पाना

मूल गाथा- कुप्पहा बहवे लोए, जेसि णासति जतुणो।
अद्धाणे कह वट्टतो, त ण णाससि गोयमा!॥६०॥

सस्कृत छाया- कुपथा बहवो लोके, यैर्नश्यन्ति जन्तव।
अध्वनि कथ वर्तमान, त्व न नश्यसि गौतम।॥६०॥

अन्वयार्थ-आठवा प्रश्न-लोए-लोक मे, बहवे-बहुत से, कुप्पहा-कुपथ (कुमार्ग) हैं, जेहिं-जिनसे जतुणो-प्राणी, णासति-नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, गोयमा-हे गौतम, अद्धाणे-सुमार्ग में वट्टतो-रहे हुए, त-आप कह-कैसे, ण णाससि-(सुमार्ग से) नष्ट-भ्रष्ट नहीं होते हो?

भावानुवाद-हे गौतम! इस लोक में कुमार्ग बहुत हैं जिनसे लोग मार्गच्युत हो जाते हैं, भटक जाते हैं। सन्मार्ग पर चलते हुए आप कैसे नहीं भटकते हैं?

61 आत्मा सुमार्ग और कुमार्ग की ज्ञाता

मूल गाथा- जे य मग्गेण गच्छति, जे य उम्मग्गपट्ठिया।
ते सव्वे वेइया मज्झ, तो ण णस्सामह मुणी!॥६१॥

भावानुवाद-हे गौतम! यह साहसिक, भयकर दुष्ट अश्व दौड रहा है, आप उस पर चढे हुए हैं। यह आपको उन्मार्ग मे कैसे नहीं ले जाता है?

56 श्रुतरूप रस्सी से बाधना

मूल गाथा- पहावत णिगिण्हामि, सुयरस्सी समाहिय।
ण मे गच्छइ उम्मग्ग, मग्ग च पडिवज्जई॥५६॥

सस्कृत छाया- प्रधावन्त निगृह्णामि, श्रुतरश्मिसमाहितम्।
न मे गच्छत्युन्मार्गं, मार्गं च प्रतिपद्यते॥५६॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-(हे मुनि), पहावत-भागते हुए (दुष्ट घोडे) को, सुय रस्सी-श्रुत ज्ञान रूपी रस्सी से, समाहिय-बाध कर, णिगिण्हामि-मैं वश कर लेता हू वह, मे-मुझे, उम्मग्ग-उन्मार्ग मे, ण-नहीं, गच्छइ-ले जाता है, च-किन्तु, मग्ग-सन्मार्ग मे ही, पडिवज्जई-प्रवृत्ति कराता है।

भावानुवाद-गौतम स्वामी-"हे मुने! उन्मार्ग की ओर गतिशील उस अश्व को श्रुतज्ञान रूपी लगाम बाधकर मैं वश मे कर लेता हू। अत मेरा वशीकृत वह अश्व मुझे उन्मार्ग पर नहीं ले जाता है, अपितु वह सन्मार्ग पर ही चलाता है।"

57 वह अश्व कौनसा है?

मूल गाथा- आसे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥५७॥

सस्कृत छाया- अश्वश्चेति क उक्त, केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥५७॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अव्ववी-कहने लगे, य-कि, आसे-वह अश्व (घोडा), के-कौनसा, वुत्ते-कहा गया है?, एव-इस प्रकार, बुवत-बोलते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अव्ववी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण ने गौतम से पूछा-"यह अश्व कौनसा कहा गया है?" केशी श्रमण के पूछने पर गौतम ने यो कहा-

58 मन रूपी अश्व निग्रह

मूल गाथा- मणो साहसीओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
त सम्म तु णिगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कथग॥५८॥

सस्कृत छाया- मन साहसिको भीम, दुष्टाश्व परिधावति।
त सम्यक् तु निगृह्णामि, धर्मशिक्षायै कथक (इव)॥५८॥

अन्वयार्थ-मणो-मन रूपी, साहसिओ-साहसिक, भीमो-भयकर, दुट्ठस्सो-दुष्ट घोडा, परिधावई-भागता रहता है, त-उस (मनरूपी घोडे) को, सम्म-सम्यक् प्रकार से, धम्म सिक्खाइ-धर्म की शिक्षा द्वारा, कथग-जातिवान घोडे की तरह, णिगिण्हामि-मैं वश मे रखता हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-''मन ही साहसी, भयकर, दुष्ट अश्व है जो चारा तरफ दौडता है, उसे मै सम्यग् प्रकार से वश मे करता हू। धर्म शिक्षा के द्वारा अश्व उत्तम जाति का हो गया है।''

59 केशी कुमार द्वारा उत्तर प्राप्ति पर आठवे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥५९॥

सस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम!॥५९॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गोतम!, ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गोतम!, त-उसके विषय मे भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-''हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है, आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।''

60 सन्मार्ग पर चलते हुए भ्रष्टता न पाना

मूल गाथा- कुप्पहा बहवे लोए, जेसि णासति जतुणो।
अद्धाणे कह वट्टतो, त ण णाससि गोयमा!॥६०॥

सस्कृत छाया- कुपथा बहवो लोके, यैर्नश्यन्ति जन्तव।
अध्वनि कथ वर्तमान, त्व न नश्यसि गौतम!॥६०॥

अन्वयार्थ-आठवा प्रश्न-लोए-लोक मे, बहवे-बहुत से, कुप्पहा-कुपथ (कुमार्ग) हैं, जहिं-जिनसे, जतुणो-प्राणी, णासति-नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, गोयमा-हे गौतम, अद्धाणे-सुमार्ग मे, वट्टतो-रहे हुए, त-आप, कह-कैसे, ण णाससि-(सुमार्ग से) नष्ट-भ्रष्ट नहीं होते हो?

भावानुवाद-हे गौतम! इस लोक मे कुमार्ग बहुत है जिनसे लोग मार्गच्युत हो जाते हैं, भटक जाते हैं। सन्मार्ग पर चलते हुए आप कैसे नहीं भटकते हैं?

61 आत्मा सुमार्ग और कुमार्ग की ज्ञाता

मूल गाथा- जे य मग्गेण गच्छति, जे य उम्मग्गपट्ठिया।
ते सव्वे वेइया मज्झं, तो ण णस्सामह मुणी!॥६१॥

भावानुवाद-हे गौतम! यह साहसिक, भयकर दुष्ट अश्व दौड रहा है, आप उस पर चढे हुए हैं। यह आपको उन्मार्ग मे कैसे नहीं ले जाता है?

56 श्रुतरूप रस्सी स बाधना

मूल गाथा- पहावंत णिगिण्हामि, सुयरस्सी समाहिय।
ण मे गच्छइ उम्मग्ग, मग्ग च पडिवज्जई॥५६॥

सस्कृत छाया- प्रधावन्त निगृह्णामि, श्रुतरश्मिसमाहितम्।
न मे गच्छत्युन्मार्गं, मार्गं च प्रतिपद्यते॥५६॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-(हे मुनि), पहावत-भागते हुए (दुष्ट घोडे) को, सुय रस्सी-श्रुत ज्ञान रूपी रस्सी से समाहिय-बाध कर, णिगिण्हामि-मैं वश कर लेता हू वह, मे-मुझे, उम्मग्ग-उन्मार्ग म, ण-नहीं, गच्छइ-ल जात है, च-किन्तु, मग्ग-सन्मार्ग मे ही, पडिवज्जई-प्रवृत्ति कराता है।

भावानुवाद-गौतम स्वामी-"हे मुने! उन्मार्ग की ओर गतिशील उस अश्व को श्रुतज्ञान रूपी लगाम बाधकर मैं वश मे कर लेता हू। अत मेरा वशीकृत वह अश्व मुझे उन्मार्ग पर नहीं ले जाता है, अपितु वह सन्मार्ग पर ही चलात है।"

57 वह अश्व कौनसा है?

मूल गाथा- आसे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥५७॥

सस्कृत छाया- अश्वश्चेति क उक्त, केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥५७॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे, य-कि, आसे-वह अश्व (घोडा), के-कौनसा, वुत्ते-कहा गया है?, एव-इस प्रकार, बुवत-बोलते हुए, केसिं-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण ने गौतम से पूछा-"यह अश्व कौनसा कहा गया है?" केशी श्रमण के पूछने पर गौतम ने यो कहा-

58 मन रूपी अश्व निग्रह

मूल गाथा- मणो साहसीओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
त सम्म तु णिगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कथग॥५८॥

सस्कृत छाया- मन साहसिको भीम, दुष्टाश्व परिधावति।
त सम्यक् तु निगृह्णामि, धर्मशिक्षायै कथक (इव)॥५८॥

अन्वयार्थ-मणो-मन रूपी, साहसिओ-साहसिक, भीमो-भयकर, दुट्ठस्सो-दुष्ट घोडा, परिधावई-भागता रहता है, त-उस (मनरूपी घोडे) को, सम्म-सम्यक् प्रकार से, धम्म सिक्खाइ-धर्म की शिक्षा द्वारा, कथग-जातिवान घोडे की तरह, णिगिण्हामि-मैं वश मे रखता हू।

भावानुवाद-गौतम गणधर-''मन ही साहसी, भयकर, दुष्ट अश्व है जो चारो तरफ दौडता है, उसे मैं सम्यग् प्रकार से वश मे करता हू। धर्म शिक्षा के द्वारा अश्व उत्तम जाति का हो गया है।''

59 केशी कुमार द्वारा उत्तर प्राप्ति पर आठवे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- **साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।**
अण्णोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥५९॥

सस्कृत छाया- **साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।**
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम!॥५९॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम!, ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम!, त-उसके विषय मे भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-''हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है, आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय में भी मुझे कुछ कहे।''

60 सन्मार्ग पर चलते हुए भ्रष्टता न पाना

मूल गाथा- **कुप्पहा बहवे लोए, जेसि णासति जतुणो।**
अद्धाणे कह वट्टतो, त ण णाससि गोयमा!॥६०॥

सस्कृत छाया- **कुपथा बहवो लोके, यैर्नश्यन्ति जन्तव।**
अध्वनि कथ वर्तमान, त्व न नश्यसि गौतम!॥६०॥

अन्वयार्थ-आठवा प्रश्न-लोए-लोक मे, बहवे-बहुत से, कुप्पहा-कुपथ (कुमार्ग) हैं, जेहिं-जिनसे, जतुणो-प्राणी, णासति-नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, गोयमा-हे गौतम, अद्धाणे-सुमार्ग मे वट्टतो-रहे हुए, त-आप, कह-कैसे, ण णाससि-(सुमार्ग से) नष्ट-भ्रष्ट नहीं होते हो?

भावानुवाद-हे गौतम! इस लोक मे कुमार्ग बहुत है जिनसे लोग मार्गच्युत हो जाते हैं, भटक जाते हैं। सन्मार्ग पर चलते हुए आप कैसे नहीं भटकते है?

61 आत्मा सुमार्ग और कुमार्ग की ज्ञाता

मूल गाथा- **जे य मग्गेण गच्छति, जे य उम्मग्गपट्ठिया।**
ते सव्वे वेइया मज्झ, तो ण णस्सामह मुणी!॥६१॥

सस्कृत छाया- ये य मार्गेण गच्छन्ति, ये चोन्मार्गप्रस्थिता ।
ते सर्वे विदिता मया, तस्मान्न नश्याम्यह मुने ।।६१।।

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-जे-जो, मग्गेण-सुमार्ग से, गच्छति-जाते हैं, य-और, जे-जो, उम्मग्ग-उन्मार्ग में, पट्ठिया-प्रवृत्ति करते हैं, ते-उन, सव्वे-सबको, मज्झ-मैंने, वेइया-जान लिया है, तो-इसलिए, मुणी-हे मुने, अह-मैं, णस्सा-(सुमार्ग से) नष्ट-भ्रष्ट, ण-नहीं होता हू?

भावानुवाद-गणधर गौतम-"जो सन्मार्ग पर चलते हैं और जो उन्मार्ग पर चलते हैं, उन सबको मैं जानता हू। अत हे मुने! मैं नहीं भटकता हू।"

62 सुमार्ग और कुमार्ग कौनसा?

मूल गाथा- मग्गे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी ।।६२।।

सस्कृत छाया- मार्गश्चेति क उक्त, केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत् ।।६२।।

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे कि, मग्गे-वह, सुमार्ग (और) कुमार्ग, के-कौनसा, वुत्ते-कहा गया है, एव-इस प्रकार, बुवर्त-बोलते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-केशी कुमार श्रमण ने गौतम को पूछा-"मार्ग किसे कहते हैं?" केशी कुमार के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-

63 कुदर्शनी पाखण्डी एवं जिन भाषित सन्मार्ग

मूल गाथा- कुप्पवयणपासडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्ग तु जिणक्खाय, एस मग्गे हि उत्तमे ।।६३।।

सस्कृत छाया- कुप्रवचनपाषण्डिन, सर्वे उन्मार्गप्रस्थिता ।
सन्मार्गं तु जिनाख्यातम्, एष मार्गो ह्युत्तम ।।६३।।

अन्वयार्थ-कुप्पवयण-कुप्रवचन को मानने वाले, पासडी-पाखण्डी लोग, सव्वे-ये सभी, उम्मग्ग-उन्मार्ग में, पट्ठिया-प्रवृत्ति करने वाले हैं, जिणक्खाय-जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित मार्ग, तु-ही, सम्मग्ग-सन्मार्ग है, एस-यह, मग्गो-मार्ग, हि-ही, उत्तमे-उत्तम है।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"जो कुप्रवचन-मिथ्या दर्शनो को मानने वाले पाखण्डी हैं, ये सभी उन्मार्ग के पथिक हैं। जिनेन्द्र भगवान् द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही सन्मार्ग है और यही उत्तम मार्ग है।"

64 केशी कुमार द्वारा नवमे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोऽवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा।।६४।।

सस्कृत छाया- साधु गौतम प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
अन्योऽपि सशयो मम, त मा कथय गौतम।।६४।।

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम। ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, ससओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम, त-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय मे भी मुझे कुछ कहे।"

65 डूबते प्राणियो के लिए शरण रूप गतिरूप क्या?

मूल गाथा- महाउदगवेगेण वुज्झमाणाण पाणिण।
सरण गइ पइट्ठ य, दीवं कं मण्णसी? मुणी!।।६५।।

सस्कृत छाया- महोदकवेगेन वाह्यमानाना प्राणिनाम्।
शरण गति प्रतिष्ठा च, द्वीप क मन्यसे? मुने।।६५।।

अन्वयार्थ-नौवा प्रश्न-केशी कुमार श्रमण-मुणी-हे मुने! महाउदग-पानी के महान्, वेगेण-प्रवाह से, वुज्झमाणाण-बहाये जाते हुए, पाणिण-प्राणियो के लिए, सरण-शरण रूप, य-तथा, गइ-गति रूप (और) पइट्ठ-प्रतिष्ठा रूप, दीव-द्वीप (आप) क-किसे, मण्णसि-मानते हैं?

भावानुवाद-"मुनि प्रवर! जल के प्रबल वेग से बहते हुए-डूबते हुए प्राणियो के लिए शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप द्वीप स्थान आप किसे मानते हैं?"

66 विस्तृत महाद्वीप पर जल के वेग का अप्रभावी होना

मूल गाथा- अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ ण विज्जई।।६६।।

सस्कृत छाया- अस्त्येको महाद्वीप, वारिमध्ये महालय।
महोदकवेगस्य, गतिस्तत्र न विद्यते।।६६।।

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-वारिमज्झे-पानी के मध्य मे, महालओ-बहुत ऊचा (विस्तृत), एगो-एक, महादीवो-महाद्वीप, अत्थि-है, तत्थ-उस पर, महा उदग-पानी के महान्, वेगस्स-प्रवाह की, गई-गति, ण विज्जई-नहीं है।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"जल के मध्य एक बहुत ऊचा विशाल महाद्वीप है, यहा जल के प्रबल प्रवाह का वेग नहीं है।"

सस्कृत छाया- ये य मार्गेण गच्छन्ति, ये घोन्मार्गप्रस्थिता ।
ते सर्वे विदिता मया, तस्मान्न नश्याम्यह मुने ।॥६१॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-जे-जो, मग्गेण-सुमार्ग से, गच्छति-जाते हैं, य-और, जे-जो, उम्मग्ग-उन्मार्ग में पट्ठिया-प्रवृत्ति करते हैं, ते-उन, सव्वे-सबको, मज्झ-मैंने, वेइया-जान लिया है, तो-इसलिए, मुणी-हे मुने, अह-मैं, णस्सा-(सुमार्ग से) नष्ट-भ्रष्ट, ण-नहीं होता हू?

भावानुवाद-गणधर गौतम-"जो सन्मार्ग पर चलते हैं और जो उन्मार्ग पर चलते हैं, उन सबको मैं जानता हू। अत हे मुने! मैं नहीं भटकता हू।"

62 सुमार्ग और कुमार्ग कौनसा?

मूल गाथा- मग्गे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी॥६२॥

सस्कृत छाया- मार्गश्चेति क उक्त , केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत्॥६२॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयमं-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे कि, मग्गे-वह, सुमार्ग (और) कुमार्ग, के-कौनसा, वुत्ते-कहा गया है, एव-इस प्रकार, बुवत-बोलते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-केशी कुमार श्रमण ने गौतम को पूछा-"मार्ग किसे कहते हैं?" केशी कुमार के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-

63 कुदर्शनी पाखण्डी एव जिन भाषित सन्मार्ग

मूल गाथा- कुप्पवयणपासडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्ग तु जिणक्खाय, एस मग्गे हि उत्तमे॥६३॥

सस्कृत छाया- कुप्रवचनपाषण्डिन , सर्वे उन्मार्गप्रस्थिता ।
सन्मार्गं तु जिनाख्यातम्, एष मार्गो ह्युत्तम ॥६३॥

अन्वयार्थ-कुप्पवयण-कुप्रवचन को मानने वाले, पासडी-पाखण्डी लोग, सव्वे-वे सभी, उम्मग्ग-उन्मार्ग में, पट्ठिया-प्रवृत्ति करने वाले हैं, जिणक्खाय-जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित मार्ग, तु-ही, सम्मग्ग-सन्मार्ग है, एस-यह, मग्गो-मार्ग, हि-ही, उत्तमे-उत्तम है।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"जो कुप्रवचन-मिथ्या दर्शनों को मानने वाले पाखण्डी हैं, वे सभी उन्मार्ग के पथिक हैं। जिनेन्द्र भगवान् द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही सन्मार्ग है और यही उत्तम मार्ग है।"

64 केशी कुमार द्वारा नवमे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे संसओ इमो।
अण्णोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥६४॥

संस्कृत छाया- साधु गौतम प्रज्ञा ते, छिन्नो मे संशयोऽयम्।
अन्योऽपि संशयो मम, तं मां कथय गौतम!॥६४॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम! ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, संसओ-संशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झं-मेरा, अण्णोवि-और भी, संसओ-संशय है, गोयमा-हे गौतम, तं-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। गौतम! मेरा और भी संशय है, उसके विषय में भी मुझे कुछ कहें।"

65 डूबते प्राणियों के लिए शरण रूप गतिरूप क्या?

मूल गाथा- महाउदगवेगेणं बुज्झमाणाणं पाणिणं।
सरणं गई पइट्ठ य, दीवं कं मण्णसी? मुणी!॥६५॥

संस्कृत छाया- महोदकवेगेन वाह्यमानानां प्राणिनाम्।
शरणं गतिं प्रतिष्ठां च, द्वीपं कं मन्यसे? मुने!॥६५॥

अन्वयार्थ-नौवां प्रश्न-केशी कुमार श्रमण-मुणी-हे मुने! महाउदग-पानी के महान्, वेगेण-प्रवाह से, बुज्झमाणाणं-बहाये जाते हुए, पाणिणं-प्राणियों के लिए, सरणं-शरण रूप, य-तथा, गई-गति रूप (और) पइट्ठ-प्रतिष्ठा रूप, दीवं-द्वीप (आप) कं-किसे, मण्णसि-मानते हैं?

भावानुवाद-"मुनि प्रवर! जल के प्रबल वेग से बहते हुए-डूबते हुए प्राणियों के लिए शरण, गति और प्रतिष्ठा रूप द्वीप स्थान आप किसे मानते हैं?"

66 विस्तृत महाद्वीप पर जल के वेग का अप्रभावी होना

मूल गाथा- अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ ण विज्जई!॥६६॥

संस्कृत छाया- अस्त्येको महाद्वीपः, वारिमध्ये महालयः।
महोदकवेगस्य, गतिस्तत्र न विद्यते॥६६॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-वारिमज्झे-पानी के मध्य में, महालओ-बहुत ऊंचा (विस्तृत), एगो-एक, महादीवो-महाद्वीप, अत्थि-है, तत्थ-उस पर, महा उदग-पानी के महान्, वेगस्स-प्रवाह की, गई-गति, ण विज्जई-नहीं है।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"जल के मध्य एक बहुत ऊंचा विशाल महाद्वीप है, वहां जल के प्रबल प्रवाह का वेग नहीं है।"

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे कि, णावा-वह नौका, का-कौनसी, वुत्ता-कही गई है, एव-इस प्रकार, बुवत-बोलते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-केशी कुमार श्रमण ने गौतम स्वामी से पूछा-"वह नौका कौनसी है?" केशी श्रमण के पूछने पर गौतम ने कहा-

73 शरीर रूप नौका पर जीव रूपी नाविक

मूल गाथा- सरीरमाहु णावत्ति, जीवो वुच्चइ णाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, ज तरंति महेसिणो॥७३॥

संस्कृत छाया- शरीरमाहुर्नौरिति, जीव उच्यते नाविक ।
संसारोऽर्णव उक्त , य तरन्ति महर्षय ॥७३॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी (तीर्थंकर देव ने) सरीर-इस शरीर को, णावत्ति-नौका, आहु-कही है (और) जीवा-जीव, णाविओ-नाविक, वुच्चइ-कहा जाता है, (तथा) ससारो-ससार, अण्णवो-अर्णव (समुद्र), वुत्तो-कहा गया है, ज-जिसको, महेसिणो-महर्षि लोग, तरति-तैर जाते हैं।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"तीर्थंकरा के द्वारा इस शरीर को नौका कहा गया है, जीव को नाविक-मल्लाह कहा गया है और इस ससार को समुद्र कहा गया है, जिसे महर्षि लोग तैर कर पार कर जाते हैं।"

74 केशी कुमार द्वारा ग्यारहवे प्रश्न का प्रस्ताव

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
अण्णोऽवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा!॥७४॥

संस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे संशयोऽयम्।
अन्योऽपि संशयो मम, त मा कथय गौतम!॥७४॥

अन्वयार्थ-गोयम-हे गौतम!, ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा बुद्धि, साहु-साधु श्रेष्ठ है, आपने मे-मेरा, इमो-यह, ससओ-सशय, छिण्णो-दूर कर दिया है, मज्झ-मेरा, अण्णोवि-और भी, संसओ-सशय है, गोयमा-हे गौतम!, त-उसके विषय में भी, मे-मुझे, कहसु-कहिये।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सन्देह छिन्न-भिन्न कर दिया-दूर कर दिया है। हे गौतम! मेरा और भी सशय है, उसके विषय में भी मुझे कुछ कह।"

75 प्राणियो का घोर अधकार मे स्थित होना

मूल गाथा- अधयारे तमे घोरे, चिट्ठति पाणिणो बहू।
को करिस्सइ उज्जोय, सव्वलोयम्मि पाणिण॥७५॥

संस्कृत छाया- अन्धकारे तमसि घोरे, तिष्ठन्ति प्राणिनो बहव ।
क करिष्यत्युद्योत, सर्वलोके प्राणिनाम् ॥७५॥

अन्वयार्थ-ग्यारहवा प्रश्न घोरे-घोर, तमे-तम रूप, अधयारे-अधकार मे, बहू-बहुत से, पाणिणो-प्राणी, चिट्ठति-रहते हैं, पाणिण-इन प्राणियो के लिए, सव्वलोयम्मि-सम्पूर्ण लोक मे उज्जोय-उद्योत (प्रकाश), को-कौन, करिस्सइ-करेगा?

भावानुवाद-भयकर घोर अधकार मे बहुत से प्राणी रहते हैं, उन प्राणियो के लिए सम्पूर्ण लोक मे कौन प्रकाश करेगा?

76 सूर्य सर्व लोक मे प्रकाश करने वाला

मूल गाथा- उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोयपभकरो।
सो करिस्सइ उज्जोय, सव्वलोयम्मि पाणिण ॥७६॥

संस्कृत छाया- उद्गतो विमलो भानु, सर्वलोकप्रभाकर ।
स करिष्यत्युद्योत, सर्वलोके प्राणिनाम् ॥७६॥

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी-सव्वलोय-सम्पूर्ण लोक मे, पभकरो-प्रकाश देने वाला एक, विमलो-निर्मल, भाणू-सूर्य, उग्गओ-उदय हुआ है, सो-वह, पाणिण-प्राणियो के लिए, सव्वलोयम्मि-सारे लोक मे, उज्जोय-उद्योत, करिस्सइ-करेगा।

भावानुवाद-गौतम गणधर-"सम्पूर्ण लोक मे प्रकाश फैलाने वाला सूर्य उदित हो चुका है, वह सब प्राणियो के लिए सम्पूर्ण लोक मे प्रकाश करेगा।"

77 केशी कुमार का प्रश्न कौनसा सूर्य कहा है?

मूल गाथा- भाणू य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७७॥

संस्कृत छाया- भानुश्चेति क उक्त, केशी गौतममब्रवीत्।
केशिनमेव ब्रुवन्त तु, गौतम इदमब्रवीत् ॥७७॥

अन्वयार्थ-केसी-केशी कुमार श्रमण, गोयम-गौतम स्वामी से, इइ-इस प्रकार, अब्बवी-पूछने लगे कि, भाणू-वह सूर्य, के-कौनसा, वुत्ते-कहा गया है, एव-इस प्रकार, बुवत-बोलते हुए, केसि-केशी कुमार श्रमण को, गोयमो-गौतम स्वामी, इण-इस प्रकार, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"वह सूर्य कौनसा है?" केशी कुमार श्रमण ने गौतम से पूछा। केशी कुमार के पूछने पर गौतम ने कहा-

अन्वयार्थ-गौतम स्वामी ने कहा-हे मुने! णिव्वाण-निर्वाण, अबाह-अव्याबाध, सिद्धी-सिद्धि, खेम-क्षेम, सिव-शिव, अणाबाह-अनाबाध, ति-इस प्रकार, ति-इन नामो से कहा जाता है, य-और (वह स्थान) लोगग्गमेव-लोकाग्र पर स्थित है, ज-उस स्थान को, महेसिणो-महर्षि लोग, चरति-प्राप्त करते हैं।

भावानुवाद-गौतम गणधर-मुनि प्रवर! जिस स्थान को महर्षि लोग प्राप्त करते हैं वह स्थान है निर्वाण, अबाध सिद्धालय और लोकाग्र, वह क्षेम-कल्याण रूप, शिव-आनद रूप और अनाबाध-बाधा रहित है।

84 शाश्वत वास रूप लोकाग्र पर स्थित

मूल गाथा- त ठाण सासय वास, लोयग्गम्मि दुरारुह।
ज सपत्ता ण सोयति, भवोहतकरा मुणी।।८४।।

सस्कृत छाया- तत् स्थान शाश्वतावास, लोकाग्रे दुरारोहम्।
यत्सम्प्राप्ता न शोचन्ति, भवौघान्तकरा मुनय ।।८४।।

अन्वयार्थ-त-वह, ठाण-स्थान, सासय वास-आत्मा का शाश्वत वास है, लोयग्गम्मि-लोक के अग्रभाग पर स्थित, दुरारुह-दुरारुह (अत्यन्त कठिन है), भवोहतकरा-ससार के जन्म-मरण का अन्त करने वाले, मुणी-मुनि, ज-उस स्थान को, सपत्ता-प्राप्त करके, ण सोयति-शोक नहीं करते हैं।

भावानुवाद-"वह स्थान शाश्वत है, लोक के अग्रभाग पर अवस्थित है, दुरारुह अर्थात् कठिनाईयो से पहुचा जान वाला है, भव परम्परा का अन्त करने वाले मुनि उस स्थान को प्राप्त करके शोक से मुक्त हो जाते हैं।"

85 सर्व सूत्र के पारगामी को नमस्कार

मूल गाथा- साहु गोयम! पण्णा ते, छिण्णो मे ससओ इमो।
णमो ते ससयातीत!, सव्वसुत्तमहोयही।।८५।।

सस्कृत छाया- साधु गौतम! प्रज्ञा ते, छिन्नो मे सशयोऽयम्।
नमस्तुभ्य सशयातीत! सर्वसूत्रमहोदधे!।।८५।

अन्वयार्थ-केशी कुमार श्रमण-गोयम-हे गौतम!, ते-आपकी, पण्णा-प्रज्ञा (बुद्धि), साहु-बहुत उत्तम है, आपने मे-मेरे, इमो-इन ससओ-सशयो को, छिण्णो-छिन्न कर दिया है, ससयातीत-हे सशयातीत! (सशय रहित), सव्व सुत्तमहोयही-हे सर्वसूत्र महोदधि, सर्वशास्त्रा के ज्ञाता, ते-आपको, णमो-नमस्कार करता हू।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण-"हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह सशय भी दूर कर दिया है। हे सशयातीत! हे सर्वश्रुत महोदधि! आपको मेरा वन्दन है।"

86 केशी श्रमण का कृतज्ञता प्रदशन एव अभिनन्दन

मूल गाथा- एव तु ससए छिण्णे, केसी घोरपरक्कमे।
अभिवदित्ता सिरसा, गोयम तु महायस ।।८६।।

संस्कृत छाया- एव तु संशये छिन्ने, केशी घोरपराक्रम ।
अभिवन्द्य शिरसा, गौतम तु महायशसम् ॥८६ ॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, ससए-सशय, छिण्णे-दूर हो जाने पर, घोरपरक्कमे-घोर पराक्रम वाले, केसी-केशी कुमार श्रमण ने, महायस-महायशस्वी, गोयम-गौतम स्वामी को, सिरसा-सिर से, (मस्तक झुका कर), अभिवदित्ता-वदन करके।

भावानुवाद-उपसहार

इस प्रकार सशय के दूर हो जाने पर महान् पराक्रमी केशी कुमार ने महान् यशस्वी गौतम स्वामी को सिर से वदन करके-

87 गौतम स्वामी के प्रति वीर शासन मे प्रवेश

मूल गाथा- पचमहव्वयधम्म, पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥८७॥

संस्कृत छाया- पञ्चमहाव्रतधर्मं, प्रतिपद्यते भावत ।
पूर्वस्य पश्चिमे, मार्गे तत्र सुखावहे ॥८७॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहीं पर, पचमहव्वय-पाच महाव्रत रूप, धम्म-धर्म को, भावओ-भावपूर्वक, पडिवज्जइ-अगीकार किया (और) वे सुहावहे-उस सुखकारी, मग्गे-मार्ग मे, (विचरने लगे) जो पुरिमस्स-प्रथम (और) पच्छिमम्मि-अन्तिम तीर्थंकर के साधुओ के लिए प्ररूपित किया गया है।

भावानुवाद-प्रथम और अतिम तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित सुखावह पच महाव्रत रूप धर्म के मार्ग मे प्रवेश किया अर्थात् महावीर के शासन की विधि को स्वीकार किया।

88 केशी गौतम चर्चा की फल श्रुति

मूल गाथा- केसीगोयमओ णिच्च, तम्मि आसि समागमे।
सुयसीलसमुक्करिसो, महत्थत्थविणिच्छओ ॥८८॥

संस्कृत छाया- केशिगौतमयोर्नित्य, तस्मिन्नासीत् समागम ।
श्रुतशीलसमुत्कर्ष , महार्थार्थविनिश्चय ॥८८॥

अन्वयार्थ-तम्मि-उस (तिन्दुक उद्यान) मे, केसी-केशी कुमार श्रमण (और) गोयमओ-गौतम स्वामी का जो, णिच्च-नित्य, समागमे-समागम, आसि-हुआ (उसमे) सुय-श्रुत और, सील-शील का, समुक्करिसो-सम्यक उत्कर्ष (एव), महत्थत्थ-महार्थ (मुक्ति के अर्थ का), विणिच्छिओ-विशिष्ट निर्णय हुआ।

भावानुवाद-केशी कुमार श्रमण और गौतम स्वामी-दोनों का वहा तिन्दुक उद्यान में जो निरन्तर समागम हुआ उसमे श्रुत एव शील का समुत्कर्ष तथा महान् तत्वो के अर्थ का विनिश्चय हुआ।

89 परिषद् की सतुष्टि एव केशी गौतम स्तुति उपसहार

मूल गाथा- तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्ग समुवट्ठिया।
सथुया ते पसीयतु, भयव केसिगोयमे ॥८९॥

त्ति बेमि।

इति केसिगोयमिज्ज तेवीसइम अज्झयण समत्त ॥२३॥

सस्कृत छाया- तोषिता परिषत् सर्वा, सन्मार्गं समुपस्थिता।
सस्तुतौ तौ प्रसीदताम्, भगवन्तौ केशिगौतमौ ॥८९॥

इति ब्रवीमि।

केशिगौतमीय त्रयोविंशमध्ययन समाप्तम् ॥२३॥

अन्वयार्थ-सव्वा-सर्व (देवासुर और मनुष्य से युक्त), परिसा-सभा (परिषद्), तोसिया-अत्यन्त सतुष्ट हुई (और सभी), सम्मग्ग-सन्मार्ग में, समुवट्ठिया-प्रवृत्त हुए (तथा), ते-वे सभी, सथुया-स्तुति करने लगे कि, भयव-भगवान्, केसी-केशी कुमार और, गोयमे-गौतम स्वामी, पसीयतु-सदा प्रसन्न रहे (जयवत रहे)।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-सम्पूर्ण सभा उस धर्म चर्चा से सतुष्ट हुई अत सन्मार्ग पर प्रस्थित उस सभा ने भगवान् केशी और गौतम की स्तुति की कि वे दोनो सदा प्रसन्न रहे-जयवन्त हो।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार केशी गौतमीय तेइसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

प्रवचन माता - चतुर्विंशम् अध्ययन

उत्थानिका

जीवन के सवर्धन एव सरक्षण के लिए शिशु को सरक्षक-आश्रयदाता की आवश्यकता होती है। शिशु के लिए सर्वश्रेष्ठ सरक्षक होती है उसकी ममतामयी मा। मा का सरक्षण शिशु को शारीरिक सुरक्षा ही प्रदान नहीं करता, सम्यक् विकास का दायित्व भी सभालता है।

साधक जीवन रूप सयम शिशु के लिए सरक्षक माता की आवश्यकता होती है और वह माता है-पाच समिति-तीन गुप्ति की आराधना। आगमकारा ने इसे प्रवचन माता की सज्ञा प्रदान की है। वीतराग प्रवचन अथवा जिनदेशना का प्रमुख प्रतिपाद्य है-अहिसा। प्रवचन का उद्देश्य प्रतिपादित करते हुए प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा गया है-

सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए पावयण भगवया सुकहिय।

"समस्त जगत् जीवो की रक्षा रूप दया के लिए भगवान् के द्वारा प्रवचन कहा गया है।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रवचन का उद्देश्य प्राणी रक्षा रूप अहिसा है और प्राणी रक्षा का आधार सयम है और सयम के परिपालन का मूल आधार समिति गुप्ति की आराधना है। इस रूप मे समिति-गुप्ति को मातृत्व का स्थान देना पूर्णत यथार्थ है।

जैसे माता अपने बालक को सुरक्षा प्रदान करने के साथ उसको सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है और असत् मार्ग से बचाने का भी प्रयास करती है। इसी प्रकार साधक जीवन की सुरक्षा भी अष्ट प्रवचन माता करती है।

प्रस्तुत अध्ययन मे इस अष्ट प्रवचन माता का विवेचन किया गया है। साधक का चलना, बोलना, भोजन गवेषण-ग्रहण-परिभोग, वस्तु का उठाना-रखना एव फैकने योग्य जल-मैल श्लेष्म आदि का परिष्ठापन इस विवेक से होना चाहिये कि इन प्रवृत्तियो मे कहीं हिसा नहीं हो जाए। साधक जीवन की प्रत्येक वृत्ति मे सम्पूर्ण रूप से जागृत होकर विवेकपूर्वक गति करने को "समिति" कहा जाता है।

मानसिक, वाचिक एव कायिक असत् व्यापार से अपनी आत्मा को बचाए रखना "गुप्ति" कहा जाता है।

यह समिति-गुप्ति की आराधना महाव्रता को सुरक्षा प्रदान करती है। अत साधक जीवन के लिए इनकी सम्यगनुपालना अत्यन्त आवश्यक है। तत्त्व द्रष्टा ज्ञानियो का कथन है कि किसी साधक को और कुछ भी ज्ञान नहीं आता हो, वह और कुछ भी आचरण नहीं कर पाता हो, केवल पाच समिति-तीन गुप्ति की आराधना ही अच्छी तरह से कर ले तब भी मुक्ति लाभ रूप अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। ▢▢▢

प्रवचन माता - चतुर्विंशम् अध्ययन

सूक्ति साराश

माता हमारी सुरक्षा करती है, कब तक? जब तक वह सुरक्षित है।
अत सयमीय क्रिया विधियो का ध्यान रखो।
माता वह होती है जो बालक को सुरक्षा सवर्धन प्रदान करती है। साधक आत्माओ के लिए यह कार्य समिति गुप्ति करती है, अत यह प्रवचन माता है।

साधक जीवन की गति का एक ही हेतु होता है।
ज्ञानादि गुणों का सरक्षण सवर्धन।
साधक का चलना फिरना निष्कारण नहीं होता, सकारण भी
ज्ञान दर्शन चारित्र के सवर्धन के लिए ही होता है।

जीव रक्षा के प्रति जागृति साधना है, असावधानी विराधना है।
जरा-सी भी हिंसा साधक जीवन को दूषित कर देती है,
अत साधक का चलना ही नहीं प्रत्यक कार्य सजगतापूर्वक होना चाहिए।

भाषा के प्रति सजगता केवल व्यवहार को ही मधुर
नहीं बनाती अपितु मानसिक अशान्ति से भी बचाती है।
हास्य, भय, मुखरता एव क्रोधादि के क्षणो में भी साधक आत्मा
इतनी सजग रहती है कि उसके मुह से असत्य या कटुक वचन
नहीं निकल सकता।

अहकार के विगलन के बिना किसी के समक्ष हाथ फैलाना सहज नहीं है।
साधु की भिक्षावृत्ति अहकार को विगलित करती है, रस लोलुपता से बचाती है
एव हिसाजनक दोषो से सुरक्षित रखती है।

खाना खाते समय भी आत्म साधना का कोई बड़ा
उद्देश्य सामने रहना चाहिए।
साधक का खान-पान भी किसी महदुद्देश्य के लिए होता है,
साधक निष्कारण कुछ भी नहीं करता है।

साधना की प्रत्येक प्रवृत्ति अहिंसा को समक्ष रखत हुए होनी चाहिए।
प्रत्येक कार्य की निर्दोषता को दृष्टि में रखते हुए साधक का वस्त्र

पात्र भोजनादि का ग्रहण भी सीमित सयमित होना चाहिए,
पूर्ण अहिसक होना चाहिए।

जीवन की सूक्ष्मतम क्रिया के प्रति भी सजगता आवश्यक है।
किसी भी पदार्थ का उठाना-रखना भी साधक की जागृति को अभिव्यक्त करता है।

परित्याग मे भी पूर्ण सजगता होनी चाहिए जिससे किसी को मानसिक सक्लेश न हो।
किसी भी फैंकने योग्य पदार्थ का परठना त्याग करना भी विवेक पूर्वक होना साधना का अग है।

आत्म जागृति पूर्वक की जाने वाली क्रिया बन्धन कारक नहीं होती।
साधक की मानसिक, वाचिक एव कायिक सभी क्रियाये आत्म जागृति पूर्वक होनी चाहिए।

□□□

अहसमिइओ चउवीसइमं अज्झयणं

अथ समितयः (इति) चतुर्विंशमध्ययनम्

प्रवचन माता

1 प्रवचन माताओ के स्वरूप का दिग्दर्शन

मूल गाथा- अट्ठ पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
पचेव य समिईओ, तओ गुत्तीउ आहिआ ॥१॥

सस्कृत छाया- अष्टौ प्रवचनमातर , समितयो गुप्तयस्तथैव च।
पञ्चैव च समितय , तिस्रो गुप्तय आख्याता ॥१॥

अन्वयार्थ-समिई-समिति, तहेव-तथा, गुत्ती-गुप्ति, अट्ठ-ये आठ, पवयण-प्रवचन, मायाओ-माताए हैं, य-और, समिईओ-समितिया, पचेव-पाच, य-और, गुत्तीउ-गुप्तिया, तओ-तीन, आहिया-कही गई है।

भावानुवाद-समिति और गुप्ति-आठ प्रवचन माताए हैं। पाच समितिया और तीन गुप्तिया कही गई हैं।

2 अष्ट प्रवचन माताओ के नाम

मूल गाथा- इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥२॥

सस्कृत छाया- ईर्याभाषैषणादानोच्चाररूपा , समितय इति।
मनोगुप्तिर्वचोगुप्ति , कायगुप्तिरष्टमी ॥२॥

अन्वयार्थ-इरिया-ईर्या समिति, भास-भाषा समिति, एसणा-एषणा, आदाणे-आदान (भण्ड पात्र निक्षेपण) समिति य-और, उच्चारे-उच्चार, (प्रस्रवण जल्ल मल सिंघाण परिस्थापनिका) समिति, इय-ये, पच समिई-पाच समितिया है, मण गुत्ती-मनगुप्ति, वयगुत्ती-वचन गुप्ति, य-और, कायगुत्ती-कायागुप्ति, अट्ठमा-आठवीं हैं, (ये आठ प्रवचन माताए हैं)।

भावानुवाद-ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भण्ड पात्र निक्षेपना समिति और उच्चार प्रस्रवण खेल-जल्ल श्लेष्म परिस्थापना समिति, ये पाच समितिया मनोगुप्ति, वचन गुप्ति और आठवीं प्रवचन माता काया गुप्ति है।

3 आठ प्रवचन माताओ के सारत्व का वर्णन

मूल गाथा- **एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया।**
दुवालसग जिणक्खाय, माय जत्थ उ पवयण ॥३॥

सस्कृत छाया- **एता अष्ट समितय , समासेन व्याख्याता ।**
द्वादशाङ्ग जिनख्यात, मात यत्रतु प्रवचनम् ॥३॥

अन्वयार्थ-एयाओ-ये, अट्ठ-आठ, समिईओ-समितिया, समासेण-सक्षेप से, वियाहिया-कही गई है, जिणक्खाय-जिनेन्द्र कथित, दुवालसग-द्वादशाङ्ग रूप, पवयण-प्रवचन, उ-तो, जत्थ-इन्हीं मे, माय-समाविष्ट है।

भावानुवाद-ये आठ समितिया-प्रवचन माताए सक्षेप मे कही गई हैं। जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित द्वादशाङ्ग रूप समग्र प्रवचन इन्हीं मे समाया हुआ है।

4 ईर्या समिति के लक्षण एव स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- **आलबणेण कालेण, मग्गेण जयणाइ य।**
चउकारणपरिसुद्ध, सजए ईरिय रिए॥४॥

सस्कृत छाया- **आलम्बनेन कालेन, मार्गेण यतनया च।**
चतुष्कारणपरिशुद्धा, सयत ईर्यां रीयेत॥४॥

अन्वयार्थ-आलबणेण-आलम्बन, कालेण-काल, मग्गेण-मार्ग, य-और, जयणाइ-यतना, चउकारण-इन चार कारणो से, परिसुद्ध-शुद्ध, ईरिय-ईर्या समिति से, सजए-सयत (साधु) रिए-गमन करे।

भावानुवाद-ईर्या समिति-सयति, श्रमण, आलम्बन, काल, मार्ग और यतना इन चार कारणा से परिशुद्ध ईर्या समिति पूर्वक विचरण करे।

5 आलबनादि कारणो का वर्णन

मूल गाथा- **तत्थ आलबण णाण, दसण चरण तहा।**
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए॥५॥

सस्कृत छाया- **तत्र आलम्बन ज्ञान, दर्शन चरण तथा।**
कालश्च दिवस उक्त , मार्ग उत्पथवर्जित ॥५॥

अन्वयार्थ-तत्थ-ईर्या समिति के लिए, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, तहा-और, चरण-चारित्र, आलवण-आलम्बन है, य-और, काले-काल, दिवसे-दिवस (दिन), वुत्ते-कहा गया है, और मग्गे-मार्ग, उप्पह-उत्पथ से, वज्जिए-वर्जित है।

भावानुवाद-ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीन ईर्या समिति के आलम्बन हैं-साधु उपर्युक्त तीन उद्देश्यो से ही गमन करे। काल दिवस है अर्थात् मुनि दिन मे ही विचरण करे और मार्ग उत्पथ का परित्याग है।

6 चतुविध यतना का वर्णन

मूल गाथा- दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
जयणा चउव्विहा वुत्ता, त मे कित्तयओ सुण॥६॥

सस्कृत छाया- द्रव्यत क्षेत्रतश्चैव, कालतो भावतस्तथा।
यतनाश्चतुर्विधा उक्ता ता मे कीर्तयत श्रृणु॥६॥

अन्वयार्थ-दव्वओ-द्रव्य से, खेत्तओ-क्षेत्र से, तहा-तथा, कालओ-काल से, चेव-और, भावओ-भाव से, जयणा-यतना, चउव्विहा-चार प्रकार की, वुत्ता-कही गई, त-उनका, मे-मैं, कित्तयओ-वर्णन करूगा, सुण-सुनो।

भावानुवाद-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा यतना चार प्रकार की कही गई है। मैं उसका कीर्तन-कथन करूगा, तुम ध्यान पूर्वक श्रवण करो।

7 द्रव्यादि चारो भेदो के स्वरूप का दिग्दर्शन

मूल गाथा- दव्वओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्त च खेत्तओ।
कालओ जाव रीइज्जा, उवउत्ते य भावओ॥७॥

सस्कृत छाया- द्रव्यतश्चक्षुषा प्रेक्षेत, युगमात्र च क्षेत्रत।
कालतो यावद्रीयेत, उपयुक्तश्च भावत:॥७॥

अन्वयार्थ-दव्वओ-द्रव्य से, चक्खुसा-आखों से, पेहे-देखकर चले, च-और, खेत्तओ-क्षेत्र से, जुगमित्त-युग प्रमाण देखे, कालओ-काल से, जाव-जब तक, रीइज्जा-चले (तब तक देखे), य-और, भावओ-भाव से, उवउत्ते-उपयोग पूर्वक चले।

भावानुवाद-द्रव्य की अपेक्षा चक्षुओ से देखकर चले। क्षेत्र की अपेक्षा युग प्रमाण (चार हाथ) भूमि देखे। काल से जब तक चले तब तक यतना रखे-दिन में देखकर चले। भाव से उपयोग पूर्वक सजगता पूर्वक गमन करे।

8 भाव यतना का विशेष स्पष्टीकरण

मूल गाथा- इदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झाय चेव पचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते रिय रिए॥८॥

सस्कृत छाया- इन्द्रियार्थान् विवर्ज्य, स्वाध्याय चैव पञ्चधा।
तन्मूर्ति (साधु) तत्पुरस्कार, उपयुक्त ईर्यां रीयेत॥८॥

अन्वयार्थ-इदियत्थे-इन्द्रियों के अर्थों को, चेव-और, पचहा-पाच प्रकार की, सज्झायं-स्वाध्याय को, विवज्जत्ता वर्जकर, तम्मुत्ती-तन्मय होकर, तप्पुरक्कारे-इसी को प्रधान मानकर (साधु), उवउत्ते-उपयाग पूर्वक, रियं-ईर्या समिति स, रिए-गमन कर।

भावानुवाद-पाचों इन्द्रियों के विषय-शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श तथा पाच प्रकार के स्वाध्याय-वाचना,

पृच्छना आदि का वर्जन करके गतिक्रिया मे गतिशील हो, उसी मे तन-मन का उपयोग स्थिर कर दे अर्थात् गतिमान और गतिरूप ही हो जाए।

9 भाषा समिति का वर्णन

मूल गाथा- कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया।
हासे भए मोहरिए, विकहासु तहेव य॥९॥

सस्कृत छाया- क्रोधे माने च मायाया, लोभे चोपयुक्तता।
हास्ये भये च मौखर्ये, विकथासु तथैव च॥९॥

अन्वयार्थ-भाषा समिति-कोहे-क्रोध, माणे-मान, मायाए-माया, य-और, लोभे-लोभ, हासे-हास्य, भए-भय, मोहरिए-मोखार्य, तहेव य-तथा, विकहासु-विकथाओं मे, उवउत्तया-उपयुक्त रहना।

भावानुवाद-भाषा समिति-क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय और मोखार्य-वाचलता तथा विकथा के प्रति सदा उपयुक्तता-सावधानी रखे।

10 भाषा समिति के सरक्षण का उपाय और विधि का वर्णन

मूल गाथा- एयाइ अट्ठ ठाणाइ, परिवज्जितु सजए।
असावज्ज मिय काले, भास भासिज्ज पण्णव॥१०॥

सस्कृत छाया- एतान्यष्टौ स्थानानि, परिवर्ज्य सयत।
असावद्या मिता काले, भाषा भाषेत प्रज्ञावान्॥१०॥

अन्वयार्थ-एयाइ-इन, अट्ठ-आठ, ठाणाइ-स्थानो (दोषो) को, परिवज्जित्तु-त्याग कर, पण्णव-बुद्धिमान, सजए-सयत (साधु), काले-समय पर, असावज्ज-निरवद्य, और मिय-परिमित, भास-भाषा, भासिज्ज-बोले।

भावानुवाद-प्रज्ञावान सयमी साधक इन आठ स्थानों का त्याग कर निरवद्य-दोष रहित यथा समय परिमित भाषा का प्रयोग करे।

11 एषणा समिति का वर्णन

मूल गाथा- गवेसणाए ग्रहणे य, परिभोगेसणा य जा।
आहारोवहिसेज्जाए, एए तिण्णि विसोहए॥११॥

सस्कृत छाया- गवेषणाया ग्रहणे च, परिभोगैषणा च या।
आहारोपधिशय्यासु, एतास्तिस्रोऽपि शोधयेत्॥११॥

अन्वयार्थ-एषणा समिति-आहार-आहार, उवहि-उपधि और, सेज्जाए-शय्या की, गवेसणाए-गवैषणैषणा, य-और, गहणे-ग्रहणैषणा, य-तथा, परिभोगेसणा-परिभोगैषणा, एए-ये प्रत्येक की, जा-जो, तिण्णि-तीन से, विसोहए-उन्हें विशुद्ध करे।

भावानुवाद-एषणा समिति-आहार भोजन-पान, उपधि, वस्त्रादि और शय्या स्थानादि की गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा इन तीनो का परिशोधन करे अर्थात् खोज, ग्रहण और परिभोग म विशुद्धि रखे।

12 आहारादि की शुद्धि का प्रकार

मूल गाथा- उग्गमुप्पायण पढमे,
बीए सोहेज्ज एसण।
परिभोयम्मि चउक्क,
विसोहेज्ज जय जई ॥12॥

सस्कृत छाया- उद्गमोत्पादनदोषान् प्रथमाया,
द्वितीयाया शोधयेदेषणादोषान्।
परिभोगैषणाया चतुष्क,
विशोधयेद् यतमानो यति ॥१२॥

अन्वयार्थ-जय-यतनावान्, जई-यति (साधु), पढमे-प्रथम गवेषणैषणा म, उग्गमुप्पायण-उद्गम और उत्पादन दोषो और बीए-दूसरी ग्रहणैषणा में, एसण-एषणा के दोषो की, सोहेज्ज-शुद्धि करे, परिभोयम्मि-परिभोगैषणा में दोषों की, चउक्क-चतुष्क की, विसोहेज्ज-विशुद्धि करे।

भावानुवाद-यतना-विवेक पूर्वक प्रवृत्ति करने वाला श्रमण प्रथम गवेषणैषणा (आहारादि की गवेषणा-खोज) में उद्गम और उत्पादन के क्रमश 16-16 दोषो का तथा दूसरी ग्रहणैषणा में आहारादि ग्रहण करने सबधी शकितादि दस दोषों का शोधन करे। तीसरी परिभोगैषणा म दोष चतुष्क-(1) इगाल-धूम (2) सयोजना (3) प्रमाण और (4) कारण का शोधन करे।

13 आदान निक्षेप समिति का विवेचन

मूल गाथा- ओहोवहोवग्गहिय, भण्डग दुविह मुणी।
गिण्हतो णिक्खिवतो वा, पउजेज्ज इम विहिं ॥13॥

सस्कृत छाया- ओघोपधिमौपग्रहिकोपधि भाण्डक द्विविध मुनि ।
गृह्णन्निक्षिपश्च, प्रयुञ्जीतेम विधिम् ॥१३॥

अन्वयार्थ-चौथी समिति-ओहो-ओघ, उवहो-उपधि और, वग्गहियं-औपग्रहिक उपधि, दुविह-दोनो प्रकार की उपधि, भण्डग-भडोपकरण को, गिण्हतो-ग्रहण करता हुआ, वा-और णिक्खिवतो-रखता हुआ, मुणी-मुनि, इम-इस, विहिं-विधि का, पउजेज्ज-प्रयोग करे।

भावानुवाद-ओघ उपधि (सदा साथ रखी जाने वाली) रजोहरण, वस्त्रादि और औपग्रहिक उपधि (कुछ समय के लिए ली जाने वाली) पाट, शय्या आदि इन दोनो प्रकार की उपधियों को तथा भण्ड उपकरण को ग्रहण करता हुआ और रखता हुआ मुनि इस विधि का प्रयोग करे।

14 आदान निक्षेप समिति की विधि का उल्लेख

मूल गाथा- **चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जय जई।**
आइए णिक्खिवेज्जा वा, दुहओवि समिए सया॥१४॥

सस्कृत छाया- **चक्षुषा प्रतिलेख्य, प्रमार्जयेत् यतो यति ।**
आददीत निक्षिपेद्वा, द्विधापि समित सदा॥१४॥

अन्वयार्थ-समिए-समितिवन्त, जई-यति (साधु), सया-सदैव, जय-यतनापूर्वक, चक्खुसा-आखो से, पडिलेहित्ता-देख कर, पमज्जेज्ज-प्रमार्जन कर, दुहओवि-दोनों प्रकार की उपधि को, आइए-ग्रहण करे, वा-तथा, णिक्खिवेज्जा-निक्षेपण करे।

भावानुवाद-समिति युक्त मुनि सदैव, यतना पूर्वक नेत्रो से देखकर और प्रमार्जन करके दोनो प्रकार की उपधि को ग्रहण करे अथवा रखे।

15 पचम उच्चार समिति का वर्णन

मूल गाथा- **उच्चार पासवण खेल, सिघाणजल्लिय।**
आहार उवहिं देह अण्ण, वावि तहाविह॥१५॥

सस्कृत छाया- **उच्चार प्रस्रवण खेल, सिघाण जल्लकम्।**
आहारमुपधि देह अन्यद्वापि तथाविधम्॥१५॥

अन्वयार्थ-पाचवीं समिति-उच्चार-विष्ठा, पासवण-प्रस्रवण (मूत्र), खेल-मुख का मैल, सिघाण-नाक का मैल, जल्लिय-शरीर का मैल, आहार-आहार, उवहिं-उपधि, देह-शरीर, वावि-अथवा, तहाविह-इसी प्रकार के, अण्ण-अन्य पदार्थ-यतना से फैके।

भावानुवाद-परिष्ठापना समिति-उच्चार-मल-अशुचि, प्रस्रवण-मूत्र, खेल-श्लेष्म (कफ) सिघानक-नाक का मैल, जल्ल-शरीर का मैल, आहार, उपधि, उपकरण, शरीर का व अन्य कोई विसर्जन-त्यागने योग्य तत्त्व-इन सबका विवेक पूर्वक दस विशेषणों वाली स्थण्डिल भूमि मे उत्सर्ग करे।

16 परिष्ठापन व्युत्सर्जन विधि का वर्णन

मूल गाथा- **अणावायमसलोए, अणावाए चेव होइ सलोए।**
आवायमसलोए, आवाए चेव सलोए॥१६॥

सस्कृत छाया- **अनापातमसलोकम्, अनापात चैव भवति सलोकम्।**
आपातमसलोकम्, आपात चैव सलोकम्॥१६॥

अन्वयार्थ-अणावाय-आवागमन से रहित एव, असलोए-कोई देखता भी नहीं है, अणावाए-आगमन से रहित (परन्तु), सलोए-देखने वाला, होइ-होता है, आवाय-आता है (किन्तु) असलोए-देखता नहीं है, चेव-और,

आवाए-आता भी है, सलोए-देखता भी है, (इसमें प्रथम भग शुद्ध है, शेष तीन भग अशुद्ध है)।

भावानुवाद-1 अनापात असलोक-जहा लोगो का आवागमन न हो और वे दूर से देखते भी नहीं।

2 अनापात सलोक-जहा लोगो का आना जाना तो न हो, किन्तु वे दूर से देखते हा।

3 आपात सलोक-जहा लोगो का आवागमन तो हो किन्तु वे देखते न हो।

4 आपात असलोक-जहा लोगो का आवागमन भी हो और देखते हों। इस प्रकार स्थण्डिल-परठने की भूमि चार प्रकार की होती है।

17 मल मूत्रादि के त्याग हेतु स्थानादि का निर्देश-पाच प्रकार

मूल गाथा- अणावायमसलोए, परस्सणुवघाइए।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिरकालकयम्मि य ॥17॥

सस्कृत छाया- अनापातेऽसलोके, परस्यानुपघातके।
समेऽशुषिरे चापि, अचिरकालकृते च ॥१७॥

अन्वयार्थ-स्थण्डिल के दस विशेषण-परस्स-दूसरो का, अणावाय-अनापात, असंलोए-असलोक स्थान में, अणुवघाइए-अनुपघात मे, समे-समभूमि मे, य-अथवा, अज्झुसिरे (तृण पत्रादि से), अनाकीर्ण-स्थान में, यावि-और, अचिरकालकयम्मि-अचिर काल के अचित्त हुए स्थान म।

भावानुवाद-1 जहा किसी का आना-जाना अथवा दृष्टिपात न हो।

2 जहा परोपघात-आत्मा की सयम की अथवा जीवों की विराधना न हो।

3 जहा भूमि समतल हो-ऊची नीची न हो।

4 जहा शुषिर-पोलार न हो भूमि घास-फूस या सूखे पत्तो से ढकी न हो।

18 शेष पाच स्थानादि का निर्देश

मूल गाथा- विच्छिण्णे दूरमोगाढे, णासण्णे बिलवज्जिए।
तसपाणबीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥18॥

सस्कृत छाया- विस्तीर्णे दूरमवगाढे, नासन्ने बिलवर्जिते।
त्रसप्राणबीजरहिते, उच्चारादीनि व्युत्सृजेत् ॥१८॥

अन्वयार्थ-विच्छिण्णे-विस्तीर्ण, दूरमोगाढे-नीचे दूर तक, अचित्त णासण्णे-ग्रामादि के अति समीप न हो बिलवज्जिए-मूषकादि के बिलों से रहित, तस-पाण-त्रसप्राणी और बीयरहिए-बीज रहित हो, उच्चाराईणि-इन दस विशेषण वाले स्थण्डिल में मल-मूत्रादि का, वोसिरे-त्याग करे।

भावानुवाद-5 जो भूमिदाह आदि से कुछ समय पूर्व निर्जीव हुई हो।

6 जो भूमि विस्तृत हो।

7 जो गाव से दूर हो।

8 जो बहुत-कम से कम चार अगुल नीचे तक अचित्त हो।

9 जहा चूहे आदि के बिल न हा।

10 जहा द्वीन्द्रिय आदि त्रस प्राणी एव शाली आदि बीज न हो। ऐसी निर्दोष भूमि पर उच्चार (मल) आदि का परित्याग करना चाहिए।

19 तीन समितियो के स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- **एयाओ पञ्च समिईओ, समासेण वियाहिया।**
एत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो ॥१९॥

सस्कृत छाया- **एता पञ्च समितय , समासेन व्याख्याता ।**
इतश्च तिस्रो गुप्ति , प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्या ॥१९॥

अन्वयार्थ-एयाओ-ये, पच-पाच, समिईओ-समितिया, समासेण-सक्षेप से, वियाहिया-कही गई है, एत्तो-इसके पश्चात्, तओ-तीन, गुत्तिओ-गुप्तियो का, अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, वोच्छामि-वर्णन करूँगा।

भावानुवाद-ये पाच समितिया सक्षेप मे कही गई हैं। अब इसके पश्चात् क्रमश तीन गुप्तियो का वर्णन करूँगा।

20 प्रथम मनोगुप्ति के प्रकारो का वर्णन

मूल गाथा- **सच्चा तहेव मोसा य, सच्चमोसा तहेव य।**
चउत्थी असच्चमोसा य, मणगुत्ती चउव्विहा ॥२०॥

सस्कृत छाया- **सत्या तथैव मृषा च, सत्यामृषा तथैव च।**
चतुर्थ्यसत्यामृषा च, मनोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥२०॥

अन्वयार्थ-सच्चा-सत्य, य-और, मोसा-मृषा, तहेव-तथा, सच्चा मोसा-सत्यामृषा, तहेव य-और, चउत्थी-चौथी, असच्च मोसा-असत्यमृषा (इस प्रकार), मणगुत्ती-मनोगुप्ति, चउव्विहा-चतुर्विध है।

भावानुवाद-मनोगुप्ति चार प्रकार की है-सत्या (सच), मृषा-झूठ, सत्यामृषा-मिश्र, असत्यामृषा-न सच न झूठ अर्थात् व्यवहार।

21 मनोगुप्ति के रूप सकल्पो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **सरम्भसमारम्भे, आरम्भे य तहेव य।**
मण पवत्तमाण तु, णियत्तेज्ज जय जई ॥२१॥

संस्कृत छाया- सरम्भे समारम्भे, आरम्भे च तथैव च।
मन प्रवर्तमान तु, निवर्तयेद्यत यति ॥२१॥

अन्वयार्थ-सरभ-सर॰, य-और समारम्भे-समारम्भ में, तहेव य-और, आरभे-आरम्भ मे, पवत्तमाण-प्रवृत्ति करते हुए, मण-मन को, जइ-यति (साधु), जय-यतना पूर्वक, णियत्तेज्ज-हटा लेवे (निवृत्त करे)।

भावानुवाद-यतना सम्पन्न मुनि सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्ति करते हुए मन को निवृत्त कर।

22 वचन गुप्ति के चार प्रकारो का वर्णन

मूल गाथा- सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा, य वयगुत्ती चउव्विहा॥२२॥

संस्कृत छाया- सत्या तथैव मृषा च, सत्यामृषा तथैव च।
चतुर्थ्यसत्यामृषा, च वचोगुप्तिश्चतुर्विधा॥२२॥

अन्वयार्थ-सच्चा-सत्या, य-और, मोसा-मृषा, सच्चामोसा-सत्यामृषा, तहेव य-तथा, तेहव-तथा, चउत्थी-चौथी, असच्च मोसा-असत्यामृषा इस प्रकार वयगुत्ती-वचन गुप्ति, चउव्विहा-चतुर्विध है।

भावानुवाद-वचन गुप्ति-वचन गुप्ति के चार प्रकार हैं-सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्या मृषा।

23 वचन गुप्ति के स्वरूप और विवेक का निर्देश

मूल गाथा- सरम्भसमारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
वय पवत्तमाण तु, णियत्तेज्ज जयं जई॥२३॥

संस्कृत छाया- सरम्भे समारम्भे, आरम्भे च तथैव च।
वच प्रवर्तमान तु, निवर्तयेद्यत यति ॥२३॥

अन्वयार्थ-सरभ-सरभ (और) समारभे-समारम्भ म, तहेव य-और, आरभे-आरम्भ में, पवत्तमाण-प्रवृत्ति करत हुए, तु-तो, वय-वचन को, जई-यति (साधु), जय-यतनापूर्वक, णियत्तेज्ज-निवृत्त करे-हटा लेवे।

भावानुवाद-यतना-विवेकवान् यति सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ मे प्रवर्तमान वचन का निरोध कर।

24 काय गुप्ति के स्वरूप का दिग्दर्शन

मूल गाथा- ठाणे णिसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे।
उल्लघणपल्लघणे, इदियाण य जुजणे॥२४॥

संस्कृत छाया- स्थाने निषीदने चैव, तथैव च त्वग्वर्तने।
उल्लघने प्रलघने, इन्द्रियाणा च योजने॥२४॥

अन्वयार्थ-ठाणे-खडे रहन म णिसीयण-बैठने में, चेव-और, तुयट्टणे-सोने में तहव य-तथा उल्लंघण-

उल्लघन मे, पल्लघणे-प्रलघन मे, य-और, इदियाण-इन्द्रियो को, जुजणे-जोडने में (यतना रखे)।

भावानुवाद-काय गुप्ति-खडे रहने मे, सोने मे, उल्लघन-खड्डे आदि के लाघने में, प्रलघन-सामान्य रूप से चलने-फिरने मे, शब्दादि विषयो मे और इन्द्रियो के व्यापार मे (यतना रखे)।

25 काय गुप्ति के भेद एव साधना मे विवेक

मूल गाथा- सरम्भसमारम्भे, आरम्भम्मि तहेव य।
काय पवत्तमाण तु, णियत्तेज्ज जय जई॥२५॥

सस्कृत छाया- सरम्भे समारम्भे, आरम्भे तथैव च।
काय प्रवर्तमान तु, निवर्तयेद्यत यति ॥२५॥

अन्वयार्थ-सरभ-सरम्भ, और समारम्भे-समारम्भ मे, तहेव य-तथा, आरम्भम्मि-आरम्भ में, पवत्तमाण-प्रवृत्ति करती हुई, काय-काया को, जई-साधु, जय-यतना पूर्वक, णियत्तेज्ज-निवृत्त कर (हटा लवे)।

भावानुवाद-सरम्भ मे, समारम्भ मे और आरम्भ मे प्रवृत्त काया का विवेक सम्पन्न साधु निवतन करे।

26 समिति और गुप्ति का उद्देश्य मूलक लक्षण

मूल गाथा- एयाओ पच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती णियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो॥२६॥

सस्कृत छाया- एता पञ्च समितय, चरणस्य च प्रवर्तने।
गुप्तयो निवर्तने उक्ता, अशुभार्थेभ्य सर्वश ॥२६॥

अन्वयार्थ-एयाओ-ये उपरोक्त, पच-पाच, समिईओ-समितिया, चरणस्स-चारित्र की, पवत्तणे-प्रवृत्ति के लिए, य-और, गुत्ती-गुप्तिया, असुभत्थेसु-अशुभ कार्य से, सव्वसो-सर्वथा, णियत्तणे-निवृत्ति के लिए, वुत्ता-कही गई है।

भावानुवाद-समिति गुप्ति का लक्षण-ये उपर्युक्त पाच समितिया चारित्र की प्रवृत्ति के लिए कही गई है और गुप्तिया समस्त अशुभ विषयो से निवृत्ति के लिए कही गई है।

27 अष्ट प्रवचन माताओ के सम्यक् आचरण का फल

मूल गाथा- एयाओ पवयणमाया, जे सम्म आयरे मुणी।
सो खिप्प सव्वससारा, विप्पमुच्चइ पडिए॥२७॥

त्ति बेमि

इति समिईओ चउवीसइम अज्झयण समत्त ॥२४॥

संस्कृत छाया- एता प्रवचनमातृ , य सम्यगाचरेन्मुनि ।
स क्षिप्र सर्वससारात्, विप्रमुच्यते पण्डित ॥२७॥

इति ब्रवीमि।

इति समितयश्चतुर्विंशाध्ययन समाप्तम्॥२४॥

अन्वयार्थ-जे-जो, मुणी-मुनि, एयाओ-इन, पवयणमाया-प्रवचन माताओ का, सम्म-सम्यक् प्रकार से, आयरे-आचरण करता है, सो-वह, पडिए-पडित साधु, ससारा-ससार के, सव्व-समस्त (बन्धनों से) खिप्पं-शीघ्र, विप्पमुच्चइ-छूट जाता है, मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-उपसहार-जो मुनि इन प्रवचन माताओ का सम्यग् प्रकार से आचरण-आराधन करता है वह पण्डित विद्वान मुनि शीघ्र ही ससार के समस्त बन्धना से मुक्त हो जाता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार प्रवचन माता नामक चोइसवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

□□□

यज्ञीय - पचविशति अध्ययन

उत्थानिका

आधुनिक परिवेश मे ब्राह्मण शब्द एक जातियता-बोध के सकुचित दायरे मे सिमट कर रह गया है। यदि कुछ लाक्षणिक अर्थों मे जाता भी है तो केवल इतना ही कि जो कुछ ज्योतिष ज्ञान के फल निर्देश बता दे, मुहूर्त निकाल दे, जन्मपत्री के टेवा आदि निकाल दे या यज्ञ-यागादि का होता बन जाए।

वास्तव मे ब्राह्मण शब्द का इतना सकुचित अर्थ करना ब्राह्मण शब्द की अवमानना है। एक समय था जब भक्ति-साधना या परमात्म-उपासना, यज्ञ-याग तक सिमट करके रह गई थी और उसके होता-आहुति देने वाले मत्रपाठी को महत्वपूर्ण मानकर उसे ब्राह्मण का विरुद दिया जाता था। बस इसी आधार पर एक मत्रपाठी वर्ग विशेष को ब्राह्मण सज्ञा दी जाने लगी।

लाक्षणिक दृष्टि से ब्राह्मण-ब्रह्म-आत्मा मे रमण करने वाला कौन होता है? आत्म शुद्धि का साधन यज्ञ क्या है? यज्ञ की सामग्री क्या है? इन सभी जिज्ञासाओ का सयुक्तिक समाधान कारक विवेचन दिया है प्रस्तुत अध्ययन मे। दो भ्राताओ के मार्मिक सवाद मे यज्ञ त्याग एव ब्राह्मणत्व की परिभाषाए अभिव्यक्त होती है। इस सवाद की एक पूर्व पीठिका-भूमिका है जो निम्न कथा प्रसग के रूप मे अभिव्यक्त होती है।

वाराणसी नगरी मे जयघोष और विजय घोष दो भाई रहते थे, वे काश्यप गौत्रीय ब्राह्मण थे। वेद वेदागो के अध्येता-ज्ञाता थे। एक समय जयघोष गगा नदी पर स्नान करने गया हुआ था। उसने वहा एक सर्प को देखा जो मेढक निगल रहा था और उसी समय उस सर्प को एक कुरर पक्षी गिद्ध उठा कर उड रहा था। इस दृश्य को देखकर जयघोष विचार करने लगा-''कैसा विचित्र ससार है यह। यहा एक प्राणी दूसरे प्राणी को और दूसरा तीसरे को खाने को कटिबद्ध रहता है। इसी विचार की गहराई मे पहुचने पर जयघोष को ससार से विरक्ति हो आयी।'' वह ससार को बन्धन रूप और धर्म को मुक्ति द्वार समझने लगा, उसके मन मे ससार के प्रति उदासीनता छा गई, वह सत्य धर्म की खोज मे जैन श्रमणो के सम्पर्क मे आया और श्रमण धर्म की मर्यादा एव उच्च कोटि की त्याग साधना को समझ कर प्रव्रजित हो गया।

प्रव्रज्या के बाद विभिन्न स्थानों में परिभ्रमण करते हुए वह एक बार वाराणसी में आकर नगर के बाहर उद्यान मे ठहरा। वह अपने मास खमण की तपस्या के पारणे के लिए नगर मे भ्रमण करते हुए उस यज्ञ मण्डप मे पहुच गया जहा उसका भ्राता विजय घोष अनेक ब्राह्मणो के साथ यज्ञ कर रहा था। चूकि जयघोष का शरीर उग्र तपश्चरण के कारण अत्यन्त कृश हो गया था। अत विजय घोष उन्हे पहचान नहीं सका। जयघोष ने भिक्षा याचना की तो विजय घोष ने यह कह कर निषेध कर दिया कि यह अन्न ब्राह्मणो के लिए है, तुम्हार लिए नहीं। जयघोष मुनि इस उत्तर

संस्कृत छाया- एता प्रवचनमातृ, य सम्यगाचरेन्मुनि ।
स क्षिप्र सर्वससारात्, विप्रमुच्यते पण्डित ॥२७॥

इति ब्रवीमि।

इति समितयश्चतुर्विंशमध्ययन समाप्तम् ॥२४॥

अन्वयार्थ-जे-जो, मुणी-मुनि, एयाओ-इन, पवयणमाया-प्रवचन माताओ का, सम्मं-सम्यक् प्रकार से, आयरे-आचरण करता है, सो-वह, पडिए-पडित साधु, ससारा-ससार के, सव्व-समस्त (बन्धनो से) खिप्पं-शीघ्र, विप्पमुच्चइ-छूट जाता है, मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-उपसहार-जो मुनि इन प्रवचन माताओ का सम्यग् प्रकार से आचरण-आराधन करता है वह पण्डित विद्वान मुनि शीघ्र ही ससार के समस्त बन्धनो से मुक्त हो जाता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार प्रवचन माता नामक चोइसवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

□□□

यज्ञीय - पचविशति अध्ययन

उत्थानिका

आधुनिक परिवेश मे ब्राह्मण शब्द एक जातियता-बोध के सकुचित दायरे मे सिमट कर रह गया है। यदि कुछ लाक्षणिक अर्थों मे जाता भी है तो केवल इतना ही कि जो कुछ ज्योतिष ज्ञान के फल निर्देश बता दे, मुहूर्त निकाल दे, जन्मपत्री के टेवा आदि निकाल दें या यज्ञ-यागादि का होता बन जाए।

वास्तव मे ब्राह्मण शब्द का इतना सकुचित अर्थ करना ब्राह्मण शब्द की अवमानना है। एक समय था जब भक्ति-साधना या परमात्म-उपासना, यज्ञ-याग तक सिमट करके रह गई थी और उसके होता-आहुति देने वाले मत्रपाठी को महत्वपूर्ण मानकर उसे ब्राह्मण का विरुद दिया जाता था। बस इसी आधार पर एक मत्रपाठी वर्ग विशेष को ब्राह्मण सज्ञा दी जाने लगी।

लाक्षणिक दृष्टि से ब्राह्मण-ब्रह्म-आत्मा मे रमण करने वाला कौन होता है? आत्म शुद्धि का साधन यज्ञ क्या है? यज्ञ की सामग्री क्या है? इन सभी जिज्ञासाओ का सयुक्तिक समाधान कारक विवेचन दिया है प्रस्तुत अध्ययन मे। दो भ्राताओ के मार्मिक सवाद मे यज्ञ त्याग एव ब्राह्मणत्व की परिभाषाए अभिव्यक्त होती है। इस सवाद की एक पूर्व पीठिका-भूमिका है जो निम्न कथा प्रसग के रूप मे अभिव्यक्त होती है।

वाराणसी नगरी म जयघोष और विजय घोष दो भाई रहते थे, वे काश्यप गौत्रीय ब्राह्मण थे। वेद वेदागो के अध्येता-ज्ञाता थे। एक समय जयघोष गगा नदी पर स्नान करने गया हुआ था। उसने वहा एक सर्प को देखा जो मेढक निगल रहा था और उसी समय उस सर्प को एक कुरर पक्षी गिद्ध उठा कर उड रहा था। इस दृश्य को देखकर जयघोष विचार करने लगा-''कैसा विचित्र ससार है यह। यहा एक प्राणी दूसरे प्राणी को और दूसरा तीसरे को खाने को कटिबद्ध रहता है। इसी विचार की गहराई मे पहुचने पर जयघोष को ससार से विरक्ति हो आयी।'' वह ससार को बन्धन रूप और धर्म को मुक्ति द्वार समझने लगा, उसके मन मे ससार के प्रति उदासीनता छा गई, वह सत्य धर्म की खोज मे जैन श्रमणो के सम्पर्क मे आया और श्रमण धर्म की मर्यादा एव उच्च कोटि की त्याग साधना को समझ कर प्रव्रजित हो गया।

प्रव्रज्या के बाद विभिन्न स्थाना मे परिभ्रमण करते हुए वह एक बार वाराणसी मे आकर नगर के बाहर उद्यान मे ठहरा। वह अपने मास खमण की तपस्या के पारणे के लिए नगर मे भमण करते हुए उस यज्ञ मण्डप मे पहुच गया जहा उसका भ्राता विजय घोष अनेक ब्राह्मणो के साथ यज्ञ कर रहा था। चूकि जयघोष का शरीर उग्र तपश्चरण के कारण अत्यन्त कृश हो गया था। अत विजय घोष उन्हे पहचान नहीं सका। जयघोष ने भिक्षा याचना की तो विजय घोष ने यह कह कर निषेध कर दिया कि यह अन्न ब्राह्मणो के लिए है तुम्हारे लिए नहीं। जयघोष मुनि इस उत्तर

से क्रुद्ध नहीं हुए। अत्यन्त समभाव से सयत स्वर मे उन्होने कहा-"मुझे तुम्हारी भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है और न मैं भिक्षा प्राप्ति के लिए तुम्हे कुछ कह रहा हू अपितु तुम्हे सम्यग् बोध प्राप्त हो इसके लिए बता रहा हू कि तुम जो यह यज्ञ कर रहे हो, यह सही यज्ञ नहीं है। इसमे तो तुम जीवो की हिसा के भागीदार होते हो, सच्चा यज्ञ तो भाव यज्ञ होता है।"

भाव यज्ञ मे ज्ञान रूप अग्नि मे कषाय और वासना को जलाना चाहिए इसी प्रकार तुम जिसे ब्राह्मण कह रहे हो, वह ब्राह्मणत्व का सच्चा स्वरूप नहीं है। जो व्यक्ति चरित्र सम्पन्न हो, आत्मा मे रमण करता हो, वह ब्राह्मण होता है। ब्राह्मण होना सही अर्थों मे कोई सरल बात नहीं है। ब्राह्मण कुल मे जन्म ले लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता है। इसी प्रकार उस कुल मे उत्पन्न होने मात्र से कोई क्षत्रिय, वैश्य या शुद्र नहीं हो जाता है। ब्राह्मणत्व आदि से सबधित कार्य करने से ही ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि बना जा सकता है।

जयघोष मुनि ने "ब्राह्मणत्व" का अति सुदर और मार्मिक स्वरूप समझाते हुए विजय घोष को स्पष्ट रूप से कहा कि तुम इस हिसाजनक यज्ञ को छोड कर सच्चे ब्राह्मण बनो। विजय घोष पर मुनि जयघोष के वचनो का अत्यन्त प्रभाव पडा और वह भी ससार से विरक्त हो गया। प्रस्तुत अध्ययन आज की जन्मना जाति प्रथा पर एक करारा प्रहार करता है। साथ ही ब्राह्मणत्व आदि के सही सदर्भ प्रस्तुत करता है।

□□□

यज्ञीय - पचविशति अध्ययन

सूक्ति साराश

किसी भी क्षेत्र मे आभिनिवेशिक दृष्टि त्याज्य है।
साम्प्रदायिकता का अभिनिवेश साधना-असाधना को नहीं देखता है,
वह अह मान्यता को ही महत्व देता है।

लाभ-अलाभ मे सम बने रहना साधना का मूल अग है।
समभावी साधक मान-अपमान पर तुष्ट-रुष्ट नहीं होता। कोई
आहारादि दे तो खुश नहीं, न दे तो रोष नहीं।

बुद्धि के द्वार सदैव खुले रखो, सत्य मिलते ही उसे तुरन्त स्वीकार कर लो।
अपनी मान्यता को सत्य मानते हुए भी जो ज्ञान के द्वार खुले रखता है,
वह तत्त्व ज्ञान का प्रसग आते ही उसे सहजता से स्वीकार कर लेता है।

प्रिय-अप्रिय मे समत्व भावी बने रहना साधक का लक्षण है।
जो किसी प्रिय के आने पर हर्षित नहीं होता और जाने पर दु खित नहीं
होता वही-ब्राह्मण साधक है।

अनासक्ति भाव की ओर गतिशील व्यक्ति ही साधना के प्रति गति कर सकता है।
जो जल-कमल की तरह भोगो से निर्लिप्त रहता है, वही साधना पथ
पर गति कर सकता है।

किसी के प्रति आसक्ति साधना का प्रतिबधक है।
जिसके कोई स्वजन परिजन नहीं, जिसकी किसी मे आसक्ति नहीं,
वही साधक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

जहाँ हिंसा है, वहाँ धर्म कैसे हो सकता है?
जिन यज्ञो मे पशुवध आदि हिसाकारी प्रवृत्ति होती है,
उन्हे धार्मिक नहीं कहा जा सकता है।

साधना का सम्बन्ध समता, ब्रह्मचर्य, ज्ञान और तप से होता है,
केवल बाह्याचार से नहीं।
जगल मे रहने से या सिर मुण्डा लेने से कोई साधक नहीं बन जाता,
बाह्यवेश भी साधक का प्रतीक नहीं बन सकता है।

ससार परिभ्रमण का कारण भोगासक्ति है।
जो भोगो से उपरत हो जाता है, वह ससार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

□□□

अह जन्नइज्जं पञ्चवीसइमं अज्झयणं

अथ यज्ञीयं पञ्चविंशतितममध्यनम्

यज्ञीय

1 जय घोप मुनि का सक्षेप परिचय

मूल गाथा- माहणकुलसभूओ, आसि विप्पो महायसो।
जायाई जमजण्णम्मि, जयघोसिति णामओ॥1॥

सस्कृत छाया- ब्राह्मणकुलसभूत , आसीद् विप्रो महायशा ।
यायाजी यमयज्ञे, जयघोप इति नामत ॥१॥

अन्वयार्थ-माहण-ब्राह्मण, कुल-कुल मे, सभूओ-उत्पन्न, महायसो-महायशस्वी, जमजण्णम्मि-यमनियम रूप भाव यज्ञ, जायाई-करने वाले, जय घोसित्ति-जयघोप, त्ति-इस, णामओ-नाम से, प्रसिद्ध, विप्पो-विप्र (ब्राह्मण) आसी-थे।

भावानुवाद-ब्राह्मण कुल मे समुत्पन्न जयघोप नामक महान् यशस्वी विप्र था, जो यम, नियम-रूप भाव यज्ञ में अनुरक्त रहता था।

2 व्यक्तित्व के सबध एव वाराणसी मे पदार्पण

मूल गाथा- इदियग्गामणिग्गाही, मग्गगामी महामुणी।
गामाणुगाम रीयते, पत्तो वाणारसि पुरिं॥2॥

सस्कृत छाया- इन्द्रियग्रामनिग्राही, मार्गगामी महामुनि ।
ग्रामानुग्राम रीयमाण , प्राप्तो वाराणसीं पुरीम्॥२॥

अन्वयार्थ-इदियग्गाम-इन्द्रियो के समूह का, णिग्गाही-निग्रह करने वाला, मग्गगामी-मुक्ति पथ में गमन करने वाला, महामुणी-महामुनि (जयघोप), गामाणुगाम-ग्रामानुग्राम, रीयते-विचरण करते हुए, वाणारसि-वाणारसी (बनारस), पुरिं-नगरी को, पत्तो-प्राप्त हुए।

भावानुवाद-वे इन्द्रिय विपया का निग्रह करने वाले, मोक्षमार्ग के प्रति गतिशील महामुनि ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वाराणसी नगरी को पहुचे।

3 मुनि के निवास योग्य भूमि का उल्लेख

मूल गाथा- **वाणारसीए बहिया, उज्जाणम्मि मणोरमे।**
फासुए सेज्जसथारे, तत्थ वासमुवागए॥३॥

सस्कृत छाया- **वाराणस्या बहि , उद्याने मनोरमे।**
प्रासुके शय्यासस्तारे, तत्र वासमुपागत ॥३॥

अन्वयार्थ-तत्थ-उस, वाणारसीए-वाणारसी नगरी के, बहिया-बाहर, फासुए-प्रासुक, सेज्ज-शय्या, सथारे-सथारे वाले, मणोरमे-एक मनोहर, उज्जाणम्मि-उद्यान मे, वास-निवास को, उवागए-प्राप्त किया।

भावानुवाद-वाराणसी के बाहर मनोहर उद्यान मे प्रासुक शय्या-आवास और सस्तारक-पीठ फलक आदि आसन ग्रहण करके ठहर गए।

4 वेद वेत्ता विजय घोष यज्ञ समारम्भ मे प्रवृत्त

मूल गाथा- **अह तेणेव कालेण, पुरीए तत्थ माहणे।**
विजयघोसित्ति णामेण, जण्ण जयइ वेयवी॥४॥

सस्कृत छाया- **अथ तस्मिन्नेव काले, पुर्या तत्र ब्राह्मण ।**
विजयघोष इति नाम्ना, यज्ञ यजति वेदवित्॥४॥

अन्वयार्थ-अह-इसके बाद, तेणेव कालेण-उस समय, तत्थ-उस, पुरीए-नगरी मे, वेयवी-वेदवित् (वेद का ज्ञाता), विजयघोसि-विजयघोष, त्ति-इस, णामेण-नाम से प्रसिद्ध, माहणे-एक ब्राह्मण, जण्ण-यज्ञ, जयइ-करता था।

भावानुवाद-उसी समय उस नगरी मे वेदो का ज्ञाता विजय घोष नामक ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था।

5 मास खमण के पारणे हेतु भिक्षार्थ गमन

मूल गाथा- **अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमणपारणे।**
विजयघोसस्स जण्णम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए॥५॥

सस्कृत छाया- **अथ स तत्रानगार , मासक्षमणपारणायाम्।**
विजयघोषस्य यज्ञे, भिक्षार्थमुपस्थित ॥५॥

अन्वयार्थ-अह-अब, तत्थ-वहा पर, से-वे जयघोष, अणगारे-मुनि, मासक्खमण-मास खमण के, पारणे-पारणे के दिन, विजय घोसस्स-विजय घोष ब्राह्मण की, जण्णम्मि-यज्ञ शाला में, भिक्खमट्ठा-भिक्षा के लिए, उवट्ठिए-पधारे।

भावानुवाद-एक बार वे जयघोष मुनि एक मास की तपश्चर्या के पारणे के समय विजय घोष ब्राह्मण की उस यज्ञशाला मे भिक्षा हेतु उपस्थित हुए।

6 जयघोष को भिक्षा देने का निषेध

मूल गाथा- समुवट्ठियं तहिं संतं, जायगो पडिसेहए।
ण हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू जायाहि अण्णओ ॥६॥

संस्कृत छाया- समुपस्थितं तत्र सन्तं, याजकः प्रतिषेधयति।
न खलु दास्यामि तुभ्यं भिक्षां, भिक्षो! याचस्वान्यतः ॥६॥

अन्वयार्थ-तहिं-वहां, समुवट्ठियं-उपस्थित हुए, संतं-भिक्षु को, पडिसेहए-निषेध करता हुआ, जायगो-याचक (विजयघोष) ने कहा कि, भिक्खू-हे भिक्षो, ते-तुझे (मैं), हु-निश्चय ही, भिक्खं-भिक्षा, ण-नहीं, दाहामि दूंगा, अण्णओ-अन्यत्र जाकर, जायाहि-याचना करो (भिक्षा मांगो)।

भावानुवाद-यज्ञकर्ता ब्राह्मण वहां भिक्षा के लिए आगत मुनि को प्रतिषेध करता हुआ कहता है-"हे भिक्षो! मैं तुझे *भिक्षा नहीं दूंगा, तुम अन्यत्र जाकर मांगो।"*

7 वेदवित् यज्ञार्थी और ज्योतिषांग के वेत्ता

मूल गाथा- जे य वेयविऊ विप्पा, जण्णट्ठा य जे दिया।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण पारगा ॥७॥

संस्कृत छाया- ये च वेदविदो विप्राः, यज्ञार्थाश्च ये द्विजाः।
ज्योतिषांगविदो ये च, ये च धर्माणां पारगाः ॥७॥

अन्वयार्थ-जे-जो, विप्पा-विप्र, वेयविऊ-वेदों के जानने वाले, य-और, जे-जो, दिया-द्विज (ब्राह्मण), जण्णट्ठा-यज्ञार्थी हैं, य-तथा, जे-जो, जोइसंगविउ-ज्योतिषांग के ज्ञाता हैं, य-और, जे-जो, धम्माण-धर्मों के, पारगा-पारगामी हैं।

भावानुवाद-"जो ब्राह्मण वेदों के ज्ञाता हैं, जो यज्ञ करने वाले हैं और जो ज्योतिष के अंकों-अंगों के जानकार हैं तथा धर्म ग्रन्थों के पारगामी हैं।"

8 भोज्य पदार्थ का निर्माण किनके लिए

मूल गाथा- जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य।
तेसिं अण्णमिणं देयं, भो भिक्खू सव्वकामियं ॥८॥

संस्कृत छाया- ये समर्थाः समुद्धर्तुं, परमात्मानमेव च।
तेभ्योऽन्नमिदं देयं, भो भिक्षो! सर्वकाम्यम् ॥८॥

अन्वयार्थ-जे-जो, पर-दूसरों का, य-और, अप्पाणमेव-अपनी आत्मा का, समुद्धत्तुं-उद्धार करने में, समत्था-समर्थ हैं, भो भिक्खू-हे भिक्षो, सव्वकामियं-सर्व कामित, इणं-यह अण्णं-अन्न, भोजनादि पदार्थ, तेसिं-उन ब्राह्मणों को, देयं-देने योग्य है।

भावानुवाद-"जो स्व-पर का उद्धार करने में समर्थ हैं, हे भिक्षो! यह सर्वकामिक-सबरस युक्त एवं सबका इच्छि

अन्न उन्हीं को देने के लिए है।"

9 भिक्षा निषेध सम्बन्धी नीरस वचनो का प्रभाव

मूल गाथा- सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी।
णवि रुट्ठो णवि तुट्ठो, उत्तमट्ठगवेसओ॥९॥

सस्कृत छाया- स तत्रैव प्रतिषिद्ध , याजकेन महामुनि ।
नापि रुष्टो नापि तुष्ट , उत्तमार्थगवेषक ॥९॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहा, जायगेण-यज्ञ करने वाले (विजय घोष) द्वारा, एव-इस प्रकार, पडिसिद्धो-निषेध कर देने पर, सो-वे जयघोष, उत्तमट्ठ गवेसओ-उत्तम अर्थ के गवेषक, महामुणी-महामुनि, णवि रुट्ठो-न रुष्ट हुए (और) णवि तुट्ठो-न तुष्ट हुए।

भावानुवाद-वहा यज्ञ कर्ता विजय घोष द्वारा इस प्रकार निषेध किये जाने पर उत्तम अर्थ का अन्वेषक वह महामुनि न रुष्ट-क्रुद्ध हुआ और न ही तुष्ट-प्रसन्न हुआ, समभावी बना रहा।

10 समभावी जयघोष मुनि के वक्ष्यमाण कथन

मूल गाथा- णण्णट्ठ पाणहेउ वा, णवि णिव्वाहणाय वा।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, इम वयणमब्बवी॥१०॥

सस्कृत छाया- नान्नार्थं पानहेतु वा, नापि निर्वाहणाय वा।
तेषा विमोक्षणार्थम्, इद वचनमब्रवीत्॥१०॥

अन्वयार्थ-णण्णट्ठ-न तो अन्न के लिए, वा-और, ण पाणहेउ-न पानी के लिए, वा-और, णवि-न ही, णिव्वाहणाय- (वस्त्रादि) निर्वाह के लिए, तेसि-उनकी, विमोक्खणट्ठाए-विमुक्ति के लिए, इम-इस प्रकार, वयण-वचन, अब्बवी-कहने लगे-

भावानुवाद-न अन्न के लिए, न पानी के लिए, न जीवन निर्वाह के लिए, अपितु उन ब्राह्मणा की विमुक्ति के लिए उस महामुनि ने इस प्रकार कहा-

11 जयघोष द्वारा विजय घोष से प्रति प्रश्न

मूल गाथा- णवि जाणसि वेयमुह, णवि जण्णाण ज मुह।
णक्खत्ताण मुह ज च, ज च धम्माण वा मुह॥११॥

सस्कृत छाया- नापि जानासि वेदमुख, नापि यज्ञाना यन्मुखम्।
नक्षत्राणा मुख यच्च, यच्च धर्माणा वा मुखम्॥११॥

अन्वयार्थ-णवि-न तो, (तुम) वेयमुह-वेदो का मुख, च-और, णवि-न तुम, ज-जा, जण्णाण-यज्ञों का मुह-मुख है, च-और, ज-जो, णक्खत्ताण-नक्षत्रो के, मुह-मुख, य-तथा, ज-जो, धम्माण वा-धर्मों के, मुह-मुख को जाणसि-जानते हो।

भावानुवाद-जयघोष मुनि-"तुम न तो वेदो का मुख जानते हो और न जो यज्ञो का मुख है, जो नक्षत्रो का मुख है और जो धर्मों का मुख है उसे ही जानते हो।"

12 आत्मा के उद्धार करने मे समर्थ को जानना

मूल गाथा- जे समत्था समुद्धत्तु, परमप्पाणमेव य।
ण ते तुम वियाणासि, अह जाणासि तो भण॥12॥

सस्कृत छाया- ये समर्था समुद्धर्तुं, परमात्मानमेव च।
न तान् त्व विजानासि, अथ जानासि तदा भण॥१२॥

अन्वयार्थ-य-और, जे-जो, पर-दूसरो की, अप्पाणमेव-अपनी आत्मा का, समुद्धत्तु-उद्धार करने में, समत्था-समर्थ हैं, ते-उनको भी, तुम-तुम, ण वियाणासि-नहीं जानते हो, अह-यदि, जाणासि-जानते हो, तो-तो, भण-बताओ।

भावानुवाद-"जो अपना और दूसरा का उद्धार करने म सक्षम हैं, उन्हे भी तुम नहीं जानते हो। यदि जानते हा तो बताओ।"

13 निरुत्तर विजयघोष द्वारा प्रश्न पूछने की कामना

मूल गाथा- तस्सऽक्खेवपमोक्ख तु, अचयतो तहिं दिओ।
सपरिसो पजली होउ, पुच्छई त महामुणि॥13॥

सस्कृत छाया- तस्याक्षेपप्रमोक्ष तु, (दातुम्) अशक्नुवन् तत्र द्विज।
सपरिषत् प्राञ्जलिर्भूत्वा, पृच्छति त महामुनिम्॥१३॥

अन्वयार्थ-तस्सक्खेव-उस मुनि के आक्षेपो का, पमोक्ख-उत्तर देने मे, अचयतो-असमर्थ, दिओ-द्विज (विजय घोष ब्राह्मण) तहिं-उस यज्ञशाला मे, सपरिसो-परिषद् सहित, पजली होउ-हाथ जोड कर, त-उस, महामुणि-महामुनि से, पुच्छइ-पूछने लगा-

भावानुवाद-उनके (मुनि के) आक्षेपो-प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ ब्राह्मण ने अपनी समस्त परिषद् के साथ कर-बद्ध होकर यज्ञ शाला मे उस महामुनि से पूछा-

14 विजय घोष द्वारा प्रश्नो के समाधान की जिज्ञासा

मूल गाथा- वेयाण च मुह बूहि, बूहि जण्णाण ज मुह।
णक्खत्ताण मुह बूहि, बूहि धम्माण वा मुह॥14॥

सस्कृत छाया- वेदाना च मुख ब्रूहि, ब्रूहि यज्ञाना यन्मुखम्।
नक्षत्राणा मुख ब्रूहि, ब्रूहि धर्माणा वा मुखम्॥१४॥

अन्वयार्थ-हे मुने! वेयाण-वेदो के, मुह-मुख को, वूहि-कहो, च-और, ज-जो, जण्णाण-यज्ञों का, मुह-मुख है, वूहि-उसे कहो, णक्खत्ताण-नक्षत्रों का, मुह-जो मुख है, वूहि-उसे कहो, वा-तथा, धम्माण-धर्मों के, मुहं-मुख को, वूहि-बताओ।

भावानुवाद-विजय घोष-"हे मुने! तुम्हीं वेदो का मुख कहो, यज्ञो का जो मुख है, वह बतलाओ, नक्षत्रो का मुख भी बतलाओ और धर्मों का जो मुख है वह भी आप ही बताये।"

15 सशय दूर करने की प्रार्थना

मूल गाथा- जे समत्था समुद्धत्तु, परमप्पाणमेव य।
एय मे ससय सव्व, साहू कहसु पुच्छिओ॥१५॥

सस्कृत छाया- ये समर्था समुद्धर्तुं, परमात्मानमेव च।
एत मे सशय सर्वं, साधो कथय(मया) पृष्ट ॥१५॥

अन्वयार्थ-य-और, जे-जो, पर-दूसरो की, अप्पाणमेव-अपनी आत्मा का, समुद्धत्तु-उद्धार करने मे, समत्था-समर्थ हैं, (वे कौन हैं) मे-मेरे मन मे, एय-यह, सव्व-सभी, ससय-सशय है, (इसलिए) साहू-हे साधो!, पुच्छिओ-मेरे पूछने पर, कहसु-(आप) अवश्य कहिए।

भावानुवाद-"तथा अपना और दूसरो का उद्धार करने मे जो सक्षम हैं, उन्हे भी बतलाओ। हे साधो! मुझे ये सब सशय-शकाए हैं, मैं पूछता हू, आप बताये।"

16 जयघोष मुनि द्वारा प्रश्नो के उत्तर

मूल गाथा- अग्गिहुत्तमुहा वेया, जण्णट्ठी वेयसा मुह।
णक्खत्ताण मुह चन्दो, धम्माण कासवो मुह॥१६॥

सस्कृत छाया- अग्निहोत्रमुखा वेदा, यज्ञार्थी वेदसा मुखम्।
नक्षत्राणा मुख चन्द्र, धर्माणा काश्यपो मुखम्॥१६॥

अन्वयार्थ-मुनि कहते हैं-वेया-वेद, अग्गिहुत्तमुहा-अग्निहोत्र मुख हैं, जण्णट्ठी-यज्ञार्थी, वेयसा-यज्ञो का, मुह-मुख है, णक्खत्ताण-नक्षत्रो का, मुह-मुख, चन्दो-चन्द्रमा है, धम्माण-धर्मों का, मुह-मुख, कासवो-काश्यप (ऋषभदेव) हैं।

भावानुवाद-जयघोष मुनि-"वेदो का मुख अग्निहोत्र है अर्थात् वेद अग्नि होत्र की मुख्यता वाले हैं। यज्ञों का मुख यज्ञार्थी-भाव यज्ञ करने वाला है। नक्षत्रो का मुख या नक्षत्रो में प्रमुख चन्द्र है और धर्मों का मुख या धर्मों म प्रमुख काश्यप गोत्रीय भगवान् ऋषभ देव हैं।"

17 भगवान् ऋषभदेव का महत्व-नक्षत्र और चन्द्रमा का दृष्टान्त

मूल गाथा- जहा चन्द गहाईया, चिट्ठति पजलीउडा।
वदमाणा णमसता, उत्तम मणहारिणो॥१७॥

सस्कृत छाया- यथा चन्द्र ग्रहादिका, तिष्ठन्ति प्राञ्जलिपुटा।
वन्दमाना नमस्यन्त, उत्तम मनोहारिण ॥१७॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, गहाईया-ग्रहादिक, चन्द-चन्द्रमा के सम्मुख, पजलीउडा-हाथ जोडकर, वदमाणा वदन करते हुए, णमसता-नमस्कार करते हुए, मणहारिणो-मन को हरते हुए, उत्तम-अति विनम भाव स, चिट्ठति-खडे रहते हैं।

भावानुवाद-"जैसे ग्रह नक्षत्र आदि चन्द्रमा के समक्ष हाथ जोड कर वन्दन करते हुए, स्तुति करते हुए मनोहर रूप से अति विनम्र भाव से खडे रहते हैं, भगवान् ऋषभदेव भी वैसे ही देवेन्द्र-नरेन्द्र आदि सभी से वदित होते हैं।"

18 पाचवे प्रश्न का उत्तर-मुनि की दृष्टि मे

मूल गाथा- **अजाणगा जण्णवाई, विज्जामाहण संपया।**
मूढा सज्झायतवसा भासच्छण्णा इवग्गिणो॥१८॥

सस्कृत छाया- **अजानाना यज्ञवादिन , विद्याब्राह्मणसम्पदाम्।**
मूढा स्वाध्यायतपसा, भस्मच्छन्ना इवाग्नय ॥१८॥

अन्वयार्थ-विज्जा-विद्या और, माहण-ब्राह्मण की, सपया-सम्पदा को, अजाणगा-नहीं जानने वाले, सज्झाय-स्वाध्याय और, तवसा-तव से, मूढा-मूढ, जण्णवाई-यज्ञ करने वाले (ये ब्राह्मण), भासच्छण्णा-भस्माच्छादित, अग्गिणो-अग्नि की, इव-तरह (कषाया से जल रहे हैं)।

भावानुवाद-ब्रह्म विद्या रूप ब्राह्मण की सम्पत्ति से अनभिज्ञ मूढ यज्ञवादी, स्वाध्याय और तप के विषय मे वैसे ही आच्छादित मति हैं जैसे कि राख से ढकी हुई अग्नि होती है।

19 प्रथम ब्राह्मण शब्द का महत्व सूचन

मूल गाथा- **जो लोए बम्भणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा।**
सया कुसलसदिट्ठ, त वय बूम माहण॥१९॥

सस्कृत छाया- **यो लोके ब्राह्मण उक्त , अग्निरिव महितो यथा।**
सदा कुशलसन्दिष्ट, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम्॥१९॥

अन्वयार्थ-कुसल-कुशल, सदिट्ठ-सदिष्ठ-तत्वज्ञ पुरुषा द्वारा, जो-जो, लोए-लोक मे, बभणो-ब्राह्मण, वुत्तो-कहा गया है, (और जो) अग्गीव-अग्नि के, जहा-समान, महिओ-पूजनीय है, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-तत्त्वज्ञ पुरुषो ने लोक मे जिन्हें ब्राह्मण कहा है और जा सदा अग्नि के समान पूजनीय है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

20 तीर्थंकर भावित ब्राह्मण लक्षणो का दिग्दशन

मूल गाथा- **जो ण सज्जइ आगतु, पव्वयंतो ण सोयई।**
रमइ अज्जवयणम्मि, त वय बूम माहण॥20॥

सस्कृत छाया- यो न स्वजत्यागन्तु, प्रव्रजन्न शोचति।
रमते आर्यवचने, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२०॥

अन्वयार्थ-जो-जो, पुरुष, आगतु-स्वजनादि के आगमन पर, ण सज्जइ-आसक्त नहीं होता, पव्वयतो-प्रव्रजित होता हुआ, ण सोयइ-शोक नहीं करता, (किन्तु) अज्ज-आर्य, वयणम्मि-वचनो मे, रमइ-रमण करता है, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते है।

भावानुवाद-जो व्यक्ति स्वजनादि प्रियजनो के आने पर उनमे आसक्त नहीं होता और उनके जाने पर शोक नहीं करता है जो आर्य-वचन-तीर्थंकर-वाणी मे रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

21 राग द्वेष और भय से रहित ब्राह्मण

मूल गाथा- जायरुव जहामट्ठ, णिद्धतमलपावगं।
रागद्दोसभयाईय, त वय बूम माहण ॥२१॥

सस्कृत छाया- जातरूप यथामृष्ट, निध्मातमलपापकम्।
रागद्वेषभयातीत, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२१॥

अन्वयार्थ-णिद्धतमल-पाप रूपी मल का नाश करके, जहामट्ठ-कसौटी पर कस कर, पावग-अग्नि से शुद्ध किया हुआ, जायरूव-जातरूप (स्वर्ग के समान निर्मल) है, रागद्दोस-रागद्वेष (तथा) भयाईय-भय से रहित है, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-पाप रूप मल को नष्ट करके जो कसौटी पर कसकर अग्नि के द्वारा दग्ध मल हुए कुन्दन-सोने के समान विशुद्ध है, जो राग, द्वेष और भय से अतीत-मुक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

22 सयम शील परम तपस्वी साधु को ही ब्राह्मण रूप

मूल गाथा- तवस्सिय किस दत, अवचियमससोणिय।
सुव्वय पत्तणिव्वाण, त वय बूम माहण ॥२२॥

सस्कृत छाया- तपस्विन कृश दान्तम्, अपचितमासशोणितम्।
सुव्रत प्राप्तनिर्वाण, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२२॥

अन्वयार्थ-तवस्सिय-तप का आचरण कर, किस-(शरीर को)-कृश, (एव) मस-मास (तथा) सोणिय-रुधिर को, अवचिय-अपचित (कम किया है), दत-इन्द्रियों का दमन किया है, णिव्वाण-निर्वाण को, पत्त-प्राप्त किया है, (जो) सुव्वय-सुदर व्रतो वाला है, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-जिसने उग्र तप का आचरण करके अपने तन को कृश बना दिया है और रक्त और मास को सुखा डाला है, जिसने पाचो इन्द्रियो का दमन किया है, जो सुव्रत एव कषायाग्नि को शात कर निर्वाण-पथारूढ है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

23 हिंसादि से निवृत्त ब्राह्मण स्वरूप (प्रथम महाव्रत का स्वरूप)

मूल गाथा- तसपाणे वियाणेत्ता, सगहेण य थावरे।
जो ण हिंसइ तिविहेण, त वय बूम माहण ॥२३॥

सस्कृत छाया- त्रसप्राणिनो विज्ञाय, सग्रहेण च स्थावरान्।
यो न हिनस्ति त्रिविधेन, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२३॥

अन्वयार्थ-जो-जो, तस-त्रस, य-और, थावरे-स्थावर, पाणे-प्राणियो को, सगहेण-सक्षेप से, वियाणित्ता-जानकर, तिविहेण-तीन करण तीन योग से, ण हिंसइ-हिसा नहीं करता है, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, वूम-कहते हैं।

भावानुवाद-त्रस और स्थावर प्राणियो को सम्यक् प्रकार से जानकर जो उनकी मन, वचन और काया से हिसा नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

24 द्वितीय महाव्रत का स्वरूप

मूल गाथा- कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।
मुस ण वयई जो उ, त वय बूम माहण ॥२४॥

सस्कृत छाया- क्रोधाद्वा यदि वा हास्यात्, लोभाद्वा यदि वा भयात्।
मृषा न वदति यस्तु, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२४॥

अन्वयार्थ-कोहा-क्रोध से, जइ वा-अथवा, हासा-हास्य से, लोहा-लोभ से, जइ वा-अथवा, भया-भय से, जो-जो तीन करण तीन योग से, मुस-मृषा (झूठ), ण वयई-नहीं बोलता है, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-जो क्रोध से अथवा हास्य से, लोभ से या भय से असत्य नहीं बोलता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

25 तृतीय महाव्रत का स्वरूप

मूल गाथा- चित्तमतमचित्त वा, अप्प वा जइ वा बहु।
ण गिण्हइ अदत्त जे, त वय बूम माहण ॥२५॥

सस्कृत छाया- चित्तवन्तमचित्त वा, अल्प वा यदि वा बहुम्।
न गृह्णात्यदत्त य , त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२५॥

अन्वयार्थ-चित्तमतं-सचित्त, वा-अथवा, अचित्त-अचित्त, वा तथा, अप्प-अल्प मूल्य (परिमाण) वाली, जइ वा-अथवा, बहु-बहुमूल्य वाली, अदत्त-बिना दी हुई वस्तु का, जे-जो, (तीन करण तीन योग स) ण गिण्हइ-ग्रहण नहीं करता, त-उसको, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-जो सचित्त या अचित्त, थोडी-अल्प मूल्य वाली या अधिक-बहुमूल्य वाली बिना दी हुई वस्तु को

ग्रहण नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते है।

26 चतुर्थ महाव्रत का स्वरूप

मूल गाथा- दिव्वमाणुस्सतेरिछ, जो ण सेवइ मेहुण।
मणसा कायवक्केण, त वय बूम माहण ॥२६॥

सस्कृत छाया- दिव्यमानुष्यतैरश्च, यो न सेवते मैथुनम्।
मनसा कायवाक्येन, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२६॥

अन्वयार्थ- जो-जो, मणसा-मन, वक्केण-वचन, काय-काया (तीन करण-तीन योग) से, दिव्व-देव, माणुस्स-मनुष्य (और) तेरिच्छ-तिर्यंच सम्बन्धी, मेहुण-मैथुन का, ण सेवइ-सेवन नहीं करता, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-जो मन, वचन और काया से देव, मनुष्य आर तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन का सेवन नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

27 ब्राह्मणत्व के निरूपणार्थ पाचवें महाव्रत का उल्लेख

मूल गाथा- जहा पोम जले जाय, णोवलिप्पइ वारिणा।
एव अलित्त कामेहिं, त वय बूम माहण ॥२७॥

सस्कृत छाया- यथा पद्म जले जात, नोपलिप्यते वारिणा।
एवमलिप्त कामै, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२७॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, जले-पानी मे, जाय-उत्पन्न होकर भी, पोम-कमल, वारिणा-पानी से, णोवलिप्पइ-लिप्त नहीं होता, एव-इसी प्रकार (जो पुरुष), कामेहिं-काम भोगो से, अलित्त-लिप्त नहीं होता है, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-जैसे जल में उत्पन्न होकर भी कमल जल से लिप्त नहीं होता है, वैसे ही जो काम भोगो से लिप्त नहीं होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

28 ब्राह्मणत्व के उत्तम गुणो का वर्णन

मूल गाथा- अलोलुय मुहाजीवि, अणगार अकिचण।
असंसत्त गिहत्थेसु, त वय बूम माहण ॥२८॥

सस्कृत छाया- अलोलुप मुधाजीवितम्, अनगारमकिञ्चनम्।
असंसक्त गृहस्थेषु, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥२८॥

अन्वयार्थ-अलोलुय-लोलुपता से रहित, मुहाजीवि-मुधाजीवी, अकिचण-अकिंचन (परिग्रह रहित), गिहत्थेसु गृहस्था के, असंसत्त-परिचय रहित, अणगार-जो अणगार, त-उसको, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-जो रसादि स्वादिष्ट पदार्थों के प्रति लोलुप नहीं होता है, जो नि स्वार्थ भाव से निर्दोष भिक्षा के द्वारा सयम जीवन का निर्वाह करता है, जो गृहत्यागी है, जो अकिंचन-अपरिग्रही और गृहस्थो के ससर्ग से रहित होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

29 त्याग वृत्ति को दृढतर रखने का उपदेश

मूल गाथा- जहित्ता पुव्वसजोग, णाइसगे य बधवे।
जो ण सज्जइ भोगेसु, त वय बूम माहण॥२९॥

सस्कृत छाया- हित्वा पूर्वसयोग, ज्ञाति सगाश्च बान्धवान्।
यो न सजति भोगेषु, त वय ब्रूमो ब्राह्मण ॥२९॥

अन्वयार्थ-पुव्व सजोग-पूर्व सयोग को, य-और, णाइसगे-ज्ञातिजना के सयोग को (तथा), बधवे-बधुओ को, जहित्ता-छोड कर, जो-जो, भोगेसु-कामभोगो मे, ण सज्जइ-आसक्त नहीं होता, त-उसे, वय-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-जो पूर्व सयोग माता-पिता आदि को तथा ज्ञातिजनो की आसक्ति और बान्धवो को छोड कर काम भोगो में आसक्त नहीं होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

30 वेदो के कर्म काण्ड की आलोचना

मूल गाथा- पसुबधा सव्ववेया, जट्ठ च पावकम्मुणा।
ण त तायति दुसील, कम्माणि बलवति हि॥३०॥

सस्कृत छाया- पशुबन्धा सर्ववेदा, इष्ट च पापकर्मणा।
न त त्रायन्ते दु शील, कर्माणि बलवति हि ॥३०॥

अन्वयार्थ-पसुबधा-पशु वध का विधान करने वाले, सव्ववेया-सभी वेद, च-और, पाव कम्मुणा-पाप कर्मकारी, जट्ठ-यज्ञ, त-उस, दुस्सील-दु शील (हिसादि कार्यों म प्रवृत्त) पुरुष की, ण तायंति-दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकते, हि-क्योकि, कम्माणि-कर्म, बलवति-बलवान होते हैं।

भावानुवाद-पशु वध का विधान करने वाले सभी वेद और पाप कर्म से किए गए सभी यज्ञ दु शील हिसादि मे प्रवृत्त पुरुष की दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकते हैं क्यांकि कर्म बलवान होते हैं, उनका फल भोगना ही पडता है।

31 बाह्यलिग की अवगणना करना

मूल गाथा- ण वि मुडिएण समणो, ण ओंकारेण बम्भणो।
ण मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण ण तावसो॥३१॥

सस्कृत छाया- नाऽपि मुण्डितेन श्रमण , न ओकारेण ब्राह्मण ।
न मुनिररण्यवासेन, कुशचीरेण न तापस ॥३१॥

अन्वयार्थ-मुडिएण-मुण्डित होने से, समणो-श्रमण, णवि-नहीं होता (और) ओकारेण-ओकार पढने मात्र से, बभणो-कोई ब्राह्मण, ण-नहीं होता, रण्णवासेण-अरण्य मे निवास करने से, मुणी-मुनि, ण-नहीं होता है (और) कुसचीरेण-कुश (तृणदि) वस्त्रो के पहनने से, ण तावसो-कोई तापस नहीं होता है।

भावानुवाद-मस्तक-सिर मुण्डाने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता है, ओम् का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता है, वन मे निवास करने से कोई मुनि नहीं होता है, कुश-चीवर-वृक्षो की छाल या घास के वस्त्र पहनने से कोई तपस्वी नहीं हो जाता है।

32 गुणो से ही पुरुप श्रमण ब्राह्मणादि

मूल गाथा- समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो।
णाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥३२॥

सस्कृत छाया- समतया श्रमणो भवति, ब्रह्मचर्येण ब्राह्मण ।
ज्ञानेन च मुनिर्भवति, तपसा भवति तापस ॥३२॥

अन्वयार्थ-समयाए-समभाव धारण करने से, समणो-श्रमण, होइ-होता है, बभचेरेण-ब्रह्मचर्य पालन से, बभणो-ब्राह्मण, णाणेण-ज्ञान की आराधना करने से, मुणी-मुनि, होइ-होता है, य-और, तवेण-तप का सेवन करने से, तावसो-तपस्वी, होइ-होता है।

भावानुवाद-समता भाव धारण करने से श्रमण होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण होता है। ज्ञान से मुनि होता है। तपाराधना से तपस्वी होता है।

33 ब्राह्मणादि चारो वर्णों की उत्पत्ति एव स्थिति

मूल गाथा- कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वईसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥३३॥

सस्कृत छाया- कर्मणा ब्राह्मणो भवति, कर्मणा भवति क्षत्रिय ।
वैश्यो कर्मणा भवति, शुद्रो भवति कर्मणा॥३३॥

अन्वयार्थ-कम्मुणा-कर्म से, बभणो-ब्राह्मण, होइ-होता है, कम्मुणा-कर्म से, खत्तिओ-क्षत्रिय, होइ-होता है, कम्मुणा-कर्म से, वईसो-वैश्य, होइ-होता है, (और) कम्मुणा-कर्म से, सुद्दो-शुद्र, हवइ-होता है।

भावानुवाद-कर्म से ब्राह्मण होता है। कर्म से क्षत्रिय होता है। कर्म से वैश्य होता है। कर्म से ही शुद्र होता है।

34 कर्मों के बन्धन से मुक्त ब्राह्मण

मूल गाथा- एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ।
सव्वकम्मविणिम्मुक्क, त वय बूम माहण॥३४॥

सस्कृत छाया- एतान्प्रादुरकार्षीद् बुद्ध , यैर्भवति स्नातक ।
सर्वकर्मविनिर्मुक्त, त वय ब्रूमो ब्राह्मणम् ॥३४ ॥

अन्वयार्थ-एए-इन उपरोक्त धर्मों को, बुद्धे-बुद्ध (तीर्थंकरो) ने, पाउकरे-प्रकट किया है, जेहिं-जिनसे (मनुष्य), सिणायओ-स्नातक, होइ-होता है, सव्व-सर्व, कम्म-कर्मों से, विणिम्मुक्क-विमुक्त हो जाता है, त-उसे, वयं-हम, माहण-ब्राह्मण, बूम-कहते हैं।

भावानुवाद-अरिहत भगवतों ने इन उपर्युक्त तत्त्वो का प्रतिपादन किया है, जिनके आचरण से साधक स्नातक-पूर्णज्ञानी हो जाता है और कर्मों से मुक्त हो जाता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

35 आत्मा के उद्धार मे कौन पुरुष समर्थ

मूल गाथा- एव गुणसमाउत्ता, जे भवति दिउत्तमा।
ते समत्था समुद्धत्तु, परमप्पाणमेव य॥३५॥

सस्कृत छाया- एव गुणसमायुक्ता , ये भवन्ति द्विजोत्तमा ।
ते समर्था समुद्धर्तुं, परमात्मानमेव च ॥३५ ॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, गुण समाउत्ता-गुणो से युक्त, जे-जो, दिवत्तमा-द्विज उत्तम (ब्राह्मण), भवति-होते हैं, ते-वे, पर-दूसरो की, य-और, अप्पाणमेव-अपनी आत्मा का, समुद्धत्तु-उद्धार करने म, समत्था-समर्थ हैं।

भावानुवाद-इस प्रकार उत्तम गुणो से युक्त जो श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं, वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ होते हैं।

36 विजयघोप के सशयो का छेदन

मूल गाथा- एवं तु ससए छिण्णे, विजयघोसे य माहणे।
समुदाय तय त तु, जयघोस महामुणि ॥३६॥

सस्कृत छाया- एव तु सशये छिन्ने, विजयघोषस्य ब्राह्मण ।
समादाय ततस्त तु, जयघोष महामुनिम् ॥३६ ॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, तु-निश्चय ही, ससए-सशय, छिण्णे-छिन्न नष्ट हो जाने पर, विजयघोसे-विजयघोष, माहणे-ब्राह्मण ने, समुदाय-सम्यक्-निश्चय कर, त-उसको, जयघोस-जयघोष, महामुणि-महामुनि को, पहचान लिया।

भावानुवाद-इस प्रकार सशय समाप्त हो जाने पर विजय घोष ब्राह्मण ने महामुनि जयघोष के वचनो को सुनकर यह जान लिया कि यह मुनि मेरा समारावस्था का भाई जयघोष ही है।

37 विजयघोष द्वारा कृतज्ञता प्रकाशन

मूल गाथा- तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली।
माहणत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥३७॥

संस्कृत छाया- तुष्टश्च विजयघोष, इदमुदाह कृताञ्जलि।
ब्राह्मणत्वं यथाभूतं, सुष्ठु मे उपदर्शितम् ॥३७॥

अन्वयार्थ-विजयघोसे-विजयघोष, तुट्ठे-प्रसन्न हुआ, य-और, कयंजली-हाथ जोडकर, इण-इस प्रकार, उदाहु-कहने लगा कि-हे भगवन् (आपने), जहाभूय-यथाभूत वास्तविक, माहणत्त-ब्राह्मणत्व को, मे-मुझे, सुट्ठु-भली प्रकार, उवदंसिय-उपदर्शित किया (समझाया) है।

भावानुवाद-सन्तुष्ट हुए विजय घोष ने हाथ जोडकर इस प्रकार कहा-'हे मुने! आपने मुझे ब्राह्मणत्व का यथार्थ स्वरूप बहुत अच्छी तरह समझाया है।'

38 सद्भूत गुणो की विजयघोष द्वारा स्तुति

मूल गाथा- तुब्भे जइया जण्णाण, तुब्भे वेयविऊ विऊ।
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा ॥३८॥

संस्कृत छाया- यूयं यष्टारो यज्ञाना, यूयं वेदविदो विद।
ज्योतिषांगविदो यूयं, यूयं धर्माणा पारगा ॥३८॥

अन्वयार्थ-तुब्भे-आप, जण्णाण-यज्ञो के, जइया-यजन करने वाले हैं, तुब्भे-आप, वेयविऊ-वेदो के वेत्ता हैं, विऊ-विद्वान् हैं, तुब्भे-आप, जोइसंग-ज्योतिषांग के, विऊ-पंडित हैं, तुब्भे-आप, धम्माण-धर्मों के, पारगा-पारगामी हैं।

भावानुवाद-विजयघोष ब्राह्मण-"वास्तव मे आप ही यज्ञो के करने वाले हैं, आप ही ज्योतिष एव उसके अंगो के ज्ञाता हैं, आप ही धर्म के पारगामी हैं।"

39 जयघोष मुनि की स्तुति एव भिक्षाग्रहण की प्रार्थना

मूल गाथा- तुब्भे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य।
तमणुग्गहं करेह म्ह, भिक्खेण भिक्खू उत्तमा ॥३९॥

संस्कृत छाया- यूयं समर्था समुद्धर्तुं, परमात्मानमेव च।
तदनुग्रह कुरुतास्माकं, भैक्ष्येण भिक्षूत्तमा ॥३९॥

अन्वयार्थ-हे भगवन्! तुब्भे-आप, पर-दूसरो का, य-और, अप्पाणमेव-अपनी आत्मा का, उद्धत्तु-उद्धार करने मे, समत्था-समर्थ हैं, त-इसलिए, भिक्खू उत्तमा-हे भिक्षुओं में श्रेष्ठ (भिक्षु), भिक्खेण-भिक्षाग्रहण करके, अम्ह-हम पर, अणुग्गह-अनुग्रह कीजिए।

भावानुवाद-"हे महामुनि! आप अपना और दूसरो का उद्धार करने मे सक्षम हैं। अत हे भिक्षु श्रेष्ठ! भिक्षा ग्रहण करके हम पर अनुग्रह करे।"

40 ससार सागर से पार होने का निर्देश

मूल गाथा- ण कज्ज मज्झ भिक्खेण, खिप्प णिक्खमसू दिया।
मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे ससारसागरे ॥४०॥

सस्कृत छाया- न कार्यं मम भैक्षेण, क्षिप्र निष्क्राम द्विज।
मा भ्रम भयावर्ते, घोरे ससारसागरे ॥४०॥

अन्वयार्थ-मुनि कहते हैं-दिया-हे द्विज!, मज्झ-मुझे, भिक्खेण-भिक्षा से, ण कज्ज-प्रयोजन नहीं है (तुम) खिप्प-शीघ्र, णिक्खमसू-प्रव्रज्या स्वीकार करो, भयावट्टे-क्योकि भयो के आवर्त्त वाले, घोरे-घोर (भयकर) ससार-सागरे-ससार रूपी सागर मे, मा-मत, भमिहिसि-भ्रमण करो।

भावानुवाद-जयघोष मुनि-"हे द्विज! मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है। मैं चाहता हू कि तुम शीघ्र ही श्रमण दीक्षा स्वीकार करो, जिससे भय के आवर्त वाले घोर ससार मे तुम्हे भ्रमण न करना पडे।"

41 भोगी और अभोगी जीव की तुलना

मूल गाथा- उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी णोवलिप्पई।
भोगी भमइ ससारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥४१॥

सस्कृत छाया- उपलेपो भवति भोगेषु, अभोगी नोपलिप्यते।
भोगी भ्राम्यति ससारे, अभोगी विप्रमुच्यते ॥४१॥

अन्वयार्थ-भोगेसु-काम भोगों में, उवलेवो-कर्मों का उपलेप (बन्ध) होइ-होता है, अभोगी-अभोगी जीव, णोवलिप्पई-कर्मों से लिप्त नहीं होता है। भोगी-भोगी आत्मा, ससारे-ससार मे, भमइ-परिभ्रमण करता है (और) अभोगी-अभोगी, विप्पमुच्चई-मुक्त हो जाता है।

भावानुवाद-भोगो में रमण करने से कर्म का उपलेप-बन्ध होता है। भोगो से मुक्त कर्मों से लिप्त नहीं होता है। भोगी आत्मा ससार मे परिभ्रमण करती है। अभोगी ससार से विमुक्त हो जाता है।

42 कर्मों के लेप सम्बन्धी विषय का वर्णन

मूल गाथा- उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई ॥४२॥

सस्कृत छाया- आर्द्र शुष्कश्च द्वौ क्षिप्तौ, गोलकौ मृत्तिकामयौ।
द्वावप्यापतितौ कुड्ये, य आर्द्र स तत्र लगति ॥४२॥

अन्वयार्थ-उल्लो-गीले, य-और, सुक्को-सूखे, मट्टियामया-मिट्टी के, दो-दो, गोलया-गोलों को, (यदि) कुड्डे-

भीत पर, छूढा-फैंका जाय (तो), दोवि-दोनो ही, आवडिया-(भींत से) टकरायेंगे, अत्थ-उनमे, जो-जो, उल्लो-गीला होगा, सो-वही, लग्गई-चिपक जाएगा।

भावानुवाद-एक गीला और एक सूखा-दो मिट्टी के गोले दिवार पर फैंके जाये, दोनो दिवाल से टकराए तो जो गीला होगा वह वहा चिपक जाएगा।

43 दृष्टान्त द्वारा कर्मों के उपचय की सिद्धि

मूल गाथा- एव लग्गति दुम्मेहा, जे णरा कामलालसा।
विरत्ता उ ण लग्गति, जहा से सुक्क गोलए॥४३॥

सस्कृत छाया- एव लगन्ति दुर्मेधस , ये नरा कामलालसा ।
विरक्तास्तु न लगन्ति, यथा शुष्कस्तु गोलक ॥४३॥

अन्वयार्थ-एव-इसी प्रकार, जे-जो, दुम्मेहा-दुर्मेधा (दुर्बुद्धि) णरा-पुरुष, कामलालसा-काम भोगो मे आसक्त हैं, वे लग्गति-लिप्त हैं, उ-और, विरत्ता-विरक्त हैं, से-वे, जहा-यथा, सुक्क-सूखे, गोलए-गोले के समान, ण-लग्गति-कर्मों से लिप्त नहीं होते हैं।

भावानुवाद-इसी प्रकार जो दुर्बुद्धि मनुष्य कामभोगो मे आसक्त हैं, वे विषयो से चिपक कर कर्मों से बध जाते है। जो विरक्त हैं वे सूखे गोले की तरह कर्मों से लिप्त नहीं होते हैं।

44 जयघोष मुनि के उपदेश की सफलता का दिग्दर्शन

मूल गाथा- एव से विजयघोसे, जयघोसस्स अतिए।
अणगारस्स णिक्खतो, धम्म सोच्चा अणुत्तर॥४४॥

सस्कृत छाया- एव स विजयघोष , जयघोषस्यान्तिके ।
अनगारस्य निष्क्रान्त , धर्मं श्रुत्वाऽनुत्तरम्॥४४॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, अणुत्तर-अनुत्तर, (श्रेष्ठ) धम्म-धर्म को, सोच्चा-सुनकर, से-वह, विजयघोसे-विजयघोष ब्राह्मण, जयघोसस्स-जयघोष, अणगारस्स-मुनि के, अतिए-समीप, णिक्खतो-निष्क्रमित हुआ (दीक्षित हो गया)।

भावानुवाद-इस प्रकार अनुत्तर-सर्व श्रेष्ठ धर्म का श्रवण कर विजयघोष ब्राह्मण ने जयघोष मुनि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की-दीक्षा ली।

45 दोनो मुनियो की दीक्षा के फल का वर्णन उपसहार-

मूल गाथा- खवित्ता पुव्वकम्माइ, सजमेण तवेण य।
जयघोसविजयघोसा, सिद्धि पत्ता अणुत्तर॥४५॥

त्ति बेमि

इति जन्नइज्ज णाम पञ्चवीसइम अज्झयण समत ॥२५॥

सस्कृत छाया- क्षपयित्वा पूर्वकर्माणि, सयमेन तपसा च।
जयघोषविजयघोषौ, सिद्धि प्राप्तावनुत्तराम् ॥४५॥

इति ब्रवीमि

इति यज्ञीय पञ्चविंशतितममध्ययन समाप्तम् ॥२५॥

अन्वयार्थ-सजमेण-सयम, य-और, तवेण-तप से, पुव्वकम्माइ-पूर्वकृत कर्मों का, खवित्ता-क्षय करके, जयघास-जयघोष (और) विजयघोसा-विजयघोष, (दोनो) अणुत्तर-अनुत्तर (प्रधान) सिद्धि-सिद्धि गति को, पत्ता-प्राप्त हो गये।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-सयम और तप से पूर्व कृत कर्मों का क्षय करके जयघोष और विजयघोष मुनि ने अनुत्तर सिद्धि-मुक्ति को प्राप्त की।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार यज्ञीय नामक पच्चीसवा अध्ययन सम्पन्न हुआ।

□□□

समाचारी - षड्विशति अध्ययन

उत्थानिका

साधक जीवन की सम्यक् व्यवस्था को समाचारी कहा गया है। साधना मे गति-प्रगति करने के लिए जीवन चर्या की सुव्यवस्था नितान्त आवश्यक है। चूकि स्थविर कल्पी (वर्तमान कालीन) साधक की साधना समूहगत व्यवस्था से अनुबद्ध होती है, मार्ग द्रष्टा या अनुशास्ता गुरु के प्रति प्रतिबद्ध होती है, अत इस साधना काल मे परस्पर के व्यवहारो एव गुरु आज्ञाओ के औचित्य को भी स्वीकार करना होता है। साधक जीवन की अनेक कल्प मर्यादाए होती हैं जो एक-दूसरे साधक के परस्पर सहयोग के बिना स्थिर नहीं रह पाती हैं, उनका सम्यक् अनुशीलन नहीं हो सकता है।

अस्तु, इस अध्ययन मे साधक जीवन की पारस्परिक व्यवस्थाओ एव साधक जीवन की दिनचर्या मे काल-समय-व्यवस्था का सुन्दर रीत्या स्वरूप प्रदर्शित हुआ है।

साधक जीवन को व्यवस्थित-अनुशासन बद्ध प्राणवान् बनाए रखने के लिए दस प्रकार की समाचारी का प्रतिपादन किया गया है-जैसे साधक किसी कार्यवश धर्म स्थान से बाहर जाए तो गुरु जनो को सूचित करके जावे। सहयोगी साथियो को पूछकर जाए कि उनका भी तो बाहर का कोई काम नहीं है? बाहर से कार्य सम्पन्न कर लौटकर आने की सूचना दे। सेवा आदि कार्य के लिए साथी सन्ता से पूछे। अपने गलत आचरण के प्रति सजग बना रहे। परिश्रम शील बना रहे। दूसरो की अनुग्रह दृष्टि को सम्मान दे। गुरु जनो का आदर-सत्कार करे। श्रेष्ठ जनो के प्रति विनीत स्वभावी हो और आग्रह रहित वृत्ति वाला हो आदि।

स्मरण रहे कि यह नियमावली आत्मानुशासन के द्वारा आचरित होती है, किसी के दबाव या आग्रह से नहीं। दबाव से किया जाने वाला कार्य हमारे भीतर कुण्ठा को उत्पन्न करता है, जहा साधना की प्रगति स्वत अवरुद्ध हो जाती है। समाचारी का विधि विधान या आचरण आत्म-प्रेरणा से आत्म-कल्याण के लिए होता है। यह हमारे साधना क्रम को एक व्यवस्थित साचे मे ढाल देता है, अत यह साधना की अनिवार्यता मानी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन का उत्तरार्ध हमारी साधनागत दिनचर्या का कालखण्डा में विभक्त करता है। दिन-रात के कुल आठ प्रहर होते हैं उनमें चार प्रहर स्वाध्याय के लिए, दो प्रहर ध्यान के लिए, दिवस के एक तीसरे प्रहर में भिक्षा चर्या और रात्रि के एक तृतीय प्रहर मे निद्रा का विधान किया गया है, इन्हीं काल खण्डों में प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाओ का निर्देश दिया गया है।

साधक यदि इस समाचारी का हार्दिक विशुद्धता पूर्वक पालन करले तो उसकी साधना निराबाध होगी-उसके मुक्ति गमन को कोई रोक नहीं सकता है, चलें हम जरा समाचारी के सूक्ष्म नियमों का अध्ययन विश्लेषण करने का प्रयास करे-

□□□

समाचारी - षड्विंशति अध्ययन

सूक्ति साराश •

वही आचरण साधना है जो दु ख-मुक्त कर देता है।
साधको की समाचारी (दिनचर्या) ऐसी होनी चाहिए जो दु खो का सर्वथा अन्त कर दे।

साधक का व्यवहार लुकाव-छिपाव से मुक्त होना चाहिए
इसी हेतु समाचारी का विधान किया है।
समूह गत साधना में अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति की जानकारी एक दूसरे
साधक को होनी चाहिए ताकि गलत आचरण हो ही नहीं पाए।

साधक की गतिविधि की अवगति गुरु को होनी चाहिए।
मुनि-साधक की प्रत्येक क्रिया गुरु के उपपात अर्थात् निर्देशानुसार होनी चाहिए,

साधक दुष्कृत्य कामी नहीं होता, दुष्कृत्य हो जाए तो मिथ्या दुष्कृत्य करता है।
असावधानी वश हो जाने वाले अपने प्रत्येक दुष्कृत्य के प्रति पश्चात्ताप होना चाहिए।

साधक का अधिकाश समय स्वाध्याय ज्ञानार्जन व ध्यान मे लगना चाहिए।
साधक की वैयक्तिक दिनचर्या में दो कार्य प्रमुख होते हैं-ज्ञान और ध्यान।

गुरु-ग्लान-वृद्ध आदि की सेवा के लिए स्वाध्याय को भी गौण करना पड़ता है।
समूहगत साधना मे सेवा, वैयावृत्य भी प्रमुख हो जाता है।

स्थूल दिनचर्या के अनुसार साधक को दिन के चार भाग करने
चाहिए-स्वाध्याय, ध्यान, भिक्षा और स्वाध्याय।
रात्रि क्रम मे भी यही क्रम होना चाहिए,
भिक्षा के स्थान पर निद्रा शेष वही।

काल-क्षेत्र सापेक्ष चर्या साधक को निर्द्वन्द्व बनाती है।
भिक्षु-साधक की चर्या काल-क्षेत्रानुसार कुछ परिवर्तित होती है,
जिसे "काले कालं समायरे" कहा है।

साधक चर्या का प्रथम अग है गुरु-विनय, अनुशासन बद्धता।
साधक की चर्या में गुरु वन्दन एव निर्देश को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है
अर्थात् प्रत्येक क्रिया के पूर्व गुरु को वन्दन कर अनुमति ली जाए।

साधक के लिए भोजन प्रमुख नहीं, सयम निर्वहन प्रमुख है।
साधक साधना में सहयोगी किसी कारण से ही भोजन ग्रहण करता है और सयम
विराधक कारण होने पर भोजन छोड भी देता है।

किसी को किसी प्रकार की पीड़ा पहुचाकर साधना नहीं हो सकती है।
साधक का स्वाध्यायादि आचरण भी ऐसा होना चाहिए जिससे किसी की
जीवन चर्या म व्यवधान उपस्थित न हो।

□□□

अह समायारी छव्वीसइमं अज्झयणं

अथ समाचारी षड्विंशतितममध्ययनं

समाचारी

1 समाचारी कहने का प्रयोजन

मूल गाथा- सामायारिं पवक्खामि, सव्वदुक्खविमोक्खणि।
ज चरित्ताण णिग्गथा, तिण्णा ससारसागर ॥1॥

सस्कृत छाया- समाचारीं प्रवक्ष्यामि, सर्वदु खविमोक्षणीम्।
या चरित्वा निर्ग्रन्था , तीर्णा ससारसागरम् ॥१॥

अन्वयार्थ-सव्व-दुक्ख-सभी दु खो से, विमोक्खणि-छुडाने वाली, सामायारि-समाचारी, पवक्खामि-कहूगा, ज-जिसका, चरित्ताण-आचरण करके, णिग्गथा-निर्ग्रन्थ मुनि, ससार सागर-ससार सागर को, तिण्णा-तिर गए हैं।

भावानुवाद-समस्त दु खो से मुक्त कराने वाली समाचारी का मैं कथन करूगा। जिसका आचरण करके निर्ग्रन्थ ससार सागर को तैर गये।

2 समाचारी के चार प्रकार का वर्णन

मूल गाथा- पढमा आवस्सिया णाम, बिइया य णिसीहिया।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥2॥

सस्कृत छाया- प्रथमाऽऽवश्यकी नाम्नी, द्वितीया च नैषेधिकी।
आप्रच्छना च तृतीया, चतुर्थी प्रतिप्रच्छना ॥२॥

अन्वयार्थ-दस समाचारी-पढमा-पहली, आवस्सिया-आवश्यकी, णाम-नाम वाली है, य-और, बिइया-दूसरी, णिसीहिया-नैषेधिकी, तइया-तीसरी, आपुच्छणा-आपृच्छना, य-और, चउत्थी-चौथी, पडिपुच्छणा-प्रतिपृच्छना है।

भावानुवाद-दस समाचारी-प्रथम समाचारी का नाम आवश्यकी है, दूसरी नैषेधिकी, तीसरी आपृच्छना, चौथी प्रति-पृच्छना।

3 समाचारी के आठ भेदो तक के नाम

मूल गाथा- पंचमी छंदणा णाम, इच्छाकारो य छट्ठओ।
सत्तमो मिच्छाकारो उ, तहक्कारो य अट्ठमो॥3॥

संस्कृत छाया- पंचमी छन्दना नाम्नी, इच्छाकारस्य षष्ठी।
सप्तमी मिथ्याकारस्तु, तथाकारस्याष्टमी॥3॥

अन्वयार्थ-पचमी-पाचवीं, छदणा-छदणा, णाम-नाम की, य-और, छट्ठओ-छठी, इच्छाकारो-इच्छाकार, उ और, सत्तमो-सातवीं, मिच्छाकारो-मिथ्याकार, य-और, अट्ठमो-आठवीं, तहक्कारो-तथाकार है।

भावानुवाद-पाचवी छन्दना, छठी इच्छाकार, सातवीं मिथ्याकार, आठवीं तथाकार है।

4 समाचारी के शेष नामो का निर्देश

मूल गाथा- अब्भुट्ठाणं च णवमं, दसमी उवसंपदा।
एसा दसंगा साहूण, सामायारी पवेइया॥4॥

संस्कृत छाया- अभ्युत्थानं च नवमी, दशमी उपसंपद्।
एषा दशांगा साधूनां, समाचारी प्रवेदिता॥4॥

अन्वयार्थ-णवम-नवमी, अब्भुट्ठाण-अभ्युत्थान, च-और, दसमी-दसवीं, उवसंपदा-उपसंपदा है, एसा-यह, साहूण-साधुओ की, दसंगा-दस अवयव रूप, सामायारी-समाचारी, पवेइया-प्रतिपादन की है।

भावानुवाद-नौवीं अभ्युत्थान और दसवीं उपसपदा है। इस प्रकार यह साधुओं की दस अगा वाली समाचारी तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित की गई है।

5 चार समाचारी के अर्थ और विषय का प्रदर्शन

मूल गाथा- गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा णिसीहियं।
आपुच्छणा सयकरणे, परकरणे पडिपुच्छणा॥5॥

संस्कृत छाया- गमने आवश्यकीं कुर्यात्, स्थाने कुर्यान्नैषेधिकीम्।
आप्रच्छना स्वयंकरणे, परकरणे प्रतिप्रच्छना॥5॥

अन्वयार्थ-गमणे-गमन करने के समय, आवस्सियं-आवश्यकी, कुज्जा-करे, ठाणे-स्थिति करने के योग्य णिसीहियं-नैषेधिकी, सयकरणे-स्वय करने के लिए, आपुच्छणा-आप्रच्छना, कुज्जा-करें, परकरणे-दूसरों के कार्य करने के समय, पडिपुच्छणा-प्रतिप्रच्छना करे।

भावानुवाद-1 अपने प्रवास से बाहर जाते समय आवश्यकी समाचारी का पालन करे अर्थात् बाहर जाते समय "आवस्सिय या आवस्सीही" का उच्चारण करे, यह आवश्यकी समाचारी है।

2 पुन लौटकर आते समय अपने स्थान में प्रवेश करते समय "निस्सहिया" का उच्चारण करना नैषधिकी समाचारी है।

3 अपने किसी कार्य के लिए गुरु से आज्ञा लेना "आपृच्छना" समाचारी है।

4 सहयोगी श्रमणो के किसी कार्य के लिए गुरु की अनुमति लेना "प्रति पृच्छना" समाचारी है।

6 आठ समाचारी तक का पालन कब और किसलिए

मूल गाथा- **छदणा दव्वजाएण, इच्छाकारो य सारणे।**
मिच्छाकारो य णिदाए, तहक्कारो पडिस्सुए॥६॥

सस्कृत छाया- **छन्दना द्रव्यजातेन, इच्छाकारश्च सारणे।**
मिथ्याकारश्च निन्दाया, तथाकार प्रतिश्रुते॥६॥

अन्वयार्थ-दव्वजाएण-द्रव्य जाति से, **छदणा**-छदना, **य**-और, **सारणे**-स्वय अथवा दूसरो के कार्य के विषय मे, **इच्छाकारो**-इच्छाकार, **णिदाए**-आत्म निन्दा के विषयो मे, **मिच्छाकारो**-मिथ्याकार, **य**-और, **पडिस्सुए**-गुरुओ के वचनो को सुनकर, **तहक्कारो**-तथाकार करना (दसवीं समाचारी है)।

भावानुवाद-5 याचना करके लाए द्रव्यो के लिए गुरु आदि को आमन्त्रित करना "छन्दना" समाचारी है।

6 स्वय की अतरग भावना से दूसरो का कार्य करना तथा अपना कोई कार्य करवाने के लिए दूसरो की इच्छा पर आधारित निवेदन करना अर्थात् आपकी इच्छा हो तो आप मेरा यह कार्य कर दे, "इच्छाकार" समाचारी है।

7 गृहीत व्रतो मे किसी दोष के लग जाने पर उस दोष की निवृत्ति के लिए आत्म-निन्दा करना "मिथ्याकार" समाचारी है।

8 गुरुजनो के वचनो को, उपदेश का तथ्यरूप मे स्वीकार करना "तथाकार" समाचारी है।

7 शेष समाचारी का अर्थ और विषय

मूल गाथा- **अब्भुट्ठाण गुरुपूया, अच्छणे उवसपदा।**
एव दुपचसजुत्ता, सामायारी पवेइया॥७॥

सस्कृत छाया- **अभ्युत्थान गुरुपूजाया, अवस्थाने उपसपद्।**
एव द्विपचसयुक्ता, समाचारी प्रवेदिता॥७॥

अन्वयार्थ-गुरुपूया-गुरु पूजा में, **अब्भुट्ठाण**-अभ्युत्थान (उद्यम) करना, **अच्छणे**-ज्ञानादि की प्राप्ति हेतु, **उवसपदा**-उपसपदा (गुरुजनो के पास रहना), **एव**-इस प्रकार, **दुपच**-द्विपच, **सजुत्ता**-सयुक्त, **सामाचारी**-समाचारी, **पवेइया**-कही गई है।

भावानुवाद-9 गुरुजनो के आगमन पर उनके सत्कार हेतु आसन से उठकर खडा होना अभ्युत्थान समाचारी है।

10 ज्ञानादि प्राप्ति रूप किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए अन्य गच्छ के आचार्य के समीप रहना उप सम्पदा समाचारी है। इस रूप से दसाग समाचारी का निरूपण हुआ है।

8 ओघ समाचारी का निरूपण

मूल गाथा- पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, आइच्चम्मि समुट्ठिए।
भडय पडिलेहित्ता, वदित्ता य तओ गुरु ॥8॥

सस्कृत छाया- पूर्वस्मिन् चतुर्भागे, आदित्ये समुत्थिते।
भाण्डक प्रतिलेख्य, वन्दित्वा च ततो गुरुम् ॥8॥

अन्वयार्थ-आइच्चम्मि-आदित्य सूर्य के, समुट्ठिए-उदय होने पर, पुव्विल्लम्मि-प्रथम प्रहर के, चउब्भाए-चौथे भाग मे, भडय-भाडोपकरण की, पडिलेहित्ता-प्रतिलेखना करे, य-और, तओ-इसके बाद, गुरु-गुरु महाराज का, वदित्ता-वदना करके।

भावानुवाद-औत्सगिक दैनिक कार्य-सूर्य के उदित होने पर दिन के प्रथम प्रहर के चतुर्थ भाग मे भण्डोपकरण का प्रतिलेखना करके और गुरु को वन्दन करके।

9 वैयावृत्य एव स्वाध्याय मे नियुक्त होना

मूल गाथा- पुच्छिज्ज पजलिउडो, कि कायव्व मए इह।
इच्छ णिओइउ भते, वेयावच्चे व सज्झाए॥9॥

सस्कृत छाया- पृच्छेत्प्राञ्जलिपुट, कि कर्तव्य मयेह।
इच्छामि नियोजयितु भदन्त!, वैयावृत्ये वा स्वाध्याये ॥9॥

अन्वयार्थ-पजलिउडो-हाथ जोडकर, पुच्छिज्ज-पूछे कि, भते-हे भगवन्!, इह-इस समय, मए-मुझे, कि-क्या कायव्व-करना चाहिए, वेयावच्चे-वैयावृत्य मे, व-अथवा, सज्झाए-स्वाध्याय मे, णिओइउ-नियुक्त होना, इच्छ-चाहता हू।

भावानुवाद-हाथ जोड कर पूछे कि भन्ते! इस समय मुझे क्या करना चाहिए? मुझे आप स्वाध्याय या वैयावृत्य दोनों में से किस कार्य में नियुक्त करना चाहते हैं, अपनी इच्छानुसार आज्ञा दें।

10 वैयावृत्य अथवा स्वाध्याय मे भाव पूवक प्रवृत्त होने का आदेश

मूल गाथा- वेयावच्चे णिउत्तेण, कायव्व अगिलायओ।
सज्झाए वा णिउत्तेण, सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥10॥

सस्कृत छाया- वैयावृत्ये नियुक्तेन, कर्तव्यमग्लान्या।
स्वाध्याये वा नियुक्तेन, सर्वदु खविमोक्षणे ॥10॥

अन्वयार्थ-वेयावच्चे-वैयावृत्य में, णिउत्तेण-नियुक्त करने से, अगिलायओ-बिना ग्लानि के कायव्व-प्रवृत्त होवे, वा-अथवा, सज्झाए-स्वाध्याय में णिउत्तेण-नियुक्त करने से, सव्वदुक्ख-सर्व दु खों से, विमोक्खणे-विमुक्त होवे।

भावानुवाद-वैयावृत्य मे नियुक्त किये जाने पर साधु को चाहिए कि बिना ग्लानि के वैयावृत्य करे। अथवा सभी दु खो से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किये जाने पर अग्लान भाव से स्वाध्याय करे।

11 ओघ समाचारी के प्रस्ताव मे दिनचर्या का वर्णन

मूल गाथा- दिवसस्स चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि॥११॥

सस्कृत छाया- दिवसस्य चतुरो भागान्, कुर्याद् भिक्षुर्विचक्षण ।
तत उत्तरगुणान्कुर्यात्, दिनभागेषु चतुर्ष्वपि॥११॥

अन्वयार्थ-वियक्खणो-विचक्षण, भिक्खू-साधु, दिवसस्स-दिन के, चउरो-चार, भागे-भाग, कुज्जा-करे, तओ-इसके बाद, चउसुवि-चारो ही, दिणभागेसु-दिन भागो मे, उत्तरगुणे-उत्तरगुणो का, कुज्जा-सेवन करे।

भावानुवाद-विचक्षण साधु दिन के चार भाग करे, अनन्तर दिन के चारो भागो में उत्तर गुण स्वाध्याय आदि की आराधना करे।

12 साधु दिनचर्या का वर्णन

मूल गाथा- पढम पोरिसि सज्झाय, बीय झाण झियायई।
तइयाए भिक्खायरियं पुणो, चउत्थीइ सज्झाय॥१२॥

सस्कृत छाया- प्रथमाया पौरुष्या स्वाध्याय, द्वितीयाया ध्यायेत्।
तृतीयाया भिक्षाचर्या, पुनश्चतुर्थ्यां स्वाध्यायम्॥१२॥

अन्वयार्थ-पढम-प्रथम, पोरिसि-प्रहर मे, सज्झाय-स्वाध्याय करे, बीय-द्वितीय प्रहर मे, झाण-ध्यान, झियायई-ध्यावे, तइयाए-तीसरे प्रहर मे, भिक्खायरिय-भिक्षाचर्या करे और, चउत्थीइ-चौथे प्रहर मे, पुणो-पुन , सज्झाय-स्वाध्याय करे।

भावानुवाद-दिन के प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करे, द्वितीय प्रहर में ध्यान करे, तृतीय प्रहर में भिक्षावृत्ति और चतुर्थ प्रहर मे पुन स्वाध्याय करे।

13 पौरुषी का कालमान

मूल गाथा- आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया।
चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइ पोरिसी॥१३॥

सस्कृत छाया- आषाढे मासे द्विपदा, पौषे मासे चतुष्पदा।
चैत्राश्विनयोर्मासयो , त्रिपदा भवति पौरुषी॥१३॥

अन्वयार्थ-आसाढे-आषाढ, मासे-मास में, दुपया-दो पाव जितनी, पोसे-पौष, मासे-मास में, चउप्पया-चार पाव (और) चित्तासोएसु-चैत्र और आसोज, मासेसु-मासो में, तिप्पया-तीन पाव की, पोरिसी-पोरिसी, हवइ-होती है।

भावानुवाद-पौरुषी परिज्ञान-आषाढ मास मे द्विपदा-दो-पाव जितनी पौरुषी होती है, पौष मास में चतुष्पदा-चार पाव की और चैत्र एव आश्विन मास मे तीन पाव जितनी पौरुषी होती है (द्विपदा चतुष्पदा से यहा उतनी लम्बी छाया को ग्रहण किया गया है अर्थात् उस-उस मास मे इतनी छाया पडने पर प्रहर दिन आया यह समझना चाहिए।)

14 शेष मासो की पौरुषी जानने की विधि

मूल गाथा- अगुल सत्तरत्तेण, पक्खेण य दुरगुल।
वड्ढए हायए वावि, मासेण चउरगुल ॥१४॥

सस्कृत छाया- अङ्गुल सप्तरात्रेण, पक्षेण च द्व्यगुलम्।
वर्धते हीयते वापि, मासेन चतुरगुलम् ॥१४॥

अन्वयार्थ-शेष 8 माह का परिमाण-सत्तरत्तेण-सात अहोरात्र मे, अगुल-एक अगुल, च-और, पक्खेण-पक्ष (15 दिनो) मे, दुरगुलं-दो अगुल, (और), मासेण-मास मे, चउरंगुल-चार अगुल, वड्ढए-बढती, वावि-और, हायए-घटती है।

भावानुवाद-शेष महीनो मे प्रत्येक सात रात मे एक अगुल, पक्ष-पद्रह दिनो में दो-दो अगुल और प्रत्येक मास में चार-चार अगुल छाया की वृद्धि और हानि होती है।

15 चौदह दिन का पक्ष किस-किस मास मे

मूल गाथा- आसाढबहुले पक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुणवइसाहेसु य, बोद्धव्वा ओमरत्ताओ ॥१५॥

सस्कृत छाया- आषाढे पक्षबहुले, भाद्रपदे कार्तिक च पौषे च।
फाल्गुने वैशाखे च, बोद्धव्या अवमरात्रय ॥१५॥

अन्वयार्थ-आसाढ-आषाढ, भद्दवए-भाद्रपद, कत्तिए-कार्तिक, य-और, पोसे-पौष, य-तथा, फग्गुण-फाल्गुन, य-और, वइसाहेसु-वैशाख (इनके), बहुलेपक्खे-कृष्णपक्ष में, ओमरत्ताओ-अवम रात्रि (न्यूनता), बोद्धव्वा-जाननी चाहिए।

भावानुवाद-आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख इन सब महिना के कृष्ण पक्ष में एक-एक अहोरात्रि (तिथि) का क्षय होता है। ऐसा जानना चाहिए।

16 पादोन पौरुषी के ज्ञान का प्रकार बतलाना

मूल गाथा- जेट्ठामूले आसाढसावणे, छहिं अगुलेहिं पडिलेहा।
अट्ठहिं बीयतयम्मि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥१६॥

सस्कृत छाया- ज्येष्ठामूले आषाढे श्रावणे, षड्भिरगुलै प्रतिलेखा।
अष्टाभिर्द्वितीयत्रिके, तृतीये दशभिरष्टभिश्चतुर्थे ॥१६॥

अन्वयार्थ-जेट्ठामूले-जेठ, आसाढ, आसाढ सावणे-आषाढ और श्रावण मे, छहिं-छह, अगुलेहिं-अगुल (मिला देने से) पडिलेहा-प्रतिलेखना का समय होता है, बीयतयम्मि-दूसरे त्रिक मे, अट्ठहिं-आठ अगुल से, तइए-तीसरे त्रिक मे, दस-दश अगुल से, चउत्थे-चौथे त्रिक मे, अट्ठहिं-आठ अगुल से (प्रतिलेखना का समय होता है)।

भावानुवाद-जेष्ठ, आषाढ और श्रावण इन तीन महिनो मे (प्रथम त्रिक मे) जो पौरुषी का परिमाण बताया गया उसमे छह अगुल बढा देने से द्वितीय त्रिक (भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक) मे आठ अगुल तथा तृतीय त्रिक (मृगशिर, पोष और माघ) मे दस अगुल और चतुर्थ त्रिक मे आठ अगुल की वृद्धि करने पर प्रतिलेखन का पौरुषी समय होता है।

17 साधु के रात्रि कृत्य का निर्देश

मूल गाथा- रत्तिं पि चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राइभाएसु चउसु वि ॥१७॥

सस्कृत छाया- रात्रावपि चतुरो भागान्, भिक्षु कुर्याद् विचक्षण ।
तत उत्तरगुणान्कुर्यात्, रात्रिभागेषु चतुर्ष्वपि ॥१७॥

अन्वयार्थ-वियक्खणो-विचक्षण, भिक्खू-साधू, रत्तिपि-रात्रि के भी, चउरो-चार, भागे-भाग, कुज्जा-करे, तओ-इसके बाद, राइभाएसु-रात्रि के, चउसु वि-चारो ही, (भागो मे), उत्तरगुणे-उत्तरगुणो की, कुज्जा-वृद्धि करे।

भावानुवाद-रात्रिकालीन औत्सिर्गक चर्या-विचक्षण साधक रात्रि के भी चार विभाग करे, अनन्तर उन चारो भागा मे स्वाध्यायादि उत्तर गुणो की वृद्धि करे।

18 समय विभाग से रात्रि चर्या का वर्णन

मूल गाथा- पढम पोरिसि सज्झाय, बीय झाण झियायइ।
तइयाए णिद्दमोक्ख तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय ॥१८॥

सस्कृत छाया- प्रथमपौरुष्या स्वाध्याय, द्वितीयाया ध्यान ध्यायेत।
तृतीयाया निद्रामोक्ष तु, चतुर्थ्यां भूयोऽपि स्वाध्यायम् ॥१८॥

अन्वयार्थ-पढम-पहले, पोरिसि-प्रहर मे, सज्झाय-स्वाध्याय करे, बीय-दूसरे प्रहर में, झाण-ध्यान, झियायई-ध्यावे, तु-और, तइयाए-तीसरे प्रहर मे, णिद्दमोक्ख-निद्रा को मुक्त करे, चउत्थी-चौथे प्रहर मे, भुज्जोवि-फिर, सज्झाय-स्वाध्याय करे।

भावानुवाद-प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करे, द्वितीय मे ध्यान, तृतीय मे निद्रा और चतुर्थ मे पुन स्वाध्याय करे।

19 रात्रि के चार भागो की कल्पना का प्रकार

मूल गाथा- ज णेइ जया रत्तिं, णक्खत्त तम्मि णहचउब्भाए।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पओसकालम्मि ॥१९॥

संस्कृत छाया- यन्नयति यदा रात्रि, नक्षत्र तस्मिन्नेव नभश्चतुर्भागे।
सप्राप्ते विरमेत्, स्वाध्यायात् प्रदोषकाले ॥१९॥

अन्वयार्थ-जया-जब, ज-जो, णक्खत्त-नक्षत्र, रत्ति-रात्रि को, णेइ-समाप्त करता है, तम्मि-उस नक्षत्र के, णह-आकाश के, चउब्भाए-चौथे भाग में, सपत्ते-प्राप्त होने पर, पओस-प्रदोष, कालम्मि-काल म, सज्झाय-स्वाध्याय से, विरमेज्जा-निवृत्त हो जावे।

भावानुवाद-जो नक्षत्र जिस रात्रि को समाप्त करता है अर्थात् जो नक्षत्र (तारा) रात भर रहकर सूर्योदय के समय अस्त होता है वह जब आकाश के प्रथम चतुर्थ भाग मे आ जाता है अर्थात् रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त होता है तब प्रदोष काल होता है, प्रदोष काल मे स्वाध्याय से निवृत्त हो जाना चाहिए।

20 वैरात्रिक काल से समय की ग्रहणता

मूल गाथा- तम्मेव य णक्खत्ते, गयणचउब्भागसावसेसम्मि।
वेरत्तियपि काल, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥२०॥

संस्कृत छाया- तस्मिन्नेव च नक्षत्रे, गगनचतुर्भागसावशेषे।
वैरात्रिकमपि काल, प्रतिलेख्य मुनि कुर्यात् ॥२०॥

अन्वयार्थ-तम्मेव-उसी, णक्खत्ते-नक्षत्र की गति, गयण-गगन मे, चउब्भाग-चतुर्थभाग के, सावसेसम्मि-अवशेष होने पर, मुणी-मुनि, वेरत्तियपि-वैरात्रिक, काल-काल को, पडिलेहित्ता-देखकर, कुज्जा-स्वाध्याय करे।

भावानुवाद-उसी नक्षत्र के आकाश के अन्तिम चतुर्थ भाग पर आ जाने पर रात्रि का अन्तिम चौथा प्रहर आ जाता है, तब उसे "वैरात्रिक काल" कहते हैं। 'वैरात्रिक' काल की प्रतिलेखना करके उसे जानकर मुनि स्वाध्याय करे।

21 विशेष रूप से दिन चर्या का वर्णन

मूल गाथा- पुव्विल्लम्मि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भडय।
गुरु वदित्तु सज्झाय, कुज्जा दुक्खविमोक्खण ॥२१॥

संस्कृत छाया- पूर्वस्मिन् चतुर्भागे, प्रतिलेख्य भाण्डकम्।
गुरु वन्दित्वा स्वाध्याय, कुर्याद्दु खविमोक्षणम् ॥२१॥

अन्वयार्थ-पुव्विल्लम्मि-प्रथम प्रहर के, चउब्भाए-चतुर्थ भाग में, भंडय-भण्डोपकरणों की, पडिलेहित्ताण-प्रतिलेखना करके, गुरुं-गुरु को, वदित्तु-वन्दना करे, (फिर) दुक्ख-दु खों से, विमोक्खणं-विमुक्त कराने वाली, सज्झाय-स्वाध्याय, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-दैनिक विशेष कृत्य दिवस के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में पात्रादि उपकरणों की प्रतिलेखना करके गुरु को वन्दन करके सभी दु खो से मुक्त कराने वाली स्वाध्याय करे।

22 प्रतिलेखन का समय बतलाना

मूल गाथा- पोरिसीए चउब्भाए, वदित्ताण तओ गुरु।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायण पडिलेहए॥२२॥

सस्कृत छाया- पौरुष्याश्चतुर्भागे, वन्दित्वा ततो गुरुम्।
अप्रतिक्रम्य काल, भाजन प्रतिलेखयेत्॥२२॥

अन्वयार्थ-तओ-तब, पोरिसीए-पहले प्रहर के, चउब्भाए-चौथे भाग मे, गुरु-गुरु महाराज को, वदित्ताण-वन्दना करके, कालस्स-(स्वाध्याय) काल से, अपडिक्कमित्ता-निवृत्त न होकर, भायण-पात्रो की, पडिलेहए-प्रतिलेखना करे।

भावानुवाद-पौरुषी का चतुर्थ भाग आने पर अर्थात् तीन भाग बीत जाने पर गुरु को वन्दन करके स्वाध्याय काल से निवृत्त होने से पूर्व ही पात्रो की प्रतिलेखना करे।

23 प्रतिलेखन एव प्रमार्जन की विधि का दिग्दर्शन

मूल गाथा- मुहपोत्ति पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छग।
गोच्छगलइयगुलिओ, वत्थाइ पडिलेहए॥२३॥

सस्कृत छाया- मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य, प्रतिलेखयेद् गोच्छकम्।
अङ्गुलिलातगोच्छक , वस्त्राणि प्रतिलेखयेत्॥२३॥

अन्वयार्थ-मुहपोत्ति-मुखवस्त्रिका की, पडिलेहित्ता-प्रतिलेखना करके, गोच्छग-गोच्छक (रजोहरण) की, पडिलेहिज्ज-प्रतिलेखना करे, गोच्छगलइयगुलिओ-गोच्छक को अगुलियो से ग्रहण करके (फिर), वत्थाइ-वस्त्रो की, पडिलेहए-प्रतिलेखना करे।

भावानुवाद-प्रतिलेखन की विधि-मुख वस्त्रिका की प्रतिलेखना करके गोच्छग-रजोहरण की प्रतिलेखना करे अगुलिया से गोच्छग को ग्रहण कर वस्त्रो की प्रतिलेखना करे।

24 वस्त्र प्रतिलेखना की विधि का निरूपण

मूल गाथा- उड्ढ थिर अतुरिय, पुव्व ता वत्थमेव पडिलेहे।
तो विइय पप्फोडे, तइय च पुणो पमज्जिज्ज॥२४॥

सस्कृत छाया- उर्ध्वं स्थिरमत्वरित, पूर्वं तावद् वस्त्रमेव प्रतिलखयेत्।
ततो द्वितीय प्रस्फोटयेत्, तृतीय च पुन प्रमृज्यात्॥२४॥

अन्वयार्थ-उड्ढ-ऊचा, थिर-स्थिर, अतुरिय-शीघ्रता से रहित, पुव्व-पहले, ता-तो, वत्थमेव-वस्त्र की, पडिलेहे-प्रतिलेखना करे, तो-उसके बाद, विइय-दूसरी बार, पप्फोडे-यतना से, प्रस्फोटना करे, च-फिर, तइय-तृतीय, पुणो-फिर, पमज्जिज्ज-(यतना पूर्वक) प्रमार्जना करे।

भावानुवाद-सर्वप्रथम उत्कटुकआसन से बैठे फिर वस्त्र को भूमि से ऊपर रखते हुए स्थिरता एव दृढता पूवक वस्त्र को पकडते हुए शीघ्रता नहीं करते हुए पहले तो वस्त्र की प्रतिलेखना करे, उसे चक्षु से देखे, फिर दूसरे में वस्त्र को यतनापूर्वक धीरे से खखरे-झटकाए और तीसरे में वस्त्र का प्रमार्जन करे।

25 प्रतिलेखना विधि का विशेष प्रकार

मूल गाथा- **अणच्चाविय अवलियं, अणाणुबंधिममोसलिं चेव।**
छप्पुरिमा णव खोडा, पाणीपाणिविसोहणं ॥२५॥

संस्कृत छाया- **अनर्तितमवलितं, अननुबन्ध्यमौशली चैव।**
षट्पूर्वा नवखोटका , पाणिप्राणिविशोधनं ॥२५॥

अन्वयार्थ-अणच्चाविय-वस्त्र को नचावे नहीं, अवलिय-मरोडे नहीं, अणाणुबंधि-झटके नहीं (नैरन्तर्य-युक्त) अमोसलि-दीवार आदि से न लगावे, छप्पुरिमा-षट्, णव-नौ, खोड़ा-खोटका (प्रस्फोटनरूप), पाणी-हाथों से, पाणि-प्राणियो का, विसोहण-विशोधन करे।

भावानुवाद-प्रतिलेखन के दोष अप्रमाद प्रतिलेखन के 6 भेद

1 प्रतिलेखन करते समय वस्त्र एव शरीर को नचावे नहीं।
2 अपने शरीर को मोडे नहीं और वस्त्र भी कहीं से मुडा हुआ न रहे।
3 वस्त्र का कोई हिस्सा दृष्टि से वन्चित न रह जावे या वस्त्र जोर से न झटके।
4 वस्त्र को उपर नीचे या तिर्छे किसी दिवाल आदि से स्पर्शित न होने दे।
5 प्रतिलेखन मे छह पुरिम और नव खोड होने चाहिए अर्थात् वस्त्र के दोनो हिस्सो को तीन बार खखेरना छपुरिम है और वस्त्र को तीन-तीन बार पूंज कर तीन बार शोधन नवखोड़ है और
6 वस्त्र पर कोई प्राणी हो तो उसका विशोधन-विवेक पूर्वक रक्षण करे।

26 प्रतिलेखना के छह दोषो का कथन

मूल गाथा- **आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइया।**
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी ॥२६॥

संस्कृत छाया- **आरभटा सम्मर्दा, वर्जयितव्या च मौशली तृतीया।**
प्रस्फोटना चतुर्थी , विक्षिप्ता वेदिका षष्ठी ॥२६॥

अन्वयार्थ-आरभडा-आरभटा (विपरीत प्रतिलेखना), सम्मद्दा-सम्मर्दा (वस्त्रों का समर्दन करना), य-और, तइया-तीसरी, मोसली-मोसली (नीचे ऊपर स्पर्श करना), चउत्थी-चौथी, पप्फोड़णा-प्रस्फोटना, विक्खित्ता-विक्षिप्ता, छट्ठी-छठी, वेइया-वेदिका (यह 6 प्रकार की प्रतिलेखना), वज्जेयव्वा-वर्जनी चाहिए।

भावानुवाद-प्रमाद प्रतिलेखन के छह भेद

1 आरभटा-निर्दिष्ट विधि से विपरीत प्रतिलेखन करना अथवा एक वस्त्र का प्रतिलेखन अधूरा छोड़कर दूसरे वस्त्र को प्रतिलेखन करने लगना।

2 सम्मर्दा-वस्त्र के कोने मुडे ही रह जायें या हवा मे हिलते रहे उन्हे देखा नहीं जा सके या वस्त्र अथवा उपकरण के ऊपर बैठकर प्रतिलेखन करना।

3 मोसली-वस्त्र को ऊपर नीचे इधर उधर किसी पदार्थ या दिवाल आदि से सघटित कराते रहना।

4 प्रस्फोटना-धूल धूसरित वस्त्र को झटकाने क समान प्रतिलेखन मे वस्त्र को जोर से झटकना।

5 विक्षिप्ता-प्रतिलेखन किये गये वस्त्र को अप्रतिलेखित वस्त्रो म रख देना या प्रतिलेखन करते हुए वस्त्र के पल्ले को ऊचा फेकना।

6 वेदिका-प्रतिलेखना करते समय घुटनो के ऊपर नीचे या पार्श्व मे हाथ रखना या एक घुटने का अथवा दोनो घुटनो को भुजाआ के बीच रखना इन अप्रशस्त प्रतिलेखनाओ का परित्याग करना चाहिए।

27 प्रतिलेखना के अन्य दोषो का वर्णन

मूल गाथा- **पसिढिलपलम्बलोला, एगामोसा अणेगरुवधुणा।**
कुणइ पमाणि पमाय, सकियगणणोवग कुज्जा॥२७॥

सस्कृत छाया- **प्रशिथिल प्रलबो लोल, एकामर्शाऽनेकरूपधूना।**
कुरुते प्रमाणे प्रमाद, शकिते गणनोपयोग कुर्यात्॥२७॥

अन्वयार्थ-**पसिढिल**-शिथिल वस्त्र पकडना, **पलब**-विषम ग्रहण करना, **लोला**-वस्त्र को भूमि पर मसलना **एगामोसा**-मध्य से पकडकर झाडना, **अणेगरूवधुणा**-अनेक रूप से वस्त्र को धुनना, **पमाणि**-प्रस्फोटनादि सख्या मे, **पमाय**-प्रमाद, **कुणइ**-करता है, **सकिय**-शकित होकर, **गणणोवग**-गणना के उपयोग को, **कुज्जा**-करता है।

भावानुवाद-प्रमाद प्रतिलेखना के अन्य 7 भेद

1 प्रशिथिल-वस्त्र को दृढता से नहीं पकडना।

2 प्रलम्ब-वस्त्र को दूर लटकाते हुए प्रतिलेखना करना।

3 लोल-प्रतिलेख्यमान् वस्त्र को भूमि के साथ या हाथ से सघर्षण करना।

4 एकामर्शा-एक ही दृष्टि मे पूरे वस्त्र को देख जाना।

5 अनेक रूप धूनना-प्रतिलेखना करते समय शरीर को अथवा वस्त्र को इधर-उधर हिलाना या अनेक बार झटकना।

6 प्रमाण-प्रमाद प्रतिलेखन मे नवखोडा (नवबार झटकना) आदि का परिमाण बताया है उसके प्रति अनुपयुक्त असावधान रहना।

7 गणणोपगणना-प्रतिलेखना के प्रस्फोटन प्रमार्जन आदि की गणना म विस्मृति की शका हन प अगुलियो पर गणना करने लग जाना और उससे प्रतिलेखना म उपयोग नहीं रहना इस अप्रशस्त प्रतिलेखन का त्याग करके मुनि को आगमोक्त विधि से प्रतिलेखन करना चाहिए।

28 प्रतिलेखना की सदोपता और निर्दोपता का वर्णन

मूल गाथा- अणूणाइरित्तपडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य।
पढम पयं पसत्थ, सेसाणि उ अप्पसत्थाइ ॥२८॥

सस्कृत छाया- अनूनातिरिक्ता प्रतिलेखना, अविव्यत्यासा तथैव च।
प्रथम पद प्रशस्त, शेषाणि त्वप्रशस्तानि ॥२८॥

अन्वयार्थ-पडिलेहा-प्रतिलेखना के विषय में, अणूणाइरित्त-न्यूनाधिकता से रहित, तहेव य-तथा, अविवच्चासा विपरीतपने से रहित, पढम-यह पहला, पय-भग, पसत्थ-प्रशस्त, है उ-और, ससाणि-शेष भागे, अप्पसत्थाई अप्रशस्त हैं।

भावानुवाद-प्रतिलेखन मे प्रस्फोटन प्रमार्जन के प्रमाण से न अधिक करना और न कम तथा विधि से विपरीत भी नहीं करना प्रथम प्रशस्त भग है शेष भग अशुद्ध हैं।

29 प्रतिलेखन समय त्याज्य बातो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- पडिलेहण कुणतो, मिहो कह कुणइ जणवयकह वा।
देइ व पच्चक्खाण, वाएइ सय पडिच्छइ वा ॥२९॥

सस्कृत छाया- प्रतिलेखना कुर्वन्, मिथ कथा करोति जनपदकथा वा।
ददाति वा प्रत्याख्यान, वाचयति स्वय प्रतीच्छति वा ॥२९॥

अन्वयार्थ-पडिलेहण-प्रतिलेखना, कुणतो-करता हुआ (साधु), मिहो-आपस में, कह-कथा (वार्तालाप), कुणइ करता है, वा-अथवा, जणवय-जनपद की, कह-कथा करता है, पच्चक्खाण-दूसर को पच्चक्खाण, देइ-करता है, व-अथवा, वाएइ-वाचना (पढाता) देता है, वा-अथवा सय-स्वय, पडिच्छइ-पढता है।

भावानुवाद-प्रतिलेखन करते हुए जो मुनि परस्पर वार्तालाप करता है, जनपद-देश कथा आदि करता है, प्रत्याख्यान आदि कराता है दूसरों को वाचना देता है-पढाता है या स्वय वाचना लेता है।

30 प्रतिलेखना मे लगने वाले दोषों का वर्णन

मूल गाथा- पुढवी आउक्काए तेऊ, वाऊ वणस्सइ तसाण।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहओ होइ ॥30॥

सस्कृत छाया- पृथ्व्यपकाय, तेजोवायुवनस्पतित्रसाणाम्।
प्रतिलेखनाप्रमत्त, षण्णामपि विराधको भवति ॥३०॥

अन्वयार्थ-पडिलेहणा-प्रतिलेखना मे, पमत्तो-प्रमाद करने वाला (प्रमत्त भाव से), पुढवी-पृथ्वीकाय, आउक्काए-अप्काय, तेऊ-तेउकाय, वाऊ-वायुकाय, वणस्सइ-वनस्पतिकाय (और) तसाण-त्रसकाय, छण्हपि-इन छह कायों का, विराहओ-विराधक, होइ-होता है।

भावानुवाद-प्रतिलेखना मे प्रमाद करने वाला मुनि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय छहो कायो का विराधक-हिसक होता है।

31 प्रतिलेखना के निमित्त से आराधना होने का प्रकार

मूल गाथा- **पुढवीआउक्काए तेऊ, वाऊ वणस्सइ तसाण।**
पडिलेहणाआउत्तो, छण्ह सरक्खओ होइ॥३१॥

सस्कृत छाया- **पृथ्व्यप् तेजो, वायुवनस्पतित्रसाणाम्।**
प्रतिलेखनाऽऽयुक्त , षण्णा सरक्षको भवति॥३१॥

अन्वयार्थ-पडिलेहणा-प्रतिलेखना म, आउत्तो-उपयोग रखने वाला (साधु), पुढवी-पृथ्वीकाय, आउक्काए-अप्काय, तेऊ-तेउकाय, वाऊ-वायुकाय, वणस्सइ-वनस्पतिकाय, तसाण-त्रसकाय (इन), छण्ह-छहो काय का, सरक्खओ-सरक्षक, होइ-होता है।

भावानुवाद-प्रतिलेखन में उपयोग रखने वाला अप्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजसकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय छहो कायो का सरक्षक होता है।

32 तृतीय पौरुषी के कर्तव्यो का वर्णन

मूल गाथा- **तइयाए पोरिसीए, भत्त पाण गवेसए।**
छण्ह अण्णयराए, कारणम्मि समुट्ठिए॥३२॥

सस्कृत छाया- **तृतीयाया पौरुष्या, भक्त पान गवेषयेत्।**
षण्णामन्यतरस्मिन्, कारणे समुत्थिते॥३२॥

अन्वयार्थ-तइयाए-तीसरी, पोरिसीए-पोरिसी मे, छण्ह-छह कारणो में से, अण्णयराए-किसी एक, कारणम्मि-कारण के, समुट्ठिए-उपस्थित होने पर, भत्त-आहार, पाण-पानी की, गवेसए-गवेषणा करे।

भावानुवाद-तीसरी पौरुषी-मुनि तीसरी पौरुषी मे छह कारणो मे से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर भक्त पान-आहार पानी की गवेषणा करे।

33 गवेषणा के षट् कारणो का वर्णन

मूल गाथा- **वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए सजमट्ठाए।**
तह पाणवत्तियाए, छट्ठ पुण धम्मचिताए॥३३॥

सस्कृत छाया- **वेदनायै वैयावृत्याय, इर्यार्थाय च सयमार्थाय।**
तथाप्राणप्रत्ययाय, षष्ठ पुनर्धर्मचिन्तायै॥३३॥

अन्वयार्थ-वेयण-क्षुधा वेदना की शांति के लिए, वेयावच्चे-वैयावृत्य (सेवा) करने के लिए, इरियट्ठाए-ईर्या समिति के लिए, य-और, सजमट्ठाए-सयम पालने के लिए, तह-तथा, पाणवत्तियाए-प्राणों की रक्षा के लिए, पुण-और, छट्ठ-छठे, धम्मचिताए-धर्मचिन्तन के लिए (आहारादि की गवेषणा करे)।

भावानुवाद-छह कारण आहार ग्रहण करने के

1 क्षुधा वेदनीय की उपशान्ति के लिए 2 वैयावृत्य-सेवा करने के लिए, 3 ईर्या समिति का पालन करने के लिए, 4 सयम पालन करने के लिये, 5 जीवन निर्वाह या प्राणों की रक्षा के लिए और 6 धर्म चिन्तन के लिए आहार पानी की गवेषणा करे।

34 आहारादि की गवेषणा आवश्यक है अथवा नहीं

मूल गाथा- णिग्गथो धिइमतो, णिग्गथी वि ण करेज्ज छहि चेव।
ठाणेहिं उ इमेहिं, अणइक्कमणाइ से होइ॥३४॥

सस्कृत छाया- निर्ग्रन्थो धृतिमान, निर्ग्रन्थ्यपि न कुर्याद् षड्भिरचैव।
स्थानैरेभिः, अनतिक्रमणाय तस्य भवति (तानि)॥३४॥

अन्वयार्थ-धिइमतो-धैर्यमान्, णिग्गथो-साधु, वि-अथवा, णिग्गथी-साध्वी, इमहिं-इन, छहिं-छह, ठाणेहिं-कारणो से, ण करेज्ज-आहार पानी न करे, उ-तो, से-उससे, अणइक्कमणाइ-(सयम का भी) अतिक्रमण नहीं होइ-होता।

भावानुवाद-धैर्य सम्पन्न साधु या साध्वी निम्न छह कारणों से आहार पानी की गवेषणा नहीं करता है या आहार पानी नहीं करता है तो वह तीर्थंकरो की आज्ञा का एव सयम का अतिक्रमण नहीं करता है।

35 आहारादि की गवेषणा निषेध के छह कारण

मूल गाथा- आयके उवसग्गे, तितिक्खया बम्भचेरगुत्तीसु।
पाणिदया तवहेउ, सरीरवोच्छेयणट्ठाए॥३५॥

सस्कृत छाया- आतक उपसर्गे, तितिक्षया ब्रह्मचर्य गुप्तिषु।
प्राणिदयाहेतो तपोहेतो, शरीरव्यवच्छेदार्थाय॥३५॥

अन्वयार्थ-आयके-आतक (रोगादि के उत्पन्न) होने पर, उवसग्ग-उपसर्ग होने पर, बभचेरगुत्तीसु-ब्रह्मचर्य गुप्ति की, तितिक्खया-रक्षा के लिए, पाणिदया-प्राणियों पर दया के लिए, तवहेउ-अनशन के लिए, सरीर-शरीर के, वोच्छेयणट्ठाए-व्यवच्छेदनार्थ (अनशन के लिए), आहारादि-की गवेषणा न करे।

भावानुवाद-छह कारण आहार त्याग करने के

1 रोग ग्रस्त होने पर, 2 देव मनुष्य या तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग आने पर, 3 ब्रह्मचर्य गुप्ति की सुरक्षा के लिए, 4 प्राणियों की दया के लिए 5 तप के लिए और, 6 अन्तिम समय शरीर त्याग-संथारा करने के लिए भक्त पान न करे।

36 भिक्षा ग्रहण की विधि एव प्रमाण क्षेत्र

मूल गाथा- अवसेस भडग गिज्झ, चक्खुसा पडिलेहए।
परमद्धजोयणाओ, विहार विहरए मुणी ॥३६॥

सस्कृत छाया- अवशेष भाण्डक गृहीत्वा, चक्षुषा प्रतिलेखयेत्।
परमर्धयोजनात्, विहार विहरेन्मुनि ॥३६॥

अन्वयार्थ-मुणी-मुनि, अवसेस-सभी, भडग-भडोपकरण को, गिज्झ-लेकर, चक्खुसा-आख से, पडिलेहए-प्रतिलेखना करे, परमद्ध-परमार्द्ध, जोयणाओ-योजन प्रमाण, विहार-विहार करके, विहरए-विचरे।

भावानुवाद-मुनि अवशेष सभी भण्डोपकरणो को ग्रहण करके उनकी नेत्रो से प्रतिलेखना करे और आवश्यकता होने पर उत्कृष्टत अर्ध योजन तक भिक्षा हेतु विचरण करे।

37 चतुर्थ पौरुषी मे स्वाध्याय का अनुष्ठान

मूल गाथा- चउत्थीए पोरिसीए, णिक्खिवित्ताण भायण।
सज्झाय च तओ कुज्जा, सव्वभावविभावण ॥३७॥

सस्कृत छाया- चतुर्थ्यां पौरुष्या, निक्षिप्य भाजनम्।
स्वाध्याय च तत कुर्यात्, सर्वभावविभावनम् ॥३७॥

अन्वयार्थ-चउत्थीए-चौथी, पोरिसीए-पौरुषी में, भायण-भाजन (पात्रो को), णिक्खिवित्ताण-रखकर च-और, तओ-उसके बाद, सव्व भाव-सभी भावो को, विभावण-प्रकाशित करने वाली, सज्झाय-स्वाध्याय, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-चतुर्थ पौरुषी-चतुर्थ प्रहर के आ जाने पर सभी पात्रा को बाधकर रख दे, उसके बाद सभी भावो का प्रकाशक स्वाध्याय करे।

38 स्वाध्याय के अनन्तर शय्यादि की प्रतिलेखना

मूल गाथा- पोरिसीए चउब्भाए, वदित्ताण तओ गुरु।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्ज तु पडिलेहए ॥३८॥

सस्कृत छाया- पौरुष्याश्चतुर्भागे, वन्दित्वा ततो गुरुम्।
प्रतिक्रम्य काल, शय्या तु प्रतिलेखयेत् ॥३८॥

अन्वयार्थ-पोरिसीए-चौथी पोरिसी के, चउब्भाए-चौथे भाग मे, गुरु-गुरु महाराज को, वदित्ताण-वन्दना करके, तु-तथा, कालस्स-उस काल से, पडिक्कमित्ता-निवृत्त होकर, तओ-फिर, सेज्ज-शय्यादि की, पडिलेहए-प्रतिलखना करे।

भावानुवाद-पौरुषी के चौथे भाग म गुरुदेव को वन्दना करके काल का प्रतिक्रमण कर स्वाध्याय से निवृत्त होकर शय्या का प्रतिलेखन करे।

अन्वयार्थ-वेयण-क्षुधा वेदना की शाति के लिए, **वेयावच्चे**-वैयावृत्य (सेवा) करने के लिए, **इरियट्ठाए**-ईर्या समिति के लिए, **य**-और, **सजमट्ठाए**-सयम पालने के लिए, **तह**-तथा, **पाणवत्तियाए**-प्राणो की रक्षा के लिए, **पुण**-और, **छट्ठ**-छठे, **धम्मचिताए**-धर्मचिन्तन के लिए (आहारादि की गवेषणा करे)।

भावानुवाद-छह कारण आहार ग्रहण करने के

1 क्षुधा वेदनीय की उपशान्ति के लिए 2 वैयावृत्य-सेवा करने के लिए, 3 ईर्या समिति के पालन के लिए, 4 सयम पालन करने के लिये, 5 जीवन निर्वाह या प्राणो की रक्षा के लिए और, 6 धर्म चिन्तन के लिए आहार पानी की गवेषणा करे।

34 आहारादि की गवेषणा आवश्यक है अथवा नहीं

मूल गाथा- **णिग्गथो धिइमतो, णिग्गथी वि ण करेज्ज छहि चेव।**
ठाणेहिं उ इमेहिं, अणइक्कमणाइ से होइ॥३४॥

सस्कृत छाया- **निर्ग्रन्थो धृतिमान, निर्ग्रन्थ्यपि न कुर्याद् षड्भिश्चैव।**
स्थानैस्त्वेभि , अनतिक्रमणाय तस्य भवति (तानि)॥३४॥

अन्वयार्थ-धिइमतो-धैर्यमान्, **णिग्गथो**-साधु, **वि**-अथवा, **णिग्गथी**-साध्वी, **इमेहिं**-इन, **छहिं**-छह, **ठाणेहिं**-कारणो से, **ण करेज्ज**-आहार पानी न करे, **उ**-तो, **से**-उससे, **अणइक्कमणाइ**-(सयम का भी) अतिक्रमण नहीं **होइ**-होता।

भावानुवाद-धैर्य सम्पन्न साधु या साध्वी निम्न छह कारणो से आहार पानी की गवेषणा नहीं करता है या आहार पानी नहीं करता है तो वह तीर्थंकरो की आज्ञा का एव सयम का अतिक्रमण नहीं करता है।

35 आहारादि की गवेषणा निषेध के छह कारण

मूल गाथा- **आयके उवसग्गे, तितिक्खया बभचेरगुत्तीसु।**
पाणिदया तवहेउ, सरीरवोच्छेयणट्ठाए॥३५॥

सस्कृत छाया- **आतक उपसर्ग, तितिक्षया ब्रह्मचर्य गुप्तिषु।**
प्राणिदयाहेतो तपोहेतो , शरीरव्यवच्छेदार्थाय॥३५॥

अन्वयार्थ-आयके-आतक (रोगादि के उत्पन्न) होने पर, **उवसग्गे**-उपसर्ग होने पर, **बभचरगुत्तीसु**-ब्रह्मचर्य गुप्ति की, **तितिक्खया**-रक्षा के लिए, **पाणिदया**-प्राणियो पर दया के लिए, **तवहेउ**-अनशन के लिए, **सरीर** शरीर के, **वोच्छेयणट्ठाए**-व्यवच्छेदनार्थ (अनशन के लिए), आहारादि-की गवेषणा न करे।

भावानुवाद-छह कारण आहार त्याग करने के

1 रोग ग्रस्त होने पर, 2 देव मनुष्य या तिर्यन्च सम्वन्धी उपसर्ग आने पर, 3 ब्रह्मचर्य गुप्ति की सुरक्षा के लिए, 4 प्राणियो की दया के लिए, 5 तप के लिए और, 6 अन्तिम समय शरीर त्याग-सथारा करने के लिए भक्त पान न करे।

36 भिक्षा ग्रहण की विधि एव प्रमाण क्षेत्र

मूल गाथा- अवसेस भडग गिज्झ, चक्खुसा पडिलेहए।
परमद्धजोयणाओ, विहार विहरए मुणी ॥३६॥

सस्कृत छाया- अवशेष भाण्डक गृहीत्वा, चक्षुषा प्रतिलेखयेत्।
परमर्धयोजनात्, विहार विहरेन्मुनि ॥३६॥

अन्वयार्थ-मुणी-मुनि, अवसेस-सभी, भडग-भडोपकरण को, गिज्झ-लेकर, चक्खुसा-आख से, पडिलेहए-प्रतिलेखना करे, परमद्ध-परमार्द्ध, जोयणाओ-योजन प्रमाण, विहार-विहार करके, विहरए-विचरे।

भावानुवाद-मुनि अवशेष सभी भण्डोपकरणो को ग्रहण करके उनकी नेत्रो से प्रतिलेखना करे और आवश्यकता होने पर उत्कृष्टत अर्ध योजन तक भिक्षा हेतु विचरण करे।

37 चतुर्थ पौरुषी मे स्वाध्याय का अनुष्ठान

मूल गाथा- चउत्थीए पोरिसीए, णिक्खिवित्ताण भायण।
सज्झाय च तओ कुज्जा, सव्वभावविभावण ॥३७॥

सस्कृत छाया- चतुर्थ्यां पौरुष्या, निक्षिप्य भाजनम्।
स्वाध्याय च तत कुर्यात्, सर्वभावविभावनम् ॥३७॥

अन्वयार्थ-चउत्थीए-चौथी, पोरिसीए-पौरुषी मे, भायण-भाजन (पात्रो को), णिक्खिवित्ताण-रखकर, च-और, तओ-उसके बाद सव्व भाव-सभी भावो को, विभावण-प्रकाशित करने वाली, सज्झाय-स्वाध्याय, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-चतुर्थ पौरुषी-चतुर्थ प्रहर के आ जाने पर सभी पात्रा को बाधकर रख दे, उसके बाद सभी भावो का प्रकाशक स्वाध्याय करे।

38 स्वाध्याय के अनन्तर शय्यादि की प्रतिलेखना

मूल गाथा- पोरिसीए चउब्भाए, वदित्ताण तओ गुरु।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्ज तु पडिलेहए ॥३८॥

सस्कृत छाया- पौरुष्याश्चतुर्भागे, वन्दित्वा ततो गुरुम्।
प्रतिक्रम्य काल, शय्या तु प्रतिलेखयेत् ॥३८॥

अन्वयार्थ-पोरिसीए-चौथी पोरिसी के, चउब्भाए-चौथे भाग मे, गुरु-गुरु महाराज को, वदित्ताण-वन्दना करके, तु-तथा, कालस्स-उस काल से, पडिक्कमित्ता-निवृत्त होकर, तओ-फिर, सेज्ज-शय्यादि की, पडिलेहए-प्रतिलेखना करे।

भावानुवाद-पौरुषी के चौथे भाग मे गुरुदेव को वन्दना करके काल का प्रतिक्रमण कर स्वाध्याय से निवृत्त होकर शय्या का प्रतिलेखन करे।

39 रात्रि चर्या का प्रारभ छह आवश्यक से

मूल गाथा- **पासवणुच्चारभूमि च, पडिलेहिज्ज जय जई।**
काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खण ॥३९॥

सस्कृत छाया- **प्रश्रवणोच्चारभूमि च, प्रतिलेखयेद् यत यति ।**
कायोत्सर्ग तत कुर्यात्, सर्वदु खविमोक्षणम् ॥३९॥

अन्वयार्थ-जई-यति (साधु), पासवण-प्रस्रवण, च-और, उच्चारभूमि-उच्चार के स्थान को, जय-यतनापूर्वक, पडिलेहिज्ज-देखे, तओ-इसके बाद, सव्वदुक्ख-सभी दु खों से, विमोक्खण-छुडाने वाला, काउस्सग्ग-कायोत्सर्ग करे।

भावानुवाद-दैवसिक प्रतिक्रमण-यत्नशील मुनि प्रश्रवण और उच्चार भूमि का प्रतिलेखन करे। अनन्तर सभी दुखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे।

40 कायोत्सर्ग मे विचारणीय-चिन्तनीय विषय

मूल गाथा- **देवसिय च अईयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो।**
णाणे य दसणे चेव, चरित्तम्मि तहेव य ॥४०॥

सस्कृत छाया- **दैवसिक चातिचार चिन्तयेदनुपूर्वश ।**
ज्ञाने च दर्शने चैव, चरित्रे तथैव च ॥४०॥

अन्वयार्थ-च-और, णाणम्मि-ज्ञान, चेव-और, दसणे-दर्शन, तहेवय-और, चरित्तम्मि-चारित्र मे लगे हुए, देवसिय-दिवस सम्बन्धी, अइयार-अतिचार का, अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, चितिज्ज-चिन्तन करे।

भावानुवाद-ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे लगे हुए दिवस सम्बन्धी अतिचारो का अनुक्रम से चिन्तन करे।

41 कायोत्सर्ग के पश्चात् करने वाली क्रिया

मूल गाथा- **पारियकाउस्सग्गो, वदित्ताण तओ गुरु।**
देवसिय तु अईयार, आलोएज्ज जहक्कम ॥४१॥

सस्कृत छाया- **पारितकायोत्सर्ग , वन्दित्वा ततो गुरुम्।**
दैवसिक त्वतिचार, आलोचयेद्यथाक्रमम् ॥४१॥

अन्वयार्थ-काउस्सग्गो-कायोत्सर्ग, पारिय-पारकर, तओ-फिर, गुरु-गुरु महाराज को, वदित्ताण-वदना कर देवसिय-दिवस सम्बन्धी, अइयार-अतिचारा की, जहक्कम्म-यथा क्रम से, आलोएज्ज-आलोचना करे।

भावानुवाद-कायोत्सर्ग को पूर्ण करके-पार करके गुरु को वन्दना करे, तदनन्तर दिवस सम्बन्धी अतिचारों अनुक्रम से आलोचना करे।

42 अतिचार रूप पाप से निवृत्त होना

मूल गाथा- पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो, वदित्ताण तओ गुरु।
काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खण ॥४२॥

सस्कृत छाया- प्रतिक्रम्य निशल्य , वन्दित्वा ततो गुरुम्।
कायोत्सर्गं तत कूर्यात्, सर्वदु खविमोक्षण् ॥४२॥

अन्वयार्थ-पडिक्कमित्तु-प्रतिक्रमण करके, णिस्सल्लो-शल्य रहित होकर, तओ-फिर, गुरु-गुरु महाराज को, वदित्ताण-वदना करे, तओ-तत्पश्चात्, सव्वदुक्ख-सभी दु खो से, विमोक्खण-छुडाने वाला, काउस्सग्ग-कायोत्सर्ग, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-प्रतिक्रमण कर मायादि शल्यो से रहित होकर फिर गुरु को वन्दन करे। अनन्तर सब दु खो से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे।

43 काल की प्रतिलेखना प्रतिक्रमण

मूल गाथा- पारियकाउस्सग्गो, वदित्ताण तओ गुरु।
थुइमगल च काऊण, काल सपडिलेहए ॥४३॥

सस्कृत छाया- पारितकायोत्सर्ग , वन्दित्वा ततो गुरुम्।
स्तुतिमगल च कृत्वा, काल सप्रतिलेखयेत् ॥४३॥

अन्वयार्थ-काउस्सग्गो-कायोत्सर्ग, पारिय-पारकर, तओ-फिर, गुरु-गुरु महाराज को, वदित्ताण-वदना करके, च-और, थुइमगल-स्तुति मगल, काउण-करके, काल-स्वाध्याय के काल की, सपडिलेहए-प्रतिलेखन करे।

भावानुवाद-कायोत्सर्ग पूर्ण करके-पार करके गुरु को वन्दना करे। फिर स्तुति मगल-सिद्ध भगवान की स्तुति करके काल का प्रतिलेखन करे।

44 प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि कृत्य का विषय

मूल गाथा- पढम पोरिसि सज्झाय, बिइय झाण झियायई।
तइयाए णिद्दमोक्ख तु, सज्झाय तु चउत्थिए ॥४४॥

सस्कृत छाया- प्रथमपौरुष्या स्वाध्याय, द्वितीयाया ध्यान ध्यायेत्।
तृतीयाया निद्रामोक्ष तु, स्वाध्याय तु चतुर्थ्याम् ॥४४॥

अन्वयार्थ-(रात्रिचर्या) पढम-पहली, पोरिसि-पोरिसी मे, सज्झाय-स्वाध्याय करे, बिइय-दूसरी पोरिसी में, झाण-ध्यान, झियायई-करे, तु-और, तइयाए-तीसरी पोरिसी मे, णिद्दमोक्ख-निद्रा को मुक्त करे, चउत्थिए-चौथी पोरिसी मे, सज्झाय-स्वाध्याय करे।

भावानुवाद-रात्रि सम्बन्धी कृत्य और प्रतिक्रमण-प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तृतीय प्रहर में निद्रा और चतुर्थ प्रहर मे पुन स्वाध्याय करे।

45 चतुर्थ पौरुषी के विषय मे विशेष चर्चा

मूल गाथा- **पोरिसीए चउत्थीए, काल तु पडिलेहिया।**
सज्झाय तु तओ कुज्जा, अबोहतो असजए॥४५॥

सस्कृत छाया- **पौरुष्या चतुर्थ्यां, काल तु प्रतिलेख्य।**
स्वाध्याय तु तत कुर्यात्, अबोधयन्नसयतान्॥४५॥

अन्वयार्थ-चउत्थीए-चौथी, पोरिसीए-पोरिसी मे, तु-तो, काल-काल की, पडिलेहिया-प्रतिलेखना करके, तओ फिर, असजए-असयत पुरुषो को, अबोहतो-न जगाता हुआ, सज्झाय-स्वाध्याय, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-चतुर्थ प्रहर मे काल का प्रतिलेखन कर अर्थात् अस्वाध्याय के कारणो को देखकर असयत व्यक्तियो को न जगाता हुआ स्वाध्याय करे अर्थात् इतने उच्च स्वर से स्वाध्याय न करे कि गृहस्थ लोग जग जाए।

46 स्वाध्याय के अनन्तर करणीय कृत्य

मूल गाथा- **पोरिसीए चउब्भाए, वदिऊण तओ गुरु।**
पडिक्कमित्तु कालस्स, काल तु पडिलेहए॥४६॥

सस्कृत छाया- **पौरुष्याश्चतुर्भागे, वन्दित्वा ततो गुरुम्।**
प्रतिक्रम्य कालस्य, काल तु प्रतिलेखयेत्॥४६॥

अन्वयार्थ-रात्रि की-पोरिसीए-चौथी पोरिसी के, चउब्भाए-चतुर्थ भाग में, गुरु-गुरु महाराज को, वदिऊण वन्दना करे, तओ-फिर, कालस्स-काल का, पडिक्कमित्तु-प्रतिक्रमण करके, तु-निश्चय ही, काल-प्रभातकाल की, पडिलेहए-प्रतिलेखना करे।

भावानुवाद-रात्रि के चतुर्थ प्रहर के चौथे भाग मे गुरुदेव को वन्दना करके काल का प्रतिक्रमण करके काल का प्रतिलेखना करे।

47 आवश्यक की विधि का वर्णन

मूल गाथा- **आगए कायवोसग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे।**
काउसग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खण॥४७॥

सस्कृत छाया- **आगते कायव्युत्सर्गे, सर्वदु खविमोक्षणे।**
कायोत्सर्ग तत कुर्यात्, सर्वदु खविमोक्षणम्॥४७॥

अन्वयार्थ-तओ-इसके बाद, सव्व दुक्ख-सभी दु खो से, विमोक्खणे-मुक्त कराने वाले, कायवोसग्गे-कायोत्सर्ग का समय, आगए-आने पर, सव्वदुक्ख-सभी दु खो से, विमोक्खण-छुडाने वाला, काउस्सग-कायोत्सर्ग, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-अनन्तर सर्व दु खो से मुक्त कराने वाले कायोत्सर्ग का समय आने पर समस्त दु खो से मुक्ति प्रदान

करने वाला कायोत्सर्ग करे।

48 कायोत्सर्ग मे चिन्तनीय अतिचारो का वर्णन

मूल गाथा- राइय च अईयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो।
णाणम्मि दसणम्मि य, चरित्तम्मि तवम्मि य॥४८॥

सस्कृत छाया- रात्रिक चातिचार, चिन्तयेदनुपूर्वश ।
ज्ञाने दर्शने च, चारित्रे तपसि च॥४८॥

अन्वयार्थ-णाणम्मि-ज्ञान मे, च-तथा, दसणम्मि-दर्शन में, य-और, चरित्तम्मि-चारित्र मे, य-तथा, तवम्मि-तप मे लगे हुए, राइय-रात्रि सम्बन्धी, अइयार-अतिचारो का, अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, चिंतिज्ज-चिन्तन करे।

भावानुवाद-ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप सम्बन्धी रात्रिकालीन अतिचारो का अनुक्रम से चिन्तन करे।

49 प्रथम के अतिरिक्त अन्य आवश्यको का विषय

मूल गाथा- पारियकाउस्सग्गो, वदित्ताण तओ गुरु।
राइय तु अईयार, आलोएज्ज जहक्कम॥४९॥

सस्कृत छाया- पारितकायोत्सर्ग , वन्दित्वा ततो गुरुम्।
रात्रिक त्वतिचार, आलोचयेद्यथाक्रमम्॥४९॥

अन्वयार्थ-काउस्सग्गो-कायोत्सर्ग, पारिय-पारकर, तओ-फिर, गुरु-गुरु को, वदित्ताण-वन्दना करके, तु-निश्चय ही, राइय-रात्रि सम्बन्धी, अइयार-अतिचारो की, जहक्कम-यथाक्रम से, आलोएज्ज-आलोचना करे।

भावानुवाद-कायोत्सर्ग को पारकर गुरुदेव को वन्दना करे। फिर रात्रि सम्बन्धी अतिचारो की अनुक्रम से आलोचना करे।

50 पाप से निवृत्त व नि शल्य होना

मूल गाथा- पडिक्कमित्तु णिस्सल्लो, वदित्ताण तओ गुरुं।
काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खण॥५०॥

सस्कृत छाया- प्रतिक्रम्य नि शल्य , वन्दित्वा ततो गुरुम्।
कायोत्सर्ग तत कुर्यात्, सर्वदु खविमोक्षणम्॥५०॥

अन्वयार्थ-तओ-उसके बाद, पडिक्कमित्तु-प्रतिक्रमण करके, णिस्सल्लो-शल्य रहित होकर, गुरु-गुरु को, वदित्ताण-वन्दना करके, तओ-उसके बाद, सव्व-सभी, दुक्ख-दु खो से, विमोक्खण-छुडाने वाला, काउस्सग्ग-कायोत्सर्ग, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-प्रतिक्रमण करके नि शल्य होकर गुरुदेव को वन्दना करे। अनन्तर सब दु खों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे।

51 कायोत्सर्ग मे स्थित हुए मुनि का चिन्तनीय विषय

मूल गाथा- कि तव पडिवज्जामि, एव तत्थ विचितए।
काउस्सग्ग तु पारित्ता, करिज्जा जिणसथव ॥५१॥

सस्कृत छाया- कि तप प्रतिपद्ये, एव तत्र विचिन्तयेत्।
कायोत्सर्गं तु पारयित्वा, कुर्यात् जिनसस्तवम् ॥५१॥

अन्वयार्थ-(मैं) कि-क्या, तव-तप, पडिवज्जामि-अगीकार करू, तत्थ-कायोत्सर्ग म, एव-इस प्रकार का, विचितए-चिन्तन करे, तु-फिर, काउस्सग्ग-कायोत्सर्ग को, पारित्ता-पारकर, जिण सथव-जिन सस्तव, करिज्जा-करे।

भावानुवाद-कायोत्सर्ग मे इस प्रकार चिन्तन करे कि "मैं आज कौन से तप को स्वीकार करू" इस प्रकार चिन्तन के पश्चात् कायोत्सर्ग पार कर जिन सस्तव करे।

52 छठे आवश्यक विधि का वर्णन

मूल गाथा- पारियकाउस्सग्गो, वदित्ताण तओ गुरु।
तव सपडिवज्जित्ता, कुज्जा सिद्धाण सथव ॥५२॥

सस्कृत छाया- पारितकायोत्सर्ग, वन्दित्वा ततो गुरुम्।
तप सम्प्रतिपद्य, कुर्यात् सिद्धाना सस्तवम् ॥५२॥

अन्वयार्थ-काउस्सग्गो-कायोत्सर्ग, पारिय-पारकर, गुरु-गुरु को, वदित्ताण-वन्दना करके, तओ-उसके बाद, तव-तप, सपडिवज्जित्ता-अगीकार कर, सिद्धाण-सिद्ध भगवान की, सथव-स्तुति, कुज्जा-करे।

भावानुवाद-कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर गुरु को वन्दना करे। अनन्तर यथोचित तप को अगीकार करके सिद्ध भगवन्तो की स्तुति करे।

53 समाचारी के आचरण का फल उपसहार

मूल गाथा- एसा समायारी, समासेण वियाहिया।
ज चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा ससार सागर ॥५३॥

त्ति बेमि

इति समायारी छब्बीसइम अज्झयण समत्त ॥२६॥

सस्कृत छाया- एषा सामाचारी, समासेन व्याख्याता।
या चरित्वा बहवो जीवा, तीर्णा ससारसागरम् ॥५३॥

इति ब्रवीमि।

इति समाचारी षडविंशतितमध्ययन समाप्तम् ॥२६॥

अन्वयार्थ-एसा-यह, समायारी-समाचारी, समासेण-सक्षेप से, वियाहिया-कही गई है, ज-जिसका, चरित्ता-पालन करके, बहू-बहुत से, जीवा-जीव, ससार सागर-ससार सागर, तिण्णा-तिर गये हैं।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू

भावानुवाद-यह दस प्रकार की समाचारी सक्षेप मे कही गई है। इसका पालन-आचरण कर बहुत से जीव ससार सागर से तैर गये हैं।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार समाचारी नामक छब्बीसवा अध्ययन सम्पन्न हुआ।

□□□

खलुकीय - सप्तविशम् अध्ययन

उत्थानिका

तीथकर भगवन्तो का यह 'जिन शासन' शासन के बल से नहीं, अनुशासन की धुरि पर टिका हुआ है। शासन और अनुशासन में बहुत कुछ अन्तर है। शासन बाह्यशक्ति, बल प्रयोग या शस्त्र प्रयोग को भी स्वीकार कर लेता है। जबकि अनुशासन मे केवल आन्तरिक भावशक्ति या स्नेहपूर्ण समझाईश का ही प्रयोग स्वीकृत हुआ है। यहा डण्डे का प्रयोग नहीं, अधिक से अधिक असहयोग तक का ही प्रयोग स्वीकार किया जा सकता है।

जिन शासन की इस अनुशासन व्यवस्था मे आचार्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। जिन शासन मे आचार्य किवा अनुशास्ता के अनुशासन के बिना साधु-साध्वी का एक दिन भी रहने की स्वीकृति नहीं दी है। अनुशास्ता के बिना चलने वाले सघ को बिना सेनापति की सेना या बिना सभापति की सभा की उपमा दी जा सकती है।

आचार्य सघ का अनुशास्ता होता है, वह श्रमणाचार की मर्यादाओ का सरक्षक सपालक और सपालन का सप्रेरक होता है। एक आचार्य का अनुशासन किस सीमा तक कठोर हो सकता है, अपने विनीत अविनीत शिष्यो के प्रति उसका कैसा अनुशासन होता है और अविनीत शिष्यो से घिर जाने पर उसे स्वय को कैसे बचा लेना चाहिए, इस सबका सुन्दर सैद्धान्तिक चित्रण हुआ है-प्रस्तुत अध्ययन मे।

मुनि गर्गाचार्य अपने समय के विशुद्ध सयम-साधक योग्यतम आचार्य थे। गर्ग गोत्रीय होने से उन्हे 'गार्ग्य' मुनि के नाम से विश्रुति प्राप्त थी। अध्ययन के प्रारम्भ में ही प्रथम गाथा के द्वारा उनकी विशेषताओ को दर्शाने वाले अनेक विशेषणो का उनके लिए प्रयोग किया गया है। वे आगमो के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अत उन्हे विशारद शब्द से विशेषित किया गया है। इसी प्रकार वे आचार्यत्व के सम्पूर्ण गुणो से युक्त थे। वे समाधि प्रतिसन्धित्सु अर्थात् समाधि-टूटी हुई भग्न समाधि को पुन जोडने वाले थे अर्थात् शिष्यो की आत्म समाधि-सयम समाधि के भग्न होने पर पुन उन्हे सयम में स्थिर करने की कला वाले थे और यह आचार्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है कि वह सयम पथ से विचलित साधको को कैसे पुन स्थिर करे।

गर्गाचार्य जितने साधनाप्रिय और अनुशासन प्रिय थे, उनका शिष्य परिवार उतना ही अधिक उद्दण्ड, अविनीत और स्वच्छन्दी था। गर्गाचार्य ने शिष्यो को समझाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु जब उन्होने देखा कि गलियार घोडे या खलुक (दुष्ट) बैल को समझा पाना-सुधार पाना कठिन है, वैसे ये शिष्य हो गए हैं, तो उन्होने उन शिष्यों को त्याग दिया। इसके अतिरिक्त अनुशासनात्मक कार्यवाही का उनके पास कोई मार्ग ही नहीं था।

यहा अनुशासन हीन शिष्यो को ''गलियार गधा'' और ''खलुक बैल'' से उपमित किया है। जैसे गलियार गधा बार-बार चाबुक की मार खाकर भी ठीक नहीं चलता है और खलुक बैल उन्मार्ग मे दौडता है या मध्य मार्ग मे ही पसर कर बैठ जाता है और गाडीवान् को दु खित कर देता है, उसी प्रकार अविनीत दुष्ट शिष्य आचार्य को दु खी कर देते हैं। बार-बार उनकी अवमानना करते हैं, उनसे ऊल-जलूल विवाद करते हैं और उनकी निन्दा करते हैं।

ऐसे अनुशासन हीन दुष्ट शिष्य त्यागने के योग्य ही होते हैं, यह प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख प्रतिपाद्य है अनुशासन हीनता कितनी भयावह और अनुशासन बद्धता कितनी हितावह होती है, यह हम इस अध्ययन के निष्कर्ष से समझने का प्रयास करे।

□□□

खलुकीय - सप्तविशम् अध्ययन

सूक्ति साराश

भवाटवी से पार होना हो तो साधना मे सलग्न रहो।
वाहन-यान विकट अटवी से पार कर देता है, वैसे ही योग साधना ससार कान्तार से पार कर देती है।

> **शिष्यत्व की सार्थकता गुरु को प्रणीत करने मे है गुरुत्व की सार्थकता शिष्य को अपना बनाए रखने म है।**
> दु शिक्षित अथवा दुष्ट बैल गाडीवान् को परेशान कर देते हैं। वैसे ही दुष्ट शिष्य गुरु को।

साधना मे भी साहस की आवश्यकता है।
धर्मयान में सयुक्त धृति दुर्बल शिष्य यान को छोडकर बीच म ही भाग जाते हैं।

> **किसी भी प्रकार का गर्व साधना का प्रतिबन्धक होता है।**
> ऋद्धि-रस-साता गर्व मे प्रमत्त साधक साधना पथ से विचलित हो जाते हैं।

व्यावहारिक भद्रता विनयवृत्ति को अभिव्यक्त करती है।
गुरु या बडो के साथ अभद्र व्यवहार साधक के अविनय को प्रगट करता है।

> **बहाने बाजी अव्यावहारिकता को अभिव्यक्त करती है।**
> साधना या सेवा के किसी भी कार्य मे बहाने बाजी मूढता या अत्यन्त अविनीतता की परिचायक है।

समूहगत साधक सेवा भावना से ओत प्रोत होता है और वही लक्ष्य तक पहुच सकता है।
सेवा के कार्य को बेगार (उपेक्षित) मान कर मत करो।
बेगार मान कर किया गया कार्य अपनी महत्ता को खो देता है।

ooo

अह खलुंकिज्जं सत्तवीसइमं अज्झयणं

अथ खलुंकीयं सप्तविंशमध्ययनम्

खलुंकीय

1 गर्गाचार्य का विशिष्ट परिचय

मूल गाथा- थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।
आइण्णे गणिभावम्मि, समाहिं पडिसधए॥1॥

सस्कृत छाया- स्थविरो गणधरो गार्ग्य , मुनिरासीद् विशारद ।
आकीर्णो गणिभावे, समाधि प्रतिसन्धत्ते॥१॥

अन्वयार्थ-थेरे-स्थविर, गणहरे-गणधर, विसारए-विशारद, आइण्णे-गुणो से युक्त, गणि भावम्मि-गणि भाव मे, समाहिं-समाधि को, पडिसधए-प्राप्त करने वाले, गग्गे-गर्ग गोत्रीय (गर्गाचार्य नाम के), मुणी-एक मुनि, आसी-थे।

भावानुवाद-गर्ग गोत्र वाले गर्गाचार्य नाम के स्थविर गणधर, आगमज्ञ, गुणो से आकीर्ण-सयुक्त, गणिभाव मे सुस्थित एव त्रुटित समाधि को जोडने वाले एक मुनि हुए थे।

2 विनीत शिष्यो से गुरु का ससार सुख पूर्वक पार

मूल गाथा- वहणे वहमाणस्स, कतार अइवत्तई।
जोगे वहमाणस्स, ससारो अइवत्तई॥2॥

सस्कृत छाया- वाहने वाह्यमानस्य, कान्तारमतिवर्तते।
योगे वाह्यमानस्य, ससारोऽतिवर्तते॥२॥

अन्वयार्थ-गर्गाचार्य शिष्यो से कहते हैं-(जिस प्रकार), वहण-वाहन में, वहमाणस्स-जोता हुआ वृषभ, कतार-अटवी को, अइवत्तई-पार कर जाता है (वैसे), जोगे-योग (सयम मार्ग) मे, वहमाणस्स-प्रवृत्त होता हुआ (शिष्य-गुरु), ससारो-ससार से, अइवत्तई-पार हो जाता है।

भावानुवाद-गर्गाचार्य का उपदेश-जैसे शकटादि वाहन को ठीक वहन करने वाला विनीत बैल कातार को सुख पूर्वक पारकर जाता है, वैसे ही सयम याग में प्रवृत्त होता हुआ विनीत मुनि भी ससार अटवी को पार कर जाता है।

खलुकीय - सप्तविंशम् अध्ययन

सूक्ति सारांश

भवाटवी से पार होना हो तो साधना मे सलग्न रहो।
वाहन-यान विकट अटवी से पार कर देता है, वैसे ही योग साधना ससार
कान्तार से पार कर देती है।

शिष्यत्व की सार्थकता गुरु को प्रणीत करने मे है गुरुत्व की
सार्थकता शिष्य को अपना बनाए रखने मे है।
दु शिक्षित अथवा दुष्ट बैल गाडीवान् को परेशान कर देते हैं।
वैसे ही दुष्ट शिष्य गुरु को।

साधना मे भी साहस की आवश्यकता है।
धर्मयान मे सयुक्त धृति दुर्बल शिष्य यान का छोडकर बीच मे ही भाग जाते हैं।

किसी भी प्रकार का गर्व साधना का प्रतिबन्धक होता है।
ऋद्धि-रस-साता गर्व मे प्रमत्त साधक साधना पथ से विचलित हो जाते हैं।

व्यावहारिक भद्रता विनयवृत्ति को अभिव्यक्त करती है।
गुरु या बडो के साथ अभद्र व्यवहार साधक के अविनय को प्रगट करता है।

बहाने बाजी अव्यावहारिकता को अभिव्यक्त करती है।
साधना या सेवा के किसी भी कार्य मे बहाने बाजी मूढता या अत्यन्त
अविनीतता की परिचायक है।

समूहगत साधक सेवा भावना से ओत प्रोत होता है और वही लक्ष्य तक पहुच सकता है।
सेवा के कार्य को बेगार (उपेक्षित) मान कर मत करो।
बेगार मान कर किया गया कार्य अपनी महत्ता को खो देता है।

❏❏❏

अह खलुंकिज्जं सत्तवीसइमं अज्झयणं

अथ खलुंकीयं सप्तविंशमध्ययनम्

खलुंकीय

1 गर्गाचार्य का विशिष्ट परिचय

मूल गाथा- थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।
आइण्णे गणिभावम्मि, समाहिं पडिसधए॥१॥

संस्कृत छाया- स्थविरो गणधरो गार्ग्य , मुनिरासीद् विशारद ।
आकीर्णो गणिभावे, समाधि प्रतिसन्धत्ते॥१॥

अन्वयार्थ-थेरे-स्थविर, गणहरे-गणधर, विसारए-विशारद, आइण्णे-गुणो से युक्त, गणि भावम्मि-गणि भाव मे, समाहिं-समाधि को, पडिसधए-प्राप्त करने वाले, गग्गे-गार्ग गोत्रीय (गर्गाचार्य नाम के), मुणी-एक मुनि, आसी-थे।

भावानुवाद-गर्ग गोत्र वाले गर्गाचार्य नाम के स्थविर गणधर, आगमज्ञ, गुणो से आकीर्ण-सयुक्त, गणिभाव मे सुस्थित एव त्रुटित समाधि को जोडने वाले एक मुनि हुए थे।

2 विनीत शिष्यो से गुरु का ससार सुख पूर्वक पार

मूल गाथा- वहणे वहमाणस्स, कतार अइवत्तई।
जोगे वहमाणस्स, ससारो अइवत्तई॥२॥

संस्कृत छाया- वाहने वाह्यमानस्य, कान्तारमतिवर्तते।
योगे वाह्यमानस्य, ससारोऽतिवर्तते॥२॥

अन्वयार्थ-गर्गाचार्य शिष्या से कहते हैं-(जिस प्रकार), वहणे-वाहन में, वहमाणस्स-जोता हुआ वृषभ, कतार-अटवी को, अइवत्तई-पार कर जाता है (वैसे), जोगे-योग (सयम मार्ग) मे, वहमाणस्स-प्रवृत्त होता हुआ (शिष्य-गुरु), ससारो-ससार से, अइवत्तई-पार हो जाता है।

भावानुवाद-गर्गाचार्य का उपदेश-जैसे शकटादि वाहन को ठीक वहन करने वाला विनीत बैल कातार को सुख पूर्वक पारकर जाता है, वैसे ही सयम योग में प्रवृत्त होता हुआ विनीत मुनि भी ससार अटवी को पार कर जाता है।

3 अविनीत शिष्य के दोषो का दिग्दर्शन दुष्ट वृषभ के समानार्थ

मूल गाथा- खलुके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सइ।
असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ से य भज्जई ॥३॥

सस्कृत छाया- खलुकान् यस्तु योजयति, विघ्नन् क्लिश्यति।
असमाधि च वेदयति, तोत्रकस्तस्य च भज्यते ॥३॥

अन्वयार्थ-जो-जो, गाडीवान्, खलुके-दुष्ट बैलों को, जोएइ-जोतता है, विहम्माणो-मारता हुआ, उ-और, किलिस्सइ-क्लेश को पाता है, च-तथा, असमाहिं-असमाधि का, वेएइ-अनुभव करता है, य-और, से-उस (गाडीवान) का, तोत्तओ-चाबुक भी, भज्जई-टूट जाता है।

भावानुवाद-जो खलुक-दुष्ट बैलो को गाडी आदि में जोतता है वह उनको प्रताडित करता हुआ सक्लेश को प्राप्त होता है, असमाधि का अनुभव करता है और (मारते-मारते) उस गाडीवान् का त्रोटक (चाबुक) भी टूट जाता है।

4 वृषभो की दुष्टता का व्यावहारिक फल

मूल गाथा- एग डसइ पुच्छम्मि, एगं विधइऽभिक्खण।
एगो भजइ समिल, एगो उप्पहपट्ठिओ ॥४॥

सस्कृत छाया- एक दशति पुच्छे, एक विंध्यत्यभीक्ष्णम्।
एको भनक्ति समिला, एक उत्पथप्रस्थित ॥४॥

अन्वयार्थ-एग-एक की, पुच्छम्मि-पूछ को, डसइ-डसता (काटता) है, एग-एक को, अभिक्खण-बार-बार, विधइ-(तोत्रादि से) बींधता है, एगो-एक, समिल-समिला (जुए) को, भजई-तोड देता है, एगो-एक, उप्पह-उत्पथ मे, पट्ठिओ-प्रस्थित हो जाता है।

भावानुवाद-वह विक्षुब्ध गाडीवान किसी एक बैल की पूछ काट देता है, तो किसी को पुन लोहे की आर से बींधता है। तब उन गलियार बैलों में से कोई एक जुए की कील को तोड देता है और काई उन्मार्ग पर दौड जाता है।

5 शठ बैल का तरुण गौ के पीछे भागना

मूल गाथा- एगो पडइ पासेणं, णिवेसइ णिवज्जइ।
उक्कुद्दई उप्फिडइ, सढे बालगवी वए ॥५॥

सस्कृत छाया- एक पतति पार्श्वेण, निविशति निपद्यते।
उत्कूर्दते उत्प्लवते, शठो बालगवीमनुव्रजति ॥५॥

अन्वयार्थ-एगो-एक वृषभ, पासेण-पसवाडे पर, पडइ-गिर जाता है, णिवेसइ-बैठ जाता है, णिवज्जइ-सो जाता है, उक्कुद्दई-कूदता है, उप्फिडइ-उछलता है, सढे-शठ बैल, बालगवी-तरुण गौ के पीछे, वए-भागता है।

भावानुवाद-कोई गलियार बैल एक पार्श्व से भूमि पर गिर पडता है, कोई बैठ जाता है, कोइ लेट जाता है, कोई

कूदता है, कोई छलागें लगाता है तो कोई शठ तरुण गाय के पीछे भागता है।

6 पूर्वोक्त विषयानुसार दुष्ट वृषभ का वर्णन

मूल गाथा- माई मुद्धेण पडई, कुद्धे गच्छई पडिप्पहं।
मयलक्खेण चिट्ठइ, वेगेण य पहावइ॥६॥

संस्कृत छाया- मायी मूर्ध्ना पतति, क्रुद्धो गच्छति प्रतिपथम्।
मृतलक्षेण तिष्ठति, वेगेन च प्रधावति॥६॥

अन्वयार्थ-माई-मायावान्, मुद्धेण-मस्तक के बल, पडइ-गिर पडता है, कुद्धे-क्रोध से युक्त होता हुआ, पडिप्पह-पीछे को, गच्छइ-भाग जाता है, मयलक्खेण-मृत लक्षण से, चिट्ठइ-ठहर जाता है, य-और, वेगेण-वेग से, पहावइ-दौडता है।

भावानुवाद-कोई मायावी बैल सिर नीचे करके गिर पडता है, कोई क्रोधित होकर प्रतिपथ विपरीत मार्ग पर चला जाता है, कोई मृत्यु का ढोंग कर के पडा रहता है और कोई वेग पूर्वक दौडने लगता है।

7 शकट से परे उत्पथ पर भागना

मूल गाथा- छिण्णाले छिंदई सेल्लिं, दुद्दंतो भंजए जुगं।
सेवि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जहित्ता पलायए॥७॥

संस्कृत छाया- छिन्नाल छिनत्ति सिल्लिं, दुर्दान्तो भनक्ति युगम्।
सोऽपि च सूत्कृत्य, उद्धाय पलायते॥७॥

अन्वयार्थ-छिण्णाले-दुष्ट बैल, सेल्लि-रस्सी को, छिदई-छेदता है, दुद्दंतो-दुर्दान्त जुग-जुए को, भजए-तोड देता है, सेवि य-और वह भी, सुस्सुयाइत्ता-सू-सू (सूत्कार) करके, उज्जहित्ता-(स्वामी के शकट को) छोड करक, पलायए-भाग जाता है।

भावानुवाद-कोई दुष्ट बैल रस्सी को तोड देता है, कोई दुर्दान्त बैल जुए को तोड डालता है और फिर वह फुफकार-सू-सू की आवाज करता हुआ गाडी को छोडकर भाग जाता है।

8 वृषभादि की तुलना से कुशिष्य की प्रकृति

मूल गाथा- खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा।
जोइया धम्मजाणम्मि, भज्जती धिइदुब्बला॥८॥

संस्कृत छाया- खलुंका यादृशा योज्या, दुःशिष्या अपि खलु तादृशाः।
योजिता धर्मयाने, भज्यन्ते धृतिदुर्बलाः॥८॥

अन्वयार्थ-जारिसा-जैसे, जुज्जा-जोते हुए, खलुंका-दुष्ट वृषभादि, तारिसा-वैसे ही, धम्म-धर्म [illegible] गाडी में, जोइया-जोते हुए, धिइदुब्बला-धृति दुर्बल, दुस्सीसा-दुष्ट शिष्य, वि-भी, भज्जंति [illegible]

भग कर देते हैं।

भावानुवाद-जैसे गाडी में जोते हुए गलियार बैल वाहन को तोड देते हैं वैसे ही धर्म यान में जुते हुए अधीर एव कायर, दुष्ट, स्वच्छन्दी शिष्य भी उसे (सयमयान को) भग कर देते हैं।

9 कुशिष्य की धृष्टता का वर्णन

मूल गाथा- इड्ढीगारविए एगे, एगेऽत्थ रसगारवे।
सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे ॥९॥

सस्कृत छाया- ऋद्धिगौरविक एक, एकोऽत्र रसगौरव।
सातागौरविक एक, एक सुचिरक्रोधन ॥९॥

अन्वयार्थ-एगे-कोई एक, इड्ढी-ऋद्धि से, गारविए-गौरविक है, एगे-कोई एक, अत्थ-(अधिकार में), रसगारवे-रसों मे मूर्च्छित है, एगे-कोई एक, साया गारविए-साता में मूर्च्छित है, एगे-कोई एक, सुचिर कोहणे-चिरकाल तक क्रोधी है।

भावानुवाद-कुशिष्य भी कोई ऋद्धि ऐश्वर्य से गर्वित होते हैं, कोई रस गर्वित या रस लोलुप होते हैं, कोई साता सुख का गर्व करते हैं या सुख शैलिये हो जाते हैं और कोई चिरकाल तक क्रोध करते हैं।

10 कुशिष्यो के आचरण और आचार्यों की कठिनता का अनुभव

मूल गाथा- भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाणभीरुए।
थद्धे एगेऽणुसासम्मि, हेऊहिं कारणेहिं य॥१०॥

सस्कृत छाया- भिक्षालसिक एक, एकोऽवमानभीरुक।
स्तब्ध एकोऽनुशास्मि, हेतुभि कारणैश्च॥१०॥

अन्वयार्थ-एगे-कोई, भिक्खालसिए-भिक्षाचारी में आलसी है, एगे-कोई एक, ओमाणभीरुए-अपमान भीरु हैं, एगे-कोई एक, थद्धे-अहकारी हैं, (ऐसे शिष्यो को) हेऊहिं-अनेक हेतु, य-और, कारणेहिं-कारणों से, अणुसासम्मि-अनुशासन करूँ।

भावानुवाद-कोई भिक्षाचरी मे आलसी होता है, कोई अपमान भीरु होता है, कोई धीठ है या अहकारी है, हेतु और कारणा से कभी किसी को गुरु अनुशासित करते हैं तो।

11 अविनीत शिष्यो को दी गई शिक्षा का फल

मूल गाथा- सोऽवि अतरभासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई।
आयरियाण तु वयण, पडिकूलेइऽभिक्खण॥११॥

सस्कृत छाया- सोऽप्यन्तरभाषावान्, दोषमेव प्रकरोति।
आचार्याणा तु वचन, प्रतिकूलयत्यभीक्ष्णम्॥११॥

अन्वयार्थ-सोऽवि-वह कुशिष्य, अतरभासिल्लो-बीच मे बोल उठता है, दोसमेव-(गुरु के) दोषो को ही, पकुव्वई-निकालता है, तु-और, अभिक्खण-बार-बार, आयरियाण-आचार्यों के, वयण-वचन के, पडिकूलेइ-प्रतिकूल चलता है।

भावानुवाद-वह कुशिष्य बीच मे ही बोल उठता है, और आचार्य-गुरु का ही दोष निकालता है तथा बार बार आचार्य के प्रतिकूल आचरण करता है।

12 अविनीत शिष्य की प्रतिकूल चर्या का सुन्दर चित्रण

मूल गाथा- ण सा मम वियाणाइ, णऽवि सा मज्झ दाहिइ।
णिग्गया होहिई मण्णे, साहू अण्णोत्थ वच्चउ॥१२॥

सस्कृत छाया- न सा मा विजानाति, नापि सा मह्य दास्यति।
निर्गता भविष्यति मन्ये, साधुरन्यस्तत्र व्रजतु॥१२॥

अन्वयार्थ-सा-वह श्राविका, मम-मुझको, ण वियाणाइ-नहीं जानती, णवि-न ही, सा-वह, मज्झ-मुझे, दाहिइ-भिक्षा देगी, णिग्गया-घर से बाहर, होहिई-गई होगी, मण्णे-(ऐसे मे) मानता हू, अत्थ-इस कार्य के लिए, अण्णो-कोई अन्य, साहू-साधु, वच्चउ-चला जावे।

भावानुवाद-गुरु द्वारा भिक्षा हेतु भेजने पर वह दुष्ट शिष्य कहता है-वह गृह स्वामिनी मुझे नहीं जानती है, वह मुझे नहीं देगी, मैं समझता हू, इस समय वह घर से बाहर गई हुई होगी, अत इस कार्य के लिए कोई अन्य साधु चला जावे (उसे भेज दे)।

13 प्रतिकूल कुशिष्यो से चिन्तनीय विषय

मूल गाथा- पेसिया पलिउचति, ते परियति समतओ।
रायवेट्ठिं च मण्णता, करेंति भिउडिं मुहे॥१३॥

सस्कृत छाया- प्रेषिता परिकुञ्चन्ति, ते परियन्ति समन्तात्।
राजवेष्टिमिव च मन्यमाना, कुर्वन्ति भृकुटिं मुखे॥१३॥

अन्वयार्थ-पेसिया-भेजे हुए (वे शिष्य), पलिउचति-कार्य का अपलाप (गोपन) करते हैं, ते-वे, समतओ-सर्वदिशाओ में, परियति-परिभ्रमण करते हैं, च-और, रायवेट्ठिं-राज आज्ञावत् कार्य को, मण्णता-मानते हुए, भिउडि-भृकुटी, मुहे-मुख पर, करेंति-करते हैं।

भावानुवाद-किसी कार्य के लिए भेजे गए अविनीत शिष्य काम किये बिना लौट आते हैं और अपलाप करते हैं कि आपने मुझे इस कार्य के लिए कहा ही कब था, वे काम चोर होकर इधर-उधर घूमते रहते हैं, गुरु आज्ञा को राजा की बेगार मानकर मुख पर भृकुटि तान लेते हैं।

14 शिक्षा देने पर भी विपरीत आचरण

मूल गाथा- वाइया सगहिया चेव, भत्तपाणेण पोसिया।
जायपक्खा जहा हसा, पक्कमति दिसोदिसि ॥१४॥

संस्कृत छाया- वाचिता सगृहीताश्चैव, भक्तपानेन पोषिता ।
जातपक्षा यथा हसा , प्रक्राम्यन्ति दिशि दिशि ॥१४॥

अन्वयार्थ-वाइया-पढाये हुए, सगहिया-सगृहीत किये, चेव-और, भत्तपाणेण-भक्त पान से, पोसिया-पुष्ट किये हुए, शिष्य, जहा-जैसे, हसा-हस, जायपक्खा-पखा के उत्पन्न होने पर, दिसो दिसि-दिशा विदिशा में, पक्कमति-घूमते हैं (वैसे ही स्वेच्छाचारी हो गये।)

भावानुवाद-आचार्य मन मे विचार करते हैं कि मैंने इन्हे पढाया और सग्रहित किया तथा भक्त पान से पोषित किया, किन्तु परो के आने पर जैसे हस पक्षी स्वच्छन्दतापूर्वक आकाश म विभिन्न दिशाओ मे गमन कर जाते हैं, वैसे ही ये शिष्य भी स्वेच्छाचारी हो गये हैं।

15 दुष्ट शिष्यो से क्या प्रयोजन?

मूल गाथा- अह सारही विचितेइ, खलुकेहिं समागओ।
किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयई॥१५॥

संस्कृत छाया- अथ सारथिर्विचिन्तयति, खलुकै समागत ।
किं मम दुष्टशिष्यै , आत्मा मेऽवसीदति ॥१५॥

अन्वयार्थ-अह-तदनन्तर, खलुकेहिं-दुष्ट शिष्यो द्वारा, समागओ-खेद को प्राप्त हुआ, सारही-सारथी, विचितइ-चिन्तन करता है कि, दुट्ठसीसेहिं-दुष्ट शिष्यों से, मज्झ-मुझे, किं-क्या प्रयोजन है, (क्यो कि) मे-मेरी, अप्पा-आत्मा, अवसीयइ-अवसाद (ग्लानि) को प्राप्त होती है।

भावानुवाद-जैसे आलसी बैलो को चलाने वाला गाडीवान दु खी होता है, उसी प्रकार गलियार बैलवत् अविनीत शिष्यो से खेद को प्राप्त हुए सारथी-आचार्य विचार करते हैं कि "मुझे इन दुष्ट शिष्या से क्या लाभ? इनक ससर्ग से तो मेरी आत्मा क्लेशित होती है"।

16 अविनीत शिष्यो के लिए दुष्ट गर्दभ की तुलना

मूल गाथा- जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलिगद्दहा।
गलिगद्दहे जहित्ताण, दढ परिगिण्हई तव ॥१६॥

संस्कृत छाया- यादृशा मम शिष्यास्तु, तादृशा गलिगर्दभा ।
गलिगर्दभांस्त्यक्त्वा, दृढ प्रगृह्णाति तप ॥१६॥

अन्वयार्थ-जारिसा-जैसे, गलिगद्दहा-गलियार गधे हैं, तारिसा-वैसे ही, मम-मेर, सीसाओ-ये शिष्य हैं, गलिगद्दहे-

गलियार गधो, (दुष्ट शिष्यो) को, जहित्ताण-छोडकर, दढ-दृढता के साथ, तव-तप को, पगिण्हई-ग्रहण करूँ।

भावानुवाद-जैसे गलियार गधे होते हैं वैसे ही मेरे ये शिष्य हैं आलसी और निकम्मे। ऐसा विचार कर गर्गाचार्य गधो के समान दुष्ट शिष्यो को छोडकर दृढता पूर्वक तप साधना मे सलग्न हो गये।

17 गर्गाचार्य द्वारा कुशिष्यो का त्याग करके एकाकी विचरण

मूल गाथा- मिउ मद्दवसपण्णो, गभीरो सुसमाहिओ।
विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा॥१७॥

त्ति बेमि।

खलुकिज्जं सत्तावीसइम अज्झयण समत्त॥२७॥

सस्कृत छाया- मृदुर्मार्दवसम्पन्न, गम्भीर सुसमाहित।
विहरतिमहीं महात्मा, शीलभूतेनात्मना॥१७॥

इति ब्रवीमि।

इति खलुकीय सप्तविशमध्ययन समाप्तम्॥२७॥

अन्वयार्थ-मिउ-मृदु, मद्दव-मार्दव से, सपण्णो-सपन्न, गभीरो-गभीर, सुसमाहिओ-सुसमाहित, महप्पा-महात्मा (गर्गाचार्य), सील भूएण-शील भूत, अप्पणा-आत्मा से, महिं-पृथ्वी पर, विहरइ-विचरने लगे।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-वह मृदु मार्दव सम्पन्न विनय और कोमलता सहित, गम्भीर सुसमाहित और शील सम्पन्न महान् आत्मा गर्गाचार्य पृथ्वी पर विचरने लगे।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार खलुकीय सत्ताईसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

मोक्ख मग्ग गई - अष्टविंशति अध्ययन

उत्थानिका

हमारी साधना और हमारा साध्य दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं क्योकि साधना में प्रयुक्त साधन ही अपनी परिपूर्णता मे साध्य बन जाते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये अपूर्णता मे साधन हैं और परिपूर्ण होकर साध्य बन जाते हैं।

जैनागमो मे जो कुछ भी तत्त्व ज्ञान का विवेचन-विस्तार उपलब्ध होता है, वह ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि या विशुद्धि के लिए ही हुआ है।

दर्शन का अर्थ है-तत्त्व पर श्रद्धा। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष, नौ तत्वो पर यथार्थ श्रद्धा के जागरण को दर्शन कहा गया है और इन तत्त्वो के सम्यग्बोध को ज्ञान कहा गया है। आत्मा पर लगे हुए कर्म मैल को हरण करने की अर्थात् कर्म निर्जरा और कर्म द्वारो को रोकने की सवरात्मक प्रक्रिया को चारित्र की सज्ञा दी गई है। इन तीनों के साथ निर्जरा का प्रमुखतम स्रोत तप भी मुक्ति साधना का प्रमुख अग माना गया है।

प्रस्तुत अध्ययन मे मोक्षमार्ग के मुख्य अग ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की विवेचना के साथ ही नव तत्त्वों एव षड् द्रव्यो का भी सुन्दर विश्लेषण किया गया है। इन सबकी परिभाषाओं के साथ इनके भेद प्रभेद भी विवेचित हुए हैं।

ज्ञान के पाच भेद, दर्शन की दस रुचिया, चारित्र के पाच प्रकारो के साथ ही तप के बाह्य आभ्यतर भेदों का भी विश्लेषण यहा किया गया है। मोक्षमार्ग की विस्तृत विवेचना नहीं करके सक्षेप में तत्त्व विश्लेषण कर "गागर में सागर" भरने की उक्ति को प्रस्तुत अध्ययन मे चरितार्थ कर दिया गया है। यहा विमर्शनीय प्रतिपाद्य इतना ही है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र सब मिलकर ही मुक्ति का मार्ग बनते हैं, अलग-अलग नहीं। तीनो की सयुक्त पराकाष्ठा की उपलब्धि ही तो मोक्ष है।

हम प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा तत्त्व की विवेचना का अध्ययन कर अपनी दर्शन शक्ति पुष्ट करे एव आचरण की परिधि में रमण करते हुए चारित्र का अनुशीलन और अन्तिम लक्ष्य मोक्षमार्ग को अपनी पूर्णता में प्राप्त करें।

□□□

मोक्ख मग्ग गई - अष्टविंशति अध्ययन

सूक्ति साराश

ज्ञान-दर्शन-चारित्र व तप की आराधना यही एक सम्यग् मार्ग है,
जो जिन भगवन्तो ने कहा है।
ससार मे विभिन्न स्थानो पर अनेक मार्ग जाते हैं।
किन्तु चरम पडाव पर तो ज्ञान दर्शन चारित्र व तप रूप एक ही मार्ग जाता है।

ज्ञानाराधना मुक्ति मार्ग की आराधना है।
सम्यग् ज्ञान का प्रकाश ही हमारे अन्तश्चक्षुओ को प्रभासित करता है।

परिणमन मे भी जो आत्म स्थिर रहता है, वह साधक है।
द्रव्य-पर्याय परिणमन के व्यवहार को ही ससार कहा जाता है।
चेतना की शक्ति का ज्ञान दर्शन-चारित्र की आराधना मे नियोजन करो।
वीर्य पराक्रम भी चैतन्य का लक्षण है जिसने इसका सही उपयोग नहीं किया
वह पश्चात्ताप का ही भागीदार होता है।

सयोग-वियोग मे समभावी बनो, साधक बन जाओगे।
ससार में पर्याय परिणमन-सयोग-वियोग अनवरत चलता है,
दोनो मे सम रहना साधना का अग है।

सम्यग्दृष्टि व्यक्ति विपरीत मार्ग पर नहीं चलता।
दृष्टि सम्यक् हो जाये तो पथ अपने आप प्रशस्त बन जाएगा।
आग्रहात्मक दृष्टि सत्य के द्वार तक नहीं पहुचने देती है।
दृष्टि के सम्यक् होने मे उपदेश, आज्ञा अथवा कोई भी निमित्त मिल सकता है,
अत किसी एक का आग्रह मत करो।

दृष्टि को सम्यक् बनाओ शेष सभी सम्यक् हो जायेगे।
दृष्टि की सम्यक्ता के अभाव में न ज्ञान सही हो सकता है
और न चारित्र।

सिर्फ ज्ञान ही नहीं आचरण-चारित्र पर भी पूरा ध्यान दो।
चारित्र गुण की प्राप्ति-आराधना के अभाव में मुक्ति किसी भी कीमत पर सम्भव नहीं है।

❑❑❑

अह मोक्खमग्गगई अट्ठावीसइममज्झयणं

अथ मोक्षमार्गगतिरष्टविंशतितममध्ययनम्

मोक्ष मार्ग गति

1 मोक्ष मार्ग की यथार्थ गति का श्रवण सकेत

मूल गाथा- मोक्खमग्गगइ तच्च, सुणेह जिणभासिय।
चउकारणसजुत्त, णाणदसणलक्खण ॥1॥

सस्कृत छाया- मोक्षमार्गगति तथ्या, शृणुत जिनभाषिताम्।
चतु कारणसयुक्ता, ज्ञानदर्शनलक्षणाम् ॥१॥

अन्वयार्थ-जिणभासिय-जिनभाषित, चउकारण-चार कारण से, सजुत्त-सयुक्त, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, लक्खण-लक्षण वाली, मोक्ख-मोक्ष, मग्ग-मार्ग की, तच्चं-यथार्थ, गइ-गति को, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्रतिपादित सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चार कारणो से सयुक्त ज्ञान दर्शन लक्षण वाली यथार्थ मोक्ष मार्ग की गति को सुनो।

2 मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप

मूल गाथा- णाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एस मग्गु त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदसिहिं ॥2॥

सस्कृत छाया- ज्ञान च दर्शन चैव, चारित्र च तपस्तथा।
एष मार्ग इति प्रज्ञप्त , जिनैर्वरदर्शिभि ॥२॥

अन्वयार्थ-वरदसिहिं-प्रधानदर्शी, जिणेहिं-जिनेन्द्र देवा ने, णाणं-ज्ञान, चेव-और, दसण-दर्शन, च-और, चरित्तं-चारित्र, तहा-तथा, तवो-तप रूप, एस-यह, मग्गु त्ति-मोक्ष का मार्ग, पण्णत्तो-फरमाया है।

भावानुवाद-वरदर्शी सत्य के सम्यग् द्रष्टा-सर्वज्ञ जिनेन्द्र देवा ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप यह मोक्ष का मार्ग बतलाया है।

3 मोक्ष मार्ग के अनुसरण का सुपरिणाम

मूल गाथा- णाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छति सोग्गइ॥३॥

सस्कृत छाया- ज्ञान च दर्शन चैव, चारित्र च तपस्तथा।
एत मार्गमनुप्राप्ता, जीवा गच्छन्ति सुगतिम्॥३॥

अन्वयार्थ-च-और, णाण-ज्ञान, चेव-और, दसण-दर्शन, य-और, चरित्त-चारित्र, तहा-और, तवो-तप रूप, एय-इस, मग्ग-मार्ग का, अणुप्पत्ता-आचरण करके, जीवा-जीव, सोग्गइ-सुगति को, गच्छति-प्राप्त करते हैं।

भावानुवाद-ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप इस मार्ग पर आरूढ होकर आचरण करके जीव सद्गति मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

4 क्रम प्राप्त सम्यग् ज्ञान के प्रकार

मूल गाथा- तत्थ पचविह णाण, सुय आभिणिबोहिय।
ओहिणाण तु तइय, मणणाण च केवल॥४॥

सस्कृत छाया- तत्र पचविध ज्ञान, श्रुतमाभिनिबोधिकम्।
अवधिज्ञान तु तृतीय, मनोज्ञान च केवलम्॥४॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहा, णाण-ज्ञान, पच-पाच, विह-प्रकार का है, आभिणिबोहिय-आभिनिबोधिक (मति ज्ञान) सुय-श्रुत ज्ञान, तइय-तीसरा, ओहिणाण-अवधिज्ञान, मणणाण-मन पर्यय ज्ञान, च-और केवल-केवल ज्ञान।

भावानुवाद-मोक्ष मार्ग के चार अगो मे प्रथम अग ज्ञान पाच प्रकार का कहा गया है-श्रुत ज्ञान, आभिनिबोधिक-मतिज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान।

5 ज्ञेय तत्त्व मे ज्ञान की उपयोगिता का दिग्दर्शन

मूल गाथा- एय पचविह णाण, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाण य सव्वेसि, णाण णाणीहि दसिय॥५॥

सस्कृत छाया- एतत्पचविध ज्ञान, द्रव्याणा च गुणाना च।
पर्यायाणा च सर्वेषा, ज्ञान ज्ञानिभिर्दर्शितम्॥५॥

अन्वयार्थ-णाणीहि-ज्ञानी पुरुषो ने, दव्वाण-द्रव्य, गुणाण-गुण, य-और, सव्वेसि-उनकी समस्त, पज्जवाण-पर्यायों को, णाण-जानने के लिए, एय-यह, पचविह-पाच प्रकार का, णाण-ज्ञान, दसिय-प्रदर्शित किया (फरमाया) है।

भावानुवाद-तत्त्वज्ञ-ज्ञानी पुरुषो ने द्रव्य, गुण और उनके समस्त पर्यायों को जानने के लिए यह उपर्युक्त पाच प्रकार का ज्ञान बतलाया है।

अह मोक्खमग्गगई अट्ठावीसइममज्झयणं

अथ मोक्षमार्गगतिरष्टविंशतितममध्ययनम्

मोक्ष मार्ग गति

1 मोक्ष मार्ग की यथार्थ गति का श्रवण संकेत

मूल गाथा- मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं, णाणदंसणलक्खणं ॥1॥

संस्कृत छाया- मोक्षमार्गगतिं तथ्यां, श्रृणुत जिनभाषिताम्।
चतुः कारणसंयुक्तां, ज्ञानदर्शनलक्षणाम् ॥१॥

अन्वयार्थ-जिणभासियं-जिनभाषित, चउकारण-चार कारण से, संजुत्तं-संयुक्त, णाण-ज्ञान, दंसण-दर्शन, लक्खण-लक्षण वाली, मोक्ख-मोक्ष, मग्ग-मार्ग की, तच्चं-यथार्थ, गइं-गति को, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्रतिपादित सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चार कारणों से संयुक्त ज्ञान दर्शन लक्षण वाली यथार्थ मोक्ष मार्ग की गति को सुनो।

2 मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप

मूल गाथा- णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गु त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥2॥

संस्कृत छाया- ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा।
एष मार्ग इति प्रज्ञप्तः, जिनैर्वरदर्शिभिः ॥२॥

अन्वयार्थ-वरदंसिहिं-प्रधानदर्शी, जिणेहिं-जिनेन्द्र देवों ने, णाण-ज्ञान, चेव-और, दंसणं-दर्शन, च-और, चरित्तं-चारित्र, तहा-तथा, तवो-तप रूप, एस-यह, मग्गु त्ति-मोक्ष का मार्ग, पण्णत्तो-फरमाया है।

भावानुवाद-वरदर्शी सत्य के सम्यग् द्रष्टा-सर्वज्ञ जिनेन्द्र देवों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप यह मोक्ष का मार्ग बतलाया है।

3 मोक्ष मार्ग के अनुसरण का सुपरिणाम

मूल गाथा- णाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छति सोग्गइ ॥3॥

सस्कृत छाया- ज्ञान च दर्शन चैव, चारित्र च तपस्तथा।
एत मार्गमनुप्राप्ता , जीवा गच्छन्ति सुगतिम् ॥३॥

अन्वयार्थ-च-और, णाण-ज्ञान, चेव-और, दसण-दर्शन, य-और, चरित्त-चारित्र, तहा-और, तवो-तप रूप, एय-इस, मग्ग-मार्ग का, अणुप्पत्ता-आचरण करके, जीवा-जीव, सोग्गइ-सुगति को, गच्छति-प्राप्त करते हैं।

भावानुवाद-ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप इस मार्ग पर आरूढ होकर आचरण करके जीव सद्गति मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

4 क्रम प्राप्त सम्यग् ज्ञान के प्रकार

मूल गाथा- तत्थ पचविह णाण, सुय आभिणिबोहिय।
ओहिणाण तु तइय, मणणाण च केवल ॥4॥

सस्कृत छाया- तत्र पचविध ज्ञान, श्रुतमाभिनिबोधिकम्।
अवधिज्ञान तु तृतीय, मनोज्ञान च केवलम् ॥४॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहा, णाण-ज्ञान, पच-पाच, विह-प्रकार का है, आभिणिबोहिय-आभिनिबोधिक (मति ज्ञान) सुय-श्रुत ज्ञान, तइय-तीसरा, ओहिणाण-अवधिज्ञान, मणणाण-मन पर्यय ज्ञान, च-और केवल-केवल ज्ञान।

भावानुवाद-मोक्ष मार्ग के चार अगो मे प्रथम अग ज्ञान पाच प्रकार का कहा गया है-श्रुत ज्ञान, आभिनिबोधिक-मतिज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान।

5 ज्ञेय तत्त्व मे ज्ञान की उपयोगिता का दिग्दर्शन

मूल गाथा- एय पचविह णाण, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाण य सव्वेसि, णाण णाणीहि दसिय ॥5॥

सस्कृत छाया- एतत्पचविध ज्ञान, द्रव्याणा च गुणाना च।
पर्यायाणा च सर्वेषा, ज्ञान ज्ञानिभिर्दर्शितम् ॥५॥

अन्वयार्थ-णाणीहि-ज्ञानी पुरुषों ने, दव्वाण-द्रव्य, गुणाण-गुण, य-और, सव्वेसि-उनकी समस्त, पज्जवाण-पर्यायों को, णाण-जानने के लिए, एय-यह, पचविह-पाच प्रकार का, णाण-ज्ञान, दसिय-प्रदर्शित किया (फरमाया) है।

भावानुवाद-तत्वज्ञ-ज्ञानी पुरुषो ने द्रव्य, गुण और उनके समस्त पर्यायों को जानने के लिए यह उपर्युक्त पाच प्रकार का ज्ञान बतलाया है।

6 द्रव्यगुण और पर्याय का लक्षण

मूल गाथा- गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥६॥

संस्कृत छाया- गुणानामाश्रयो द्रव्यं, एकद्रव्याश्रिता गुणाः ।
लक्षणं पर्यायाणां तु, उभयोराश्रिता भवन्ति ॥६॥

अन्वयार्थ-गुणाणं-गुणो का, आसओ-आश्रय, दव्वं-द्रव्य है, एगदव्वस्सिया-एक द्रव्य के आश्रित, गुणा-गुण हैं, उभओ अस्सिया-दोनो के जो आश्रित, भवे-हैं (यह), पज्जवाणं-पर्यायों का, लक्खणं-लक्षण है।

भावानुवाद-द्रव्य गुणों का आश्रय-आधार है अर्थात् गुणो के आश्रय को द्रव्य कहते हैं। जो प्रत्येक द्रव्य के आश्रित रहते हैं वे ज्ञानादि अथवा रूपादि गुण हैं, पर्यायों का लक्षण यह है कि वे द्रव्य और गुण दोनो के आश्रित रहती हैं।

7 द्रव्य के भेदो के साथ लोक का निर्देश

मूल गाथा- धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥७॥

संस्कृत छाया- धर्मोऽधर्म आकाशं, कालः पुद्गलजन्तवः ।
एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनैर्वरदर्शिभिः ॥७॥

अन्वयार्थ-धम्मो-धर्म, अहम्मो-अधर्म, आगासं-आकाश, कालो-काल, पुग्गल-पुद्गल, जंतवो-जीव, एस-यह, षड्द्रव्यात्मक-लोगोत्ति-लोक है ऐसा, वरदंसिहिं-वरदर्शी (केवलदर्शी) जिणेहिं-जिनेन्द्रों ने, पण्णत्तो-फरमाया है।

भावानुवाद-वरदर्शी जिनवरो ने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, यह षड् द्रव्यात्मक लोक कहा है।

8 द्रव्य गत संख्या सम्बन्धी भेद का वर्णन

मूल गाथा- धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं।
अणंताणि य दव्वाणि, कालोपुग्गलजंतवो ॥८॥

संस्कृत छाया- धर्मोऽधर्म आकाशं, द्रव्यमेकैकमाख्यातम्।
अनन्तानि च द्रव्याणि, कालपुद्गलजन्तवः ॥८॥

अन्वयार्थ-धम्मो-धर्म, दव्वं-द्रव्य, अहम्मो-अधर्म द्रव्य, आगासं-आकाश द्रव्य, इक्किक्कं-एक-एक, आहियं कहे गये हैं, य-और कालो-काल, पुग्गल-पुद्गल, जंतवो-(और) जीव, (ये तीनों) दव्वाणि-द्रव्य, अणंताणि-अनन्त कहे गये हैं।

भावानुवाद-धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य, ये तीनों एक-एक द्रव्य कहे गये हैं। काल, पुद्गल और जीव

ये तीनो द्रव्य अनन्त कहे गये हैं।

9 प्रत्येक द्रव्य का लक्षण द्वारा वर्णन

मूल गाथा- गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायण सव्वदव्वाण, णह ओगाहलक्खण ॥९॥

सस्कृत छाया- गतिलक्षणस्तु धर्म , अधर्म स्थितिलक्षण ।
भाजन सर्वद्रव्याणा, नभोऽवगाहलक्षणम् ॥९॥

अन्वयार्थ-धम्मो-धर्मास्तिकाय, गइलक्खणो-गतिलक्षण है, उ-और, ठाणलक्खणो-स्थान लक्षण, अहम्मो-अधर्मास्तिकाय है। सव्वदव्वाण-सर्व द्रव्यो का, भायण-भाजन (पात्र), णह-आकाश द्रव्य है (जो), ओगाह लक्खण-अवगाहन-लक्षण वाला है।

भावानुवाद-गति-चलने मे सहयोगी होना धर्मास्तिकाय का लक्षण है, स्थिति-ठहरने में सहयोगी होना अधर्मास्तिकाय का लक्षण है, सभी द्रव्यो का भाजन-आधार-आकाश द्रव्य है, सभी को अवगाह-अवकाश देना उसका लक्षण है।

10 काल एव उपयोग का लक्षण

मूल गाथा- वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
णाणेण दसणेण च, सुहेण य दुहेण य ॥१०॥

सस्कृत छाया- वर्तनालक्षण काल , जीव उपयोग लक्षण ।
ज्ञानेन दर्शनेन च, सुखेन च दु खेन च ॥१०॥

अन्वयार्थ-कालो-काल द्रव्य, वत्तणा लक्खणो-वर्तना लक्षण वाला है, जीवो-जीव, उवओग-उपयोग, लक्खणो-लक्षण वाला है, (वह) णाणेण-ज्ञान, च-और, दसणेण-दर्शन, य-और, सुहेण-सुख, य-और, दुहेण-दु ख से (पहचाना जाता है)।

भावानुवाद-वर्तना-परिवर्तन काल का लक्षण है, उपयोग जीव का लक्षण है, वह ज्ञान, दर्शन, सुख और दु ख से पहचाना जाता है।

11 जीव के विशिष्ट लक्षणो का वर्णन

मूल गाथा- णाणं च दसण चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरिय उवओगो य, एय जीवस्स लक्खण ॥११॥

सस्कृत छाया- ज्ञान च दर्शन चैव, चारित्र च तपस्तथा।
वीर्यमुपयोगश्च, एतज्जीवस्य लक्षणम् ॥११॥

अन्वयार्थ-णाण-ज्ञान, च-और, दसण-दर्शन, चेव-और, चरित्त-चारित्र, तहा-और, तवो-तप, च-और, वीरिय-वीर्य, य-और, उवओगो-उपयोग, एयं-ये, जीवस्स-जीव के, लक्खण-लक्षण हैं।

भावानुवाद-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य तथा उपयोग, ये जीव के लक्षण हैं।

12 पुद्गल द्रव्य के लक्षणो का वर्णन

मूल गाथा- सद्दधयार-उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवो इ वा।
वण्णरसगधफासा, पुग्गलाण तु लक्खण ॥१२॥

सस्कृत छाया- शब्दोऽन्धकार उद्योत , प्रभाच्छायाऽऽतप इति वा।
वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शा , पुद्गलाना तु लक्षणम् ॥१२॥

अन्वयार्थ-सद्-शब्द अधयार-अधकार, उज्जोओ-उद्योत, पभा-प्रभा, छाया-छाया, आतवो-आतप (धूप), तु-और, वण्ण-वर्ण, रस-रस, गध-गन्ध, (और) फासा-स्पर्श, इवा-ये सब, पुग्गलाण-पुद्गलो के, लक्खण-लक्षण हैं।

भावानुवाद-शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया-आतप, वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श, ये सब पुद्गला के लक्षण हैं।

13 पर्यायो के लक्षण बतलाना

मूल गाथा- एगत्त च पुहुत्त च, सखा सठाणमेव य।
सजोगा य विभागा य, पज्जवाण तु लक्खण ॥१३॥

सस्कृत छाया- एकत्व च पृथकत्व च, सख्या सस्थानमेव च।
सयोगाश्च विभागाश्च, पर्यायाणा तु लक्षणम् ॥१३॥

अन्वयार्थ-एगत्त-एकत्व, च-और, पुहुत्त-पृथकत्व, सखा-सख्या, च-और, सठाणमेव-सस्थान, य-और, सजोगा-सयोग, य-और, विभागा-विभाग, तु-तो यह, पज्जवाण-पर्यायो का, लक्खण-लक्षण है।

भावानुवाद-एकत्व-इकट्ठा होना, पृथकत्व-भिन्न होना, सख्या, सस्थान-आकार, सयोग और विभाग, ये सब पर्याया के लक्षण-असाधारण धर्म हैं।

14 जीवादि नौ तत्त्वो का प्ररूपण

मूल गाथा- जीवाजीवा य बधो य, पुण्णं पावाऽऽसवो तहा।
सवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया णव ॥१४॥

सस्कृत छाया- जीवा अजीवाश्च बन्धश्च, पुण्य पापास्रवस्तथा।
सवरो निर्जरा मोक्ष , सन्त्येते तथ्या नव ॥१४॥

अन्वयार्थ-जीवा-जीव, अजीवा-अजीव, बंधे-बन्ध, पुण्ण-पुण्य, पाव-पाप, य-और, आसवो-आस्रव और संवरो-सवर, णिज्जरा-निर्जरा, तहा-और, मोक्खो-मोक्ष, सतए-ये, णव-नव, तहिया-यथा तथ्य (तत्त्व) संतए-हैं।

भावानुवाद-जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा और मोक्ष, ये नौ यथा तथ्य-तत्त्व हैं।

15 प्रथम सम्यक्त्व के स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- तहियाण तु भावाण, सब्भावे उवएसण।
भावेण सद्दहतस्स, सम्मत्त त वियाहिय ॥15॥

सस्कृत छाया- तथ्याना तु भावाना, सद्भाव उपदेशनम्।
भावेन श्रद्दधत, सम्यक्त्व तद् व्याख्यातम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-तहियाण-तथ्य, भावाण-भावो के, सब्भावे-सद्भाव मे, तु-जो भी, उवएसण-उपदेश है, भावेण-अन्त करण से, सद्दहतस्स-श्रद्धा करने वाले का, त-वह, सम्मत्त-सम्यक्त्व, वियाहिय-कथन है।

भावानुवाद-इन उपर्युक्त जीवाजीवादि पदार्थों के सद्भाव मे स्वभाव से या किसी के उपदेश से भावपूर्वक अन्त करण से जो श्रद्धा होती है, उसे सम्यक्त्व कहा गया है।

16 सम्यक्त्व के भेदो का नाम पूर्वक निर्देश

मूल गाथा- णिसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त-बीयरुइमेव।
अभिगम वित्थाररुई, किरिया सखेव धम्मरुई ॥16॥

सस्कृत छाया- निसर्गोपदेश-रुचि, आज्ञा रुचि सूत्र बीज रुचिरेव।
अभिगम विस्तार रुचि, क्रिया सक्षेप धर्म रुचि ॥१६॥

अन्वयार्थ-णिसग्ग-निसर्ग रुचि, उवएसरुई-उपदेश रुचि, आणारुई-आज्ञा रुचि, सुत्त-सूत्र रुचि, बीयरुइ-बीचरुचि, अभिगम-अभिगम रुचि, वित्थार रुई-विस्तार रुचि, किरिया-क्रिया रुचि, सखेव-सक्षेप रुचि, धम्म रुई-धर्म रुचि।

भावानुवाद-सम्यक्त्व की रुचि दस प्रकार की बताई गई है।

1 निसर्ग रुचि 2 उपदेश रुचि 3 आज्ञा रुचि 4 सूत्र रुचि 5 बीज रुचि 6 अभिगम रुचि 7 विस्तार रुचि 8 क्रिया रुचि 9 सक्षेप रुचि 10 धर्म रुचि।

17 प्रथम निसर्ग रुचि का स्वरूप

मूल गाथा- भूयत्थेणाहिगया, जीवाजीवा य पुण्णपाव च।
सह सम्मुइयाऽऽसवसवरो य, रोएइ उ णिस्सग्गो ॥17॥

सस्कृत छाया- भूतार्थेनाधिगता, जीवा अजीवाश्च पुण्य पाप च।
सह सम्मत्याऽऽस्रवसवरौ च, रोचते (यस्मै) तु निसर्ग ॥१७॥

अन्वयार्थ-भूयत्थेण-भूतार्थ से, जीवा-जीव, अजीवा-अजीव, य-और, पुण्ण-पुण्य, य-और, पाव-पाप को, अहिगया-जान लिया है, उ-तथा, सह सम्मुइया-स्व मति से, आसव-आस्रव, सवरो-सवर को, रोएइ-रुचता है,

णिस्सग्गो-(वह) निसर्ग रुचि है।

भावानुवाद-गुरु आदि के उपदेश के बिना स्वयमेव जाति स्मरण या प्रतिभा आदि ज्ञान के द्वारा जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव और संवर आदि तत्त्वों को यथार्थ रूप मे जिसने जान लिया, उसकी जो रुचि होती है, उसे "निसर्ग रुचि" कहते हैं।

18 निसर्ग रुचि के ही स्वरूप का पुन वर्णन

मूल गाथा- जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव।
एमेव णण्णहत्ति य, स णिसग्गरुइ त्ति णायव्वो ॥१८॥

सस्कृत छाया- यो जिनदृष्टान् भावान्, चतुर्विधान् श्रद्दधाति स्वयमेव।
एवमेव नान्यथेति च, स निसर्गरुचिरिति ज्ञातव्य ॥१८॥

अन्वयार्थ-जो-जो, सयमेव-स्वयमेव, जिणदिट्ठे-जिनदृष्ट, भावे-भावो को, चउव्विहे-चार प्रकार से, एमेव-ये ऐसे ही हैं, णण्णह य-अन्य प्रकार से नहीं हैं, त्ति-इस प्रकार, सद्दहाइ-श्रद्धा करता है, (वह) णिसग्ग-निसर्ग, रुइ-रुचिवाला है, त्ति-इस प्रकार, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जो प्राणी गुरु आदि के उपदेश के बिना ही स्वयमव तीर्थंकर देव द्वारा उपदर्शित भावो-पदार्थों को चार प्रकार से अर्थात् द्रव्य क्षेत्र काल और भाव से ये इस प्रकार के ही हैं, अन्य प्रकार से नहीं है, इस प्रकार से श्रद्धा करता है, उसे "निसर्ग रुचि" वाला जानना चाहिए।

19 उपदेश रुचि का वर्णन

मूल गाथा- एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइ त्ति णायव्वो ॥१९॥

सस्कृत छाया- एतान् चैव तु भावान्, उपदिष्टान् यः परेण श्रद्दधाति।
छद्मस्थेन जिनेन वा, (स) उपदेशरुचिरिति ज्ञातव्य ॥१९॥

अन्वयार्थ-जो-जो, जिणेण-जिनेन्द्र द्वारा, व-अथवा, परेण-दूसरे, छउमत्थेण-छद्मस्थ के द्वारा, उवइट्ठ-उपदिष्ट-कहे गये, एए-इन पूर्वोक्त, भावे-भावों पर, सद्दहई-श्रद्धा करता है (वह), उवएसरुइ-उपदेश रुचि है, त्ति-इस प्रकार, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जो अन्य छद्मस्थ अथवा अरिहन्तों के उपदेश से उपर्युक्त जीवादि तत्त्वो में श्रद्धान करता है, उसे "उपदेश रुचि" वाला जानना चाहिए।

20 आज्ञा रुचि का स्वरूप लक्षण

मूल गाथा- रागो दोसो मोहो, अण्णाण जस्स [illegible] होइ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आण [illegible] ॥

संस्कृत छाया- रागो द्वेषो मोह , अज्ञान यस्यापगत भवति।
आज्ञया रोचमान , स खल्वाज्ञारुचिर्नाम ॥२०॥

अन्वयार्थ-जस्स-जिसका, रागो-राग, दोसो-द्वेष, मोहो-मोह, अण्णाण-अज्ञान, अवगय-अपगत (दूर), होइ-हो जाता है, आणाए-आज्ञा से, रोयतो-रुचि करता है, सो-वह, खलु-निश्चय से, आणारुई-आज्ञा रुचि, णाम-नाम वाला है।

भावानुवाद-जिसके राग द्वेष, मोह और अज्ञान सम्पूर्ण या देशत नष्ट हो गए हैं ऐसे तीर्थंकरो या आचार्यों की आज्ञा मे रुचि रखना या उनकी आज्ञा से रुचि का जागृत होना "आज्ञा रुचि" है।

21 सूत्र रुचि का स्वरूप

मूल गाथा- जो सुत्तमहिज्जतो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्त।
अगेण बहिरेण व, सो सुत्तरुइ-त्ति णायव्वो॥२१॥

संस्कृत छाया- य सूत्रमधीयान , श्रुतेनावगाहते तु सम्यक्त्वम्।
अङ्गेन बाह्येन वा, स सूत्ररुचिरिति ज्ञातव्य ॥२१॥

अन्वयार्थ-जो-जो, सुत्त-सूत्र को, अहिज्जतो-पढता हुआ, अगेण-अगप्रविष्ट, व-अथवा, बहिरेण-अग बाह्य, सुएण-सूत्रो से, सम्मत्त-सम्यक्त्व, उ-निश्चय ही, ओगाहई-प्राप्त करता है, सो-वह, सुत्त रुइ-सूत्र रुचि है, त्ति-ऐसा, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जो अग प्रविष्ट-आचारागादि या अगबाह्य-उत्तराध्ययन आदि श्रुत का अध्ययन करता हुआ श्रुत से सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है, उसे "सूत्र रुचि" जानना चाहिए।

22 बीज रुचि का लक्षण

मूल गाथा- एगेण अणेगाइ, पयाइ जो पसरइ उ सम्मत्त।
उदए व्व तेल्लबिंदू सो, बीयरुइ त्ति णायव्वो॥२२॥

संस्कृत छाया- एकेनानेकानि, पदानि य प्रसरति तु सम्यक्त्वम्।
उदक इव तैलबिन्दु स, बीजरुचिरिति ज्ञातव्य ॥२२॥

अन्वयार्थ-उदएव्व-उदक (जल) मे जैसे, तेल्ल बिदू-तेल का बूद (वैसे), जो-जिसकी, सम्मत्त-सम्यक्त्व, एगेण-एक पद से, अणेगाइ-अनेक, पयाइ-पदा में, पसरइ-फैलती है, सो-वह, उ-निश्चय ही, बीयरुइ-बीज रुचि है, त्ति-इस प्रकार, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जिस प्रकार पानी मे तेल की बूद फैल जाती है उसी प्रकार जिसकी सम्यक्त्व एक जीवादि तत्त्वों से अनेक पदो मे फैल जाती है, उसे बीज रुचि जानना चाहिए।

23 अभिगम रुचि का वर्णन

मूल गाथा- सो होइ अभिगमरुई, सुयणाण जेण अत्थओ दिट्ठ।
एक्कारस अगाइ, पइण्णग दिट्ठिवाओ य॥२३॥

सस्कृत छाया- स भवत्यभिगमरुचि, श्रुतज्ञान येनार्थतो दृष्टम्।
एकादशाङ्गानि, प्रकीर्णकानि दृष्टिवादश्च॥२३॥

अन्वयार्थ-जेण-जिसने, एक्कारस-ग्यारह, अगाइ-अग, पइण्णगं-प्रकीर्णक, य-और, दिट्ठिवाओ-दृष्टिवाद, य-और (उपाग सूत्र) रूप, सुयणाण-श्रुत ज्ञान को, अत्थओ-अर्थ से, दिट्ठं-देखा है (जान लिया है) सो-वह, अभिगम रुई-अभिगम रुचि, होइ-है।

भावानुवाद-जिसने ग्यारह अग, प्रकीर्णक, दृष्टिवाद एव उपागादि सूत्रों में अर्थ द्वारा श्रुतज्ञान जाना है-प्राप्त किया है, वह अभिगम रुचि है।

24 विस्तार रुचि का वर्णन

मूल गाथा- दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा।
सव्वाहिं णयविहीहिं, वित्थाररुइ त्ति णायव्वो॥२४॥

सस्कृत छाया- द्रव्याणा सर्वे भावा, सर्वप्रमाणैर्यस्योपलब्धा।
सर्वैर्नयविधिभि, विस्ताररुचिरिति ज्ञातव्य॥२४॥

अन्वयार्थ-जस्स-जिसने, दव्वाण-द्रव्यो की, सव्व भावा-सभी पर्यायो को, सव्व-सभी, पमाणेहिं-प्रमाणो से, य-और, सव्वाहिं णयविहीहिं-सब प्रकार के नयो से, उवलद्धा-जान लिया है (वह), वित्थार रुइ-विस्तार रुचि है, त्ति-ऐसा, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-द्रव्यो के सर्व भावो को सभी प्रमाणो और सभी नयो से जिसने जान लिया है। उसको विस्तार रुचि कहते हैं।

25 क्रिया रुचि का लक्षण

मूल गाथा- दसणणाणचरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई णाम॥२५॥

सस्कृत छाया- दर्शनज्ञानचारित्रे, तपोविनये सत्यसमितिगुप्तिषु।
य क्रियाभावरुचि, स खलु क्रियारुचिर्नाम॥२५॥

अन्वयार्थ-जो-जो, दंसण-दर्शन, णाण-ज्ञान, चरित्ते-चारित्र, तव-तप, विणए-विनय, सच्चसमिइ-सत्य समिति (और), गुत्तीसु-गुप्तियों में, किरियाभाव रुई-क्रिया भाव रुचि रखता है, सो-वह, खलु-निश्चय से, किरिया रुई-क्रिया रुचि, णाम-नाम वाला है।

भावानुवाद-दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति और गुप्ति आदि क्रियाओ मे जो भाव रुचि है अर्थात उपर्युक्त क्रियाओ का सम्यग् अनुष्ठान करते हुए जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है, वह क्रिया सम्यक्त्व रुचि वाला है।

26 सक्षेप रुचि का वर्णन

मूल गाथा- अणभिग्गहियकुदिट्ठी, सखेवरुइ-त्ति होइ णायव्वो।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥२६॥

सस्कृत छाया- अनभिगृहीतकुदृष्टि, सक्षेपरुचिरिति भवति ज्ञातव्य ।
अविशारद प्रवचने, अनभिगृहीतश्च शेषेषु ॥२६॥

अन्वयार्थ-(जिसने) कुदिट्ठी-कुदृष्टि, अणभिग्गहिय-ग्रहण नहीं की है, सेसेसु-शेषो (कपिलादि मतो) मे अणभिग्गहिओ-अनाग्रही है, य-और, पवयणे-जिन प्रवचनो मे, अविसारओ-विशारद (प्रवीण)-नहीं है (किन्तु शुद्ध श्रद्धा है, (वह), सखेव रुइ-सक्षेप रुचि, होइ-होती है, त्ति-ऐसा, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जो निर्ग्रन्थ प्रवचन मे विशारद नहीं है, साथ ही मिथ्या प्रवचनो-मतो से भी अनभिज्ञ है, किन्तु कुदृष्टि का आग्रह नहीं होने के कारण सक्षिप्त बोध से ही जो शुद्ध श्रद्धावान् बन जाता है, वह "सक्षेप रुचि" कहलाता है।

27 धर्म रुचि का लक्षण

मूल गाथा- जो अत्थिकाय धम्म, सुयधम्म खलु चरित्तधम्म च।
सद्दहइ जिणाभिहिय, सो धम्मरुइ-त्ति णायव्वो ॥२७॥

सस्कृत छाया- योऽस्तिकायधर्मं, श्रुतधर्मं खलु चारित्रधर्मं च।
श्रद्धत्ते जिनाभिहित, स धर्मरुचिरिति ज्ञातव्य ॥२७॥

अन्वयार्थ-जो-जो, जिणाभिहिय-जिन कथित, अत्थिकाय-धम्म-अस्ति काय धर्म, च-और, सुय धम्म-श्रुत धर्म, चरित्त धम्म-चारित्र धर्म की, सद्दहइ-श्रद्धा करता है, सो-वह, खलु-निश्चय ही, धम्म रुइ-धर्म रुचि है, त्ति-इस प्रकार, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जो जीव जिनदेव द्वारा कथित अस्तिकाय धर्म (धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य) में, श्रुत-धर्म मे और चारित्र-धर्म मे यथार्थ रूप से श्रद्धा करता है, वह "धर्म रचि" है।

28 सम्यक्त्व के बोधक गुणो का वर्णन

मूल गाथा- परमत्थसथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवण वावि।
वावण्ण कुदसण वज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२८॥

सस्कृत छाया- परमार्थसस्तव, सुदृष्टपरमार्थसेवन वापि।
व्यापन्नकुदर्शनवर्जन, च सम्यक्त्वश्रद्धानम् ॥२८॥

अन्वयार्थ-परमत्थ-परमार्थ का, सथवो-सस्तव (परिचय) करना, वा-अथवा, परमत्थ-परमार्थ को, सुदिट्ठु-जानने वाले की, सेवण-सेवा करना, य-और, वावण्ण-(सन्मार्ग से) पतित, कुदंसण-कुदर्शनी का, वज्जण-त्याग करना, वि-भी, सम्मत्त-सम्यक्त्व की, सद्दहणा-श्रद्धा है।

भावानुवाद-परमार्थ तत्वो का गुण कीर्तन करना अर्थात् जीवादि तत्वो का ज्ञान प्राप्त करना, परमार्थ के ज्ञाता आचार्य आदि की सेवा करना, सम्यक्त्व भष्ट तथा कुदर्शनी-मिथ्यात्वी जनों की सगति से दूर रहना सम्यक्त्व का श्रद्धान है।

29 सम्यक्त्व की विशिष्टता का वर्णन

मूल गाथा- णत्थि चरित्त सम्मत्तविहूणं, दसणे उ भइयव्व।
सम्मत्तचरित्ताइं, जुगव पुव्व व सम्मत्त ॥२९॥

सस्कृत छाया- नास्ति चारित्र सम्यक्त्वविहीन, दर्शने तु भक्तव्यम्।
सम्यक्त्वचारित्रे, युगपत्पूर्वं च सम्यक्त्वम् ॥२९॥

अन्वयार्थ-सम्मत्त-सम्यक्त्व से, विहूणं-रहित, चरित्त-चारित्र, णत्थि-नहीं है, उ-पुन , दंसणे-दर्शन में, भइयव्व-चारित्र की भजना है, सम्मत्त-सम्यक्त्व (और) चरित्ताइ-चारित्र, जुगव-युगपत् (एक समय में हो सा), व-परस्पर अपेक्षा में, पुव्वं-प्रथम (पहले), सम्मत्त-सम्यक्त्व होगा।

भावानुवाद-सम्यक्त्व के बिना चारित्र नहीं हो सकता है किन्तु सम्यक्त्व चारित्र के बिना सभव है-भजनीय है अथ सम्यक्त्व होने पर चारित्र एक साथ भी हो सकते हैं किन्तु पहले सम्यक्त्व होगा फिर चारित्र।

30 सम्यग् दर्शन का महात्म्य

मूल गाथा- णादंसणिस्स णाणं,
णाणेण विणा ण हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स णत्थि मोक्खो,
णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाण ॥३०॥

सस्कृत छाया- नादर्शनिनो ज्ञान,
ज्ञानेन विना न भवन्ति चारित्रगुणा।
अगुणिनो नास्ति मोक्षः।
नास्त्यमोक्षस्य निर्वाणम् ॥३०॥

अन्वयार्थ-णादंसणिस्स-दर्शन रहित को, णाण-ज्ञान, ण-नहीं होता है, णाणेण-ज्ञान के, विणा-बिना, चरणगुणा-चारित्र गुण, ण हुंति-(प्रकट) नहीं होते, अगुणिस्स-चारित्र गुण रहित को, मोक्खो-मोक्ष नहीं है, अमोक्खस्स

अमुक्त को, णिव्वाण-निर्वाण, णत्थि-प्राप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-सम्यक्त्व रहित व्यक्ति को ज्ञान नहीं होता है, सम्यग्ज्ञान के बिना चारित्र गुण प्रकट नहीं होता, चारित्र-गुण रहित पुरुष का मोक्ष-कर्म क्षय नहीं होता है और कर्म क्षय के बिना निर्वाण-सिद्धि पद प्राप्त नहीं होता है।

31 सम्यग् दर्शन के आठ अग

मूल गाथा- णिस्सकिय णिक्कखिय, णिव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उवबूह-थिरीकरणे, वच्छल्लपभावणे अट्ठ ॥31॥

सस्कृत छाया- नि शकित निष्काक्षित, निर्विचिकित्स्यममूढदृष्टिश्च।
उपबृहास्थिरीकरणे, वात्सल्यप्रभावनेऽष्टौ ॥३१॥

अन्वयार्थ-णिस्सकिय-शकारहित, णिक्कखिय-आकाक्षा रहित, णिव्वितिगिच्छा-फल मे सन्देह रहित, य-और, अमूढदिट्ठी-अमूढ दृष्टि, उवबूह-गुण कीर्तन, थिरीकरणे-धर्म मे स्थिर करना, वच्छल्ल-वात्सल्य, पभावणे-धर्म प्रभावना (ये), अट्ठ-आठ (दर्शनाचार) हैं।

भावानुवाद-नि शकित, निष्काक्षित, निर्विचिकित्स्य (धर्म के फल के प्रति असन्देह) अमूढ दृष्टि, उपबृहा, (गुणी पुरुषो की प्रशसा से गुणो का सवर्धन) स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना-ये आठ सम्यक्त्व के आचार हैं।

32 सम्यक् चारित्र के भेदो का वर्णन

मूल गाथा- सामाइयत्थ पढम, छेदोवट्ठावण भवे बीय।
परिहारविसुद्धीय, सुहुम तह सपराय च ॥32॥

सस्कृत छाया- सामायिकमत्र प्रथम, छेदोपस्थ पन भवेद्द्वितीयम्।
परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्म तथा सपराय च ॥३२॥

अन्वयार्थ-अत्थ-यहा पर, सामाइय-सामायिक, पढम-पहला चारित्र है, बीय-दूसरा, छेदोवट्ठावण-छेदोपस्थापनीय, परिहारविसुद्धीय-(तीसरा) परिहार विशुद्धि, तह-तथा, सुहुम सपराय-(चौथा) सूक्ष्म सपराय चारित्र, भवे-होता है।

भावानुवाद-चारित्र के पाच आचार हैं-प्रथम सामायिक चारित्र, द्वितीय-छेदापस्थापनीय चारित्र, तृतीय-परिहार विशुद्धि, चतुर्थ-सूक्ष्म सपराय और-

33 यथाख्यात चारित्र का वर्णन

मूल गाथा- अकसायमहक्खाय, छउमत्थस्स जिणस्स वा।
एय चयरित्तकर, चारित्त होइ आहिय ॥33॥

सस्कृत छाया- अकषाय यथाख्यात, छद्मस्थस्य जिनस्य वा।
एतच्चयरिक्तकर, चारित्र भवत्याख्यातम् ॥३३॥

अन्वयार्थ-अकसाय-कषाय रहित, अहक्खाय-यथाख्यात चारित्र है, (यह) छउमत्थस्स-छद्मस्थ (मुनि के), वा-अथवा, जिणस्स-केवली भगवान के, होइ-होता है, एय-यह (पाचो) चारित्त-चारित्र, चयरित्तकर-चय-रिक्त कर (कर्मों की राशि को) रिक्त करने वाले हैं, आहिय-(तीर्थंकरो न एसा) कहा है।

भावानुवाद-पाचवा कषाय रहित आत्माओ का यथाख्यात-चारित्र होता है, यह छद्मस्थ और केवली दोनो को होता है। यह पाचों प्रकार के चारित्र कर्म के चय (सचय) को रिक्त-समाप्त करते हैं, अत इन्हें चारित्र कहा गया है।

34 तप क भेद-प्रभेद

मूल गाथा- तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भतरो तवो॥३४॥

सस्कृत छाया- तपश्च द्विविधमुक्त, बाह्यमाभ्यन्तर तथा।
बाह्य षड्विधमुक्त, एवमाभ्यन्तर तप ॥३४॥

अन्वयार्थ-तवो-तप, दुविहो-दो प्रकार का, वुत्तो-कहा है, बाहिर-बाह्य, तहा-तथा, अब्भतरो-आभ्यतर, य पुन , बाहिरो-बाह्य तप, छव्विहो-षड्विध (छह प्रकार का), वुत्तो-कहा है, एव-इसी प्रकार, अब्भतरो-आभ्यतर तवो-तप भी (छह प्रकार का है)।

भावानुवाद-तप के दो प्रकार हैं-बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप के छह भेद हैं-इसी प्रकार आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का कहा गया है।

35 चारो ही साधनो की उपयोगिता

मूल गाथा- णाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ॥३५॥

सस्कृत छाया- ज्ञानेन जानाति भावान्, दर्शनेन च श्रद्धत्ते।
चारित्रेण निगृह्णाति, तपसा परिशुध्यति॥३५॥

अन्वयार्थ-(आत्मा) णाणेण-ज्ञान से भावे-भावो को, जाणइ-जानता है, य-फिर, दंसणेण-दर्शन से, सद्दहे-श्रद्धा करता है, चरित्तेण-चारित्र से, णिगिण्हाइ-(आस्रवों का) निरोध करता है, तवेण-तप से, परिसुज्झइ-शुद्ध होता है।

भावानुवाद-यह आत्मा ज्ञान से जीवादि भावो को जानता है, दर्शन से उन पर श्रद्धान करता है, चारित्र से कर्म आस्रव का निरोध करता है और तप से पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय करके विशुद्ध होता है।

36 तप और सयम द्वारा मोक्ष प्राप्ति-उपसहार

मूल गाथा- खवित्ता पुव्वकम्माइं, सजमेण तवेण य।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो॥३६॥

ति बेमि।

इति मोक्खमग्गगई अज्झयण समत्त ॥२८।

संस्कृत छाया- क्षपयित्वा पूर्वकर्माणि, सयमेन तपसा च।
सर्वदु ख प्रहीणार्था , प्रक्रामन्ति महर्षय ॥३६॥

इति ब्रवीमि

इति मोक्षमार्गगति समाप्ता ॥२८॥

अन्वयार्थ-महेसिणो-महर्षि (महात्मा), सजमेण-सयम, य-और, तवेण-तप से, पुव्व-कम्माइ-पूर्व कृत कर्मों को, खवित्ता-क्षय करके, सव्व-सभी, दुक्ख-दु खा से, पहीणट्ठा-रहित होकर, पक्कमति-पराक्रम करते हैं (यावत् सिद्धि गति को प्राप्त करते हैं)

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-महर्षि सयम और तप के द्वारा सभी दु खो से मुक्त होने के लिए पूर्व कर्मों का क्षय करके मोक्ष-सिद्धि गति को प्राप्त करते हैं।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार मोक्ष मार्ग गति नामक अट्ठाइसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

सम्यक्त्व-पराक्रम - एकोनत्रिंशत् अध्ययन

उत्थानिका

साहित्य की विभिन्न विधाओ मे जिज्ञासा-समाधान अथवा प्रश्न-उत्तर की शैली का भी अपना अनूठा महत्व है। यों तो मानव-मानस जिज्ञासाओ का वृहत् काय कोष ही है। अगणित जिज्ञासाए इसके ज्ञान-तन्तुओं, कोशिकाओं म छिपी पडी हैं, यह अलग बात है कि मानव उन्हे अभिव्यक्ति नहीं दे पाए। तथापि स्थूल जगत के व्यवहारों, बाह्य रीति-रिवाजों एव दृश्य तत्त्वो के प्रति भी अनेकानेक जिज्ञासाए मानस में प्रादुर्भूत होती रहती हैं, जिनका समाधान जिज्ञासु चेतनाए खोजती रहती हैं और उन्हे अपने परिपार्श्व से या किन्हीं बाह्य निमित्तो से समाधान भी प्राप्त होते रहते हैं। जिज्ञासा-समाधान पर जो आनन्दानुभूति मानव-मन को होती है वह अपूर्व ही होती है।

जिज्ञासा-समाधान की इस अनुवृत्ति से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सामान्य से सामान्य बुद्धि व्यक्ति को भी प्रश्न उत्पन्न कर उसका समाधान देने वाली विधा से सुगमता पूर्वक गूढ से गूढतम विषय समझाया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में इसी जिज्ञासा-समाधान की शैली मे अध्यात्म साधना के एव जीवन दर्शन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। गहन से गहन विषय को अत्यन्त सुगम रूप स प्रस्तुत किया गया है। थोड़े से शब्दो मे विशद् अर्थ बोध समाया हुआ है। गागर में सागर की उक्ति यहा चरितार्थ होती है।

यद्यपि इन प्रश्नोत्तरों में विविध आयामी गूढ रहस्यों का उद्घाटन किया गया है-शकाओ का समाधान किया गया है, किन्तु इस अध्ययन का मूल प्रतिपाद्य तो आत्म दर्शन कि या सम्यग्दर्शन की व्याख्या-विवेचना की ही परिक्रमा करता परिलक्षित होता है, अतएव इसका नाम 'सम्यक्त्व पराक्रम' रखा गया है।

सम्यक्त्व शब्द जैन तत्वज्ञान का अति मौलिक पारिभाषिक शब्द है जिसका सीधा-सा अर्थ होता है-सम्यग्दर्शन आत्मदर्शन या वस्तु का सम्यग्बोध। तत्व की यथार्थ प्रतीति-श्रद्धा को भी सम्यक्त्व शब्द से पुकारा जाता है।

सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन की पूर्व भूमिका क्या है? उसके होने पर चेतना म किस-किस प्रकार का रूपान्तरण घटित होता है? उसके लक्षण क्या हैं? और उन लक्षणो की परिणति क्या है? आदि विषयों को जिज्ञासा और समाधान की शैली में यहां प्रस्तुत किया है।

- सवेग से क्या होता है?
- सवेग से अनुत्तर धर्म पर श्रद्धा का जागरण होता है। कषायिक वृत्तिया क्षीण होती है। मिथ्यात्व की विशुद्धि होती है। तत्सम्बन्धी नूतन कर्म बन्धन अवरुद्ध हो जाता है।
- निर्वेद से क्या प्राप्त होता है?
- निर्वेद से विषय वासना के प्रति मन विरक्त हो जाता है। पापजनक प्रवृत्तियों से विरक्ति हो जाती है। ससार मार्ग का विच्छेद होता है और मुक्ति के द्वार खुलते हैं।

इस प्रकार के 73 प्रश्नों का समाधान अतिरोचक शैली में प्रस्तुत हुए हैं, इस अध्ययन में। ❑❑❑

सम्यक्त्व-पराक्रम - एकोनत्रिशत् अध्ययन

सूक्ति साराश .

दृष्टि की विशुद्धता जीवन की दिशा को बदल देती है,
अत सर्वप्रथम दृष्टि विशुद्धता का प्रयास करो।
सम्यग्दर्शन के प्रति रुचि, प्रतीति एव उसका स्पर्श मात्र
सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होने मे निमित्त बन जाता है।

धर्म सदेश का प्रभाव अन्य पर नहीं,
स्वय प्रवक्ता पर भी होता है।
धर्म कथा से प्रवचन प्रभावना तो होती ही है कई
बार स्वय का जागरण भी उससे हो जाता है।

सुदृढ सकल्प एव श्रद्धा त्याग मार्ग की बुनियाद खड़ी कर देते हैं।
सवेग, निर्वेद एव धर्म श्रद्धा, क्षणिक काम भोगो से विरक्ति दिला देते हैं।

एक व्यक्ति का विनय भाव, अनेको मे भक्ति
जागृत करके, उन्हे मोक्ष के पथिक बना देता है।
गुरु और साधर्मिक की सेवा शुश्रूषा विनयवृत्ति का विकास तो करती है,
दुर्गति का निरोध करके मुक्ति मार्ग को प्रशस्त करती है।

आलोचना-निदा-गर्हा करना हो तो स्वय के
दुष्कृत्यो की करो, दूसरो की नहीं।
स्वय के पापो की आलोचना, निन्दा एव गर्हा करने वाला साधक
नि शल्य, ऋजुभूत होकर दुष्कृत्य के प्रति पश्चात्ताप करता है तो
पुन वह प्रवृत्ति नहीं करता।

जीवन को सुदक्ष बनाना चाहते हो तो प्रतिक्षण
वन्दन करना-झुकना सीखो।
बडो-गुरुजनो के प्रति वन्दन-सम्मान का भाव विनय के साथ
जीवन में दाक्षिण्य का भी उत्पन्न करता है।

हल्के-लघुभूत एव आनन्द-परिपूर्ण होना चाहते
हो तो कायोत्सर्ग में गहरे से गहरे उतरो।
कायोत्सर्ग के द्वारा अनासक्ति भाव की साधना तो होती ही है,
पर चैतन्य कमभार से मुक्त-हल्का भी हो जाता है और अपूर्व
आनन्द को प्राप्त करता है।

प्रत्याख्यान-सकल्प का अर्थ है उद्दाम लालसाओं पर नियत्रण।
किसी भी तत्त्व का त्याग-प्रत्याख्यान, तत्सम्बन्धी आस्रव-कर्म को
तो रोकता ही है, इच्छा, तृष्णा को भी सीमित कर देता है।

यदि प्रमादवश पाप हो गया है तो प्रायश्चित्त कर लो,
शुद्ध हो जाओगे-आराधक बन जाओगे।
दुष्कृत्या के प्रति किया गया प्रायश्चित्त पाप कर्मों को हल्का या नष्ट
कर देता है, विशुद्ध साधना मार्ग की ओर गति प्रदान करता है।

क्षमा भाव का विकास करो, सभी सक्लेश समाप्त हो जाएगे,
सभी मित्र बन जाएगे।
क्षमा का भाव स्वय प्रसन्नता की वृद्धि करता है एव ऐसे विशुद्ध
भाव उत्पन्न करता है कि ससार के सभी प्राणी मित्र लगने लगते हैं।

किसी भी रूप में ज्ञान का आराधन करो,
यह कर्मवृन्द को समाप्त करने का ही कार्य करता है।
आगम या तदनुरूप साहित्य का वाचन, उसके प्रति, प्रतिप्रश्न
उसका परावर्तन-अनुप्रेक्षण एव उसका धर्मकथा रूप में प्रतिपादन, ज्ञान के
अनेक अनसुलझे रहस्यो का उद्घाटित करता है।

अप्रतिबद्ध बनो साधना सहज गति पकड़ लेगी।
अप्रतिबद्धता ही तो मुक्ति है।
साधक वह होता है जो अप्रतिबद्ध हो, किसी क्षेत्र या व्यक्ति
के प्रति अनुबद्ध न हो। क्योंकि अनुबद्धता बाध देती है।
बधना साधना नहीं है।

स्वावलम्बन साधना का आधार है,
परमुखापेक्षिता साधना का बाधक तत्त्व है।
साधक वह होता है जो स्वावलम्बी हो, दूसरो के सहयोग की अपेक्षा
रखने वाला साधक पद-पद पर परमुखापेक्षी-परतन्त्र हो जाता है।

आत्म शान्ति का मूल आधार है कषाय मुक्ति,
कषाय अशान्ति है, समत्व-शान्ति है।
क्रोधादि कषायो का परित्याग व्यक्ति को वीतरागी बना
देता है। वीतरागी दु ख-सुख में समत्व बनाये रखता है।

विशुद्ध सयम साधना का आनन्द लेना हो तो
आत्म प्रतिष्ठ बनो, अद्वैत मे स्थिर रहो।
एकत्व मे प्रतिष्ठित साधक द्वन्द्व मुक्त होता है।
द्वन्द्व मुक्तता ही तो साधना का लक्ष्य है।

पात्रो की निष्काम एव अग्लान भाव से सेवा करो,
तीर्थंकरत्व की गरिमा प्राप्त हो जाएगी।
विशुद्ध वैयावृत्य-सेवा भावना व्यक्ति को ससार की
सर्वोच्च स्थिति तीर्थंकरत्व पर पहुचा देती है।

सहज सरल बनो, शेष गुण अपने आप आने लगेगे।
ऋजु भूतता व्यक्ति को धर्माराधक बनाती है मन,
वचन व काया मे अविसवादकता उत्पन्न करती है।

धर्म का निवास सरल चित्त मे होता है। सरल बनो,
धार्मिक बन जाओगे।
धर्म की आराधना भाव विशुद्धि से ही सम्भव है,
क्योकि भाव विशुद्धि धर्म का आधार है।

मृदु-व्यवहारी बनो-सर्व जन प्रिय बन जाओगे।
मन की मृदुता अहकार को समाप्त करती है,
अनेक व्यक्तियों को अपना आत्मीय बना लेती है।

मन, वचन काया को स्थिर रखो, साधक बन जाओगे,
पूर्ण साधक बनोगे तो सिद्धि स्वत हस्तगत होगी।
मन-वचन-काया की सगुप्ति से सयम,
अध्यात्म एव सवर की सिद्धि होती है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सम्पन्नता मोक्ष है,
सर्व दु खो का अन्त है, इनकी आराधना करो।
ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मुक्ति मार्ग की
आधारशिला है तो इनकी परिपूर्णता मुक्ति है।

शब्दादि विषयो के प्रति अनासक्त रहो,
साधना सहज फलित होगी।
इन्द्रिय निग्रह आत्म साधना का प्रमुख अग है,
इन्द्रिय निग्रह का अर्थ है विषयों से विरक्ति।

कषाय विजयी बनो, गुण अपने आप प्रकट होने लगेगे।
साधना का अर्थ है, कषाय विजय या कषायों की मन्दता।
कषाय विजय से चेतना के मूलभूत गुण क्षमा, विनय
सरलता एव निर्लोभता का विकास होता है।

□□□

अह सम्मत्तपरक्कमं एगुणतीसइमं अज्झयणं

अथ सम्यक्त्वपराक्रममेकोनत्रिंशत्तममध्ययनम्

सम्यक्त्व पराक्रम

सम्यक्त्व पराक्रम का अन्तिम फल-मोक्ष प्राप्ति

मूल सूत्र-1 सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं। इह खलु सम्मत्तपरक्कमे णाम अज्झयणे समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए, जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तियाइत्ता रोयइत्ता फासइत्ता पालइत्ता तीरित्ता कित्तइत्ता सोहइत्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

संस्कृत छाया- श्रुतं मयाऽऽयुष्मन् तेन भगवतैवमाख्यातम्। इह खलु सम्यक्त्वपराक्रमं नामाध्ययनं श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदितम्। यत्सम्यक् श्रद्धाय, प्रतीत्य, रोचयित्वा, स्पृष्ट्वा, पालयित्वा, तीरयित्वा, कीर्तयित्वा, शोधयित्वा, आराधयित्वा, आज्ञयाऽनुपालयित्वा, बहवो जीवा सिध्यन्ति, बुध्यन्ते, मुच्यन्ते, परिनिर्वान्ति, सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति।

अन्वयार्थ-आउस-हे आयुष्मन् (जम्बू), मे-मैंने, सुय-सुना है कि, तेण-उस, भगवया-भगवान् ने, एव-इस प्रकार, अक्खाय-कहा है, इह-इस जिनशासन में, खलु-निश्चय ही, कासवेण-काश्यप गोत्रीय, समणेण-श्रमण भगवया-भगवान्, महावीरेण-महावीर स्वामी ने, सम्मत्त-सम्यक्त्व, परक्कमे-पराक्रम, णाम-नामक, अज्झयणे-अध्ययन, पवेइए-प्रतिपादित किया है, ज-जिस पर, सम्म-सम्यक्, सद्दहित्ता-श्रद्धा करके, पत्तियाइत्ता-प्रतीति करके, रोयइत्ता-रुचि करके, फासइत्ता-स्पर्श (ग्रहण) करके, पालइत्ता-पालन करके, तीरित्ता-तिर करके, कित्तइत्ता-कीर्तन करके, सोहइत्ता-शुद्ध करके, आराहइत्ता-आराधन करके आणाए-आज्ञानुसार, अणुपालइत्ता-

पालन करके, बहवे-बहुत से, जीवा-जीव, सिज्झंति-सिद्ध होते हैं, बुज्झंति-बुद्ध होते हैं, मुच्चंति-कर्मों से मुक्त होते हैं परिणिव्वायंति-शान्त होते हैं, सव्वदुक्खाणं-सर्व दुःखों का, अंतं करेंति-अन्त करते हैं।

भावानुवाद-हे आयुष्मन्! (जम्बू) उन भगवान् ने ऐसा कहा है जो मैंने सुना है। जिनशासन में निश्चित ही 'सम्यक्त्व पराक्रम' नामक अध्ययन काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर ने प्रतिपादित किया है, जिस पर सम्यक् प्रकार से श्रद्धा करके, प्रतीति करके, रुचि करके, स्पर्श (ग्रहण) करके, पालन करके, गहराई पूर्वक ज्ञान करके, कीर्तन करके, शोधन-शुद्ध करके, आराधना करके बहुत से जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, कर्मों से मुक्त होते हैं परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, सब दुःखों का अन्त करते हैं।

सम्यक्त्व पराक्रम के 73 मूल सूत्रों का उल्लेख

मूल सूत्र तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ, तं जहा

१. संवेगे २ णिव्वेए ३ धम्मसद्धा ४ गुरुसाहम्मियसुस्सूसणया ५ आलोयणया ६ णिंदणया ७ गरिहणया ८. सामाइए ९. चउव्वीसत्थवे १० वंदणे ११. पडिक्कमणे १२ काउस्सग्गे १३ पच्चक्खाणे १४. थवथुईमंगले १५ कालपडिलेहणया १६. पायच्छित्तकरणे १७ खमावणया १८. सज्झाए १९. वायणया २० पडिपुच्छणया २१. परियट्टणया २२. अणुप्पेहा २३ धम्मकहा २४ सुयस्स आराहणया २५. एगग्गमणसंणिवेसणया २६ संजमे २७. तवे २८. वोदाणे २९. सुहसाए ३० अप्पडिबद्धया ३१ विवित्त सयणासण सेवणया ३२ विणियट्टणया ३३. संभोगपच्चक्खाणे ३४. उवहिपच्चक्खाणे ३५. आहारपच्चक्खाणे ३६ कसायपच्चक्खाणे ३७ जोगपच्चक्खाणे ३८. सरीरपच्चक्खाणे ३९. सहायपच्चक्खाणे ४० भत्तपच्चक्खाणे ४१ सब्भावपच्चक्खाणे ४२. पडिरूवणया ४३ वेयावच्चे ४४ सव्वगुणसंपण्णया ४५. वीयरागया ४६. खंती ४७ मुत्ती ४८ अज्जवे ४९. मद्दवे ५० भावसच्चे ५१ करणसच्चे ५२ जोगसच्चे ५३ मणगुत्तया ५४ वयगुत्तया ५५. कायगुत्तया ५६. मणसमाधारणया ५७ वयसमाधारणया ५८ कायसमाधारणया ५९ णाणसंपण्णया ६० दंसणसंपण्णया ६१ चरित्तसंपण्णया ६२ सोइंदियणिग्गहे ६३ चक्खुंदियणिग्गहे ६४. घाणिंदियणिग्गहे ६५ जिब्भिंदियणिग्गहे ६६ फासिंदियणिग्गहे ६७ कोहविजए ६८. माणविजए ६९. मायाविजए ७०. लोहविजए ७१ पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए ७२. सेलेसी ७३. अकम्मया।

संस्कृत छाया- तस्य अयमर्थः एवमाख्यायते, तद्यथा -१ संवेग, २ निर्वेद ३ धर्मश्रद्धा ४ गुरुसाधर्मिकशुश्रूषणम् ५ आलोचना ६ निन्दा ७ गर्हा

८ सामायिकम् ९ चतुर्विंशतिस्तव १० वन्दनम् ११ प्रतिक्रमणम्
१२ कायोत्सर्ग १३ प्रत्याख्यानम् १४ स्तवस्तुतिमगलम्
१५ कालप्रतिलेखना १६ प्रायश्चित्तकरणम् १७ क्षमापना १८ स्वाध्याय
१९ वाचना २० प्रतिप्रच्छना २१ परिवर्तना २२ अनुप्रेक्षा २३ धर्मकथा
२४ श्रुतस्य आराधना २५ एकाग्रमन सन्निवेशना २६ सयम २७ तप
२८ व्यवदानम् २९ सुखशाय ३० अप्रतिबद्धता
३१ विविक्तशयनासनसेवना ३२ विनिवर्तना ३३ सम्भोगप्रत्याख्यानम्
३४ उपधिप्रत्याख्यानम् ३५ आहारप्रत्याख्यानम् ३६ कषायप्रत्याख्यानम्
३७ योगप्रत्याख्यानम् ३८ शरीरप्रत्याख्यानम् ३९ सहाय्यप्रत्याख्यानम्
४० भक्तप्रत्याख्यानम् ४१ सद्भावप्रत्याख्यानम् ४२ प्रतिरूपता
४३ वैयावृत्यम् ४४ सर्वगुणसम्पन्नता ४५ वीतरागता ४६ क्षान्ति
४७ मुक्ति ४८ मार्दवम् ४९ आर्जवम् ५० भावसत्यम्
५१ करणसत्यम् ५२ योगसत्यम् ५३ मनोगुप्तिता
५४ वचोगुप्तिता ५५ कायगुप्तिता ५६ मन समाधारणा
५७ वाक्समाधारणा ५८ कायसमाधारणा ५९ ज्ञानसम्पन्नता
६० दर्शनसम्पन्नता ६१ चारित्रसम्पन्नता ६२ श्रोत्रेन्द्रियनिग्रह
६३ चक्षुरिन्द्रियनिग्रह ६४ घ्राणेन्द्रियनिग्रह ६५ जिह्वेन्द्रियनिग्रह
६६ स्पर्शेन्द्रियनिग्रह ६७ क्रोधविजय ६८ मानविजय
६९ मायाविजय ७० लोभविजय ७१ रागद्वेषमिथ्यादर्शनविजय
७२ शैलेषी ७३ अकर्मता।

अन्वयार्थ-तस्स-उस अध्ययन का, अय-यह, अट्ठे-अर्थ, एव-इस प्रकार, आहिज्जइ-कहा है, तजहा-यथा, संवेगे-सवेग, णिव्वेए-निर्वेद, धम्मसद्धा-धर्म श्रद्धा, गुरुसाहम्मिय सुस्सूसणया-गुरु और साधर्मियो की सेवा शुश्रूषा, आलोयणया-आलोचना, णिदणया-निन्दा, गरिहणया-गर्हा, सामाइए-सामायिक, चउवीसत्थए-चतुर्विंशतिस्तव, वदणे-वन्दना, पडिक्कमणे-प्रतिक्रमण, काउस्सग्गे-कायोत्सर्ग, पच्चक्खाणे-प्रत्याख्यान, थवथुइमगले-स्तवस्तुति मगल, काल पडिलेहणया-काल प्रतिलेखनता, पायच्छित्तकरणे-प्रायश्चित्तकरण, खमावणया-क्षमापना, सज्झाए-स्वाध्याय, वायणया-वाचना, पडिपुच्छणया-प्रतिपृच्छना, परियट्टणया-परिवर्तना, अणुप्पेहा-अनुप्रेक्षा, धम्मकहा-धर्मकथा, सुयस्स-श्रुत की, आराहणया-आराधना, एगग्गमण सण्णिवेसणया-एकाग्रमन सन्निवेशनता, सजमे-सयम, तवे-तप, वोदाणे-व्यवदान, सुहसाए-सुखशात, अपडिबद्धया-अप्रतिबद्धता, विवित्तसयणासण सेवणया-विविक्त शय्या आसन का सेवन, विणियट्टणया-विनिवर्तना, सभोग पच्चक्खाणे-सभोग प्रत्याख्यान, उवहि पच्चक्खाण-उपधि प्रत्याख्यान, आहार पच्चक्खाणे-आहार प्रत्याख्यान कसाय पच्चक्खाण-कषाय-प्रत्याख्यान, जोग पच्चक्खाण-योग प्रत्याख्यान, सरीर पच्चक्खाणे-शरीर प्रत्याख्यान, सहाय पच्चक्खाणे-सहाय प्रत्याख्यान, भत्त पच्चक्खाणे-भक्त प्रत्याख्यान, सब्भाव पच्चक्खाणे-सद्भाव प्रत्याख्यान, पडिरूवणया-प्रतिरूपता, वेयावच्चे-वैयावृत्य, सव्वगुण सपण्णया-सर्व गुण सपन्नता वीयरागया-वीतरागता,

खंती-क्षमा, मुत्ती-मुक्ति, अज्जवे-आर्जव, मद्दवे-मार्दव, भावसच्चे-भावसत्य, करणसच्चे-करणसत्य, जोगसच्चे योगसत्य, मणगुत्तया-मनोगुप्तता, वयगुत्तया-वचनगुप्तता, कायगुत्तया-कायगुप्तता, मणसमाधारणया-मन समाधारणता, वयसमाधारणया-वचन समाधारणता, कायसमाधारणया-काय समाधारणता, णाणसंपण्णया-ज्ञान सपन्नता, दसणसंपण्णया-दर्शन सम्पन्नता, चरित्त संपण्णया-चारित्र सम्पन्नता, सोइंदिय णिग्गहे-श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह, चक्खुंदिय णिग्गहे-चक्षुइन्द्रिय निग्रह, घाणिंदिय णिग्गहे-घ्राणेन्द्रिय निग्रह, जिब्भिंदिय णिग्गहे-जिह्वा इन्द्रिय निग्रह, फासिंदिय णिग्गहे-स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह, कोहविजए-क्रोध विजय, माणविजए-मान विजय, मायाविजए-माया विजय, लोहविजए-लोभ विजय, पेज्जदोस मिच्छादसण विजए-प्रेम द्वेष, मिथ्यादर्शन विजय, सेलेसी-शैलेशी अवस्था, अकम्मया-अकर्मता।

भावानुवाद-उनका यह अर्थ, इस प्रकार कहा जाता है। जैसे कि-संवेग, निर्वेद, धर्म श्रद्धा, गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा, आलोचना, निन्दा, गर्हा, सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान, स्तव-स्तुति मंगल, काल प्रतिलेखना, प्रायश्चित्त करण, क्षमापना, स्वाध्याय, वाचना, प्रतिपृच्छना, परावर्तना, पुनरावृत्ति, अनुप्रेक्षा, अनुचिन्तन, धर्मकथा, श्रुत आराधना, एकाग्रमन सन्निवेसनता, मन की एकाग्रता, संयम, तप, व्यवदान विशुद्धि, सुखशात, अप्रतिबद्धता, विविक्त शयनासन सेवन, विनिवर्तना, संभोग प्रत्याख्यान, उपधि-प्रत्याख्यान, आहारप्रत्याख्यान, कषाय प्रत्याख्यान, योग प्रत्याख्यान, शरीर प्रत्याख्यान, सहाय प्रत्याख्यान, भक्त प्रत्याख्यान, सद्भाव प्रत्याख्यान एवं स्वभाव प्रत्याख्यान, प्रतिरूपता, वैयावृत्त्य, सर्वगुण सम्पन्नता, वीतरागता, क्षान्ति-क्षमा, निर्लोभता, आर्जव-ऋजुता, मार्दव, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, काय गुप्ति, मन समाधारणा, वाक् समाधारणा, काय समाधारणा, ज्ञान सम्पन्नता, दर्शन सम्पन्नता, चारित्र सम्पन्नता, श्रोत्र इन्द्रिय-निग्रह, चक्षु इन्द्रिय निग्रह, घ्राण इन्द्रिय निग्रह, जिह्वा इन्द्रिय निग्रह, स्पर्श इन्द्रिय निग्रह, क्रोध विजय, मान विजय, माया विजय, लोभ विजय, प्रेम द्वेष, मिथ्यादर्शन विजय, शैलेशी, अकर्मता, ये इस अध्ययन के द्वार हैं।

1 संवेग जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- संवेगेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
संवेगेण अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ। अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ। अणंताणुबंधि कोह-माण माया लोभे खवेइ। णवं च कम्मं ण बंधइ तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ। दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए जीवा तेणेव भवग्गहणेण सिज्झई। विसोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं णाइक्कमइ॥१॥

संस्कृत छाया- संवेगेन भदन्त! जीवः किं जनयति?
संवेगेनानुत्तरां धर्मश्रद्धां जनयति। अनुत्तरया धर्मश्रद्धया संवेगं शीघ्रमागच्छति। अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान् क्षपयति। नवं च कर्म न बध्नाति। तत् प्रत्ययिकां च

मिथ्यात्वविशुद्धिं कृत्वा दर्शनाराधको भवति। दर्शनविशुद्धया च विशुद्धयाअप्येकक तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति। विशुद्धया च विशुद्धया तृतीय पुनर्भवग्रहण नातिक्रामति ॥१॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, सवेगेण-सवेग से, जीवे-जीव, किं-किस फल को, जणयइ-प्राप्त करता है? सवेगेण-सवेग से, अणुत्तर-अणुत्तर, धम्मसद्ध-धर्मश्रद्धा, जणयइ-उत्पन्न होती है, अणुत्तराए-अनुत्तर, धम्मसद्धाए-धर्मश्रद्धा से, सवेग-सवेग-मोक्षाभिरुचि, हव्व-शीघ्र, आगच्छइ-आ जाता है, (जिससे) अणताणुबधि-अनन्तानुबन्धी, कोह-क्रोध, माण-मान, माया-माया, लोभे-लोभ का, खवेइ-क्षय होता है, च-और, णव-नवीन, कम्म-कर्मों का, ण बधइ-बन्धन नहीं करता, तप्पच्चइय-कर्म बन्धन के निमित्त, मिच्छत्तविसोहिं-मित्यात्व की विशुद्धि, काऊण-करके, दसणाराहए-दर्शन का आराधक, भवइ-हो जाता है, य-और, दसण-दर्शन की, विसोहिएय ण-विशुद्धि से, विसुद्धाए-विशुद्ध बने हुए, अत्थेगइए-कोई एक, जीवे-जीव, तेणेव-उसी, भवग्गहणेण-भवग्रहण में, सिज्झइ-सिद्ध हो जाता है, (बुज्झइ-बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ-कर्मों से मुक्त हो जाता है, परिणिव्वायइ-परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है, सव्व दुक्खाण-सर्व दु खो का, अत करेइ-अन्त करता है) (वह), य-और, विसोहिए ण-(सम्यक्त्व की) विशुद्धि से, विसुद्धाए-विशुद्ध होने पर, तच्च-तीसरे, पुण्णो-फिर, भवग्गहण-भवग्रहण का, णाइक्कमइ-अतिक्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सवेग भाव (मोक्षाभिरुचि) से जीव किस गुण का उपार्जन करता है? सवेग मोक्ष की अभिलाषा से जीव अनुत्तर धर्मश्रद्धा को उत्पन्न करता है, अनुत्तर धर्म श्रद्धा से सवेग शीघ्र आ जाता है फिर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय कर देता है। नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता है। कर्म बन्धन के निमित्त कारण अनन्तानुबन्धी रूप तीव्र कषाय के क्षीण होने से मिथ्यात्व की विशुद्धि करके दर्शन का आराधक हो जाता है। दर्शन सम्यक्त्व की विशुद्धि से विशुद्ध हुए कोई-कोई जीव उसी जन्म से सिद्ध होते हैं और कुछ दर्शन विशुद्धि से विशुद्ध होने पर तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते हैं अर्थात् तृतीय भव मे तो अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

2 निर्वेद जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- णिव्वेएण भते! जीवे किं जणयइ?।
णिव्वेएण दिव्वमाणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु णिव्वेय हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरभपरिच्चाय करेइ। आरंभपरिच्चाय करेमाणे ससार मग्ग वोच्छिदइ, सिद्धिमग्ग पडिवण्णे य हवइ॥२॥

सस्कृत छाया- निर्वेदेन भदन्त! जीव किं जनयति?
निर्वेदेन दिव्यमानुष्यतैरश्येषु कामभोगेषु निर्वेद शीघ्रमागच्छति। तत सर्वविषयेभ्यो विरज्यति। सर्व

खती-क्षमा, मुत्ती-मुक्ति, अज्जवे-आर्जव, मद्दवे-मार्दव, भावसच्चे-भावसत्य, करणसच्चे-करणसत्य, जोगसच्च योगसत्य, मणगुत्तया-मनोगुप्तता, वयगुत्तया-वचनगुप्तता, कायगुत्तया-कायगुप्तता, मणसमाधारणया-मन समाधारणता, वयसमाधारणया-वचन समाधारणता, कायसमाधारणया-काय समाधारणता, णाणसपण्णया-ज्ञान सपन्नता, दसणसपण्णया-दर्शन सम्पन्नता, चरित्त सपण्णया-चारित्र सम्पन्नता, सोइदिय णिग्गहे-श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह, चक्खुदिय णिग्गहे-चक्षुइन्द्रिय निग्रह, घाणिदिय णिग्गहे-घ्राणेन्द्रिय निग्रह, जिब्भिदिय णिग्गहे-जिह्वा इन्द्रिय निग्रह, फासिदिय णिग्गहे-स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह, कोहविजए-क्रोध विजय, माणविजए-मान विजय, मायाविजए-माया विजय, लोहविजए-लोभ विजय, पेज्जदोस मिच्छादसण विजए-प्रेम द्वेष, मिथ्यादर्शन विजय, सेलेसी-शैलेशी अवस्था, अकम्मया-अकर्मता।

भावानुवाद-उसका यह अर्थ, इस प्रकार कहा जाता है। जैसे कि-सवेग, निर्वेद, धर्म श्रद्धा, गुरु और साधमिक की शुश्रूषा, आलोचना, निन्दा, गर्हा, सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान, स्तव-स्तुति मगल, काल प्रतिलेखना, प्रायश्चित्त करण, क्षमापना, स्वाध्याय, वाचना, प्रतिपृच्छना, परावर्तना, पुनरावृत्ति, अनुप्रेक्षा, अनुचिन्तन, धर्मकथा, श्रुत आराधना, एकाग्रमन सन्निवेसनता, मन की एकाग्रता, सयम, तप, व्यवदान-विशुद्धि, सुखशात, अप्रतिबद्धता, विविक्त शयनासन सेवन, विनिवर्तना, सभोग प्रत्याख्यान, उपधि-प्रत्याख्यान, आहारप्रत्याख्यान, कषाय प्रत्याख्यान, योग प्रत्याख्यान, शरीर प्रत्याख्यान, सहाय प्रत्याख्यान, भक्त प्रत्याख्यान, सद्भाव प्रत्याख्यान एव स्वभाव प्रत्याख्यान, प्रतिरूपता, वैयावृत्य, सर्वगुण सम्पन्नता, वीतरागता, क्षान्ति-क्षमा, निर्लोभता, आर्जव-ऋजुता, मार्दव, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, काय गुप्ति, मन समाधारणा, वाक् समाधारणा, काय समाधारणा, ज्ञान सम्पन्नता, दर्शन सम्पन्नता, चारित्र सम्पन्नता, श्रोत्र इन्द्रिय-निग्रह, चक्षु इन्द्रिय निग्रह, घ्राण इन्द्रिय निग्रह, जिह्वा इन्द्रिय निग्रह, स्पर्श इन्द्रिय निग्रह, क्रोध विजय, मान विजय, माया विजय, लोभ विजय, प्रेम द्वेष, मिथ्यादर्शन विजय, शैलेशी, अकर्मता, ये इस अध्ययन के द्वार हैं।

1 सवेग जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सवेगेण भते! जीवे कि जणयइ?

सवेगेण अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ। अणुत्तराए धम्मसद्धाए सवेग हव्वमागच्छइ। अणताणुबधि कोह-माण माया लोभे खवेइ। णव च कम्म ण बधइ तप्पच्चइय च ण मिच्छत्तविसोहि काऊण दसणाराहए भवइ। दसणविसोहीए य ण विसुद्धाए अत्थेगइए जीवा तेणेव भवग्गहणेण सिज्झई। विसोहीए य ण विसुद्धाए तच्च पुणो भवग्गहण णाइक्कमइ ॥1॥

सस्कृत छाया- सवेगेन भदन्त! जीव कि जनयति?

सवेगेनानुत्तरा धर्मश्रद्धा जनयति। अनुत्तरया धर्मश्रद्धया सवेगशीघ्रमागच्छति। अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान् क्षपयति। नव च कर्म न बध्नाति। तत् प्रत्ययिका च

मिथ्यात्वविशुद्धिं कृत्वा दर्शनाराधको भवति। दर्शनविशुद्धया च विशुद्धयाऽप्येकक तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति। विशुद्धया च विशुद्धया तृतीय पुनर्भवग्रहण नातिक्रामति॥१॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, सवेगेण-सवेग से, जीवे-जीव, कि-किस फल को, जणयइ-प्राप्त करता है? सवेगेण-सवेग से, अणुत्तर-अनुत्तर, धम्मसद्ध-धर्मश्रद्धा, जणयइ-उत्पन्न होती है, अणुत्तराए-अनुत्तर, धम्मसद्धाए-धर्मश्रद्धा से, सवेग-सवेग-मोक्षाभिरुचि, हव्व-शीघ्र, आगच्छइ-आ जाता है, (जिससे) अणताणुबधि-अनन्तानुबन्धी, कोह-क्रोध, माण-मान, माया-माया, लोभे-लोभ का, खवेइ-क्षय होता है, च-और, णव-नवीन, कम्म-कर्मों का, ण बधइ-बन्धन नहीं करता, तप्पच्चइय-कर्म बन्धन के निमित्त, मिच्छत्तविसोहिं-मित्यात्व की विशुद्धि, काऊण-करके, दसणाराहए-दर्शन का आराधक, भवइ-हो जाता है, य-और, दसण-दर्शन की, विसोहिएय ण-विशुद्धि से, विसुद्धाए-विशुद्ध बने हुए, अत्थेगइए-कोई एक, जीवे-जीव, तेणेव-उसी, भवग्गहणेण-भवग्रहण में, सिज्झइ-सिद्ध हो जाता है, (बुज्झइ-बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ-कर्मों से मुक्त हो जाता है, परिणिव्वायइ-परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है, सव्व दुक्खाण-सर्व दु खो का, अत कोइ-अन्त करता है) (वह), य-और, विसोहिए ण-(सम्यक्त्व की) विशुद्धि से, विसुद्धाए-विशुद्ध होने पर, तच्च-तीसरे, पुण्णो-फिर, भवग्गहण-भवग्रहण का, णाइक्कमइ-अतिक्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सवेग भाव (मोक्षाभिरुचि) से जीव किस गुण का उपाजन करता है? सवेग मोक्ष की अभिलाषा से जीव अनुत्तर धर्मश्रद्धा को उत्पन्न करता है, अनुत्तर धर्म श्रद्धा से सवेग शीघ्र आ जाता है फिर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय कर देता है। नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता है। कर्म बन्धन के निमित्त कारण अनन्तानुबन्धी रूप तीव्र कषाय के क्षीण होने से मिथ्यात्व की विशुद्धि करके दर्शन का आराधक हो जाता है। दर्शन सम्यक्त्व की विशुद्धि से विशुद्ध हुए कोई-कोई जीव उसी जन्म से सिद्ध होते हैं और कुछ दर्शन विशुद्धि से विशुद्ध होने पर तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते हैं अर्थात् तृतीय भव में तो अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

2 निर्वेद जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- णिव्वेएण भते! जीवे किं जणयइ?।
णिव्वेएण दिव्वमाणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु णिव्वेय हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरंभपरिच्चाय करेइ। आरभपरिच्चायं करेमाणे ससार मग्ग वोच्छिदइ, सिद्धिमग्ग पडिवण्णे य हवइ॥२॥

सस्कृत छाया- निर्वेदेन भदन्त! जीव कि जनयति?
निर्वेदेन दिव्यमानुष्यतैरश्चेषु कामभोगेषु निर्वेद शीघ्रमागच्छति। तत सर्वविषयेभ्यो विरज्यति। सर्व

खत्ती-क्षमा, मुत्ती-मुक्ति, अज्जवे-आर्जव, मद्दवे-मार्दव, भावसच्चे-भावसत्य, करणसच्चे-करणसत्य, जोगसच्चे-योगसत्य, मणगुत्तया-मनोगुप्तता, वयगुत्तया-वचनगुप्तता, कायगुत्तया-कायगुप्तता, मणसमाधारणया-मन समाधारणता, वयसमाधारणया-वचन समाधारणता, कायसमाधारणया-काय समाधारणता, णाणसंपण्णया-ज्ञान सपन्नता, दसणसपण्णया-दर्शन सम्पन्नता, चरित्त सपण्णया-चारित्र सम्पन्नता, सोइंदिय णिग्गहे-श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह, चक्खुदिय णिग्गहे-चक्षुइन्द्रिय निग्रह, घाणिदिय णिग्गहे-घ्राणेन्द्रिय निग्रह, जिब्भिदिय णिग्गहे-जिह्वा इन्द्रिय निग्रह, फासिदिय णिग्गहे-स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह, कोहविजए-क्रोध विजय, माणविजए-मान विजय, मायाविजए-माया विजय, लोहविजए-लोभ विजय, पेज्जदोस मिच्छादसण विजए-प्रेम द्वेष, मिथ्यादर्शन विजय, सेलेसी-शैलेशी अवस्था, अकम्मया-अकर्मता।

भावानुवाद-उसका यह अर्थ, इस प्रकार कहा जाता है। जैसे कि-सवेग, निर्वेद, धर्म श्रद्धा, गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा, आलोचना, निन्दा, गर्हा, सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान, स्तव-स्तुति मगल, काल प्रतिलेखना, प्रायश्चित्त करण, क्षमापना, स्वाध्याय, वाचना, प्रतिपृच्छना, परावर्तना, पुनरावृत्ति, अनुप्रेक्षा, अनुचिन्तन, धर्मकथा, श्रुत आराधना, एकाग्रमन सन्निवेसनता, मन की एकाग्रता, सयम, तप, व्यवदान-विशुद्धि, सुखशात, अप्रतिबद्धता, विविक्त शयनासन सेवन, विनिवर्तना, सभोग प्रत्याख्यान, उपधि-प्रत्याख्यान, आहारप्रत्याख्यान, कषाय प्रत्याख्यान, योग प्रत्याख्यान, शरीर प्रत्याख्यान, सहाय प्रत्याख्यान, भक्त प्रत्याख्यान, सद्भाव प्रत्याख्यान एव स्वभाव प्रत्याख्यान, प्रतिरूपता, वैयावृत्य, सर्वगुण सम्पन्नता, वीतरागता, क्षान्ति-क्षमा, निर्लोभता, आर्जव-ऋजुता, मार्दव, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, काय गुप्ति, मन समाधारणा, वाक् समाधारणा, काय समाधारणा, ज्ञान सम्पन्नता, दर्शन सम्पन्नता, चारित्र सम्पन्नता, श्रोत्र इन्द्रिय-निग्रह, चक्षु इन्द्रिय निग्रह, घ्राण इन्द्रिय निग्रह, जिह्वा इन्द्रिय निग्रह, स्पर्श इन्द्रिय निग्रह, क्रोध विजय, मान विजय, माया विजय, लोभ विजय, प्रेम द्वेष, मिथ्यादर्शन विजय, शैलेशी, अकर्मता, ये इस अध्ययन के द्वार हैं।

1 सवेग जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सवेगेण भंते! जीवे किं जणयइ?
सवेगेण अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ। अणुत्तराए धम्मसद्धाए सवेग हव्वमागच्छइ। अणंताणुबंधि कोह-माण माया-लोभे खवेइ। णव च कम्म ण बधइ तप्पच्चइय च ण मिच्छत्तविसोहिं काऊण दसणाराहए भवइ। दसणविसोहीए य ण विसुद्धाए अत्थेगइए जीवा तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झई। विसोहीए य ण विसुद्धाए तच्च पुणो भवग्गहण णाइक्कमइ॥1॥

सस्कृत छाया- सवेगेन भदन्त! जीव किं जनयति?
सवेगेनानुत्तरा धर्मश्रद्धा जनयति। अनुत्तरया धर्मश्रद्धया सवेगशीघ्रमागच्छति। अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान् क्षपयति। नव च कर्म न बध्नाति। तत् प्रत्ययिका च

मिथ्यात्वविशुद्धिं कृत्वा दर्शनाराधको भवति। दर्शनविशुद्धया च विशुद्धयाअप्येकक तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति। विशुद्धया च विशुद्धया तृतीय पुनर्भवग्रहण नातिक्रामति ॥१॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, सवेगेण-सवेग से, जीवे-जीव, कि-किस फल को, जणयइ-प्राप्त करता है? सवेगेण-सवेग से, अणुत्तर-अनुत्तर, धम्मसद्ध-धर्मश्रद्धा, जणयइ-उत्पन्न होती है, अणुत्तराए-अनुत्तर, धम्मसद्धाए-धर्मश्रद्धा से, सवेग-सवेग-मोक्षाभिरुचि, हव्व-शीघ्र, आगच्छइ-आ जाता है, (जिससे) अणताणुबधि-अनन्तानुबन्धी, कोह-क्रोध, माण-मान, माया-माया, लोभे-लोभ का, खवेइ-क्षय होता है, च-और, णव-नवीन, कम्म-कर्मो का, ण बधइ-बन्धन नहीं करता, तप्पच्चइय-कर्म बन्धन के निमित्त, मिच्छत्तविसोहिं-मित्थात्व की विशुद्धि, काऊण-करके, दसणाराहए-दर्शन का आराधक, भवइ-हो जाता है, य-और, दसण-दर्शन की, विसोहिएय ण-विशुद्धि से, विसुद्धाए-विशुद्ध बने हुए, अत्थेगइए-कोई एक, जीवे-जीव, तेणेव-उसी, भवग्गहणेण-भवग्रहण में, सिज्झइ-सिद्ध हो जाता है, (बुज्झइ-बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ-कर्मों से मुक्त हो जाता है, परिणिव्वायइ-परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है, सव्व दुक्खाण-सर्व दु खो का, अत करेइ-अन्त करता है) (वह), य-और, विसोहिए ण-(सम्यक्त्व की) विशुद्धि से, विसुद्धाए-विशुद्ध होने पर, तच्च-तीसरे, पुण्णो-फिर, भवग्गहण-भवग्रहण का, णाइक्कमइ-अतिक्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सवेग भाव (मोक्षाभिरुचि) से जीव किस गुण का उपार्जन करता है? सवेग मोक्ष की अभिलाषा से जीव अनुत्तर धर्मश्रद्धा को उत्पन्न करता है, अनुत्तर धर्म श्रद्धा से सवेग शीघ्र आ जाता है फिर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय कर देता है। नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता है। कर्म बन्धन के निमित्त कारण अनन्तानुबन्धी रूप तीव्र कषाय के क्षीण होने से मिथ्यात्व की विशुद्धि करके दर्शन का आराधक हो जाता है। दर्शन सम्यक्त्व की विशुद्धि से विशुद्ध हुए कोई-कोई जीव उसी जन्म से सिद्ध होते हैं और कुछ दर्शन विशुद्धि से विशुद्ध होने पर तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते हैं अर्थात् तृतीय भव मे तो अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

2 निर्वेद जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- णिव्वेएण भते! जीवे कि जणयइ?। णिव्वेएण दिव्वमाणुस तेरिच्छिएसु कामभोगेसु णिव्वेय हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरभपरिच्चाय करेइ। आरभपरिच्चाय करेमाणे ससार मग्ग वोच्छिदइ, सिद्धिमग्ग पडिवण्णे य हवइ॥२॥

सस्कृत छाया- निर्वेदेन भदन्त! जीव कि जनयति? निर्वेदेन दिव्यमानुष्यतैरश्चेषु कामभोगेषु निर्वेद शीघ्रमागच्छति। तत सर्वविषयेभ्यो विरज्यति। सर्व

भावानुवाद-हे भगवन्! गुरु और साधर्मिक की सेवा शुश्रूषा करने से जीव को क्या लाभ होता है? गुरु और साधर्मी की सेवा करने से जीव विनय प्रतिपत्ति को प्राप्त करता है, विनय प्रतिपन्न जीव सम्यक्त्व विघातक गुरु का परिवादादि रूप आशातना नहीं करता हुआ नैरयिक, तिर्यञ्च मनुष्य एव देव सम्बन्धी दुर्गतियो का निरोध करता है तथा गुरुजनो का गुण कीर्तन, भक्ति, बहुमान करने स मनुष्य और देव सम्बन्धी सुगति का बन्ध करता है, श्रेष्ठ गति रूप सिद्धि को विशुद्ध करता है, विनय मूलक सभी उत्तम कार्यों को सिद्ध कर लेता है तथा बहुत से अन्य जीवों को भी विनय धर्म मे प्रवृत्त करता है।

5 आलोचना जिज्ञासा-समाधान •

मूल सूत्र- आलोयणाए ण भंते! जीवे कि जणयइ?
आलोयणाए ण माया णियाण मिच्छादसण सल्लाण मोक्खमग्गविग्घाण अणतससारवधणाण उद्धरण करेइ। उज्जुभाव च जणयइ। उज्जुभावपडिवण्णे य ण जीवे अमाई इत्थीवेयणपुसगवेय च ण बधइ। पुव्वबद्ध च ण णिज्जरेइ॥5॥

सस्कृत छाया- आलोचनया भदन्त! जीव कि जनयति?
आलोचनया मायानिदान मिथ्यादर्शनशल्याना मोक्षमार्ग विघ्नानामनन्तससारवर्धनानामुद्धरण करोति। ऋजुभाव च जनयति। ऋजुभाव प्रतिपन्नश्च जीवोऽमायी स्त्रीवेद नपुसकवेद च न बध्नाति। पूर्वबद्ध च निर्जरयति॥5॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्! आलोयणाएण-आलोचना से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न होता है?

आलोयणाएण-आलोचना करने से, मोक्खमग्ग-मोक्षमार्ग में, विग्घाण-विघ्न करने वाले, अणत-ससार-अनन्त ससार को, वधणाण-बढाने वाले, माया-माया, णियाण-निदान, मिच्छादसण-मिथ्यादर्शनरूप, सल्लाणं-शल्यो का, उद्धरण करेइ-उद्धार करता है, च-और, उज्जुभाव-ऋजु भाव को, जणयइ-उत्पन्न करता है, उज्जुभाव-ऋजु भाव को, पडिवण्णे-प्राप्त हुआ, जीवे-जीव, अमाई-माया से रहित होकर, इत्थिवेय-स्त्रीवेद, च-और, णपुसगवेय-नपुसकवेद को, ण बधइ-नहीं बाधता है, च-और, पुव्व-पूर्व, बद्ध-बाधे हुए को, णिज्जरेइ-निर्जरा कर देता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! आलोचना (गुरुजनों के समक्ष अपने दोषो का प्रकटीकरण) करने से जीव को क्या लाभ होता है?

आलोचना करने से जीव मोक्षमार्ग के विघातक और अनन्त-ससार बढाने वाला माया शल्य, निदान शल्य-धर्मकरणी की फलाकाक्षा और मिथ्यादर्शन शल्य तीनो शल्यो को निकाल फैंकता है, ऋजु-सरल भाव को प्राप्त होता है, ऋजुभाव को प्राप्त जीव माया रहित होता है, अत वह स्त्रीवेद और नपुसक वेद का बन्ध नहीं करता है तथा पूर्वबद्ध की निर्जरा करता है।

6 निदना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- णिदणयाएण भंते! जीवे किं जणयइ?
णिदणयाएण पच्छाणुतावं जणयइ। पच्छाणुतावेण विरज्जमाणे करणगुणसेढिं पडिवज्जइ। करणगुणसेढिं पडिवण्णे य ण अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ॥६॥

संस्कृत छाया- निन्दनेन भदन्त! जीवः किं जनयति?
निन्दनया पश्चात्तापं जनयति। पश्चादनुतापेन विरज्यमानः करणगुणश्रेणिं प्रतिपद्यते। करणगुणश्रेणिप्रतिपन्नश्चानगारो मोहनीयं कर्मोद्घातयति॥६॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! णिदणयाएण-आत्म निन्दा से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

णिदणयाएण-आत्म निदा से, पच्छाणुतावं-पश्चात्ताप को, जणयइ-उत्पन्न करता है, पच्छाणुतावेण-पश्चात्ताप से, विरज्जमाणे-वैराग्ययुक्त होता हुआ, करणगुण सेढिं-करण गुण श्रेणी (क्षपक श्रेणी) पर, पडिवज्जइ-चढता है, य-और, करण गुण सेढिं-करण गुण श्रेणी पर, पडिवण्णे-चढा हुआ, अणगारे-अनगार, मोहणिज्ज-मोहनीय, कम्मं-कर्म, उग्घाएइ-क्षय करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! आत्मनिदा करने से जीव को क्या लाभ होता है?

आत्म निदा से पश्चात्ताप की उत्पत्ति होती है, पश्चात्ताप से उत्पन्न विरक्ति से जीव करण गुण श्रेणी-क्षपक श्रेणी को प्राप्त करता है। करण गुण श्रेणी को आरूढ अनगार मोहनीय कर्म का क्षय कर देता है।

7 गर्हणा जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- गरहणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
गरहणयाएण अपुरक्कारं जणयइ। अपुरक्कारगए णं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो णियत्तेइ, पसत्थे य पडिवज्जइ। पसत्थ जोगपडिवण्णे य णं अणगारे अणंतघाइ पज्जवे खवेइ॥७॥

संस्कृत छाया- गर्हया खलु भदन्त! जीवः किं जनयति?
गर्हयाऽपुरस्कारं जनयति। अपुरस्कारगतो जीवोऽप्रशस्तेभ्यो योगेभ्यो निवर्तते प्रशस्तयोगान्प्रतिपद्यते।
प्रशस्तयोगप्रतिपन्नश्चानगारोऽनन्तघातिनः पर्यायान् क्षपयति॥७॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, गरहणयाएण-आत्मगर्हा से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

गरहणयाएण-आत्मगर्हा से, अपुरक्कार-अपुरस्कार को, जणयइ-उत्पन्न करता है, अपुरक्कारगएणं-अ नम्रता (अपुरस्कार) को प्राप्त हुआ, जीवे-जीव, अप्पसत्थेहिंतो-अप्रशस्त, जोगेहिंतो-योगो से, णियत्तेइ-निवृ होता है, पसत्थे य-प्रशस्त योगो को, पडिवज्जइ-ग्रहण करता है, य-और, पसत्थजोग-प्रशस्त (शुभ) योगों क पडिवण्णे-प्राप्त हुआ, अणगारे-अनगार, अणतघाई-अनन्तघाति, पज्जवे-कर्म पर्यायो को, खवेइ-क्षय करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! आत्मगर्हा-दूसरो के समक्ष अपने दोषो का प्रकटीकरण करने से जीव को क्या लाभ होता है?

आत्मगर्हा से जीव को अपुरस्कार-आत्म नमता की प्राप्ति होती है। आत्मनम्रता को प्राप्त हुआ जीव अप्रशस्त कार्यों से निवृत्त होता है, प्रशस्त योगो मे प्रवृत्त होता है। प्रशस्त योगो को प्राप्त अनगार अनन्त ज्ञान दर्शनादि का घ करने वाली कर्म पर्यायों का क्षय कर देता है।

8 सामायिक जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- **सामाइएण भते! जीवे किं जणयइ?**
सामाइएण सावज्जजोगविरइ जणयइ ॥८॥

संस्कृत छाया- **सामायिकेन भदन्त! जीव कि जनयति?**
सामायिकेन सावद्ययोगविरतिं जनयति ॥८॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, सामाइएण-सामायिक से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है

सामाइएण-सामायिक करने से, सावज्ज-सावद्य, जोग-योग-विरइ-विरति को, जणयइ-उत्पन्न करता है।

भावानुवाद-हे भते! सामायिक (समभाव की साधना) से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

सामायिक से यह जीव सावद्य-योग-असत् प्रवृत्तिया से निवृत्ति को प्राप्त होता है।

9 चतर्विंशतिस्तव जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- **चउव्वीसत्थएणं भते! जीवे कि जणयइ?**
चउव्वीसत्थएण, दसणविसोहिं जणयइ ॥९॥

संस्कृत छाया- **चतुर्विंशतिस्तवेन भदन्त! जीव किं जनयति?।**
चतुर्विंशतिस्तवेन, दर्शनविशुद्धि जनयति ॥९॥

अन्वयार्थ-भत-हे भगवन्!, चउव्वीसत्थएण-चतुर्विंशति-स्तव से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है।

चउव्वीसत्थएण-चतुर्विंशतिस्तव से, दसण विसोहिं-दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धि, जणयइ-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-हे भते! चतुर्विंशति स्तव से जीव को क्या लाभ होता है?

चतुर्विशतिस्तव-चौबीस तीर्थंकरो की स्तुति से जीव दर्शन-सम्यक्त्व की विशुद्धि को प्राप्त करता है।

10 वन्दना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वदणएण भंते! जीवे किं जणयइ?
वदणएण णीयागोयं कम्मं खवेइ।
उच्चागोयं कम्मं णिबंधइ। सोहग्गं च णं
अपडिहयं आणाफलं णिव्वत्तेइ।
दाहिणभावं च णं जणयइ ॥10॥

संस्कृत छाया- वन्दनया भदन्त! जीवः किं जनयति?
वन्दनया नीचैर्गोत्रं कर्म क्षपयति। उच्चैर्गोत्रं कर्म बध्नाति।
सौभाग्यं चाप्रतिहतमाज्ञाफलमुत्पादयति।
दाक्षिण्यभावं च जनयति ॥१०॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, वदणएण-गुरुवंदना से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?, वदणएण-गुरु वंदना से, णीयागोयं-नीच गोत्र, कम्मं-कर्म को, खवेइ-क्षय करता है (और) उच्चागोयं-उच्च गोत्र, कम्मं-कर्म को, णिबंधइ-बांधता है, च-और, अपडिहयं-अप्रतिहत, सोहग्गं-सौभाग्य, आणाफलं-आज्ञाफल को, णिव्वत्तेइ-उत्पन्न करता है, च-और, दाहिणभावं-दाक्षिण्य भाव को, जणयइ-उत्पन्न करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! वन्दना-गुरु आदि को वंदन करने से इस जीव को किस फल की प्राप्ति होती है?

वंदना से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है, उच्च गोत्र का बन्ध करता है तथा अप्रतिहत सौभाग्य और सफल आज्ञा फल को प्राप्त करता है तथा दाक्षिण्य भाव का उपार्जन करता है।

11 प्रतिक्रमण जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- पडिक्कमणेण भंते! जीवे किं जणयइ?
पडिक्कमणेण वयछिद्दाणि पिहेइ। पिहियवयछिद्दे पुण जीवे
णिरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते
सुप्पणिहिए विहरइ ॥11॥

संस्कृत छाया- प्रतिक्रमणेन भदन्त! जीवः किं जनयति?
प्रतिक्रमणेन व्रतच्छिद्राणि पिदधाति।
पिहितव्रतच्छिद्रः पुनर्जीवो
निरुद्धास्रवोऽशबलचारित्रश्चाष्टासु प्रवचनमातृ-
षूपयुक्तोऽपृथक्त्वः सुप्रणिहितो विहरति ॥१०॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, पडिक्कमणेण-प्रतिक्रमण से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ) जणयइ-प्राप्त करता है?

पडिक्कमणेण-प्रतिक्रमण करने से, वयछिद्दाणि-व्रतों के छिद्रों को, पिहेइ-ढांकता है, पुण-फिर, पिहिय

वयछिद्दे-व्रतो के दोषो से निवृत्त, जीवे-जीव, णिरुद्धासवे-आस्रव को रोक कर, असबल-शबलादि से रहित, चरित्ते-चारित्र वाला होकर, अट्ठसु-आठ, पवयणमायासु-प्रवचन माताओ मे, उवउत्ते-उपयुक्त (सावधान) हुआ है, अपुहत्ते-पृथक्त्व से रहित, सुप्पणिहिए-समाधियुक्त होकर (सयम मार्ग मे), विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! प्रतिक्रमण करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है? प्रतिक्रमण के द्वारा जीव स्वीकृत व्रतो के छिद्रो-दोषो को बन्द करता है, व्रतों के दोषो से निवृत्त बना हुआ शुद्ध व्रतधारी जीव आस्रवो को रोक कर शबलादि दोषों से रहित निरतिचार सयम वाला बन कर आठ प्रवचन माताओं के आराधन मे तल्लीन रहता हुआ सयम मे सम्यग् समाधिस्थ होकर विचरण करता है।

12 कायोत्सर्ग जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र-

काउसग्गेण भंते! जीवे किं जणयइ?
काउस्सग्गेण तीयपडुप्पण्ण पायच्छित्त विसोहेइ।
विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे णिव्वुयहियए ओहरियभरुव्व
भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेण विहरइ॥१२॥

सस्कृत छाया-

कायोत्सर्गेण भदन्त! जीव किं जनयति?।
कायोत्सर्गेणाऽतीतप्रत्युत्पन्न प्रायश्चित्त विशोधयति।
विशुद्धप्रायश्चित्तश्च जीवो निर्वृतहृदयोऽपहृतभार इव
भारवह प्रशस्तध्यानोपगत सुखं सुखेन विहरति॥१२॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, काउसग्गेण-कायोत्सर्ग से, काउस्सग्गेण-कायोत्सर्ग से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है। विशोधन करता है, य-और, ओहरिय भरुव्व-भारवहे-बोझ उतर जाने से सुखी भारवाह की तरह, पायच्छित्ते-प्रायच्छित्त से, विसुद्ध-विशुद्ध हुआ, जीवे-जीव, णिव्वुय-निर्वृत्त (चिन्ता रहित), हियए-हृदय वाला, पसत्थ प्रशस्त, ज्झाणोवगए-ध्यान ध्याता हुआ, सुह सुहेण-सुख पूर्वक, विहरइ-विचरता है। तीय-अतीतकाल, पडुप्पण्ण-वर्तमान काल के, पायच्छित्त-प्रायश्चित्त का, विसोहेइ-

भावानुवाद-हे भगवन्! कायोत्सर्ग-कुछ समय के लिए देह भाव का त्याग करने-से जीव को क्या लाभ होता है? कायोत्सर्ग से जीव अतीत और वर्तमान के प्रायश्चित्त योग्य दोषों-अतिचारो का विशोधन करता है, जिस प्रकार सिर से भार-बोझ उतर जाने से भार वाहक मजदूर सुखी हो जाता है उसी प्रकार प्रायश्चित्त स विशुद्ध हुआ जीव शात हृदय बन कर, प्रशस्त ध्यान म लीन होकर सुखपूर्वक विचरण करता है।

13 प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र-

पच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ?
पच्चक्खाणेण आसवदाराइ णिरुंभइ।
पच्चक्खाणेण इच्छाणिरोह जणयइ।

इच्छाणिरोहं गए य ण जीवे सव्वदव्वेसु
विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ॥13॥

सस्कृत छाया- प्रत्याख्यानेन भदन्त। जीव किं जनयति?
प्रत्याख्यानेनास्त्रवद्वाराणि निरुणद्धि। प्रत्याख्यानेन
इच्छानिरोध जनयति। इच्छानिरोधगतस्य जीव
सर्वद्रव्येषु विनीततृष्ण शीतीभूतो विहरति॥१३॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है।

पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान करने से, आसव दाराइ-आस्त्रव द्वारो का, णिरुभइ-निरोध होता है, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान करने से, इच्छाणिरोह-इच्छा का निरोध, जणयइ-उत्पन्न होता है, य-और, इच्छाणिरोह-इच्छा का निरोध-गए-होने से, जीवे-जीव, सव्वदव्वेसु-सभी द्रव्यो (पदार्थो) मे, विणीयतण्हे-तृष्णा से रहित, सीइभूए-शीतलीभूत (शात) होकर, विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भते! प्रत्याख्यान-सासारिक बधनो का त्याग करने से जीव को क्या उपलब्ध होता है?

प्रत्याख्यान से जीव आस्त्रव द्वारो को रोक देता है अर्थात् कर्म बध के राग-द्वेषादि हेतुओ का निरोध कर देता है। इच्छा निरुद्ध होने पर जीव सभी पदार्थों मे तृष्णा रहित बना हुआ परम शाति से विचरता है।

14 स्तव-स्तुति-मगल पाठ जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- थवथुइमगलेण भते! जीवे कि जणयइ?
थवथुइमगलेण णाणदसणचरित्तबोहिलाभ जणयइ।
णाणदसणचरित्तबोहिलाभसपण्णे य ण जीवे अतकिरिय
कप्पविमाणोववत्तिय आराहण आराहेइ॥14॥

सस्कृत छाया- स्तवस्तुतिमगलेन भदन्त! जीव कि जनयति?
स्तवस्तुतिमगलेन ज्ञानदर्शनचारित्रबोधिलाभ जनयति।
ज्ञानदर्शनचारित्रबोधिलाभसम्पन्नश्च जीवोऽन्तक्रिया
कल्पविमानोत्पत्तिकामाराधनामाराध्नोति॥१४॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, थवथुइ मगलेण-स्तवस्तुति मगल से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है।

थवथुइ मगलेण-स्तवस्तुति मगल से, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, चरित्त-चारित्र रूप, बोहिलाभ-बोधि लाभ को, जणयइ-उत्पन्न करता है, य-और, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, चरित्त-चारित्र रूप, बोहि लाभ-बोधि लाभ से, सपण्णे-सपन्न जीव, कप्पविमाणोववत्तिय-कल्पविमानोपपत्ति, अतकिरिय-अतक्रिया (मोक्ष) की, आराहण-

वयछिद्दे-व्रतो के दोषो से निवृत्त, जीवे-जीव, णिरुद्धासवे-आस्रव को रोक कर, असबल-शवलादि से रहित, चरित्ते-चारित्र वाला होकर, अट्ठसु-आठ, पवयणमायासु-प्रवचन माताओ मे, उवउत्ते-उपयुक्त (सावधान) है, अपुहत्ते-पृथक्त्व से रहित, सुप्पणिहिए-समाधियुक्त होकर (सयम मार्ग मे), विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! प्रतिक्रमण करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

प्रतिक्रमण के द्वारा जीव स्वीकृत व्रतो के छिद्रो-दोषो को बन्द करता है, व्रतों के दोषों से निवृत्त बना हुआ शुद्ध व्रतधारी जीव आस्रवो को रोक कर शवलादि दोषों से रहित निरतिचार सयम वाला बन कर आठ प्रवचन माताओ के आराधन मे तल्लीन रहता हुआ सयम मे सम्यग् समाधिस्थ होकर विचरण करता है।

12 कायोत्सर्ग जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र-

काउस्सग्गेण भंते! जीवे किं जणयइ?
काउस्सग्गेणं तीयपडुप्पण्ण पायच्छित्तं विसोहेइ।
विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे णिव्वुयहियए ओहरियभरुव्व
भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ॥12॥

सस्कृत छाया-

कायोत्सर्गेण भदन्त! जीवः किं जनयति?।
कायोत्सर्गेणाऽतीतप्रत्युत्पन्नं प्रायश्चित्तं विशोधयति।
विशुद्धप्रायश्चित्तश्च जीवो निर्वृतहृदयोऽपहृतभार इव
भारवहः प्रशस्तध्यानोपगतः सुखं सुखेन विहरति॥12॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, काउस्सग्गेण-कायोत्सर्ग से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है। काउस्सग्गेण-कायोत्सर्ग से, तीय-अतीतकाल, पडुप्पण्ण-वर्तमान काल के, पायच्छित्त-प्रायश्चित्त का, विसोहेइ विशोधन करता है, य-और, ओहरिय भरुव्व-भारवहे-बोझ उतर जाने से सुखी भारवाह की तरह, पायच्छित्ते प्रायच्छित्त से, विसुद्ध-विशुद्ध हुआ, जीवे-जीव, णिव्वुय-निर्वृत्त (चिन्ता रहित), हियए-हृदय वाला, पसत्थ प्रशस्त, ज्झाणोवगए-ध्यान ध्याता हुआ, सुह सुहेण-सुख पूर्वक, विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! कायोत्सर्ग-कुछ समय के लिए देह भाव का त्याग करने-से जीव को क्या लाभ होता है?

कायोत्सर्ग से जीव अतीत और वर्तमान के प्रायश्चित्त योग्य दोषों-अतिचारो का विशोधन करता है, जिस प्रकार सिर से भार-बोझ उतर जाने से भार वाहक मजदूर सुखी हो जाता है उसी प्रकार प्रायश्चित्त से विशुद्ध हुआ जीव शा... हृदय बन कर, प्रशस्त ध्यान म लीन होकर सुखपूर्वक विचरण करता है।

13 प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र-

पच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ?
पच्चक्खाणेण आसवदाराइं णिरुंभइ।
पच्चक्खाणेण इच्छाणिरोहं जणयइ।

इच्छाणिरोह गए य ण जीवे सव्वदव्वेसु
विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ॥१३॥

संस्कृत छाया- प्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति?
प्रत्याख्यानेनास्रवद्वाराणि निरुणद्धि। प्रत्याख्यानेन
इच्छानिरोध जनयति। इच्छानिरोधगतश्च जीव
सर्वद्रव्येषु विनीततृष्ण शीतीभूतो विहरति॥१३॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है।

पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान करने से, आसव दाराइ-आस्रव द्वारो का, णिरुभइ-निरोध होता है, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान करने से, इच्छाणिरोह-इच्छा का निरोध, जणयइ-उत्पन्न होता है, य-और, इच्छाणिरोह-इच्छा का निरोध-गए-होने से, जीवे-जीव, सव्वदव्वेसु-सभी द्रव्यो (पदार्थो) मे, विणीयतण्हे-तृष्णा से रहित, सीइभूए-शीतलीभूत (शात) होकर, विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भंते! प्रत्याख्यान-सासारिक बधनो का त्याग करने से जीव को क्या उपलब्ध होता है?

प्रत्याख्यान से जीव आस्रव द्वारो को रोक देता है अर्थात् कर्म बध के राग-द्वेषादि हेतुओ का निरोध कर देता है। इच्छा निरुद्ध होने पर जीव सभी पदार्थों मे तृष्णा रहित बना हुआ परम शाति से विचरता है।

14 स्तव-स्तुति-मगल पाठ जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- थवथुइमगलेण भंते! जीवे किं जणयइ?
थवथुइमगलेण णाणदसणचरित्तबोहिलाभ जणयइ।
णाणदसणचरित्तबोहिलाभसपण्णे य ण जीवे अतकिरिय
कप्पविमाणोववत्तिय आराहण आराहेइ॥१४॥

संस्कृत छाया- स्तवस्तुतिमगलेन भदन्त! जीव किं जनयति?
स्तवस्तुतिमगलेन ज्ञानदर्शनचारित्रबोधिलाभ जनयति।
ज्ञानदर्शनचारित्रबोधिलाभसम्पन्नश्च जीवोऽन्तक्रिया
कल्पविमानोत्पत्तिकामाराधनामाराध्नोति॥१४॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, थवथुइ मगलेण-स्तवस्तुति मगल से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है।

थवथुइ मगलेण-स्तवस्तुति मगल से, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, चरित्त-चारित्र रूप, बोहिलाभ-बोधि लाभ को, जणयइ-उत्पन्न करता है, य-और, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, चरित्त-चारित्र रूप, बोहि लाभ-बोधि लाभ से, सपण्णे-सपन्न जीव, कप्पविमाणोववत्तिय-कल्पविमानोपपत्ति, अतकिरिय-अतक्रिया (मोक्ष) की, आराहण-

आराधना का, आराहेइ-आराधन करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! स्तव स्तुति मगल से इस जीव को क्या लाभ होता है?

स्तव स्तुति मगल से जीव को ज्ञान दर्शन चारित्र रूप बोधि का लाभ प्राप्त होता है। ज्ञान दर्शन चारित्र के बोधिलाभ से सपन्न जीव मोक्ष (अतक्रिया) के योग्य अथवा वैमानिक देवो मे उत्पन्न होने के योग्य आराधना करता है।

15 काल प्रतिलेखना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- काल पडिलेहणयाएण भते! जीवे किं जणयइ?
कालपडिलेहणयाएणं णाणावरणिज्ज कम्मं खवेइ ॥१५॥

सस्कृत छाया- कालप्रतिलेखनया भदत! जीव किं जनयति?
काल प्रतिलेखनया ज्ञानावरणीय कर्म क्षपयति ॥१५॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, काल पडिलेहणयाएण-कालप्रतिलेखन करने से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ) जणयइ-प्राप्त करता है?

कालपडिलेहणयाएण-काल प्रतिलेखन से, णाणावरणिज्जं-ज्ञानावरणीय, कम्म-कर्म का, खवेइ-क्षय करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! काल की प्रतिलेखना से जीव किस गुण को प्राप्त करता है?

काल प्रतिलेखना-स्वाध्यायादि काल का समीक्षण करने से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

16 प्रायश्चित्तकरण जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- पायच्छित्तकरणेण भते! जीवे कि जणयइ?
पायच्छित्तकरणेण पावकम्मविसोहिं जणयइ।
णिरइयारे यावि भवइ। सम्म च ण पायच्छित्त पडिवज्जमाणे मग्ग च
मग्गफल च विसोहेइ, आयारं च आयारफल च आराहेइ ॥१६॥

सस्कृत छाया- प्रायश्चित्तकरणेन भदन्त! जीव किं जनयति?
प्रायश्चित्तकरणेन पापकर्मविशुद्धि जनयति।
निरतिचारश्चापिभवति। सम्यक् च प्रायश्चित्त प्रतिपाद्यमान
मार्गञ्च मार्गफल च विशोधयति आचारमाचारफलचाराधयति ॥१६॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, पायच्छित्त करणेणं-प्रायश्चित्त करने से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

पायच्छित्त करणेण-प्रायश्चित्त करने से, पावकम्मविसोहिं-पाप कर्मों की विशुद्धि, जणयइ-उत्पन्न होती है, य-और, णिरइयारे-निरतिचार, अवि-भी, भवइ-हो जाता है, च-और, सम्मं-सम्यक् प्रकार से, पायच्छित्तं-प्रायश्चित्त, पडिवज्जमाणे-ग्रहण करता हुआ जीव, मग्ग-मार्ग (सम्यक्त्व), च-और, मग्गफलं-मार्ग के फल (मोक्ष) को, विसोहेइ-विशुद्ध करता है, च-और, आयार-आचार (चारित्र) को, च-और, आयारफलं-चारित्र (आचार) के

फल की, आराहेइ-आराधना करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त। प्रायश्चित्त-पाप कर्मों की तप आदि से शुद्धि करने से जीव को क्या लाभ होता है?

प्रायश्चित्त से जीव पाप कर्मों की विशुद्धि कर लेता है और निरतिचार-दोष रहित व्रतो वाला हो जाता है। सम्यक प्रकार से प्रायश्चित्त करता हुआ साधक ज्ञान मार्ग और उसके फल की विशुद्धि करता है। आचार और आचार फल की आराधना करता है।

17 क्षमापना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- खमावणयाए ण भते। जीवे कि जणयइ? खमावणयाएण पल्हायण भाव जणयइ। पल्हायणभावमुवगए य सव्वपाणभूय जीव सत्तेसु मित्तीभावमुप्पाएइ। मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काऊण णिब्भए भवइ॥१७॥

सस्कृत छाया- क्षमापनया भदन्त। जीव कि जनयति? क्षमापनया प्रह्लादनभाव जनयति प्रह्लादनभावमुपगतस्य सर्वप्राणि भूत जीव सत्वेषु मैत्री भावमुत्पादयति मैत्री भाव मुपगतस्यापि जीव भावविशुद्धि कृत्वा निर्भयो भवति॥१७॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, खमावणयाए-क्षमापना से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

खमावणयाए-क्षमापना से, पल्हायणभाव-प्रह्लादन भाव (चित्त की प्रसन्नता), जणयइ-उत्पन्न होती है, य-और, पल्हायणभाव-चित्त प्रसन्नता को, उवगए-प्राप्त हुआ, सव्व-सर्व, पाण-प्राण, भूय-भूत, जीवसत्तेसु-जीव-सत्वो में, मित्तीभाव-मैत्रीभाव को, उप्पाएइ-उत्पन्न करता है, यावि-और, मित्तीभाव-मैत्री भाव को, उवगए-प्राप्त हुआ, जीवे-जीव, भावविसोहिं-भाव विशुद्धि, काऊण-करके, णिब्भए-निर्भय, भवइ-हो जाता है।

भावानुवाद-हे भते। क्षमापना से जीव को क्या लाभ होता है?

क्षमापना से जीव को प्रह्लादन भाव-चित्त की प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। प्रसन्नचित्त साधक सभी-प्राणी, भूत, जीव और सत्व-ससार के समस्त प्राणियो के साथ मैत्री भाव को प्राप्त होता है, मैत्री भाव को प्राप्त जीव भाव विशुद्धि करके निर्भय हो जाता है।

18 स्वाध्याय जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सज्झाएण भते! जीवे कि जणयइ? सज्झाएण णाणावरणिज्ज कम्म खवेइ॥१८॥

सस्कृत छाया- स्वाध्यायेन भदन्त! जीव किं जनयति? स्वाध्यायेन ज्ञानावरणीय कर्म क्षपयति॥१८॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, सज्झाएण-स्वाध्याय करने से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है? सज्झाएण-स्वाध्याय करने से, णाणावरणिज्ज-ज्ञानावरणीय, कम्म-कर्म को, खवेइ-क्षय करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! स्वाध्याय करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

स्वाध्याय करने से जीव ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय करता है।

19 स्वाध्याय का प्रथम भेद जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वायणाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
वायणाए ण णिज्जरं जणयइ। सुयस्स य अणुसज्जणाए
अणासायणाए वट्टए। सुयस्स अणुसज्जणाए अणासायणाए
वट्टमाणे तित्थधम्मं अवलंबइ। तित्थधम्मं अवलंबमाणे
महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ॥१९॥

संस्कृत छाया- वाचनया भदन्त! जीवः किं जनयति?
वाचनया निर्जरां जनयति। श्रुतस्य चानुसज्जनया
अनाशातनायां वर्तते। सूत्रस्यनाशातनायांवर्तमानस्तीर्थ
धर्ममवलम्बते। तीर्थधर्ममवलम्बमानो महानिर्जरो
महापर्यवसानो भवति॥१९॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्, वायणाएण-वाचना से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है? वायणाएण-वाचना से, णिज्जरं-कर्मों की निर्जरा, जणयइ-उत्पन्न होती है, य-और, सुयस्स-श्रुत के, अणुसज्जणाए-अनुवर्तन से, अणासायणाए-अनाशातना मे, वट्टए-वर्तता है, सुयस्स-श्रुत की, अणुसज्जणाए-अनुवर्तन से, अणासायणाए-अनाशातना में, वट्टमाणे-वर्तता हुआ, तित्थ धम्म-तीर्थ धर्म का, अवलंबइ-अवलम्बन लेता है, तित्थ धम्म-तीर्थ धर्म का, अवलंबमाणे-अवलम्ब करने से, महाणिज्जरे-महानिर्जरा, महापज्जवसाणे-महापर्यवसान, हवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! वाचना (अध्यापन) से जीव को क्या लाभ होता है?

वाचना से जीव कर्मों की निर्जरा करता है। श्रुत का वाचन होते रहने से अनुवर्तन होने से उसकी आशातना नहीं होती है। श्रुत के अनुवर्तन से तथा आशातना दोष से बचता हुआ जीव तीर्थ धर्म का अवलम्बन प्राप्त करता है। तीर्थ धर्म का अवलम्बन प्राप्त करता हुआ जीव कर्मों की महानिर्जरा करता है और महापर्यवसान-कर्मों का सर्वथा क्षय करता है।

20 स्वाध्याय का दूसरा भेद जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- पडिपुच्छणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
पडिपुच्छणयाए णं सुत्तऽत्थतदुभयाइं विसोहेइ।
कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिंदइ॥२०॥

सस्कृत छाया- प्रतिप्रच्छनया भदन्त! जीव किं जनयति?
प्रतिप्रच्छनया सूत्रार्थतदुभयानि विशोधयति
काक्षामोहनीय कर्म व्युच्छिनत्ति ॥२०॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, पडिपुच्छणयाएण-प्रतिपृच्छना से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

पडिपुच्छणयाएण-प्रतिपृच्छना से, सुत्तत्थ-सूत्र, अर्थ (और), तदुभयाइ-सूत्रार्थ (दोनो) को, विसोहेइ-विशुद्ध करता है, कखामोहणिज्ज-काक्षामोहनीय, कम्म-कर्म का, वोच्छिदइ-विच्छेद करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! प्रतिपृच्छना-पुन पुन जिज्ञासा से जीव किस गुण को प्राप्त करता है? प्रतिपृच्छना से जीव सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ तदुभय की विशुद्धि करता है तथा काक्षा मोहनीय कर्म का विशेष रूप से क्षय करता है।

21 परिवर्तना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- परियट्टणयाएण भते! जीवे कि जणयइ?
परियट्टणयाएण वजणाइ जणयइ।
वजणलद्धि च उप्पाएइ ॥२१॥

सस्कृत छाया- परिवर्तनया भदन्त! जीव किं जनयति?
परिवर्तनया जीव व्यञ्जनानि जनयति।
व्यञ्जनलब्धिंचोत्पादयति ॥२१॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्! परियट्टणयाएण-परिवर्तना से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

परियट्टणयाएण-परिवर्तन से, वजणाइ-व्यजनो को, जणयइ-उत्पन्न करता है, च-और, वजणलद्धि-व्यजनलब्धि को, उप्पाएइ-उत्पन्न करता है।

भावानुवाद-हे भते! परावर्तना-पठित पाठ के पुनरावर्तन से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है? परावर्तना से जीव व्यजन और व्यजन लब्धि को प्राप्त कर लेता है अर्थात् अक्षर लब्धि और पद लब्धि की प्राप्ति होती है।

22 अनुप्रेक्षा जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- अणुप्पेहाए ण भते! जीवे कि जणयइ?
अणुप्पेहाए ण आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ
धणियबधण बद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ।
दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ।
तिव्वाणुभावाओ मदाणुभावाओ पकरेइ।
बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ।
आउय च ण कम्म सिया बंधइ, सिया णो बधइ।

असायावेयणिज्ज च ण कम्म णो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ।
अणाइय च ण अणवदग्ग दीहमद्ध चाउरत
ससारकतार खिप्पामेव वीइवयइ॥२२॥

सस्कृत छाया- अनुप्रेक्षया भदन्त! जीव कि जनयति? अनुप्रेक्षयाऽऽयुर्वर्ज्जा सप्तकर्मप्रकृतीर्गाढबन्धनबद्धा शिथिलबन्धनबद्धा प्रकरोति। दीर्घकालस्थितिका ह्रस्वकालस्थितिका प्रकरोति तीव्रानुभावा मन्दानुभावा प्रकरोति। बहु प्रदेशका अल्प प्रदेशका प्रकरोति। आयु कर्म च स्याद्बध्नाति स्यान्न बध्नाति। अशाता वेदनीय च कर्म नो भूयोभूय उपचिनोति। अनादिक चाऽनवदग्र दीर्घाध्व चतुरन्त ससारकान्तार क्षिप्रमेव व्यतिव्रजति॥२२॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, अणुप्पेहाएण-अनुप्रेक्षा से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है? अणुप्पेहाएण-अनुप्रेक्षा से, आउवज्जाओ-आयु कर्म को वर्ज कर, सत्त-सात, कम्मपयडीओ-कर्मों की प्रकृतियों को, (जो कि) धणिय-गाढ, बधण-बधनो से, बद्धाओ-बधे हुए हों (उन्हें), सिढिल-शिथिल, बधणबद्धाओ-बधनो से बधा हुआ, पकरेइ-करता है, दीहकाल-दीर्घकाल की, ट्ठिइयाओ-स्थिति वाले को, हस्सकाल-अल्पकाल की, ट्ठिइयाओ-स्थिति वाले, पकरेइ-करता है, तिव्वाणुभावाओ-तीव्र अनुभाव (रस) वाले को, मदाणुभावाओ-मद रस वाले, पकरेइ-कर देता है, बहुप्पएसगाओ-बहुप्रदेशी को, अप्पपएसगाओ-अल्पप्रदेशी, पकरेइ-कर देता है, च-और, आउय कम्म-आयुष्य कर्म का, सिया-कदाचित्, बधइ-बध होता (और), सिया-कदाचित्, णो बधइ-बध नहीं होता, च-और, असाया-असाता, वेयणिज्ज-वेदनीय, कम्म-कर्म का, भुज्जो भुज्जो-बार-बार, णो उवचिणाइ-बधन नहीं होता, च-और, अणाइय-अनादि, अणवदग्ग-अनवदग्र (अनन्त), दीहमद्ध-दीर्घ मार्ग वाले, चउरंत-चतुर्गति रूप, ससार कतार-ससार कान्तार (अटवी) का, खिप्पामेव-शीघ्र ही, वीइवयइ-पार करता है (मोक्ष को प्राप्त होता है)।

भावानुवाद-हे भगवन्! अनुप्रेक्षा (सूत्रार्थ के चितन) से जीव को क्या लाभ होता है?

अनुप्रेक्षा से आयुष्य कर्म को छोड कर शेष ज्ञानावरणादि सात कर्मों की प्रकृतियों के प्रगाढ बधन को शिथिल करता है, दीर्घकाल की स्थिति को अल्पकालीन करता है, उनके तीव्र रसानुभव को मद करता है, बहु प्रदेशी को अल्प प्रदेशी कर देता है, आयुष्य कर्म का बधन कदाचित् करता है कदाचित् नहीं करता है। असाता वेदनीय का उपचय-बन्ध पुन पुन नहीं करता है, वह दीर्घ मार्ग वाले अनादि अनन्त नरकादि चतुर्गति रूप ससार अटवी को शीघ्र ही पार कर जाता है।

23 धर्म कथा जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- धम्मकहाए ण भंते! जीवे किं जणयइ?
धम्मकहाए ण णिज्जर ...

धम्मकहाएण पवयण पभावेइ। पवयणपभावेण जीवे
आगमिसस्स भद्दत्ताए कम्म णिबधइ॥२३॥

सस्कृत छाया- धर्मकथया भदन्त। जीव किं जनयति?
धर्मकथया निर्जरा जनयति।
धर्मकथया प्रवचन प्रभावयति।
प्रवचन प्रभावेण जीव आगमिष्यतिकाले
भद्रतया कर्म निबध्नाति॥२३॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, धम्मकहाएण-धर्मकथा से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है? धम्मकहाएण-धर्मकथा कहने से, णिज्जर-कर्मों की निर्जरा, जणयइ-होती है, पवयण-प्रवचन की, पभावेइ-प्रभावना करता है, पवयण-प्रवचन की, पभावेण-प्रभावना करने से, जीवे-जीव, आगमिसस्स-आगामी-भविष्य के लिए, भद्दत्ताए-भद्रता से, कम्म-शुभ कर्मों का, णिबधइ-बध करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! धर्मकथा-धर्मोपदेश से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

धर्मकथा करने से कर्मों की निर्जरा होती है। धर्मकथा से प्रवचन-शासन की प्रभावना होती है, प्रवचन प्रभावना करने से जीव आगामी काल के लिए शुभ कर्मों का बध करता है।

24 श्रुत की आराधना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सुयस्स आराहणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
सुयस्स आराहणयाए ण अण्णाण खवेइ,
ण य सकिलिस्सइ॥२४॥

सस्कृत छाया- श्रुतस्याऽऽराधनया भदन्त। जीव कि जनयति?
श्रुतस्याराधनयाऽज्ञान क्षपयति, न च सक्लिश्यति॥२४॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, सुयस्स-श्रुत की, आराहणयाएण-आराधना से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है।

सुयस्स-श्रुत की, आराहणयाएण-आराधना करने से, अण्णाण-अज्ञान का, खवेइ-क्षय करता है, य-और, सकिलिस्सइ-सक्लेश को प्राप्त, ण-नहीं होता।

भावानुवाद-हे भदन्त! श्रुत ज्ञान की आराधना से जीव को क्या लाभ होता है?

श्रुत की आराधना से जीव अज्ञान का नाश करता है तथा सक्लेश को प्राप्त नहीं होता है।

25 मन की एकाग्रता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- एगग्गमणसंणिवेसणयाए ण भते! जीवे कि जणयइ?
एगग्गमणसंणिवेसणयाए ण चित्तणिरोह करेइ॥२५॥

संस्कृत छाया- एकाग्रमन सन्निवेशनया भदन्त ! जीव किं जनयति?
एकाग्रमन सन्निवेशनया चित्तनिरोध करोति ॥२५॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, एगग्गमण-एकाग्रमन, सणिवेसणयाएण-सन्निवेशनता से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

एगग्गमण सण्णिवेसणयाए-एकाग्रमन सन्निवेशनता (मन की एकाग्रता) से, चित्तणिरोह-चित्तवृत्तिका निरोध, करइ-करता है।

भावानुवाद-हे भते! मन को एकाग्रता मे सस्थापित करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

मन को एकाग्रता मे स्थित करने से जीव चितवृति का निरोध करता है।

26 संयम की आराधना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- संजमेण भंते! जीवे किं जणयइ?
संजमेण अणण्हयत्तं जणयइ ॥२६॥

संस्कृत छाया- सयमेन भदन्त! जीव कि जनयति?
सयमेनानह स्करत्व जनयति ॥२६॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! संजमेण-सयम से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

संजमेण-सयम धारण करने से, अणण्हत्तं-आस्रवों का निरोध, जणयइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सयम से जीव को क्या लाभ होता है?

सयम से यह जीव अनास्रवत्व-आस्रव निरोधत्व स्थिति को प्राप्त करता है।

27 तप के बिना कर्मों का क्षय नहीं जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- तवेण भंते! जीवे किं जणयइ?
तवेण वोदाणं जणयइ ॥२७॥

संस्कृत छाया- तपसा भदन्त! जीव कि जनयति?
तपसा व्यवदान जनयति ॥२७॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! तवेण-तप से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है? तवेणं-तपस्या करने से, वोदाणं-व्यवदान (पूर्वकृत कर्मों का क्षय), जणयइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! तप करने से जीव को क्या लाभ होता है?

तप से व्यवदान अर्थात् पूर्व सचित कर्मों का क्षय होता है, आत्मशुद्धि होती है।

28 व्यवदान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वोदाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
वोदाणेणं ... ज...

अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ,
परिणिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥२८॥

संस्कृत छाया- व्यवदानेन भदन्त! जीवः किं जनयति?
व्यवदानेनाक्रियां जनयति।
अक्रियो भूत्वा ततः पश्चात् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते,
परिनिर्वाति, सर्वदुःखानामन्तं करोति ॥२८॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, वोदाणेण-व्यवदान (पूर्वकृत कर्मों के क्षय) से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

वोदाणेण-व्यवदान से, अकिरियं-अक्रिय, जणयइ-होता है, अकिरियाए भवित्ता-अक्रिय होने के, तओ पच्छा-बाद मे, सिज्झइ-सिद्ध हो जाता है, बुज्झइ-बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ-कर्मों से मुक्त होता है, परिणिव्वायइ-शीतलीभूत होता है, सव्वदुक्खाण-सर्व दुःखो का, अंतं-अन्त, करेइ-कर देता है।

भावानुवाद-हे भंते! व्यवदान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

व्यवदान-पूर्वबद्ध कर्मों के क्षय से जीव अक्रिय हो जाता है। अक्रिय होने के पश्चात् वह सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाता है, परिनिर्वाण-परम शांति को प्राप्त होता है और सब दुःखो का अन्त कर देता है।

29 सुख साता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सुहसाएण भंते! जीवे किं जणयइ?
सुहसाएण अणुस्सुयत्तं जणयइ। अणुस्सुयाए
णं जीवे अणुकंपए अणुब्भडे विगयसोगे
चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ ॥२९॥

संस्कृत छाया- सुखशातेन भदन्त! जीवः किं जनयति?
सुखशातेनानुत्सुकत्वं जनयति।
अनुत्सुको जीवोऽनुद्भटो
विगतशोकः चारित्रमोहनीयं कर्म क्षपयति ॥२९॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, सुहसाएण-सुखसाता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

सुहसाएण-सुखसाता से, अणुस्सुयत्तं-अनुत्सुकता (विषयो के प्रति अनिच्छा), जणयइ-उत्पन्न होती है, अणुस्सुयाएण-अनुत्सुकता से, जीवे-जीव, अणुकंपए-(दूसरे जीवो के प्रति) अनुकम्पा करने वाला, अणुब्भडे-अनुद्भट (निरभिमानी), विगयसोगे-विगत शोक (शोक रहित) होता है (और), चरित्त-चारित्र, मोहणिज्ज-मोहनीय, कम्म-कर्म का, खवेइ-क्षय कर देता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सुखसाता अर्थात् वैषयिक सुखो की निवृत्ति से जीव को क्या लाभ होता है?

सुखसाता-विषय-सुख निवृत्ति से जीव निस्पृहता को प्राप्त करता है। विषयों के प्रति निस्पृहा-अनिच्छा उत्पन्न होने

से जीव दूसरे जीवों पर अनुकम्पा करने वाला होता है, निरभिमानी-प्रशान्त, चिन्ता-शोक रहित होता है और चरित्र मोहनीय कर्म का क्षय करता है।

30 अप्रतिबद्धता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- अप्पडिबद्धयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
अप्पडिबद्धयाए णं णिस्संगत्तं जणयइ।
णिस्संगत्तेण जीवे एगे एगग्गचित्ते दिया य राओ य
असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि विहरइ॥30॥

संस्कृत छाया- अप्रतिबद्धतया भदन्त! जीवः किं जनयति?
अप्रतिबद्धतया निःसंगत्वं जनयति। निःसंगत्वेन जीवः
एकः एकाग्रचित्तो दिवा च रात्रौ
चाऽसजन्नप्रतिबद्धश्चापि विहरति॥३०॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, अप्पडिबद्धयाएण-अप्रतिबद्धता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

अप्पडिबद्धयाएण-अप्रतिबद्धता से, णिस्संगत्तं-निःसंगत (संग रहित), जणयइ-होता है, णिस्संगत्तेण-निस्संगता से, जीवे-जीव, एगे-एक (रागद्वेष रहित) होकर, एगग्गचित्ते-एकाग्र चित्त होता है, य-और, दिया-दिन, य-और, राओ-रात, असज्जमाणे-अनुराग नहीं रखता हुआ, अप्पडिबद्धे-अप्रतिबद्धभाव से, विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! अप्रतिबद्धता-विषयों के प्रति अनासक्ति से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

अप्रतिबद्धता से जीव निःसंगता को प्राप्त करता है। निःसंग होने से जीव राग-द्वेष रहित होकर एक निष्ठ एकाग्रचित्त होता है और फिर वह दिन-रात किसी वस्तु पर अनुराग नहीं रखता हुआ अप्रतिबद्ध होकर विचरण करता है।

31 विविक्त शयनासन जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- विवित्तसयणासणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
विवित्त सयणासणयाए णं चरित्तगुत्तिं जणयइ।
चरित्तगुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगंतरए
मोक्खभाव पडिवण्णे अट्ठविहकम्मगंठिं णिज्जरेइ॥31॥

संस्कृत छाया- विविक्त शयनासनतया भदन्त! जीवः किं जनयति?
विविक्त शयनासनतया चारित्रगुप्तिं जनयति।
गुप्तचारित्रो जीवो विविक्ताहारो दृढचारित्र
एकान्तरतो मोक्षभावप्रतिपन्नोऽष्टविधां कर्मग्रन्थिं
निर्जरयति॥३१॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्! विवित्त सयणासणयाएण-विविक्त शयनासनता (स्त्री नपुसक रहित स्थान, आसन का सेवन करने) से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

विवित्तसयणासणयाएण-विविक्त शयनासनता से, चरित्तगुत्ति-चारित्र की गुप्ति (रक्षा) करने वाला, जीवे-जीव, विवित्ताहारे-विविक्ताहारी (विगयादि मे अनासक्त) होता है, दढचरित्ते-चारित्र मे दृढ, एगतरए-एकान्त रत (सेवी), य-और, मोक्खभाव-मोक्षभाव का, पडिवण्णे-प्रतिपन्न (साधक) होता है (और), अट्ठविह-आठो प्रकार के, कम्म-कर्मों की, गठिं-ग्रथि का, णिज्जरेइ-भेदन करता है (मोक्ष प्राप्त करता है)।

भावानुवाद-हे भगवन्! विविक्त शयनासन-स्त्री, पशु और नपुसक से रहित एकान्त स्थान मे शयन-आसन का सेवन करने से जीव को क्या लाभ होता है?

विविक्त शयनासन के सेवन से चारित्र की सुरक्षा होती है। चारित्र ही सुरक्षा करने वाला विविक्ताहारी-वासनावर्धक भोजन का त्यागी होता है, ऐसा जीव दृढ चारित्री एकान्तप्रिय मोक्षभाव से सपन्न आठ प्रकार के कर्मों की ग्रथि का निर्जरण-क्षय कर देता है।

32 विनिवर्तना जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र-

विणियट्टणयाए ण भते! जीवे कि जणयइ?
विणियट्टणयाए ण पावकम्माण अकरणयाए अब्भुट्ठेइ।
पुव्वबद्धाण य णिज्जरणयाए त णियत्तेइ।
तओ पच्छा चाउरत ससारकतार वीइवयइ॥३२॥

सस्कृत छाया-

विनिवर्तनया भदन्त! जीव कि जनयति?
विनिवर्तनया पाप कर्मणामकरणतयाऽभ्युत्तिष्ठति।
पूर्वबद्धाना च निर्जरणया त निवर्तयति।
तत पश्चात्चातुरत ससारकातार व्यतिव्रजति॥३२॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, विणियट्टणयाएण-विनिवर्तना (विषयों के त्याग) से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

विणियट्टणयाएण-विनिवर्तना करने से (जीव), पावकम्माण-पाप कर्म, अकरणयाए-नहीं करने हेतु, अब्भुट्ठेइ-उद्यत होता है, य-और, पुव्वबद्धाण-पहले बधे हुए (पाप कर्मों की), णिज्जरणयाए-निर्जरा करके, त-उस पाप से, णियत्तेइ-निवृत्त होता है, तओ-उसके, पच्छा-पश्चात्, चाउरत-चार गति वाले, ससार-ससार रूपी, कतार-कान्तार (अटवी) को, वीइवयइ-पार करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! विनिवर्तना-मन और इन्द्रियो को विषयो से हटाने से जीव को क्या लाभ होता है?

विनिवर्तना से जीव पाप क्रियाओ से बचे रहने को उद्यत रहता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा के द्वारा उन कर्मो का निवर्तन करता है, तदनन्तर चार अत हैं जिसके ऐसे चतुर्गतिक ससार कान्तार (वन) को शीघ्र ही पार कर जाता है।

मूल सूत्र- संभोगपच्चक्खाणे ण भंते! जीवे किं जणयइ?
सभोगपच्चक्खाणे ण आलंबणाइ खवेइ।
णिरालंबणस्स य आययट्ठिया जोगा भवंति।
सएण लाभेण संतुस्सइ, परलाभ णो आसाएइ,
णो तक्केइ, णो पीहेइ, णो पत्थेइ, णो अभिलसइ।
परलाभं अणासाएमाणे अतक्केमाणे, अपीहेमाणे,
अपत्थेमाणे, अणभिलसमाणे, दुच्चं सुहसेज्ज
उवसंपज्जित्ता णं विहरइ॥33॥

सस्कृत छाया- सभोगप्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति?
सभोग प्रत्याख्यानेन जीव आलम्बनानि क्षपयति।
निरालम्बनस्य चायतार्था योगा भवन्ति स्वेन लाभेन
सन्तुष्यति। परस्य लाभ नो आस्वादयति नो तर्कयति,
नो स्पृहयति नो प्रार्थयति नोऽभिलषति, परस्य लाभ
मनास्वादयन्, अतर्कयन्, अस्पृहयन् अप्रार्थयन्,
अनभिलषन्, द्वितीया सुखशय्यामुपसम्पद्य
विहरति॥33॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, सभोग-सभोग का, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान करने से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

सभोग पच्चक्खाणेण-सभोग का त्याग करने से (जीव), आलंबणाइं-आलंबना का, खवेइ-क्षय करता है, य और, णिरालंबणस्स-निरालम्बन (जीव) के, जोगा-योग, आययट्ठिया-मोक्ष (शुभ) प्रयोजन वाले, भवंति होते हैं, सएण-अपने, लाभेण-लाभ से, संतुस्सइ-सतुष्ट रहता है, पर-दूसरे के, लाभ-लाभ का, आसाएइ-आस्वादन णो-नहीं करता, णो तक्केइ-कल्पना (तर्कणा) नहीं करता, णो पीहेइ-स्पृहा नहीं करता, णो पत्थेइ-प्रार्थना नहीं करता, णो अभिलसइ-अभिलाषा नहीं करता, पर-दूसरे के, लाभं-लाभ का, अणासाएमाणे-आस्वादन न करता हुआ, अतक्केमाणे-कल्पना न करता हुआ, अपीहेमाण-स्पृहा न करता हुआ, अपत्थेमाणे-प्रार्थना न करता हुआ, अणभिलसमाणे-अभिलाषा न करता हुआ, दुच्च-दूसरी, सुहसेज्जं-सुख शय्या को, उवसंपज्जित्ता णं-अंगीकार करके, विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सभोग प्रत्याख्यान-एक दूसरे के साथ सहवास, सह भोजन, वन्दन आदि के सम्पर्क के प्रत्याख्यान से जीव का किस गुण की प्राप्ति होती है?

सभोग के प्रत्याख्यान से जीव का परावलम्बीपन छूट जाता है, वह स्वावलम्बी हो जाता है, स्वावलम्बी होने पर उसके योग समस्त प्रयत्न आत्मार्थ-मोक्षार्थ हो जाते हैं, वह स्वोपार्जित लाभ से सन्तुष्ट रहता है, दूसरा के लाभ का

आस्वादन-उपभोग नहीं करता है, उसकी कल्पना नहीं करता है, स्पृहा-इच्छा नहीं करता है, प्रार्थना नहीं करता है, अभिलाषा नहीं करता है। दूसरो के लाभ का आस्वादन, कल्पना, स्पृहा, प्रार्थना और अभिलाषा नहीं करता हुआ दूसरी सुख शय्या को प्राप्त करके-स्वीकार करके विचरण करता है।

34 उपधि प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- उवहिपच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ?
उवहिपच्चक्खाणेण अपलिमंथ जणयइ।
णिरुवहिए णं जीवे णिक्कंखी
उवहिमंतरेण य ण संकिलिस्सइ ॥३४॥

संस्कृत छाया- उपधिप्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति?
उपधिप्रत्याख्यानेनापरिमंथ जनयति।
निरुपधिको जीवो निराकांक्ष।
उपधिमन्तरेण च न संक्लिश्यते ॥३४॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! उवहि पच्चक्खाणेण-उपधि प्रत्याख्यान से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

उवहि पच्चक्खाणेण-उपधि का प्रत्याख्यान करने से, अपलिमंथ-स्वाध्याय मे निर्विघ्नता, जणयइ-उत्पन्न होती है, णिरुवहिए-निरुपाधिक (उपधि रहित), जीवे-जीव, णिक्कंखी-निष्कांक्ष-आकांक्षा से रहित हुआ, य-और, उवहिमंतरेण-उपधि के बिना, ण संकिलिस्सइ-क्लेश को प्राप्त नहीं होता।

भावानुवाद-हे भंते! उपधि-उपकरण के प्रत्याख्यान से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

उपधि के प्रत्याख्यान से जीव अपलिमन्थता-स्वाध्याय मे निर्विघ्नता को प्राप्त होता है। उपधि रहित जीव आकांक्षा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है।

35 आहार प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- आहारपच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ?
आहारपच्चक्खाणेण जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदइ।
जीवियासंसप्पओगं वोच्छिंदित्ता जीवे
आहारमंतरेण ण संकिलिस्सइ ॥३५॥

संस्कृत छाया- आहारप्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति?
आहारप्रत्याख्यानेन जीविताशंसाप्रयोगं व्यवच्छिनत्ति।
जीविताशंसाप्रयोगं व्यवच्छिद्य जीव आहारमंतरेण
न संक्लिश्यते ॥३५॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, आहार पच्चक्खाणेण-आहार का प्रत्याख्यान करने से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

आहार-आहार के, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान से, जीवियाससप्पओगे-जीविताशसाप्रयोग (जीने की लालसा), वोच्छिदइ-व्यवच्छेद (छूट) जाती है, जीवियाससप्पओग-जीने की लालसा, वोच्छिदित्ता-छूट जाने से, जीवे जीव, आहार मतरेण-आहार के बिना, ण सकिलिस्सइ-सक्लेश का प्राप्त नहीं होता।

भावानुवाद-हे भन्ते! आहार के प्रत्याख्यान से जीव को क्या लाभ होता है?

आहार का त्याग कर देने से जीव जीने की लालसा त्याग देता है। जीने की कामना के प्रयासों को छोड कर वह आहार के अभाव मे भी सक्लेश को प्राप्त नहीं होता है।

36 कषाय प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान •

मूल सूत्र- कसायपच्चक्खाणेण भते! जीवे किं जणयइ?
कसायपच्चक्खाणेण वीयरागभाव जणयइ।
वीयरागभावपडिवण्णेवि य ण जीवे समसुहदुक्खे भवइ॥३६॥

सस्कृत छाया- कषायप्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति?
कषायप्रत्याख्यानेन वीतरागभाव जनयति।
वीतरागभाव प्रतिपन्नोपि जीव
समसुखदु खो भवति॥३६॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, कसाय पच्चक्खाणेण-कषाय का त्याग करने से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

कसाय-कषाय का, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान करने से, वीयरागभाव-वीतराग भाव, जणयइ-उत्पन्न होता है य-और, वीयराग-वीतराग, भाव-भाव को, पडिवण्णेवि-प्राप्त हुआ, जीवे-जीव, समसुहदुक्खे-सुख-दु ख मे समभाव रखने वाला, भवइ-होता है।

भावानुवाद- हे भन्ते! कषाय प्रत्याख्यान से जीव को क्या लाभ होता है?

कषाय प्रत्याख्यान से वीतराग भाव की प्राप्ति होती है। वीतराग भाव को प्राप्त जीव सुख-दु ख के प्रति समभावी हो जाता है।

37 योग प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- जोगपच्चक्खाणेण भते! जीवे कि जणयइ?
जोगपच्चक्खाणेण अजोगत जणयइ। अजोगी ण जीवे णव
कम्म ण बधइ, पुव्वबद्ध च णिज्जरेइ॥३७॥

सस्कृत छाया- योगप्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति?
योग प्रत्याख्यानेनायोगित्व जनयति।

अयोगी हि जीवो नव कर्म न बध्नाति
पूर्वबद्ध च निर्जरयति ॥३७॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्, जोग-योग के, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

जोग-योग के, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान (निरोध) से, अजोगत्त-अयोगी अवस्था को, जणयइ-प्राप्त होता है, अजोगी-अयोगी, जीवे-जीव, णव-नवीन, कम्म-कर्मों का, ण बधइ-बध नहीं करता, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! योग के प्रत्याख्यान से जीव को क्या लाभ होता है?

योग के प्रत्याख्यान से मन, वचन, काया के व्यापार के निरुन्धन से अयोगत्व की प्राप्ति होती है। अयोगी जीव नवीन कर्मों का बधन नहीं करता है, पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

38 शरीर प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सरीरपच्चक्खाणेण भते! जीवे किं जणयइ?
सरीरपच्चक्खाणेण सिद्धाइसयगुणत्तण णिव्वत्तेइ
सिद्धाइसयगुणसपण्णे य ण जीवे
लोगग्गमुवगए परमसुही भवइ ॥३८॥

सस्कृत छाया- शरीरप्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव कि जनयति?
शरीरप्रत्याख्यानेन सिद्धातिशयगुणकीर्तन निर्वर्तयति।
सिद्धातिशय गुणसम्पन्नो जीवो
लोकाग्रभावमुपगत परमसुखी भवति ॥३८॥

अन्वयार्थ-भते-हे भते!, सरीर पच्चक्खाणेण-शरीर के प्रत्याख्यान से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-प्राप्त करता है?

सरीर पच्चक्खाणेण-शरीर के प्रत्याख्यान से, सिद्धाइसय गुणत्तण-सिद्धो के अतिशयगुण, णिव्वत्तेइ-प्रकट होते हैं, य-और, सिद्धाइसयगुण सपण्णे-सिद्धो के अतिशयगुण सपन्न, जीवे-जीव, लोगग्ग-लोकाग्र मे, उवगए-गया हुआ जीव, परमसुही-परम सुखी, भवइ-हो जाता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! शरीर के प्रत्याख्यान से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

शरीर के प्रत्याख्यान-त्याग से जीव सिद्धो के विशिष्ट गुणा को प्राप्त होता है। सिद्धो के अतिशय गुणो से सम्पन्न जीव लोकाग्र मे जाकर परम सुखी हो जाता है।

39 सहाय प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सहायपच्चक्खाणेण भते! जीवे किं जणयइ?
सहायपच्चक्खाणेण एगीभाव जणयइ।

एगीभावभूए वि य णं जीवे एगत्त भावेमाणे
अप्पसद्दे, अप्पझंझे, अप्पकलहे, अप्पकसाए,
अप्पतुमंतुमे, संजमबहुले, संवरबहुले,
समाहिए बहुले समाहिए यावि भवइ॥३९॥

संस्कृत छाया- सहायप्रत्याख्यानेन भदन्त। जीव किं जनयति?
सहाय प्रत्याख्यानेनैकीभाव जनयति।
एकीभाव भूतोऽपि च जीव एकत्व भाव
यन्नल्पशब्दोऽल्पझञ्झोऽल्पकलहोऽल्प
कषायोऽल्पत्वत्व संयमबहुल संवरबहुल
समाधिबहुल समाहितश्चापि भवति॥३९॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! सहाय-सहायता के, पच्चक्खाणेण-प्रत्याख्यान से, जीवे-जीव, कि-क्या (प्रश्न) जणयइ-उत्पन्न करता है?

सहाय पच्चक्खाणेण-सहायता के प्रत्याख्यान से, एगीभाव-एकत्व भाव, जणयइ-प्राप्त होता है, य-और एगीभाव-भूएवि-एकत्व भाव को प्राप्त, जीवे-जीव, य-और, एगत्त-एकाग्रता की, भावेमाणे-भावना करता हुआ, अप्पसद्दे-शब्द रहित, अप्पझंझे-वचन-कलह से रहित, अप्पकलहे-क्लेश-कलह से रहित, अप्पकसाए कषाय रहित, अप्प तुम तुमे-तू-तू मैं-मैं रहित होकर, संजम बहुले-संयम बहुल (प्रधान संयमवान्), संवर बहुले-विशिष्ट संवरवान्, यावि-और, समाहिए-समाधियत, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सहाय-प्रत्याख्यान-अन्य मुनियों से सहयोग लेने के त्याग से जीव को क्या लाभ होता है?

सहाय-प्रत्याख्यान से जीव एकत्व भाव को प्राप्त होता है, एकत्व भाव को प्राप्त जीव एकाग्रता की भावना करता हुआ अल्पशब्द-वचन कलह से मुक्त, अल्पकलही, अल्पकषायी, तू-तू, मैं-मैं के भाव से रहित होता है। संयम और संवर में बहुलता-व्यापकता लिए हुए समाधिवन्त होता है।

40 भक्त-प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- भत्तपच्चक्खाणेण भंते! जीवे किं जणयइ?
भत्तपच्चक्खाणेण अणेगाइं भवसयाइं णिरुंभइ॥४०॥

संस्कृत छाया- भक्तप्रत्याख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति?
भक्त प्रत्याख्यानेनानेकानि भवशतानि निरुणद्धि॥४०॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, भत्तपच्चक्खाणेण-भक्त (आहार) का त्याग करने से, जीवे-जीव, किं-क्या (प्रश्न) जणयइ-उत्पन्न करता है?

भत्त पच्चक्खाणेणं-भक्त (आहार) का त्याग करने से, अणेगाइं-अनेक, भवसयाइं-सैकड़ों भवों का, णिरुंभइ निरोध कर देता है (अल्पसंसारी हो जाता है)।

भावानुवाद-हे भदन्त! भक्त प्रत्याख्यान-आमरण आहार त्याग अर्थात् संथारा करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति

होती है?

भक्त प्रत्याख्यान से जीव अनेक सैकडो भवो का निरोध कर देता है, जन्म-मरणो का निरोध कर अल्प ससारी बन जाता है।

41 सद्भाव प्रत्याख्यान जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- **सब्भावपच्चक्खाणेण भते! जीवे किं जणयइ? सब्भावपच्चक्खाणेण अणियट्टिं जणयइ। अणियट्टिंपडिवण्णे य अणगारे चत्तारि केवलि कम्मसे खवेइ। त जहा वेयणिज्ज, आउय, णाम, गोय। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिणिव्वायइ सव्वदुक्खाणमत करेइ॥41॥**

सस्कृत छाया- **सद्भावप्रत्यख्यानेन भदन्त! जीव किं जनयति? सद्भावप्रत्याख्यानेनानिर्वृत्ति जनयति अनिर्वृत्ति प्रतिपन्नश्चानगारश्च-त्वारि केवली कर्मांशान् क्षपयति तद्यथा वेदनीयमायु नाम गोत्र तत्पश्चात्सिध्यति बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति, सर्वदु खानामन्त करोति॥४१॥**

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, सब्भाव-पच्चक्खाणेण-सद्भाव प्रत्याख्यान से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

सब्भाव-पच्चक्खाणेण-सद्भाव प्रत्याख्यान से (जीव), अणियट्टिं-अनिवृत्ति करण को, जणयइ-प्राप्त होता है, य-और, अणियट्टिं-अनिवृत्ति करण को, पडिवण्णे-प्राप्त हुआ, अणगारे-अनगार, चत्तारि-चार, केवलि कम्मसे-केवलि कर्मांशा को, खवेइ-क्षय करता है, तजहा-यथा, वेयणिज्ज-वेदनीय, आउय-आयुष्य, णाम-नाम (और), गोय-गोत्र, तओ-इसके, पच्छा-बाद, सिज्झइ-सिद्ध हो जाता है, बुज्झइ-बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ-(कर्मों से) मुक्त हो जाता है, परिणिव्वायइ-शीतलीभूत होकर, सव्व-सर्व, दुक्खाण-दु खो का, अत-अन्त, करेइ-कर देता है।

भावानुवाद-हे भन्ते! सद्भाव प्रत्याख्यान-प्रवृत्तिमात्र का त्याग करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

सद्भाव प्रत्याख्यान-सर्व सवर रूप शैलेपी भाव से जीव अनिवृत्तिकरण (शुक्ल ध्यान के चतुर्थ भेद) को प्राप्त होता है। अनिवृत्तिकरण को प्राप्त अणगार वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार केवली कर्म शेष बचे अघाति कर्मो का क्षय करता है तदन्तर वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सर्व दु खो का अन्त करता है।

42 प्रतिरूपता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- **पडिरूवयाए ण भते! जीवे किं जणयइ। पडिरूवयाए ण लाघविय जणयइ। लघुभूए ण जीवे**

अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते, सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाणभूयजीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे, अप्पडिलेहे, जिइंदिए, विउल तव समिइ समण्णागए यावि भवइ॥४२॥

संस्कृत छाया- प्रतिरूपतया भदन्त! जीव किं जनयति? प्रतिरूपतया लाघविकता जनयति। लघुभूतस्य जीवोऽप्रमत्त प्रकटलिंग प्रशस्तलिंगो विशुद्धसम्यक्त्व सत्यसमिति समाप्त सर्वप्राणभूत जीवसत्त्वेषु विश्वसनीय रूपोऽल्प प्रतिलेख्य जितेन्द्रयो विपुलतप समितिसमन्वागतश्चापि भवति॥४२॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! पडिरूवयाएणं-प्रतिरूपता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है। पडिरूवयाएणं-प्रतिरूपता से, लाघवियं-लघुता (हल्कापन) को, जणयइ-प्राप्त होता है, लहुभूएणं-लघुभूत बना हुआ, जीवे-जीव, अप्पमत्ते-अप्रमादी होता है, पागडलिंगे-प्रकटलिंग (और) पसत्थलिंगे-प्रशस्तलिंग होकर, विसुद्ध सम्मत्ते-विशुद्ध सम्यक्त्वी होता है, सत्त-सत्य, समिइ-समिति से, समत्ते-प्रतिपूर्ण होकर, सव्व-सभी, पाण-प्राणी, भूय-भूत, जीव-जीव, सत्तेसु-सत्वों मे, वीससणिज्ज-रूवे-विश्वसनीय रूप वाला, अप्पडिलेहे-अल्प प्रतिलेखना वाला, जिइंदिए-जितेन्द्रिय, यावि-और, विउल-विपुल, तव समिइ-तप समिति से, समण्णागए-समन्वित, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! प्रतिरूपता-स्थविरकल्प के विशुद्ध आचार के पालन से जीव को क्या लाभ होता है? प्रतिरूपता से जीव उपकरणों की लघुभूत स्थिति को प्राप्त होता है, लघुता को प्राप्त जीव अप्रमत्त प्रकटलिंग (वेश) वाला, प्रशस्त लिंग वाला-रजोहरण मुख वस्त्रिकादि चिह्नों वाला, विशुद्ध सम्यक्त्वी तथा सत्य समिति से युक्त होकर सभी प्राण, भूत, जीव और सत्वों के लिए विश्वसनीय होता है तथा अल्प उपधि होने से अल्प प्रतिलेखन वाला जितेन्द्रिय, विपुल, तप और समिति युक्त होता है अर्थात् महान् तपस्वी होता है।

43 वैयावृत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वेयावच्चेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
वेयावच्चेणं तित्थयरणामगोत्त कम्मं णिबंधइ॥४३॥

संस्कृत छाया- वैयावृत्त्येन भदन्त! जीव किं जनयति?
वैयावृत्येन तीर्थंकरनामगोत्र कर्म निबध्नाति॥४३॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! वेयावच्चेणं-वैयावृत्य करने से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

वेयावच्चेणं-वैयावृत्य करने से, तित्थयर-तीर्थंकर, णाम-नाम, गोत्त-गोत्र, कम्मं-कर्म का, णिबंधइ-बन्ध करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! वैयावृत्य-गुरु ग्लानादि की सेवा शुश्रूषा से जीव को क्या लाभ होता है?
वैयावृत्य से जीव तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का बन्ध करता है।

44 सर्वगुण सम्पन्नता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सव्वगुणसंपण्णयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
सव्वगुणसंपण्णयाए णं अपुणरावित्तिं जणयइ।
अपुणरावित्तिं पत्तए य णं जीवे।
सारीरमाणसाणं दुक्खाणं णो भागी भवइ ॥44॥

संस्कृत छाया- सर्वगुणसम्पन्नतया भदन्त! जीवः किं जनयति?
सर्वगुण सम्पन्नतयाऽपुनरावृत्तिं जनयति।
अपुनरावृत्तिं प्राप्तश्च जीवः शारीरमानसानां
दुःखानां नो भागी भवति ॥४४॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, सव्वगुण संपण्णयाएणं-सर्व गुण सम्पन्नता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

सव्वगुणसंपण्णयाएणं-सर्वगुण सम्पन्नता से (जीव), अपुणरावित्तिं-अपुनरागमन को, जणयइ-प्राप्त करता है, अपुणरावित्तिं-अपुनरावृत्ति को, पत्तएणं-प्राप्त हुआ, जीवे-जीव, सारीर-शारीरिक, य-और, माणसाणं-मानसिक, दुक्खाणं-दुःखों का, भागी-भागी, णो भवइ-नहीं होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सर्वगुण सम्पन्नता से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है?

सर्वगुण सम्पन्नता से जीव अपुनरावृत्ति-जन्म-मरण से मुक्ति को प्राप्त होता है, अपुनरावृत्ति को प्राप्त जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता है।

45 वीतरागता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वीयरागयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
वीयरागयाए णं णेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य
वोच्छिंदइ मणुण्णामणुण्णेसु सद्दफरिसरूवरसगंधेसु चेव विरज्जइ ॥45॥

संस्कृत छाया- वीतरागतया भदन्त! जीवः किं जनयति?
वीतरागतया स्नेहानुबन्धनानि तृष्णानुबन्धनानि
च व्युच्छिनत्ति मनोज्ञामनोज्ञेषु
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु चैव विरज्यते ॥४५॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, वीयरागयाएणं-वीतरागता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

वीयरागयाएणं-वीतरागता से, णेहाणुबंधणाणि-स्नेह बन्धनों का, य-और, तण्हाणुबंधणाणि-तृष्णा के अनुबंधनों का, वोच्छिंदइ-व्यवच्छेद (विनाश) हो जाता है, मणुण्णामणुण्णेसु-मनोज्ञ और अमनोज्ञ, सद्द-शब्द, फरिस-स्पर्श, रूव-रूप, रस-रस, और गंधेसु-गन्ध में, विरज्जइ-विरक्त हो जाता है।

अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते, सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाणभूयजीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे, अप्पडिलेहे, जिइंदिए, विउल तव समिइ समण्णागए यावि भवइ॥४२॥

संस्कृत छाया- प्रतिरूपतया भदन्त! जीव किं जनयति? प्रतिरूपतया लाघविकता जनयति। लघुभूतस्य जीवोऽप्रमत्त प्रकटलिंग प्रशस्तलिंगो विशुद्धसम्यक्त्व सत्यसमिति समाप्त सर्वप्राणभूत जीवसत्वेषु विश्वसनीय रूपोऽल्प प्रतिलेख्य जितेन्द्रयो विपुलतप समितिसमन्वागतश्चापि भवति॥४२॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! पडिरूवयाएण-प्रतिरूपता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?
पडिरूवयाएण-प्रतिरूपता से, लाघविय-लघुता (हल्कापन) को, जणयइ-प्राप्त होता है, लहुभूएणं-लघुभूत बना हुआ, जीवे-जीव, अप्पमत्ते-अप्रमादी होता है, पागडलिंगे-प्रकटलिंग (और) पसत्थलिंगे-प्रशस्त होकर, विसुद्ध सम्मत्ते-विशुद्ध सम्यक्त्वी होता है, सत्त-सत्य, समिइ-समिति से, समत्ते-प्रतिपूर्ण होकर, सव्व सभी, पाण-प्राणी, भूय-भूत, जीव-जीव, सत्तेसु-सत्वों में, वीससणिज्ज-रूवे-विश्वसनीय रूप वाला, अप्पडिलेहे अल्प प्रतिलेखना वाला, जिइंदिए-जितेन्द्रिय, यावि-और, विउल-विपुल, तव समिइ-तप समिति से, समण्णागए समन्वित, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! प्रतिरूपता-स्थविरकल्प के विशुद्ध आचार के पालन से जीव को क्या लाभ होता है?
प्रतिरूपता से जीव उपकरणों की लघुभूत स्थिति को प्राप्त होता है, लघुता को प्राप्त जीव अप्रमत्त प्रकटलिंग (वे) वाला, प्रशस्त लिंग वाला-रजोहरण मुख वस्त्रिकादि चिह्नों वाला, विशुद्ध सम्यक्त्वी तथा सत्य समिति से युक्त होकर सभी प्राण, भूत, जीव और सत्वों के लिए विश्वसनीय होता है तथा अल्प उपधि होने से अल्प प्रतिलेखन वाला जितेन्द्रिय, विपुल, तप और समिति युक्त होता है अर्थात् महान् तपस्वी होता है।

43 वैयावृत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वेयावच्चेण भंते! जीवे किं जणयइ? वेयावच्चेणं तित्थयरणामगोत्तं कम्मं णिबंधइ॥४३॥

संस्कृत छाया- वैयावृत्येन भदन्त! जीव किं जनयति? वैयावृत्येन तीर्थंकरनामगोत्र कर्म निबध्नाति॥४३॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! वेयावच्चेण-वैयावृत्य करने से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?
वेयावच्चेण-वैयावृत्य करने से, तित्थयर-तीर्थंकर, णाम-नाम, गोत्तं-गोत्र, कम्मं-कर्म का, णिबंधइ-बंध करता है।
भावानुवाद-हे भदन्त! वैयावृत्य-गुरु ग्लानादि की सेवा शुश्रूषा से जीव को क्या लाभ होता है?
वैयावृत्य से जीव तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का बन्ध करता है।

44 सर्वगुण सम्पन्नता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सव्वगुणसपण्णयाए ण भंते। जीवे किं जणयइ?
सव्वगुणसपण्णयाए णं अपुणराविति जणयइ।
अपुणराविति पत्तए य ण जीवे।
सारीरमाणसाण दुक्खाण णो भागी भवइ॥४४॥

संस्कृत छाया- सर्वगुणसम्पन्नतया भदन्त। जीव किं जनयति?
सर्वगुण सम्पन्नतयाऽपुनरावृत्तिं जनयति।
अपुनरावृत्तिं प्राप्तश्च जीव शारीरमानसाना
दु खाना नो भागी भवति॥४४॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, सव्वगुण सपण्णयाएण-सर्व गुण सम्पन्नता से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

सव्वगुणसपण्णयाएण-सर्वगुण सम्पन्नता से (जीव), अपुणराविति-अपुनरागमन को, जणयइ-प्राप्त करता है, अपुणराविति-अपुनरावृति को, पत्तएण-प्राप्त हुआ, जीवे-जीव, सारीर-शारीरिक, य-और, माणसाण-मानसिक, दुक्खाण-दु खो का, भागी-भागी, णो भवइ-नहीं होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! सर्वगुण सम्पन्नता से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है?

सर्वगुण सम्पन्नता से जीव अपुनरावृत्ति-जन्म-मरण से मुक्ति को प्राप्त होता है, अपुनरावृत्ति को प्राप्त जीव शारीरिक और मानसिक दु खो का भागी नहीं होता है।

45 वीतरागता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वीयरागयाए ण भंते। जीवे किं जणयइ?
वीयरागयाए ण णेहाणुबधणाणि तण्हाणुबधणाणि य
वोच्छिदइ मणुण्णामणुण्णेसु सद्दफरिसरूवरसगधेसु चेव विरज्जइ॥४५॥

संस्कृत छाया- वीतरागतया भदन्त। जीव किं जनयति?
वीतरागतया स्नेहानुबन्धनानि तृष्णानुबन्धनानि
च व्युच्छिनत्ति मनोज्ञामनोज्ञेषु
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु चैव विरज्यते॥४५॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, वीयरागयाएण-वीतरागता से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

वीयरागयाएण-वीतरागता से, णेहाणुबधणाणि-स्नेह बन्धनो का, य-और, तण्हाणुबधणाणि-तृष्णा के अनुबधनो का, वोच्छिदइ-व्यवच्छेद (विनाश) हो जाता है, मणुण्णामणुण्णेसु-मनोज्ञ और अमनोज्ञ, सद्द-शब्द, फरिस-स्पर्श, रूव-रूप, रस-रस, और गधेसु-गन्ध में, विरज्जइ-विरक्त हो जाता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! वीतरागता से जीव को क्या लाभ होता है?

वीतरागता से जीव स्नेहानुबन्ध-परिजनों के प्रति राग और तृष्णानुबन्ध का व्यवच्छेद कर देता है, मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द स्पर्श, रस, रूप और गन्ध इन विषयों से विरक्त हो जाता है।

46 क्षमा जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- खंतीए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
खंतीए णं परीसहे जिणेइ ॥४६॥

संस्कृत छाया- क्षान्त्या भदन्त! जीव किं जनयति?
क्षान्त्या परिषहान् जयति ॥४६॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, खंतीएणं-क्षमा करने से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है? खंतीएणं-क्षमा करने से, परीसहे-परीषहों को, जिणेइ-जीत लेता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! क्षमाभाव धारण करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है? क्षमा-क्षान्ति से जीव परीषहों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

47 मुक्ति जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- मुत्तीए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ।
अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं
पुरिसाणं अपत्थणिज्जे भवइ ॥४७॥

संस्कृत छाया- मुक्त्या भदन्त! जीव किं जनयति?
मुक्त्याऽऽकिञ्चन्यं जनयति। अकिञ्चन
श्चजीवोऽर्थलोलानां पुरुषाणामप्रार्थनीयो भवति ॥४७॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, मुत्तीएणं-मुक्ति (निर्लोभता) से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

मुत्तीएणं-निर्लोभता से, अकिंचणं-अकिञ्चन भाव (परिग्रह रहित) को, जणयइ-प्राप्त करता है, य-और अकिंचणे-अकिंचन, जीवे-जीव, अत्थलोलाणं-अर्थ के लोभी, पुरिसाणं-पुरुषों का, अपत्थणिज्जे-अप्रार्थनीय, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! निर्लोभता से जीव को क्या लाभ होता है?

मुक्ति-निर्लोभता से जीव को अकिंचनत्व की प्राप्ति होती है। अकिंचन जीव अर्थ लोलुप व्यक्तियों से अप्रार्थनीय हो जाता है।

48 आर्जवता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- अज्जवयाए ण भंते! जीवे किं जणयइ?
अज्जवयाए ण काउज्जुयय, भावुज्जयय, भासुज्जुयय, अविसवायण जणयइ। अविसवायणसपण्णयाए ण जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥४८॥

सस्कृत छाया- आर्जवेन भदन्त! जीव किं जनयति?
आर्जवेन कायर्जुकता, भावर्जुकता भाषर्जुकता अविसवादन जनयति अविसवादनसम्पन्नतया जीवो धर्मस्याराधको भवति ॥४८॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, अज्जवयाएण-आर्जवता (सरलता) से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

अज्जवयाएण-आर्जवता (सरलता) से, काउज्जुयय-काया की ऋजुता, भावुज्जुयय-भाव की ऋजुता, भासुज्जुयय-भाषा की ऋजुता (और), अविसवायण-अविसवादन भाव को, जणयइ-प्राप्त करता है, अविसवायण-अविसवादन, सपण्णयाएण-सम्पन्नता को प्राप्त, जीवे-जीव, धम्मस्स-धर्म का, आराहए-आराधक, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! आर्जव-ऋजुता से जीव को क्या लाभ होता है?

ऋजुता-सरलता से जीव को काया की सरलता, भाव-मन की सरलता, भाषा की सरलता एव अविसवादन भाव की प्राप्ति होती है। अविसवादन भाव को प्राप्त जीव धर्म का आराधक होता है।

49 मार्दवता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- मद्दवयाए ण भंते! जीवे किं जणयइ?
मद्दवयाए ण अणुस्सियत्त जणयइ। अणुस्सियत्तेण जीवे मिउमद्दव सपण्णे अट्ठ मयट्ठाणाइ णिट्ठावेइ ॥४९॥

सस्कृत छाया- मार्दवेन भदन्त! जीव किं जनयति?
मार्दवेनानुच्छ्रितत्व जनयति। अनुच्छ्रितत्वेन जीवो मृदु मार्दव सपन्नोऽष्टौ मदस्थानानि निष्ठापयति ॥४९॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, मद्दवयाएण-मृदुता (मार्दव) से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

मद्दवयाएण-मृदुता (कोमलता) से, अणुस्सियत्त-अनुच्छ्रितत्व (अनुत्सुकता) का, जणयइ-उपार्जन करता है, अणुस्सियत्तेण-अनुत्सुकता से, जीवे-जीव, मिउ-मृदु, मद्दव-मार्दव से, सपण्णे-सयुक्त होकर, अट्ठ-आठ मयट्ठाणाइ-मदस्थानो का, णिट्ठावेइ-परित्याग करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! मृदुता से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

मृदुता से जीव अनुद्धत भाव को प्राप्त होता है अर्थात् अनुत्सुक अथवा अहकार रहित हो जाता है, आठ मद स्थानों को विनष्ट कर देता है।

50 भावसत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- भावसच्चेण भंते! जीवे किं जणयइ?
भावसच्चेण भावविसोहिं जणयइ। भावविसोहीए वट्टमाणे जीवे अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ। अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग धम्मस्स आराहए भवइ॥५०॥

सस्कृत छाया- भावसत्येन भदन्त! जीव किं जनयति?
भावसत्येन भावविशुद्धिं जनयति। भावविशुद्ध्या वर्तमानो जीवोऽर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याराधनाय अभ्युत्तिष्ठते। अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याराधनाय अभ्युत्थाय परलोकधर्मस्याराधको भवति॥५०॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, भावसच्चेण-भाव सत्य से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

भावसच्चेण-भाव सत्य से, भावविसोहिं-भावविशुद्धि को, जणयइ-प्राप्त करता है, भावविसोहीए-भावविशुद्धि में, वट्टमाणे-प्रवर्तमान, जीवे-जीव, अरहत-अरिहत द्वारा, पण्णत्तस्स-प्ररूपित, धम्मस्स-धर्म की, आराहणयाए-आराधना के लिए, अब्भुट्ठेइ-उद्यत होता है, अरहतपण्णत्तस्स-अरिहत देव द्वारा प्ररूपित, धम्मस्स-धर्म की, आराहणयाए-आराधना के लिए, अब्भुट्ठित्ता-उद्यत होकर, परलोग-परलोक धम्मस्स-धर्म का, आराहए-आराधक, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! भाव सत्य से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

भाव-सत्य से जीव भाव विशुद्धि को प्राप्त होता है, भाव विशुद्धि में वर्तमान जीव अरिहन्त प्रभु द्वारा प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उद्यत होता है। अरिहत प्ररूपित धर्म की आराधना में उद्यत होकर परलोक धर्म का आराधक होता है।

51 करण सत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- करणसच्चेण भंते! जीवे किं जणयइ?
करणसच्चेण [illegible]
करणसच्चे वट्टमाणे जीवे [illegible]

संस्कृत छाया- करण सत्येन भदन्त! जीव किं जनयति?
करण सत्येन करण शक्ति जनयति। करणसत्ये
वर्तमानो जीवो यथावादी तथाकारी चापि भवति ॥५१॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, करणसच्चेण-करण सत्य से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

करणसच्चेण-करण सत्य से, करणसत्ति-करण शक्ति का, जणयइ-उपार्जन करता है, करणसच्चे-करण सत्य मे, वट्टमाणे-प्रवर्त्तमान, जीवे-जीव, जहावाई-जैसा कहता है, तहाकारी-उसी प्रकार वैसा करने वाला, यावि-ही, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! करण सत्य-क्रिया की सत्यता से जीव को क्या लाभ प्राप्त होता है?

करण-सत्य से जीव करण शक्ति-सत्य करने का सामर्थ्य प्राप्त करता है। करण सत्य मे वर्तमान जीव यथावादी तथा-कारी-जैसा कहता है वैसा ही करने वाला होता है।

52 योगसत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- जोगसच्चेण! जीवे किं जणयइ?
जोगसच्चेण जोग विसोहेइ ॥५२॥

संस्कृत छाया- योगसत्येन भदन्त! जीव किं जनयति?
योगसत्येन योगान् विशोधयति ॥५२॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्! जोगसच्चेण-योग सत्य से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

जोगसच्चेण-योग सत्य से, जोगे-योगो की, विसोहेइ-विशुद्धि होती है।

भावानुवाद-हे भन्ते! याग सत्य-मन, वचन और काया के सत्य व्यापार से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है? योग सत्य से योगो की विशुद्धि होती है।

53 मनोगुप्ति जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- मणगुत्तयाए ण भंते! जीवे किं जणयइ?
मणगुत्तयाए ण जीवे एगग्ग जणयइ।
एगग्गचित्तेण जीवे मणगुत्ते सजमाराहए भवइ ॥५३॥

संस्कृत छाया- मनोगुप्त्या भदन्त! जीव किं जनयति?
मनोगुप्त्या जीव एकाग्र्य जनयति।
एकाग्रचित्तेन जीवो मनोगुप्त सयमाराधको भवति ॥५३॥

मद्दवयाएण-मृदुता (कोमलता) से, अणुस्सियत्त-अनुच्छ्रितत्व (अनुत्सुकता) का, जणयइ-उपार्जन करता है, अणुस्सियत्तेण-अनुत्सुकता से, जीवे-जीव, मिउ-मृदु, मद्दव-मार्दव से, सपण्णे-सयुक्त होकर, अट्ठ-आठ, मयट्ठाणाइ-मदस्थानो का, णिट्ठावेइ-परित्याग करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! मृदुता से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

मृदुता से जीव अनुद्धत भाव को प्राप्त होता है अर्थात् अनुत्सुक अथवा अहकार रहित हो जाता है, आठ मद स्थानों को विनष्ट कर देता है।

50 भावसत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- भावसच्चेण भंते! जीवे किं जणयइ?
भावसच्चेण भावविसोहिं जणयइ। भावविसोहीए वट्टमाणे
जीवे अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ।
अरहतपण्णत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग
धम्मस्स आराहए भवइ॥५०॥

सस्कृत छाया- भावसत्येन भदन्त! जीव किं जनयति?
भावसत्येन भावविशुद्धिं जनयति। भावविशुद्ध्या
वर्तमानो जीवोऽर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याराधनाय
अभ्युत्तिष्ठते। अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याराधनाय
अभ्युत्थाय परलोकधर्मस्याराधको भवति॥५०॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, भावसच्चेण-भाव सत्य से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है? भावसच्चेण-भाव सत्य से, भावविसोहिं-भावविशुद्धि को, जणयइ-प्राप्त करता है, भावविसोहीए-भावविशुद्धि में, वट्टमाणे-प्रवर्तमान, जीवे-जीव, अरहत-अरिहत द्वारा, पण्णत्तस्स-प्ररूपित, धम्मस्स-धर्म की, आराहणयाए-आराधना के लिए, अब्भुट्ठेइ-उद्यत होता है, अरहतपण्णत्तस्स-अरिहत देव द्वारा प्ररूपित, धम्मस्स-धर्म का आराहणयाए-आराधना के लिए, अब्भुट्ठित्ता-उद्यत होकर, परलोग-परलोक, धम्मस्स-धर्म का, आराहए-आराधक, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! भाव सत्य से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

भाव-सत्य से जीव भाव विशुद्धि को प्राप्त होता है, भाव विशुद्धि में वर्तमान जीव अरिहन्त प्रभु द्वारा प्ररूपित धर्म का आराधना के लिए उद्यत होता है। अरिहत प्ररूपित धर्म की आराधना में उद्यत होकर परलोक धर्म का आराधक होता है।

51 करण सत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- करणसच्चेण भंते! जीवे किं जणयइ?
करणसच्चेणं करणसत्तिं जणयइ।
करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाई तहाकारी यावि भवइ॥५१॥

संस्कृत छाया- करण सत्येन भदन्त। जीव किं जनयति?
करण सत्येन करण शक्ति जनयति। करणसत्ये
वर्तमानो जीवो यथावादी तथाकारी चापि भवति ॥५१॥

अन्वयार्थ-भत-हे भगवन्!, करणसच्चेण-करण सत्य से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

करणसच्चेण-करण सत्य से, करणसत्ति-करण शक्ति का, जणयइ-उपार्जन करता है, करणसच्चे-करण सत्य मे, वट्टमाणे-प्रवर्तमान, जीवे-जीव, जहावाई-जैसा कहता है, तहाकारी-उसी प्रकार वैसा करने वाला, यावि-ही, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! करण सत्य-क्रिया की सत्यता से जीव को क्या लाभ प्राप्त होता है?

करण-सत्य से जीव करण शक्ति-सत्य करने का सामर्थ्य प्राप्त करता है। करण सत्य मे वर्तमान जीव यथावादी तथा-कारी-जैसा कहता है वैसा ही करने वाला होता है।

52 योगसत्य जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- जोगसच्चेण! जीवे कि जणयइ?
जोगसच्चेण जोगं विसोहेइ ॥५२॥

संस्कृत छाया- योगसत्येन भदन्त! जीव किं जनयति?
योगसत्येन योगान् विशोधयति ॥५२॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्! जोगसच्चेण-योग सत्य से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

जोगसच्चेण-योग सत्य से, जोगे-योगो की, विसोहेइ-विशुद्धि होती है।

भावानुवाद-हे भन्ते! योग सत्य-मन, वचन और काया के सत्य व्यापार से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है? योग सत्य से योगो की विशुद्धि होती है।

53 मनोगुप्ति जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- मणगुत्तयाए ण भंते! जीवे कि जणयइ?
मणगुत्तयाए ण जीवे एगग्गं जणयइ।
एगग्गचित्तेण जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ॥५३॥

संस्कृत छाया- मनोगुप्त्या भदन्त! जीव किं जनयति?
मनोगुप्त्या जीव एकाग्र्य जनयति।
एकाग्रचित्तेन जीवो मनोगुप्त सयमाराधको भवति ॥५३॥

अन्वयार्थ-भंत-हे भगवन्! मणगुत्तयाए-मनोगुप्ति से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

मणगुत्तयाएण-मनोगुप्ति से, जीव-जीव, एगग्ग-एकाग्रता को, जणयइ-प्राप्ति करता है, एगग्ग-एकाग्र, चित्तेणं चित्त वाला, जीवे-जीव, मणगुत्ते-गुप्त मन वाला, संजमाराहए-संयम का आराधक, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! मनोगुप्ति से जीव का क्या लाभ होता है?

मनोगुप्ति से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है, एकाग्र चित्त वाला जीव मन को नियंत्रित करता है और संयम का आराधक होता है।

54 वचन गुप्ति जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वयगुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
वयगुत्तयाए णं णिव्वियारत्तं जणयइ।
णिव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोग साहणजुत्ते यावि विहरइ।।54।।

संस्कृत छाया- वाग्गुप्त्या भदन्त! जीव किं जनयति?
वाग्गुप्त्या निर्विकारत्वं जनयति। निर्विकारो
जीवो वाग्गुप्तोऽध्यात्मयोग साधनयुक्तश्चापि विहरति ॥५४॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, वयगुत्तयाएण-वचन गुप्ति से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

वयगुत्तयाएण-वचन गुप्ति से, णिव्वियारत्त-निर्विकार भाव, जणयइ-उत्पन्न होता है, णिव्वियारेण-निर्विकारी, जीवे-जीव, वइगुत्ते-वचन गुप्त, यावि-और, अज्झप्पजोग-अध्यात्म योगादि के, साहण-साधनों से, जुत्त-युक्त, विहरइ-होता है।

भावानुवाद-हे भन्ते! वचनगुप्ति से जीव को क्या लाभ होता है?

वचन गुप्ति से जीव का निर्विकार भाव की प्राप्ति होती है। निर्विकार जीव वाग्गुप्त होता है तथा आध्यात्म योग के साधन ध्यान योग से युक्त होता है।

55 कायगुप्ति जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- कायगुत्तयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
कायगुत्तयाए संवरं जणयइ। संवरेण कायगुत्ते पुणो
पावासवणिरोहं करेइ।।55।।

संस्कृत छाया- कायगुप्त्या भदन्त! जीव किं जनयति?
कायगुप्त्या संवरं जनयति। संवरेण कायगुप्तः
पुनः पापास्रवनिरोधं करोति ॥५५॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, कायगुत्तयाएण-कायगुप्तता से, जीवे-जीव, [illegible]
करता है?

कायगुत्तयाए-कायगुप्ति से, सवर-सवर को, जणयइ-प्राप्ति होती है, [illegible]
कायगुप्त होकर (जीव), पावासव-पाप आस्रवों का, णिरोह-निरोध, [illegible]

भावानुवाद-हे भगवन्! काय गुप्ति से जीव को क्या लाभ प्राप्त होता है?

काय गुप्ति से जीव सवर-अशुभ प्रवृत्ति के निरोध को प्राप्त होता है। [illegible]
पापास्रव को रोक देता है।

56 मन समाधारणता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- मणसमाहारणयाए णं भंते! जीवे किं [illegible]
मणसमाहारणयाए एगग्ग जणयइ। एगग्गं [illegible]
णाणपज्जवे जणयइ। णाणपज्जवे जण[illegible]
विसोहेइ मिच्छत्त च णिज्जरेइ [illegible]

संस्कृत छाया- मन समाधारणया भदन्त! [illegible]
मन समाधारणतया एकाग्र [illegible]
ज्ञान पर्यवान् जनयति। ज्ञान पर्य[illegible]
विशोधयति मिथ्यात्व च [illegible]

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, मणसमाहारणयाएण-मन [illegible]
उत्पन्न करता है?

मणसमाहारणयाएण-मनसमाधारणता से, एगग्ग-मन [illegible]
होने पर, णाण-ज्ञान की, पज्जवे-पर्यायों की, जणयइ-[illegible]
प्राप्ति होने पर जीव, सम्मत्त-सम्यक्त्व की, विसोहेइ-[illegible]
निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भन्ते! मन समाधारणा-मन को समाधि [illegible]

मन की समाधारणा से जीव को एकाग्रता प्राप्त होती है, [illegible]
है, ज्ञान के पर्यायों को प्राप्त करने के अनतर सम्यग् [illegible]

57 वचन समाधारणता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- वयसमाहारणयाए ण भंते! [illegible]
वयसमाहारणयाए ण [illegible]
वयसाहारणदसणपज्जवे [illegible]
णिव्वोइ, दुल्लह[illegible]

संस्कृत छाया- वाक् समाधारणया भदन्त! जीव किं जनयति? वाक् समाधारणया खलु वाक् साधारण दर्शनपर्यवान् विशोधयति। वाक् साधारणदर्शनपर्यवान् विशोध्य सुलभबोधिकत्व निर्वर्तयति, दुर्लभबोधिकत्व निर्जरयति ॥५७॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, वयसमाहारणयाएण-वचन समाधारणता से, जीवे-जीव को, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न होता है?

वयसमाहारणयाएण-वचन समाधारणता से, वयसाहारण-वचन सम्बन्धी, दसण-दर्शन, पज्जवे-पर्यायों को, विसोहेइ-विशुद्ध करता है, वयसाहारण-वचन सम्बन्धी, दसणपज्जवे-दर्शन पर्यायो को, विसोहित्ता-विशुद्ध करके (जीव), सुलह-सुलभ, बोहियत्त-बोधिपन को, णिव्वत्तेइ-प्राप्त करता है (और), दुल्लह-दुर्लभ, बोहियत्तं बोधिपन को, णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! वचन समाधारणा-वचन को स्वाध्याय आदि में लगाए रखने से जीव को क्या लाभ होता है? वाक् समाधारणा से वचन सम्बन्धी दर्शन पर्याए विशुद्ध होती है। वचन सम्बन्धी दर्शन पर्यायों को विशुद्ध करके जीव सुलभ बोधित्व को प्राप्त कर लेता है, दुर्लभ बोधित्व का क्षय कर देता है।

58 काय समाधारणता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- कायसमाहारणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?
कायसमाहारणयाए चरित्तपज्जवे विसोहेइ।
चरित्तपज्जवे विसोहित्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ
अहक्खायचरित्तं विसोहित्ता चत्तारि केवलि कम्मंसे
खवेइ। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ,
परिणिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥५८॥

संस्कृत छाया- कायसमाधारणया भदन्त! जीवः किं जनयति?
कायसमाधारणया चारित्रपर्यवान्विशोधयति।
चारित्रपर्यवान्विशोध्य यथाख्यातचारित्रं
विशोधयति। यथाख्यातचारित्र विशोध्य चतुरः
कर्मांशान् क्षपयति। तत पश्चात्सिध्यति, बुध्यते,
मुच्यते, परिनिर्वाति, सर्वदु:खानामन्त करोति ॥५८॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, कायसमाहारणयाएणं-काय समाधारणता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

कायसमाहारणयाएणं-कायसमाधारणा से (जीव), चरित्त-चरित्र की, पज्जवे-पर्यायों को, विसोहेइ विशुद्ध करता है, चरित्त पज्जवे-चारित्र की पर्यायों को, विसोहित्ता-विशुद्ध करके, अहक्खाय-यथाख्यात, चरित्तं-चरित्र

को, विसोहइ-विशुद्ध करता है, अहक्खाय चरित्त-यथाख्यात चारित्र को, विसोहित्ता-विशुद्ध करके, चत्तारि-चार, केवलिकम्मसे-केवलि कर्मांश को, खवेइ-क्षय करता है, तओ-इसके, पच्छा-बाद, सिज्झइ-सिद्ध हो जाता है, बुज्झइ-बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ-(कर्मों से) मुक्त हो जाता है, परिणिव्वायइ-शीतली भूत होता है, सव्वदुक्खाण-सर्व दु खो का, अत-अन्त, करेइ-कर देता है।

भावानुवाद-हे भन्ते! कायसमाधारणा-सयम मार्ग मे काया को स्थिर रखने से जीव को क्या लाभ होता है?

कायसमाधारणा से जीव चारित्र के पर्यवो को-उसकी विविध अवस्थाओ को विशुद्ध करता है। चारित्र पर्यायो को विशुद्ध करके यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करता है, यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करके केवली कर्म अर्थात् वेदनीय आदि अघाति कर्मों को क्षय करके सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, सम्पूर्ण दु खो का अन्त कर देता है।

59 ज्ञान सम्पन्नता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- णाणसपण्णयाए ण भते! जीवे कि जणयइ? णाणसपण्णयाएण जीवे सव्वभावाहिगम जणयइ। णाणसपण्णे ण जीवे चाउरते ससारकतारे ण विणस्सइ। जहा सूई ससुत्ता पडियावि ण विणस्सइ, तहा जीवे ससुत्ते ससारे ण विणस्सइ। णाण विणय तव चरित्त जोगे सपाउणइ, ससमयपरसमयविसारए य असघायणिज्जे भवइ॥५९॥

सस्कृत छाया- ज्ञानसम्पन्नतया भदन्त! जीव कि जनयति? ज्ञान सम्पन्नतया जीव सर्वभावाभिगम जनयति। ज्ञानसम्पन्नो जीवश्चातुरन्ते ससारकान्तारे न विनश्यति। यथा सूची ससूत्रा पतिताऽपि न विनश्यति, तथा जीव ससूत्र ससारे न विनश्यति। ज्ञानविनय तप चारित्र योगान् सप्राप्नोति स्वसमय पर विशारदश्चासघातनीयो भवति॥५९॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, णाणसपण्णयाएण-ज्ञान सम्पन्नता से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

णाणसपण्णयाए-ज्ञान सम्पन्नता से, सव्व-सभी, भावाहिगम-भावों का अभिगम (बोध), जणयइ-उत्पन्न होता है, णाणसपण्णे-ज्ञान सम्पन्न, जीवे-जीव, चाउरते-चतुर्गति रूप, ससारकतारे-ससार कान्तार (अटवी) मे, ण विणस्सइ-विनाश को प्राप्त नहीं होता, जहा-जिस प्रकार, ससुत्ता-डोरे सहित, सुइ-सुई, पडिया-(कूडे कचरे मे) गिर जाने पर, वि-भी, ण विणस्सइ-विनाश को प्राप्त (गुम) नहीं होती, तहा-वैसे ही, ससुत्ते-सश्रुत (श्रुतज्ञानी), जीवे-जीव, ससारे-ससार में, ण विणस्सइ-नहीं भटकता है (किन्तु), णाण-ज्ञान, विणय-विनय,

तव-तप (और), चरित्त-चारित्र के, जोगे-योग को, सपाउणइ-प्राप्त करता है, ससमय-स्वसमय (स्वमत) व और, परसमय-परमत का, विसारए-विशारद (ज्ञाता) होकर, असंघायणिज्जे-असंघातनीय (माननीय पुरुष), भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भन्ते! ज्ञान सम्पन्नता से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

ज्ञान सम्पन्नता से जीव सब भावों-पदार्थों का ज्ञाता होता है, ज्ञान सम्पन्न जीव चतुर्गति रूप ससार अटवी में नष्ट नहीं होता है, भटकता नहीं है।

जिस प्रकार ससूत्र-धागे से युक्त सुई कहीं गिर भी जाए तो विनष्ट या गुम नहीं होती है उसी प्रकार ससूत्र-श्रुतज्ञान सम्पन्न जीव भी ससार मे विनष्ट नहीं होता है। वह ज्ञान, विनय, तप और चारित्र के योगों को प्राप्त करता है। स्व समय और पर समय मे सघातनीय-माननीय या प्रामाणिक होता है।

60 दर्शन सम्पन्नता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- दसणसपण्णयाए ण भंते! जीवे किं जणयइ?
दसणसपण्णयाए ण भवमिच्छत्तछेयण करेइ, पर ण विज्झायइ।
पर अविज्झायमाणे अणुत्तरेण णाणदसणेण अप्पाण
सजोएमाणे सम्म भावेमाणे विहरइ॥६०॥

संस्कृत छाया- दर्शनसम्पन्नतया भदन्त! जीव किं जनयति?
दर्शन सम्पन्नतया भवमिथ्यात्वच्छेदन करोति। पर न
विध्यापयति परमविध्यापयन्ननुत्तरेण ज्ञानदर्शनेनात्मान
सयोजयन् सम्यग् भावयन् विहरति॥६०॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, दंसण सपण्णयाएणं-दर्शन सम्पन्नता से, जीव-जीव, किं-क्या (लाभ) उत्पन्न करता है?

दंसणसपण्णयाएण-दर्शनसम्पन्नता से (जीव), भव-भवभ्रमण के (कारण), मिच्छत्त-मिथ्यात्व का, छेयणं-छेदन (नाश), करेइ-कर देता है, परं-आगामी काल में, ण विज्झायइ-(ज्ञान के प्रकाश का) अभाव नहीं होता, पर-आगामी काल में अविज्झाएमाणे-प्रकाश के विद्यमान होने से, अणुत्तरेणं-अनुत्तर प्रधान, णाण-ज्ञान दंसणेणं-दर्शन से, अप्पाणं-अपनी आत्मा का, संजोएमाणे-सयुक्त करता हुआ (और), सम्मं-सम्यक् प्रकार से भावमाणे-भावना करता हुआ, विहरइ-विचरता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! दर्शन सम्पन्नता से जीव को क्या लाभ होता है?

दर्शन सम्पन्नता से जीव ससार के मूल हेतु मिथ्यात्व का छेदन करता है, फिर भविष्य में सम्यक्त्व का प्रकाश बुझता नहीं है अनन्तर उस सम्यक्त्व के प्रकाश से युक्त होता है जीव अनुत्तर-सर्वोत्तम ज्ञान दर्शन से आत्मा को संयोजित करता हुआ तथा आत्मा को सम्यक् रूप से भावित करता हुआ विचरण करता है।

61 चारित्र सम्पन्नता जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- चरित्तसपण्णयाए ण भंते! जीवे किं जणयइ?
चरित्तसपण्णयाए ण सेलेसीभाव जणयइ। सेलेसिं पडिवण्णे
अणगारे चत्तारि केवलि कम्मसे खवेइ। तओ पच्छा सिज्झइ,
बुज्झइ, मुच्चइ, परिणिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमत करेइ ॥६१॥

संस्कृत छाया- चारित्रसम्पन्नतया भदन्त! जीव किं जनयति?
चारित्रसम्पन्नतया शैलेशीभाव जनयति। शैलेशीं
प्रतिपन्नश्चाऽनगार चतुर कर्मांशान् क्षपयति। तत
पश्चात्सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति
सर्वदु खानामन्त करोति ॥६१॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, चरित्तसपण्णयाएण-चारित्र सम्पन्नता से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

चरित्त सपण्णयाएण-चारित्र सम्पन्नता से, सेलेसीभाव-शैलेशी अवस्था को, जणयइ-प्राप्त करता है, य-और, सेलेसिं-शैलेशी अवस्था को, पडिवण्णे-प्राप्त हुआ, अणगारे-अनगार, चत्तारि-चार, केवलिकम्मसे-केवलिकर्मांश का, खवेइ-क्षय कर देता है, तओ-इसके, पच्छा-बाद, सिज्झइ-सिद्ध हो जाता है, बुज्झइ-बुद्ध हो जाता है, मुच्चइ-(कर्मों से) मुक्त हो जाता है, परिणिव्वायइ-शीतली भूत हो जाता है (और), सव्वदुक्खाण-सभी दु खों का, अत-अन्त, करेइ-कर देता है।

भावानुवाद-हे भन्ते! चारित्र सम्पन्नता से जीव को क्या लाभ होता है?

चारित्र सम्पन्नता से जीव शैलेशी भाव अर्थात् मेरु पर्वत के समान सर्वथा अकप स्थिरता सर्वयोग निरोध अवस्था को प्राप्त होता है। शैलशी भाव को प्राप्त अनगार चार अघाति कर्मों का क्षय करता है, तत्पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है व परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और समस्त दु खों का अन्त करता है।

62 श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- सोइदियणिग्गहेण भंते! जीवे किं जणयइ?
सोइदियणिग्गहेण मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु
रागदोसणिग्गह जणयइ।
तप्पच्चइय कम्म ण बधइ
पुव्वबद्ध च णिज्जरेइ ॥६२॥

संस्कृत छाया- श्रोत्रेन्द्रियनिग्रहेण भदन्त! जीव किं जनयति?
श्रोत्रेन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु शब्देषु

रागद्वेषनिग्रह जनयति। तत्प्रत्यय (रागद्वेषोत्पन्न)
कर्म न बध्नाति। पूर्वबद्ध च निर्जरयति ॥६२॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, सोइंदिय णिग्गहेण-श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ उत्पन्न करता है?

सोइंदियणिग्गहेण-श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से, मणुण्णा-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, सद्देसु-शब्दों में रागदोस-रागद्वेष का, णिग्गह-निग्रह, जणयइ-उत्पन्न होता है, च-और, तप्पच्चइयं-तन्निमित्तक, कम्म कर्म का, ण बधइ-बंध नहीं करता, च-और, पुव्वबद्धं-पहले बंधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा कर देता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है और तत्प्रत्ययिक तन्निमित्तक कर्म का बन्ध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

63 चक्षुरिन्द्रिय निग्रह जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- चक्खुदियणिग्गहेण भंते! जीवे किं जणयइ?
चक्खुंदियणिग्गहेण मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु
रागदोसणिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं ण बंधइ
पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ॥६३॥

संस्कृत छाया- चक्षुरिन्द्रियनिग्रहेण भदन्त! जीव किं जनयति?
चक्षुरिन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु रूपेषु रागद्वेष
निग्रह जनयति। तत्प्रत्यय कर्म न बध्नाति।
पूर्वबद्ध च निर्जरयति॥६३॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! चक्खुदिय-चक्षुइन्द्रिय के, णिग्गहेणं-निग्रह से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ) जणयइ-उत्पन्न करता है?

चक्खुदिय-चक्षुइन्द्रिय के, णिग्गहेणं-निग्रह से, मणुण्ण-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, रूवेसु-रूपों में, रागदोस-राग द्वेष का, णिग्गहं-निग्रह, जणयइ-उत्पन्न होता है, च-और, तप्पच्चइयं-तन्निमित्तक, कम्म कर्मों का, ण बंधइ-बन्ध नहीं होता, च-और, पुव्वबद्धं-पूर्व बंधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्त! चक्षु इन्द्रिय के निग्रह से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

चक्षुरिन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है और तन्निमित्तक कर्म का बंधन नहीं करता है। पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

64 घ्राणेन्द्रिय निग्रह जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- घाणिंदियणिग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
घाणिंदियणिग्गहेण मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु

रागदोसणिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं ण बंधइ।
पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६४॥

संस्कृत छाया- घ्राणेन्द्रियनिग्रहेण भदन्त! जीवः किं जनयति?
घ्राणेन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु गन्धेषु रागद्वेषनिग्रहं जनयति तत्प्रत्ययं कर्म न बध्नाति पूर्वं बद्धं च निर्जरयति ॥६४॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, घाणिंदिय-घ्राणेन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

घाणिंदिय-घ्राणेन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, मणुण्ण-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, गंधेसु-गन्धों में, रागदोस-रागद्वेष का, णिग्गह-निग्रह, जणयइ-उत्पन्न होता है, च-और, तप्पच्चइय-तन्निमित्तक, कम्म-कर्मों का, ण बंधइ-बन्ध नहीं करता, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बांधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! घ्राणेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

घ्राणेन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्धों के प्रति होने वाले राग एवं द्वेष का निग्रह करता है, घ्राण-गन्ध निमित्तक कर्म का बन्ध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

65 रसनेन्द्रिय निग्रह जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- जिब्भिंदियणिग्गहेण भंते! जीवे किं जणयइ?
जिब्भिंदियणिग्गहेणं मणुण्णामणुण्णेसु रसेसु राग दोसणिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं ण बंधइ पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६५॥

संस्कृत छाया- जिह्वेन्द्रियनिग्रहेण भदन्त! जीवः किं जनयति?
जिह्वेन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु रसेषु रागद्वेषनिग्रहं जनयति। तत्प्रत्ययं कर्म न बध्नाति। पूर्वबद्धं च निर्जरयति ॥६५॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! जिब्भिंदिय-जिह्वाइन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

जिब्भिंदिय-जिह्वा इन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, मणुण्ण-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, रसेसु-रसों में, रागदोस-रागद्वेष का, णिग्गह-निग्रह, जणयइ-करता है, च-और, तप्पच्चइय-तन्निमित्तक, कम्म-कर्मों का, ण बंधइ-बंध नहीं करता है, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बांधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! जिह्वा इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या लाभ होता है?

रागद्वेषनिग्रहं जनयति। तत्प्रत्ययं (रागद्वेषोत्पन्न)
कर्म न बध्नाति। पूर्वबद्धं च निर्जरयति ॥६२॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, सोइंदिय णिग्गहेण-श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

सोइंदियणिग्गहेण-श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से, मणुण्ण-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, सद्देसु-शब्दों में रागदोस-रागद्वेष का, णिग्गह-निग्रह, जणयइ-उत्पन्न होता है, च-और, तप्पच्चइयं-तन्निमित्तक, कम्मं-कर्म का, ण बंधइ-बंध नहीं करता, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बंधे हुए (कर्मों को), णिज्जरेइ-निर्जरा कर देता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है और फिर तत्प्रत्ययिक तन्निमित्तक कर्म का बन्ध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

63 चक्षुरिन्द्रिय निग्रह . जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- चक्खुदियणिग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
चक्खुदियणिग्गहेण मणुण्णामणुण्णेसु रुवेसु
रागदोसणिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं कम्मं ण बंधइ
पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ ॥६३॥

संस्कृत छाया- चक्षुरिन्द्रियनिग्रहेण भदन्त! जीवः किं जनयति?
चक्षुरिन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु रूपेषु रागद्वेष
निग्रहं जनयति। तत्प्रत्ययं कर्म न बध्नाति।
पूर्वबद्धं च निर्जरयति ॥६३॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! चक्खुदिय-चक्षुइन्द्रिय के, णिग्गहणं-निग्रह से, जीव-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

चक्खुदिय-चक्षुइन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, मणुण्ण-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, रुवेसु-रूपों में रागदोस-राग द्वेष का, णिग्गहं-निग्रह, जणयइ-उत्पन्न होता है, च-और, तप्पच्चइयं-तन्निमित्तक, कम्मं-कर्मों का, ण बंधइ-बन्ध नहीं होता च-और, पुव्वबद्धं-पूर्व बंधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! चक्षु इन्द्रिय के निग्रह से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

चक्षुरिन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है और तन्निमित्तक कर्म का बंधन नहीं करता है। पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

64 घ्राणेन्द्रिय निग्रह जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- घाणिंदियणिग्गहेण भंते! जीवे किं जणयइ?
घाणिंदियणिग्गहेण मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु

रागदोसणिग्गह जणयइ। तप्पच्चइय कम्म ण बधइ।
पुव्वबद्ध च णिज्जरेइ ॥६४॥

संस्कृत छाया- घ्राणेन्द्रियनिग्रहेण भदन्त! जीव कि जनयति? घ्राणेन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु गन्धेषु रागद्वेषनिग्रह जनयति तत्प्रत्यय कर्म न बध्नाति पूर्व बद्ध च निर्जरयति ॥६४॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्!, घाणिदिय-घ्राणेन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

घाणिदिय-घ्राणेन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, मणुण्ण-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, गधेसु-गन्धो मे, रागदोस-रागद्वेष का, णिग्गह-निग्रह, जणयइ-उत्पन्न होता है, च-और, तप्पच्चइय-तन्निमित्तक, कम्म-कर्मो का, ण बधइ-बन्ध नहीं करता, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बाधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त। घ्राणेन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

घ्राणेन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्धो के प्रति होने वाले राग एव द्वेष का निग्रह करता है, घ्राण-गन्ध निमित्तक कर्म का बन्ध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

65 रसनेन्द्रिय निग्रह जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- जिब्भिदियणिग्गहेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
जिब्भिदियणिग्गहेण मणुण्णामणुण्णेसु रसेसु
राग दोसणिग्गह जणयइ। तप्पच्चइय कम्म ण बंधइ
पुव्वबद्ध च णिज्जरेइ ॥६५॥

संस्कृत छाया- जिह्वेन्द्रियनिग्रहेण भदन्त! जीव कि जनयति? जिह्वेन्द्रियनिग्रहेण मनोज्ञामनोज्ञेषु रसेषु रागद्वेषनिग्रह जनयति। तत्प्रत्यय कर्म न बध्नाति। पूर्वबद्ध च निर्जरयति ॥६५॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्! जिब्भिदिय-जिह्वाइन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

जिब्भिदिय-जिह्वा इन्द्रिय के, णिग्गहेण-निग्रह से, मणुण्ण-मनोज्ञ (और), अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ, रसेसु-रसो में, रागदोस-रागद्वेष का, णिग्गह-निग्रह, जणयइ-करता है, च-और, तप्पच्चइय-तन्निमित्तक, कम्म-कर्मों का, ण बधइ-बध नहीं करता है, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बाधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! जिह्वा इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या लाभ होता है?

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्! माया-माया को, विजएण-जीतने से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

माया-माया को, विजएण-जीतने से, अज्जव-आर्जव (सरलता गुण) की, जणयइ-प्राप्ति होती है (और), माया वेयणिज्जं-माया वेदनीय, कम्म-कर्मों का, ण बंधइ-बंध नहीं करता, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बंधे हुए (कर्मों की), णिज्जरेइ-निर्जरा कर देता है।

भावानुवाद-हे भगवन्! माया विजय से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

माया विजय से जीव ऋजुता को प्राप्त होता है, माया वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

70 लोभ विजय जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- लोभविजएण भंते! जीवे किं जणयइ?
लोभविजएण संतोसं जणयइ।
लोभवेयणिज्जं कम्मं ण बंधइ पुव्वबद्धं च णिज्जरेइ॥70॥

संस्कृत छाया- लोभविजयेन भदन्त! जीवः किं जनयति?
लोभविजयेन सन्तोषं जनयति।
लोभवेदनीयं कर्म न बध्नाति।
पूर्वबद्धं च निर्जरयति॥70॥

अन्वयार्थ-भंते-हे भगवन्!, लोभ-लोभ को, विजएणं-जीतने से, जीवे-जीव, किं-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

लोभ-लोभ को, विजएणं-जीतने से, संतोसं-सन्तोष गुण की, जणयइ-प्राप्ति होती है (और), लोभ वेयणिज्जं-लोभ वेदनीय, कम्मं-कर्मों का, ण बंधइ-बन्ध नहीं करता, च-और, पुव्वबद्ध-पहले बांधे हुए (कर्मों की) णिज्जरेइ-निर्जरा करता है।

भावानुवाद-हे भन्ते! लोभ-विजय से जीव को क्या लाभ होता है?

लोभ विजय से जीव सन्तोष भाव को प्राप्त होता है, लोभ वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

71 प्रेम-द्वेष-मिथ्यादर्शन विजय जिज्ञासा-समाधान

मूल सूत्र- पिज्जदोसमिच्छादंसणविजएण भंते! जीवे किं जणयइ?
पिज्जदोसमिच्छादंसणविजएण णाणदंसणचरित्ताराहणयाए
अब्भुट्ठेइ। अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगंठिविमोयणयाए
तप्पढमयाए जहाणुपुव्वीए अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं

उग्घाएइ, पचविह णाणावरणिज्ज णवविह दसणावरणिज्ज, पचविह अतराइय, एए तिण्णिऽवि कम्मसे जुगव खवेइ। तओ पच्छा अणुत्तर अणत, कसिण, पडिपुण्ण, णिरावरण, वितिमिर, विसुद्ध लोगालोगप्पभाव, केवलवरणाणदसणं समुप्पाडेइ, जाव सजोगी भवइ, ताव इरियावहिय कम्म णिबधइ सुहफरिस दुसमयठिइय त जहा पढम समए बद्ध, बिइय समए वेइय तइय समए णिज्जिण्ण, त बद्ध पुट्ठ उदीरिय वेइय णिज्जिण्ण सेयाले य अकम्म यावि भवइ॥७१॥

मूल सूत्र- प्रेमद्वेषमिथ्यादर्शनविजयेन भदत। जीव कि जनयति? प्रेमद्वेषमिथ्यादर्शनविजयेन ज्ञानदर्शनचारित्राराधनायामभ्युत्तिष्ठते। अष्टविधस्य कर्मण कर्मग्रन्थिविमोचनायै तत्प्रथमतया यथानुपूर्व्या अष्टाविंशतिविध मोहनीय कर्मोद्घातयति पञ्चविध ज्ञानावरणीयम् नवविध दर्शनावरणीयम् पञ्चविधमान्तरायिकम् एतानि त्रीण्यपि कर्माणि युगपत् क्षपयति। तत पश्चादनुत्तरम् अनन्तम् कृत्स्नम् प्रतिपूर्णम् निरावरणम्, वितिमिरम् विशुद्धम् लोकालोकप्रभावम् केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पादयति। यावत्सयोगी भवति तावदैर्यापथिक कर्म बध्नाति सुखस्पर्श द्विसमयस्थितिकम् तत् प्रथमसमये बद्ध द्वितीयसमये वेदितम् तृतीयसमये निर्जीर्ण तद्बद्ध स्पृष्टमुदीरित वेदित निर्जीर्णमेष्यत्काले अकर्म चापिभवति।।७१॥

अन्वयार्थ-भते-हे भगवन्! पिज्ज-प्रेम, दोस-द्वेष, मिच्छा-मिथ्या, दसण-दर्शन के, विजएण-विजय से, जीवे-जीव, कि-क्या (लाभ), जणयइ-उत्पन्न करता है?

पिज्ज-प्रेम, दोस-द्वेष, मिच्छा दसण-मिथ्या दर्शन के, विजएण-विजय से, णाणदसण-ज्ञान दर्शन (और), चरित्त-चारित्र की, आराहणयाए-आराधना के लिए, अब्भुट्ठेइ-उद्यत होता है (और), अट्ठविहस्स-आठ प्रकार के, कम्मस्स-कर्मो की, कम्मगठि-कर्म ग्रन्थि से, विमोयणयाए-विमोचन (छुटकारा) पाने के लिए, तप्पपढमयाए-सबसे पहले, जहाणुपुव्विए-यथा क्रम से, अट्ठवीसइ-अट्ठाईस, विह-प्रकार के, मोहणिज्ज-मोहनीय, कम्म-कर्म, जहाणुपुव्वीए-यथानुपूर्वी-(यथाक्रम) से, उग्घाएइ-क्षय करता है (इसके बाद), पचविह-पाच प्रकार के, णाणावरणिज्ज-ज्ञानावरणीय, णवविह-नौ प्रकार के, दसणावरणिज्ज-दर्शनावरणीय, पचविह-पाच प्रकार के, अतराइय-अन्तराय, एए-इन, तिण्णिऽवि-तीनो, कम्मसे-कर्मांश को, जुगव-एक साथ, खवेइ-क्षय करता है,

तओ-इसके, पच्छा-बाद, अणुत्तरं-अनुत्तर, अणतं-अनन्त, कसिण-कृत्स्न (सम्पूर्ण), पडिपुण्णं-प्रतिपूर्ण णिरावरण-निरावरण (आवरण रहित), वितिमिर-अंधकार रहित, विसुद्धं-विशुद्ध, लोगालोग प्पभावं-लोकालोकप्रभावक, केवल वरणाणदसण-केवल ज्ञान (और) केवल दर्शन को, समुप्पाडेइ-प्राप्त करता है जाव-जब तक, सजोगी-सयोगी, भवइ-होता है, ताव-तब तक, ईरियावहियं-ईर्या पथिक, कम्मं-क्रिया का णिबंधइ-बन्ध करता है, सुहफरिस-सुख रूप स्पर्श (और), दुसमय-दो समय की, ठिइयं-स्थिति वाला, तंजहा-जैसे की, पढमसमए-प्रथम समय में, बद्ध-बाधा, बिइय समए-दूसरे समय म, वेइयं-वेदन किया, तइयसमए-तीसरे समय में, णिज्जिण्ण-निर्जीण (क्षय) हो जाता है, त-वह, बद्ध-बाधा हुआ, पुट्ठं-स्पर्श हुआ, उदीरियं-उदय को प्राप्त हुआ, वेइयं-वेदा हुआ, णिज्जिण्ण-निर्जरा किया हुआ, यावि-और, सेयाले-भविष्यत् काल में, च-चतुर्थ समय में, अकम्म-कर्म से रहित, भवइ-होता है।

भावानुवाद-ह भदन्त! राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से जीव का किस गुण की प्राप्ति होती है।

राग द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से जीव सर्वप्रथम ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना के लिए उद्यत होता है, आठ प्रकार के कर्मों की कर्मग्रन्थि से मुक्त होने के लिए सर्वप्रथम मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियों का यथाक्रम क्षय करता है, तदनन्तर पाच प्रकार के ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय व पाच प्रकार के अन्तराय इन तीनो कर्मों को एक साथ क्षय करता है तदनन्तर यह अनुत्तर अनन्त, कृत्स्न, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, निरावरण, अज्ञान, अन्धकार स रहित विशुद्ध और लोकालोक के प्रकाशक केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त करता है। जब तक वह सयोगी रहता है तब तक ईर्यापथिक क्रिया-कर्म का बन्ध होता है। वह बन्ध भी सुखस्पर्शी-साता वेदनीय रूप पुण्य कर्म होता है, वह दो समय की स्थिति वाला होता है, उसका प्रथम समय में बन्ध होता है। द्वितीय समय में उदय होकर वेदा जाता है और तृतीय समय मे निर्जीण अर्थात् क्षय हो जाता है। वह कर्म क्रमश बद्ध होता है, स्पृष्ट होता है, उदय में आता है, वेदा-भोगा जाता है और निर्जीर्ण नष्ट हो जाता है, परिणामत आगामीकाल में अर्थात् अन्त में वह कर्म अकर्म हो जाता है अर्थात् जीव कर्म रहित हो जाता है।

72 योग निरोध और शैलेशी अवस्था

मूल सूत्र- अह आउय पालइत्ता अंतोमुहुत्तद्धावसेसाए जोग णिरोह करेमाणे सुहुमकिरिय अप्पडिवाइ सुक्कज्झाण झायमाणे तप्पढमयाए मणजोग णिरुंभइ, वइजोग णिरुंभइ कायजोग णिरुंभइ, आणपाणुणिरोह करेइ, ईसि पचहस्सक्खरुच्चारणद्धाए य ण अणगारे समुच्छिण्णकिरिय अणियट्टिसुक्कज्झाण झियायमाणे वेयणिज्ज आउय णामं गोत्त च एए चत्तारिकम्मसे जुगव खवेइ॥72॥

संस्कृत छाया- अथ आयुष्क पालयित्वाऽन्तर्मुहूर्ताद्धावशेषायुष्कः (सन्) योगनिरोधं करिष्यमाणः सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति शुक्लध्यानं ध्यायन् तत्प्रथमतया मनोयोगं निरुणद्धि, (मनोयोग निरुध्य) वाग्योगं निरुणद्धि, काययोगं

निरुणद्धि, आनापाननिरोध करोति (कृत्वा)। ईषत् पचह्रस्वाक्षरोच्चारणाद्धायामनगार समुच्छिन्नक्रियमनिवृत्तिशुक्लध्यान ध्यायन् वेदनीयमायुर्नाम गोत्रचैतान् चतुर कर्मांशान् युगपत् क्षपयति।।७२॥

अन्वयार्थ-अह-अथ (केवल ज्ञान के बाद), आउय-आयु कर्म को, पालइत्ता-भोग कर, अतोमुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण, अवसेसाए-अवशेष आयु मे, जोगणिरोह-योग का निरोध, करेमाणे-करता हुआ, सुहुमकिरिय-सूक्ष्म क्रिया, अप्पडिवाइ-अप्रतिपाति, सुक्कज्झाण-शुक्ल ध्यान को, झायमाणे-ध्याता हुआ, तप्पढमयाए-वह प्रथम, मणजोग-मनोयोग का, णिरुभइ-निरोध करता है, वइजोग-वचन योग का, णिरुभइ-निरोध करता है, कायजोग-काय जोग का, णिरुभइ-निरोध करता है, आणापाणु णिरोह-आनापान (श्वासोच्छ्वास) का निरोध, करेइ-करता है, ईसि-ईषत् (स्वल्प), पच-पाच, हस्सक्खरुच्चारणद्धाए-ह्रस्वाक्षर के उच्चारण काल मे, च-फिर, अणगारे-अनगार, समुच्छिण्ण किरिय-समुच्छिन्न क्रिया, अणियट्टि-अनिवृत्ति नामक, सुक्कज्झाण-शुक्ल ध्यान को, झियायमाणे-ध्याता हुआ, वेयणिज्ज-वेदनीय, आउय-आयु, णाम-नाम, गोत्त-गोत्र, एए-इन, चत्तारि-चार, कम्मसे-कर्मांशो को, जुगव-युगपत् (एक साथ), खवेइ-क्षय कर देता है।

भावानुवाद-केवल ज्ञान के पश्चात् अपनी अवशेष आयु भोग करके जब अन्तर्मुहूर्त परिमाण आयु शेष रहती है तब योग निरोध की प्रक्रिया मे प्रवृत्त होता हुआ सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति नामक शुक्ल ध्यान के तृतीय पाद का ध्यान करता हुआ सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करता है अनन्तर वचन योग का निरोध करता है, उसके पश्चात् काय योग (स्थूल) का निरोध करता है, फिर आनापान-श्वासोच्छ्वास का निरोध करता है। श्वासोच्छ्वास का निरोध करके पाच ह्रस्व अक्षर, अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण जितने स्वल्प समय मे वह समुच्छिन्न क्रिया-अनिवृत्ति नामक शुक्ल ध्यान के चतुर्थ पाद मे लीन हुआ अनगार वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मों का एक साथ क्षय करता है।

73 अकर्मता-सिद्धावस्था

मूल सूत्र- तओ ओरालियतेयकम्माइ सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जुसेढिपत्ते अफुसमाणगई उड्ढ एगसमएण अविग्गहेण तत्थ गता सागारोवउत्ते सिज्झइ, बुज्झइ, जाव अत करेइ॥७३॥

सस्कृत छाया- तत औदारिकतेज कर्माणि सर्वाभिर्विप्रहाणिभिस्त्यक्त्वा ऋजुश्रेणि प्राप्तोऽस्पर्शद्गतिरूर्ध्वमेकसमयेनाविग्रहेण तत्र गत्वा साकारोपयुक्त सिध्यति, बुध्यते, यावदन्त करोति॥७३॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, ओरालिय-औदारिक, तेय-तैजस, कम्माइ-कार्मण शरीर को, सव्वाहिं-सर्व प्रकार से, विप्पजहणाहिं-त्याग से, विप्पहजहित्ता-छोड कर, उज्जुसेढिपत्ते-ऋजु श्रेणी को प्राप्त हुआ, अफुसमाण गई-

तओ-इसके, पच्छा-बाद, अणुत्तर-अनुत्तर, अणत-अनन्त, कसिण-कृत्स्न (सम्पूर्ण), पडिपुण्ण-प्रतिपूर्ण, णिरावरण-निरावरण (आवरण रहित), वितिमिर-अधकार रहित, विसुद्ध-विशुद्ध, लोगालोग प्पभाव-लोकालोकप्रभावक, केवल वरणाणदसण-केवल ज्ञान (और) केवल दर्शन को, समुप्पाडेइ-प्राप्त करता है, जाव-जब तक, सजोगी-सयोगी, भवइ-होता है, ताव-तब तक, ईरियावहिय-ईया पथिक, कम्म-क्रिया का, णिबधइ-बन्ध करता है, सुहफरिस-सुख रूप स्पर्श (और), दुसमय-दो समय की, ठिइय-स्थिति वाला, तंजहा-जैसे की, पढमसमए-प्रथम समय मे, बद्ध-बाधा, बिइय समए-दूसरे समय मे, वेइय-वेदन किया, तइयसमए-तीसरे समय मे, णिज्जिण्ण-निर्जीण (क्षय) हो जाता है, त-वह, बद्ध-बाधा हुआ, पुट्ठ-स्पर्शा हुआ, उदीरिय-उदय को प्राप्त हुआ, वेइय-वेदा हुआ, णिज्जिण्ण-निर्जरा किया हुआ, याबि-और, सेयाले-भविष्यत् काल में, च-चतुर्थ समय मे, अकम्म-कर्म से रहित, भवइ-होता है।

भावानुवाद-हे भदन्त! राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है।

राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से जीव सर्वप्रथम ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना के लिए उद्यत होता है, आठ प्रकार के कर्मों की कर्मग्रन्थि से मुक्त होने के लिए सर्वप्रथम मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियों का यथाक्रम क्षय करता है, तदन्तर पाच प्रकार के ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय व पाच प्रकार के अन्तराय इन तीना कर्मों को एक साथ क्षय करता है तदनन्तर वह अनुत्तर अनन्त, कृत्स्न, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, निरावरण, अज्ञान, अन्धकार से रहित विशुद्ध और लोकालोक के प्रकाशक केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त करता है। जब तक वह सयोगी रहता है तब तक ईर्यापथिक क्रिया-कर्म का बन्ध होता है। वह बन्ध भी सुखस्पर्शी-साता वेदनीय रूप पुण्य कर्म होता है, वह दो समय की स्थिति वाला होता है, उसका प्रथम समय म बन्ध होता है। द्वितीय समय मे उदय होकर वेदा जाता है और तृतीय समय मे निर्जीण अर्थात् क्षय हो जाता है। वह कर्म क्रमश बद्ध होता है, स्पृष्ट होता है, उदय मे आता है, वेदा-भोगा जाता है और निर्जीर्ण नष्ट हो जाता है, परिणामत आगामीकाल में अर्थात् अन्त मे वह कर्म अकर्म हो जाता है अर्थात् जीव कर्म रहित हो जाता है।

72 योग निरोध और शैलेशी अवस्था

मूल सूत्र- अह आउय पालइत्ता अतोमुहुत्तद्धावसेसाए जोग णिरोह करेमाणे सुहुमकिरिय अप्पडिवाइ सुक्कज्झाण झायमाणे तप्पढमयाए मणजोग णिरु भइ, वइजोगं णिरु भइ कायजोग णिरु भइ, आणपाणुणिरोह करेइ, ईसि पचहस्सक्खरुच्चारणद्धाए य ण अणगारे समुच्छिण्णकिरिय अणियट्टिसुक्कज्झाण झियायमाणे वेयणिज्ज आउय णाम गोत्त च एए चत्तारिकम्मसे जुगव खवेइ ॥72॥

सस्कृत छाया- अथ आयुष्क पालयित्वाऽन्तर्मुहूर्ताद्धावशेषायुष्क (सन्) योगनिरोध करिष्यमाण सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति शुक्लध्यान ध्यायन् तत्प्रथमतया मनोयोग निरुणद्धि, (मनोयोग निरुध्य) वाग्योग निरुणद्धि, कायोग

निरुणद्धि, आनापाननिरोध करोति (कृत्वा)। ईषत् पचहस्वाक्षरोच्चारणाद्धायामनगार समुच्छिन्नक्रियमनिवृत्तिशुक्लध्यान ध्यायन् वेदनीयमायुर्नाम गोत्रचैतान् चतुर कर्मांशान् युगपत् क्षपयति।।७२॥

अन्वयार्थ-अह-अथ (केवल ज्ञान के बाद), आउय-आयु कर्म को, पालइत्ता-भोग कर, अतोमुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण, अवसेसाए-अवशेष आयु मे, जोगणिरोह-योग का निरोध, करेमाणे-करता हुआ, सुहुमकिरिय-सूक्ष्म क्रिया, अप्पडिवाइ-अप्रतिपाति, सुक्कज्झाण-शुक्ल ध्यान को, झायमाणे-ध्याता हुआ, तप्पढमयाए-वह प्रथम, मणजोग-मनोयोग का, णिरुभइ-निरोध करता है, वइजोग-वचन योग का, णिरुभइ-निरोध करता है, कायजोग-काय जोग का, णिरुभइ-निरोध करता है, आणापाणु णिरोह-आनापान (श्वासोच्छ्वास) का निरोध, करेइ-करता है, ईसि-ईषत् (स्वल्प), पच-पाच, हस्सक्खरुच्चारणद्धाए-हस्वाक्षर के उच्चारण काल मे, च-फिर, अणगारे-अनगार, समुच्छिण्ण किरिय-समुच्छिन्न क्रिया, अणियट्टि-अनिवृत्ति नामक, सुक्कज्झाण-शुक्ल ध्यान को, झियायमाणे-ध्याता हुआ, वेयणिज्ज-वेदनीय, आउय-आयु, णाम-नाम, गोत्त-गोत्र, एए-इन, चत्तारि-चार, कम्मसे-कर्मांशों को, जुगव-युगपत् (एक साथ), खवेइ-क्षय कर देता है।

भावानुवाद-केवल ज्ञान के पश्चात् अपनी अवशेष आयु भोग करके जब अन्तर्मुहूर्त परिमाण आयु शेष रहती है तब योग निरोध की प्रक्रिया मे प्रवृत्त होता हुआ सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति नामक शुक्ल ध्यान के तृतीय पाद का ध्यान करता हुआ सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करता है अनन्तर वचन योग का निरोध करता है, उसके पश्चात् काय योग (स्थूल) का निरोध करता है, फिर आनापान-श्वासोच्छ्वास का निरोध करता है। श्वासोच्छ्वास का निरोध करके पाच हस्व अक्षर, अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण जितने स्वल्प समय मे वह समुच्छिन्न क्रिया-अनिवृत्ति नामक शुक्ल ध्यान के चतुर्थ पाद मे लीन हुआ अनगार वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मों का एक साथ क्षय करता है।

73 अकर्मता-सिद्धावस्था

मूल सूत्र- तओ ओरालियतेयकम्माइ सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जुसेढिपत्ते अफुसमाणगई उड्ढ एगसमएण अविग्गहेण तत्थ गता सागारोवउत्ते सिज्झइ, बुज्झइ, जाव अत करेइ॥७३॥

सस्कृत छाया- तत औदारिकतेज कर्माणि सर्वाभिर्विप्रहाणिभिस्त्यक्त्वा ऋजुश्रेणि प्राप्तोऽस्पर्शद्गतिरूर्ध्वमेकसमयेनाविग्रहेण तत्र गत्वा साकारोपयुक्त सिध्यति, बुध्यते, यावदन्त करोति॥७३॥

अन्वयार्थ-तओ-तदनन्तर, ओरालिय-औदारिक, तेय-तैजस, कम्माइ-कार्मण शरीर को, सव्वाहिं-सर्व प्रकार से, विप्पजहणाहिं-त्याग से, विप्पजहित्ता-छोड कर, उज्जुसेढिपत्ते-ऋजु श्रेणी को प्राप्त हुआ, अफुसमाण गई-

अस्पशमान गति से, उड्ढ-ऊचा, एगसमएण-एक समय मे, अविग्गहेण-अविग्रह गति से, तत्थ-वहा पर, गता-जाकर, सागारोवउत्ते-साकारोपयुक्त, सिज्झइ-सिद्ध होता है, बुज्झइ-बुद्ध होता है, जाव-यावत्, अत-(सब दु खो का) अन्त, करेइ-कर देता है।

भावानुवाद-उसके पश्चात् औदारिक, तेजस और कार्मण इन सभी शरीरो को सदा के लिए पूर्ण रूप से छोडता है, शरीरो को पूर्ण रूप से छोड कर ऋजु श्रेणी को प्राप्त होता हुआ अस्पर्शमान् गति से जीव एक समय वाली अविग्रह गति से बिना मोड लिए सीधे लोकाग्र में जाकर साकारोपयुक्त ज्ञानोपयोगी के रूप म सिद्ध होता है, बुद्ध होता है व मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, समस्त दु खो का अन्त कर देता है।

74 उपसहार

मूल सूत्र- **एस खलु सम्मतपरक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेण भगवया महावीरेण आघविए पण्णविए परूविए दसिए णिदसिए उवदसिए।**

ति बेमि

इति सम्मत परक्कम एगुणतीसइम अज्झयण समत्त ॥७४॥

सस्कृत छाया- **एष खलु सम्यक्त्वपराक्रमस्याध्ययनस्यार्थ श्रमणेन भगवता महावीरेणाख्यात प्रज्ञापित प्ररूपितो दर्शितो निदर्शित उपदर्शित ॥७४॥**

इति ब्रवीमि।

इति सम्यक्त्वपराक्रम समाप्त ॥२९॥

अन्वयार्थ-खलु-निश्चय ही, सम्मत्तपरक्कमस्स-सम्यक्त्व पराक्रम नामक, अज्झयणस्स-अध्ययन का, एस-यह, अट्ठे-अर्थ, समणेण-श्रमण, भगवया-भगवान्, महावीरेण-महावीर स्वामी ने, आघविए-प्रतिपादन किया है, पण्णविए-प्रज्ञापित किया, परूविए-प्ररूपित किया, दसिए-दिखलाया, णिदसिए-दृष्टान्ता से समझाया, उवदसिए-उपदेश दिया है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य आर्य जम्बू से कहते हैं-हे आयुष्मान् जम्बू! सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन का यह अर्थ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है, प्रज्ञापित किया है, प्ररूपण द्वारा दिग्दर्शित किया है और विभिन्न दृष्टान्तो द्वारा उपदर्शित किया है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार सम्यक्त्व पराक्रम नामक उनतीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

तपो मार्ग गति - त्रिशत् अध्ययन

उत्थानिका

मुक्ति मार्ग की साधना के विभिन्न अगों मे तप का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत आगम मे ही मुक्ति-साधना के चार अगो का उल्लेख करते हुए कहा गया है-

नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
एस मग्गो त्ति पण्णत्तो जिणेहिं वर दसीहि॥

अर्थात् ज्ञान, दशन, चारित्र और तप-ये चारो मिल कर ही मुक्ति का मार्ग बनते हैं। जैन तत्त्व ज्ञान का थोडा सूक्ष्म विश्लेपण करे तो ज्ञात होगा कि ज्ञान और दर्शन तो साधना की मूल भित्ति है। सम्यग्ज्ञान और सम्यग् दर्शन के विना चारित्र की सम्यगाराधना नहीं हो सकती है। चारित्र नवीन कर्म बन्ध को रोकने का साधन है। इसके द्वारा कर्मबन्ध के द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं, किन्तु पूर्वबद्ध कर्मों के क्षय के लिए भी किसी साधन की आवश्यकता होती है। वह साधन है 'तप'।

एक जिज्ञासा जो बार-बार उठा करती है तप को निर्जरा अथवा कर्म क्षय का साधन कैसे माना जाता है? तप करना तो शरीर को और उसके माध्यम से आत्मा को कष्ट देना है। क्या आत्मा को कष्ट देने से कर्मों की निर्जरा या आत्मा की शुद्धि हो सकती है?

इस जिज्ञासा के समाधान के लिए हमे साधना के मूल उद्देश्य तक पहुचना होगा। हमारी साधना का उद्देश्य है समस्त औपाधिक सयोगो-सगो से, यहा तक कि शरीर के सग से भी मुक्त हो जाना। क्योकि ये सयोग ही तो आत्मा को वधन मे जकडे हुए हैं। सयोगो से मुक्त होने का अर्थ है उनके प्रति होने वाले ममत्व अथवा आसक्ति भाव का परित्याग कर देना। हम यह अच्छी तरह से जानते हैं कि सर्वाधिक आसक्ति शरीर पर ही होती है। चूकि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध अनादि काल से है। आत्मा ने शरीर के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इस तादात्म्य के छिन्न-भिन्न करने के साधन को ही 'तप' कहा जाता है। तप के द्वारा इस शरीर पर जो आसक्ति कि वा ममत्व है उसे तोडा जाता है। आसक्ति ही कर्म बधन का मूल कारण है जिसे हम राग भाव कहा करते हैं। जहा राग भाव है वहा द्वेप भाव अवश्य होता है और ये दोनो ही भाव कर्म बधन के मूल हेतु हैं। तप का उद्देश्य है राग भाव को तोड देना, आसक्ति भाव से ऊपर उठ जाना। स्वर्ण को शुद्ध करने के लिए उसे अग्नि मे तपाया जाता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा को भी तप रूपी अग्नि मे तपा कर कर्म मैल से मुक्त किया जा सकता है।

तप का यह अर्थ कदापि नहीं है कि अज्ञान पूर्वक शरीर को कष्ट दिया जाए या पीडा पहुचाई जाए। तप का

उद्देश्य है इन्द्रियो और मन पर सयमन करने हेतु शरीर के प्रति अनासक्ति भाव का जागरण अर्थात् देहाध्यास से ऊपर उठ कर आत्म प्रतिष्ठ होना अथवा शरीर में आत्मबुद्धि का लुप्त होना और 'स्व' में स्व की प्रतिष्ठा होना।

तप के दो भेद हैं–बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप आभ्यन्तर की सम्पुष्टि के लिए होता है, बाह्य तप के द्वारा अनासक्ति भाव का जागरण होता है, इन्द्रियो की विषयासक्ति क्षीण होती है, जो आभ्यन्तर तप के लिए परम आवश्यक है। यदि बाह्य तप के द्वारा आभ्यन्तर तप मे सहयोग नहीं मिलता है अर्थात् अनशन आदि के द्वारा कषाय विजय आदि की साधना नहीं होती है तो यह बाह्य अनशनादि तप केवल देह दण्ड बन कर रह जाता है, अस्तु तप की महत्ता मे आभ्यन्तर तप ही आत्म शुद्धि के लक्ष्य तक पहुचने का मूल अग है।

प्रस्तुत अध्ययन मे बाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकार के तपो के छह भेदो और उनके अवान्तर प्रभेदो को विस्तार पूर्वक समझाया गया है। हम भी इन भेदो को समझें ही नहीं, आत्मसात् करे और आत्मा को बधन मुक्त करने का प्रयास करे।

❐❐❐

तपो मार्ग गति - त्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश •

तप के द्वारा आत्मा उसी प्रकार शुद्ध हो जाती है
जैसे अग्नि से स्वर्ण।
पूर्वबद्ध कर्मों के क्षय का सर्वसुलभ साधन है तप।

प्रवृत्ति आस्रव है निवृत्ति अनास्रव।
प्राणी वध आदि पापो से निवृत्ति जीव को आस्रव रहित बना देती है।

कषाय-शल्य-इन्द्रिय जयी बनो, मुक्त हो जाओगे।
कषाय मुक्तता, शल्य रहितता एव इन्द्रिय जय, बन्धन मुक्ति के हेतु हैं।

कर्म जल को शुष्क करना हो तो तप करो।
जैसे विशाल सरोवर का जल भी आताप एव उत्सिचन से
समाप्त हो जाता है, इसी तरह तप के द्वारा पाप कर्म समाप्त
हो जाता है।

आभ्यन्तर तप से स्वय को साधो।
तप औपचारिक नहीं आन्तरिक हो, श्रद्धा पूर्वक एव भाव पूर्वक हो।

मुक्ति चाहते हो तो देह मुक्त बनो।
सर्वश्रेष्ठ तप है देह के प्रति अनासक्ति।

भिक्षा याचना करके देखो, अह विगलित होगा।
भिक्षावृत्ति भी बहुत कठिन तप है, वहा अहकार पर चोट पडती है।

विशिष्ट सकल्प करते रहो मन सधेगा।
अभिग्रह-विशिष्ट सकल्प पूर्वक की गई भिक्षा-याचना मन को साधती है।

विशुद्ध हृदय से आत्मालोचन करो, पाप मुक्त हो जाओगे।
आत्म शोधन का एक मार्ग है आत्मालोचन-प्रायश्चित्त।

स्वाध्याय करो ज्ञान परिपक्व हो जाएगा।
स्वाध्याय कर्म निर्जरा का सशक्त साधन है।

देह मुक्तावस्था साधना की फलश्रुति है।
कायोत्सर्ग तप की उच्चतम स्थिति है।

□□□

अह तवमग्गं तीसइमं अज्झयणं

अथ तपोमार्ग त्रिंशत्तममध्ययनम्

तपो मार्ग गति

1 तपश्चर्या का प्रयोजन कर्मक्षय

मूल गाथा- जहा उ पावग कम्म, रागदोससमज्जिय।
खवेइ तवसा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण॥१॥

सस्कृत छाया- यथा तु पापक कर्म, रागद्वेषसमर्जितम्।
क्षपयति तपसा भिक्षु, तदेकाग्रमना श्रृणु॥१॥

अन्वयार्थ-रागदोस-रागद्वेष से, समिज्जयं-उपार्जित हुए, पावग-पाप, कम्म-कर्म को, भिक्खू-भिक्षु जहा उ-जिस प्रकार, तवसा-तप के द्वारा, खवेइ-क्षय करता है, त-उसे, एगग्गमणो-एकाग्र चित्त से, सुण-सुनो।

भावानुवाद-साधु तप के द्वारा जिस पद्धति से राग द्वेष से उपार्जित पाप कर्म का क्षय करता है, उस पद्धति को तुम एकाग्र मन से श्रवण करो।

2 अनास्त्रवी का स्वरूप वर्णन

मूल गाथा- पाणिवह मुसावाया, अदत्त मेहुण परिग्गहा विरओ।
राईभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो॥२॥

सस्कृत छाया- प्राणिवधमृषावाद, अदत्तमैथुनपरिग्रहेभ्यो विरत ।
रात्रिभोजनविरत , जीवो भवति अनास्त्रव ॥२॥

अन्वयार्थ-पाणिवह-प्राणिवध, मुसावाया-मृषावाद, अदत्त-चोरी, मेहुण-मैथुन, परिग्गहा-परिग्रह से, विरओ-विरत (विरक्त), राइभोयण-रात्रि भोजन का, विरओ-त्यागी, जीवो-जीव, अणासवो-अनास्रव (आस्रव रहित), भवइ-होता है।

भावानुवाद-हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह से निवृत्त एव रात्रि भोजन की विरति से जीव अनास्रव (आस्रव रहित) होता है।

3 अनास्रवी होने का उपाय

मूल गाथा- पचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइदिओ।
अगारवो य णिस्सल्लो, जीवो होइ अणासवो॥3॥

सस्कृत छाया- पञ्चसमितस्त्रिगुप्त अकषायो जितेन्द्रिय ।
अगारवश्च नि शल्य जीवो भवत्यनास्रव ॥३॥

अन्वयार्थ-पचसमिओ-पाच समिति से युक्त, तिगुत्तो-तीन गुप्ति से युक्त, अकसाओ-कषाय रहित, जिइदिओ-जितेन्द्रिय, अगारवो-गारव रहित, य-और, णिस्सलो-नि शल्य, जीवो-जीव, अणासवो-आस्रव रहित होइ-
भावानुवाद-पाच समिति से युक्त एव तीन गुप्ति वाला, कषाय रहित, जितेन्द्रिय, गौरव-अहकार रहित और नि शल्य-शल्य रहित जीव अनास्रव होता है।

4 कर्म क्षय की प्रक्रिया का प्रस्ताव

मूल गाथा- एएसि तु विवच्चासे, रागदोस समज्जिय।
खवेइ उ जहा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण॥4॥

सस्कृत छाया- एतेषा तु विपर्यासे, रागद्वेषसमर्जितम्।
क्षपयति तु यथा भिक्षु तदेकाग्रमना श्रृणु॥४॥

अन्वयार्थ-तु-और, एएसि-इन उक्त गुणो के, विवच्चासे-विपर्यास मे, रागदोस-रागद्वेष से, समज्जिय-उपार्जित कर्मों को, जहा-जिस प्रकार, भिक्खू-भिक्षु (साधु), खवेइ-क्षय करता है, त-उसको, मे-मुझसे, एगग्गमणो-एकाग्रचित्त होकर, सुण-सुनो।

भावानुवाद-उपर्युक्त साधना क्रम से विपरीत आचरण करने पर राग-द्वेष से अर्जित कर्मों को भिक्षु जिस विधि से क्षय करता है उस विधि को एकाग्रचित्त होकर सुनो।

5 कर्म क्षय के प्रकार दृष्टान्त द्वारा

मूल गाथा- जहा महातलायस्स, सण्णिरुद्धे जलागमे।
उस्सिचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे॥5॥

सस्कृत छाया- यथा महातडागस्य, सन्निरुद्धे जलागमे।
उत्सिञ्चनेन तपनेन, क्रमेण शोषणा भवेत्॥५॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, महातलायस्स-महान् तालाब के, जलागमे-जल के आने के मार्ग का, सण्णिरुद्धे-निरोध किए जाने पर, उस्सिचणाए-(पानी को) उलीचने (बाहर निकाल देने) से और, तवणाए-सूर्य के ताप से, कमेण-क्रम से, सोसणा-सूखाया जाना, भवे-होता है।

भावानुवाद-जिस प्रकार किसी बडे तालाव के जल आने के मार्गों को रोक देने पर, पूर्व के पानी को उलीचन-बाहर निकालने पर तथा सूर्य के आताप से पानी क्रमश सूख जाता है।

6 तप द्वारा कर्मों का जीर्ण होना

मूल गाथा- एव तु सजयस्सावि, पावकम्मणिरासवे।
भवकोडीसचिय कम्म, तवसा णिज्जरिज्जइ॥६॥

सस्कृत छाया- एव तु सयतस्यापि, पापकर्मनिरास्रवे।
भवकोटिसञ्चित कर्म, तपसा निर्जीर्यते॥६॥

अन्वयार्थ-एव तु-उसी प्रकार, सजयस्सा वि-सयत के भी, पावकम्म-पाप कर्म के, णिरासवे-निरास्रव (आस्रव निरुद्ध कर देने) पर, भवकोडी-करोड भवो का, सचिय-सचित किया हुआ, कम्म-पाप कर्म, तवसा-तप से, णिज्जरिज्जइ-जीर्ण (क्षय) किया जाता है।

भावानुवाद-उसी प्रकार सयमी साधक के भी नवीन पाप कर्मों के रोक देने पर करोडों जन्मों के सचित कर्म तप के द्वारा क्षीण हो जाते हैं।

7 तप के प्रभेद

मूल गाथा- सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भतरो तवो॥७॥

सस्कृत छाया- तत्तपो द्विविधमुक्त, बाह्यमाभ्यन्तर तथा।
बाह्य षड्विधमुक्त, एवमाभ्यन्तर तप॥७॥

अन्वयार्थ-सो-वह, तवो-तप, बाहिरो-बाह्य, तहा-और, अब्भतरो-आभ्यन्तर के भेद से, दुविहो-दो प्रकार का, वुत्तो-कहा गया है, बाहिरो-बाह्य तप, छव्विहो-छह प्रकार का, एव-इसी प्रकार, अब्भतरो-आभ्यतर, तवो-तप भी, (छह प्रकार का), वुत्तो-कहा गया है।

भावानुवाद-वह तप बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है, बाह्य तप छह प्रकार का है इसी प्रकार आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का कहा गया है।

8 बाह्य तप के छह भेद

मूल गाथा- अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया, य बज्झो तवो होइ॥८॥

सस्कृत छाया- अनशनमूनोदरिका, भिक्षाचर्या च रसपरित्याग।
कायक्लेश सलीनता च, बाह्य तपो भवति॥८॥

अन्वयार्थ-अणसण-अनशन, ऊणोयरिया-ऊनोदरिका (ऊनोदरी), भिक्खायरिया-भिक्षाचर्या, रसपरिच्चाओ-

रसपरित्याग, य-और, कायकिलेसो-कायक्लेश, य-तथा, सलीणया-सलीनता (ये), बज्झो-बाह्य, तवो-तप के (छह भेद), होइ-होते हैं।

भावानुवाद-अनशन, ऊनोदरिका, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, काय क्लेश और प्रति सलीनता-यह बाह्य तप छह प्रकार का है।

9 प्रथम अनशन तप का वर्णन

मूल गाथा- इत्तरिय मरणकाला य, अणसणा दुविहा भवे।
इत्तरिय सावकंखा, णिरवकखा उ बिइज्जिया॥९॥

सस्कृत छाया- इत्वरिक मरणकाल य, अनशन द्विविध भवेत्।
इत्वरिक सावकाक्ष, निरवकाक्ष तु द्वितीयम्॥९॥

अन्वयार्थ-अणसणा-अनशन तप, इत्तरिय-इत्वरिक, य-और, मरणकाला-मरण काल, दुविहा-दो प्रकार का, भवे-होता है, इत्तरिय-इत्वरिक तप, सावकखा-आकाक्षा सहित है, उ-और, बिइज्जिया-द्वितीय तप, णिरवकखा-आकाक्षा रहित होता है।

भावानुवाद-अनशन तप के दो भेद हैं-इत्वरिक और मरण कालिक-कुछ समय और आमरण का। इत्वरिक सावकाक्ष-निर्धारित समय के बाद आकाक्षा-आहार की इच्छा सहित होता है और दूसरा-मरण कालिक आकाक्षा रहित होता है।

10 प्रथम इत्त्वर तप के चार भेदो का वर्णन

मूल गाथा- जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो।
सेढितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य॥१०॥

सस्कृत छाया- यत्त्वित्त्वरिक तप तत्समासेन षड्विधम्।
श्रेणितप प्रतरतप घनतपश्च तथा भवति वर्गतपश्च॥१०॥

अन्वयार्थ-जो-जो, सो-यह, इत्तरिय-इत्वरिक, तवो-तप है, सो-वह, समासेण-सक्षेप से, छव्विहो-छह प्रकार का, होइ-होता है, सेढितवो-श्रेणी तप, पयरतवो-प्रतर तप, तह-तथा, घणो-घनतप, य-और, वग्गो-वर्गतप।

भावानुवाद-जा इत्वरिक तप है, वह सक्षेप में छह प्रकार का है-श्रेणि तप, प्रतर तप, घन तप और वर्ग तप।

11 इत्त्वर तप के शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- तत्तो य वग्गवग्गो, पचमो छट्ठओ पइण्णतवो।
मणइच्छियचित्तत्थो, णायव्वो होइ इत्तरिओ॥११॥

सस्कृत छाया- ततश्च वर्गवर्ग, पञ्चम षष्ठश्च प्रकीर्णतप।
मनइप्सित चित्रार्थ, ज्ञातव्य भवतीत्त्वरिकम्॥११॥

अन्वयार्थ-तत्तो-तत्पश्चात्, पचमो-पाचवा, वग्गवग्गो-वर्ग वर्ग तप, य-और, छट्ठो-छठा, पइण्ण तवो-प्रकीर्णतप, मण-मन, इच्छिय-इप्सित, चित्तत्थो-चित्रार्थ (मनवाछित फल वाला), इत्तरिओ-इत्वरिक तप ऐसा, होइ-होता है, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-पाचवा वर्ग वर्ग तप और छठा प्रकीर्ण तप, इस प्रकार मनोवाछित अनेक प्रकार के फल प्रदान करने वाला इत्वरिक अनशन तप जानना चाहिए।

12 यावत्कालिक अनशन का विषय

मूल गाथा- **जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया।**
सवियारमवियारा, कायचिट्ठ पई भवे॥१२॥

सस्कृत छाया- **यदनशन मरणे, द्विविध तद्व्याख्यातम्।**
सविचारमविचार, कायचेष्टा प्रति भवेत्॥१२॥

अन्वयार्थ-सा-वह, जा-जो, मरणे-मरण कालिक, अणसणा-अनशन है, सा-वह, दुविहा-दो प्रकार का, वियाहिया-कहा गया है, सवियारं-सविचार, अवियारा-विचार आदि (ये भेद), कायचिट्ठ पई-कायचेष्टा की अपेक्षा, भवे-होते हैं।

भावानुवाद-वह जो मरणकालिक अनशन तप है, वह दो प्रकार का है-सविचार-काय चेष्टा सहित और अविचार-कायिक चेष्टा रहित।

13 यावत्कालिक अनशन तप के प्रकारान्तर से भी भेद

मूल गाथा- **अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया।**
णीहारिमणीहारी, आहारच्छेओ दोसु वि॥१३॥

सस्कृत छाया- **अथवा सपरिकर्म, अपरिकर्म चाख्यातम्।**
निर्हारि अनिर्हारि आहारच्छेदो द्वयोरपि॥१३॥

अन्वयार्थ-अहवा-अथवा, सपरिकम्मा-सपरिकर्म, य-और, अपरिकम्मा-अपरिकर्म, वा-अथवा, णीहारिं-नीहारी (और) अणीहारी-अनीहारी, दोसु वि-दोनों प्रकार के (अनशनों में), आहारच्छेओ-आहार का त्याग, आहिया-कहा गया है।

भावानुवाद-अथवा प्रकारान्तर से मरण कालिक अनशन के सपरिकर्म और अपरिकर्म, ये दो भेद कहे गये हैं, इन्हें निहारिम और अनिहारिम भी कहा जाता है, दोनो में आहार का त्याग तो होता ही है।

14 ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा- **ओमोयरणं पचहा, समासेण वियाहिय।**
दव्वओ खेत्तकालेण, भावेण पज्जवेहि य॥१४॥

सस्कृत छाया- अवमौदर्यं पञ्चधा, समासेन व्याख्यातम्।
द्रव्येण क्षेत्रे कालेन, भावेन पर्यवैश्च॥१४॥

अन्वयार्थ-दव्वओ-द्रव्य से, खेत्त-क्षेत्र से, कालेण-काल से, भावेण-भाव से, य-और, पज्जवेहि-पर्यायो से, ओमोयरण-अवमौदर्य तप, समासेण-सक्षेप से, पचहा-पाच प्रकार का, वियाहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-अवमोदर्य-ऊनोदरी तप सक्षेप मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्यायो की अपेक्षा से पाच प्रकार का है।

15 द्रव्य सबधी ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा- जो जस्स उ आहारो तत्तो, ओमं तु जो करे।
जहण्णेणेगसित्थाई, एव दव्वेण ऊ भवे॥१५॥

सस्कृत छाया- यो यस्य त्वाहार ततोऽवम तु य कुर्यात्।
जघन्येनैकसिक्थादि एव द्रव्येण तु भवेत्॥१५॥

अन्वयार्थ-जस्स-जिसका, उ-कि, जो-जितना, आहारो-आहार है, तत्तो-उनमे से, जो-जो, ओम-न्यून (कम), करे-करता है, जहण्णेण-जघन्य से, एगसित्थाई-एकसित्थिक, एव-इस प्रकार, दव्वेण-द्रव्य से, उ-तो (ऊनोदरी तप), भवे-होता है।

भावानुवाद-जो जितना भोजन कर सकता है उससे कम करता है, कम से कम एक कण या एक ग्रास भी कम करता है तो इस प्रकार वह द्रव्य से ऊनोदरी तप है।

16 क्षेत्र सम्बन्धी ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा- गामे णगरे तह रायहाणि, णिगमे य आगरे पल्ली।
खेडे कब्बड दोणमुह, पट्टण मडब सबाहे॥१६॥

सस्कृत छाया- ग्रामे नगरे तथा राजधान्या निगमे चाकरे पल्ल्याम्।
खेटे कर्वटे द्रोणमुखे, पत्तनमण्डपसम्बाधे॥१६॥

अन्वयार्थ-गामे-ग्राम में, णगरे-नगर मे, तह-तथा, रायहाणि-राजधानी में, णिगमे-निगम मे, य-और, आगरे-आकर मे, पल्ली-पल्ली में, खेडे-खेडे मे, कब्बड़-कर्बट में, दोणमुहे-द्रोणमुख मे, पट्टण-पतन मे, मडब-मडप मे, सबाहे-सबाध मे।

भावानुवाद-ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, आकर, पल्ली, खेड, कर्बट, द्रोण, मुख, पतन, मण्डप सबाध मे।

17 आश्रमपद, समाज आदि क्षेत्रो का वर्णन

मूल गाथा- आसमपए विहारे, सण्णिवेसे समायघोसे य।
थलिसेणाखधारे, साथे सवट्टकोट्टे य॥१७॥

सस्कृत छाया- आश्रमपदे विहारे, सन्निवेसे समायघोसे च।
स्थलसेनाया स्कन्धावारे, सार्थे सवर्तकोटे च॥१७॥

अन्वयार्थ-आसमपए-आश्रमपद मे, विहारे-विहार में, सण्णिवेसे-सन्निवेश मे, समाय-समाज में, घोसे-घोष में, य-और, थलि-स्थल मे, सेणा-सेना मे, खंधारे-स्कन्धावार मे, सत्थे-सार्थ में, सवट्ट-सवर्त मे, य-तथा, कोट्ट-कोट में।

भावानुवाद-आश्रम-पद, विहार, सन्निवेश, समाज, घोष, स्थल-सेना का खन्धावार, सार्थ, सवर्त, कोट में।

18 एतावन्मात्र क्षेत्र मे भिक्षा चरण

मूल गाथा- वाडेसु व रत्थासु व, घरेसु वा एवमित्तिय खेत्त।
कप्पइ इ एवमाई, एव खेत्तेण ऊ भवे ॥१८॥

सस्कृत छाया- वाटेषु वा रथ्यासु वा, गृहेषु वैवमेतावत् क्षेत्रम्।
कल्पते त्वेवमादि, एव क्षेत्रेण तु भवेत् ॥१८॥

अन्वयार्थ-वाडेसु-पाड (घरो के समूह) में, य-और, रत्थासु-गलियों में, घरेसु-घरों में, वा-अथवा, एव इस प्रकार, इत्तिय-एतावन्मात्र, खेत्त-क्षेत्रों मे, कप्पइ-(गोचरी लेना) कल्पता है, आई-आदि, एव-इस प्रकार, खत्तण-क्षेत्र से (ऊनोदरी तप), भवे-होता है।

भावानुवाद-पाट-पाडा, रथ्या-गली और घर इन क्षेत्रों मे तथा इसी प्रकार क अन्य क्षेत्रों में निर्धारित क्षत्र प्रमाण के अनुसार अभिग्रह पूर्वक भिक्षा के लिए जाना-क्षेत्र ऊनोदरी तप कहलाता है।

19 क्षेत्र सम्बन्धी ऊनोदरी तप का प्रकारान्तर से वर्णन

मूल गाथा- पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्तिपयगवीहिया चेव।
सबुक्कावट्टायगतु, पच्चागया छट्ठा ॥१९॥

सस्कृत छाया- पेटा चार्धपेटा, गोमूत्रिका पतगवीथिका चैव।
शम्बूकावर्ता आयत गत्वा, पश्चादागता षष्ठी ॥१९॥

अन्वयार्थ-पेडा-पेटिकावता, गृह-पक्ति, य-और, अद्धपेडा-अद्धपेटिका, सदृश, गोमुत्ति-गो मूत्रिका सदृश पयग वीहिया-पतगवीथिका के सदृश, चेव-और, सबुक्कावट्टा-शबूकावर्त (शखावर्त) के तुल्य, आययगंतु-लम्बागमन करके पीछे आना, पच्चागया-प्रत्यागत नामक, छट्ठा-छठी विधि है।

भावानुवाद-अथवा प्रकारान्तर से पेटा (पेटी के रूप मे भिक्षा क्षेत्र को चार कोनों-भागों के रूप में विभक्त करके मध्य के घरों को छोडकर समश्रेणी में गोचरी करना), अर्ध पेटा (उपर्युक्त विभाजन मे केवल दो दिशाओं में गोचरी करना), गोमूत्रिका (भूमि पर पडे हुए गो मूत्र के आकार के आमने-सामने के घरो से गोचरी करना), पतग वीथिका (पत्तगिये के उडने के समान अनियत्रित गोचरी करना), शम्बूकावत (शख के समान गोल घूमते हुए गोचरी करना) और आयतगत-प्रत्यागता (जाते हुए एक पक्ति से और आते हुए दूसरी पक्ति से गोचरी करना) इस प्रकार छह प्रकार से गोचरी करना क्षेत्र से ऊनोदरी तप कहलाता है।

20 काल सम्बन्धी ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा- दिवसस्स पोरुसीण, चउण्ह पि उ जत्तिओ भवे कालो।
एव चरमाणो खलु, कालोमाण मुणेयव्व ॥२०॥

सस्कृत छाया- दिवसस्य पौरुषीणा, चतसृणामपि त्वेतावान् भवेत् काल ।
एव चरत खलु, कालावमत्व ज्ञातव्यम् ॥२०॥

अन्वयार्थ-दिवसस्स-दिन के, चउण्हपि-चार ही, पोरुसीण-प्रहरो मे, जत्तिओ-यावन्मात्र, कालो-अभिग्रहकाल, भवे-होवे, एव-इस प्रकार, चरमाणो-विचरते हुए, खलु-निश्चय मे, कालोमाण-काल सबधी अवमौदर्य, मुणेयव्व-जानना चाहिए।

भावानुवाद-दिन के चार प्रहर मे भिक्षा के नियतकाल मे काल का अभिग्रह करके उस समय मे ही गोचरी के लिए जाना काल से 'ऊनोदरी' है।

21 प्रकारान्तर से काल-ऊनोदरी तप

मूल गाथा- अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाए घासमेसतो।
चउभागूणाए वा, एव कालेण ऊ भवे ॥२१॥

सस्कृत छाया- अथवा तृतीयाया पौरुष्याम्, ऊनाया ग्रासमेषयन्।
चतुर्भागोनाया वा, एव कालेन तु भवेत् ॥२१॥

अन्वयार्थ-अहवा-अथवा, तइयाए-तीसरे, पोरिसीए-प्रहर मे, ऊणाए-ऊणी (कुछ कम काल तक), वा-अथवा, चउभागूणाए-चतुर्थ भाग कम (तृतीय पहर) मे ही (साधु), घास-आहार की, एसतो-गवेषणा करे, एव-इस प्रकार, कालेण-काल की अपेक्षा, उ-तो (ऊनोदरी तप), भवे-होता है।

भावानुवाद-अथवा तृतीय प्रहर मे कुछ कम काल तक या चतुर्थ भाग कम मे अर्थात् तृतीय प्रहर के चौथे भाग मे ही आहार की गवेषणा करने का अभिग्रह करना काल की अपेक्षा ऊनोदरी तप होता है।

22 भाव सबधी ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा- इत्थी वा पुरिसो वा, अलकिओ वा णालकिओ वावि।
अण्णयरवयत्थो वा, अण्णयरेण व वत्थेण ॥२२॥

सस्कृत छाया- स्त्री वा पुरुषो वा, अलकृतो वाऽनलकृतो वाऽपि।
अन्यतरवय स्थो वा, अन्यतरेण वा वस्त्रेण ॥२२॥

अन्वयार्थ-इत्थी-स्त्री, वा-अथवा, पुरिसो-पुरुष, अलकिओ-अलकृत, वा-अथवा, णालकिओ-अलकार रहित, व-अथवा, अण्णयरवयत्थो-अन्यतर, वयस्थ (अवस्था वाला), वावि-अथवा, अण्णयरेण-अन्यतर, वत्थेण-वस्त्र से युक्त, वा-अथवा।

भावानुवाद-स्त्री अथवा पुरुष, अलकृत या अनलकृत, अमुक आयु अथवा अमुक प्रकार के वस्त्र वाला हो।

23 भाव अवमौदर्य की प्ररूपणा

मूल गाथा- अण्णेण विसेसेण, वण्णेण भावमणुमुयते उ।
एव चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणेयव्व ॥२३॥

सस्कृत छाया- अन्येन विशेषेण, वर्णेन भावमनुन्मृञ्चन् तु।
एव चरन् खलु, भावावमत्व ज्ञातव्यम् ॥२३॥

अन्वयार्थ-अण्णेण-अन्य किसी, विसेसेण-विशेषता से युक्त, वण्णेण-वर्ण से, वा-अथवा, भावं-भाव र अणुमुयते-न छोडता हुआ, एव-इस प्रकार, चरमाणो-आचरण करता हुआ, खलु-निश्चय ही, भावोमाणं-भ अवमौदर्य, मुणेयव्व-जानना चाहिए।

भावानुवाद-अथवा अमुक विशिष्ट गुण-रोना या हसना आदि से युक्त किसी विशेष वर्ण या भाव से युक्त दाता हाथ से भिक्षा मिलेगी तो ही भिक्षा लूगा अन्यथा नहीं, इस प्रकार की चर्या वाले साधु को भाव से ऊनोदरी तप है है।

24 पर्याय सम्बन्धी ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा- दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा।
एएहिं ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥२४॥

सस्कृत छाया- द्रव्ये क्षेत्रे काले, भावे चाख्यातास्तु ये भावा ।
एतैरवमचर , पर्यवचरो भवेद् भिक्षु ॥२४॥

अन्वयार्थ-दव्वे-द्रव्य में, खेत्ते-क्षेत्र में, काले-काल में, य-और, भावम्मि-भाव में, जे-जो, भावा-भाव, आहिय कहे गये हैं, एएहिं-इनसे, ओमचरओ-अवमचरक (ऊनोदरी करने वाला), भिक्खू-भिक्षु (साधु), पज्जवचरओ पर्याय से (ऊनोदरी करने वाला), पर्यवचरक, भवे-होता है।

भावानुवाद-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो [illegible] हैं, इनसे ऊनोदरी करने [illegible] मुनि पर्याय से ऊनोद करने वाला कहलाता है।

भावानुवाद-आठ प्रकार के गोचराग्र, सात प्रकार की एषणाएं और अन्य अनेक प्रकार के अभिग्रह हैं, ये सब 'भिक्षाचरी' तप मे कहे गए हैं।

26 रस परित्याग का स्वरूप

मूल गाथा- **खीरदहिसप्पिमाई, पणीयं पाणभोयणं।**
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ॥२६॥

सस्कृत छाया- **क्षीरदधिसर्पिरादि, प्रणीत पानभोजनम्।**
परिवर्जन रसाना तु, भणित रसविवर्जनम् ॥२६॥

अन्वयार्थ-खीर-क्षीर (दूध), दहि-दही, सप्पि-सर्पि (घी), आई-आदि, तु-और, पणीय-प्रणीत, पाणभोयण-आहार पानी रूप, रसाण-रसो का, परिवज्जण-परिवर्जन (त्याग) करना, रस विवज्जण-रसविवर्जन (रस परित्याग) तप, भणिय-कहा गया है।

भावानुवाद-दूध, दही, घी आदि प्रणीत-पुष्ठ आहार-पानी रूप रसो का त्याग करना, रस परित्याग नामक तप कहा गया है।

27 काय क्लेश तप का स्वरूप

मूल गाथा- **ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।**
उग्गा जहा धरिज्जति, कायकिलेसं तमाहियं ॥२७॥

सस्कृत छाया- **स्थानानि वीरासनादीनि, जीवस्य तु सुखावहानि।**
उग्राणि यथा धार्यन्ते, कायक्लेश स आख्यात ॥२७॥

अन्वयार्थ-जीवस्स-जीव के लिए, उ-जो, सुहावहा-(भविष्य में) सुखकारी, उग्गा-उग्र (कठोर), वीरासणा-वीरासन, आइया-आदि, ठाणा-स्थान, जहा-जिस प्रकार, धरिज्जति-धारण किए जाते हैं, त-वह, कायकिलेस-कायक्लेश तप, आहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-आत्मा के लिए आगामी काल में सुखावह, वीरासन आदि उग्र आसन जिस प्रकार धारण किये जाते हैं उसे 'काय क्लेश' तप कहते हैं।

28 प्रतिसलीनता विविक्त शयनासन

मूल गाथा- **एगतमणावाए, इत्थीपसुविवज्जिए।**
सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासणं ॥२८॥

सस्कृत छाया- **एकान्तेऽनापाते, स्त्रीपशुविवर्जिते।**
शयनासनसेवनया, विविक्तशयनासनम् ॥२८॥

अन्वयार्थ-एगत-एकान्त, अणावाए-अनापात मे, इत्थी-स्त्री, पसु-पशु, विवज्जिए-विवर्जित स्थान में, सयणासण-

23 भाव अवमौदर्य की प्ररूपणा

मूल गाथा- अण्णेण विसेसेण, वण्णेण भावमणुमुयते उ।
एव चरमाणो खलु, भावोमाण मुणेयव्व ॥२३॥

सस्कृत छाया- अन्येन विशेषेण, वर्णेन भावमनुन्मुञ्चन् तु।
एव चरन् खलु, भावावमत्व ज्ञातव्यम् ॥२३॥

अन्वयार्थ-अण्णेण-अन्य किसी, विसेसेण-विशेषता से युक्त, वण्णेण-वर्ण से, वा-अथवा, भाव-भाव का अणुमुयते-न छोडता हुआ, एव-इस प्रकार, चरमाणो-आचरण करता हुआ, खलु-निश्चय ही, भावोमाणं-भाव अवमौदर्य, मुणेयव्व-जानना चाहिए।

भावानुवाद-अथवा अमुक विशिष्ट गुण-रोना या हसना आदि से युक्त किसी विशेष वर्ण या भाव से युक्त दाता के हाथ से भिक्षा मिलेगी तो ही भिक्षा लूगा अन्यथा नहीं, इस प्रकार की चर्या वाले साधु को भाव से ऊनोदरी तप होता है।

24 पर्याय सम्बन्धी ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा- दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा।
एएहिं ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥२४॥

सस्कृत छाया- द्रव्ये क्षेत्रे काले, भावे चाख्यातास्तु ये भावा ।
एतैरवमचर , पर्यवचरो भवेद् भिक्षु ॥२४॥

अन्वयार्थ-दव्वे-द्रव्य में, खेत्ते-क्षेत्र में, काले-काल में, य-और, भावम्मि-भाव में, जे-जो, भावा-भाव, आहिया कहे गये हैं, एएहिं-इनसे, ओमचरओ-अवमचरक (ऊनोदरी करने वाला), भिक्खू-भिक्षु (साधु), पज्जवचरओ-पर्याय से (ऊनोदरी करने वाला), पर्यवचरक, भवे-होता है।

भावानुवाद-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो भाव कहे गये हैं, इनसे ऊनोदरी करने वाला मुनि पर्याय से ऊनोदरी करने वाला कहलाता है।

25 भिक्षाचर्या तप स्वरूप और प्रकार

मूल गाथा- अट्ठविहगोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा।
अभिग्गहा य जे अण्णे, भिक्खायरियमाहिया ॥२५॥

सस्कृत छाया- अष्टविधगोचराग्र तु, तथा सप्तैवैषणा ।
अभिग्रहाश्च येऽन्ये, भिक्षाचर्यायामाख्याता ॥२५॥

अन्वयार्थ-अट्ठविह-आठ प्रकार की, गोयरग्गं-गोचराग्र (गोचरी), तु तहा-उसी प्रकार, सत्तेव-सात प्रकार की, एसणा-एषणा, य-और, जे-जो, अण्णे-दूसरे, अभिग्गहा-अभिग्रह हैं (व सब), भिक्खायरियं-भिक्षाचर्या, आहिया-कही गयी है।

भावानुवाद-आठ प्रकार के गोचराग्र, सात प्रकार की एषणाए और अन्य अनेक प्रकार के अभिग्रह हैं, वे सब 'भिक्षाचरी' तप में कहे गए हैं।

26 रस परित्याग का स्वरूप

मूल गाथा- **खीरदहिसप्पिमाई, पणीय पाणभोयण।**
परिवज्जण रसाणु तु, भणियं रसविवज्जण ॥२६॥

सस्कृत छाया- **क्षीरदधिसर्पिरादि, प्रणीत पानभोजनम्।**
परिवर्जन रसाना तु, भणित रसविवर्जनम् ॥२६॥

अन्वयार्थ-खीर-क्षीर (दूध), दहि-दही, सप्पि-सर्पि (घी), आई-आदि, तु-और, पणीय-प्रणीत, पाणभोयण-आहार पानी रूप, रसाण-रसो का, परिवज्जण-परिवर्जन (त्याग) करना, रस विवज्जण-रसविवर्जन (रस परित्याग) तप, भणिय-कहा गया है।

भावानुवाद-दूध, दही, घी आदि प्रणीत-पृष्ठ आहार-पानी रूप रसो का त्याग करना, रस परित्याग नामक तप कहा गया है।

27 काय क्लेश तप का स्वरूप

मूल गाथा- **ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।**
उग्गा जहा धरिज्जति, कायकिलेस तमाहिय ॥२७॥

सस्कृत छाया- **स्थानानि वीरासनादीनि, जीवस्य तु सुखावहानि।**
उग्राणि यथा धार्यन्ते, कायक्लेश स आख्यात ॥२७॥

अन्वयार्थ-जीवस्स-जीव के लिए, उ-जो, सुहावहा-(भविष्य में) सुखकारी, उग्गा-उग्र (कठोर), वीरासणा-वीरासन, आइया-आदि, ठाणा-स्थान, जहा-जिस प्रकार, धरिज्जति-धारण किए जाते हैं, त-वह, कायकिलेस-कायक्लेश तप, आहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-आत्मा के लिए आगामी काल मे सुखावह, वीरासन आदि उग्र आसन जिस प्रकार धारण किये जाते हैं उसे 'काय क्लेश' तप कहते हैं।

28 प्रतिसलीनता विविक्त शयनासन

मूल गाथा- **एगतमणावाए, इत्थीपसुविवज्जिए।**
सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासण ॥२८॥

सस्कृत छाया- **एकान्तेऽनापाते, स्त्रीपशुविवर्जिते।**
शयनासनसेवनया, विविक्तशयनासनम् ॥२८॥

अन्वयार्थ-एगत-एकान्त, अणावाए-अनापात मे, इत्थी-स्त्री, पसु-पशु, विवज्जिए-विवर्जित स्थान मे, सयणासण-

23 भाव अवमौदर्य की प्ररूपणा

मूल गाथा-

अण्णेण विसेसेण, वण्णेण भावमणुमुयंते उ।
एव चरमाणो खलु, भावोमाण मुणेयव्व ॥23॥

संस्कृत छाया-

अन्येन विशेषेण, वर्णेन भावमनुन्मुञ्चन् तु।
एव चरन् खलु, भावावमत्व ज्ञातव्यम् ॥२३॥

अन्वयार्थ-अण्णेण-अन्य किसी, विसेसेण-विशेषता से युक्त, वण्णेण-वर्ण से, वा-अथवा, भावं-भाव को अणुमुयंते-न छोडता हुआ, एव-इस प्रकार, चरमाणो-आचरण करता हुआ, खलु-निश्चय ही, भावोमाण-भाव अवमौदर्य, मुणेयव्व-जानना चाहिए।

भावानुवाद-अथवा अमुक विशिष्ट गुण-रोना या हसना आदि से युक्त किसी विशेष वर्ण या भाव से युक्त दाता के हाथ से भिक्षा मिलेगी तो ही भिक्षा लूगा अन्यथा नहीं, इस प्रकार की चर्या वाले साधु को भाव से ऊनोदरी तप होता है।

24 पर्याय सम्बन्धी ऊनोदरी तप का वर्णन

मूल गाथा-

दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा।
एएहिं ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥24॥

संस्कृत छाया-

द्रव्ये क्षेत्रे काले, भावे चाख्यातास्तु ये भावा ।
एतैरवमचर, पर्यवचरो भवेद् भिक्षु ॥२४॥

अन्वयार्थ-दव्वे-द्रव्य मे, खेत्ते-क्षेत्र में, काले-काल में, य-और, भावम्मि-भाव में, जे-जो, भावा-भाव, आहिया कहे गये हैं, एएहिं-इनसे, ओमचरओ-अवमचरक (ऊनोदरी करने वाला), भिक्खू-भिक्षु (साधु), पज्जवचरओ पर्याय से (ऊनोदरी करने वाला), पर्यवचरक, भवे-होता है।

भावानुवाद-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो भाव कहे गये हैं, इनसे ऊनोदरी करने वाला मुनि पर्याय से ऊनोदरी करने वाला कहलाता है।

25 भिक्षाचर्या तप स्वरूप और प्रकार

मूल गाथा-

अट्ठविहगोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा।
अभिग्गहा य जे अण्णे, भिक्खायरियमाहिया ॥25॥

संस्कृत छाया-

अष्टविधगोचराग्र तु, तथा सप्तैवैषणा ।
अभिग्रहाश्च येऽन्ये, भिक्षाचर्यामाख्याता ॥२५॥

अन्वयार्थ-अट्ठविह-आठ प्रकार की, गोयरग्गं-गोचराग्र (गोचरी), तु तहा-उसी प्रकार, सत्तव-सत प्रकार की एसणा-एषणा, य-और, जे-जो, अण्णे-दूसरे, अभिग्गहा-अभिग्रह हैं (ये सब), भिक्खायरियं-भिक्षाचर्या, आहिया-कही गयी है।

भावानुवाद-आठ प्रकार के गोचराग्र, सात प्रकार की एषणाए और अन्य अनेक प्रकार के अभिग्रह हैं, वे सब 'भिक्षाचरी' तप मे कहे गए हैं।

26 रस परित्याग का स्वरूप

मूल गाथा- **खीरदहिसप्पिमाई, पणीय पाणभोयण।**
परिवज्जण रसाणु तु, भणिय रसविवज्जणं॥२६॥

सस्कृत छाया- **क्षीरदधिसर्पिरादि, प्रणीत पानभोजनम्।**
परिवर्जन रसाना तु, भणित रसविवर्जनम्॥२६॥

अन्वयार्थ-खीर-क्षीर (दूध), दहि-दही, सप्पि-सर्पि (घी), आई-आदि, तु-और, पणीय-प्रणीत, पाणभोयण-आहार पानी रूप, रसाण-रसों का, परिवज्जण-परिवर्जन (त्याग) करना, रस विवज्जण-रसविवर्जन (रस परित्याग) तप, भणिय-कहा गया है।

भावानुवाद-दूध, दही, घी आदि प्रणीत-घृष्ठ आहार-पानी रूप रसो का त्याग करना, रस परित्याग नामक तप कहा गया है।

27 काय क्लेश तप का स्वरूप

मूल गाथा- **ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा।**
उग्गा जहा धरिज्जति, कायकिलेस तमाहिय॥२७॥

सस्कृत छाया- **स्थानानि वीरासनादीनि, जीवस्य तु सुखावहानि।**
उग्राणि यथा धार्यन्ते, कायक्लेश स आख्यात॥२७॥

अन्वयार्थ-जीवस्स-जीव के लिए, उ-जो, सुहावहा-(भविष्य मे) सुखकारी, उग्गा-उग्र (कठोर), वीरासणा-वीरासन, आइया-आदि, ठाणा-स्थान, जहा-जिस प्रकार, धरिज्जति-धारण किए जाते हैं, त-वह, कायकिलेस-कायक्लेश तप, आहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-आत्मा के लिए आगामी काल मे सुखावह, वीरासन आदि उग्र आसन जिस प्रकार धारण किये जाते हैं उसे 'काय क्लेश' तप कहते हैं।

28 प्रतिसलीनता विविक्त शयनासन .

मूल गाथा- **एगतमणावाए, इत्थीपसुविवज्जिए।**
सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासणं॥२८॥

सस्कृत छाया- **एकान्तेऽनापाते, स्त्रीपशुविवर्जिते।**
शयनासनसेवनया, विविक्तशयनासनम्॥२८॥

अन्वयार्थ-एगत-एकान्त, अणावाए-अनापात में, इत्थी-स्त्री, पसु-पशु, विवज्जिए-विवर्जित स्थान में, सयणासण-

शयनासन का, सेवणया-सेवन करना, विवित्त-विविक्त, सयणासण-शयनासन तप है।

भावानुवाद-एकान्त, अनापात (जहा किसी का आवागमन न हो) तथा स्त्री, पशु आदि से रहित शयन एव आसन ग्रहण करना 'विविक्त शयनासन' (प्रतिसलीनता) तप है।

29 बाह्य तप के पश्चात् आभ्यतर तप का प्रतिपादन

मूल गाथा- एसो बाहिरग तवो, समासेण वियाहिओ।
अभितर तवं एत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो॥२९॥

सस्कृत छाया- एतद् बाह्य तप , समासेन व्याख्यातम्।
आभ्यन्तर तप इत , वक्ष्येऽनुपूर्वश ॥२९॥

अन्वयार्थ-एसो-यह, बाहिरग-बाह्य, तवो-तप, समासेण-सक्षेप से, वियाहिओ-कहा गया है, एत्तो-इसके आगे, अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, अब्भितर-आभ्यन्तर, तव-तप का, वुच्छामि-वर्णन करूगा (कहूगा)।

भावानुवाद-यह सक्षेप मे बाह्य तप कहा गया है, अब क्रमश आभ्यन्तर तप का वर्णन करूगा।

30 आभ्यन्तर तप के छह भेद

मूल गाथा- पायच्छित्त विणओ, वेयावच्च तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अभितरो तवो॥३०॥

सस्कृत छाया- प्रायश्चित्त विनय , वैयावृत्य तथैव स्वाध्याय ।
ध्यान च व्युत्सर्ग , एतदाभ्यन्तर तप ॥३०॥

अन्वयार्थ-पायच्छित्त-प्रायश्चित्त, विणओ-विनय, वेयावच्चं-वैयावृत्य, तहेव-तथा, सज्झाओ-स्वाध्याय, झाण-ध्यान, च-और, विउस्सग्गो-व्युत्सर्ग, एसो-यह (छह प्रकार का), अब्भितरो-आभ्यन्तर, तवो-तप है।

भावानुवाद-प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, ध्यान और व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग यह आभ्यन्तर तप है।

31 प्रायश्चित्त स्वरूप और भेद ·

मूल गाथा- आलोयणारिहाईय, पायच्छित्त तु दसविह।
ज भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं॥३१॥

सस्कृत छाया- आलोचनार्हादिक, प्रायश्चित्त तु दशविधम्।
यद् भिक्षुर्वहति सम्यक्, प्रायश्चित्त तदाख्यातम्॥३१॥

अन्वयार्थ-आलोयणारिहाईयं-आलोचना के योग्य, पायच्छित्त-प्रायश्चित्त, तु-तो, दसविह-दस प्रकार का है, जं-जिसको, भिक्खू-भिक्षु (साधु), सम्म-सम्यक् प्रकार से, वहइ-वहन (सेवन) करता है, तं-उसे, पायच्छित्तं-प्रायश्चित्त, आहियं-कहा गया है।

भावानुवाद-आलोचना करने के योग्य आदि दस प्रायश्चित्त है, जिसका भिक्षु सम्यक् प्रकार से पालन करता है उसे 'प्रायश्चित्त' तप कहा है।

32 विनय तप का लक्षण

मूल गाथा- **अब्भुट्ठाण अजलिकरण, तहेवासणदायण।**
गुरुभतिभावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ॥३२॥

सस्कृत छाया- **अभ्युत्थानमञ्जलिकरण, तथैवासनदानम्।**
गुरुभक्तिभावशुश्रूषा, विनय एष व्याख्यात ॥३२॥

अन्वयार्थ-अब्भुट्ठाणं-अभ्युत्थान देना, अजलिकरण-अजलिकरण (हाथ जोडना), आसण-आसन, दायण-देना, गुरुभत्ति-गुरुजनो की भक्ति, तहेव-और, भावसुस्सूसा-भाव शुश्रूषा करना, एस-यह, विणओ-विनय, वियाहिओ-कहा गया है।

भावानुवाद-गुरु के समक्ष खडे होना, हाथ जोडना, गुरुजनो को आसन देना, उनकी भक्ति करना, भावपूर्ण सेवा शुश्रूषा करना 'विनय' तप है।

33 वैयावृत्य तप स्वरूप और प्रकार

मूल गाथा- **आयरियमाईए, वेयावच्चम्मि दसविहे।**
आसेवण जहाथाम, वेयावच्च तमाहिय ॥३३॥

सस्कृत छाया- **आचार्यादिके वैयावृत्ये दशविधे।**
आसेवन यथास्थाम, वैयावृत्य तदाख्यातम् ॥३३॥

अन्वयार्थ-वेयावच्चम्मि-वैयावृत्य मे, आयरियमाईए-आचार्यादिक, दसविहे-दस स्थानों की, जहाथाम-यथाशक्ति, आसवेण-सेवा भक्ति करना, त-वह, वेयावच्च-वैयावृत्य तप, आहिय-कहा जाता है।

भावानुवाद-वैयावृत्य करने के योग्य आचार्य आदि अर्थात् आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, नवदीक्षित, साधर्मिक, कुल, गण और सघ इन दस स्थानो की यथाशक्ति सेवाभक्ति करना 'वैयावृत्य' तप है।

34 स्वाध्याय तप

मूल गाथा- **वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्टणा।**
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पचहा भवे ॥३४॥

सस्कृत छाया- **वाचना पृच्छना चैव, तथैव परिवर्तना।**
अनुप्रेक्षा धर्मकथा, स्वाध्याय पञ्चधा भवेत् ॥३४॥

अन्वयार्थ-वायणा-वाचना, चेव-और, पुच्छणा-पृच्छना, तहेव-उसी प्रकार, परियट्टणा-परिवर्तना, अणुप्पेहा-अनुप्रेक्षा, धम्मकहा-धर्म कथा, पचहा-ये पाच भेद, सज्झाओ-स्वाध्याय तप के, भवे-होते हैं।

भावानुवाद-वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा एव धर्मकथा यह पाच प्रकार का 'स्वाध्याय' तप है।

35 ध्यान हेय और उपादेय

मूल गाथा-

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए॥३५॥

संस्कृत छाया-

आर्तरौद्राणिवर्जयित्वा, ध्यायेत् सुसमाहित ।
धर्मशुक्ले ध्याने, ध्यान तत्तु बुधा वदेयु ॥३५॥

अन्वयार्थ-सुसमाहिए-सुसमाधिवत साधु, अट्टरुद्दाणि-आर्त्तध्यान (और) रौद्र ध्यान को, वज्जित्ता-छोड क धम्म-धर्मध्यान (और), सुक्काई-शुक्लध्यान, झाणाइ-(इन दो) ध्यानो को, झाएज्जा-ध्यावे, तं-उसे, तु-तो बुहा-तत्त्वज्ञ पुरुष, झाण-ध्यान, वए-कहते हैं।

भावानुवाद-आर्त्त और रौद्र ध्यान का परित्याग करके जो सुसमाधिवत साधु धर्म और शुक्ल ध्यान ध्याता है ज्ञानी पुरुष उसे ही 'ध्यान' तप कहते हैं।

36 कायोत्सर्ग का स्वरूप

मूल गाथा-

सयणासणठाणे वा, जे उ भिक्खू ण वावरे।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ॥३६॥

संस्कृत छाया-

शयनासनस्थाने वा, यस्तु भिक्षुर्न व्याप्रियते।
कायस्य व्युत्सर्ग , षष्ठ स परिकीर्तित ॥३६॥

अन्वयार्थ-सयण-शयन, वा-या, आसणठाणे-आसन स्थान मे, जे-जो, भिक्खू-भिक्षु (साधु), ण वावरे-स्थित हुआ (चलनात्मक क्रिया न करना), सो-वह, कायस्स विउस्सग्गो-काय व्युत्सर्ग नामक, छट्ठो-छठा तप, परिकित्तिओ-परिकीर्तित-कहा गया है।

भावानुवाद-सोने, बैठने तथा खड़ा होने में जो साधु कायिक व्यापार नहीं करता है अर्थात् हलन-चलन नहीं करता है, वह 'कायोत्सर्ग' नामक छठा तप है।

37 बाह्य और आभ्यन्तर तप का फल

मूल गाथा-

एव तव तु दुविह, जे सम्मं आयरे मुणी।
सो खिप्पं सव्वससारा, विप्पमुच्चइ पडिओ॥३७॥

त्ति बेमि

इति तवमग्ग गई तीसइम अज्झयण समत्त॥३०॥

संस्कृत छाया- एव तपस्तु द्विविध, यत्सम्यगाचरेन्मुनि ।
स क्षिप्र सर्वससारात्, विप्रमुच्यते पण्डित ॥३७॥

इति ब्रवीमि

इति तपोमार्ग समाप्तम् ॥३०॥

अन्वयार्थ-एयं-इस प्रकार, दुविह-दोनो प्रकार के, तव-तप का, जे-जो, मुणी-मुनि, सम्म-सम्यक् प्रकार से, आयरे-आचरण करता है, सो-वह, पडिओ-पडित साधु, खिप्प-शीघ्र ही, सव्व ससारा-समस्त ससार से, विप्पमुच्चइ-विप्रमुक्त-छूट जाता है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इन आभ्यन्तर और बाह्य दोनो प्रकार के तप का जो मुनि सम्यक् प्रकार से आचरण करता है वह पण्डित साधु शीघ्र ही समस्त ससार से मुक्त हो जाता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार तपो मार्ग गति नामक तीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

भावानुवाद-वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा एव धर्मकथा यह पाच प्रकार का 'स्वाध्याय' तप है।

35 ध्यान हेय और उपादेय

मूल गाथा- अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइं झाणाइ, झाण त तु बुहा वए॥३५॥

सस्कृत छाया- आर्तरौद्राणिवर्जयित्वा, ध्यायेत् सुसमाहित ।
धर्मशुक्ले ध्याने, ध्यान तत्तु बुधा वदेयु ॥३५॥

अन्वयार्थ-सुसमाहिए-सुसमाधिवत साधु, अट्टरुद्दाणि-आर्तध्यान (और) रौद्र ध्यान को, वज्जित्ता-छोड़ कर, धम्म-धर्मध्यान (और), सुक्काइ-शुक्लध्यान, झाणाइ-(इन दो) ध्यानों को, झाएज्जा-ध्यावे, तं-उसे, तु-तो, बुहा-तत्वज्ञ पुरुष, झाणं-ध्यान, वए-कहते हैं।

भावानुवाद-आर्त्त और रौद्र ध्यान का परित्याग करके जो सुसमाधिवत साधु धर्म और शुक्ल ध्यान ध्याता है ज्ञानी पुरुष उसे ही 'ध्यान' तप कहते हैं।

36 कायोत्सर्ग का स्वरूप

मूल गाथा- सयणासणठाणे वा, जे उ भिक्खू ण वावरे।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ॥३६॥

सस्कृत छाया- शयनासनस्थाने वा, यस्तु भिक्षुर्न व्याप्रियते।
कायस्य व्युत्सर्गो , षष्ठ स परिकीर्तित ॥३६॥

अन्वयार्थ-सयण-शयन, वा-या, आसणठाणे-आसन स्थान में, जे-जो, भिक्खू-भिक्षु (साधु), ण वावरे-स्थित हुआ (चलनात्मक क्रिया न करना), सो-वह, कायस्स विउस्सग्गो-काय व्युत्सर्ग नामक, छट्ठो-छठा तप, परिकित्तिओ-परिकीर्तित-कहा गया है।

भावानुवाद-सोने, बैठने तथा खडा होने मे जो साधु कायिक व्यापार नहीं करता है अर्थात् हलन-चलन नहीं करता है, वह 'कायोत्सर्ग' नामक छठा तप है।

37 बाह्य और आभ्यन्तर तप का फल

मूल गाथा- एवं तवं तु दुविहं, जे सम्म आयरे मुणी।
सो खिप्प सव्वससारा, विप्पमुच्चइ पडिओ॥३७॥

त्ति बेमि

इति तवमग्ग गई तीसइम अज्झयणं समत्त॥३०॥

संस्कृत छाया- एव तपस्तु द्विविध, यत्सम्यगाचरेन्मुनि ।
स क्षिप्र सर्वससारात्, विप्रमुच्यते पण्डित ॥३७॥

इति ब्रवीमि

इति तपोमार्ग समाप्तम् ॥३०॥

अन्वयार्थ-एय-इस प्रकार, दुविह-दोनो प्रकार के, तव-तप का, जे-जो, मुणी-मुनि, सम्म-सम्यक् प्रकार से, आयरे-आचरण करता है, सो-वह, पडिओ-पडित साधु, खिप्प-शीघ्र ही, सव्व ससारा-समस्त ससार से, विप्पमुच्चइ-विप्रमुक्त-छूट जाता है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इन आभ्यन्तर और बाह्य दोनो प्रकार के तप का जो मुनि सम्यक् प्रकार से आचरण करता है वह पण्डित साधु शीघ्र ही समस्त ससार से मुक्त हो जाता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार तपो मार्ग गति नामक तीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

चरण-विधि - ऐकत्रिशत् अध्ययन

उत्थानिका

जहा जीवन है वहा प्रवृत्ति अवश्यम्भावी है। सासारिक जीवन अथवा जन्म-मरण से परिपूर्ण मुक्ति पर ही अप्रवृत्ति बन सकती है। जब जीवन मे प्रवृत्ति अवश्यम्भावी है और हमें अप्रवृत्ति की ओर जाना है तो सर्वप्रथम असत्प्रवृत्ति से मुक्त होकर सत्प्रवृत्ति में गतिशील होना पड़ेगा। यह सत्प्रवृत्ति ही चरण-आचरण की आधार भूमि है।

प्रस्तुत अध्ययन को चरण-विधि की यथार्थ सज्ञा दी गई है। इसमे असत्प्रवृत्तियो से निवृत्ति और सत्प्रवृत्तियों के प्रति गति का सदेश दिया गया है। असत्प्रवृत्ति का अर्थ है-अविवेक पूर्वक किया जाने वाला आचरण। जहा अविवेक है वहा सयम-साधना असभव है। अत साधक के लिए जान लेना आवश्यक है कि असत्प्रवृत्तिया कौन-कौनसी हैं और उनसे कैसे बचा जा सकता है, साथ ही यह भी आवश्यक है कि साधक-सत्प्रवृत्तियो का ज्ञान करके उनकी आचरण विधि को सम्यक् प्रकार से समझ लें। इन्हीं विषयो का सार गर्भित-सक्षिप्त विवेचन किया गया है, प्रस्तुत अध्ययन मे।

साधक जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो पर बल दिया गया है। साधक असयम से निवृत्त होता है तो सयम मे प्रवृत्ति करता है। राग-द्वेष से निवृत्त होता है तो वीतराग भाव-स्वभाव में रमण करता है, साधक दण्डों-मन, वचन-काय के व्यापार से मुक्त होता है, शल्यों और गौरवो से दूर रहता है, कषायों एव आहार, भय, मैथुन आदि सज्ञाओ से दूर रहता है, जो भय स्थानो, मद स्थानो एव समस्त हिसा जनक, ब्रह्मचर्यनाशक प्रवृत्तियो स दूर रहता है, वही साधक है।

ऐसे तेतीस प्रसगो का सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है जिनके प्रति साधक सदा यत्नवान् बना रहे तो उसकी आत्म समाधि बनी रहती है और वह ससार परिभ्रमण से मुक्त हो जाता है।

बहुत से प्रसग-असयम वर्जन, असमाधि स्थान, सबल दोष, मोहकर्म बन्ध स्थान एव आशातना वर्जन आदि ऐसे हैं जिनके सम्यगनुशीलन से साधक का वर्तमान जीवन भी सुव्यवस्थित एव समाधिवन्त बना रहता है।

सक्षेप मे मुक्ति माग या ससार चक्र में परिभमण से छुटकारा प्राप्त करने का सारगर्भित विवेचन हुआ है-प्रस्तुत अध्ययन में।

पढे और आप स्वय आनद लें मूल आगमिक वाणी के रसास्वादन का।

ooo

चरण-विधि - ऐकत्रिशत् अध्ययन

सूक्ति साराश

सम्यक् चारित्राराधना ही स्थाई सुख का आधार है।
ससार सागर से तैरने-पार होने का एक ही मार्ग है-चारित्राराधना।

असयम से बचो, सयम मे गति करो, यही श्रेय मार्ग है।
असयम से बचाव एव सयम मे प्रवृत्ति ही चारित्र आराधना है।

मानसिक-वाचिक-कायिक शक्ति का सम्यगुपयोग आत्म शान्ति का द्वार है।
आत्म शान्ति चाहते हो तो योगत्रय का सम्यगुपयोग करो।

सुकथा-सुध्यान मुक्ति के द्वार खोलते है।
दुष्कथा-दुर्ध्यान एव कषायो से सदैव बचे रहो, मुक्ति अत्यन्त निकट हो जाएगी।

व्रतो का आराधन-मुक्ति का साधन।
अपने आप को सम्यक् प्रवृत्ति एव व्रतो मे स्थिर करो, फिर ससार मे नहीं रहोगे।

दुर्विचारो से बचो-दुर्गति से बच जाओगे।
सात्विक भोजन असद् विचारो से बचाता है, असद् विचार-दुर्गति से बचाते हैं।

मन की सहजता भय मुक्त करती है।
मन को इतना सरल-सहज बना लो कि भय-आतक एव अह निकट न आने पाये।

सही अर्थो मे आत्म रमणता ही ब्रह्मचर्य है।
अपनी इन्द्रियो एव मन को सगुप्त रखो, ब्रह्मचर्य सध जाएगा।

आत्मलीनता सीख लो धार्मिक हो जाओगे।
क्षमा, निर्लोभता आदि दस धर्मों को आत्मसात कर लो, फिर अन्य किसी उपासना की आवश्यकता नहीं है।

दोष सेवन हो जाए तो पश्चात्ताप करो।
पुन पुन दोष का सेवन श्रद्धा से भी विचलित कर सकता है।

आशातना से बचो, साधक बन जाओगे।
बडो की आशातना बोधि से भी वचित कर सकती है।

□□□

अह चरणविही एगतीसइमं अज्झयणं

अथ चरणविधिनामैकत्रिंशत्तमध्ययनम्

चरण-विधि

1 चारित्र विधि . महत्त्व और फल

मूल गाथा- चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं॥1॥

संस्कृत छाया- चरणविधिं प्रवक्ष्यामि, जीवस्य तु सुखावहम्।
यं चरित्वा बहवो जीवा, तीर्णाः संसारसागरम्॥1॥

अन्वयार्थ-(मैं) चरणविहिं-चारित्र विधि का, पवक्खामि-वर्णन करूंगा, उ-जो कि, जीवस्स-जीव को, सुहावहं-सुखकारी है, जं-जिसका, चरित्ता-आचरण करके, बहू-बहुत से, जीवा-जीव, संसारसागरं-संसार सागर से, तिण्णा-तिर गये हैं।

भावानुवाद-जीव के लिए सुखप्रद-शुभप्रद उस चारित्र-आचरण विधि का वर्णन करूंगा जिसका आचरण करके बहुत से जीव संसार को तैर गए हैं-पार कर गए हैं।

2 चरण विधि का संक्षिप्त स्वरूप प्रथम बोल

मूल गाथा- एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं।
असंजमे णियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं॥2॥

संस्कृत छाया- एकतो विरतिं कुर्यात्, एकतश्च प्रवर्तनम्।
असंयमान्निवृत्तिं च, संयमे च प्रवर्तनम्॥2॥

अन्वयार्थ-एगओ-एक स्थान से, विरइं-विरति, कुज्जा-करे, य-और, एगओ-एक स्थान से, पवत्तणं-प्रवृत्ति करे (अर्थात्), असंजमे-असंयम से, णियत्तिं-निवृत्ति करे, च-और, संजमे-संयम से, पवत्तणं-प्रवृत्ति करे।

भावानुवाद-साधक को चाहिए कि वह एक ओर से निवृत्ति और एक ओर से प्रवृत्ति करे। असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करे।

3 द्विविध पाप कर्म-निरोध दूसरा बोल

मूल गाथा- रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म-पवत्तणे।
जे भिक्खू रुभई णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥3॥

सस्कृत छाया- रागद्वेषौ च द्वौ पापौ, पापकर्मप्रवर्तकौ।
यो भिक्षु निरुणद्धि नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥३॥

अन्वयार्थ-पावकम्म-पाप कर्म में, पवत्तणे-प्रवृत्ति कराने वाला, रागे-राग, य-और, दोसे-दोष ये, दो-दो, पावे-पाप हैं, जे-जो, भिक्खू-भिक्षु (साधु), णिच्च-नित्य, रुभई-रोकता है, से-वह, मडले-ससार मे, ण अच्छइ-परिभमण नहीं करता है।

भावानुवाद-पाप कर्म मे प्रवृत्ति करवाने वाले राग और द्वेष ये दो पाप हैं, जो भिक्षु साधक इन दोनो का सदा निरोध कर लेता है वह ससार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

4 त्रिविध दण्ड, गौरव एव शल्य से निवृत्ति तीसरा बोल

मूल गाथा- दडाण गारवाण च, सल्लाण च तिय तिय।
जे भिक्खू चयइ णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥4॥

सस्कृत छाया- दण्डाना गौरवाणा च, शल्याना च त्रिक त्रिकम्।
यो भिक्षुस्त्यजति नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥४॥

अन्वयार्थ-जे-जो, भिक्खू-भिक्षु (साधु), तिय-तीन, दडाण-दडो को, च-तथा, तिय-तीन, गारवाण-गौरवो को, च-तथा, सल्लाण-शल्यो को, णिच्च-नित्य, चयइ-त्यागता है, से-वह, मडले-ससार मे, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधक तीन दण्ड, तीन गौरव और तीन शल्यो का सदैव त्याग करता है वह ससार मे नहीं रुकता है, परिभ्रमण नहीं करता है।

5 दवादि सम्बन्धी उपसर्ग सहन

मूल गाथा- दिव्वे य जे उवसग्गे, तहा तेरिच्छमाणुसे।
जे भिक्खू सहइ णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥5॥

सस्कृत छाया- दिव्याश्च यानुपसर्गान् तथा तैरश्चमानुष्यान्।
यो भिक्षु सहते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥५॥

अन्वयार्थ-जे-जो, भिक्खू-साधु, दिव्वे-देव सम्बन्धी, तहा-तथा, तेरिच्छ-तिर्यञ्च सम्बन्धी, य-और माणुसे-मनुष्य सम्बन्धी, उवसग्गे-उपसर्गों को, णिच्च-नित्य, सहइ-सहन करता है, से-वह, मडले-मण्डल (ससार) में ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-देव, तिर्यञ्च और मनुष्य सम्बन्धी उपसर्गों को जो भिक्षु सम्यक् प्रकार से सहन करता है वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है।

6 विकथा-कषाय, सज्ञा, ध्यान-द्वय से निवृत्ति चौथा बोल

मूल गाथा- विगहा कसाय सण्णाणं, झाणाण य दुय तहा।
जे भिक्खू वज्जइ णिच्च, से ण अच्छइ मडले ॥६॥

संस्कृत छाया- विकथाकषायसंज्ञानां, ध्यानानां च द्विकं तथा।
यो भिक्षुर्वर्जयति नित्य, स न तिष्ठति मण्डले ॥६॥

अन्वयार्थ-विगहा-चार विकथा, कसाय-चार कषाय, च-और, सण्णाण-चार सज्ञा, तहा-तथा, दुय-दो, झाणाणं-ध्यानो को, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-सदैव, वज्जइ-छोड देता है, से-वह, मडले-संसार में, ण अच्छइ परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो भिक्षु चार विकथाओं, चार कषायों, चार सज्ञाओ एव आर्तध्यान तथा रौद्र ध्यान इन दोनों ध्यानों का सदा वर्जन करता है-इन्हें त्याग देता है, वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है।

7 पाच व्रत, इन्द्रियार्थ, समिति और क्रियाओ मे यतना पाचवाँ बोल

मूल गाथा- वएसु इंदियत्थेसु, समिईसु किरियासु य।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मडले ॥७॥

संस्कृत छाया- व्रतेष्विन्द्रियार्थेषु, समितिषु क्रियासु च।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले ॥७॥

अन्वयार्थ-वएसु-पाच महाव्रतों में, य-और, समिईसु-पाच समितियो में, इदियत्थेसु-पाच इन्द्रियों के विषयों में (और) किरियासु-पाच क्रियाओं के परित्याग में, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-नित्य, जयई-यत्न करता है, से-वह, मडले-मण्डल में, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-पाच महाव्रतो और पाच समितियो के पालन में तथा पाच इन्द्रियों के विषयो तथा पाच क्रियाओं के परित्याग म जो भिक्षु सदैव यत्नशील रहता है, वह संसार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

8 षड्विध लेश्या-काय-आहार-कारण मे प्रवृत्ति निवृत्ति छठा बोल

मूल गाथा- लेसासु छसु काएसु, छक्के आहारकारणे।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मंडले ॥८॥

संस्कृत छाया- लेश्यासु षट्सु कायेषु, षट्के आहारकारणे।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले ॥८॥

अन्वयार्थ-छसु-छह, लेसासु-लेश्याओ म, काएसु-छह काय ।, छक्के-छह, आहारकारणे-आहार के कारणों

में, जो-जो, भिक्खू-भिक्षु (साधु), णिच्च-नित्य, जयइ-उपयोग रखता है, से-वह, मडले-मण्डल मे, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-छह लेश्याओ, पृथ्वीकाय आदि छह कायो तथा आहार को ग्रहण करने और छोडने के छह-छह कारणो मे जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह ससार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

9 सप्त विध पिण्डावग्रह-आहार प्रतिमा-भय स्थानो मे उपयोग   सातवा बोल

मूल गाथा- पिंडोग्गहपडिमासु, भयट्ठाणेसु सत्तसु।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥९॥

सस्कृत छाया- पिण्डावग्रहप्रतिमासु, भयस्थानेषु सप्तसु।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥९॥

अन्वयार्थ-पिडोग्गह-आहार ग्रहण विषयक (सात), पडिमासु-प्रतिमाओ मे, सत्तसु-सात, भयट्ठाणेसु-भय स्थानो में, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-सदैव, जयइ-उपयोग रखता है, से-वह, मडले-ससार मे, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-आहार ग्रहण विषयक सात प्रतिमाओ में तथा सात भय स्थानो में जो साधक सदा उपयोग रखता है, वह ससार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

10 अष्ट विध मदस्थान, नव विध ब्रह्मचर्य गुप्ति, दश विध श्रमण धर्म   8वा, 9वा व 10वा बोल

मूल गाथा- मएसु बभगुत्तीसु, भिक्खु धम्ममि दसविहे।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥१०॥

सस्कृत छाया- मदेषु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु, भिक्षुधर्मे दशविधे।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥१०॥

अन्वयार्थ-(आठ) मएसु-मद स्थाना मे, (नौ) बभगुत्तीसु-ब्रह्मचर्य की गुप्तियो मे, दसविहे-दस प्रकार के, भिक्खू धम्मम्मि-यति धर्म मे, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-सदैव, जयइ-यत्न करता है, से-वह, मडले-ससार मे, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-आठ मद स्थानो के परित्याग मे, नौ ब्रह्मचर्य की गुप्तियो के परिपालन मे और दस प्रकार के भिक्षु धर्मों मे जो भिक्षु सदा यत्नवान् होता है, वह ससार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

11 एकादश, प्रतिमा, द्वादश भिक्षु प्रतिमा मे उपयोग   11वा, 12वा बोल

मूल गाथा- उवासगाण पडिमासु, भिक्खूण पडिमासु य।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मंडले॥११॥

सस्कृत छाया- उपासकाना प्रतिमासु, भिक्षूणा प्रतिमासु च।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥११॥

अन्वयार्थ-उवासगाण-उपासकों की (ग्यारह), पडिमासु-प्रतिमाओं में, य-और, भिक्खूण-(द्वादश) भिक्षु की, पडिमासु-प्रतिमाओं मे, जे-जो, भिक्खु-साधु, णिच्चं-नित्य, जयइ-यत्न करता है, से-वह, मंडले-संसार में, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-श्रावक की एकादश प्रतिमाओं में और श्रमण की द्वादश प्रतिमाओं में जो साधक सदा उपयोग रखता है, वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है।

12 क्रिया स्थान, भूतग्राम एवं परमाधार्मिक तेरहवां, चौदहवां व पन्द्रहवां बोल

मूल गाथा- किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले॥12॥

संस्कृत छाया- क्रियासु भूतग्रामेषु, परमाधार्मिकेषु च।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं, स न तिष्ठति मण्डले॥१२॥

अन्वयार्थ-किरियासु-क्रियाओं मे, भूयगामेसु-भूतग्रामों में, य-और, परमाहम्मिएसु-परमाधार्मिकों में, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्चं-सदैव, जयइ-यत्न करता है, से-वह, मंडले-संसार में, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-तेरह क्रिया स्थानों में और चौदह भूत ग्रामों-जीव-समुदायों में तथा पन्द्रह परमाधार्मिक देवों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

13 गाथा षोडशक एवं सप्तदश असंयम सोलहवां, सतरहवां बोल

मूल गाथा- गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले॥13॥

संस्कृत छाया- गाथाषोडशकेषु, तथाऽसंयमे च।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं, स न तिष्ठति मण्डले॥१३॥

अन्वयार्थ-गाहा-गाथा, सोलसएहिं-सोलह अध्ययनों में, तहा य-तथा, असंजमम्मि-असंयम में, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्चं-सदैव, जयइ-यत्न करता है, से-वह, मंडले-संसार में, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधक गाथा-षोडशक-सूत्रकृतांग सूत्र के सोलह अध्ययनों में तथा सतरह प्रकार के असंयम में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता है।

14 ब्रह्मचर्य, ज्ञाताध्ययन एवं असमाधि स्थान अठारहवां, उन्नीसवां, बीसवां बोल

मूल गाथा- बंभम्मि णायज्झयणेसु, ठाणेसु असमाहिए।
जे भिक्खू जयई णिच्चं, से ण अच्छइ मंडले॥14॥

संस्कृत छाया- ब्रह्मचर्ये ज्ञाताध्ययनेषु, स्थानेषु असमाधेः।
यो भिक्षुर्यतते नित्यं, स न तिष्ठति मण्डले॥१४॥

अन्वयार्थ-बभम्मि-ब्रह्मचर्य के अठारह भेदो मे, णायज्झयणेसु-ज्ञाता सूत्र के, उन्नीस-अध्ययनो मे, असमाहिए-असमाधि के, ठाणेसु-बीस स्थानो मे, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-सदैव, जयइ-यतना रखता है, से-वह, मडल-ससार मे, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधक सदा अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य के पालन मे सदा यत्नवान् रहता है, ज्ञाता सूत्र के उन्नीस अध्ययनो का पठन करता है तथा बीस असमाधि स्थानो का परित्याग करता है, वह ससार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

15 शबल एव परीषह इक्कीसवा, बाइसवा बोल

मूल गाथा- एगवीसाए सबले, बावीसाए परीसहे।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥१५॥

सस्कृत छाया- एकविशतिशबलेषु, द्वाविशतिपरिषहेषु।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥१५॥

अन्वयार्थ-एगवीसाए-इक्कीस, सबले-शबल दोष, बावीसाए-बाईस, परीसहे-परीषहो मे, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-नित्य, जयइ-उपयोग करता है, से-वह, मडल-मडल मे, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधु-सदैव इक्कीस सबल दोषो और बाईस परीषहो में उपयोग रखता है अर्थात् इक्कीस सबल दोषो का त्याग करता है और बाईस परीषहो को समभाव पूर्वक सहन करता है, वह ससार में परिभ्रमण नहीं करता हे।

16 सूत्रकृताग-अध्ययन एव रूपाधिक देव तेइसवा, चौबीसवा बोल

मूल गाथा- तेवीसाएसूयगडेसु, रूवाहिएसु सुरेसु य।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥१६॥

सस्कृत छाया- त्रयोविशति सूत्रकृते (सूत्रकृतध्यनेषु) रूपाधिकेषु सुरेषु च।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले॥१६॥

अन्वयार्थ-सूयगडेसु-सूयगडाग सूत्र के, तेवीसाए-तेइस अध्ययनो मे, य-और, रूवाहिएसु-रूपाधिक (24 प्रकार के), सुरेसु-देवो मे, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-नित्य, जयइ-उपयोग रखता है, से-वह, मडले-मण्डल (ससार) मे, ण अच्छइ-परिभमण नहीं करता है।

भावानुवाद-सूत्रकृताग सूत्र के तेईस अध्ययना मे और रूपाधिक अर्थात् चौबीस देवा मे जो साधक सदा उपयोग रखता है, वह ससार चक्र मे परिभ्रमण नहीं करता है।

17 भावनाए एव उद्देशक पच्चीसवा, छब्बीसवा बोल

मूल गाथा- पणवीसभावणासु, उद्देसेसु दसाइण।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मडले॥१७॥

संस्कृत छाया- पञ्चविंशतिभावनासु, उद्देशेषु दशादीनाम्।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले ॥१७॥

अन्वयार्थ-पणवीस-पच्चीस, भावणासु-भावनाओ मे, दसाइण-दशादि, उद्देसेसु-छब्बीस उद्देशा में, जे-जो, भिक्खू-साधु, जयइ-उपयोग रखता है, से-वह, मंडले-मण्डल (ससार) म, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधु सदैव पाच महाव्रतो की पच्चीस भावनाओ में, दशाश्रुत स्कन्ध आदि के छब्बीस उद्देशे दशाश्रुतस्कन्ध के दस, बृहत्कल्प के छह और व्यवहार सूत्र के दस, इन छब्बीस में उपयोग रखता है, वह ससार चक्र में परिभ्रमण नहीं करता है।

18 अनगार गुण और आचार प्रकल्प सत्ताइसवां, अट्ठाइसवा बोल

मूल गाथा- अणगारगुणेहिं च, पगप्पम्मि तहेव य।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मंडले॥18॥

संस्कृत छाया- अनगारगुणेषु, प्रकल्पे तथैव च।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले ॥१८॥

अन्वयार्थ-अणगार-साधु के, गुणेहिं-गुणो में, च-और, तहेव य-उसी प्रकार, पगप्पम्मि-(अट्ठाईस प्रकार के) आचार प्रकल्प में, जे-जो, भिक्खू-भिक्षु (साधु), णिच्चं-नित्य, जयइ-यत्न करता है, से-वह, मंडले-मण्डल (ससार) में, ण अच्छइ-परिभमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधक अनगार-साधु के सत्ताईस गुणो को धारण करता है तथा अट्ठाईस प्रकार के आचार प्रकल्पों (आचाराग के 25 और निशीथ सूत्र के तीन) मे सदैव उपयोग रखता है, वह ससार मे नहीं रुकता है।

19 पाप श्रुत प्रसंग और मोह स्थान उनतीसवा, तीसवा बोल

मूल गाथा- पावसुयप्पसंगेसु, मोहट्ठाणेसु चेव य।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मंडले॥19॥

संस्कृत छाया- पापसूत्रप्रसंगेषु, मोहस्थानेषु चैव च।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले ॥१९॥

अन्वयार्थ-पावसुयप्पसगेसु-(उनतीस प्रकार के) पापश्रुतों में, य-और, चेव-उसी प्रकार, मोहट्ठाणेसु-मोह के स्थानों में, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-नित्य जयइ-उपयोग रखता है, से-वह, मंडले-ससार में, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधु उनतीस प्रकार के पाप सूत्रो में और तीस प्रकार के मोहनीय कर्म के बध के स्थानों में सदा यत्नशील रहता है, वह ससार चक्र में परिभ्रमण नहीं करता है।

20 सिद्धो के अतिशय गुण, योग सग्रह और आशातना इकतीसवा, बत्तीसवां, तैंतीसवां बोल

मूल गाथा- सिद्धाइगुणजोगेसु, तेत्तीसासायणासु य।
जे भिक्खू जयई णिच्च, से ण अच्छइ मंडले॥20॥

सस्कृत छाया- सिद्धातिगुणयोगेषु, त्रयस्त्रिशदाशातनासु च।
यो भिक्षुर्यतते नित्य, स न तिष्ठति मण्डले ॥२०॥

अन्वयार्थ-सिद्धाइ-सिद्ध भगवान् के (इकत्तीस), गुण-गुण, जोगेसु-(बत्तीस प्रकार के) योग सग्रहो मे, य-और, तेत्तीस-तेतीस, आसायणासु-आशातनाओ मे, जे-जो, भिक्खू-साधु, णिच्च-नित्य, जयइ-उपयोग रखता है, से-वह, मडले-मण्डल (ससार) मे, ण अच्छइ-परिभ्रमण नहीं करता है।

भावानुवाद-जो साधक सिद्ध प्रभु के इकत्तीस गुणो मे, बत्तीस प्रकार के योग सग्रहो मे सदा उपयोग रखता है तथा तेतीस आशातनाओ का परित्याग करता है, वह ससार मे परिभ्रमण नहीं करता है।

21 उक्त तेतीस बोलो के आचरण की फल श्रुति

मूल गाथा- इय एएसु ठाणेसु, जे भिक्खू जयई सया।
खिप्प सो सव्वससारा, विप्पमुच्चइ पडिओ ॥२१॥
त्ति बेमि।
इति चरणविही एगतीसइम अज्झयण समत्त ॥३१॥

सस्कृत छाया- इत्येतेषु स्थानेषु, यो भिक्षुर्यतते सदा।
क्षिप्र स सर्वससारात्, विप्रमुच्यते पण्डित ॥२१॥
इति ब्रवीमि।
इति चरणविधि समाप्त ॥३१॥

अन्वयार्थ-इय-इस प्रकार, एएसु-इन, ठाणेसु-स्थानो मे, जे-जो, भिक्खू-साधु, सया-सदा, जयइ-उपयोग रखता है, सो-वह, पडिओ-पण्डित पुरुष, खिप्प-शीघ्र ही, सव्व-सर्व, ससारा-ससार से, विप्पमुच्चइ-विप्रमुक्त हो जाता है (छूट जाता है)।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इस प्रकार उपर्युक्त स्थानो मे जो भिक्षु सदा सतत उपयोग रखता है, वह पण्डित पुरुष शीघ्र ही समस्त ससार बधनो से मुक्त हो जाता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार चरण विधि नामक इकत्तीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

प्रमाद-स्थान - द्वात्रिंशत् अध्ययन

उत्थानिका

साधना का सीधा-सा अर्थ है-आत्मा के प्रति पूर्ण सजगता। आचारांग सूत्र में साधक-मुनि की परिभाषा करते हुए कहा गया है-

'सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरति॥'

जो सोया हुआ है, वह अमुनि है, ससारी है और जो सदा जागृत है, वह मुनि है-साधक है। साधना का सबसे बडा शत्रु है-प्रमाद। प्रमाद, साधक को अपने पथ पर बढने से रोकता ही नहीं, गिरा भी देता है। उच्च श्रेणी पर साधना की बहुत ऊचाइयों पर चढा हुआ साधक प्रमाद के एक झोंके से नीचे आकर गिर पडता है। अत साधक जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सकेत है-प्रमाद स्थानों से अपने आपको बचाए रखना।

आत्मा में प्रमाद स्थानो के प्रवेश के अनेक मार्ग हैं-अगणित द्वार हैं। किसी भी मार्ग-द्वार से आत्मा में प्रमाद का प्रवेश हो सकता है।

वैसे स्थूल रूप म प्रमाद के पाच भेद किए गए हैं-1 मद, 2 विषय 3 कषाय, 4 निद्रा तथा 5 विकथा।

किन्तु इन पाचो का मूल है विषय-इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति। पदार्थ में रहे हुए वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श अपने आप में, न अच्छे होते हैं न बुरे। न शुभ होते हैं और न अशुभ। उनमें शुभत्व एव अशुभत्व का आरोपण इन्द्रिया और मन करते हैं। जहा शुभत्व एव अशुभत्व होगा, वहा राग और द्वेष का होना स्वाभाविक है। राग-द्वेष में रमण करना ही प्रमाद है।

प्रस्तुत अध्ययन में इस प्रमाद स्थान से ऊपर उठ कर अप्रमत्त भाव में स्थिर रहने का सदेश दिया गया है। अप्रमत्त भाव में रमण करने के लिए यह आवश्यक है कि साधक अशुभ विचारों-अध्यवसायों एव क्रियाओं से निवृत्त हो। अशुभ विचारों अथवा अशुभ क्रियाओ का अर्थ है-साधना में व्यवधान उपस्थित करने वाली प्रवृत्तियां। साधना में विघ्न पैदा करने वाली वृत्तिया हैं-मन और इन्द्रियों का अपने-अपने विषयो क प्रति आकर्षण। इस आकर्षण से मुक्त होने का सदेश दिया है-प्रस्तुत अध्ययन में।

साथ ही इन्द्रियों के विषय में रमण करने से जीव को किन-किन दु खों-सघर्षों एव राग-द्वेष, मोह-तृष्णा की गलियों में भटकना पडता है, किस प्रकार के कर्मों का बन्धन करना पडता है और भविष्य में उनके कैसे कटुक फल भोगने पडते हैं इन सब विषयों का भी चित्रण हुआ है-इस अध्ययन में।

निष्कर्ष में राग-द्वेष ही बन्धन के-ससार परिभ्रमण क मूल कारण हैं, अत इनसे मुक्त होने पर ही मुक्ति, सुख को प्राप्त किया जा सकता है। यही मूल सकेत अप्रमाद का सकेत है और यही सदेश यहा मुखरित हुआ है।

❑❑❑

प्रमाद-स्थान - द्वात्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश

जितना ज्ञान का प्रकाशन, उतना सुख का अवभासन।
ज्ञान का प्रकाशन, अज्ञान का विवर्जन एव राग द्वेष का सक्षय ही एकान्त सुख का स्थान है।

कुसग वर्जन, सत्सग सृजन-स्वलीनता से मुक्ति निकट होगी।
गुरु-वृन्दो की निकटता, अज्ञजनो के ससर्ग का परित्याग एव
एकान्त स्वाध्याय मे लीनता मुक्ति का मार्ग है।

शुद्ध-सात्विक भोजन साधना की भूमिका का निर्माण करता है।
परिमित एव विशुद्ध भोजन भी साधना मे सहयोगी हो सकता है।

निपुण बुद्धि सहयोगी निपुणता प्रदान करता है।
अपने से श्रेष्ठ सहयोगी-मित्र का ससर्ग रखो स्वय श्रेष्ठ बनोगे।

कुमित्र बुद्धि को मलिन बना सकता है।
श्रेष्ठ मित्र न मिले तो एकाकी रहो, पर हीन व्यक्ति से मित्रता न करो।

मोह से बचना है, तृष्णा से बचो।
मोह से तृष्णा को आश्रय मिलता है और तृष्णा मोह को आकार देती है।

राग-द्वेष से मुक्त बनो, जन्म-मरण से मुक्त हो जाओगे।
जन्म-मरण दु ख रूप हैं, कर्म जन्म-मरण की उत्पत्ति स्थान है,
राग-द्वेष कर्म बधाता है।

स्वाद विजय, वासना विजय मे सहयोगी होता है।
जैसे स्वादिष्ट फलो वाले वृक्ष पर पक्षी मडराते हैं
वैसे ही प्रकाम रस भोजी व्यक्ति पर वासना मडराती है।

इन्द्रियो पर नियत्रण, साधना का सवर्धन।
प्रचुर ईंधन वाले वन मे अग्नि शीघ्र फैल जाती है, वैसे ही विषयाग्नि फैलती है।

आत्म नियत्रित रहो, वासना जयी बन जाओगे।
समुचित औषधि से परास्त व्याधि की तरह इन्द्रिय विजेता,
अल्प भोजी व्यक्ति को विकार नहीं सता सकते।

प्रमाद-स्थान - द्वात्रिंशत् अध्ययन

उत्थानिका

साधना का सीधा-सा अर्थ है-आत्मा के प्रति पूर्ण सजगता। आचाराग सूत्र म साधक-मुनि की परिभाषा करते हुए कहा गया है-

'सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरति॥'

जो सोया हुआ है, वह अमुनि है, ससारी है और जो सदा जागृत है, वह मुनि है-साधक है। साधना का सबसे बडा शत्रु है-प्रमाद। प्रमाद, साधक को अपने पथ पर बढने से रोकता ही नहीं, गिरा भी देता है। उच्च श्रेणी पर साधना की बहुत ऊचाइयो पर चढा हुआ साधक प्रमाद के एक झाके से नीचे आकर गिर पडता है। अत साधक जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सकेत है-प्रमाद स्थानो से अपने आपको बचाए रखना।

आत्मा मे प्रमाद स्थानो के प्रवेश के अनेक मार्ग हैं-अगणित द्वार हैं। किसी भी मार्ग-द्वार से आत्मा में प्रमाद का प्रवेश हो सकता है।

वैसे स्थूल रूप मे प्रमाद के पाच भेद किए गए हैं-1 मद, 2 विषय 3 कषाय, 4 निद्रा तथा 5 विकथा।

किन्तु इन पांचों का मूल है विषय-इन्द्रियो के विषयो मे आसक्ति। पदार्थ मे रहे हुए वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श अपने आप मे, न अच्छे होते हैं न बुरे। न शुभ होते हैं और न अशुभ। उनमे शुभत्व एव अशुभत्व का आरोप हमारी इन्द्रिया और मन करते हैं। जहा शुभत्व एव अशुभत्व होगा, वहा राग और द्वेष का होना स्वाभाविक है। राग-द्वेष में रमण करना ही प्रमाद है।

प्रस्तुत अध्ययन में इस प्रमाद स्थान से ऊपर उठ कर अप्रमत्त भाव मे स्थिर रहने का सदेश दिया गया है। अप्रमत्त भाव में रमण करने के लिए यह आवश्यक है कि साधक अशुभ विचारो-अध्यवसायो एव क्रियाओं से निवृत्त हो। अशुभ विचारो अथवा अशुभ क्रियाओ का अर्थ है-साधना में व्यवधान उपस्थित करने वाली प्रवृत्तिया। साधना मे विघ्न पैदा करने वाली वृत्तिया हैं-मन और इन्द्रियों का अपने-अपने विषयो के प्रति आकर्षण। इस आकर्षण से मुक्त होने का सदेश दिया है-प्रस्तुत अध्ययन मे।

साथ ही इन्द्रियो के विषय म रमण करने से जीव को किन-किन दु खो-सघर्षों एव राग-द्वेष, मोह-तृष्णा की गलियो मे भटकना पडता है, किस प्रकार के कर्मों का बन्धन करना पडता है और भविष्य में उनके कैसे कटुक फल भोगने पडते हैं, इन सब विषयो का भी चित्रण हुआ है-इस अध्ययन में।

निष्कर्ष मे राग-द्वेष ही बन्धन के-ससार परिभ्रमण के मूल कारण हैं, अत इनसे मुक्त होने पर ही मुक्ति सुख को प्राप्त किया जा सकता है। यही मूल सकेत अप्रमाद का सकेत है और यही सदेश यहा मुखरित हुआ है।

□□□

प्रमाद-स्थान - द्वात्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश

जितना ज्ञान का प्रकाशन, उतना सुख का अवभासन।
ज्ञान का प्रकाशन, अज्ञान का विवर्जन एव राग द्वेष का सक्षय ही एकान्त सुख का स्थान है।

कुसग वर्जन, सतसग सृजन-स्वलीनता से मुक्ति निकट होगी।
गुरु-वृन्दो की निकटता, अज्ञजनो के ससर्ग का परित्याग एव
एकान्त स्वाध्याय मे लीनता मुक्ति का मार्ग है।

शुद्ध-सात्विक भोजन साधना की भूमिका का निर्माण करता है।
परिमित एव विशुद्ध भोजन भी साधना में सहयोगी हो सकता है।

निपुण बुद्धि सहयोगी निपुणता प्रदान करता है।
अपने से श्रेष्ठ सहयोगी-मित्र का ससर्ग रखो स्वय श्रेष्ठ बनोगे।

कुमित्र बुद्धि को मलिन बना सकता है।
श्रेष्ठ मित्र न मिले तो एकाकी रहो, पर हीन व्यक्ति से मित्रता न करो।

मोह से बचना है, तृष्णा से बचो।
मोह से तृष्णा को आश्रय मिलता है और तृष्णा मोह को आकार देती है।

राग-द्वेष से मुक्त बनो, जन्म-मरण से मुक्त हो जाओगे।
जन्म-मरण दु ख रूप हैं, कर्म जन्म-मरण की उत्पत्ति स्थान है,
राग-द्वेष कर्म बधाता है।

स्वाद विजय, वासना विजय मे सहयोगी होता है।
जैसे स्वादिष्ट फलो वाले वृक्ष पर पक्षी मडराते हैं
वैसे ही प्रकाम रस भोजी व्यक्ति पर वासना मडराती है।

इन्द्रियो पर नियत्रण, साधना का सवर्धन।
प्रचुर ईंधन वाले वन मे अग्नि शीघ्र फैल जाती है, वैसे ही विषयाग्नि फैलती है।

आत्म नियत्रित रहो, वासना जयी बन जाओगे।
समुचित औषधि से परास्त व्याधि की तरह इन्द्रिय विजेता,
अल्प भोजी व्यक्ति को विकार नहीं सता सकते।

स्त्री जाति की अति निकटता ब्रह्मचर्य की घातक है।
ब्रह्मचारी के लिए स्त्री ससर्ग वैसे ही वर्जनीय है जैसे बिल्ली के निवास पर चूहो का रहना।

ब्रह्मचर्याराधक को विपरीत चिन्तन से भी बचना चाहिए।
ब्रह्मचारी के लिए विजातीय लिग का चिन्तन-दर्शन कीर्तन सभी कुछ वर्जनीय है।

सशक्त आत्मबली व्यक्ति को भी नियमबद्ध रहना चाहिए।
चाहे विभूषित देविया भी चलित करने मे अक्षम हों तथापि
ब्रह्मचर्य के नियमो की अनुपालना आवश्यक है।

प्रबल सवेग से युक्त व्यक्ति भी स्त्री-पाश मे शीघ्र बध जाता है।
मोक्षाभिलाषी, ससार भीरु व्यक्ति के लिए भी स्त्री से बढ कर और कोई दुस्तर नहीं है।

वासना को जीत लो, जगज्जयी बन जाओगे।
वासना विजयी सर्व जयी हो जाता है, जैसे महासागर तैरने वाले के लिए
गगा जैसी नदिया सहज हो जाती है।

कामनाओ पर नियत्रण करो, दु ख क्षय हो जाएगे।
ससार के दु ख कामनाओ से जनित हैं काम विजेता दु ख विजेता हो जाता है।

विषय सुखो की ऊपरी मधुरता को नहीं अन्तरग कटु परिणाम को देखो।
विषय सुख किपाक फल के समान दिखने में मधुर एव सुदर होते हैं
किन्तु परिणाम में भयकर दु खदायी होते हैं।

राग-द्वेष से ही असमाधि उत्पन्न होती है।
समाधि का इच्छुक साधक न मनोज्ञ विषयों पर राग करे और न अमनोज्ञ पर द्वेष।

समत्व भाव ही वीतरागता की आधारशिला है।
शुभाशुभ विषयों के प्रति समत्व रखने वाला साधक ही वीतरागी बन सकता है।

रूप की आसक्ति प्राणान्त तक का कारण बन सकती है।
रूप में आसक्त व्यक्ति की वही दशा होती है जैसी दीपक-ज्योति
पर जपापात करने वाले पतगिये की होती है।

इन्द्रिय विषयो की आसक्ति तत्काल दु ख उत्पन्न कर देती है।
विषयों की अत्यधिक आसक्ति व्यक्ति को बेमौत मरने को विवश कर देती है।

विषय सुख अपनी उत्पत्ति एव विनाश-दोनो स्थितियो मे दु खी ही करते हैं।
विषयों की सामग्री के उत्पादन, रक्षण, योग एव वियोग सभी स्थितियों में दु ख-खेद
ही प्राप्त होता है।

विषय मुक्त रहो-पाप मुक्त हो जाओगे।
विषय सुख अनेक पापो को जन्म देते हैं।

अनासक्ति की साधना-ससार-मुक्त करती है।
विषयो से मुक्त व्यक्ति जल-कमल की तरह ससार से मुक्त रहता है।

दोषो से बचना चाहो तो विषयो की आसक्ति से बचो।
विषयासक्ति असत्य, चोरी, अतृप्ति, तृष्णा आदि अनेक दोषो को जन्म देती है।

□□□

अह पमायट्ठाणं बत्तीसइमं अज्झयणं

अथ प्रमादस्थानं द्वात्रिंशत्तममध्ययनम्

प्रमाद स्थान

1 सर्व दु ख मुक्ति के उपाय-निर्देश की प्रतिज्ञा

मूल गाथा- अच्चतकालस्स समूलगस्स,
सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो।
त भासओ मे पडिपुण्णचित्ता,
सुणेह एगतहिय हियत्थ ॥१॥

संस्कृत छाया- अत्यन्तकालस्य समूलकस्य,
सर्वस्य दु खस्य तु य प्रमोक्ष ।
त भाषमाणस्य मम प्रतिपूर्णचित्ता ,
शृणुतैकान्तहित हितार्थम् ॥१॥

अन्वयार्थ-हे भव्य जीवो, अच्चत्त-अत्यन्त, कालस्स-काल से, समूलगस्स-(मिथ्यात्वादि) मूल सहित, सव्वस्स-सभी, दुक्खस्स-दु खो से, उ-तो, पमोक्खो-प्रमोक्ष का (मोक्ष देने वाला) हेतु, जो-जो, एगतहिय-एकान्त हितकारी, हियत्थ-हितार्थ है, त-उसका, मे-मैं, भासओ-कथन करता हू (अत), पडिपुण्णचित्ता-प्रतिपूर्ण (एकाग्र) चित्त होकर, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-गुरु का शिष्यों के प्रति आमत्रण-हे शिष्यो! अत्यन्त-अनन्त काल से लगे हुए मिथ्यात्वादि मूलक जो सर्व प्रकार के दु ख हैं, उनसे मुक्ति के उपाय रूप एकान्त हितकारी एव कल्याणप्रद तत्त्व का मैं निरूपण कर रहा हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो।

2 सर्व दु ख मुक्ति एकान्त सुख प्राप्ति का उपाय ज्ञानादि रत्नत्रय

मूल गाथा- णाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अण्णाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएण
एगतसोक्ख समुवेइ मोक्ख ॥२॥

संस्कृत छाया- ज्ञानस्य सर्वस्य प्रकाशनया,
अज्ञानमोहस्य विवर्जनया।
रागस्य द्वेषस्य च संक्षयेण,
एकान्तसौख्यं समुपैति मोक्षम् ॥२॥

अन्वयार्थ-सव्वस्स-सम्पूर्ण, णाणस्स-ज्ञान के, पगासणाए-प्रकाश से, अण्णाण-अज्ञान (और), मोहस्स-मोह के, विवज्जणाए-त्याग से, य-तथा, रागस्स-राग (और), दोसस्स-द्वेष के, संखएण-संक्षय से, एगंत सोक्ख-एकान्त सुखकारी, मोक्ख-मोक्ष की, समुवेइ-प्राप्ति होती है।

भावानुवाद-सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशन से अज्ञान और मोह के परित्याग से, राग और द्वेष के परिपूर्ण क्षय से जीव को एकान्त सुख-रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

3 मोक्ष प्राप्ति के उपाय

मूल गाथा- तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा,
विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झाय एगंतणिसेवणा य,
सुत्तऽत्थसंचिंतणया धिई य ॥3॥

संस्कृत छाया- तस्यैष मार्गो गुरुवृद्धसेवा,
विवर्जना बालजनस्य दूरात्।
स्वाध्यायैकान्तनिषेवणा च,
सूत्रार्थसञ्चिन्तनया धृतिश्च ॥३॥

अन्वयार्थ-गुरु विद्ध सेवा-गुरु और वृद्धो की सेवा, बालजणस्स-बालजन (अज्ञानियो) के संग का, दूरा-दूर से, विवज्जणा-परित्याग, य-फिर, सज्झाय-स्वाध्याय का, एगंत णिसेवणा-एकान्त सेवन, य-और, सुत्तऽत्थ-सूत्रार्थ का, संचिंतणया-सम्यक् चिन्तन करना, य-तथा, धिई-धैर्यपूर्वक (संयम पालन करना), एस-यह, तस्स-उस मोक्ष का, मग्गो-मार्ग है।

भावानुवाद-गुरुजनो एवं वृद्धो की सेवा करना, बाल-अज्ञानी जनो के सम्पर्क से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकान्त का सेवन, आत्मध्यान करना, सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना तथा धैर्य पूर्वक संयम का पालन करना, ये दुःख मुक्ति के उपाय हैं।

4 ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाले के अन्य कृत्यो का वर्णन

मूल गाथा- आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं,
सहायमिच्छे णिउणत्थबुद्धिं।
णिकेयमिच्छेज्ज विवेगजोगं,
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥4॥

सस्कृत छाया- आहारमिच्छेन्मितमेषणीय,
साहाय्यमिच्छेन्निपुणार्थबुद्धिम्।
निकेतमिच्छेद् विवेकयोग्य,
समाधिकाम श्रमणस्तपस्वी ॥४॥

अन्वयार्थ-समाहि-समाधि को, कामे-चाहने वाला, समणे-श्रमण, तवस्सी-तपस्वी, मिय-परिमित (और), एसणिज्ज-एषणीय, आहार-आहारादि, इच्छे-इच्छा करे, णिउणत्थ बुद्धि-निपुणार्थ बुद्धि वाले, सहाय-सहायक की, इच्छे-इच्छा करे (और), विवेग जोग-स्त्री पशु और, नपुसकादि से रहित, णिकेय-स्थान की, इच्छेज्ज-इच्छा करे।

भावानुवाद-समाधि का इच्छुक श्रमण तपस्वी परिमित एव एषणीय आहार की इच्छा करे, ऐसे सहयोगी-साथी की अन्वेषणा करे जो तत्त्वो को जानने मे निपुण बुद्धि वाला हो तथा स्त्री-पशु, नपुसक से रहित स्थान की इच्छा कर।

5 सहायक साधक न मिलने पर साधु का कर्त्तव्य

मूल गाथा- ण वा लभेज्जा णिउण सहाय,
गुणाहिय वा गुणओ सम वा।
एक्को वि पावाइ विवज्जयतो,
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥५॥

सस्कृत छाया- न वा लभेत निपुण साहाय्य,
गुणाधिक वा गुणत सम वा।
एकोऽपि पापानि विवर्जयन्,
विहरेत् कामेष्वसजन् ॥५॥

अन्वयार्थ-वा-यदि, गुणाहिय-गुणो से अधिक, वा-अथवा, सम-अपने समान, गुणओ-गुण वाला, वा-अथवा, णिउण-निपुण, सहाय-सहायक, ण लभेज्जा-नहीं मिले तो, एक्को-अकेला, वि-ही, पावाइ-पाप कर्मों को, विवज्जयंतो-वर्जता हुआ, कामेसु-कामभोगो में, असज्जमाणो-आसक्त न होता हुआ, विहरेज्ज-विचरे।

भावानुवाद-यदि अपने से अधिक गुणो वाला अथवा अपने समान गुणो वाला निपुण सहयोगी न मिले तो अकेला ही पाप कर्मों का वर्जन करता हुआ काम-भोगो से अनासक्त रहता हुआ विचरण करे।

6 दु ख के परस्पर कारणो का उल्लेख

मूल गाथा- जहा य अडप्पभवा बलागा,
अड बलागप्पभव जहा य।
एमेव मोहाययण खु तण्हा,
मोह च तण्हाययण वयति ॥६॥

सस्कृत छाया- यथा घाण्डप्रभवा बलाका,
अण्ड बलाकाप्रभव यथा च।
एवमेव मोहायतना खलु तृष्णा,
मोह च तृष्णायतन वदन्ति॥६॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, बलागा-बगुला पक्षी, अडप्पभवा-अडे से उत्पन्न होता है, य-और, जहा-जिस प्रकार, अड-अण्डा, बलागप्पभव-बलाका (बगुलीपक्षिणी) से उत्पन्न होता है, एमेव-उसी प्रकार, खु-निश्चय ही, तण्हा-तृष्णा, मोहाययण-मोह का आयतन (स्थान) है, च-और, मोह-मोह को, तण्हाययण-तृष्णा का आयतन (स्थान), वयति-कहते हैं।

भावानुवाद-जिस प्रकार अण्डे से बलाका (बगुली) पक्षी की उत्पत्ति होती है और बलाका से अण्डा उत्पन्न होता है, उसी प्रकार तृष्णा मोह का जन्म स्थान है और मोह तृष्णा का उत्पत्ति स्थल है, ऐसा ज्ञानियो ने कहा है।

7 दु ख हेतुता का वर्णन

मूल गाथा- रागो य दोसो वि य कम्मबीय,
कम्म च मोहप्पभव वयति।
कम्म च जाईमरणस्स मूल,
दुक्ख च जाईमरण वयति॥७॥

सस्कृत छाया- रागश्च द्वेषोऽपि च कर्मबीज,
कर्म च मोहप्रभव वदन्ति।
कर्म च जातिमरणयोर्मूलम्,
दु ख च जातिमरण वदन्ति॥७॥

अन्वयार्थ-रागो-राग, य-और, दोसो-द्वेष, वि-ये दोनो ही, कम्मबीय-कर्मों के बीज रूप हैं, च-और, कम्म-कर्म, मोहप्पभव-मोह से उत्पन्न हुआ, वयति-कहते हैं, च-और, कम्म-कर्म ही, जाई-जाति (जन्म), मरणस्स-मरण का, मूल-मूल (कारण) है, च-और, जाई-जन्म, मरण-मरण, दुक्ख-दुख के हेतु, वयति-कहे जाते हैं।

भावानुवाद-राग और द्वेष ये दोनो ही कर्म के बीज हैं,कर्म मोह से उत्पन्न होते हैं। ज्ञानीजनो का कथन है-कर्म ही जन्म-मरण का मूल हेतु है और जन्म-मरण ही दु ख है।

8 दु ख के कारण भूत मोहादि के त्याग का विषय

मूल गाथा- दुक्ख हय जस्स ण होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स ण होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स ण होइ लोहो।
लोहो हओ जस्स ण किचणाइ॥८॥

संस्कृत छाया- रसा प्रकाम न निषेवितव्या,
प्रायेण रसा दीप्तिकरा नराणाम्।
दीप्त च कामा समभिद्रवन्ति,
द्रुम यथा स्वादुफलमिव पक्षिण ॥१०॥

अन्वयार्थ-रसा-रसो का, पगाम-अत्यन्त, ण णिसेवियव्वा-सेवन नहीं करना चाहिए, पाय-प्राय , रसा-रस, णराण-मनुष्यो को, दित्तिकरा-दीप्त करने वाले हैं, च-और, दित्त-दीप्त मनुष्य को, कामा-कामादि, व-वैसे ही, समभिद्दवंति-पराभव करते हैं (दु ख देते है), जहा-जैसे, साउफल-स्वादु फल वाले, दुम-द्रुम (वृक्ष) का, पक्खी-पक्षी (पराभव करते हैं)।

भावानुवाद-दूध, घृत आदि रसो का अधिक मात्रा मे सेवन नहीं करना चाहिए क्योकि प्राय रस मनुष्यो मे दृप्ति-कामुकता बढाने वाले होते हैं। कामासक्त मनुष्य को काम वासना वैसे ही उत्पीडित करती है, जैसे स्वादु फल वाले वृक्ष को पक्षी।

11 प्रकाम भोजन के दोषो का वर्णन

मूल गाथा- जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे,
समारुओ णोवसम उवेइ।
एविंदियग्गी वि पगामभोइणो,
ण बंभयारिस्स हियाय कस्सई ॥११॥

संस्कृत छाया- यथा दवाग्नि प्रचुरेन्धने वने,
समारुतो नोपशममुपैति।
एवमिन्द्रियाग्निरपि प्रकाम भोजिन,
न ब्रह्मचारिणो हिताय कस्यचित् ॥११॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, पउरिंधणे-प्रचुर ईंधन से युक्त, वणे-वन मे, समारुओ-वायु के साथ, दवग्गी-दावाग्नि, उवसम-उपशम (शात), ण उवेइ-नहीं होती है, एव-इसी प्रकार, पगाम भोइणो-अति भोजन करने वाले (प्रकाम भोजी), कस्सई-किसी की, वि-भी, बंभयारिस्स-ब्रह्मचारी की, इंदियग्गी-इन्द्रिय रूप अग्नि (शान्त नहीं होती), ण हियाय-हितकारी नहीं होती है।

भावानुवाद-जिस प्रकार बहुत ईंधन वाले वन मे लगी हुई वायु सहित दावाग्नि शान्त नहीं होती उसी प्रकार प्रकाम भोजी-अधिक रस युक्त भोजन करने वाले किसी भी ब्रह्मचारी की इन्द्रियाग्नि शान्त नहीं होती है, अत साधक के लिए प्रकाम रस सेवन हितावह नहीं होता है।

12 राग का त्याग करने वाले व्यक्ति के अन्य कर्त्तव्य

मूल गाथा- विवित्तसेज्जासण जंतियाण,
ओमासणाण दमिइंदियाण।

संस्कृत छाया- दु ख हत यस्य न भवति मोह ,
मोहो हतो यस्य न भवति तृष्णा।
तृष्णा हता यस्य न भवति लोभ ,
लोभो हतो यस्य न किञ्चनापि ॥८॥

अन्वयार्थ-जस्स-जिमको, मोहो-मोह, ण होइ-नहीं होता (उसका), दुक्ख-दु ख, हय-नष्ट हो गया, जस्स-जिसका, मोहो-मोह, हओ-नष्ट हो गया (उसके), तण्हा-तृष्णा, ण-नहीं, होइ-होती, जस्स-जिसकी, तण्हा-तृष्णा, हया-नष्ट हो गई (उसे), लोहो-लोभ, ण-नहीं, होइ-होता (और), जस्स-जिसका, लोहो-लोभ, हओ-नष्ट हो गया (उसके लिए), ण किचणाइ-आसक्ति कुछ नहीं होती।

भावानुवाद-जिसका मोह नहीं होता उसका दु ख नष्ट हो गया है, जिसके मोह नष्ट हो गया उसके तृष्णा नहीं होता, जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई, उसको लोभ नहीं होता है, जिसके लोभ नष्ट हो गया, उसके लिए आसक्ति कुछ भी नहीं है, वह अकिंचन है।

9 मोहादि के उन्मूलन का उपाय बतलाने की प्रतिज्ञा

मूल गाथा- राग च दोस च तहेव मोह,
उद्धतुकामेण समूलजाल।
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा,
ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्वि ॥९॥

संस्कृत छाया- राग च द्वेष च तथैव मोहम्,
उद्धर्तुकामेन समूलजालम्।
ये ये उपाया प्रतिपत्तव्या ,
तान् कीर्तयिष्यामि यथानुपूर्व्या ॥९॥

अन्वयार्थ-राग-राग, दोस-द्वेष, च-और, तहेव-उसी प्रकार, मोह-मोह को, समूलजाल-मूल सहित, उद्धतुकामेण-उखाडने की इच्छा वाले को, जे जे-जो जो, उवाया-उपाय, पडिवज्जियव्वा-ग्रहण करने चाहिए, ते-उन उपायों को, अहाणुपुव्वि-अनुक्रम से (मैं), कित्तइस्सामि-कथन करूगा।

भावानुवाद-राग-द्वेष और मोह के जाल को समूल रूप से उखाड फैकने की इच्छा वाले पुरुष को जिन-जिन उपायो को उपयोग में लाना चाहिए, उनका मैं यथाक्रम से वर्णन करूगा।

10 मोह को दूर करने के उपाय प्रशम रस सेवन

मूल गाथा- रसा पगाम ण णिसेवियव्वा,
पाय रसा दित्तिकरा णराण।
दित्त च कामा समभिद्दवति,
दुम जहा साउफल व पक्खी ॥१०॥

संस्कृत छाया- रसा प्रकाम न निषेवितव्या ,
प्रायेण रसा दीप्तिकरा नराणाम्।
दीप्त च कामा समभिद्रवन्ति,
द्रुम यथा स्वादुफलमिव पक्षिण ॥१०॥

अन्वयार्थ-रसा-रसो का, पगाम-अत्यन्त, ण णिसेवियव्वा-सेवन नहीं करना चाहिए, पाय-प्राय , रसा-रस, णराण-मनुष्यो को, दित्तिकरा-दीप्त करने वाले हैं, च-और, दित्त-दीप्त मनुष्य को, कामा-कामादि, व-वैसे ही, समभिद्दवति-पराभव करते हैं (दु ख देते हैं), जहा-जैसे, साउफल-स्वादु फल वाले, दुम-द्रुम (वृक्ष) का, पक्खी-पक्षी (पराभव करते हैं)।

भावानुवाद-दूध, घृत आदि रसो का अधिक मात्रा मे सेवन नहीं करना चाहिए क्योकि प्राय रस मनुष्यो मे दृप्ति-कामुकता बढाने वाले होते हैं। कामासक्त मनुष्य को काम वासना वैसे ही उत्पीडित करती है, जैसे स्वादु फल वाले वृक्ष को पक्षी।

11 प्रकाम भोजन के दोषो का वर्णन

मूल गाथा- जहा दवग्गी पउरिंधणे वणे,
समारुओ णोवसम उवेइ।
एविंदियग्गी वि पगामभोइणो,
ण बभयारिस्स हियाय कस्सई ॥११।

संस्कृत छाया- यथा दवाग्नि प्रचुरेन्धने वने,
समारुतो नोपशाममुपैति।
एवमिन्द्रियाग्निरपि प्रकाम भोजिन ,
न ब्रह्मचारिणो हिताय कस्यचित् ॥११॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, पउरिंधणे-प्रचुर ईंधन से युक्त, वणे-वन मे, समारुओ-वायु के साथ, दवग्गी-दावाग्नि, उवसम-उपशम (शात), ण उवेइ-नहीं होती है, एव-इसी प्रकार, पगाम भोइणो-अति भोजन करने वाले (प्रकाम भोजी), कस्सई-किसी की, वि-भी, बभयारिस्स-ब्रह्मचारी की, इदियग्गी-इन्द्रिय रूप अग्नि (शान्त नहीं होती), ण हियाय-हितकारी नहीं होती है।

भावानुवाद-जिस प्रकार बहुत ईंधन वाले वन मे लगी हुई वायु सहित दावाग्नि शान्त नहीं होती उसी प्रकार प्रकाम भोजी-अधिक रस युक्त भोजन करने वाले किसी भी ब्रह्मचारी की इन्द्रियाग्नि शान्त नहीं होती है, अत साधक के लिए प्रकाम रस सेवन हितावह नहीं होता है।

12 राग का त्याग करने वाले व्यक्ति के अन्य कर्त्तव्य

मूल गाथा- विवित्तसेज्जासण जतियाण,
ओमासणाण दमिइदियाण।

ण रागसत्तू धरिसेइ चित्त,
पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ॥12॥

संस्कृत छाया- विविक्तशय्यासनयन्त्रितानाम्,
अवमाशनाना दमितेन्द्रियाणा।
न रागशत्रु धर्षयति चित्त,
पराजितो व्याधिरिवौषधै ॥१२॥

अन्वयार्थ-ओसहेहिं-औषधिया से, पराइओ-पराजित हुई, वाहिरिव-व्याधि के समान, विवित्त-स्त्री पशु आदि से रहित, सेज्जासण-शय्या (और) आसन से, जतियाण-नियत्रित, ओमासणाण-अल्पहारी (अवमौदर्य तप करने वालो) और दमिइदियाण-इन्द्रियो का दमन करने वालो के, चित्त-चित्त को, रागसत्तू-राग रूपी शत्रु, ण धरिसेइ-दबा नहीं सकता है।

भावानुवाद-विविक्त (स्त्री पशु आदि से रहित) शय्यासन के सेवन करने वाले, अल्प आहार करने वाले एव जितेन्द्रिय पुरुष के चित्त को राग द्वेष वैसे ही प्रभावित नहीं करते जैसे कि औषधियो से पराजित-नष्ट हुई व्याधि पुन शरीर पर आक्रमण नहीं करती है।

13 नियमो का यथा विधि पालन नहीं करने का परिणाम

मूल गाथा- जहा बिरालावसहस्स मूले,
ण मूसगाण वसही पसत्था।
एमेव इत्थीणिलयस्स मज्झे,
ण बभयारिस्स खमो णिवासो॥13॥

संस्कृत छाया- यथा बिडालावसथस्य मूले,
न मूषकाणा वसति प्रशस्ता।
एवमेव स्त्रीनिलयस्य मध्ये,
न ब्रह्मचारिण क्षमो निवास ॥१३॥

अन्वयार्थ-जहा-जिस प्रकार, विरालावसहस्स-बिल्ली के रहने के स्थान के, मूले-समीप, मूसगाण-मूषक-चूहों का, वसही-वसति (रहना), ण पसत्था-प्रशस्त नहीं है, एमेव-इसी प्रकार, इत्थीणिलयस्स-स्त्रियो के स्थान के, मज्झे-मध्य मे, बंभयारिस्स-ब्रह्मचारी का, णिवासो-निवास स्थान, ण खमो-ठीक नहीं है।

भावानुवाद-जिस प्रकार बिल्ली के निवास स्थान के निकट चूहों का रहना प्रशस्त-हितकर नहीं होता है, इसी प्रकार स्त्रिया के निवास के निकट ब्रह्मचारी का निवास करना भी प्रशस्त नहीं है।

14 स्त्री को देखने की इच्छा न करना

मूल गाथा- ण रूव लावण्णविलास हास,
ण जपिय इगिय पेहिय वा।

इत्थीण चित्तसि णिवेसइत्ता,
दट्ठु ववस्से समणे तवस्सी ॥१४॥

सस्कृत छाया- न रूपलावण्यविलासहास्य,
न जल्पितमिगित प्रेक्षित वा।
स्त्रीणा चित्ते निवेश्य (तत्सर्व),
द्रष्टु व्यवस्येच्छ्रमणस्तपस्वी ॥१४॥

अन्वयार्थ-समणे-श्रमण, तवस्सी-तपस्वी, इत्थीण-स्त्रियो के, रूव-रूप, लावण्ण-लावण्य, विलास-विलास, (और) हास-हास्य का, वा-अथवा, जपिय-जल्पित (प्रियवचन), इगिय-इगित, पेहिय-कटाक्ष पूर्वक देखने को, चित्तसि-चित्त मे, णिवेसइत्ता-स्थापित करके, दट्ठु-(रागपूर्वक) देखने का, ण ववस्से-प्रयत्न न करे।

भावानुवाद-श्रमण तपस्वी साधक स्त्रियो के रूप, लावण्य, विलास, हास्य तथा आलाप-मधुर वचन इगित एव कटाक्ष आदि चेष्टाओ को अपने चित्त में स्थित करके उन्हे राग-पूर्वक देखने का प्रयास न करे।

15 स्त्रियो के राग पूर्वक अवलोकन आदि का निषेध

मूल गाथा- अदसण चेव अपत्थण च,
अचितण चेव अकित्तण च।
इत्थीजणस्सारियझाणजुग्ग,
हिय सया बभवए रयाण ॥१५॥

सस्कृत छाया- अदर्शन चैवाप्रार्थन च,
अचिन्तन चैवाकीर्तन च।
स्त्रीजनस्यार्यध्यानयोग्य,
हित सदा ब्रह्मव्रते रतानाम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-च-और, सया-सदा, बभवए-ब्रह्मचर्य व्रत मे, रयाण-अनुरक्त, च-और, आरियझाण-आर्य ध्यान मे, जुग्ग-योग्य (साधुओ) को, इत्थीजणस्स-स्त्रियो के अगापागादि, अदसण-रागपूर्वक न देखना, चेव-और, अपत्थण-उनकी प्रार्थना न करना, अचितण-चिन्तन नहीं करना, चेव-और, अकित्तण-उनका गुण कीर्तन नहीं करना, हिय-यही हितकारी है।

भावानुवाद-सदा ब्रह्मचर्य व्रत मे स्थित रहने वाले साधक को तथा आर्य ध्यान अर्थात् धर्म ध्यान मे लीन साधक को स्त्रियो के अगोपागो को रागपूर्वक नहीं देखना चाहिए, उनकी कामना नहीं करना चाहिए तथा आसक्ति पूवक उनके रूप आदि का गुण कीर्तन नहीं करना चाहिए, यही उनके लिए हितावह है।

16 सयमी साधु को विविक्त स्थान म ही रहने की आज्ञा

मूल गाथा- काम तु देवीहिं विभूसियाहिं,
ण चाइया खोभइउ तिगुत्ता।

तहाऽवि एगतहिय ति णच्चा,
विवित्तवासो मुणिण पसत्थो ॥१६॥

सस्कृत छाया- काम तु देवीभिर्विभूषिताभि,
न शकिता क्षोभयितु त्रिगुप्ता।
तथाप्येकान्तहितमिति ज्ञात्वा,
विविक्तवासो मुनीना प्रशस्त ॥१६॥

अन्वयार्थ-काम तु-भले ही, तिगुत्ता-मन वचन काया से गुप्त मुनि को, विभूसियाहिं-वेषभूषा से युक्त (सुशोभित) देवीहिं-देविया, खोभइउ-क्षुभित करने (सयम से गिराने) को, ण चाइया-समर्थ नहीं हो सकी, तहावि-फिर भी, एगत-एकान्त, हिय-हितकारी, त्ति-ऐसा, णच्चा-जानकर, मुणिण-मुनियो को, विवित्तवासो-विविक्त वास ही, पसत्थो-प्रशस्त है।

भावानुवाद-भले ही तीन गुप्तियो से गुप्त सक्षम मुनि जो वस्त्रालकारो से सज्जित मनोहर देवागनाओ द्वारा भी ब्रह्मचर्य व्रत से डिगाये नहीं जा सकते हो, तथापि एकान्त हित की दृष्टि से मुनियो के लिए विविक्तवास-स्त्री, पशु नपुसक से रहित स्थान का सेवन ही प्रशस्त माना गया है।

17 स्त्री त्याग की दुष्करता का वर्णन

मूल गाथा- मोक्खाभिकखिस्स उ माणवस्स,
ससारभीरुस्स ठियस्स धम्मे।
णेयारिस दुत्तरमत्थि लोए,
जहित्थिओ बालमणोहराओ ॥१७॥

सस्कृत छाया- मोक्षाभिकाक्षिणस्तु मानवस्य,
ससारभीरो स्थितस्य धर्मे।
नैतादृश दुस्तरमस्ति लोके,
यथा स्त्रियो बालमनोहरा ॥१७॥

अन्वयार्थ-मोक्ख-मोक्ष के, अभिकखिस्स-अभिलाषी, ससार भीरुस्स-ससार से डरने वाले, उ-और, धम्मे धर्म मे, ठियस्स-स्थित, माणवस्स-मनुष्य को, लोए-लोक में, एयारिस-एतादृश (ऐसा), दुत्तर-दुस्तर कार्य, ण अत्थि-कोई नहीं, जह-जितना, बाल-अज्ञानी जीवो के, मणोहराओ-मन को हरने वाली, इत्थिओ-स्त्रियो का त्यागना कठिन है।

भावानुवाद-मोक्षाभिकाक्षी, ससार भीरु और धर्म में स्थित मानव के लिए इस लोक मे ऐसा कुछ भी दुस्तर कठिन नहीं है, जैसा कि अज्ञानी जीवो के लिए मन को हरण करने वाली स्त्रियो को त्यागना है।

18 स्त्री सग के त्याग से प्राप्त गुण

मूल गाथा- एए य सगे समइक्कमित्ता,
सुदुत्तरा चेव भवति सेसा।

जहा महासागरमुत्तरित्ता,
णई भवे अवि गगासमाणा ॥१८॥

संस्कृत छाया- एताश्च सगान् समतिक्रम्य,
सुखोत्तराश्चैव भवन्ति शेषा ।
यथा महासागरमुत्तीर्य,
नदी भवेदपि गगासमाना ॥१८॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, महासागर-महासागर को, उत्तरित्ता-तैरकर, गगा समाणा-गगा के समान, णई-नदी को, अवि-पार करना, भवे-सरल है, चेव-वैसे ही, एए-इन, सगे-सगो (स्त्रियादि) को, समइक्कमित्ता-छोड देने के बाद, सेसा-शेष पदार्थ (आसक्तिया), सुहुत्तरा-सुखेत्तर (सरलता से छोडने योग्य), भवति-होते हैं।

भावानुवाद-इन स्त्री सम्बन्धी सभी ससर्गों के सम्यग् परित्याग कर देने के बाद सभी आसक्तिया वैसे ही सुख पूर्वक छोडी जा सकती है जैसे कि महासागर को तैर कर पार हो जाने के बाद गगा जैसी नदियो को पार कर जाना सरल होता है।

19 काम राग-दु ख का एक मात्र कारण

मूल गाथा- कामाणुगिद्धिप्पभव खु दुक्ख,
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
ज काइय माणसिय च किचि,
तस्सतग गच्छइ वीयरागो ॥१९॥

संस्कृत छाया- कामानुगृद्धिप्रभव खलु दु ख,
सर्वस्य लोकस्य सदेवकस्य।
यत्कायिक मानसिक च किचित्,
तस्यान्तक गच्छति वीतराग ॥१९॥

अन्वयार्थ-सदेवगस्स-देवलोक सहित, सव्वस्स-समग्र, लोगस्स-लोक मे, ज-जो, किचि-कुछ भी, काइय-कायिक, च-और, माणसिय-मानसिक, दुक्ख-दु ख हैं, (वे सब), खु-वास्तव मे, कामाणुगिद्धि-काम की सतत अभिलाषा से, प्पभव-उत्पन्न होते हैं, वीयरागो-वीतराग पुरुष, तस्स-उन दु खो के, अतग-अन्त का, गच्छइ-प्राप्त करता है।

भावानुवाद-देवलोक सहित समस्त लोक म जो कुछ भी शारीरिक और मानसिक दु ख हैं, वे सब कामभोगो की आसक्ति से ही उत्पन्न होते हैं। वीतराग आत्मा ही उन दु खो का अन्त प्राप्त कर सकती है।

20 काम भोगादि की हेयोपादेयता का विचार करना

मूल गाथा- जहा य किपागफला मणोरमा,
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा।

ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा,
एओवमा कामगुणा विवागे ॥२०॥

संस्कृत छाया- यथा च किम्पाकफलानि मनोरमाणि,
रसेन वर्णेन च भुज्यमानानि।
तानि क्षोदयन्ति जीवितं पच्यमानानि,
एतदुपमा कामगुणा विपाके ॥२०॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, किंपाग-किंपाक वृक्ष के, फला-फल, रसेण-रस से, वण्णेण-वर्ण से, य-और गन्धादि से, मणोरमा-मन को आनन्द देने वाले, य-और, ते-वे, भुञ्जमाणा-खाए हुए (परन्तु), पच्चमाणा-परिणत होते हुए, जीविय-जीवन का, खुड्डए-विनाश कर देते हैं, एओवमा-यही उपमा, कामगुणा-कामगुणो के, विवागे-विपाक (परिमाणो) की है।

भावानुवाद-जैसे किंपाक वृक्ष के फल रस से और रूप रंग की दृष्टि से देखने और खाने में मनोरम और स्वादिष्ट होते हैं किन्तु परिपाक-खाने के बाद वे उपक्रम युक्त आयु वाले व्यक्ति के जीवन का अन्त कर देते हैं यही उपमा-स्थिति काम गुणो के विपाक-परिणाम की होती है।

21 राग और द्वेष का त्याग करना

मूल गाथा- जे इंदियाणं विसया मणुण्णा,
ण तेसु भावं णिसिरे कयाइ।
ण यामणुण्णेसु मणऽपि कुज्जा,
समाहिकामे समणे तवस्सी ॥२१॥

संस्कृत छाया- ये इन्द्रियाणां विषया मनोज्ञाः,
न तेषु भावं निसृजेत् कदापि।
न चामनोज्ञेषु मनोऽपि कुर्यात्,
समाधिकामः श्रमणस्तपस्वी ॥२१॥

अन्वयार्थ-समाहिकामे-समाधि को चाहने वाला, समणे-श्रमण, तवस्सी-तपस्वी, इंदियाणं-इन्द्रियों के, जे-जो, मणुण्णा-मनोज्ञ, विसया-विषय हैं, तेसु-उनमें, कयाइ-कभी भी, भावं-राग भाव, ण णिसिरे-न करे, य-और, अमणुण्णेसु-अमनोज्ञ विषयों में, मणऽपि-मन से भी, ण कुज्जा-द्वेष भाव न करे।

भावानुवाद-समाधि का अभिलाषी श्रमण-तपस्वी जो इन्द्रियो के मनोज्ञ विषय हैं उनमें कभी भी राग भाव न करे और अमनोज्ञ विषयों मे मन से भी द्वेष भाव न करे।

22 चक्षु ग्रहीत रूप की प्रियता और अप्रियता

मूल गाथा- चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति,
तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु।

त दोसहेउ अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु य वीयरागो ॥२२॥

संस्कृत छाया- चक्षुषो रूपं ग्रहणं वदन्ति,
तद् रागहेतुं तु मनोज्ञमाहु ।
तद् द्वेषहेतुममनोज्ञमाहु,
समश्च यस्तेषु स वीतराग ॥२२॥

अन्वयार्थ-रूव-रूप, चक्खुस्स-चक्षु इन्द्रिय का, गहण-ग्रहण (विषय), वयंति-कहते हैं, य-और, मणुण्ण-(जो रूप) मनोज्ञ है, त-उसे, तु-तो, रागहेउ-राग का हेतु, आहु-कहते हैं, य-और, अमणुण्ण (जो रूप)-अमनोज्ञ है, त-उसे, दोसहेउ-द्वेष का कारण, आहु-कहते है, जो-जो, तेसु-उन (दोनो रूपो) पर, समो-समभाव रखता है, स-वह, वीयरागो-वीतराग है।

भावानुवाद-चक्षु का ग्रहण-ग्राह्य विषय रूप है, जो रूप राग भाव का हेतु होता है, उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो रूप द्वेष का कारण होता है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं। जो इन दोनो मे सम-राग द्वेष रहित होता है, वह वीतराग है।

23 रूप और चक्षु का ग्राह्य-ग्राहक-भाव सम्बन्ध

मूल गाथा- रूवस्स चक्खु गहणं वयंति,
चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ॥२३॥

संस्कृत छाया- रूपस्य चक्षुर्ग्राहकं वदन्ति,
चक्षुषो रूपं ग्राह्यं वदन्ति।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहु,
द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहु ॥२३॥

अन्वयार्थ-चक्खु-चक्षु को, रूवस्स-रूप का, गहण-ग्राहक, वयंति-कहते हैं, रूव-रूप को, चक्खुस्स-चक्षु का, गहण-ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य), वयंति-कहते हैं, समणुण्ण-मनोज्ञ रूप को, रागस्स-राग का, हेउ-हेतु, आहु-कहते हैं, (और) अमणुण्ण-अमनोज्ञ रूप को, दोसस्स-द्वेष का, हेउ-हेतु, आहु-कहते हैं।

भावानुवाद-चक्षु रूप का ग्रहण कर्ता-ग्राहक है, रूप चक्षु का ग्राह्य विषय है। जो मनोज्ञ है, उसे राग का कारण कहते हैं, जो अमनोज्ञ है उसे द्वेष का हेतु कहते हैं।

24 रूपादि विषयक आसक्ति के परिणाम का दिग्दर्शन

मूल गाथा- रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं।

रागाउरे से जह वा पयगे,
आलोयलोले समुवेइ मच्चु ॥२४॥

संस्कृत छाया- रूपेषु यो गृद्धि मुपैति तीव्रा,
अकालिक प्राप्नोति स विनाशम्।
रागातुर स यथा वा पतग,
आलोक लोल समुपैति मृत्युम्॥२४॥

अन्वयार्थ-जह वा-जैसे, आलोयलोले-आलोक मे लम्पट, रागाउरे-राग से आतुर हुआ, पयगे-(पतगा)-पतग, मच्चु-मृत्यु को, समुवेइ-प्राप्त करता है (वैसे ही), जो-जो पुरुष, रूवेसु-रूपो म, तिव्व-तीव्र, गिद्धिं-राग उवेइ-प्राप्त करता है, से-वह, अकालिय-अकाल में, विणास-विनाश को, पावइ-पाता है।

भावानुवाद-जो व्यक्ति मनोज्ञ रूपो मे तीव्र गृद्धि आसक्ति रखता है वह रागातुर वैसे ही अकाल मे विनाश को प्राप्त होता है जैसे प्रकाश पर लोलुप बना पतगा प्रकाश के रूप पर आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त होता है।

25 द्वेष युक्त भावो से दु खित

मूल गाथा- जे यावि दोस समुवेइ तिव्व,
तसिक्खणे से उ उवेइ दुक्ख।
दुद्दतदोसेण सएण जतू,
ण किचि रूव अवरज्झई से॥२५॥

संस्कृत छाया- यश्चापि द्वेष समुपैति तिव्रम्,
तस्मिन्क्षणे स तु समुपैति दु खम्।
दुर्दान्तदोषेण स्वकेन जन्तु,
न किंचिद्रूपमपराध्यति तस्य॥२५॥

अन्वयार्थ-जे-जो भी जीव, यावि-अमनोज्ञ रूप मे, तिव्वं-तीव्र, दोस-द्वेष को, समुवेइ-प्राप्त होता है, से-वह जतू-प्राणी, सएण-अपने ही, दुद्दत-दुर्दान्त, दोसेण-दोष से, तसिक्खणे-उसी क्षण में, दुक्ख-दु ख को, उवेइ-प्राप्त होता है, से-इसमें, रूव-रूप का, किचि-कुछ भी, ण अवरज्झइ-अपराध नहीं है।

भावानुवाद-जो जीव अमनोज्ञ रूप मे तीव्रता पूर्वक द्वेष करता है वह प्राणी उसी क्षण में अपने ही दुर्दान्त दोष स दु ख को प्राप्त होता है, इसमे रूप का कुछ भी अपराध नहीं है।

26 राग-द्वेष मूलक अनर्थता का त्याग

मूल गाथा- एगतरत्ते रुइरसि रूवे,
अतालिसे से कुणई पओस।

दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो॥२६॥

संस्कृत छाया- एकान्तरक्तो रुचिरे रूपे,
एतादृशे स करोति प्रद्वेषम्।
दु खस्य सम्पीडामुपैति बाल,
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागी॥२६॥

अन्वयार्थ-जो-रुइरंसि-रुचिर (सुन्दर), रूवे-रूप मे, एगंतरत्ते-एकान्त रक्त और, अतालिसे-असुन्दर रूप मे, पओस-प्रद्वेष (द्वेष), कुणइ-करता है, से-वह, बालो-बाल (अज्ञानी) जीव, दुक्खस्स-दु ख के, सपील-समूह को, उवेइ-प्राप्त करता है, किन्तु विरागो-वीतराग, मुणी-मुनि, तेण-उस दु ख से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो जीव सुन्दर रूप मे एकान्त रूप से आसक्त होता है तथा अतादृश-असुन्दर रूप पर द्वेष करता है, वह अज्ञानी जीव दु ख-अत्यन्त पीडा को प्राप्त होता है, किन्तु वीतराग मुनि उनमे लिप्त नहीं होता है-राग-द्वेष नहीं करता है।

27 रूपराग की अनर्थ मूलकता का वर्णन

मूल गाथा- रुवाणुगासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिंसइ णेगरुवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे॥२७॥

संस्कृत छाया- रूपानुगाशानुगतश्च जीवान्,
चराचरान् हिनस्त्यनेकरूपान्।
चित्रैस्तान्परितापयति बाल,
पीडयत्यात्मार्थगुरु क्लिष्ट॥२७॥

अन्वयार्थ-रूवाणुगासा-रूप की आशा के, अणुगए-अनुगत हुआ, जीवे-जीव, णेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचरे-चराचर प्राणियो को, हिंसइ-हिसा करता है, य-और, बाले-वह, अज्ञानी, ते-उन जीवा को, चित्तेहि-नाना प्रकार से, परितावेइ-परिताप देता है, अत्तट्ठगुरु-आत्मार्थगुरु (अपने ही स्वार्थ से), किलिट्ठे-क्लिष्ट कुटिल जीव, पीलेइ-(अनेक जीवो को) पीडा देता है।

भावानुवाद-मनोज्ञ रूप की आशा आसक्ति मे अनुबद्ध जीव अनेक प्रकार के चराचर अर्थात् त्रस और स्थावर प्राणियो की हिसा करता है, वह अज्ञानी जीव उन प्राणियो को अपने ही स्वार्थ के वश कुटिल बना हुआ परिताप देता है, पीडा पहुचाता है।

28 रूप सभोग काल मे अतृप्त लाभ

मूल गाथा- रूवाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।
वए विओगे य कह सुह से,
सभोगकाले य अतित्तलाभे ॥२८॥

सस्कृत छाया- रूपानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।
व्यये वियोगे च कथ सुख तस्य,
सम्भोगकाले चातृप्तिलाभ ॥२८॥

अन्वयार्थ-रूवाणुवाएण-रूपविषयक राग होने से, परिग्गहेण-मूर्च्छा भाव से, उप्पायणे-उत्पादन में, रक्खण-रक्षण मे, सण्णिओगे-सनियोग मे, वए-उसके विनाश होने पर, य-और, विओगे-वियोग के समय, से-उस (रागी पुरुष) को, कह-कहा, सुह-सुख है, य-और, सभोग काले-सभोग काल में, अतित्तलाभे-अतृप्ति लाभ ही रहता है।

भावानुवाद-रूप मे अनुरक्त और परिग्रह मे मूर्च्छित व्यक्ति के द्वारा रूप की उत्पत्ति में सरक्षण में एव सनियोग - व्यापार में तथा व्यय और वियोग मे सुख कहा से प्राप्त किया जा सकता है? उसे उसके उपभोग काल में भी अतृप्ति के कारण दु ख ही होता है।

29 रूप राग से उत्पन्न अन्य दोषो का वर्णन

मूल गाथा- रूवे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥२९॥

सस्कृत छाया- रूपेऽतृप्तश्च परिग्रहे,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।
अतुष्टिदोषेण दु खी परस्य,
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥२९॥

अन्वयार्थ-रूवे-रूप में, अतित्ते-अतृप्त, य-और, परिग्गहम्मि-परिग्रह म, सत्तोवसत्तो-सक्त और उपसक्त बना हुआ (जीव), तुट्ठि-तुष्टि-सतोष को, ण उवेइ-प्राप्त नहीं होता है अतुट्ठिदोसेण-अतुष्टि दोष से, दुही-दु खी हुआ, लोभाविले-लोभ से व्याप्त हुआ (जीव), परस्स-दूसरों के, अदत्त-अदत्त (बिना दिये) पदार्थ का, आययई-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-रूप से अतृप्त बना हुआ तत् सम्बन्धी परिग्रह में आसक्त, अनुरक्त-अतीव आसक्त व्यक्ति सन्तोष को प्राप्त नहीं होता है, वह असन्तोष के दाष से दु खी एव लोभ स मलीन चित्त वाला व्यक्ति दूसरों को वस्तुए चुराता है।

30 राग के कारण बढी रूपासक्ति के दोषो का दिग्दर्शन

मूल गाथा-
तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
रूवे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥30॥

सस्कृत छाया-
तृष्णाभिभूतस्यादत्तहारिण,
रूपेऽतृप्तस्य परिग्रहे च।
माया मृषा वर्धते लोभदोषात्,
तत्रापि दु खान्न विमुच्यते स ॥३०॥

अन्वयार्थ-तण्हाभिभूयस्स-तृष्णा से पराजित हुआ, अदत्तहारिणो-चोरी करने वाला, य-और, रूवे-रूप विषयक, परिग्गहे-परिग्रह मे, अतित्तस्स-अतृप्त प्राणी, लोभदोसा-लोभ रूपी दोष से, मायामुस-मायामृषावाद की, वड्ढइ-वृद्धि करता है, तत्थावि-फिर भी, से-वह, दुक्खा-दु ख से, ण विमुच्चइ-विप्रमुक्त (छूटता) नहीं होता है।

भावानुवाद-रूप और परिग्रह मे अतृप्त एव तृष्णा के वशीभूत होकर वह दूसरो की रूपवान् वस्तुओ को चुराता है। लोभ के दोष से उसके माया-मृषावाद-कपट और झूठ की वृद्धि होती है फिर भी कपट एव झूठ का प्रयोग करने पर भी वह दु ख से मुक्त नहीं होता है।

31 असत्य भाषण का दुष्परिणाम

मूल गाथा-
मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरते।
एव अदत्ताणि समाययतो,
रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥31॥

सस्कृत छाया-
मृषावाक्यस्य पश्चाच्च पुरस्ताच्च,
प्रयोगकाले च दु खी दुरन्त।
एवमदत्तानि समाददान,
रूपेऽतृप्तो दु खितोऽनिश्र ॥३१॥

अन्वयार्थ-मोसस्स-झूठ बोलने के, पुरत्थओ-पहले, य-और, पच्छा-पीछे, य-तथा, पओगकाले-प्रयोग काल मे (बोलते समय), दुरते (जीव)-दुरन्त, दुही-दु खी ही रहता है, एव-इसी प्रकार, रूवे-रूप में, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि-अदत्त पदार्थ को, समाययतो-ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो-अनाश्रित, य-और, दुहिओ-दु खी होता है।

भावानुवाद-असत्य बोलने के पूर्व और पीछे तथा झूठ बोलने के समय भी वह अत्यन्त दु खी होता है। उसका अन्त भी दु ख रूप ही होता है। इस प्रकार रूप के विषय में अतृप्त बना जीव बिना दी हुई वस्तुओं को ग्रहण करता हुआ

दु खी और आश्रय रहित हो जाता है।

32 रूपादि विषय का निगमन

मूल गाथा- रूवाणुरत्तस्स णरस्स एव,
कत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि?
तत्थोवभोगेऽवि किलेसदुक्ख,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥32॥

संस्कृत छाया- रूपानुरक्तस्य नरस्यैव,
कुत सुख भवेत्कदापि किञ्चित्?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेशदु ख,
निर्वर्तयति यस्य कृते दु खम् ॥32॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, रूवाणुरत्तस्स-रूप में अनुरक्त, णरस्स-मनुष्य को, किंचि-किंचिन्मात्र, कयाइ-कभी भी, सुह-सुख, कत्तो-कहा, होज्ज-हो सकता है, जस्स-जिस के, कएण-लिए, दुक्ख-दु ख का, णिव्वत्तई-उत्पन्न करता है, तत्थ-वहा पर, उवभोगेऽवि-भोगने के समय पर भी, किलेस-क्लेश (और), दुक्ख-दु ख को पाता है।

भावानुवाद-इस प्रकार रूप मे आसक्त बने हुए मनुष्यो को कहा कब और कितना सुख हो सकता है? अर्थात् उसे कभी भी किञ्चित् मात्र भी सुख नहीं हो सकता है। जिस रूपवान् वस्तु को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपार कष्ट उठाता है, उसके उपभोग में भी अत्यन्त क्लेश और दु ख ही प्राप्त करता है।

33 कुत्सित रूप प्रद्वेष का वर्णन

मूल गाथा- एमेव रूवम्मि गओ पओस,
उवेइ दुक्खोहपरपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म,
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥33॥

संस्कृत छाया- एवमेव रूपे गत प्रद्वेष,
उपैति दु खौघपरम्परा।
प्रदुष्टचित्तश्च चिनोति कर्म,
यदस्य पुनर्भवति दु ख विपाके ॥33॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, रूवम्मि-अमनोज्ञ रूप में, पओस-प्रद्वेष को, गओ-प्राप्त हुआ जीव, दुक्खोह-दु ख समूह की, परपराओ-परपरा को, उवेइ-पाता है, य-और, पदुट्ठचित्तो-प्रदुष्टचित्त हुआ (जीव) कम्म-(अशुभ) कर्म को, चिणाइ-बाधता है, ज-जिससे से-उसे, पुणो-फिर विवाग-विपाक के समय, दुह-दु ख, होइ-होता है।

भावानुवाद-इसी प्रकार अमनोज्ञ रूप पर द्वेष करने वाला जीव भी उत्तरोत्तर दु ख समूह की परम्परा को प्राप्त होता है। अति द्वेष से दूषित चित्त से यह जीव अशुभ कर्मों का बध करता है जिससे उसे उन कर्मों के फल विपाक के समय पुन दु ख होता है।

34 रूप रागद्वेष के परित्याग का फल

मूल गाथा-

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोहपरपरेण।
ण लिप्पइ भवमज्झेऽवि सतो,
जलेण वा पोक्खरिणी पलास ॥३४॥

सस्कृत छाया-

रूपे विरक्तो मनुजो विशोक,
एतया दु खौघपरम्परया।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्,
जलेनेव पुष्करिणीपलाशम् ॥३४॥

अन्वयार्थ-(जिस प्रकार) पोक्खरिणी पलास-पुष्करिणी पलाश (पद्मिनी का पत्र), जलेण-जल मे, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता, वा-उसी प्रकार, रूवे-रूप में, विरत्तो-विरक्त, मणुओ-मनुष्य, विसोगो-शौक (राग द्वेष) रहित होता है, भवमज्झे-ससार मे, सतो वि-रहता हुआ भी, एएण-इस (रूपविषयक) दुक्खोहपरपरेण-दु ख समूह की परम्परा से (लिप्त नहीं होता है)।

भावानुवाद-रूप की आसक्ति से विरक्त पुरुष शोक रहित होता है। वह ससार मे रहता हुआ भी दु ख समूह की परम्परा से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार जल मे उत्पन्न हुआ कमल-पत्र जल से लिप्त नहीं होता।

35 श्रोत्रेन्द्रिय के विषय का वर्णन

मूल गाथा-

सोयस्स सद्द गहण वयति,
त रागहेउ तु मणुण्णमाहु।
त दोसहेउ अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो॥३५॥

सस्कृत छाया-

श्रोत्रस्य शब्द ग्रहण वदन्ति,
त रागहेतु तु मनोज्ञमाहु।
त द्वेषहेतुममनोज्ञमाहु,
समश्च यस्तेषु स वीतराग ॥३५॥

अन्वयार्थ-सद्द-शब्द को, सोयस्स-श्रोत्रेन्द्रिय का, गहण-ग्राह्य विषय, वयति-कहते हैं, तु-और, मणुण्णं-जो मनोज्ञ शब्द है, त-उसे, रागहेउ-राग का हेतु, आहु-कहते हैं, (और) अमणुण्ण-जो अमनोज्ञ शब्द है, तं-उसे,

दोसहेउ-द्वेष का हेतु, आहु-कहते हैं, य-और, जो-जो, तेसु-उन दोनों पर, समो-समभाव रखता है, स-वह, वीयरागो-वीतरागी है।

भावानुवाद-श्रोत्र का ग्रहण विषय शब्द है, जो शब्द राग का हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहते हैं, जो शब्द द्वेष का कारण है उसे अमनोज्ञ कहते हैं।

36 श्रोत्र एवं शब्द का ग्राहक-ग्राह्य भाव सम्बन्ध

मूल गाथा-
सद्दस्स सोयं गहणं वयंति,
सोयस्स सद्दं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ॥36॥

संस्कृत छाया-
शब्दस्य श्रोत्रं ग्राहकं वदन्ति,
श्रोत्रस्य शब्दं ग्राह्यं वदन्ति।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः,
द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥36॥

अन्वयार्थ-सोयं-श्रोत्रेन्द्रिय को, सद्दस्स-शब्द का, गहणं-ग्राहक, वयंति-कहते हैं, सद्दं-शब्द को, सोयस्स-श्रोत्रेन्द्रिय का, गहणं-ग्राह्य (विषय), वयंति-कहते है, समणुण्णं-मनोज्ञ शब्द को, रागस्स-राग का, हेउं-हेतु, आहु-कहते हैं, अमणुण्णं-अमनोज्ञ शब्द को, दोसस्स-द्वेष का, हेउं-हेतु, आहु-कहते हैं।

भावानुवाद-श्रोत्रेन्द्रिय को शब्द का ग्राहक कहते हैं और शब्द को श्रोत्रेन्द्रिय का ग्राह्य कहते हैं। मनोज्ञ शब्द को राग का कारण कहते हैं और अमनोज्ञ शब्द को द्वेष का कारण कहते हैं।

37 शब्द विषयक राग से उत्पन्न हानि का दिग्दर्शन

मूल गाथा-
सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे हरिणमिगे व मुद्धे,
सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं ॥37॥

संस्कृत छाया-
शब्देषु यो गृद्धिमुपैति तीव्राम्,
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम्।
रागातुरो हरिणमृग इव मुग्धः,
शब्देऽतृप्तः समुपैति मृत्युम् ॥37॥

अन्वयार्थ-(जिस प्रकार) रागाउरे-रागातुर, मुद्धे-मुग्ध, हरिणमिगे-हरिण मृग, सद्दे-शब्द में, अतित्ते-अतृप्त रहता हुआ, मच्चुं-मृत्यु को, समुवेइ-प्राप्त होता है, व-उसी प्रकार, जो-जो (जीव), सद्देसु-शब्दों में, तिव्वं-तीव्र,

गिद्धि-गृद्धि (मूर्च्छा) को, उवेइ-प्राप्त करता है, से-वह, अकालिय-अकाल मे ही, विणास-विनाश को, पावइ-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-जैसे सगीत के राग मे आसक्त एव मुग्ध बना हुआ अज्ञानी मृग शब्द मे अतृप्त रहता हुआ मृत्यु को प्राप्त करता है, उसी प्रकार जो जीव मनोज्ञ शब्दो मे तीव्र रूप से आसक्त होता है वह रागातुर अकाल मे ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

38 शब्द विषयक द्वेष करने का फल

मूल गाथा-

जे यावि दोस समुवेइ तिव्व,
तसि क्खणे से उ उवेइ दुक्ख।
दुद्दतदोसेण सएण जतू,
ण किचि सद्द अवरज्झइ से ॥३८॥

सस्कृत छाया-

यश्चापि द्वेष समुपैति तीव्र,
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दु खम्।
दुर्दान्तदोषेण स्वकेन जन्तु,
न किञ्चिच्छब्दोऽपराध्यति तस्य ॥३८॥

अन्वयार्थ-जे यावि-जो भी जीव, (अमनोज्ञ शब्द मे), तिव्व-तीव्र, दोस-द्वेष, समुवेइ-प्राप्त करता है, से-वह, जतू-प्राणी, सएण-अपने ही, दुद्दत-दुर्दान्त, दोसेण-दोष से, तसिक्खणे-उसी क्षण से, दुक्ख-दु ख को, उवेइ-प्राप्त हाता है, से-इसमे, सद्द-शब्द का, किचि-कुछ भी, ण अवरज्झइ-अपराध नहीं है।

भावानुवाद-जो जीव अमनोज्ञ शब्द के प्रति तीव्र द्वेष करता है वह उसी क्षण दुर्दान्त द्वेष से दु खी होता है इसमे शब्द का कोई अपराध नहीं है।

39 शब्द-राग-द्वेष की परिणति एव त्याग का फल

मूल गाथा-

एगतरत्ते रुइरसि सद्दे,
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥३९॥

सस्कृत छाया-

एकान्तरक्तो रुचिरे शब्दे,
अतादृशे स कुरुते प्रद्वेषम्।
दु खस्य सम्पीडामुपैति बाल,
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागी ॥३९॥

अन्वयार्थ-(जो जीव) रुइरंसि-रुचिर मनोज्ञ, सद्दे-शब्द मे, एगतरत्ते-एकान्त रक्त (और), अतालिसे-अमनोज्ञ शब्द में, पओस-प्रद्वेष, कुणइ-करता है, से-वह, बाले-बाल (अज्ञानी) जीव, दुक्खस्स-दु ख की, सपीलं-पीडा को, उवेइ-प्राप्त होता है, (किन्तु) विरागो-वीतराग, मुणी-मुनि, तेण-उस (दु ख) से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो जीव प्रिय शब्द में अत्यन्त अनुरक्त होता है तथा अप्रिय शब्द पर द्वेष करता है वह अज्ञानी दु ख की पीडा को प्राप्त हाता है, विरक्त मुनि उस दु ख से लिप्त नहीं हाता है।

40 शब्द राग को हिंसादि आस्रवो का कारण बतलाना

मूल गाथा- सद्दाणुगासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥४०॥

सस्कृत छाया- शब्दानुगाशानुगतश्च जीव,
चराचरान् हिनस्त्यनेकरूपान्।
चित्रैस्तान् परितापयति बाल,
पीडयत्यात्मार्थ गुरु क्लिष्ट ॥४०॥

अन्वयार्थ-सद्दाणुगासा-शब्द की आशा से, अणुगए-अनुगत, जीवे-जीव, अणेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचर-चराचर प्राणियो की, हिंसइ-हिसा करता है, य-और, बाले-वह बाल (अज्ञानी) जीव, ते-उन (प्राणियो) का, चित्तेहि-नाना प्रकार से, परितावेइ-परिताप देता है, अत्तट्ठगुरू-आत्मार्थगुरु (अपने ही स्वार्थ से), किलिट्ठ-क्लिष्ट (कुटिल जीव), पीलेइ-अनेक जीवो को पीडित करता है।

भावानुवाद-शब्द की आशाओ मे अनुरक्त जीव अनेक प्रकार के चराचर-त्रस और स्थावर प्राणियो की हिसा करता है। वह बाल अज्ञानी जीव उन प्राणियो को अनेक प्रकार से परिताप पहुचाता है। अपने ही स्वार्थों म तल्लीन बना हुआ वह कुटिल जीव अनेक जीवों को पीडित करता है।

41 शब्द सभोग काल म अतृप्ति लाभ

मूल गाथा- सद्दाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।
वए विओगे य कह सुह से,
सभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥४१॥

सस्कृत छाया- शब्दानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।

व्यये वियोगे च कथ सुख तस्य,
सम्भोगकाले चातृप्तिलाभे ॥४१॥

अन्वयार्थ-सद्दाणुवाएण-शब्द के अनुराग से, परिग्गहेण-परिग्रह से, उप्पायणे-उत्पादन मे, रक्खणे-रक्षण मे, सणिओगे-सनियोग में, वए-विनाश में, विओगे-वियोग मे, य-और, सभोगकाले-सभोगकाल मे, अतित्तिलाभे-अतृप्त लाभ से, से-उसको, कह-कैसे (कहा से), सुह-सुख हो सकता है?

भावानुवाद-शब्द के प्रति अनुराग एव ममत्व के कारण शब्द सम्बन्धी विषय के उत्पादन में, सरक्षण मे, सन्नियोग मे तथा व्यय एव वियोग मे उसे सुख कहा से प्राप्त होगा? उसे उपभोग काल मे भी तृप्ति नहीं होती है, अत दु ख ही होता है।

42 शब्द की कामना से चौर्य कर्म मे प्रवृत्त

मूल गाथा- सद्दे अतित्तो य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥४२॥

सस्कृत छाया- शब्देऽतृप्तश्च परिग्रहे,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।
अतुष्टिदोषेण दु खी परस्य
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥४२॥

अन्वयार्थ-सद्दे-शब्द मे, अतित्ते-अतृप्त, य-और, परिग्गहम्मि-परिग्रह मे, सत्तोवसत्तो-सक्त और उपसक्त हुआ जीव, तुट्ठिं-तुष्टि (सतोष) को, ण उवेइ-प्राप्त नहीं होता, अतुट्ठि-अतुष्टि के, दोसेण-दोष से, दुही-दु खी (तथा), लोभाविले-लोभ से व्याकुल हुआ जीव, परस्स-दूसरो के, अदत्त-अदत्त (बिना दिये) पदार्थों का, आययई-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-शब्द मे अतृप्त बना हुआ शब्द विषयक परिग्रह मे आसक्त तथा विशेष आसक्त व्यक्ति सतोष को प्राप्त नहीं होता है, असतोष रूप दोष से दु खित एव लोभ से ग्रस्त जीव दूसरो की बिना दी हुई वस्तुओ को ग्रहण करता है, चोरी करता है।

43 शब्दासक्ति के दोषो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥४३॥

संस्कृत छाया- तृष्णाभिभूतस्यादत्तहारिण ,
शब्देऽतृप्तस्य परिग्रहे च।
माया मृषा वर्धते लोभदोषात्,
तत्रापि दु खान्न विमुच्यते स ॥४३॥

अन्वयार्थ-तण्हाभिभूयस्स-तृष्णा से पराजित, अदत्तहारिणो-चोरी करने वाला, य-और, सद्दे-शब्द विषयक परिग्गहे-परिग्रह मे, अतित्तस्स-अतृप्त प्राणी, लोभदोसा-लोभ रूपी दोष से, मायामुस-माया मृषावाद का, वड्ढइ-वृद्धि करता है, तत्थावि-तथापि, से-वह, दुक्खा-दु खा से, ण विमुच्चइ-विमुक्त नहीं होता है।

भावानुवाद-तृष्णा के वशीभूत बने हुए, अदत्त को ग्रहण करने वाले तथा शब्द विषयक परिग्रह में अतृप्त जीव के लोभ रूपी दोष से झूठ कपट की वृद्धि होती है, तथापि वह दु ख-मुक्त नहीं होता है।

44 असत्य भाषण का दुष्परिणाम

मूल गाथा- मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरंते।
एव अदत्ताणि समाययतो,
सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥४४॥

संस्कृत छाया- मृषा (वाक्यस्य) पश्चाच्च पुरस्ताच्च,
प्रयोगकाले च दु खी दुरन्त ।
एवमदत्तानि समाददान ,
शब्देऽतृप्तो दु खितोऽनिश्र ॥४४॥

अन्वयार्थ-मोसस्स-झूठ बोलने से, पुरत्थओ-पहले, य-और, पच्छा-पीछे, य-तथा, पओगकाले-प्रयोग करने में (झूठ बोलते समय) जीव, दुरते-दुरन्त, दुही-दु खी रहता है, एव-इसी प्रकार, सद्दे-शब्द में, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि-अदत्त पदार्थों को, समाययतो-ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो-अनाश्रित, य-और, दुहिओ-दु खी होता है।

भावानुवाद असत्य बोलने के पूव, उसके पश्चात् एव बोलने के समय भी वह जीव ऐसा दु खी होता है, जिसका अन्त कठिन होता है। इस प्रकार शब्द मे अतृप्त जीव शब्द विषयक चोरी करता हुआ आश्रयहीन एव दु खी होता है।

45 असन्तोष वृद्धि से दु खो का वणन

मूल गाथा- सद्दाणुरत्तस्स णरस्स एव,
कत्तो सुह होज्ज कयाइ किचि?
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्ख,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥४५॥

संस्कृत छाया- शब्दानुरक्तस्य नरस्यैव,
कुत सुख भवेत् कदापि किञ्जित्?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेश दु ख,
निर्वर्तयति यस्य कृते दु खम् ॥४५॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, सद्दाणुरत्तस्स-शब्दानुरक्त, णरस्स-मनुष्य को, कयाइ-कभी भी किंचि-किंचित मात्र, सुह-सुख, कत्तो-कहा से, होज्ज-हो सकता है, जस्स-जिसके, कएण-लिए, दुक्ख-दु ख को, णिव्वत्तई-पाता है, तत्थ-वहा पर, उवभोगेवि-उपभोग के समय भी, किलेस-क्लेश (और) दुक्ख-दु ख को (पाता है)।

भावानुवाद-इस प्रकार शब्द के प्रति अनुरक्त प्राणी को सुख कहा हो सकता है? अर्थात् उसे कभी भी किंचित् मात्र भी सुख नहीं हो सकता है। जिन शब्द सुखो के लिए जीव दु ख उठाता है उनके उपभोग मे भी वह अत्यन्त क्लेश एव दु ख प्राप्त करता है।

46 शब्द विषयक द्वेष भी दु ख का हेतु

मूल गाथा- एमेव सद्दम्मि गओ पओस,
उवेइ दुक्खोहपर पराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म,
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥४६॥

संस्कृत छाया- एवमेव शब्दे गत प्रद्वेषम्,
उपैति दु खौघपरम्परा ।
प्रदुष्ट चित्तश्च चिनोति कर्म,
यत्तस्य पुनर्भवति दु ख विपाके ॥४६॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, सद्दम्मि-अप्रिय शब्द मे, पओस-प्रद्वेष को, गओ-प्राप्त हुआ, दुक्खोहपरपराओ-दु ख समूह की परम्परा को, उवेइ-प्राप्त करता है, य-और, पदुट्ठचित्तो-प्रद्विष्ट चित्त से, कम्म-कर्म को, चिणाइ-बाधता है, ज-जिससे, से-उसे, पुणो-फिर, विवागे-विपाक के समय, दुह-दु ख, होइ-होता है।

भावानुवाद-इसी प्रकार अमनोज्ञ शब्द के प्रति द्वेष करने वाला जीव उत्तरोत्तर दु ख समूह की परम्परा को प्राप्त करता है। अत्यन्त द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव जिन अशुभ कर्मों का उपार्जन करता है वे ही विपाक-फल देने के समय दु ख के हेतु बनते हैं।

47 रागद्वेष के परित्याग का फल

मूल गाथा- सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोहपर परेण।
ण लिप्पइ भवमज्झे वि सतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥४७॥

संस्कृत छाया- शब्दे विरक्तो मनुजो विशोक,
एतया दु:खौघपरम्परया।
न लिप्यते भव मध्येऽपि सन्,
जलेनेव पुष्करिणी पलाशम् ॥४७॥

अन्वयार्थ-वा-(जिस प्रकार), पोक्खरिणी पलासं-पुष्करणि पलाश (पद्मिनी के पत्र), जलेण-जल स, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता, वा-वैसे ही, सद्दे-शब्द में, विरत्तो-विरक्त, मणुओ-मनुष्य, विसोगो-शाक रहित हाकर भवमज्झे-ससार मे, संतो वि-रहता हुआ भी, एएण-इन शब्द विषयक, दुक्खोहपरंपरेण-दु ख समूह की परम्परा से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जिस प्रकार जल मे उत्पन्न कमल-पत्र जल में रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार शब्द के प्रति विरक्त मनुष्य शोक रहित होता है। वह ससार में रहता हुआ भी इस शब्द विषयक दु ख परम्परा से लिप्त नहीं होता।

48 घ्राणेन्द्रिय के विषय का वर्णन

मूल गाथा- घाणस्स गंधं गहणं वयंति,
तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो ॥४८॥

संस्कृत छाया- घ्राणस्य गन्ध ग्रहण वदन्ति,
त रागहेतु तु मनोज्ञमाहु।
त द्वेष हेतुममनोज्ञ माहु,
समश्च यस्तेषु स वीतराग ॥४८॥

अन्वयार्थ-गंध-गन्ध को, घाणस्स-घ्राणेन्द्रिय का, गहणं-ग्रहण (विषय), वयंति-कहते हैं, तु-और, मणुण्णं-जो मनोज्ञ गन्ध है, तं-उसे, रागहेउ-राग के हेतु, आहु-कहते हैं, य-और, अमणुण्णं-(जो गन्ध) अमनोज्ञ है, तं उसे, दोसहेउ-द्वेष का हेतु, आहु-कहते हैं (किन्तु), जो-जो, तेसु-उन दोनों मे, समो-समभाव रखता है, स-वह, वीयरागो-वीतराग है।

भावानुवाद-गन्ध घ्राणेन्द्रिय का विषय कहा गया है। जो गन्ध राग का हेतु है उसे मनोज्ञ कहते हैं। और जो गन्ध द्वेष का कारण है उसे अमनोज्ञ कहते हैं। जो इन दोना सुगन्ध और दुर्गन्ध में समभाव रखता है वही वीतरागी है।

49 गन्ध एवं घ्राण का ग्राह्य-ग्राहक भाव सम्बन्ध

मूल गाथा- गंधस्स घाणं गहणं वयंति,
घाणस्स गंधं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ॥४९॥

संस्कृत छाया- गन्धस्य घ्राण ग्राहक वदन्ति,
घ्राणस्य गन्ध ग्राह्य वदन्ति।
रागस्य हेतु समनोज्ञमाहु,
द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहु ॥४९॥

अन्वयार्थ-घाण-घ्राणेन्द्रिय को, गधस्स-गन्ध का, गहण-ग्राहक, वयंति-कहते हैं, गध-गन्ध को, घाणस्स-घ्राणेन्द्रिय का, गहण-ग्राह्य (विषय), वयंति-कहते हैं, समणुण्ण-मनोज्ञ गन्ध को, रागस्स-राग का, हेउ-हेतु, आहु-कहते हैं, (और) अमणुण्ण-अमनोज्ञ गन्ध को, दोसस्स-द्वेष का, हेउ-हेतु, आहु-कहते हैं।

भावानुवाद-घ्राणेन्द्रिय को गन्ध का ग्राहक कहते हैं। गन्ध घ्राण का ग्राह्य है। ज्ञानी जन सुमनोज्ञ गन्ध को राग का हेतु कहते हैं और अमनोज्ञ गन्ध को द्वेष का हेतु कहते हैं।

50 गन्ध विषयक राग का कटु परिणाम

मूल गाथा- गधेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्व,
अकालिय पावइ से विणास।
रागाउरे ओसहिगधगिद्धे,
सप्पे बिलाओ विव णिक्खमंते ॥५०॥

संस्कृत छाया- गन्धेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्राम्,
अकालिक प्राप्नोति स विनाशम्।
रागातुर औषधिगन्धगृद्ध,
सर्पो बिलादिवनिष्क्रामन् ॥५०॥

अन्वयार्थ-जो-जो जीव, गधेसु-गन्ध में, तिव्व-तीव्र, गिद्धि-गृद्धि को, (आसक्ति), उवेइ-लाता है, से-वह, ओसहिगध-औषधि की गध में, गिद्धे-आसक्त, रागाउरे-रागातुर हुए, बिलाओ-अपने बिल से, णिक्खमते-बाहर निकले हुए, सप्पे विव-सर्प के समान, अकालिय-अकाल में ही, विणास-विनाश को, पावइ-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-जो प्राणी मनोज्ञ गन्ध मे तीव्र रूप से आसक्ति रखता है वह सुगन्धित औषधियो मे आसक्त एव रागातुर होकर अपने बिल से बाहर निकले हुए सर्प की तरह अकाल मे ही विनाश को प्राप्त होता है।

51 गन्ध विषयक द्वेष करने का फल

मूल गाथा- जे यावि दोस समुवेइ तिव्व,
तसिक्खणे से उ उवेइ दुक्ख।
दुद्दतदोसेण सएण जतू,
ण किचि गध अवरज्झई से ॥५१॥

संस्कृत छाया- यश्चापि द्वेष समुपैति तीव्र,
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दुःखम्।

दुर्दान्तदोषेण स्वकेन जन्तु,
न किञ्चिद्गन्धोऽपराध्यति तस्य॥५१॥

अन्वयार्थ-जे यावि-जो भी जीव (दुगन्ध मे), तिव्व-तीव्र, दोस-द्वेष को, समुवेइ-प्राप्त करता है, से-वह, जतु-प्राणी, सएण-अपने ही, दुद्दत-दुदान्त, दोसेण-दाष से, तसिक्खणं-उसी क्षण में, दुक्ख-दु ख को, उवेइ-प्राप्त हाता है, स-इसम, गधं-गन्ध का, किचि-कुछ भी, ण अवरज्झइ-अपराध नहीं है।

भावानुवाद-जो व्यक्ति दुगन्ध क प्रति तीव्र रूप से द्वेष को प्राप्त हाता है वह उसी क्षण अपने ही दुर्दान्त दाष से दु खी होता है इसमे गन्ध का कुछ भी अपराध नहीं है।

52 गन्ध-राग-द्वेष की परिणति एव त्याग का फल

मूल गाथा- एगतरत्ते रुइरसि गधे,
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो॥५२॥

सस्कृत छाया- एकान्तरक्तो रुचिरे गन्धे,
अतादृशे स करोति प्रद्वेषम्।
दु खस्य सम्पीडामुपैति बाल,
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागी॥५२॥

अन्वयार्थ-जो जीव, रुइरसि-रुचिर, गधे-गन्ध म, एगतरत्ते-एकान्त रक्त (और), अतालिसे-अतादृश (दुगन्ध) में, पओस-प्रद्वेष, कुणइ-करता है, से-वह, बाले-बाल, (अज्ञानी) जीव, दुक्खस्स-दु ख की, सपील-पीडा को, उवेइ-प्राप्त होता है, (किन्तु) विरागो-वीतराग, मुणी-मुनि, तेण-उस (दु ख) से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो सुरभि गन्ध के प्रति अत्यन्त अनुरक्त होता है और दुर्गन्ध के प्रति द्वेष करता है, वह अज्ञानी जीव अतीव दु ख एव पीडा को प्राप्त होता है, किन्तु वीतराग मुनि उनमे लिप्त नहीं होता है।

53 गन्ध को हिंसादि आस्रवो का कारण बतलाना

मूल गाथा- गधाणुगासाणुगए जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे॥५३॥

सस्कृत छाया- गन्धानुगाशानुगतश्च जीव,
चराचरान् हिनस्त्यनेकरूपान्।

चित्रैस्तान्परितापयति बाल,
पीडयत्यात्मार्थ गुरु क्लिष्ट ॥५३॥

अन्वयार्थ-गधाणुगासा-गन्ध की आशा से, अणुगए-अनुगत, जीवे-जीव, अणेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचरे-चराचर (त्रस स्थावर) प्राणियो की, हिंसइ-हिसा करता है, य-और, बाले-वह बाल (अज्ञानी) जीव, ते-उन जीवो को, चित्तेहि-अनेक प्रकार से, परितावेइ-परिताप देता है (और), अत्तट्ठगुरू-आत्मार्थ गुरु (अपने ही स्वार्थ) से, किलिट्ठे-क्लिष्ट (कुटिल) जीव, पीलेइ-(अनेक जीवो को) पीडित करता है।

भावानुवाद-गन्ध की आशा मे अनुरक्त प्राणी अनेक प्रकार से त्रस और स्थावर प्राणियो की हिसा करता है, अपने स्वार्थ में ही तल्लीन वह अज्ञानी कुटिल प्राणी विविध रूपो से उन जीवो को परिताप पहुचाता है-पीडित करता है।

54 गध सभोग काल मे सन्तोष का अलाभ

मूल गाथा- गंधाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।
वए विओगे य कह सुह से,
सभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥५४॥

सस्कृत छाया- गन्धानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।
व्यये वियोगे च कथ सुख तस्य,
सम्भोगकाले चातृप्तिलाभे ॥५४॥

अन्वयार्थ-गधाणुवाएण-गन्ध के अनुराग से, परिग्गहेण-परिग्रह से, उप्पायणे-उत्पादन म रक्खण-रक्षण (और), सण्णिओगे-सनियोग मे, य-और, वए-विनाश में, विओगे-वियोग मे, य-और, सभोगकाले-सभोग काल मे, अतित्तिलाभे-अतृप्त लाभ मे, से-उसको, कह-कैसे, सुह-सुख हो सकता है।

भावानुवाद-गन्ध की आसक्ति और उसम मूर्छित जीव को उस गध को उत्पन्न करने मे, उसके सरक्षण में तथा सम्यग् उपयोग मे एव व्यय और वियोग में सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? तथा उसके उपभोग काल में भी अतृप्ति का दु ख ही होता है।

55 गध तृष्णा के वशीभूत होने का फल

मूल गाथा- गधे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥५५॥

सस्कृत छाया- गन्धेऽतृप्तश्च परिग्रहे,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।

दुर्दान्तदोषेण स्वकेन जन्तु,
न किञ्चिद्गन्धोऽपराध्यति तस्य॥५१॥

अन्वयार्थ-जे यावि-जो भी जीव (दुर्गन्ध में), तिव्व-तीव्र, दोस-द्वेष को, समुवेइ-प्राप्त करता है, से-वह जन्तु प्राणी, सएण-अपने ही, दुद्दंत-दुर्दान्त दोसेण-दोष से, तंसिक्खणे-उसी क्षण में, दुक्ख-दु ख को, उवेइ-प्राप्त होता है, से-इसमें, गंधं-गन्ध का, किंचि-कुछ भी, ण अवरज्झइ-अपराध नहीं है।

भावानुवाद-जो व्यक्ति दुर्गन्ध के प्रति तीव्र रूप से द्वेष को प्राप्त होता है वह उसी क्षण अपने ही दुर्दान्त दोष से दु खी होता है इसमें गन्ध का कुछ भी अपराध नहीं है।

52 गन्ध-राग-द्वेष की परिणति एव त्याग का फल

मूल गाथा- एगतरत्तो रुइरंसि गंधे,
अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो॥५२॥

सस्कृत छाया- एकान्तरक्तो रुचिरे गन्धे,
अतादृशे स करोति प्रद्वेषम्।
दु खस्य सम्पीडामुपैति बाल,
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागी॥५२॥

अन्वयार्थ-जो जीव, रुइरंसि-रुचिर, गंधे-गन्ध मे, एगतरत्ते-एकान्त रक्त (और), अतालिसे-अतादृश (दुर्गन्ध) में, पओस-प्रद्वेष, कुणइ-करता है, से-वह, बाले-बाल, (अज्ञानी) जीव, दुक्खस्स-दु ख की, संपील-पीड़ा को, उवेइ-प्राप्त होता है, (किन्तु) विरागो-वीतराग, मुणी-मुनि, तेण-उस (दु ख) से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो सुरभि गन्ध के प्रति अत्यन्त अनुरक्त होता है और दुर्गन्ध के प्रति द्वेष करता है, वह अज्ञानी जीव अतीव दु ख एव पीडा को प्राप्त होता है, किन्तु वीतराग मुनि उनमें लिप्त नहीं होता है।

53 गन्ध को हिंसादि आस्रवो का कारण बतलाना

मूल गाथा- गंधाणुगासाणुगए जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे॥५३॥

सस्कृत छाया- गन्धानुगाशानुगतश्च जीव,
चराचरान् हिनस्त्यनेकरूपान्।

चित्रैस्तान्परितापयति बाल ,
पीडयत्यात्मार्थ गुरू क्लिष्ट ॥५३॥

अन्वयार्थ-गधाणुगासा-गन्ध की आशा से, अणुगए-अनुगत, जीवे-जीव, अणेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचरे-चराचर (त्रस स्थावर) प्राणियो की, हिंसइ-हिसा करता है, य-और, बाले-वह बाल (अज्ञानी) जीव, ते-उन जीवो को, चित्तेहि-अनेक प्रकार से, परितावेइ-परिताप देता है (और), अत्तट्ठगुरू-आत्मार्थ गुरु (अपने ही स्वार्थ) से, किलिट्ठे-क्लिष्ट (कुटिल) जीव, पीलेइ-(अनेक जीवों को) पीडित करता है।

भावानुवाद-गन्ध की आशा मे अनुरक्त प्राणी अनेक प्रकार से त्रस और स्थावर प्राणियो की हिसा करता है, अपने स्वार्थ मे ही तल्लीन वह अज्ञानी कुटिल प्राणी विविध रूपो से उन जीवो को परिताप पहुचाता है-पीडित करता है।

54 गध सभोग काल मे सन्तोष का अलाभ

मूल गाथा- गधाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।
वए विओगे य कह सुह से,
सभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥५४॥

सस्कृत छाया- गन्धानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।
व्यये वियोगे च कथ सुख तस्य,
सम्भोगकाले चातृप्तिलाभे ॥५४॥

अन्वयार्थ-गधाणुवाएण-गन्ध के अनुराग से, परिग्गहेण-परिग्रह से, उप्पायणे-उत्पादन म, रक्खण-रक्षण (और), सण्णिओगे-सनियोग मे, य-और, वए-विनाश में, विओगे-वियोग मे, य-और, सभोगकाले-सभोग काल मे, अतित्तिलाभे-अतृप्त लाभ मे, से-उसको, कह-कैसे, सुह-सुख हो सकता है।

भावानुवाद-गन्ध की आसक्ति और उसमे मूर्छित जीव को उस गध को उत्पन्न करने में, उसके सरक्षण मे तथा सम्यग् उपयोग मे एव व्यय और वियोग मे सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? तथा उसके उपभोग काल म भी अतृप्ति का दु ख ही होता है।

55 गध तृष्णा के वशीभूत होने का फल

मूल गाथा- गधे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥५५॥

सस्कृत छाया- गन्धेऽतृप्तश्च परिग्रहे,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।

अतुष्टिदोषेण दु खी परस्य,
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥५५॥

अन्वयार्थ-गंधे-गन्ध में, अतित्ते-अतृप्त, य-और, परिग्गहम्मि-परिग्रह में, सत्तोवसत्तो-सक्त उपसक्त हुआ जीव, तुट्ठिं-तुष्टि (सन्तोष) को, ण उवेइ-प्राप्त नहीं होता है, अतुट्ठि-अतुष्टि, दोसेण-दोष से, दुही-दु खी हुआ लोभाविल-लोभ के वशीभूत हुआ, परस्स-दूसरो के, अदत्त-अदत्त पदार्थों को, आययई-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-गन्ध मे अतृप्त एव उसके परिग्रह म आसक्त विशेष अनुरक्त बना हुआ जीव सन्तोष को प्राप्त नहीं होता है, अतुष्टि दोष से दु खी बना हुआ जीव लोभ से मलिन चित्त होकर दूसरो की वस्तुए चुराता है।

56 गध तृष्णा के वशीभूत होने का फल

मूल गाथा-
तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
गधे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुस वड्ढइ लोभ दोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥५६॥

सस्कृत छाया-
तृष्णाभिभूतस्यादत्तहारिण,
गन्धेऽतृप्तस्य परिग्रहे च।
माया मृषा वर्धते लोभदोषात्,
तत्रापि दु खान्न विमुच्यते स ॥५६॥

अन्वयार्थ-तण्हाभिभूयस्स-तृष्णा के अभिभूत, अदत्तहारिणो-चोरी करने वाला, य-और, गधे-गन्ध विषयक, परिग्गहे-परिग्रह में, अतित्तस्स-अतृप्त प्राणी, लोभदोसा-लोभ रूपी दोष से, मायामुसं-मायामृषावाद की, वड्ढइ-वृद्धि करता है, तत्थावि-तथापि, से-वह, दुक्खा-दु ख से, ण विमुच्चइ-विमुक्त नहीं होता है।

भावानुवाद-तृष्णा के वशीभूत बने हुए अदत्त का ग्रहण करने वाले, गन्ध विषयक परिग्रह में अतृप्त प्राणी के लोभ रूपी दोष की वृद्धि होने से माया-मृषावाद की वृद्धि होती है तथापि वह दु ख से मुक्त नहीं होता है।

57 गंध-मिथ्या भाषण एवं अदत्तापहरण का कटु परिणाम

मूल गाथा-
मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरते।
एव अदत्ताणि समाययतो,
गधे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥५७॥

सस्कृत छाया-
मृषा (वाक्यस्य) पश्चाच्च पुरस्ताच्च,
प्रयोगकाले च दु खी दुरन्त ।

एवमदत्तानि समाददान,
गन्धेऽतृप्तो दु खितोऽनिश्र ॥५७॥

अन्वयार्थ-मोसस्स-झूठ बोलने के, पुरत्थओ-पहले, य-और, पच्छा-पीछे, य-तथा, पओगकाले-प्रयोगकाल (बोलते समय) मे, दुरते-दुरत, दुही-दु खी होता है, एव-इसी प्रकार, गधे-गन्ध मे, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि-अदत्त पदार्थ को, समाययतो-ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो-अनाश्रित, य-और, दुहिओ-दु खी होता है।

भावानुवाद-असत्य भाषण के पूर्व उसके पश्चात् और बोलते समय भी वह दु खी होता है, उसका अन्त भी दु खमय है। इस प्रकार गन्ध से अतृप्त होकर चोरी करने वाला आश्रयहीन एव दु खी हो जाता है।

58 गन्धासक्ति के दोषो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- गधाणुरत्तस्स णरस्स एव,
कत्तो सुह होज्ज कयाइ किचि?
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्ख,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥५८॥

सस्कृत छाया- गन्धानुरक्तस्य नरस्यैव,
कुत सुख भवेत्कदापि किञ्चित्?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेशदु ख,
निर्वर्तयति यस्य कृते दु खम् ॥५८॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, गधाणुरत्तस्स-गन्ध मे अनुरक्त, णरस्स-मनुष्य को, कयाइ-कभी भी, किचि-किचिन्मात्र, सुह-सुख, कत्तो-कहा से, होज्ज-हो सकता है?, जस्स-जिस के, कएण-लिए, दुक्ख-दु ख, णिव्वत्तइ-पाता है, तत्थ-वहा पर, उवभोगे वि-उपभोग के समय भी, किलेस-क्लेश और, दुक्ख-दु ख को (पाता है)।

भावानुवाद-इस प्रकार गन्ध के प्रति आसक्त बने हुए मनुष्य को सुख कहा हो सकता है अर्थात् उसे कभी भी किचित् भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। जिस सुगन्धित वस्तु की प्राप्ति के लिए जीव अपार दु ख उठाता है उसी के उपभोग मे वह सक्लेश और दु ख प्राप्त करता है।

59 गन्ध विषयक द्वेष भी दु ख का हेतु

मूल गाथा- एमेव गधम्मि गओ पओस,
उवेइ दुक्खोहपरपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म,
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥५९॥

संस्कृत छाया- एवमेव गन्धे गतः प्रद्वेषम्,
उपैति दुःखौघपरम्पराः ।
प्रदुष्टचित्तश्च चिनोति कर्म,
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥५९॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, गंधम्मि-दुर्गन्ध में, पओस-प्रद्वेष को, गओ-प्राप्त हुआ, दुक्खोह परंपराओ-दुःख के समूह की परम्परा को, उवेइ-प्राप्त करता है, य-और, पदुट्ठचित्तो-प्रद्वेष चित्त हुआ जीव, कम्मं-(अशुभ) कर्म को, चिणाइ-बांधता है, ज-जिससे, से-उसे, पुणो-फिर विवागे-विपाक के समय, दुह-दुःख, होइ-होता है।

भावानुवाद-इसी प्रकार दुर्गन्धित द्रव्यों से जो द्वेष करता है वह उत्तरोत्तर दुःख की परम्परा को प्राप्त होता है, अत्यन्त द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव जिन अशुभ कर्मों का बन्ध करता है वे विपाक के समय दुःख के कारण बनते हैं।

60 गन्ध राग-द्वेष के त्याग का फल

मूल गाथा- गंधे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह परंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥६०॥

संस्कृत छाया- गन्धे विरक्तो मनुजो विशोकः,
एतया दुःखौघपरम्परया।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्,
जलेनेव पुष्करिणीपलाशम् ॥६०॥

अन्वयार्थ-वा-जिस प्रकार पोक्खरिणी पलासं-पुष्करिणी पलाश (पद्मिनी के पत्र) जलेण-जल से ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है, वैसे ही, गंधे-गन्ध मे, विरत्तो-विरक्त, मणुओ-मनुष्य, विसोगो-शोक रहित होकर, भवमज्झे-संसार में, संतो वि-रहता हुआ भी, एएण-इस गन्ध विषयक, दुक्खोह परंपरेण-दुःख समूह की परम्परा में (लिप्त नहीं होता है)

भावानुवाद-गन्ध के प्रति विरक्त मनुष्य शोक मुक्त होता है, वह संसार में रहता हुआ भी दुःख समूह की परम्परा से लिप्त नहीं होता है, जैसे जल में रहा हुआ कमल-पत्र जल से निर्लिप्त रहता है।

61 रसनेन्द्रिय के विषय का वर्णन

मूल गाथा- जिब्भाए रसं गहणं वयंति,
तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो ॥६१॥

संस्कृत छाया- जिह्वाया रसं ग्रहणं वदन्ति,
तं रागहेतुं तु मनोज्ञमाहुः ।
तं द्वेषहेतुममनोज्ञमाहुः,
समश्च यस्तेषु स वीतरागः ॥६१॥

अन्वयार्थ-रस-रस को, जिब्भाए-जिह्वा इन्द्रिय का, गहण-ग्राह्य (विषय), वयंति-कहते हैं, तु-और, मणुण्ण-जो मनोज्ञ रस है, त-उसे, रागहेउ-राग का हेतु, आहु-कहते हैं, य-और, अमणुण्ण-जो अमनोज्ञ रस हैं, त-उसे, दोसहेउ-द्वेष का हेतु, आहु-कहते हैं, जो-जो, तेसु-उन (रसो) मे, समो-समभाव रखता है, स-वह, वीयरागो-वीतराग है।

भावानुवाद-रस को जिह्वा इन्द्रिय का ग्राह्य विषय कहा गया है जो मनोज्ञ रस है, उसे राग का हेतु कहते हैं और जो अमनोज्ञ हैं, उसे द्वेष का हेतु कहते हैं। जो उन रसा के प्रति समभाव रखता है वह वीतराग है।

62 रस एव रसनेन्द्रिय का ग्राह्य-ग्राहक भाव सम्बन्ध

मूल गाथा- रसस्स जिब्भ गहण वयंति,
जिब्भाए रस गहण वयंति।
रागस्स हेउ समणुण्णमाहु,
दोसस्स हेउ अमणुण्णमाहु ॥६२॥

संस्कृत छाया- रसस्य जिह्वां ग्राहिकां वदन्ति,
जिह्वाया रसं ग्राह्यं वदन्ति।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः,
द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥६२॥

अन्वयार्थ-जिब्भ-जिह्वा को, रसस्स-रस का, गहण-ग्राहक, वयंति-कहते हैं, (और) रस-रस को, जिब्भाए-जिह्वा इन्द्रिय का, गहण-ग्राह्य, वयंति-कहते हैं, समणुण्ण-मनोज्ञ रस को, रागस्स-राग का, हेउ-हेतु, आहु-कहते है, (और) अमणुण्ण-अमनोज्ञ रस को, दोसस्स-द्वेष का, हेउ-हेतु, आहु-कहते हैं।

भावानुवाद-जिह्वा इन्द्रिय को रस ग्रहण करने वाली इन्द्रिय करते हैं, ज्ञानीजन रस को जिह्वा का ग्राह्य कहते हैं, मनोज्ञ रस को राग का हेतु कहते हैं और अमनोज्ञ रस को द्वेष का हेतु कहते हैं।

63 रस विषयक राग का कटु परिणाम

मूल गाथा- रसेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्व,
अकालिय पावइ से विणास।
रागाउरे बडिसविभिण्णकाए,
मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे ॥६३॥

संस्कृत छाया-
रसेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्राम्,
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम्।
रागातुरो बडिशविभिन्नकायः,
मत्स्यो यथाऽऽमिषभोगगृद्धः ॥६३॥

अन्वयार्थ-जहा-जैसे, रागाउरे-रागातुर, आमिसभोग गिद्धे-आमिष के भोग मे मूर्च्छित, मच्छे-मच्छ, बडिसविभिण्णकाए-बडिश (लोहमय कटक) से विभिन्न काय होकर (मृत्यु को पाता है) वैसे ही, जे-जो मनुष्य, रससु-रसों में, तिव्वं-तीव्र, गिद्धि-गृद्धि रखता है, से-वह, अकालियं-अकाल में ही, विणासं-विनाश को, पावइ-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-जो मनोज्ञ रसो मे तीव्र रूप से अनुरक्त होता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है, जैसे मांस भक्षण मे आसक्त रागातुर मत्स्य काटे-लोहे के शस्त्र से बींधा जाकर अकाल मे ही मृत्यु को प्राप्त करता है।

64 रस विषयक द्वेष करने का फल

मूल गाथा-
जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं,
तं सिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं।
दुद्दंतदोसेण सएण जंतू,
ण किंचि रसं अवरज्झई से ॥६४॥

संस्कृत छाया-
यस्यापि द्वेषं समुपैति तीव्रं,
तस्मिन्क्षणे स तूपैति दुःखम्।
दुर्दान्तदोषेण स्वकेन जन्तुः,
न किञ्चिद्रसोऽपराध्यति तस्य ॥६४॥

अन्वयार्थ-जे यावि-जो जीव, (अमनोज्ञ रस में) तिव्वं-तीव्र दोसं-द्वेष को, समुवेइ-प्राप्त होता है, से-वह, जंतू-प्राणी, सएण-अपने ही, दुद्दंत-दुर्दान्त, दोसेण-दोष से, तं सिक्खणे-उसी क्षण में, उ-तो, दुक्खं-दुःख को उवेइ-प्राप्त होता है, (किन्तु), से-इसमें, रसं-रस का, किंचि-कुछ भी, ण अवरज्झइ-अपराध नहीं है।

भावानुवाद-जो अमनोज्ञ रस के प्रति तीव्र द्वेष करता है वह प्राणी अपने ही दुर्दान्त दोष से उसी क्षण दुःख को प्राप्त होता है, इसमें रस का कुछ भी अपराध नहीं है।

65 रस राग द्वेष की परिणति एवं त्याग का फल

मूल गाथा-
एगंतरत्ते रुइरे रसम्मि,
अतालिसे से कुणई पओसं।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥६५॥

संस्कृत छाया- एकान्तरक्तो रुचिरे रसे,
अतादृशे स कुरुते प्रद्वेषम्।
दु खस्य सम्पीडामुपैति बाल,
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागी ॥६५॥

अन्वयार्थ-जो जीव, रुइरे-रुचिर (मनोज्ञ), रसम्मि-रस मे, एगतरत्ते-एकान्तरक्त (और), अतालिसे-अतादृश (अमनोज्ञ रस) मे, पओस-प्रद्वेष, कुणइ-करता है, से-वह, बाले-बाल (अज्ञानी) जीव दुक्खस्स-दु ख की, सपील-पीडा को, उवेइ-प्राप्त होता है (किन्तु), विरागो-वीतराग, मुणी-मुनि, तेण-उस दु ख से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो मनोज्ञ रस मे एकान्त आसक्त होता है और अमनोज्ञ रस के प्रति द्वेष करता है वह अज्ञानी जीव दु ख और पीडा को प्राप्त करता है, वीतराग मुनि उस रस मे लिप्त नहीं होता है।

66 रस राग को हिंसादि आस्रवो का कारण बतलाना

मूल गाथा- रसाणुगासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरुवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरु किलिट्ठे ॥६६॥

संस्कृत छाया- रसानुगाशानुगतश्च जीव,
चराचरान्हिनस्त्यनेकरूपान्।
चित्रैस्तान् परितापयति बाल,
पीडयत्यात्मार्थ गुरु क्लिष्ट ॥६६॥

अन्वयार्थ-रसाणुगासा-रस की आशा से, अणुगए-अनुगत, जीवे-जीव, अणेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचरे-चराचर (त्रस और स्थावर) प्राणियो की, हिंसइ-हिसा करता है, य-और, बाले-वह बाल (अज्ञानी) जीव, ते-उन जीवो को, चित्तेहि-अनेक उपायो से, परितावेइ-परिताप देता है (और), अत्तट्ठगुरू-आत्मार्थ गुर (अपने ही स्वार्थ) से, किलिट्ठे-क्लिष्ट कुटिल जीव, पीलेइ-(अनेक जीवो को) पीडित करता है।

भावानुवाद-रस की आशा मे अनुबद्ध जीव अनेक रूपो में त्रस और स्थावर प्राणियो की हिसा करता है, अपने स्वार्थ को ही मुख्य मानने वाला वह अज्ञानी क्लिष्ट जीव उन जीवा को विविध प्रकार से परिताप देता है, पीडा पहुचाता है।

67 रस संभोगकाल मे अतृप्त लाभ

मूल गाथा- रसाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।

वए विओगे य कह सुह से,
सभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥६७॥

संस्कृत छाया- रसानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।
व्यये वियोगे च कथ सुख तस्य,
सम्भोगकाले चातृप्तिलाभे ॥६७॥

अन्वयार्थ-रसाणुवाएण-रसानुपात (रस के अनुराग) से, परिग्गहेण-परिग्रह से, उप्पायणे-उत्पादन म, रक्खण रक्षण, य-और, सण्णिओगे-सन्नियोग म, वए-विनाश में, विओगे-वियोग में, य-और, सभोगकाले-सभोग काल में, अतित्तिलाभे-अतृप्त लाभ मे, से-उसको, कह-कैसे, सुह-सुख हो सकता है?

भावानुवाद-रस में आसक्त एव उसके परिग्रह म मूर्छित जीव रस के उत्पादन मे, सरक्षण म तथा उसके उपयोग में व्यय एव वियोग मे सुख कैसे प्राप्त कर सकता है? उस उसके उपभोग काल म भी अतृप्ति का दु ख ही होता है।

68 रस असन्तोषी जीव का चौर्य कर्म म प्रवृत्त होना

मूल गाथा- रसे अतित्ते य परिग्गहे य,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥६८॥

संस्कृत छाया- रसेऽतृप्तश्च परिग्रहे,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।
अतुष्टिदोषेण दुःखी परस्य,
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥६८॥

अन्वयार्थ-रसे-रस में, अतित्ते-अतृप्त, य-और, परिग्गह-रस के परिग्रह में, सत्तोवसत्ता-सक्त-उपसक्त हुआ जीव, तुट्ठि-तुष्टि (सतोष) को, ण उवेइ-नहीं पाता है, अतुट्ठि-अतुष्टि के, दोसेण-दोष म, दुही-दु खी, य-तथा लोभाविले-लोभ के वशीभूत जीव, परस्स-दूसरो का, अदत्त-अदत्त वस्तुओं का आययई-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-रस में अतृप्त बना हुआ और रस क परिग्रह म आसक्त एव विशेष आसक्त जीव सन्तोष को प्राप्त नहीं होता है, असन्तोष रूपी दोष से दु खी बना हुआ तथा लोभ से मलीन चित्त वाला वह जीव दूसरों की वस्तुओं की चोरी करता है।

69 रस लोभ वृद्धि का फल वर्णन

मूल गाथा- तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
रसे अतित्तस्स परिग्गहे य।

मायामुस वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥६९॥

सस्कृत छाया- तृष्णाभिभूतस्यादत्ताहारिण,
रसेऽतृप्तस्य परिग्रहे च।
माया मृषा वर्धते लोभदोषात्,
तत्रापि दु खान्न विमुच्यते स ॥६९॥

अन्वयार्थ-तण्हाभिभूयस्स-तृष्णा के अभिभूत, अदत्तहारिणो-चोरी करने वाले, य-और, रसे-रस विषयक, परिग्गहे-परिग्रह मे, अतित्तस्स-अतृप्त प्राणी, लोभदोसा-लोभरूपी दोष से, मायामुस-माया मृषावाद की, वड्ढइ-वृद्धि करता है, तत्थावि-तथापि से-वह, दुक्खा-दु ख से, ण विमुच्चई-विमुक्त नहीं होता है।

भावानुवाद-तृष्णा से अभिभूत तथा रस एव परिग्रह से अतृप्त व्यक्ति दूसरा की रसादि वस्तुओ का अपहरण करता है, लोभ के दोषो से उसका माया-कपट और मृषा-झूठ बढता है, फिर भी कपट और असत्य से भी वह दु ख से मुक्त नहीं हो पाता है।

70 रस विपयक भाषण एव अदत्तापहरण का कटु परिणाम

मूल गाथा- मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरंते।
एव अदत्ताणि समाययंतो,
रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥७०॥

सस्कृत छाया- मृषा वाक्यस्य पश्चाच्च पुरस्ताच्च,
प्रयोगकाले च दु खी दुरन्त।
एवमदत्तानि समाददान,
रसेऽतृप्तो दु खितोऽनिश्र ॥७०॥

अन्वयार्थ-मोसस्स-झूठ बोलने के पुरत्थओ-पहले, य-और, पच्छा-पीछे, य-तथा, पओगकाले-प्रयोग काल (बोलते समय) मे, जीव दुरते-दुरन्त, दुही-दु खी होता है, एव-इसी प्रकार, रसे-रस में, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि-अदत्त पदार्थों को, समाययतो-ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो-अनाश्रित, य-और, दुहिओ-दु खी होता है।

भावानुवाद-असत्य बोलने के पूर्व पश्चात् एव असत्य बोलते समय भी वह दु खी होता है। दुष्ट अन्त करण वाला वह प्राणी दु खी ही रहता है। इस प्रकार रस मे अतृप्त जीव रसादि अदत्त ग्रहण करता हुआ आश्रयहीन और दु खी हो जाता है।

71 रसासक्ति के दोषो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- रसाणुरत्तस्स णरस्स एव,
कत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि?

तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥71॥

संस्कृत छाया- रसानुरक्तस्य नरस्यैव,
कुतः सुखं स्यात् कदापि किञ्चित्?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेशदुःखं,
निर्वर्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥७१॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, रसाणुरत्तस्स-रस में अनुरक्त, णरस्स-मनुष्य को, कयाइ-कभी भी, किंचि-किंचिन्मात्र, सुह-सुख, कत्तो-कहा से, होज्ज-हो सकता है, जस्स-जिसके, कएण-लिए, दुक्खं-दुःख को, णिव्वत्तइ-पाता है, तत्थ-वहा पर, उवभोगेवि-भोगने के समय में, जीव किलेस-क्लेश (और), दुक्खं-दुःख को (पाता है)।

भावानुवाद-इस प्रकार रस में आसक्त मनुष्यों को सुख कहा हो सकता है? उसे कभी भी किंचित् मात्र भी सुख नहीं हो सकता है। जिस रसादि पदार्थ को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति दुःख उठाता है उसके उपभोग में भी क्लेश और दुःख ही होता है।

72 रस विषयक द्वेष भी दुःख का हेतु

मूल गाथा- एमेव रसम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह परंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥72॥

संस्कृत छाया- एवमेव रसे गतः प्रद्वेषम्,
उपैति दुःखौघपरम्पराः।
प्रदुष्टचित्तश्च चिनोति कर्म,
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥७२॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, रसम्मि-अमनोज्ञ रस में, पओसं-प्रद्वेष को, गओ-प्राप्त हुआ (जीव), दुक्खोह परंपराओ-दुःख समूह की परम्परा को, उवेइ-प्राप्त होता है, य-और, पदुट्ठचित्तो-प्रद्वेष चित्त वाला जीव, कम्मं-अशुभ कर्मों को चिणाइ-बांधता है, जं-जिससे से-उस, पुणो-फिर, विवागे-विपाक के समय में, दुह-दुःख, होइ-होता है।

भावानुवाद-इसी प्रकार अमनोज्ञ रस के प्रति जो द्वेष करता है वह उत्तरोत्तर दुःख समूह की परम्परा को प्राप्त होता है। अत्यन्त द्वेष से दूषित चित्त करने वाला वह जीव उन अशुभ कर्मों का बन्धन करता है जो कि विपाक के समय पुनः दुःख के कारण होते हैं।

73 रस राग-द्वेष के त्याग का फल

मूल गाथा- रसे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह परपरेण।
ण लिप्पई भवमज्झे वि सतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥७३॥

सस्कृत छाया- रसे विरक्तो मनुजो विशोक ,
एतया दु खौघपरम्परया।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्,
जलेनेव पुष्करिणीपलाशम् ॥७३॥

अन्वयार्थ-(जिस प्रकार) पोक्खरिणीपलास-पुष्करिणी पलाश, जलेण-जल से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है, वा-उसी प्रकार, रसे-रस मे, विरत्तो-विरक्त, मणुओ-मनुष्य, विसोगो-शोक रहित होकर, भवमज्झे-ससार मे, सतो वि-रहता हुआ भी, एएण-इस रस विषयक, दुक्खोह परपरेण-दु ख समूह की परम्परा से (लिप्त नहीं होता है)।

भावानुवाद-जिस प्रकार जल मे उत्पन्न कमल पत्र जल मे रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार रस के प्रति-विरक्त राग द्वेष रहित मनुष्य शोक रहित होता है। वह ससार मे रहता हुआ भी रस विषयक दु ख परम्परा से लिप्त नहीं होता है।

74 स्पर्शनेन्द्रिय का विषय

मूल गाथा- कायस्स फास गहण वयति,
त रागहेउ तु मणुण्णमाहु।
त दोसहेउ अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो ॥७४॥

सस्कृत छाया- कायस्य स्पर्श ग्रहण वदन्ति,
त रागहेतु तु मनोज्ञमाहु ।
त द्वेषहेतुममनोज्ञमाहु ,
समश्चयस्तेषु स वीतराग ॥७४॥

अन्वयार्थ-फास-स्पर्श को, कायस्स-काया (स्पर्शनेन्द्रिय) का, गहण-ग्राह्य विषय, वयति-कहते हैं, तु-और, मणुण्ण-जो मनोज्ञ स्पर्श है, त-उसे, रागहेउ-राग का हेतु, आहु-कहते हैं, य-और, अमणुण्ण-जो स्पर्श अमनोज्ञ है, त-उसे, दोसहेउ-द्वेष का हेतु, आहु-कहते हैं (किन्तु), जो-जो, तेसु-उन दोनो में, समो-समभाव रखता है, स-वह, वीयरागो-वीतराग है।

भावानुवाद-स्पर्श को काया का ग्राह्य विषय कहते हैं। जो मनोज्ञ स्पर्श है, उसे राग का हेतु कहते हैं और जो

तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्ख,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥71॥

संस्कृत छाया- रसानुरक्तस्य नरस्यैव,
कुतः सुखं स्यात् कदापि किञ्चित्?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेशदुःखं,
निर्वर्तयति यस्य कृते दुःखम् ॥71॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, रसाणुरत्तस्स-रस में अनुरक्त, णरस्स-मनुष्य को, कयाइ-कभी भी, किंचि-किंचिन्मात्र, सुह-सुख, कत्तो-कहा से, होज्ज-हो सकता है, जस्स-जिसके, कएण-लिए, दुक्ख-दुःख को, णिव्वत्तइ-पाता है, तत्थ-वहा पर, उवभोगेवि-भोगने के समय में, जीव किलेस-क्लेश (और), दुक्ख-दुःख को (पाता है)।

भावानुवाद-इस प्रकार रस में आसक्त मनुष्यों को सुख कहा हो सकता है? उसे कभी भी किंचित् मात्र भी सुख नहीं हो सकता है। जिस रसादि पदार्थ को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति दुःख उठाता है उसके उपभोग में भी क्लेश और दुःख ही होता है।

72 रस विषयक द्वेष भी दुःख का हेतु

मूल गाथा- एमेव रसम्मि गओ पओसं,
उवेइ दुक्खोह परंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं,
जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥72॥

संस्कृत छाया- एवमेव रसे गतः प्रद्वेषम्,
उपैति दुःखौघपरम्पराः।
प्रदुष्टचित्तश्च चिनोति कर्म,
यत्तस्य पुनर्भवति दुःखं विपाके ॥72॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, रसम्मि-अमनोज्ञ रस में, पओसं-प्रद्वेष को, गओ-प्राप्त हुआ (जीव), दुक्खोह परंपराओ-दुःख समूह की परम्परा को, उवेइ-प्राप्त होता है य-और पदुट्ठचित्तो-प्रद्वेष चित्त बना जीव, कम्मं-अशुभ कर्मों को, चिणाइ-बांधता है, जं-जिससे से-उसे, पुणो-फिर, विवागे-विपाक के समय में दुहं-दुःख, होइ-होता है।

भावानुवाद-इसी प्रकार अमनोज्ञ रस के प्रति जो द्वेष करता है वह उत्तरोत्तर दुःख समूह की परम्परा को प्राप्त होता है। अत्यन्त द्वेष से दूषित चित्त करने वाला वह जीव उन अशुभ कर्मों का बन्धन करता है जो कि विपाक के समय पुनः दुःख के कारण होते हैं।

73 रस राग-द्वेष के त्याग का फल

मूल गाथा-

रसे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोह परंपरेण।
ण लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥७३॥

संस्कृत छाया-

रसे विरक्तो मनुजो विशोक ,
एतया दु खौघपरम्परया।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्,
जलेनेव पुष्करिणीपलाशम् ॥७३॥

अन्वयार्थ-(जिस प्रकार) पोक्खरिणीपलास-पुष्करिणी पलाश, जलेण-जल से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है, वा-उसी प्रकार, रसे-रस मे, विरत्तो-विरक्त, मणुओ-मनुष्य, विसोगो-शोक रहित होकर, भवमज्झे-ससार मे, सतो वि-रहता हुआ भी, एएण-इस रस विषयक, दुक्खोह परपरेण-दु ख समूह की परम्परा से (लिप्त नहीं होता है)।

भावानुवाद-जिस प्रकार जल में उत्पन्न कमल पत्र जल मे रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार रस के प्रति-विरक्त राग द्वेष रहित मनुष्य शोक रहित होता है। वह ससार मे रहता हुआ भी रस विषयक दु ख परम्परा से लिप्त नहीं होता है।

74 स्पर्शनेन्द्रिय का विषय

मूल गाथा-

कायस्स फास गहण वयंति,
त रागहेउ तु मणुण्णमाहु।
त दोसहेउ अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो ॥७४॥

संस्कृत छाया-

कायस्य स्पर्श ग्रहण वदन्ति,
त रागहेतु तु मनोज्ञमाहु ।
त द्वेषहेतुममनोज्ञमाहु ,
समश्चयस्तेषु स वीतराग ॥७४॥

अन्वयार्थ-फास-स्पर्श को, कायस्स-काया (स्पर्शनेन्द्रिय) का, गहण-ग्राह्य विषय, वयंति-कहते हैं, तु-और, मणुण्ण-जो मनोज्ञ स्पर्श है, त-उसे, रागहेउ-राग का हेतु, आहु-कहते हैं, य-और, अमणुण्णं-जो स्पर्श अमनोज्ञ है, त-उसे, दोसहेउ-द्वेष का हेतु, आहु-कहते हैं (किन्तु), जो-जो, तेसु-उन दोनो मे, समो-समभाव रखता है, स-वह, वीयरागो-वीतराग है।

भावानुवाद-स्पर्श को काया का ग्राह्य विषय कहते हैं। जो मनोज्ञ स्पर्श है, उसे राग का हेतु कहते हैं और जो

अमनोज्ञ स्पर्श है उसे द्वेष का हेतु कहते हैं, जो उन प्रिय और अप्रिय स्पर्शों में समभाव रखता है वह वीतराग है।

75 स्पर्श काया का ग्राह्य-ग्राहक भाव सम्बन्ध

मूल गाथा-

फासस्स कायं गहणं वयंति,
कायस्स फासं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु,
दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु ॥75॥

संस्कृत छाया-

स्पर्शस्य कायं ग्राहकं वदन्ति,
कायस्य स्पर्शं ग्राह्यं वदन्ति।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः,
द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः ॥७५॥

अन्वयार्थ-कायं-काया को, फासस्स-स्पर्श का, गहणं-ग्राहक, वयंति-कहते हैं (और), फासं-स्पर्श को, कायस्स-काया का, गहणं-ग्राह्य (विषय), वयंति-कहते हैं, समणुण्णं-मनोज्ञ स्पर्श को, रागस्स-राग का, हेउं-हेतु आहु-कहते हैं, (और) अमणुण्णं-अमनोज्ञ स्पर्श को, दोसस्स-द्वेष का, हेउं-हेतु आहु-कहते हैं।

भावानुवाद-काया स्पर्श का ग्राहक है, स्पर्श काया का ग्राह्य है। जो राग का कारण है उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो द्वेष का कारण है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं।

76 स्पर्श विषयक राग से उत्पन्न हानि का दिग्दर्शन

मूल गाथा-

फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं,
अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे सीयजलावसण्णे,
गाहग्गहीए महिसे वऽरण्णे ॥76॥

संस्कृत छाया-

स्पर्शेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्राम्,
अकालिकं प्राप्नोति स विनाशम्।
रागातुरः शीतजलावसन्नः,
ग्राहगृहीतो महिष इवारण्ये ॥७६॥

अन्वयार्थ-(जैसे) अरण्णे-अरण्य-वन में स्थित सीयजलावसण्णे-शीतल जल में निमग्न, रागाउरे-रागातुर महिसे-भैंसा, गाहग्गहीए-ग्राह के द्वारा पकड़ा हुआ (विनाश को प्राप्त होता है), व-वैसे ही, जो-जो मनुष्य फासेसु-स्पर्शों में तिव्वं-तीव्र, गिद्धिं-गृद्धि (आसक्ति) उवेइ-पाता है से-वह, अकालियं-अकाल में ही विणासं-विनाश (मृत्यु) को, पावइ-प्राप्त हो जाता है।

भावानुवाद-जो मनुष्य मनोज्ञ स्पर्शों में तीव्र रूप से आसक्त होता है, वह उसी प्रकार अकाल में ही विनाश को प्रा

होता है जैसे वन मे जलाशय के शीतल जल के स्पर्श मे रागातुर बना हुआ भैंसा ग्राह-मगर के द्वारा पकडा जाकर विनाश को प्राप्त होता है।

77 स्पर्श विषयक द्वेष करने का फल

मूल गाथा- जे यावि दोस समुवेइ तिव्व,
तसिक्खणे से उ उवेइ दुक्ख।
दुद्दतदोसेण सएण जतू,
ण किचि फास अवरज्झई से ॥77॥

सस्कृत छाया- यश्चापि द्वेष समुपैति तीव्र,
तस्मिन् क्षणे स तूपैति दु खम्।
दुर्दान्तदोषेण स्वकेन जन्तु,
न किञ्चित्स्पर्शोऽपराध्यति तस्य ॥७७॥

अन्वयार्थ-जे यावि-जो जीव, (अमनोज्ञ स्पर्श मे) तिव्व-तीव्र, दोस-द्वेष को, समुवेइ-प्राप्त होता है, से-वह, जतू-प्राणी, सएण-अपने ही, दुद्दतदोसेण-दुर्दान्त दोष से, तसिक्खणे-उसी क्षण मे, दुक्ख-दु ख को, उवेइ-प्राप्त होता है, से-इसमे, फास-स्पर्श का, किचि-कुछ भी, ण अवरज्झइ-अपराध नहीं है।

भावानुवाद-जो अमनोज्ञ स्पर्श के प्रति तीव्र द्वेष को प्राप्त होता है वह प्राणी उसी क्षण अपने ही दुर्दान्त दोष से दु ख को प्राप्त होता है, इसमे स्पर्श का कुछ भी अपराध नहीं है।

78 स्पर्श राग द्वेष की परिणति एव त्याग का फल

मूल गाथा- एगतरत्ते रुइरसि फासे,
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥78॥

सस्कृत छाया- एकान्तरक्तो रुचिरे स्पर्शे,
अतादृशे स कुरुते प्रद्वेषम्।
दु खस्य सम्पीडामुपैति बाल,
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागी ॥७८॥

अन्वयार्थ-जो जीव, रुइरसि-रुचिर (मनोज्ञ), फासे-स्पर्श मे, एगतरत्ते-एकान्तरक्त (और), अतालिसे-अतादृश (अमनोज्ञ स्पर्श) मे, पओस-प्रद्वेष, कुणइ-करता है, से-वह, बाले-अज्ञानी जीव, दुक्खस्स-दु ख की, सपील-पीडा को, उवेइ-प्राप्त होता है, (किन्तु) विरागो-वीतराग, मुणी-मुनि, तेण-उस दु ख से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो जीव मनोज्ञ-रुचिकर स्पर्श में अत्यधिक आसक्त होता है और अरुचिकर में द्वेष करता है वह अज्ञानी जीव अत्यन्त दुःख-पीड़ा को प्राप्त होता है, विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता है।

79 स्पर्श राग हिंसादि आस्रवों का कारण

मूल गाथा-

फासाणुगासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥79॥

संस्कृत छाया-

स्पर्शानुगाशानुगतश्च जीवः,
चराचरान् हिनस्त्यनेकरूपान्।
चित्रैस्तान् परितापयति बालः,
पीडयत्यात्मार्थगुरुः क्लिष्टः ॥79॥

अन्वयार्थ-फासाणुगासा-स्पर्श की आशा से, अणुगए-अनुरक्त जीवे-जीव, अणेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचरे-चराचर प्राणियों की, हिंसइ-हिंसा करता है, य-और, बाले-वह अज्ञानी जीव, ते-उन (जीवों) को, चित्तेहि-अनेक प्रकार से, परितावेइ-परिताप देता है (और), अत्तट्ठगुरू-आत्मार्थ गुरु (अपने ही स्वार्थ) से, किलिट्ठे क्लिष्ट (कुटिल) जीव, पीलेइ-(अनेक जीवों को) पीड़ित करता है।

भावानुवाद-स्पर्श की आशा में अनुरक्त जीव अनेक प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है और वह उन प्राणियों को अनेक प्रकार से परिताप उत्पन्न करता है अपने ही स्वार्थ में तल्लीन बना हुआ वह क्लिष्ट आत्मा अनेक जीवों को पीड़ित करता है।

80 स्पर्श संभोग काल में अतृप्त लाभ

मूल गाथा-

फासाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।
वए विओगे य कहं सुहं से,
संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥80॥

संस्कृत छाया-

स्पर्शानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।
व्यये वियोगे च कथ सुखं तस्य,
सम्भोगकाले चातृप्तिलाभे ॥80॥

अन्वयार्थ-फासाणुवाएण-स्पर्श के अनुराग से परिग्गहेण-परिग्रह से, उप्पायणे-उत्पादन में, रक्खण-रक्षण में सण्णिओगे-सन्नियोग में, य-और वए-विनाश में, विओगे-वियोग में य-और, संभोगकाले संभोगकाल में

अतित्तिलाभे-अतृप्तिलाभ मे, से-उसको, कह-कैसे, सुह-सुख हो सकता है?

भावानुवाद-स्पर्श के विषय मे अनुरक्त एव मूर्छित बने हुए जीव को स्पर्शादि युक्त पदार्थ की उत्पत्ति मे तथा उसके व्यय और वियोग मे कैसे सुख प्राप्त हो सकता है? अर्थात् दु ख ही मिलता है उसके उपयोग काल मे भी तृप्ति नहीं होने से दु ख ही होता है।

81 स्पर्श असन्तोष मे चौर्य कर्म मे प्रवृत्त

मूल गाथा-

फासे अतित्ते य परिग्गहे य,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥८१॥

सस्कृत छाया-

स्पर्शेऽतृप्तश्च परिग्रहे च,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।
अतुष्टिदोषेण दु खी परस्य,
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥८१॥

अन्वयार्थ-फासे-स्पर्श मे, अतित्ते-अतृप्त बना, य-और, परिग्गहे य-परिग्रह मे, सत्तोवसत्तो-सक्त उपसक्त बना हुआ (जीव), तुट्ठि-तुष्टि (सतोष) को, ण उवेइ-प्राप्त नहीं होता है, अतुट्ठि-अतुष्टि रूपी, दोसेण-दोष से, दुही-दु खी हुआ (तथा) लोभाविले-लोभ के वशीभूत होकर, परस्स-दूसरो की, अदत्त-अदत्त वस्तुओ को, आययई-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-स्पर्श मे अतृप्त एव उसके परिग्रह मे आसक्त तथा विशेष अनुरक्त बना हुआ जीव सन्तोष को प्राप्त नहीं होता है। असन्तोष के दोष से दु खी और लोभ से मलिन चित्त वाला जीव अदत्त ग्रहण करता है।

82 स्पर्श तृष्णा से प्राप्त दु खो का वर्णन

मूल गाथा-

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥८२॥

सस्कृत छाया-

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्तहारिण,
स्पर्शेऽतृप्तस्य परिग्रहे च।
माया मृषा वर्धते लोभदोषात्,
तत्रापि दु खान्न विमुच्यते स ॥८२॥

अन्वयार्थ-तण्हाभिभूयस्स-तृष्णा के वशीभूत, अदत्तहारिणो-अदत्त (चोरी) करने वाला, य-और, फासे-स्पर्श

भावानुवाद-जो जीव मनोज्ञ-रुचिकर स्पर्श मे अत्यधिक आसक्त होता है और अरुचिकर म द्वेष करता है वह अज्ञानी जीव अत्यन्त दु ख-पीडा को प्राप्त होता है, विरक्त मुनि उनमे लिप्त नहीं होता है।

79 स्पर्श राग हिंसादि आस्रवो का कारण

मूल गाथा- फासाणुगासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिसइऽणेगरूवे
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥७९॥

सस्कृत छाया- स्पर्शानुगाशानुगतश्च जीव,
चराचरान्हिनस्त्यनेकरूपान्।
चित्रैस्तान् परितापयति बाल,
पीडयत्यात्मार्थ गुरू क्लिष्ट ॥७९॥

अन्वयार्थ-फासाणुगासा-स्पर्श की आशा से, अणुगए-अनुरक्त, जीवे-जीव, अणेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचर चराचर प्राणियो की, हिंसइ-हिसा करता है, य-और, बाले-वह अज्ञानी जीव, ते-उन (जीवा) को, चित्तेहि-अनेक प्रकार से, परितावेइ-परिताप देता है (और), अत्तट्ठगुरू-आत्मार्थ गुरु (अपने ही स्वार्थ) से, किलिट्ठ क्लिष्ट (कुटिल) जीव, पीलेइ-(अनेक जीवो को) पीडित करता है।

भावानुवाद-स्पर्श की आशा में अनुरक्त जीव अनेक प्रकार क त्रस और स्थावर प्राणियो की हिसा करता है और वह उन प्राणियो को अनेक प्रकार से परिताप उत्पन्न करता है, अपने ही स्वार्थ मे तल्लीन बना हुआ वह क्लिष्ट अज्ञानी अनेक जीवो को पीडित करता है।

80 स्पर्श सभोग काल मे अतृप्त लाभ

मूल गाथा- फासाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।
वए विओगे य कह सुह से,
सभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥८०॥

सस्कृत छाया- स्पर्शानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।
व्यये वियोगे च कथ सुख तस्य,
सम्भोगकाले चातृप्तिलाभे ॥८०॥

अन्वयार्थ-फासाणुवाएण-स्पर्श के अनुराग से, परिग्गहेण-परिग्रह से, उप्पायणे-उत्पादन म, रक्खण-रक्षण में सण्णिओगे-सन्नियोग मे, य-और, वए-विनाश मे, वियोगे-वियोग में, य-और, सभोगकाल-सभोगकाल मे,

अतित्तिलाभे-अतृप्तिलाभ मे, से-उसको, कह-कैसे, सुह-सुख हो सकता है?

भावानुवाद-स्पर्श के विषय मे अनुरक्त एव मूर्छित बने हुए जीव को स्पर्शादि युक्त पदार्थ की उत्पत्ति मे तथा उसके व्यय और वियोग मे कैसे सुख प्राप्त हो सकता है? अर्थात् दु ख ही मिलता है उसके उपयोग काल मे भी तृप्ति नहीं होने से दु ख ही होता है।

81 स्पर्श असन्तोष मे चौर्य कर्म मे प्रवृत्त

मूल गाथा-

फासे अतित्ते य परिग्गहे य,
सत्तोवसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥81॥

सस्कृत छाया-

स्पर्शेऽतृप्तश्च परिग्रहे च,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।
अतुष्टिदोषेण दु खी परस्य,
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥81॥

अन्वयार्थ-फासे-स्पर्श मे, अतित्ते-अतृप्त बना, य-और, परिग्गहे य-परिग्रह मे, सत्तोवसत्तो-सक्त उपसक्त बना हुआ (जीव), तुट्ठि-तुष्टि (सतोष) को, ण उवेइ-प्राप्त नहीं होता है, अतुट्ठि-अतुष्टि रूपी, दोसेण-दोष से, दुही-दु खी हुआ (तथा) लोभाविले-लाभ के वशीभूत होकर, परस्स-दूसरो की, अदत्त-अदत्त वस्तुओ को, आययई-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-स्पर्श मे अतृप्त एव उसके परिग्रह मे आसक्त तथा विशेष अनुरक्त बना हुआ जीव सन्तोष को प्राप्त नहीं होता है। असन्तोष के दोष से दु खी और लोभ से मलिन चित्त वाला जीव अदत्त ग्रहण करता है।

82 स्पर्श तृष्णा से प्राप्त दु खो का वर्णन

मूल गाथा-

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
फासे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥82॥

सस्कृत छाया-

तृष्णाभिभूतस्याऽदत्तहारिण,
स्पर्शेऽतृप्तस्य परिग्रहे च।
माया मृषा वर्धते लोभदोषात्,
तत्रापि दु खान्न विमुच्यते स ॥82॥

अन्वयार्थ-तण्हाभिभूयस्स-तृष्णा के वशीभूत, अदत्तहारिणो-अदत्त (चोरी) करने वाला, य-और फासे-स्पर्श

विषयक, परिग्गहे-परिग्रह मे, अतित्तस्स-अतृप्त प्राणी, लोभदोसा-लोभरूपी दोष से, मायामुस-मायामृषावाद की, वड्ढइ-वृद्धि करता है, तत्थावि-तथापि, से-वह, दुक्खा-दु ख से, ण विमच्चई-विप्रमुक्त नहीं होता है (छूटता नहीं है)।

भावानुवाद-तृष्णा के वशीभूत स्पर्शादि युक्त पदार्थों की चोरी करने वाले तथा स्पर्श विषयक परिग्रह में अतृप्त प्राणी के लोभ रूपी दोष से कपट पूर्ण असत्य भाषण की वृद्धि होती है, तथापि वह दु ख से मुक्त नहीं होता है।

83 स्पर्श मिथ्या भाषण का कटु परिणाम

मूल गाथा-

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरंते।
एव अदत्ताणि समाययंतो,
फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥83॥

मूल गाथा-

मृषा वाक्यस्य पश्चाच्च पुरस्ताच्च,
प्रयोगकाले च दु खी दुरन्त ।
एवमदत्तानि समाददान ,
स्पर्शेऽतृप्तो दु खितोऽनिश्र ॥८३॥

अन्वयार्थ-मोसस्स-झूठ बोलने के, पुरत्थओ-पहले, य-और, पच्छा-पीछे, य-तथा, पओगकाले-प्रयोग काल (बोलते समय) मे, दुरते-दुरन्त जीव, दुही-दु खी होता है, एव-इसी प्रकार, फासे-स्पर्श मे, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि-अदत्त पदार्थों को, समाययतो-ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो-अनाश्रित, य-और, दुहिओ-दु खी होता है।

भावानुवाद-असत्य भाषण के पूर्व उसके पश्चात् तथा असत्य भाषण करते समय भी वह दु खी होता है इस प्रकार यह दुष्ट हृदय वाला स्पर्श में अतृप्त जीव अदत्त ग्रहण करता है आश्रय रहित और दु खी होता है।

84 स्पर्शासक्ति के दोषो का दिग्दर्शन

मूल गाथा-

फासाणुरत्तस्स णरस्स एव,
कत्तो सुह होज्ज कयाइ किंचि?
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्ख,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख॥84॥

सस्कृत छाया-

स्पर्शानुरक्तस्य नरस्यैव,
कुत सुख भूयात्कदापि किञ्चित्?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेशदु ख,
निर्वर्तयति यस्य कृते दु खम्॥८४॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, फासाणुरत्तस्स-स्पर्श मे अनुरक्त, णरस्स-मनुष्य को, कयाइ-कभी भी, किंचि-किंचिन्मात्र, सुह-सुख, कत्तो-कहा से, होज्ज-हो सकता है, जस्स-जिसके, कएण-लिए, दुक्ख-दु ख को, णिव्वत्तई-पाता है, तत्थ-वहा पर, उवभोगे वि-भोगते समय भी, किलेस-क्लेश (और), दुक्ख-दु ख को (पाता है)।

भावानुवाद-इस प्रकार स्पर्श मे अनुरक्त मनुष्य को सुख कहा से हो सकता है? उसे कभी भी किंचित् मात्र भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। जिस स्पर्शादि युक्त पदार्थ को प्राप्त करने के लिए जीव ने अति कष्ट उठाया उस पदार्थ के उपभोग मे भी अत्यन्त क्लेश और दु ख ही प्राप्त होता है।

85 स्पर्श विषयक द्वेष भी दु ख का हेतु

मूल गाथा-

एमेव फासम्मि गओ पओस,
उवेइ दुक्खोहपरपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म,
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥८५॥

सस्कृत छाया-

एवमेव स्पर्शे गत प्रद्वेषम्,
उपैति दु खौघपरम्परा ।
प्रदुष्टचित्तश्च चिनोति कर्म,
यत्तस्य पुनर्भवति दु ख विपाके ॥८५॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, फासम्मि-स्पर्श विषय मे, पओस-प्रद्वेष को, गओ-प्राप्त हुआ, दुक्खोह परपराओ-दु ख समूह की परम्परा को, उवेइ-प्राप्त करता है, य-और, पदुट्ठचित्तो-प्रद्वेष चित्त वाला (जीव), कम्म-(अशुभ) कर्म को, चिणाइ-बाधता है, ज-जिससे, से-उसे, पुणो-पुन , विवागे-विपाक में, दुह-दु ख, होइ-होता है।

भावानुवाद-इसी प्रकार अप्रिय स्पर्श के प्रति जो द्वेष करता है वह जीव उत्तरोत्तर दु ख समूह की परम्परा को प्राप्त होता है। अत्यन्त द्वेष से दूषित चित्त वाला वह जीव अशुभ कर्म बान्धता है, जिससे पुन कर्म फल भोग के समय दु ख होता है।

86 स्पर्श राग द्वेष के त्याग का फल

मूल गाथा-

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोहपरपरेण।
ण लिप्पई भवमज्झे वि सतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥८६॥

सस्कृत छाया-

स्पर्शे विरक्तो मनुजो विशोक ,
एतया दु खौघपरम्परया।

न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्,
जलेनैव पुष्करिणीपलाशम् ॥८६॥

अन्वयार्थ-जिस प्रकार, पोक्खरिणी पलास-पुष्करिणी पलाश (पद्मिनी का पत्र), जलेण-जल से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है, वा-उसी प्रकार, फासे-स्पर्श मे, विरत्तो-विरक्त, मणुओ-मनुष्य, विसोगो-शोक रहित होकर, भवमज्झे-ससार मे, सतो वि-रहता हुआ भी, एएण-इस स्पर्श विषयक, दुक्खोह परपरेण-दु ख समूह की परम्परा से (लिप्त नहीं होता है)।

भावानुवाद-जिस प्रकार जल मे उत्पन्न कमल पत्र जल मे रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार स्पर्श के प्रति विरक्त मनुष्य शोक रहित होता है तथा ससार मे रहता हुआ भी स्पर्श सम्बन्धी दु ख परम्परा से लिप्त नहीं होता है।

87 मन विषयक वर्णन

मूल गाथा- मणस्स भाव गहण वयति,
त रागहेउ तु मणुण्णमाहु।
त दोसहेउ अमणुण्णमाहु,
समो य जो तेसु स वीयरागो ॥८७॥

सस्कृत छाया- मनसो भाव ग्रहण वदन्ति,
त रागहेतु तु मनोज्ञमाहु।
त द्वेषहेतुममनोज्ञमाहु,
समश्च यस्तेषु स वीतराग ॥८७॥

अन्वयार्थ-भावं-भाव को, मणस्स-मन का, गहण-ग्राह्य, वयति-कहते हैं, तु-और, मणुण्ण-जो भाव मनोज्ञ है, त-उसे, रागहेउ-राग का हेतु, आहु-कहते हैं, य-और, अमणुण्ण-जो भाव अमनोज्ञ है, त-उसे, दोसहेउ-द्वेष का हेतु, आहु-कहते हैं (किन्तु), जो-जो, तेसु-उनमें, समो-समभाव रखता है, स-वह, वीयरागो-वीतराग है।

भावानुवाद-भाव (विचार) को मन का ग्राह्य विषय कहा गया है, जो भाव मनोज्ञ है उसे राग का कारण कहते हैं और जो भाव अमनोज्ञ है उसे द्वेष का कारण कहते हैं, जो उन दोना मे समभाव रखता है वह वीतराग है।

88 मन भाव का ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध

मूल गाथा- भावस्स मण गहण वयति,
मणस्स भाव गहण वयति।
रागस्स हेउ समणुण्णमाहु,
दोसस्स हेउ अमणुण्णमाहु ॥८८॥

सस्कृत छाया- भावस्य मनो ग्राहक वदन्ति,
मनसो भाव ग्राह्य वदन्ति।

रागस्य हेतु समनोज्ञमाहु ,
द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहु ॥८८॥

अन्वयार्थ-मण-मन को, भावस्स-भाव का, गहण-ग्राहक, वयति-कहते है, (और) भाव-भाव को, मणस्स-मन का, गहण-ग्राह्य, वयति-कहते हैं, समणुण्ण-मनोज्ञ भाव को, रागस्स-राग का, हेउ-हेतु, आहु-कहते हैं, (और) अमुणण्ण-अमनोज्ञ भाव को, दोसस्स-द्वेष का, हेउ-हेतु, आहु-कहते हैं।

भावानुवाद-मन को भाव का ग्राहक कहते हैं, भाव को मन का ग्राह्य कहते हैं। मनोज्ञ भाव को राग का हेतु कहते हैं और अमनोज्ञ भाव को द्वेष का हेतु कहते हैं।

89 भाव विषयक रागोत्पत्ति हानि का वर्णन

मूल गाथा- भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्व,
अकालियं पावइ से विणास।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे,
करेणुमग्गावहिए व णागे ॥८९॥

सस्कृत छाया- भावेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्राम्,
अकालिक प्राप्नुते स विनाशम्।
रागातुर कामगुणेषु गृद्ध ,
करेणुमार्गापहृत गज इव ॥८९॥

अन्वयार्थ-(जिस प्रकार) करेणुमग्गावहिए-हथिनि के प्रति मार्ग मे आकृष्ट, कामगुणेसु-कामगुणो मे, गिद्धे-गृद्ध, रागाउरे-रागातुर, णागे-हाथी (विनाश को प्राप्त होता है), व-उसी प्रकार, जो-जो पुरुष, भावेसु-भावो मे, तिव्व-तीव्र, गिद्धि-आसक्ति, उवेइ-रखता है, से-वह, अकालिय-अकाल मे ही, विणास-विनाश को, पावइ-प्राप्त करता है।

भावानुवाद-जो मनोज्ञ भावो मे तीव्र रूप से आसक्त होता है वह उसी प्रकार अकाल मे ही विनाश को प्राप्त होता है, जिस प्रकार हथिनि के प्रति आकृष्ट काम गुणो मे आसक्त रागातुर हाथी शिकारियो द्वारा पकडा जाने पर दु ख भोगता है-विनाश को प्राप्त होता है।

90 भाव विषयक द्वेष की उत्कृष्टता

मूल गाथा- जे यावि दोस समुवेइ तिव्व,
तसिक्खणे से उ उवेइ दुक्ख।
दुद्दतदोसेण सएण जतू,
ण किचि भाव अवरज्झई से ॥९०॥

सस्कृत छाया- यश्यापि द्वेष समुपैति तीव्र,
तस्मिन्क्षणे स तूपैति दु खम्।
दुर्दान्तदोषेण स्वकेन जन्तु,
न किञ्चिद्भावोऽपराध्यति तस्य ॥९०॥

अन्वयार्थ-जे यावि-जो जीव (अमनोज्ञ भाव) मे, तिव्व-तीव्र, दोस-द्वेष को, समुवेइ-प्राप्त होता है, से-वह जतू-प्राणी, सएण-अपने ही, दुद्दत-दुर्दान्त, दोसेण-दोष से, तसिक्खणे-उसी क्षण मे, उ-तो, दुक्ख-दु ख का, उवेइ-प्राप्त होता है, से-इसमें, भाव-भाव का, किंचि-कुछ भी, ण अवरज्झइ-अपराध नहीं है।

भावानुवाद-जो अमनोज्ञ भाव के प्रति तीव्र रूप से द्वेष करता है वह प्राणी अपने ही दुर्दान्त दोष से उसी क्षण दु ख को प्राप्त होता है, इसमे भाव का कोई अपराध नहीं है।

91 राग द्वेष की परिणति एव त्याग का फल

मूल गाथा- एगतरत्ते रुइरसि भावे,
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले,
ण लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥९१॥

सस्कृत छाया- एकान्तरक्तो रुचिरे भावे,
अतादृशे स कुरुते प्रद्वेषम्।
दु खस्य सम्पीडामुपैति बाल,
न लिप्यते तेन मुनिर्विरागी ॥९१॥

अन्वयार्थ-जो-जीव, रुइरसि-मनोज्ञ, भावे-भाव में, एगतरत्ते-एकान्त रक्त (और), अतालिसे-अमनोज्ञ भाव में, पओसं-द्वेष, कुणइ-करता है, से-वह, बाले-अज्ञानी जीव, दुक्खस्स-दु ख की, सपील-पीडा को, उवेइ-प्राप्त होता है, (किन्तु) विरागो-वीतराग, मुणी-मुनि, तेण-उस दु ख से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है।

भावानुवाद-जो जीव मनोज्ञ भाव में एकान्त रूप से अनुरक्त होता है और अमनोज्ञ के प्रति द्वेष करता है, वह अज्ञानी जीव दु ख और पीडा को प्राप्त होता है, विरक्त मुनि उससे लिप्त नहीं होता है।

92 राग हिंसादि आस्रवो का कारण

मूल गाथा- भावाणुगासाणुगए य जीवे,
चराचरे हिंसइऽणेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले,
पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥९२॥

संस्कृत छाया- भावानुगाशानुगतश्च जीव,
चराचरान्हिनस्त्यनेकरूपान्।
चित्रैस्तान्परितापयति बाल,
पीडयत्यात्मार्थगुरु क्लिष्ट ॥९२॥

अन्वयार्थ-भावाणुगासा-भावो की आशा से, अणुगए-अनुरक्त हुआ, जीवे-जीव, अणेगरूवे-अनेक प्रकार के, चराचरे-चराचर (त्रस और स्थावर) प्राणियो की, हिंसइ-हिसा करता है, य-और, बाले-वह अज्ञानी जीव, ते-उन (जीवो) को, चित्तेहि-अनेक प्रकार से, परितावेइ-परिताप देता है, अत्तट्ठगुरू-आत्मार्थगुरु (अपने ही स्वार्थ) से, किलिट्ठे-कुटिल (क्लिष्ट) जीव, पीलेइ-(अनेक जीवो को) पीडित करता है।

भावानुवाद-भावो की आसक्ति आशा मे अनुबद्ध जीव अनेक रूप त्रस एव स्थावर जीवो की हिसा करता है। वह अज्ञानी जीव उन प्राणियो को अनेक प्रकार से परिताप उत्पन्न करता है। अपने प्रयोजन स्वार्थ को प्रमुख मानता हुआ वह क्लिष्ट कुटिल जीव अनेक जीवो को पीडित करता है।

93 भाव सभोग काल मे अतृप्त लाभ

मूल गाथा- भावाणुवाएण परिग्गहेण,
उप्पायणे रक्खणसण्णिओगे।
वए विओगे य कह सुह से,
सभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥९३॥

संस्कृत छाया- भावानुपातेन परिग्रहेण,
उत्पादने रक्षणसन्नियोगे।
व्यये वियोगे च कथ सुख तस्य,
सम्भोगकाले चाऽतृप्तिलाभे ॥९३॥

अन्वयार्थ-भावाणुवाएण-भावो के अनुराग से, परिग्गहेण-परिग्रह से, उप्पायणे-उत्पादन मे, रक्खण-रक्षण मे, (और) सण्णिओगे-सनियोग मे, य-और, वए-विनाश में, वियोगे-वियोग, य-और, सभोगकाले-सभोगकाल मे अतित्तिलाभे-अतृप्त लाभ मे, से-उसको, कह-कैसे, सुह-सुख हो सकता है?

भावानुवाद-भाव मे अनुरक्त एव उसमे मूर्च्छित जीव को भावानुरूप पदार्थ को उत्पन्न करने में उसके सरक्षण में, उसके सनियोग मे तथा व्यय और वियोग में सुख कैसे हो सकता है? उसे उसके उपभोग काल मे भी अतृप्ति जनित दु ख ही होता है।

94 भाव असन्तोष से चौर्य कर्म में प्रवृत्ति

मूल गाथा- भावे अतित्ते य परिग्गहम्मि,
सत्तो वसत्तो ण उवेइ तुट्ठि।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स,
लोभाविले आययई अदत्त ॥९४॥

संस्कृत छाया- भावेऽतृप्तस्य परिग्रहे,
सक्त उपसक्तो नोपैति तुष्टिम्।
अतुष्टि दोषेण दु खी परस्य,
लोभाविल आदत्तेऽदत्तम् ॥९४॥

अन्वयार्थ-भावे-भाव मे, अतित्ते-अतृप्त हुआ, य-और, परिग्गहम्मि-परिग्रह मे, सत्तोवसत्तो-सक्त (और) उपसक्त बना हुआ जीव, तुट्ठिं-सतोष को, ण उवेइ-प्राप्त नहीं होता, अतुट्ठि-अतुष्टि रूपी, दोसेण-दोष से, दुही-दु खी हुआ, लोभाविले-लोभ के वशीभूत होकर, परस्स-दूसरो के, अदत्त-अदत्त पदार्थों को, आययई-ग्रहण करता है।

भावानुवाद-भाव मे अतृप्त एव भाव विषयक परिग्रह मे आसक्त एव उपसक्त व्यक्ति सन्तोष को प्राप्त नहीं होता है। वह असन्तोष रूपी दोष से दु खी एव लोभ से व्याकुल होकर अदत्त ग्रहण करता है।

95 भावासक्ति के दोषो का दिग्दर्शन

मूल गाथा- तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो,
भावे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुस वड्ढइ लोभदोसा,
तत्थावि दुक्खा ण विमुच्चई से ॥९५॥

संस्कृत छाया- तृष्णाभिभूतस्याऽदत्तहारिण,
भावेऽतृप्तस्य परिग्रहे च।
माया मृषा वर्धते लोभदोषात्,
तत्रापि दु खान्न विमुच्यते स ॥९५॥

अन्वयार्थ-तण्हाभिभूयस्स-तृष्णा के वशीभूत हुए, अदत्तहारिणो-चोरी करने वाले, य-और, भावे-भाव विषयक, परिग्गहे-परिग्रह में, अतित्तस्स-अतृप्त प्राणी, लोभदोसा-लोभ रूपी दोष से, मायामुस-माया मृषावाद का, वड्ढइ-वृद्धि करता है, तत्थावि-तथापि, से-वह, दुक्खा-दु ख से, ण विमुच्चइ-विमुक्त नहीं होता है।

भावानुवाद-भाव के परिग्रह से अतृप्त तृष्णा के वश में होकर वह दूसरो की वस्तुओ को चुराता है, लोभ के दोष से उसके कपट एव असत्य की वृद्धि होती है फिर भी वह दु ख से मुक्त नहीं हो पाता है।

96 मिथ्या भाषण का कटु परिणाम

मूल गाथा- मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य,
पओगकाले य दुही दुरंते।
एव अदत्ताणि समाययतो,
भावे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥९६॥

संस्कृत छाया- मृषा वाक्यस्य पश्चाच्च पुरस्ताच्च,
प्रयोगकाले च दु खी दुरन्त ।
एवमदत्तानि समाददत्,
भावेऽतृप्तो दु खितोऽनिश्र ॥९६॥

अन्वयार्थ-मोसस्स-झूठ बोलने के, पुरत्थओ-पहले, य-और, पच्छा-पीछे, य-तथा, पओगकाले-प्रयोगकाल मे (बोलते समय), दुरते-दुरन्त जीव, दुही-दु खी होता है, एव-इसी प्रकार, भावे-भाव मे, अतित्तो-अतृप्त जीव, अदत्ताणि-अदत्त पदार्थों को, समाययतो-ग्रहण करता हुआ, अणिस्सो-अनाश्रित, य-और, दुहिओ-दु खी होता है।

भावानुवाद-असत्य भाषण के पूर्व, उसके बाद और बोलने के समय भी वह दु खी होता है। दुष्ट हृदय वाला यह जीव भाव म अतृप्त होकर अपने भावानुकूल अदत्त को ग्रहण करता हुआ आश्रयहीन और दु खी होता है।

97 भाव तृष्णा से प्राप्त दु खो का वर्णन

मूल गाथा- भावाणुरत्तस्स णरस्स एव,
कत्तो सुह होज्ज कयाइ किचि?
तत्तोवभोगे वि किलेसदुक्ख,
णिव्वत्तई जस्स कएण दुक्ख ॥९७॥

संस्कृत छाया- भावानुरक्तस्य नरस्यैव,
कुत सुख स्यात्कदापि किञ्चित्?
तत्रोपभोगेऽपि क्लेशदु ख,
निर्वर्तयति यस्य कृते दु खम् ॥९७॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, भावाणुरत्तस्स-भाव मे अनुरक्त, णरस्स-मनुष्य को, कयाइ-कभी भी, किचि-किचिन्मात्र, सुह-सुख, कत्तो-कहा से, होज्ज-हो सकता है, जस्स-जिसक, कएण-लिए, दुक्ख-दु ख, णिव्वत्तइ-पाता है, तत्थ-वहा पर, उवभोगे वि-भोगते समय भी, किलेस-क्लेश (और), दुक्ख-दु ख को (पाता है)।

भावानुवाद-इस प्रकार भाव मे आसक्त बने हुए मनुष्य का सुख कहा प्राप्त हो सकता है, उसे कभी भी किचित् मात्र भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। भावानुकूल जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए जीव दु ख उठाता है उसके उपभोग मे भी वह क्लेश और दु ख पाता है।

98 भाव विषयक द्वेष भी दु ख का हेतु

मूल गाथा- एमेव भावम्मि गओ पओस,
उवेइ दुक्खोहपरपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्म,
ज से पुणो होइ दुह विवागे ॥९८॥

संस्कृत छाया- एवमेव भावे गत प्रद्वेषम्,
उपैति दु खौघपरम्परा ।
प्रदुष्टचित्तश्च चिनोति कर्म,
यत्तस्य पुनर्भवति दु ख विपाके ॥९८॥

अन्वयार्थ-एमेव-इसी प्रकार, भावम्मि-अमनोज्ञ भाव मे, पओस-प्रद्वेष को, गओ-प्राप्त हुआ जीव, दुक्खोह-दु ख समूह की, परपराओ-परम्पराओ को, उवेइ-प्राप्त होता है, य-और, पदुट्ठचित्तो-प्रद्वेषचित वाला जीव, कम्म-(अशुभ) कर्म, चिणाइ-चय करता (बाधता) है, ज-जिससे, से-उसे, पुणो-फिर, विवाग-विपाक के समय, दुह-दु ख, होइ-होता है।

भावानुवाद-इसी प्रकार जो अमनोज्ञ भाव पर द्वेष करता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दु खो की परम्परा को प्राप्त होता है। वह अतिशय द्वेष युक्त चित्त वाला अशुभ कर्म बाधता है जिससे उसे पुन कर्म फल भोग के समय दु ख होता है।

99 भाव राग द्वेष के त्याग का फल

मूल गाथा- भावे विरत्तो मणुओ विसोगो,
एएण दुक्खोहपरंपरेण।
ण लिप्पई भवमज्झे वि संतो,
जलेण वा पोक्खरिणीपलास ॥९९॥

संस्कृत छाया- भावे विरक्तो मनुजो विशोक ,
एतया दु खौघपरम्परया।
न लिप्यते भवमध्येऽपि सन्,
जलेनेव पुष्करिणीपलाशम् ॥९९॥

अन्वयार्थ-वा-जिस प्रकार, पोक्खरिणी पलास-पुष्करिणी पलाश (पद्मिनी का पत्र), जलेण-जल से, ण लिप्पइ-लिप्त नहीं होता है (उसी प्रकार), भावे-भाव में, विरत्तो-विरक्त, मणुओ-मनुष्य, विसोगो-शोक रहित होकर, भवमज्झे-ससार मे, सतो वि-रहता हुआ भी, एएण-इस भाव विषयक, दुक्खोह परंपरेण-दु ख समूह की परम्परा से (लिप्त नहीं होता है)।

भावानुवाद-जैसे जल में उत्पन्न कमल-पत्र जल में रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता है, वैसे ही भाव से विरक्त मनुष्य शोक रहित होता है और वह ससार में रहता हुआ भी भाव विषयक दु ख परम्परा से लिप्त नहीं होता है।

100 मन के सकल्प ... दि ...

मूल गाथा- एविदियत्था ...
दुक्खस्स ...

ते चेव थोव पि कयाइ दुक्ख,
ण वीयरागस्स करेंति किंचि ॥१००॥

संस्कृत छाया- एवमिन्द्रियार्थाश्च मनसोऽर्था ,
दु खस्य हेतवो मनुजस्य रागिण ।
ते चैव स्तोकमपि कदापि दु ख,
न वीतरागस्य कुर्वन्ति किञ्चित् ॥१००॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, इदियत्था-इन्द्रियार्थ, य-और, मणस्स-मन के, अत्था-अर्थ (विषय), रागिणो-रागी, मणुयस्स-मनुष्य के लिये, दुक्खस्स-दु ख के, हेउ-हेतु होते हैं, (किन्तु) ते चेव-वे ही इन्द्रिय और मन के विषय, वीयरागस्स-वीतराग पुरुष के लिए, थोव-थोडा सा, किंचि-किंचिन्मात्र भी, कयाइ पि-कभी भी, दुक्ख-दु ख, ण करेंति-नहीं कर सकते हैं।

भावानुवाद-इस प्रकार इन्द्रियो के विषय एव मन के विषय रागी मनुष्य के लिए दु ख के हेतु होते हैं किन्तु वे ही विषय वीतराग पुरुष के लिए कभी भी किंचित् मात्र भी दु ख के कारण नहीं हो सकते हैं।

101 काम भोगादि विषय अधीन नहीं

मूल गाथा- ण कामभोगा समय उवेंति,
ण यावि भोगा विगइ उवेंति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य,
सो तेसु मोहा विगइ उवेइ ॥१०१॥

संस्कृत छाया- न कामभोगा समतामुपयान्ति,
न चापि भोगा विकृतिमुपयान्ति।
यस्तत्प्रद्वेषी च परिग्रही च,
स तेषु मोहाद् विकृतिमुपैति? ॥१०१॥

अन्वयार्थ-कामभोगा-कामभोग (स्वत), ण-न तो, समय-समता को, उवेंति-प्राप्त कराते हैं, ण यावि-और न, भोगा-कामभोग, विगइ-विकृति (विकार भाव) को, उवेंति-प्राप्त कराते है, उ-किन्तु, जे-जो, परिग्गही-परिग्रही, य-और, तप्पओसी-तत्प्रद्वेषी है, सो-वह, तेसु-उनमें, मोहा-मोह से, विगइ-विकृति भाव को, उवेइ-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-काम भोग न तो स्वत समता-समभाव को लाते हैं और न काम भोग विकार भाव को प्राप्त करवाते हैं, किन्तु जो अमनोज्ञ विषयो पर द्वेष करता है और मनोज्ञ विषयो पर ममत्व करता है वह उनमें मोह भाव के कारण विकार भाव को प्राप्त होता है।

102 राग द्वेष के वशीभूत उत्पन्न विकार

मूल गाथा- कोह च माण च तहेव माय,
लोह दुगुछ अरइ रइ च।

हासं भय सोगपुमित्थिवेय,
णपुंसवेय विविहे य भावे ॥१०२॥

संस्कृत छाया- क्रोधं च मानं च तथैव मायां,
लोभं जुगुप्सामरतिं रतिं च।
हास्यं भयं शोकं पुंस्त्रीवेदं,
नपुंसकवेदं विविधांश्च भावान् ॥१०२॥

अन्वयार्थ-कामगुणेसु-कामगुणों मे, सत्तो-आसक्त जीव, कोह-क्रोध, माण-मान, माय-माया, लोभ-लोभ, दुगुच्छ-जुगुप्सा, च-और, अरइ-अरति, रइ-रति, हास-हास्य, भय-भय, सोग-शोक, तहेव-तथा, पुमित्थिवेय पुरुष स्त्री वेद, च-और, णपुसवेय-नपुसकवेद, च-और, विविहेभावे-विविध भावो को, य-और।

भावानुवाद-क्रोध, मान, माया, लोभ, जुगुप्सा, अरति, रति, हास्य, भय, शोक, पुरुष वेद, स्त्री वेद, नपुसक वेद तथा हर्ष-विषाद विविध भावो को।

103 राग द्वेष की बहुलता का दिग्दर्शन

मूल गाथा- आवज्जई एवमणेगरूवे,
एवंविहे कामगुणेसु सत्तो।
अण्णे य एयप्पभवे विसेसे,
कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥१०३॥

संस्कृत छाया- आपद्यते एवमनेकरूपान्,
एवंविधान् कामगुणेषु सक्तः।
अन्यांश्चैतत्प्रभवान् विशेषान्,
कारुण्यदीनो ह्रीमान द्वेष्य ॥१०३॥

अन्वयार्थ-एवंविहे-इसी प्रकार के, अणेगरूवे-अनेक रूपो को, य-तथा, एयप्पभवे-इसी (क्रोध) से उत्पन्न, अण्णे-अन्य, विसेसे-सतापविशेषो को, आवज्जई-प्राप्त होता है, (इसी कारण कामासक्त जीव) कारुण्ण-करुणापात्र, दीणे-अत्यन्त दीन, हिरिमे-ह्रीमान (लज्जित) और, वइस्से-द्वेष्य (अप्रीति पात्र) बन जाता है।

भावानुवाद-इस प्रकार के अनेक विकारो को, उनसे उत्पन्न अन्य अनेक विशेष कुपरिणामो को वह व्यक्ति प्राप्त होता है, जो काम गुणो मे आसक्त है वह करुणा पात्र, दीन, लज्जित एव अप्रिय भी होता है।

104 तप के प्रभाव की अनाकांक्षा

मूल गाथा- कप्पं ण इच्छिज्ज सहायलिच्छु,
पच्छाणुतावे ण तवप्पभाव।
एवं वियारे अमियप्पयारे,
आवज्जई इंदियचोरवस्से ॥१०४॥

संस्कृत छाया- कल्प नेच्छेत्साहाय्यलिप्सु,
पश्चादनुतापो न तप प्रभावम्।
एव विकारानमितप्रकारान्,
आपद्यते इन्द्रिय चौरवश्य ॥१०४॥

अन्वयार्थ-(सेवादि कराने के लिए) कप्प-योग्य, सहायलिच्छु-सहायक शिष्य की, ण इच्छिज्ज-इच्छा न करे, पच्छा-सयम ग्रहण करने के बाद, ण अणुतावे-अनुताप (पश्चात्ताप) नहीं करे, (और) तवप्पभावे-तप के प्रभाव की भी इच्छा नहीं करे, एव-इस प्रकार, इदिय-इन्द्रिया रूपी, चोरवस्से-चोरो के वशीभूत हुआ, अमियप्पयारे-अनेक प्रकार के, वियारे-विकारो को, आवज्जई-प्राप्त होता है।

भावानुवाद-अपनी सेवादि कराने के लिए सहायक को चाहने वाला होकर शिष्य की भी इच्छा न करे। व्रत और तप अगीकार करने पर अनुताप-पश्चात्ताप न करे और न तप के प्रभाव की ही इच्छा करे। (क्योकि) इन्द्रिय रूपी चोरो के वशवर्ती जीव अनेक प्रकार के अपरिमित विकारो को प्राप्त होता है।

105 रागी साधक का प्रयत्न

मूल गाथा- तओ से जायति पओयणाइ,
णिमज्जिउ मोहमहण्णवम्मि।
सुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा,
तप्पच्चय उज्जमए य रागी ॥१०५॥

संस्कृत छाया- ततस्तस्य जायन्ते प्रयोजनानि,
निमज्जयितु मोहमहार्णवे।
सुखैषिणो दुःखविनोदनार्थं,
तत्प्रत्ययमुद्यच्छति च रागी ॥१०५॥

अन्वयार्थ-तओ-तदन्तर, से-उसे, मोह-मोहरूपी, महण्णवम्मि-महासागर मे, णिमज्जिउ-डुबा देने के लिए, पओयणाइ-(विषय सेवनादि) प्रयोजन, जायति-उत्पन्न होते हैं, य-तथा, सुहेसिणो-सुख को चाहने वाले, रागी-राग द्वेष वाला जीव, दुक्ख विणोयणट्ठा-दु खा को दूर करने के लिए, तप्पच्चय-तत्प्रत्ययिक, उज्जमए-उद्यम करता है।

भावानुवाद-विकारोत्पत्ति के बाद उस प्राणी को मोहरूपी सागर में डुबा देने के लिए विषयादि सेवन रूप अनेक प्रयोजन उत्पन्न होते हैं, तब वह सुखाभिलाषी रागी व्यक्ति दु ख से मुक्त होने के लिए विषय सयोगो मे ही प्रयत्न करता है।

106 विरक्तात्मा की अकिंचनता एव पुरुषार्थ का वर्णन

मूल गाथा- विरज्जमाणस्स य इदियत्था,
सद्दाइया तावइयप्पगारा।

ण तस्स सव्वे वि मणुण्णय वा,
णिव्वत्तयति अमणुण्णय वा ॥१०६॥

संस्कृत छाया- विरज्यमानस्य चेन्द्रियार्था,
शब्दाद्यास्तावत्प्रकारा ।
न तस्य सर्वेऽपि मनोज्ञता वा,
निर्वर्तयन्ति अमनोज्ञता वा ॥१०६॥

अन्वयार्थ-इदियत्था-इदियार्थ, सद्दाइया-शब्दादि विषय, य-और, तावइयप्पगारा-सब प्रकार के, सव्वे वि सभी, तस्स-उस, विरज्ज माणस्स-विरक्त जीव के लिए, मणुण्णय-मनोज्ञता, वा-अथवा, अमणुण्णयं-अमनोज्ञता, ण णिव्वत्तयति-उत्पन्न नहीं कर सकते हैं।

भावानुवाद-पाच इन्द्रियो के शब्दादि जितने भी विषय इस लोक मे हैं वे सभी उस विरक्त व्यक्ति के लिए मनोज्ञता या अमनोज्ञता उत्पन्न नहीं करते हैं।

107 विरक्तात्मा का सकल्प एव तृष्णा का क्षय

मूल गाथा- एव ससकप्पविकप्पणासु,
सजायई समयमुवट्ठियस्स।
अत्थे य सकप्पयओ तओ से,
पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥१०७॥

संस्कृत छाया- एव सकल्पविकल्पनासु,
सजायते समतोपस्थितस्य।
अर्थाश्च सकल्पयतस्ततस्तस्य,
प्रहीयते कामगुणेषु तृष्णा ॥१०७॥

अन्वयार्थ-एव-इस प्रकार, ससकप्प-सकल्प, विकप्पणासु-विकल्पा मे, उवट्ठियस्स-उपस्थित (उद्यत) हुए का, समय-समभाव की, सजायई-प्राप्त होती है, तओ-तत्पश्चात्, अत्थे-पदार्थों मे, सकप्पयओ-सम्यक् विचार करते हुए, से-उस जीव की, कामगुणेसु-कामगुणा की, तण्हा तृष्णा, पहीयए-नष्ट हो जाती है।

भावानुवाद-इस प्रकार अपने ही सकल्प विकल्प सब दोषो के कारण हैं, 'इन्द्रियो के विषय नहीं' ऐसा विचार करने वाले के मन मे समता भाव जागृत होता है और पदार्थों के प्रति सम्यग् विचार करने से उसकी काम गुणा की तृष्णा क्षीण हो जाती है।

108 वीतराग आत्मा की उपलब्धि

मूल गाथा- स वीयरागो कयसव्वकिच्चो,
खवेइ णाणावरण खणेण।

तहेव ज दसणमावरेइ,
ज चऽन्तराय पकरेइ कम्म ॥१०८॥

सस्कृत छाया- स वीतराग कृतसर्वकृत्य,
क्षपयति ज्ञानावरण क्षणेन।
तथैव यद् दर्शनमावृणो,
यदन्तराय प्रकरोति कर्म ॥१०८॥

अन्वयार्थ-कयसव्व किच्चो-कृत सर्व कृत्य, स-वह, वीयरागो-वीतरागी, णाणावरण-ज्ञानावरणीय कर्म को, तहेव-और, ज-जो, दसण-दर्शन को, अवरेइ-ढाकता है उसको, च-और, ज-जो, अतराय-दानादि मे (अन्तराय), पकरेइ-करता है उस, कम्म-(अन्तराय) कर्म को, खणेण-एक क्षण मे, खवेइ-क्षय कर देता है।

भावानुवाद-वह कृत कृत्य वीतराग जीव ज्ञानावरणीय कर्म को क्षण भर मे क्षय कर देता है और साथ ही दर्शन आवृत्त करने वाले एव दानादि मे अन्तराय डालने वाले कर्म को क्षय कर देता है अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय तीनो कर्मों का एक साथ क्षय कर देता है।

109 कर्म क्षय के फल का दिग्दर्शन

मूल गाथा- सव्व तओ जाणइ पासए य,
अमोहणे होइ णिरतराए।
अणासवे झाणसमाहिजुत्ते,
आउक्खए मोक्खमुवेइ सुद्धे ॥१०९॥

सस्कृत छाया- सर्व ततो जानाति पश्यति च,
अमोहनो भवति निरन्तराय।
अनास्रवो ध्यानसमाधियुक्त,
आयु क्षये मोक्षमुपैति शुद्ध ॥१०९॥

अन्वयार्थ-तओ-तत्पश्चात् (वह जीव), सव्व-सभी को, जाणइ-जानने लग जाता है, य-और, पासए-देखने लग जाता है, (तथा) अमोहेण-मोह रहित, णिरतराए-अन्तराय रहित, होइ-हो जाता है, अणासवे-आश्रव रहित, झाण-शुक्ल ध्यान की, समाहि-समाधि से, जुत्ते-युक्त होकर, आउक्खए-आयु के क्षय होने पर, सुद्धे-(कर्म मल से) शुद्ध होकर, मोक्ख-मोक्ष को, उवेइ-प्राप्त हो जाता है।

भावानुवाद-चार घनघाती कर्मों के क्षय हो जाने के बाद वह जीव सब कुछ जानता और देखता है, वह मोह और अन्तराय से रहित हो जाता है आश्रव रहित और शुक्ल ध्यान की समाधि से युक्त होकर आयु के क्षय होने पर कर्मरज से रहित शुद्ध हो कर मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

110 मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् मुक्तात्मा की अवस्था

मूल गाथा- सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को,
ज बाहई सयय जतुमेय।
दीहामय विप्पमुक्को पसत्थो,
तो होइ अच्चतसुही कयत्थो॥११०॥

सस्कृत छाया- स तस्मात् सर्वस्माद् दु खात् मुक्त,
यद् बाधते सतत जन्तुमेत।
दीर्घामयविप्रमुक्त प्रशस्त,
ततो भवत्यत्यन्तसुखी कृतार्थ ॥११०॥

अन्वयार्थ-ण-जो दु ख, एय-इस, जतु-जीव को, सयय-सतत (निरन्तर), बाहइ-बाधित (पीडित) कर रहा है, तस्स-उस, सव्वस्स-सभी, दुहस्स-दु ख से, सो-वह जीव, मुक्को-मुक्त हो जाता है, पसत्थो-ऐसा प्रशस्त जाव, दीहामय-दीर्घ आमय (रोग) से, विप्पमुक्को-मुक्त हो जाता है, तो-इसके बाद, कयत्थो-कृतार्थ बना जीव, अच्चत-अत्यन्त, सुही-सुखी, होइ-हो जाता है।

भावानुवाद-जो दु ख इस जीव को सदैव बाधा पीडा देते रहते हैं उस समस्त दु ख से वह जीव मुक्त हो जाता है तथा दीर्घ कालीन कर्मों से मुक्त होकर वह प्रशस्त अत्यन्त सुखी एव कृतार्थ हो जाता है।

111 अनन्त सुख सम्पन्नता का मार्ग उपसहार

मूल गाथा- अणाइकालप्पभवस्स एसो,
सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो।
वियाहिओ ज समुविच्च सत्ता,
कमेण अच्चतसुही भवति॥१११॥

त्ति बेमि।

इति पमायट्ठाण बत्तीसइम अज्झयण समत्त॥३२॥

सस्कृत छाया- अनादिकालप्रभवस्यैष,
सर्वस्य दु खस्य प्रमोक्षमार्ग।
व्याख्यात य समुपेत्य सत्वा,
क्रमेणाऽत्यन्तसुखिनो भवन्ति॥१११॥

इति ब्रवीमि।

इति प्रमादस्थान समाप्तम्॥३२॥

अन्वयार्थ-एसो-यह, अणाइकालप्पभवस्स-अनादि काल से उत्पन्न हुए, सव्वस्स-समस्त, दुक्खस्स-दु खो से, पमोक्ख मग्गो-प्रमोक्ष मार्ग, वियाहिओ-कहा गया है, ज-जिस (मार्ग) को, समुविच्च-अगीकार करके, सत्ता-सत्व-जीव, कमेण-क्रम से, अच्चत-अत्यन्त, सुही-सुखी, भवति-हो जाते हैं।

भावानुवाद-यह अनादिकाल से उत्पन्न होते हुए उन समस्त दु खो से मुक्ति का मार्ग बताया गया है, जिसे सम्यक प्रकार से अगीकार करके जीव क्रमश अत्यन्त सुखी होते हैं, अनन्त आत्मिक सुख सम्पन्न मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार प्रमाद स्थान नामक बत्तीसवा अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

□□□

कर्म प्रकृति - त्रयस्त्रिंशत् अध्ययन

उत्थानिका

हमारी साधना अथवा हमारे जीवन का मूलभूत उद्देश्य है आत्मा से परमात्मा बनना। यो तो विश्व की समस्त आत्माओ मे समान रूप से ईश्वरत्व छुपा हुआ है और इस आधार पर समस्त आत्माओ का मूल रूप एक समान ही है। उनमे जो कुछ विविधता दिखाई देती है वह है कर्मों के कारण। आत्मा और परमात्मा में कर्मों का ही तो अन्तर है। किन्तु ये कर्म हैं क्या? जीव के साथ इनका सम्बन्ध कब से हुआ? किन हेतुओ से इनका प्रतिक्षण आत्मा के साथ बन्ध होता है? इनका प्रभाव आत्मा पर किस रूप मे और कितने काल तक स्थिर रहता है? इनके कितने और कौन-कौन से भेद-प्रभेद हैं, आदि अनेक प्रश्न कर्म के सम्बन्ध मे उपस्थित होते हैं, जिनका सक्षिप्त सार भूत उत्तर दिया गया है प्रस्तुत अध्ययन मे।

कर्म की शक्ति ऐसी शक्ति है जो समस्त जगत की अनन्त शक्ति सम्पन्न चेतना पर प्रभाव जमाए हुए है। सीधे शब्दो मे कहें तो कर्म के आगे सारा ससार नत है। यह कर्म शूरवीर, योद्धा, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती सम्राट, सन्त महात्मा, महान् योगी पुरुष, साधक यहा तक कि तीर्थंकर जैसी शक्ति सम्पन्न वीतराग आत्मा को भी नहीं छोडते हैं। उन्हे भी अपने कृत कर्मों का फल तो भोगना ही पडता है।

कर्म की शक्ति विचित्र है। कर्माधीन हुआ जीव अपने ही स्वरूप को भूल जाता है। स्वय को देखते हुए भी नहीं देख पाता है और उसी के परिणाम में अनेक योनियो मे परिभ्रमण करता हुआ विविध प्रकार के सुख-दु खों का अनुभव करता है।

यद्यपि मूल रूप मे कर्म वर्गणा के पुद्गल स्कन्धा के रूप में एक ही प्रकार के हैं, किन्तु आत्मा के राग द्वेषादि भिन्न-भिन्न परिणामो, उनके विविध स्तरा के कारण आत्मा पर चिपकते समय-आत्मा के साथ बधते समय कर्म अनेक रूपो को धारण कर लेता है। वे विविध रूप मूल प्रकृति के रूप में आठ एव उत्तर प्रकृति-अवान्तर भेदों के रूप में एक सौ अट्ठावन (158) होते हैं।

राग-द्वेष रूप परिणामो के द्वारा कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ क्षीर-नीर की तरह एकीभूत हो जाना बन्ध कहलाता है। यह बन्ध ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग एव प्रदेश के रूप में चार भागों में विभक्त होता है। इन चारो स्थितियो का विभाजन काषायिक परिणामों की तीव्रता-मन्दता के आधार पर होता है। अध्यवसायों की तीव्रता-मन्दता के आधार पर कर्मों की फलदायक शक्ति एव उसकी काल मर्यादा में तीव्रता-मन्दता उत्पन्न होती है।

प्रस्तुत अध्ययन में आठो कर्मों के भेद-प्रभेद उनकी स्थिति एव काषायिक परिणामों का विवेचन किया गया है। साथ ही कर्म बन्ध के चार-प्रकृति-स्थिति-अनुभाग एव प्रदेश बन्ध-प्रकारो का वर्णन किया गया है। प्रारम्भ में ज्ञानावरणीय कर्म के पाच, दर्शनावरणीय के नौ, वेदनीय कर्म के दो, मोहनीय कर्म के दो, फिर एक के तीन और एक के पच्चीस, कुल अट्ठाईस, आयुष्य कर्म के चार, नामकर्म के मुख्य दो, गोत्र कर्म के दो और अन्तराय कर्म के पाच भेद बताये गये हैं। प्रस्तुत अध्ययन कर्म बन्धन से बचकर कर्म निर्जरा की प्रेरणा देता है।

□□□

कर्म प्रकृति - त्रयस्त्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश ·

जीव कर्म के कारण परवश बना हुआ है।
ससार परिभ्रमण का मूल हेतु कर्म है।

ज्ञान के आवारक कर्म के क्षय से ही ज्ञान प्रकट होगा।
ज्ञान की तारतम्यता का मूल हेतु कर्म है, पुस्तक या अन्य व्यक्ति निमित्त मात्र है।

अपने सुख-दु ख की उत्पत्ति मे अन्य को दोष मत दो।
हमारे सुख-दु ख का मूल आधार हमारे द्वारा कृत वेदनीय कर्म ही है।

कषाय मुक्त बनो, मोह मुक्त हो जाओगे।
राग-द्वेष कषाये ही कर्म बन्ध के हेतु हैं, उन्हीं से
जन्म-मरण होता है।

शरीर भी जेल है, इससे पूर्णतया मुक्त होने का प्रयास करो।
कर्म-आयुष कर्म ने ही आत्मा को शरीर रूपी कैद म बन्द कर रखा है।

सुरूपता कुरूपता नाम कर्म जनित है, उसमे हर्ष-शोक
मत करो।
विभिन्न देह धारियो मे दैहिक भिन्नता का मूल कारण नाम
कर्म है।

जो मिला है, उसका परमार्थ मे उपयोग करो अधिक प्राप्त करोगे।
जो मिल रहा है, उसी मे सतुष्टि का अनुभव करो, क्योकि
अन्तराय कर्म का इतना ही क्षयोपशम है।

सावधान रहो, कर्म चारो ओर से धावा बोल रहे है।
कर्म आत्मा पर सभी दिशाओ से आक्रमण करते हैं सभी
आत्मप्रदेशो पर बन्धते हैं।

ससार की सर्वोच्च शक्ति है प्रशस्त पुरुषार्थ।
कर्म की शक्ति प्रबल है इससे सावधान रहो, पर घबराओ भी नहीं,
पुरुषार्थ कर्म से भी प्रबल है।

□□□

अह कम्मप्पयडी तेत्तीसइमं अज्झयणं

अथ कर्मप्रकृति त्रयस्त्रिंशत्तममध्ययनम्

कर्म प्रकृति

1 आठ कर्मों का बन्धन

मूल गाथा- अट्ठ कम्माइ वोच्छामि, आणुपुव्वि जहाक्कम।
जेहिं बद्धो अय जीवो, ससारे परिवट्टइ॥1॥

सस्कृत छाया- अष्ट कर्माणि वक्ष्यामि, आनुपूर्व्या यथाक्रमम्।
यैर्बद्धोऽय जीव, ससारे परिवर्तते॥१॥

अन्वयार्थ-(मैं) अट्ठ-आठ, कम्माइ-कर्मों का, आणुपुव्वि-आनुपूर्वी (एव) जहाकम्म-यथाक्रम से, वोच्छामि-वर्णन करूगा, जेहिं-जिनसे, बद्धो-बधा हुआ, अय-यह, जीवो-जीव, ससारे-ससार म, परिवट्टइ-परिभ्रमण करता है।

भावानुवाद-जिनसे आबद्ध यह जीव ससार मे परिवर्तन-परिभ्रमण करता है, उन आठ कर्मों का आनुपूर्वी के यथाक्रम से मैं वर्णन करूगा। तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

2 कर्मों के पाच भेदो का नाम निर्देश

मूल गाथा- णाणस्सावरणिज्ज, दसणावरण तहा।
वेयणिज्ज तहा मोह, आउकम्म तहेव य॥2॥

सस्कृत छाया- ज्ञानस्यावरण, दर्शनावरण तथा।
वेदनीय तथा मोहम्, आयु कर्म तथैव च॥२॥

अन्वयार्थ-णाणस्सावरणिज्ज-ज्ञान को, आवृत्त करने वाला-ज्ञानावरणीय, दसणावरण-दर्शन को आवृत्त करने वाला-दर्शनावरणीय, तहा-तथा, वेयणिज्ज-वेदनीय, तहा-और, मोह-मोहनीय, तहेव य-उसी प्रकार, आउकम्म आयुकर्म।

भावानुवाद-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय तथा आयु कर्म-

3 शेष कर्म प्रभेद का नाम निर्देश

मूल गाथा- णामकम्मं च गोय च, अतराय तहेव य।
एवमेयाइ कम्माइ, अट्ठेव उ समासओ ॥३॥

सस्कृत छाया- नामकर्म च गोत्र च, अन्तराय तथैव च।
एवमेतानि कर्माणि, अष्टैव तु समासत ॥३॥

अन्वयार्थ-च-तथा, णामकम्म-नाम कर्म, उ-तो, गोय-गोत्रकर्म, तहेव य-और, अतराय-अन्तराय, एव-इस प्रकार, एयाइ-ये, समासओ-सक्षेप मे, च-और, अट्ठेव-आठ ही, कम्माइ-कर्म कहे गये हैं।

भावानुवाद-और नाम कर्म, गोत्र कर्म तथा अन्तराय कर्म, इस प्रकार सक्षेप मे ये आठ कर्म कहे गये हैं।

4 ज्ञानावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियो का वर्णन

मूल गाथा- णाणावरण पचविह, सुय आभिणिबोहिय।
ओहिणाण तइय, मणणाण च केवल ॥४॥

सस्कृत छाया- ज्ञानावरण पञ्चविध, श्रुतमाभिनिबोधिकम्।
अवधिज्ञान च तृतीय, मनोज्ञान च केवलम् ॥४॥

अन्वयार्थ-णाणावरण-ज्ञानावरणीय कर्म, आभिणिबोहिय-आभिनिबोधिक (मति), सुय-श्रुतज्ञानावरणीय, तइय-तीसरा, ओहिणाण-अवधिज्ञानावरणीय, च-और, मणणाण-मन पर्यय ज्ञानावरणीय, च-और, केवल-केवल ज्ञानावरणीय (इस तरह), पचविह-पाच प्रकार का है।

भावानुवाद-ज्ञानावरणीय कर्म पाच प्रकार का है-(1) आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय, (2) श्रुत ज्ञानावरणीय, (3) अवधि-ज्ञानावरणीय, (4) मन पर्याय ज्ञानावरणीय और (5) केवलज्ञानावरणीय।

5 दर्शनावरणीय कर्म के पाच उत्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- णिद्दा तहेव पयला, णिद्दाणिद्दा पयलपयला य।
तत्तो य थीणगिद्धी उ, पचमा होइ णायव्वा ॥५॥

सस्कृत छाया- निद्रा तथैव प्रचला, निद्रानिद्रा प्रचलप्रचला च।
ततश्च स्त्यानगृद्धिस्तु, पञ्चमा भवति ज्ञातव्या ॥५॥

अन्वयार्थ-णिद्दा-निद्रा, तहेव-और, णिद्दाणिद्दा-निद्रानिद्रा, य-और, पयला-प्रचला, य-और पयलपयला-प्रचलाप्रचला, उ-और, तत्तो-इसके बाद, पचमा-पाचवीं, थीणगिद्धी-स्त्यानगृद्धि, होइ-है, (ये पाच निद्राए), णायव्वा-जाननी चाहिए।

भावानुवाद-(1) निद्रा, (2) निद्रा निद्रा (गाढ निद्रा), (3) प्रचला (उठते-बैठते ऊघना), (4) प्रचला-प्रचला (चलते-चलते ऊघना-निद्रा आना) और (5) पाचवीं स्त्यानगृद्धि।

6 दर्शनावरणीय कर्म की शेष प्रकृतियो का वर्णन

मूल गाथा- चक्खुमचक्खूओहिस्स, दसणे केवले य आवरणे।
एव तु णवविगप्प, णायव्व दसणावरण ॥६॥

सस्कृत छाया- चक्षुरचक्षुरवधे , दर्शने केवले चावरणे।
एव तु नवविकल्प, ज्ञातव्य दर्शनावरणम् ॥६॥

अन्वयार्थ-चक्खु-चक्षु दर्शनावरणीय, अचक्खू-अचक्षुदर्शनावरणीय, ओहिस्स-अवधि दर्शनावरणीय, य-और, केवले दसणे आवरणे-केवल दर्शनावरणीय, एव तु-इस प्रकार, दसणावरण-दर्शनावरणीय, णव विगप्प-नौ प्रकार का, णायव्व-जानना चाहिए।

भावानुवाद-चक्षु दर्शनावरणीय, अचक्षु दशनावरणीय, अवधि दर्शनावरणीय और केवल दर्शनावरणीय, ये दर्शनावरणीय के नौ भेद हैं।

7 वेदनीय कर्म की उत्तर प्रकृतिया

मूल गाथा- वेयणीय पि य दुविह, सायमसाय च आहिय।
सायस्स उ बहू भेया, एमेव असायस्स वि ॥७॥

सस्कृत छाया- वेदनीयमपि च द्विविध, सातमसात चाख्यातम्।
सातस्य तु बहवो भेदा , एवमेवाऽसातस्यापि ॥७॥

अन्वयार्थ-वेयणीय-वेदनीय कर्म, पि-भी, साय-साता, य-और, असाय-असाता रूप से, दुविह-दो प्रकार का, आहिय-कहा गया है, च-और, सायस्स-साता वेदनीय के, बहू भेया-बहुत भेद हैं, उ-और, एमेव-इसी प्रकार, असायस्स वि-असाता, वेदनीय के भी बहुत भेद हैं।

भावानुवाद-वेदनीय कर्म (1) साता और (2) असाता के रूप से दो प्रकार का कहा गया है, साता वेदनीय के एव असाता वेदनीय के भी अन्य अनेक भेद हैं।

8 मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतिया

मूल गाथा- मोहणिज्ज पि दुविह, दसणे चरणे तहा।
दसणे तिविह वुत्त, चरणे दुविह भवे ॥८॥

सस्कृत छाया- मोहनीयमपि द्विविध दर्शने चरणे तथा।
दर्शने त्रिविधमुक्त चरणे द्विविध भवेत् ॥८॥

अन्वयार्थ-मोहणिज्ज पि-मोहनीय कर्म भी, दुविह-दो प्रकार के, दसणे-दर्शन, मोहनीय, तहा-तथा, चरणे-चारित्र मोहनीय, दसणे-दर्शन मोहनीय, तिविह-तीन प्रकार का, वुत्त-कहा गया है (और), चरणे-चारित्र मोहनीय दुविह-दो प्रकार का, भवे-होता है।

भावानुवाद-मोहनीय कर्म के भी दो भेद हैं-(1) दर्शन मोहनीय और (2) चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय के तीन और चारित्र मोहनीय के दो भेद हैं।

9 दर्शन मोहनीय कर्म के तीन भेद

मूल गाथा- **सम्मत्त चेव मिच्छत्त, सम्मामिच्छत्तमेव य।**
एयाओ तिण्णि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दसणे ॥९॥

सस्कृत छाया- **सम्यक्त्व चैव मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्वमेव च।**
एतास्तिस्त्र प्रकृतय , मोहनीयस्य दर्शने ॥९॥

अन्वयार्थ-सम्मत्त-सम्यक्त्व मोहनीय, चेव-और, मिच्छत्त-मिथ्यात्व मोहनीय, य-और, सम्मामिच्छत्त-सम्यक्त्व-मिथ्यात्व (मिश्र मोहनीय), एयाओ-ये, तिण्णि-तीन, पयडीओ-प्रकृतिया, दसणे-दर्शन, मोहणिज्जस्स-मोहनीय कर्म की, एव-ही है।

भावानुवाद-(1) सम्यक्त्व मोहनीय, (2) मिथ्यात्व मोहनीय और (3) सम्यक्त्व मिथ्यात्व (मिश्र) मोहनीय, ये तीन प्रकृतिया दर्शनमोहनीय कर्म की है।

10 चारित्र मोहनीय कर्म के भेद

मूल गाथा- **चरित्तमोहण कम्म, दुविह तु वियाहिय।**
कसायमोहणिज्जं तु, णोकसाय तहेव य॥१०॥

सम्कृत छाया- **चारित्रमोहन कर्म, द्विविध तद् व्याख्यातम्।**
कषायमोहनीय तु, नोकषाय तथैव च॥१०॥

अन्वयार्थ-चरित्तमोहण-चारित्र मोहनीय, कम्म-कर्म, तु-तो, दुविह-दो प्रकार का, वियाहिय-कहा गया है, तु-यथा, कसाय मोहणिज्ज-कषाय मोहनीय, य-और, णोकसाय-नोकषाय मोहनीय।

भावानुवाद-चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकार का है-(1) कषाय मोहनीय और (2) नो कषाय मोहनीय।

11 कषाय और नोकषाय मोहनीय के प्रभेद

मूल गाथा- **सोलसविहभेएण, कम्म तु कसायज।**
सत्तविह णवविह वा, कम्म च णोकसायज॥११॥

सस्कृत छाया- **षोडशविध भेदेन, कर्म तु कषायजम्।**
सप्तविध नवविध वा, कर्म च नोकषायजम्॥११॥

अन्वयार्थ-कसायज-कषाय मोहनीय, कम्म-कर्म, तु-तो, सोलसविहभेएण-सोलह प्रकार का है, च-और, णोकसायज-नोकषाय मोहनीय, कम्म-कर्म, सत्तविह-सात प्रकार का, वा-अथवा, णव विह-नौ प्रकार का है।

भावानुवाद-कषाय मोहनीय-कषाय से उत्पन्न कर्मों के सोलह भेद हैं और नो कषाय मोहनीय कर्म सात अथवा नौ

प्रकार का है।

12 आयु कर्म की उत्तर प्रकृतिया

मूल गाथा- णेरइयतिरिक्खाउ, मणुस्साउ तहेव य।
देवाउय चउत्थ तु, आउकम्म चउव्विह ॥12॥

सस्कृत छाया- नैरयिकतिर्यगायु, मनुष्यायुस्तथैव च।
देवायुश्चतुर्थं तु,आयु कर्म चतुर्विधम् ॥१२॥

अन्वयार्थ-आउकम्म-आयु कर्म, चउव्विह-चार प्रकार का है (यथा) णेरइय-नरकायु, तिरिक्खाउ-तिर्यंचायु, य-और, मणुस्साउ-मनुष्यायु, तहेव-और, चउत्थ-चौथी, देवाउय-देव आयु है।

भावानुवाद-आयु कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु।

13 नाम कर्म की उत्तर प्रकृतिया

मूल गाथा- णामकम्म तु दुविह, सुहमसुह च आहिय।
सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुहस्स वि ॥13॥

सस्कृत छाया- नामकर्म तु द्विविध शुभमशुभ चाख्यातम्।
शुभस्य तु बहवो भेदा एवमेवाशुभस्यापि ॥१३॥

अन्वयार्थ-णामकम्म-नाम कर्म, सुह-शुभ, च-और, असुह-अशुभ (ऐसे), दुविह-दो प्रकार का, आहिय-कहा गया है, सुहस्स-शुभ नाम कर्म के, बहुभेया-बहुत से भेद है, उ-और, एमेव-इसी प्रकार, असुहस्सवि-अशुभनाम कर्म के भी बहुत से भेद हैं।

भावानुवाद-नाम कर्म दो प्रकार का है-(1) शुभ नाम और (2) अशुभ नाम। शुभ नाम कर्म के अनेक भेद हैं इसी प्रकार अशुभ नाम कर्म के भी।

14 गोत्र कर्म की उत्तर प्रकृतिया

मूल गाथा- गोय कम्म दुविह, उच्च णीय च आहिय।
उच्च अट्ठविह होइ, एव णीय पि आहिय ॥14॥

सस्कृत छाया- गोत्र कर्म द्विविधम्, उच्च नीच चाख्यातम्।
उच्चमष्टविध भवति, एव नीचमप्याख्यातम् ॥१४॥

अन्वयार्थ-गोय कम्म-गोत्रकर्म, उच्च-उच्च, च-और णीय-नीच के भेद से, दुविह-दा प्रकार का, आहिय-कहा गया है, उच्च-उच्च गोत्र के, अट्ठविह-आठ भेद, होइ-हैं, एव-इसी प्रकार, णीयपि-नीच गोत्र भी (आठ प्रकार का), आहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-गोत्र कर्म के दो भेद हैं-(1) उच्च गोत्र व (2) नीच गोत्र। इन दोनों के आठ-आठ प्रकार हैं।

15 अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतिया

मूल गाथा- **दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा।**
पंचविहमंतरायं, समासेण वियाहियं ॥१५॥

सस्कृत छाया- **दाने लाभे च भोगे च, उपभोगे वीर्ये तथा।**
पञ्चविधमन्तरायं, समासेन व्याख्यातम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-अतराय-अन्तराय कर्म, समासेण-सक्षेप से, पचविह-पाच प्रकार का, वियाहिय-कहा गया है, दाणे-दानान्तराय, य-और, लाभे-लाभान्तराय, भोगे-भोगान्तराय, य-और, उवभोगे-उपभोगान्तराय, तहा-और, वीरिए-वीर्यान्तराय।

भावानुवाद-अन्तराय कर्म सक्षेप में पाच प्रकार का कहा गया है-दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय।

16 कर्म विषयक आवश्यक प्रस्ताव

मूल गाथा- **एयाओ मूलपयडीओ, उत्तराओ य आहिया।**
पएसग्गं खेत्तकाले य, भावं चउत्तरं सुण ॥१६॥

सस्कृत छाया- **एता मूलप्रकृतय, उत्तराश्चाख्याता।**
प्रदेशाग्रं क्षेत्रकालौ च, भावं चोत्तरं श्रृणु ॥१६॥

अन्वयार्थ-एयाओ-ये, मूलपयडीओ-मूल प्रकृतिया हैं, य-और, उत्तराओ-उत्तर प्रकृतिया, आहिया-कही गई हैं, उत्तर-(अब) आगे इसके, पएसग्ग-प्रदेशाग्र, खेत्त-क्षेत्र, काले-काल, च-और, भाव-भावस्वरूप को, सुण-(ध्यान पूर्वक) सुनो।

भावानुवाद-ये कर्मो की मूल प्रकृतिया एव उत्तर प्रकृतिया कही गई हैं, अब इनके प्रदेशाग्र-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का वर्णन सुनो।

17 क्रम प्राप्त प्रदेशाग्र का वर्णन

मूल गाथा- **सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसग्गमणंतगं।**
गंठियसत्ताईयं अंतो, सिद्धाण आहियं ॥१७॥

सस्कृत छाया- **सर्वेषां चैव कर्मणां, प्रदेशाग्रमनन्तकम्।**
ग्रन्थिकसत्त्वातीतम् अन्त, सिद्धानामाख्यातम् ॥१७॥

अन्वयार्थ-सव्वेसि-सब ही, कम्माण-कर्मो के, पएसग्ग-प्रदेशाग्र, अणतग-अनन्त हैं ये, (अभव्यात्माओ से), गठियसत्ताइय-(ग्रन्थिक सत्वातीत) अनन्तगुणा अधिक, चेव-और, सिद्धाण-सिद्धों के, अंतो-अनन्तवा भाग, आहिय-कहे गये हैं।

भावानुवाद-एक समय में बन्धने वाले कर्मों के प्रदेशाग्र कर्म पुद्गल रूप द्रव्य अनन्त होते हैं, ये ग्रन्थिकसत्व ग्रन्थि

भेद नहीं करने वाले अभव्य जीवो की अपेक्षा अनन्त गुण अधिक हैं और अनन्त सिद्धो की अपेक्षा अनन्तवे भाग जितने होते हैं।

18 कर्माणुओ के सग्रह का प्रकार

मूल गाथा- सव्वजीवाण कम्म तु, सगहे छद्दिसागय।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्व सव्वेण बद्धग ॥१८॥

सस्कृत छाया- सर्वजीवाना कर्म तु, सग्रहे षड्दिशागतम्।
सर्वेष्वपि प्रदेशेषु, सर्वं सर्वेण बद्धग ॥१८॥

अन्वयार्थ-सव्व-सभी, जीवाण-जीवो के, सव्व-सभी, कम्म-ज्ञानावरणीयादि कर्म, सगहे-सग्रह के योग्य, छद्दिसागय-छहो दिशाओ में, स्थिति हैं और, सव्वेसु वि-सभी, पएसेसु-प्रदेशो मे, सव्वेण-सभी प्रकार से, बद्धगं-बन्धे हुए हैं।

भावानुवाद-सभी जीवो के ज्ञानावरणीयादि सभी कर्म सग्रहण की उपेक्षा से छहो दिशा-पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ऊपर और नीचे में स्थित हैं, वे सभी कर्म पुद्गल बन्ध के समय आत्मा के समस्त प्रदेशो के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं।

19 काल स्थिति सबधित वर्णन

मूल गाथा- उदहीसरिसणामाण, तीसई कोडिकोडीओ।
उक्कोसिया ठिई होइ, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥१९॥

सस्कृत छाया- उदधिसदृड्नाम्ना त्रिशत्कोटिकोटय ।
उत्कृष्टा स्थितिर्भवति अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥१९॥

अन्वयार्थ-(ज्ञानावरणीयादि कर्मों की) उदहीसरिस-समुद्र के समान, णामाणं-नाम वाले, तीसई-तीस, कोडिकोडीओ-कोटा कोटि सागरोपम, उक्कोसिया-उत्कृष्ट, ठिई-स्थिति, होई-होती है, जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तमुहूर्त्त की स्थिति (होती है)।

भावानुवाद-(निम्न चार कर्मों की) उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा कोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

20 प्रथम चार कर्मों की स्थिति

मूल गाथा- आवरणिज्जाण दुण्ह पि, वेयणिज्जे तहेव य।
अतराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया ॥२०॥

सस्कृत छाया- आवरणयोर्द्वयोरपि, वेदनीये तथैव च।
अन्तराये च कर्मणि, स्थितिरेषा व्याख्याता ॥२०॥

अन्वयार्थ-आवरणिज्जाण-आवरण करने वाले, दुण्हपि-दोनो ही कर्मों की, य-और, तहेव-उसी प्रकार, वेयणिज्जे-वेदनीय कर्म की, य-और, अतराए-अन्तराय, कम्मम्मि-कर्म की, एसा-यह (उक्त), ठिई-स्थिति, वियाहिया-वर्णन की गई है।

भावानुवाद-दोनो आवरणीय-ज्ञानावरण और दर्शनावरण तथा वेदनीय और अन्तराय कर्म की यह (उपर्युक्त) स्थिति कही गई है।

21 मोहनीय कर्म की स्थिति

मूल गाथा- उदहीसरिसणामाण, सत्तरि कोडिकोडिओ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥२१॥

सस्कृत छाया- उदधिसदृङ्नाम्ना सप्तति कोटिकोटय ।
मोहनीयस्योत्कृष्टा अन्तर्मुहूर्त जघन्यका ॥२१॥

अन्वयार्थ-उदहीसरिस-समुद्र के समान, णामाण-नाम वाले, सत्तरि-सित्तर, कोडिकोडिओ-कोटि कोटि सागरोपम, मोहणिज्जस्स-मोहनीय कर्म की, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति है, जहण्णिया-जघन्य स्थिति, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की।

भावानुवाद-मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सित्तर कोटा कोटि सागरोपम एव जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

22 आयुकर्म की स्थिति

मूल गाथा- तेतीससागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया।
ठिई उ आउकम्मस्स, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥२२॥

सस्कृत छाया- त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा, उत्कर्षेण व्याख्याता।
स्थितिस्त्वायु कर्मण अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥२२॥

अन्वयार्थ-आउकम्मस्स-आयु कर्म की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, उ-और, उक्कोसेण-उत्कृष्ट स्थिति, तेतीस-तैंतीस, सागरोवमा-सागरोपम, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

23 नाम और गोत्र कर्म की स्थिति

मूल गाथा- उदहीसरिसणामाणं, वीसई कोडिकोडीओ।
णामगोत्ताण उक्कोसा, अट्ठ मुहुत्त जहण्णिया ॥२३॥

सस्कृत छाया- उदधिसदृङ्नाम्ना, विंशति कोटिकोटय ।
नामगोत्रयोरुत्कृष्टा, अष्टमुहूर्ता जघन्यका ॥२३॥

अन्वयार्थ-णामगोत्ताण-नाम कर्म और गोत्र कर्म की, जहण्णिया-जघन्य स्थिति, अट्ठ-आठ, मुहुत्त-मुहूर्त की (और), उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, उदहीसरिस-समुद्र के समान, णामाण-नाम वाले, वीसई-वीस, कोडिकोडीओ-कोडाकोडी (सागरोपम की है)।

भावानुवाद-नाम, गोत्र कर्म की स्थिति बीस कोटा-कोटी सागरोपम की है और जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है।

24 भाव की अपेक्षा से कर्म-परमाणु

मूल गाथा- सिद्धाणऽणतभागो य, अणुभागा हवति उ।
सव्वेसु वि पएसग्ग, सव्वजीवेसुऽइच्छिय ॥२४॥

सस्कृत छाया- सिद्धानामनन्तभागश्च, अनुभागा भवन्ति तु।
सर्वेष्वपि प्रदेशाग्र, सर्वजीवेभ्योऽतिक्रान्तम् ॥२४॥

अन्वयार्थ-अणुभागा-(सभी कर्मों के) अनुभाग, उ-तो, सिद्धाण-सिद्धभगवन्तो के, अणतभागो-अनन्तवा भाग, हवति-हैं, य-और, सव्वेसु-वि-सब कर्मों के, पएसग्ग-प्रदेशाग्र (परमाणु), सव्वजीवेसु-सब जीवो से, अइच्छिय-अनन्तगुणा अधिक हैं।

भावानुवाद-सब कर्म स्कन्धो के अनुभाग (परिणाम अथवा रस फल देने की शक्ति) का प्रमाण सिद्ध गति प्राप्त अनन्त जीवो की सख्या का अनन्तवा भाग है किन्तु यदि सभी कर्मों के परमाणुओं की अपेक्षा विचार करे तो उनका प्रमाण सभी जीवो की सख्या से अधिक होता है।

25 कर्म बद्ध साधक का कतव्य-उपसहार

मूल गाथा- तम्हा एएसि कम्माण, अणुभागा वियाणिया।
एएसि सवरे चेव, खवणे य जए बुहो ॥२५॥

त्ति बेमि।

इति कम्मप्पयडी नाम तेत्तीस अज्झयण समत्त ॥३३॥

सस्कृत छाया- तस्मादेतेषा कर्मणाम् अनुभागान् विज्ञाय।
एतेषा सवरे चैव, क्षपणे च यतेत बुध ॥२५॥

इति ब्रवीमि।

इति कर्मप्रकृति समाप्ता ॥३३॥

अन्वयार्थ-तम्हा-इसलिए, एएसिं-इन, कम्माण-कर्मों के, अणुभागा-अनुभाग को, वियाणिया-जानकर, बुहो-बुद्ध (पण्डित), एएसिं-इनका, सवरे-सवर करने में, य-और, चेव-उसी प्रकार, खवणे-(कर्मों के) क्षय करने मे, जए-यत्न करे।

त्ति-ऐसा, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-(इस प्रकार) इसलिए इन कर्मों के अनुभाग बन्ध आदि को जान कर बुद्धिमान् मुमुक्षु साधक इनका सवर और क्षय करने का प्रयास करे।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार कर्म प्रकृति नामक तेतीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

लेश्या - चतुस्त्रिंशत् अध्ययन

उत्थानिका

लेश्या शब्द जैन तत्त्व ज्ञान का पारिभाषिक शब्द है। सामान्य तौर पर लेश्या शब्द कान्ति, सौन्दर्य, मनोवृत्ति विचार आदि अर्थों म प्रयुक्त होता है। किन्तु जैन तत्त्व ज्ञान मे लेश्या शब्द किसी विशेष अर्थ मे प्रयुक्त होता है और वह अर्थ है-जीवात्मा के अध्यवसाय, परिणाम अथवा भाव। सामान्य भाषा मे जिसे हम विचार या मनोवृत्ति कहते हैं-वह भी लेश्या शब्द का अभिप्रेत है।

जैन तत्त्वज्ञान मे लेश्या का विश्लेषण कितना गहन हुआ है, इस बात का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इस विषय के प्रतिपादन के लिए विभिन्न आगमों में स्वतत्र अध्याय दिए गए हैं। जैसे उत्तराध्ययन सूत्र का प्रस्तुत अध्ययन, प्रज्ञापना सूत्र का लेश्या पद आदि, इतना होने पर भी एक बात विचारणीय है कि 'लेश्या' की एक कोई सर्वसम्मत परिभाषा निश्चित नहीं हो पायी। जैनागमो के टीका ग्रन्थो एव कर्म सैद्धान्तिक अवधारणाओ के परिशीलन से 'लेश्या' की चार परिभाषाए फलित होती है-

1 लिश्यते-श्लिश्यते कर्मणा सह आत्मा अनयेति लेश्या-जिनके द्वारा आत्मा कर्मों के साथ सश्लिष्ट होती है, वह भाव विशेष 'लेश्या' है।

2 कषायानुरंजित योग परिणति लेश्या-मन, वचन और काय योग की कषायानुरजित परिणति लेश्या है अर्थात् कषाय युक्त योग प्रवृत्ति को लेश्या कहा गया है।

3 कषाय से अनुरजित आत्म परिणाम-मनोभाव लेश्या है।

4 कर्म निष्पन्द-कर्म वर्गणा से निष्पन्न कर्म द्रव्या की विधायिका शक्ति।

उपरोक्त परिभाषाओ के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि जीव के अध्यवसाय विशेषो या मन के भाव विशेषो को लेश्या शब्द से पुकारा गया है अथवा जीव का कर्म ससर्ग से उत्पन्न हुआ एक विकार विशेष लेश्या है।

जैन दर्शन में द्रव्य और भाव का विशद विवेचन उपलब्ध होता है। वहा प्राय प्रत्येक तत्त्व को द्रव्य और भाव रूप से अलग-अलग व्याख्यायित किया गया है। उसी आधार पर लेश्या के भी द्रव्य और भाव दो रूप बताए गए हैं। उसी दृष्टि से लेश्या की (परिभाषा करते हुए कहा गया है)-

कृष्णादि द्रव्य साचिव्यात् परिणामोऽयमात्मन ।
स्फटिकस्येव तत्राऽय लेश्याशब्द प्रयुज्यते॥

कृष्ण, नील आदि द्रव्यो के सामीप्य या सान्निध्य से जो आत्म-परिणाम-विचार उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के लिए

लेश्या शब्द का प्रयोग होता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कृष्णादि द्रव्यो का एव आत्म परिणामो का अन्योन्याश्रय सबध है। योग वर्गणा-मन-वचन-काया की जैसी-जैसी प्रवृत्ति होती है, वैसे-वैसे आत्मा के अध्यवसाय होते हैं और जैसे-जैसे परिणाम-आत्म परिणाम होते हैं वैसी-वैसी योग की प्रवृत्ति होती है अर्थात् जैसे-जैसे कृष्णादि लेश्याओ के द्रव्य होते हैं, वैसे ही आत्म परिणाम होते हैं जैसे आत्म परिणाम होते हैं, शरीर के वर्णादि प्रभाव भी वैसे ही बनते हैं। तात्पर्य हुआ कि बाह्य द्रव्य लेश्या के पुद्‌गल अतरग भाव लेश्या को प्रभावित करते हैं और अतरग लेश्या के अनुसार द्रव्य लेश्या बनती है। इन्हीं द्रव्य और भाव लेश्या के द्वारा आत्मा कर्म श्रृखला मे बधी रहती है। लेश्या के अनुसार कर्म बन्ध होने से इसे कर्म निष्पन्द या कर्म वर्गणा निष्पन्न विधायिका भी कहा गया है।

योग परिणितियो के अथवा आत्म परिणामो के असख्य स्तर होते हैं। अत लेश्याओ के भी अगणित प्रभेद-प्रकार हो सकते हैं, तथापि अध्यवसायो के अशुभ और शुभ दो मुख्य भेद होते हैं और एक-एक के पुन अशुभ-अशुभतर एव अशुभतम तथा शुभ-शुभतर एव शुभतम या तीन-तीन भेद होते हैं अत लेश्याओ को भी अशुभ और शुभ लेश्या एव कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, और शुक्ल के रूप मे छह भेदो मे वर्गीकृत किया गया है।

प्रथम की तीन-कृष्ण, नील और कापोत अशुभ लेश्याए बताई गई हैं तथा अन्तिम तीन-तेजो, पद्म और शुक्ल शुभ लेश्या मानी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में छह लेश्याओ के लक्षण बताए गए हैं जो मन के शुभा-शुभ विचारो को आधार बना कर कहे गए हैं। साथ ही लेश्याओ की सूक्ष्म श्रेणिया उनकी चारो गतियो की अपेक्षा से स्थिति, उनके वर्णादि की अपेक्षा शुभता-अशुभता का वर्णन करते हुए शुभ लेश्याओ का अशुभ मे और अशुभ का शुभ मे परिणमन भी बताया गया है।

इस प्रकार लेश्याओ का विभिन्न पहलुओ से वर्णन एव अशुभ लेश्याओ की हेयता का दिग्दर्शन करवाया गया है। निष्कर्ष मे व्यक्ति अशुभ से बच कर शुभ, शुभतर, शुभतम में प्रवेश करे और अन्त मे लेश्यातीत बन जावे, यह प्रस्तुत अध्ययन का शिक्षा सकेत है।

□□□

लेश्या - चतुस्त्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश

असद्विचार भविष्य को दु खद बना देते है।
हमारे विचार हमारे भविष्य का निर्धारण करते हैं,
अत सदैव असद् विचारो से बचो।

क्रूर विचार स्वयं के हिताहित का भान भुला देते है।
विचारो की क्रूरता दूसरो को कम स्वय को अधिक हानि
पहुचाती है।

तन की प्रशस्त कार्य मे व्यस्तता मन को प्रशस्त बनाये रखती है।
जीवन को सदैव सत्कर्म में नियोजित रखो, अशुभ विचार आने ही न पाए।

अच्छे विचार रखो, भविष्य आनन्दमय होगा।
मन की वार्तमानिक प्रशस्तता भविष्य को सुखद-रमणीय
बना देती है।

मायायुक्त-वक्र विचार पशुयोनि का मेहमान बना देते है।
विचारो की वक्रता सम्पूर्ण जीवनशैली को अस्त-व्यस्त-वक्र बना देती है।

हिंसक विचार ही नरक मे ले जाने को पर्याप्त है।
भावात्मक हिंसावृत्ति नरक मे ही नहीं ले जाती, वर्तमान
को भी नरकमय बना देती है।

अन्य को नष्ट करने के विचार स्वय को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देते है।
ऐसा कार्य तो दूर, विचार भी मत आने दो जो किसी की जिन्दगी
के साथ खिलवाड करे।

शुभ ही चाहते हो तो शुभ विचार ही करो।
हमारे अपने विचार ही जीवन को शुभ या अशुभ दिशा देते हैं।

प्रशस्त एव सशक्त विचार सफलता प्रदान करते है।
जीवन में सफलता-असफलता का एक आधार हमारे विचार भी हैं।

सदैव प्रशस्त विचारो को गति दो मुक्ति निकट आ जायेगी।
निरन्तर प्रशस्त से प्रशस्ततम विचार मे गति करने वाली चेतना
ही मोक्ष की ओर गतिशील होती है।

अपनी भावनाओ के स्वामी बने रहो, उन्हे अपने पर-
आत्मा पर हावी न होने दो।
अपने भावो-विचारो पर, हमारा अपना अधिकार है,
फिर हम उनका उच्च दिशा मे उपयोग क्यों नहीं करे?

❏❏❏

लेश्या - चतुस्त्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश

असद्विचार भविष्य को दु खद बना देते है।
हमारे विचार हमारे भविष्य का निर्धारण करते हैं,
अत सदैव असद् विचारों से बचो।

क्रूर विचार स्वय के हिताहित का भान भुला देते है।
विचारो की क्रूरता दूसरो को कम स्वय को अधिक हानि
पहुचाती है।

तन की प्रशस्त कार्य मे व्यस्तता मन को प्रशस्त बनाये रखती है।
जीवन को सदैव सत्कर्म मे नियोजित रखो, अशुभ विचार आने ही न पाए।

अच्छे विचार रखो, भविष्य आनन्दमय होगा।
मन की वार्तमानिक प्रशस्तता भविष्य को सुखद-रमणीय
बना देती है।

मायायुक्त-वक्र विचार पशुयोनि का मेहमान बना देते हैं।
विचारो की वक्रता सम्पूर्ण जीवनशैली को अस्त-व्यस्त-वक्र बना देती है।

हिंसक विचार ही नरक मे ले जाने को पर्याप्त है।
भावात्मक हिंसावृत्ति नरक मे ही नहीं ले जाती, वर्तमान
को भी नरकमय बना देती है।

अन्य को नष्ट करने के विचार स्वयं को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देते है।
ऐसा कार्य तो दूर, विचार भी मत आने दो जो किसी की जिन्दगी
के साथ खिलवाड करे।

शुभ ही चाहते हो तो शुभ विचार ही करो।
हमारे अपने विचार ही जीवन को शुभ या अशुभ दिशा देते हैं।

प्रशस्त एव सशक्त विचार सफलता प्रदान करते है।
जीवन में सफलता-असफलता का एक आधार हमारे विचार भी हैं।

सदैव प्रशस्त विचारो को गति दो मुक्ति निकट आ जायेगी।
निरन्तर प्रशस्त से प्रशस्ततम विचार मे गति करने वाली चेतना
ही मोक्ष की ओर गतिशील होती है।

अपनी भावनाओ के स्वामी बने रहो, उन्हे अपने पर-
आत्मा पर हावी न होने दो।
अपने भावो-विचारो पर, हमारा अपना अधिकार है,
फिर हम उनका उच्च दिशा मे उपयोग क्यो नहीं करे?

□□□

अह लेसज्झयणं णाम चोतीसइमं अज्झयणं

अथ लेश्याध्ययनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमध्ययनम्

लेश्याध्ययन

1 अध्ययन का प्रवेश एव विपयानुक्रमण

मूल गाथा- लेसज्झयण पवक्खामि, आणुपुव्विं जहक्कम।
छण्ह पि कम्मलेसाण, अणुभावे सुणेह मे ॥1॥

सस्कृत छाया- लेश्याध्ययन प्रवक्ष्यामि, आनुपूर्व्या यथाक्रमम्।
षण्णामपि कर्मलेश्यानाम्, अनुभावान् शृणुत मम ॥१॥

अन्वयार्थ-(मैं) आणुपुव्वि-अनुक्रम से, जहक्कम-यथाक्रम से, लेसज्झयण-लेश्याध्ययन का, पवक्खामि-वर्णन करूगा (इसलिए), छण्हपि-छहो, कम्मलेसाण-कर्म लेश्याआ के, अणुभावे-अनुभाव को, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-(श्री सुधर्मा गणधर अपने शिष्य जम्बू को सबोधित करते हुए कह रहे हैं)-अब मैं आनुपूर्वी के क्रमानुसार लेश्याध्ययन का वर्णन करूगा। तुम मुझसे छह प्रकार की कर्म लेश्या के अनुभावो-रस विशेपो का वर्णन सुनो।

2 वर्णनीय विपयो के निरूपण की सूचना

मूल गाथा- णामाइ वण्णरसगध, फासपरिणामलक्खण।
ठाण ठिइ गइं चाउ, लेसाण तु सुणेह मे ॥2॥

सस्कृत छाया- नामानि वर्णरसगन्ध, स्पर्शपरिणामलक्षणानि।
स्थान स्थितिं गतिं चायु, लेश्याना तु शृणुत मे ॥२॥

अन्वयार्थ-लेसाण-लेश्याओं के, णामाइ-नाम, वण्ण-वर्ण, रस-रस, गंध-गन्ध, फास-स्पर्श, तु-और, परिणाम-परिणाम, लक्खण-लक्षण, ठाण-स्थान, ठिई-स्थिति, गई-गति, [illegible] आउ-आयु, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-लेश्याओ के निम्न 11 द्वा[illegible]-नाम, वर्ण, रस, गन्ध, [illegible], लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयु के वर्णन को मेरे द्वारा सु[illegible]

3 लेश्याओ के नाम का निर्देश

मूल गाथा- किण्हा णीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य।
सुक्कलेसा य छट्ठा उ, णामाइ तु जहक्कम ॥3॥

सस्कृत छाया- कृष्णा नीला च कापोती च, तेजो पद्मा तथैव च।
शुक्ललेश्या च षष्ठी च, नामानि तु यथाक्रमम् ॥३॥

अन्वयार्थ-छहो लेश्याओ के णामाइ-नाम, जहक्कम-यथाक्रम, इस प्रकार हैं-, किण्हा-कृष्णलेश्या, तहेव य-और, णीला-नीललेश्या, य-और, काऊ-कापोतलेश्या, उ-और, तेऊ-तेजोलेश्या, पम्हा-पद्मलेश्या, य-और, छट्ठा-छठी, सुक्कलेस्सा-शुक्ल लेश्या है।

भावानुवाद-नाम द्वार-कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या, ये क्रमश उनके नाम हैं।

4 कृष्ण लेश्या के वर्ण-रूप का वर्णन

मूल गाथा- जीमूयणिद्धसकासा, गवलऽरिट्ठगसण्णिभा।
खजणजणणयणणिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ ॥4॥

सस्कृत छाया- जीमूतस्निग्धसकाशा, गवलारिष्टकसन्निभा।
खजाजननयननिभा, कृष्णलेश्या तु वर्णत ॥४॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, किण्हलेस्सा-कृष्ण लेश्या, णिद्ध-जल युक्त, जीमूय-मेघ के, सकासा-समान, गवल रिट्ठगसण्णिभा-महषिश्रृग (रिष्ट काक या अरीठा) के सदृश, खजणाजण-शकट के अजन (काजल) और णयण-नेत्र की कीकी के, णिभा-समान (काली) होती है।

भावानुवाद-वर्ण द्वार-वर्ण की अपेक्षा से कृष्ण लेश्या जल से भरे हुए बादल के रग के समान, भैंस के सींग के रग के समान, गाडी के ओघण, अरीठा काजल और आख की पुतली के समान काली मानी गइ है।

5 नील लेश्या के वर्ण-रूप का वर्णन

मूल गाथा- णीलाऽसोगसकासा, चासपिच्छसमप्पभा।
वेरुलियणिद्धसकासा, णीललेसा उ वण्णओ ॥5॥

सस्कृत छाया- नीलाशोकसकाशा, चापपिच्छसमप्रभा।
स्निग्धवैडूर्यसकाशा, नीललेश्या तु वर्णत ॥५॥

अन्वयार्थ-णीललेसा-नीललेश्या का, वण्णओ-वर्ण, णीलासोग-नीले अशोक वृक्ष के, सकासा-समान, चासपिच्छ समप्पभा-चाप पक्षी के समान प्रभा वाली, उ-और, वेरुलियणिद्ध-वैडूर्य मणि के, सकासा-समान है।

भावानुवाद-नील लेश्या का वर्ण हरे अशोक वृक्ष, नील चास पक्षी की पख तथा स्निग्ध नील मणि जैसा माना गया है।

6 कापोत लेश्या के वण-रूप का वर्णन

मूल गाथा- अयसीपुप्फसकासा, कोइलच्छदसण्णिभा।
पारेवयगीवणिभा, काऊलेसा उ वण्णओ॥६॥

सस्कृत छाया- अतसीपुष्पसकाशा, कोकिलच्छदसन्निभा।
पारापतग्रीवानिभा, कापोतलेश्या तु वर्णत ॥६॥

अन्वयार्थ-अयसी पुप्फ-अलसी पुष्प के, सकासा-समान, कोइलच्छद्-कोकिल के पखो के, दसण्णिभा-समान, पारेवय-पारावत (कबूतर) की, गीव-ग्रीवा के, णिभा-सदृश, काउलेसा-कापोत लेश्या का, वण्णओ-*वर्ण होता है।*

भावानुवाद-कापोत लेश्या का वर्ण अलसी के फूल, कोयल के पख एव कबूतर की ग्रीवा के वर्ण के समान होता है।

7 तेजो लेश्या के वर्ण-रूप का वर्णन

मूल गाथा- हिगलुयधाउसकासा, तरुणाइच्चसण्णिभा।
सुयतुण्डपईवणिभा, तेओलेसा उ वण्णओ॥७॥

सस्कृत छाया- हिंगुलधातुसकाशा, तरुणादित्यसन्निभा।
शुकतुण्डप्रदीपनिभा, तेजोलेश्या तु वर्णत ॥७॥

अन्वयार्थ-हिंगुल-हिंगुल, धाउ-धातु के, सकासा-सृदश, तरुणाइच्च-तरुण सूर्य के, सण्णिभा-समान, सुयतुड शुक की नासिका (और), पईव-प्रदीप (शिखा) के, णिभा-समान, तेओलेसा-तेजोलेश्या का, वण्णओ-वर्ण *होता है।*

भावानुवाद-तेजो लेश्या का वर्ण हिगुल धातु-गेरु, उगते हुए, तोते की चाच एव प्रदीप की शिखा जैसा लाल होता है।

8 पद्म लेश्या के वर्ण-रूप का वर्णन

मूल गाथा- हरियालभेयसकासा, हलिद्दाभेयसमप्पभा।
सणासणकुसुमणिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ॥८॥

सस्कृत छाया- हरितालभेदसकाशा, हरिद्राभेदसमप्रभा।
सणासनकुसुमनिभा, पद्मलेश्या तु वर्णत ॥८॥

अन्वयार्थ-हरियालभेय-हरिताल खड के, सकासा-'सदृश', हलिद्दा भेय-हरिद्रा-खड के, समप्पभा-समान प्रभा वाली, सण-सण के पुष्प, उ-और, असण कुसुम-असन पुष्प के, णिभा-तुल्य, पम्हलसा-पद्म लेश्या का, वण्णओ-वर्ण होता है।

भावानुवाद-पद्म लेश्या का वर्ण हरिताल-हल्दी के टुकडे जैसा, सन जैसा एव असन के फूल जैसा पीला होता है।

9 शुक्ल लेश्या के वर्ण-रूप का वर्णन

मूल गाथा- संखंककुंदसंकासा, खीरपूरसमप्पभा।
रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥९॥

संस्कृत छाया- शख्खाक कुन्दसकाशा, क्षीरपूरसमप्रभा।
रजतहारसकाशा, शुक्ललेश्या तु वर्णत ॥९॥

अन्वयार्थ-संख-शख, अंक-मणिविशेष, कुंद-कुन्द (पुष्प) के, संकासा-समान, खीरपूर-दुग्ध की धारा के, समप्पभा-समान प्रभा वाली, उ-और, रययहार-रजत (चादी) के हार के, संकासा-समान, सुक्कलेसा-शुक्ल लेश्या का, वण्णओ-वर्ण होता है।

भावानुवाद-शुक्ल लेश्या का वर्ण शख, अकरत्न, मचकुन्द के पुष्प, दूध की धारा तथा चादी के हार के समान श्वेत होता है।

10 कृष्ण लेश्या के रस द्वार का निरूपण

मूल गाथा- जह कडुयतुबगरसो, णिंबरसो कडुयरोहिणिरसो वा।
एत्तो वि अणतगुणो, रसो उ किण्हाए णायव्वो ॥१०॥

संस्कृत छाया- यथा कटुकतुम्बकरस , निम्बरस कटुकरोहिणीरसो वा।
इतोऽप्यनन्तगुण , रसश्च कृष्णाया ज्ञातव्य ॥१०॥

अन्वयार्थ-जह-जैसा, कडुय-कडुवे, तुंबगरसो-तुम्बे का रस, उ-और, णिंबरसो-नीम का रस, वा-अथवा, कडुय-कटुक, रोहिणि-रोहिणी का, रसो-रस होता है, एत्तोवि-उससे भी, अणतगुणो-अनन्तगुण कडुआ, किण्हाए-कृशणलेश्या का, रसो-रस, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-कृष्ण लेश्या का रस कडुवा तुम्बा, कडुए नीम अथवा कडवी रोहिणी के रस से भी अनन्त गुणा अधिक कडवा समझना चाहिए।

11 नील लेश्या के रस द्वार का निरूपण

मूल गाथा- जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा।
एत्तो वि अणतगुणो, रसो उ णीलाए णायव्वो ॥११॥

संस्कृत छाया- यथा त्रिकटुकस्य च रस , तीक्ष्णो यथा हस्तिपिप्पल्या वा।
इतोऽप्यनन्तगुण , रसस्तु नीलाया ज्ञातव्य ॥११॥

अन्वयार्थ-जह-जैसा, तिगडुयस्स-त्रिकटुक का, य-और, जह-जिस प्रकार, हत्थि पिप्पलीए-हस्ति पीपल का रसो-रस, तिक्खो-तीक्ष्ण होता है, एत्तोवि-इससे भी, अणतगुणो-अनन्त गुण तीक्ष्ण, णीलाए-नील लेश्या का,

रसो-रस, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-नील लेश्या का रस सोंठ, मिर्च, पीपर-त्रिकुट एवं गज पीपल के रस से भी अनन्त गुणा अधिक तीखा होता है।

12 कापोत लेश्या के रस द्वार का निरूपण

मूल गाथा- जह तरुणअबगरसो, तुवरकविट्ठस्स वावि जारिसओ।
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ काऊए णायव्वो॥१२॥

संस्कृत छाया- यथा तरुणाम्रकरसः, तुवरकपित्थस्य वापि यादृशः।
इतोऽप्यनन्तगुणः, रसस्तु कापोतलेश्याया ज्ञातव्यः॥१२॥

अन्वयार्थ-*जह-जैसा, तरुण-कच्चे (जवान), अबग-आम का, रसो-रस, वावि-अथवा, तुवर-तुअर, उ-और* कविट्ठस्स-कविठ के फल का, जारिसओ-जैसा रस होता है, एत्तोवि-उससे भी, अणतगुणो-अनन्तगुणा खट्टा, काऊए-कापोत लेश्या का, रसो-रस, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-कापोतलेश्या का रस कच्चे आम, कच्चे कपित्थ-कोठा अथवा तूअर के रस से भी अनन्त गुण अधिक कसैला समझना चाहिए।

13 तेजो लेश्या के रस द्वार का निरूपण

मूल गाथा- जह परिणयबगरसो, पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ।
एत्तो वि अणतगुणो, रसो उ तेओए णायव्वो॥१३॥

संस्कृत छाया- यथा परिणताम्रकरसः, पक्वकपित्थस्य वापि यादृशः।
इतोऽप्यनन्तगुणः, रसस्तु तेजोलेश्याया ज्ञातव्यः॥१३॥

अन्वयार्थ-जह-जैसा, परिणयबगसो-परिणत आम के फल, वावि-अथवा, पक्क कविट्ठस्स-पके हुए कविठ के फल का, जारिसओ-जैसा रस होता है, एत्तोवि-उससे भी, अणतगुणो-अनन्तगुणा अधिक, रसो-रस, तेओए-तेजोलेश्या का, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-तेजो लेश्या का रस पके आम और पके हुए कपित्थ के जैसा खट-मीठा रस होता है उससे अनन्त गुणा अधिक खट्टा मीठा होता है।

14 पद्म लेश्या के रस द्वार का निरूपण

मूल गाथा- वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ।
महुमेरगस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएण॥१४॥

संस्कृत छाया- वरवारुण्या इव रसः, विविधानामासवानां यादृशः।
मधुमेरकस्येव रसः, इतः पद्माया परकेण (भवति)॥१४॥

अन्वयार्थ-वर-प्रधान, वारुणीए-मदिरा का, व-अथवा, विविहाण-अनेक प्रकार के, आसवाण-आसवो का, महुमेरगस्स-मेरक का रस, जारिसओ-जैसा, रसो-रस होता है, एत्तो-उससे भी, पराएण-बढ कर, पम्हाए-पद्मलेश्या का, रसो-रस होता है।

भावानुवाद-उत्तम वारुणी-सुरा, पुष्पो से बने विविध, आसव, मधु, मेरक का रस जितना मधुर होता है उससे अनन्त गुणा अधिक पद्म लेश्या का रस होता है।

15 शुक्ल लेश्या के रस द्वार निरूपण

मूल गाथा- खज्जूरमुद्दियरसो, खीररसो खडसक्कररसो वा।
एत्तो वि अणतगुणो, रसो उ सुक्काए णायव्वो ॥१५॥

सस्कृत छाया- खर्जूरमृद्वीकयोरस , क्षीररस खण्डशर्करारसो वा।
इतोऽप्यनन्तगुण , रसस्तु शुक्ललेश्याया ज्ञातव्य ॥१५॥

अन्वयार्थ-खज्जूर-खजूर (और) मुद्दिय-मृद्विका (द्राक्षा) का, रसो-रस, वा-अथवा, खीररसो-क्षीर का रस, खड-खाण्ड, उ-और, सक्कर-शर्करा का, रसो-रस (जैसा होता है), एत्तोवि-उससे भी, अणतगुणो-अनन्त गुणाधिक, रसो-मधुर रस, सुक्काए-शुक्ल लेश्या का, णायव्वो-जानना चाहिए।

भावानुवाद-शुक्ल लेश्या का रस खजूर, द्राक्ष, दुग्ध, शर्करा और गुड आदि के रस से भी अनन्त गुण अधिक मीठा समझना चाहिए।

16 अप्रशस्त लेश्याओ के गन्ध द्वार का वर्णन

मूल गाथा- जह गोमडस्स गधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स।
एत्तो वि अणतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाण ॥१६॥

सस्कृत छाया- यथा गोमृतकस्य गन्ध , शुनो मृतकस्य व यथाऽहेर्मृतकस्य।
इतोऽप्यनन्तगुणो, लेश्यानामप्रशस्तानाम् ॥१६॥

अन्वयार्थ-जह-जिस प्रकार, गोमडस्स-मृतक गो की, व-अथवा, जहा-जैसी, सुणगमडस्स-मृतक श्वान की (अथवा), अहिमडस्स-मृत सर्प की, गधो-गध होती है, एत्तोवि-इससे भी, अणतगुणो-अनन्त गुणा अधिक गन्ध, अप्पसत्थाण-अप्रशस्त, लेसाण-लेश्याओ की होती है।

भावानुवाद-जैसे मरे हुए गाय, कुत्ते एव सर्प के शरीर की दुर्गन्ध होती है, उससे अनन्त गुणा अधिक कृष्ण नील और कापोत इन तीनों अशुभ लेश्याओं की दुर्गन्ध होती है।

17 प्रशस्त लेश्याओ के गन्ध द्वार का वर्णन

मूल गाथा- जह सुरहिकुसुमगधो, गधवासाण पिस्समाणाण।
एत्तो वि अणतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्ह पि ॥१७॥

सस्कृत छाया- यथा सुरभिकुसुमगन्ध , गन्धवासाना पिष्यमाणानाम्।
इतोऽप्यनन्तगुण , प्रशस्तलेश्याना तिसृणामपि ॥१७॥

अन्वयार्थ-जह-जिस प्रकार जैसी, सुरहि-सुगन्धित, कुसुम-फूलों की (अथवा), पिस्समाणाण-पीसे जाते हुए, गधवासाण-चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों की, गधो-सुगन्ध होती है, एत्तोवि-उससे भी, अणत गुणो-अनन्त गुणाधिक सुगन्ध, तिण्हपि-तीनो, पसत्थ-प्रशस्त, लेसाण-लेश्याओ की होती है।

भावानुवाद-जैसे कवडा आदि सुगन्धित पुष्पो एव घिसे जाते हुए चन्दनादि पदार्थों की सुगन्ध होती है उससे अनन्त गुण अधिक शेष तीन शुभ लेश्याओ की गन्ध होती है।

18 तीन अप्रशस्त लेश्याओ के स्पर्श द्वार का वर्णन

मूल गाथा- जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए व सागपत्ताण।
एत्तो वि अणतगुणो, लेसाण अप्पसत्थाण॥१८॥

सस्कृत छाया- यथा क्रकचस्य स्पर्श , गोजिह्वायाश्च शाकपत्राणाम्।
इतोऽप्यनन्तगुण , लेश्यानामप्रशस्तानाम्॥१८॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, करगयस्स-कर पत्र का, वा-अथवा, गोजिब्भाए-गोजिह्वा का, य-और, सागपत्ताण-शाक पात्रा का, फासो-स्पर्श होता है, एत्तोवि-इससे भी अणतगुणो-अनन्त गुणाधिक स्पर्श, अप्पसत्थाण-अप्रशस्त, लेसाण-लेश्याओ का होता है।

भावानुवाद-स्पर्श द्वार-कृष्ण, नील और कापोत इन तीना अप्रशस्त लेश्याआ का स्पर्श आरी (करवत), गाय-बैल की जीभ, शाक वृक्ष के पत्तो की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक कर्कश होता है।

19 शेष प्रशस्त लेश्याओ के स्पश द्वार का वर्णन

मूल गाथा- जह बूरस्स व फासो, णवणीयस्स व सिरीसकुसुमाण।
एत्तो वि अणतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हपि॥१९॥

सस्कृत छाया- यथा बूरस्येव स्पर्श , नवनीतस्येव शिरीषकुसुमानाम्।
इतोऽप्यनन्तगुण , प्रशस्तलेश्याना तिसृणामपि॥१९॥

अन्वयार्थ-जह-जैसे, बूरस्स-बूरनामक वनस्पति का, णवणीयस्स-नवनीत का, व-अथवा, सिरीस-शिरीष के कुसुमाण-फूला का, फासो-स्पर्श होता है, एत्तोवि-उससे भी, अणतगुणो-अनन्त गुणा अधिक स्पश, तिण्हपि-इन तीनो, पसत्थ-प्रशस्त, लेसाण-लेश्याओं का होता है।

भावानुवाद-तेजो, पद्म और शुक्ल इन तीन प्रशस्त लेश्याओ का स्पश मक्खन, बेर (वनस्पति विशेष) एव सरसा के फूल के स्पर्श की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक कोमल-मृदु होता है।

20 लेश्याओ क परिणाम द्वार का वर्णन

मूल गाथा- तिविहो व णवविहो वा, सत्तावीसइविहेक्कसीओ वा।
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणामो॥२०॥

संस्कृत छाया- त्रिविधो वा नवविधो वा, सप्तविंशतिविध एकाशीतिविधो।
त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशतविधो वा, लेश्यानां भवति परिणाम ॥२०॥

अन्वयार्थ-तिविहो-त्रिविध, व-अथवा, णवविहो-नवविध, वा-अथवा, सत्तावीसइविह-सत्ताईस विध, वा-अथवा, इक्कसीओ-इक्यासी प्रकार, वा-अथवा, दुसओ-दो सौ, तेयालो-तेतालीस प्रकार का, लेसाण-लश्याओ का, परिणामो-परिणाम, होइ-होता है।

भावानुवाद-इन छहो लेश्याओ के तीन, नौ, सत्ताईस, इक्यासी और दो सौ तेतालीस तथा जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट आदि परिणाम होते हैं।

21 लक्षण द्वार का वर्णन

मूल गाथा- पचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसु अविरओ य।
तिव्वारभपरिणओ, खुद्दो साहसिओ णरो॥२१॥

संस्कृत छाया- पञ्चास्रवप्रवृत्त , तिसृभिरगुप्त षट्स्वविरतश्च।
तीव्रारम्भपरिणत , क्षुद्र साहसिको नर ॥२१॥

अन्वयार्थ-पचासव-पाच आस्रवो मे, प्पवत्तो-प्रवृत्ति करने वाला, तीहिं-तीन गुप्तियो से, अगुत्तो-अगुप्त, छसु-छह काया मे, अविरओ-अविरत, तिव्वारभ-तीव्र आरम्भ मे, परिणओ-परिणत, य-और, खुद्दो-क्षुद्र बुद्धि वाला, साहसिओ-साहसिक मनुष्य।

भावानुवाद-जो मनुष्य पाचो आश्रवो-मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग का निरन्तर सेवन करने वाला, तीन गुप्तियो से अगुप्त, छह काय की हिसा मे प्रवृत्त, तीव्र आरम्भ-हिंसादि में लीन क्षुद्र, पाप कार्यों में पराक्रमी अर्थात् अविवेकी है।

22 कृष्ण लेश्या के लक्षणो का वर्णन

मूल गाथा- णिद्धसपरिणामो णिस्ससो अजिइदिओ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे॥२२॥

संस्कृत छाया- निध्वसपरिणाम , नृशसोऽजितेन्द्रिय ।
एतद्योगसमायुक्त , कृष्णलेश्या तु परिणमेत्॥२२॥

अन्वयार्थ-णिद्धस-णिध्वस (निर्दय), परिणामो-परिणाम वाला, णिस्ससो-नृशस (क्रूर) अजिइदिओ-अजितेन्द्रिय, एय जोग समाउत्तो-इन उपरोक्त परिणामो से, तु-तो, किण्हलेस-कृष्ण लेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-निर्दयी, नृशस, क्रूर और अजितेन्द्रिय इन सभी योगों से युक्त है, वह कृष्ण लेश्या में परिणत होता है।

23 नील लेश्या के लक्षण का वर्णन

मूल गाथा- इस्सा अमरिस अतवो, अविज्जमाया अहीरिया।
गेही पओसे य सढे, पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए य॥२३॥

सस्कृत छाया- ईर्ष्याऽमर्षातप अविद्या मायाऽह्रीकता।
गृद्धि प्रद्वेषश्च शठ, प्रमत्तो रसलोलुप ॥२३॥

अन्वयार्थ-इस्सा-ईर्ष्यालु, अमरिस-अमर्ष (कदाग्रही), अतवो-तपश्चर्या से रहित, अविज्ज-विद्या से रहित, माया-छलकपट करने वाला, अहीरिया-लज्जा से रहित, गेही-गृद्धि युक्त, य-और, पओसे-प्रद्वेष करने वाला, सढे-शठ (असत्यभाषी), पमत्त-प्रमादी, रसलोलुए-रस लोलुपी, य-और, सायगवेसए-सुख की गवेषणा करने वाला।

भावानुवाद-जो ईर्ष्यालु है, कदाग्रही है, तप के प्रति अरुचिवान है, मायावी है, लज्जाहीन है, विषयासक्त है, द्वेषी है, लम्पट है, रस लोलुपी है, प्रमादी है, धूर्त-शठ है, साता-सुख का गवेषक है।

24 नील लेश्या के परिणामो वाला

मूल गाथा- आरभाओ अविरओ, खुद्दो साहसिओ णरो।
एयजोगसमाउत्तो, णीललेस तु परिणमे ॥२४॥

सस्कृत छाया- आरम्भादविरत, क्षुद्र साहसिको नर।
एतद्योगसमायुक्त, नीललेश्या तु परिणमेत् ॥२४॥

अन्वयार्थ-आरभाओ-आरम्भ से, अविरओ-अनिवृत्त, खुद्दो-क्षुद्र, साहसिओ-साहसी, णरो-मनुष्य, एय-इन, जोग-योगा से, समाउत्तो-समायुक्त प्राणी, तु-तो, णीललेसं-नील लेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-जो आरम्भ से अविरत है, क्षुद्र स्वार्थी है, दुस्साहसी है-इन योगो से युक्त जीव नील लेश्या के परिणाम वाला होता है।

25 कापोत लेश्या के लक्षण

मूल गाथा- वके वंकसमायारे, णियडिल्ले अणुज्जुए।
पलिउचगओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए ॥२५॥

सस्कृत छाया- वक्रो वक्रसमाचार, नि कृतिमाननृजुक।
परिकुञ्चक औपधिक, मिथ्यादृष्टिरनार्य ॥२५॥

अन्वयार्थ-वके-वचन से वक्र, वकसमायारे-वक्रआचरण करने वाला, णियडिल्ले-मायावी, अणुज्जुए-सरलता से रहित, पलिउचग-प्रतिकुञ्चक (अपने दोषों को छिपाने वाला), ओवहिए-औपधिक (परिग्रही), मिच्छदिट्ठी-मिथ्यादृष्टि, य-और, अणारिए-अनार्य।

भावानुवाद-जो जीव वचन और आचार में वक्रता लिए हुए-अप्रामाणिक हो, मायावी, अभिमानी, कुटिल-सरलता से दूर, अपने दोषो को छुपाने वाला, औपधिक-परिग्रह वृत्ति वाला, मिथ्या दृष्टि और अनार्य हो-

26 कापोत लेश्या के परिणामो वाला पुरुष

मूल गाथा- उप्फालगदुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी।
एयजोगसमाउत्तो, काऊलेस तु परिणमे ॥२६॥

सस्कृत छाया- उत्स्पार्शकदुष्टवादी च, स्तेनश्चापि च मत्सरी।
एतद्योगसमायुक्त , कापोतलेश्या तु परिणमेत् ॥२६॥

अन्वयार्थ-उप्फालग-मर्मभेदक, दुट्ठवाई-दुष्टवादी, तेणे-चोर, य-और, मच्छरी-मत्सरी, यावि-भी, एय-इन, जोग-योगो से, समाउत्तो-समायुक्त प्राणी, तु-तो, काऊलेस-कापोतलेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-मर्म भेदी वचन बोलने वाला, दुष्ट वचनो का प्रयोग करने वाला, चोर, मत्सरी आदि योगों से युक्त हो, यह कापोत लेश्या मे परिणत होता है।

27 तेजो लेश्या के लक्षण का वर्णन

मूल गाथा- णीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले।
विणीयविणए दंते, जोगव उवहाणव ॥२७॥

सस्कृत छाया- नीचैर्वृत्तिरचपल , अमाय्यकुतूहल ।
विनीतविनयो दान्त , योगवानुपधानवान् ॥२७॥

अन्वयार्थ-णीयावित्ती-नम्रता युक्त, अचवले-चपलता रहित, अमाई-माया से रहित, अकुऊहले-कुतूहल से रहित, विणीयविणए-विनीत विनयी, दते-दान्त (इन्द्रियों का दमन करने वाला), जोगव-योगवान्, उवहाणव-उपधानवान्।

भावानुवाद-जो नम्र, अचपल, सरल, कुतूहल रहित, विनय मे निपुण, दान्त, स्वाध्याय में स्थित उपधानादि तप में लीन है।

28 तेजो लेश्या के परिणामो वाला पुरुष

मूल गाथा- पियधम्मे दढधम्मे, ऽवज्जभीरु हिएसए।
एयजोगसमाउत्तो, तेउलेस तु परिणमे ॥२८॥

सस्कृत छाया- प्रियधर्मा दृढधर्मा, अवद्यभीरुर्हितैषक ।
एतद्योगसमायुक्त , तेजोलेश्या तु परिणमेत् ॥२८॥

अन्वयार्थ-पियधम्मे-प्रिय धर्मप्रेमी, दढधम्मे-दृढधर्मा, अवज्जभीरु-अवद्यभीरु (पाप से डरने वाला), हिएसए-हितैषक, एय-इन, जोग-योगो से, समाउत्तो-समायुक्त प्राणी, तु-तो, तेउलेसं-तेजो लेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-जो प्रिय धर्मी, दृढ धर्मी, पाप भीरु और हितैषी-इन योगों से युक्त है, वह तेजोलेश्या में परिणत होता है।

29 पद्म लेश्या के लक्षण का वर्णन

मूल गाथा- पयणुकोहमाणे य, मायालोभे य पयणुए।
पसंतचित्ते दंतप्पा, जोगव उवहाणवं ॥२९॥

संस्कृत छाया- प्रतनुक्रोधमानश्च, माया लोभौच प्रतनुको ।
प्रशान्तचित्तो दान्तात्मा, योगवानुपधानवान् ॥२९॥

अन्वयार्थ-पयणु-सूक्ष्म (प्रतनु), कोह माणे य-क्रोध और मान वाला, पयणुए-प्रतनु (अल्प), माया लोभे-माया और लोभ वाला, पसतचित्ते-प्रशान्त चित, दतप्पा-दान्तात्मा (आत्मा का दमन करने वाला), जोगव-योगवान्, उवहाणव-उपधानवान्-

भावानुवाद-जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त अल्प हो, जो प्रशान्तचित्त वाला हो, इन्द्रियो को दमित रखने वाला हो, योगवान्-उपधान तप वाला हो।

30 पद्म लेश्या के परिणामो वाला पुरुष

मूल गाथा- तहा पयणुवाई य, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेस तु परिणमे ॥30॥

संस्कृत छाया- तथा प्रतनुवादी च, उपशान्तो जितेन्द्रिय ।
एतद्योगसमायुक्त, पद्मलेश्या तु परिणमेत् ॥३०॥

अन्वयार्थ-तहा-तथा, पयणुवाई-प्रतनुवादी (परिमित बोलने वाला), उवसते-उपशान्त, य-और, जिइंदिए-जितेन्द्रिय, एय-इन, जोग-योगा से, समाउत्तो-समायुक्त प्राणी, तु-तो, पम्हलेस-पद्मलेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-जो अल्पभाषी, उपशम रस म मग्न, जितेन्द्रिय-इन सब योगो से युक्त है वह पद्मलेश्या में परिणत होता है।

31 शुक्ल लेश्या के लक्षण

मूल गाथा- अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि झायए।
पसतचित्ते दतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥31॥

संस्कृत छाया- आर्तरौद्रे वर्जयित्वा, धर्मशुक्ले ध्यायति।
प्रशान्तचित्तो दान्तात्मा, समितो गुप्तश्च गुप्तिभि ॥३१॥

अन्वयार्थ-जो पुरुष अट्टरुद्दाणि-आर्तध्यान और रौद्रध्यान, वज्जित्ता-छोड कर, धम्म-धर्म ध्यान, सुक्काणि-शुक्ल ध्यान, झायए-ध्याता है, पसतचित्ते-प्रशान्तचित्त, दतप्पा-दान्तात्मा (आत्मा का दमन करने वाला), समिए-पाच समितिया से युक्त, य-और, गुत्तिसु-तीन गुप्तिया से, गुत्ते-गुप्त।

भावानुवाद-आर्त और रौद्र इन दोनो ध्यानो को छोड कर जो धर्म और शुक्ल ध्यान म स्थित होता है, जो राग-द्वेष रहित प्रशान्त चित्त और दान्त है, पाच समितियो और तीन गुप्तियो से युक्त है।

32 शुक्ल लेश्या के परिणामो वाला पुरुष

मूल गाथा- सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, सुक्कलेस तु परिणमे ॥32॥

संस्कृत छाया- सरागो वीतरागो वा, उपशान्तो जितेन्द्रिय ।
एतद्योगसमायुक्त , शुक्ललेश्या तु परिणमेत् ॥३१॥

अन्वयार्थ-सरागे-सराग (अल्पराग वाला), वा-अथवा, वीयरागे-वीतरागी, उवसते-उपशान्त, य-और, जिइदिए-जितेन्द्रिय, एय-इन, जोग-योगो से, समाउत्तो-समायुक्त प्राणी, तु-तो, सुक्कलेस-शुक्ल लेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-सराग हो अथवा वीतराग किन्तु जो उपशान्त है, जितेन्द्रिय है, इन सभी गुणो से युक्त जीव शुक्ल लेश्या मे परिणत होता है।

33 लेश्याओ के स्थान द्वार का वर्णन

मूल गाथा- असखिज्जाणोसप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया।
सखाईया लोगा, लेसाण हवति ठाणाइ ॥33॥

संस्कृत छाया- असख्येयावसर्पिणीनाम्, उत्सर्पिणीनां ये समया ।
सख्यातीता लोका , लेश्याना भवन्ति स्थानानि ॥३३॥

अन्वयार्थ-असखिज्जाण-असख्यात, ओसप्पिणीण-अवसर्पिणी काल के (और), उस्सप्पिणीण-उत्सर्पिणी काल के, जे-जितने, समया-समय हैं (तथा), संखाईया-सख्यातीत, लोगा-लोक के (जितने प्रदेश हैं) उतने, लेसाण-लेश्याओ के, ठाणाइ-स्थान, हवति-होते हैं।

भावानुवाद-स्थान द्वार-असख्य अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के जितने समय होते हैं, असख्य योजन प्रमाण असख्य लोक के जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतने ही शुभ अथवा अशुभ लेश्याओ के स्थान समझना चाहिए।

34 कृष्ण लेश्या की स्थिति का प्रतिपादन

मूल गाथा- मुहुत्तद्ध तु जहण्णा, तेतीस सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा किण्हलेसाए॥34॥

संस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्तं तु जघन्या, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहूर्ताधिका।
उत्कृष्टा भवति स्थिति , ज्ञातव्या कृष्णलेश्याया ॥३४॥

अन्वयार्थ-किण्हलेसाए-कृष्ण लेश्या की, जहण्णा-जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, मुहुत्तऽहिया-अन्तमुहूर्त अधिक, तेतीसा-तेतीस, सागरा-सागरोपम की, होइ-होती है ऐसा, णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-स्थिति द्वार-कृष्ण लेश्या की जघन्य (कम से कम) स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूत अधिक तेतीस सागर की है।

संस्कृत छाया- प्रतनुक्रोधमानस्य, माया लोभौच प्रतनुकौ ।
प्रशान्तचित्तो दान्तात्मा, योगवानुपधानवान् ॥२९॥

अन्वयार्थ-पयणु-सूक्ष्म (प्रतनु), कोह माणे य-क्रोध और मान वाला, पयणुए-प्रतनु (अल्प), माया लोभे-माया और लोभ वाला, पसतचित्ते-प्रशान्त चित्त, दतप्पा-दान्तात्मा (आत्मा का दमन करने वाला), जोगव-योगवान्, उवहाणव-उपधानवान्-

भावानुवाद-जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त अल्प हो, जो प्रशान्तचित्त वाला हो, इन्द्रियों को दमित रखने वाला हो, योगवान्-उपधान तप वाला हो।

30 पद्म लेश्या के परिणामो वाला पुरुष

मूल गाथा- तहा पयणुवाई य, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेसं तु परिणमे ॥३०॥

संस्कृत छाया- तथा प्रतनुवादी च, उपशान्तो जितेन्द्रिय ।
एतद्योगसमायुक्त , पद्मलेश्या तु परिणमेत् ॥३०॥

अन्वयार्थ-तहा-तथा, पयणुवाई-प्रतनुवादी (परिमित बोलने वाला), उवसते-उपशान्त, य-और, जिइंदिए-जितेन्द्रिय, एय-इन, जोग-योगो से, समाउत्तो-समायुक्त प्राणी, तु-तो, पम्हलेस-पद्मलेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-जो अल्पभाषी, उपशम रस म मग्न, जितेन्द्रिय-इन सब योगो से युक्त है वह पद्मलेश्या में परिणत होता है।

31 शुक्ल लेश्या के लक्षण

मूल गाथा- अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि झायए।
पसंतचित्ते दंतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥३१॥

संस्कृत छाया- आर्तरौद्रे वर्जयित्वा, धर्मशुक्ले ध्यायति।
प्रशान्तचित्तो दान्तात्मा, समितो गुप्तश्च गुप्तिभि ॥३१॥

अन्वयार्थ-जो पुरुष अट्टरुद्दाणि-आर्तध्यान और रौद्रध्यान, वज्जित्ता-छोड कर, धम्म-धर्म ध्यान, सुक्काणि-शुक्ल ध्यान, झायए-ध्याता है, पसतचित्ते-प्रशान्तचित्त, दतप्पा-दान्तात्मा (आत्मा का दमन करने वाला), समिए-पाच समितिया स युक्त, य-और, गुत्तिसु-तीन गुप्तियो से, गुत्ते-गुप्त।

भावानुवाद-आर्त और रौद्र इन दोनो ध्यानो को छोड कर जो धर्म और शुक्ल ध्यान म स्थित होता है, जो राग-द्वेष रहित प्रशान्त चित्त और दान्त है, पाच समितिया और तीन गुप्तियों से युक्त है।

32 शुक्ल लेश्या के परिणामो वाला पुरुष

मूल गाथा- सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइंदिए।
एयजोगसमाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे ॥३२॥

संस्कृत छाया- सरागो वीतरागो वा, उपशान्तो जितेन्द्रिय ।
एतद्योगसमायुक्त , शुक्ललेश्या तु परिणमेत् ॥३१॥

अन्वयार्थ-सरागे-सराग (अल्पराग वाला), वा-अथवा, वीयरागे-वीतरागी, उवसंते-उपशान्त, य-और, जिइंदिए-जितेन्द्रिय, एय-इन, जोग-योगो से, समाउत्तो-समायुक्त प्राणी, तु-तो, सुक्कलेस-शुक्ल लेश्या के, परिणमे-परिणाम वाला होता है।

भावानुवाद-सराग हो अथवा वीतराग किन्तु जो उपशान्त है, जितेन्द्रिय है, इन सभी गुणो से युक्त जीव शुक्ल लेश्या मे परिणत होता है।

33 लेश्याओ के स्थान द्वार का वर्णन

मूल गाथा- असंखिज्जाणोसप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया।
संखाईया लोगा, लेसाण हवंति ठाणाइ ॥३३॥

संस्कृत छाया- असंख्येयावसर्पिणीनाम्, उत्सर्पिणीनां ये समया ।
संख्यातीता लोका , लेश्याना भवन्ति स्थानानि ॥३३॥

अन्वयार्थ-असंखिज्जाण-असंख्यात, ओसप्पिणीण-अवसर्पिणी काल के (और), उस्सप्पिणीण-उत्सर्पिणी काल के, जे-जितने, समया-समय हैं (तथा), संखाईया-संख्यातीत, लोगा-लोक के (जितने प्रदेश हैं) उतने, लेसाण-लेश्याओ के, ठाणाइ-स्थान, हवंति-होते हैं।

भावानुवाद-स्थान द्वार-असंख्य अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के जितने समय होते हैं, असंख्य योजन प्रमाण असंख्य लोक के जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतने ही शुभ अथवा अशुभ लेश्याओ के स्थान समझना चाहिए।

34 कृष्ण लेश्या की स्थिति का प्रतिपादन

मूल गाथा- मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा किण्हलेसाए॥३४॥

संस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्तं तु जघन्या, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहूर्ताधिका।
उत्कृष्टा भवति स्थिति , ज्ञातव्या कृष्णलेश्याया ॥३४॥

अन्वयार्थ-किण्हलेसाए-कृष्ण लेश्या की, जहण्णा-जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त्त, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, मुहुत्तऽहिया-अन्तमुहूर्त्त अधिक, तेतीसा-तेतीस, सागरा-सागरोपम की, होइ-होती है ऐसा, णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-स्थिति द्वार-कृष्ण लेश्या की जघन्य (कम से कम) स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागर की है।

35 नील लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, दसउदहीपलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा णीललेसाए॥३५॥

संस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्तं तु जघन्या, दशसागरोपमापल्योपमासंख्येयभागाभ्यधिका।
उत्कृष्टा भवति स्थिति, ज्ञातव्या नीलेश्याया ॥३५॥

अन्वयार्थ-णीललेसाए-नील लेश्या की, जहण्णा-जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, पलियमसंख-पल्योपम के असंख्यातवे, भागमब्भहिया-भाग अधिक, दस-दस, उदहि-उदधि-सागरोपम की, होई-होती है ऐसा, णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-नील लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के असंख्यातवे भाग सहित दस सागरोपम समझनी चाहिए।

36 कापोत लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, तिण्णुदहीपलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा काउलेसाए॥३६॥

संस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्तं तु जघन्या, त्रिसागरोपमा, पल्योपमासंख्येयभागाधिका।
उत्कृष्टा भवति स्थिति, ज्ञातव्या कापोतलेश्याया ॥३६॥

अन्वयार्थ-काउलेसाए-कापोत लेश्या की, जहण्णा-जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्धं-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, पलियं-पल्योपम के, असंखभाग-असंख्यातवें भाग, अब्भहिया-अधिक, तिण्णुदही-तीन सागरोपम की, होइ-होती है ऐसा, णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की है।

37 तेजो लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- मुहुत्तद्धं तु जहण्णा, दोण्णुदहीपलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा तेउलेसाए॥३७॥

संस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्तं जघन्या, द्विसागरोपमा पल्योपमासंख्येयभागाधिका।
उत्कृष्टा भवति स्थिति, ज्ञातव्या तेजोलेश्याया ॥३७॥

अन्वयार्थ-तेउलेसाए-तेजोलेश्या की, जहण्णा-जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्धं-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, पलियमसंखभागमब्भहिया-पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक, दोण्णदुही-दो सागरोपम की, होइ-होती है ऐसा, णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक दो सागरोपम की है।

38 पद्म लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- मुहुत्तद्ध तु जहण्णा, दस उदही होंति मुहुत्तमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा पम्हलेसाए॥३८॥

सस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्त तु जघन्या, दश भवन्ति च सागरा मुहूर्ताधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थिति, ज्ञातव्या पद्मलेश्याया ॥३८॥

अन्वयार्थ-पम्हलेसाए-पद्मलेश्या की, जहण्णा-जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त्त, होइ-होती है, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, मुहुत्तमब्भहिया-अन्तर्मुहूर्त अधिक, दस-दस, उदही-सागरोपम की, होइ-होती है, ऐसा णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है।

39 शुक्ल लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- मुहुत्तद्ध तु जहण्णा, तेतीस सागरा मुहुत्तहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, णायव्वा सुक्कलेसाए॥३९॥

सस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्त तु जघन्या, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहूर्ताधिका ।
उत्कृष्टा भवति स्थिति, ज्ञातव्या शुक्ललेश्याया ॥३९॥

अन्वयार्थ-सुक्कलेसाए-शुक्ल लेश्या की, जहण्णा-जघन्य, ठिई-स्थिति, मुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, मुहुत्तहिया-अन्तर्मुहूर्त्त अधिक, तेतीस-तेतीस, सागरा-सागरोपम की, होइ-होती है ऐसा, णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है।

40 उपसहार एव प्रतिपाद्य विषय का प्रस्ताव

मूल गाथा- एसा खलु लेसाण, ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ।
चउसु वि गईसु एत्तो, लेसाण ठिइ तु वोच्छामि॥४०॥

सस्कृत छाया- एषा खलु लेश्यानाम्, ओघेनस्थितिस्तु वर्णिता भवति।
चतसृष्वपि गतिष्वित , लेश्याना स्थिति तु वक्ष्यामि ॥४०॥

अन्वयार्थ-ओहेण-ओघ (सामान्य रूप) से, लेसाण-लेश्याओ की, एसा-यह, ठिई-स्थिति, खलु-निश्चय ही, वण्णिया होइ-कही गई है, एत्तो-यहा से आगे, तु-तो, चउसु वि-चारो, गईसु-गतियो मे, लेसाण-लेश्याओ की, ठिइ-स्थिति, वोच्छामि-कहूगा।

भावानुवाद-यह लेश्याओं की सामान्य गति आदि की अपेक्षा के बिना स्थिति कही गई है। अब चारो गतियों म लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूगा।

41. रत्न प्रभा नरक मे कापोत लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसवाससहस्साइ, काऊए ठिई जहण्णिया होइ।
तिण्णुदहीपलिओवम, असखभाग च उक्कोसा ॥४१॥

सस्कृत छाया- दशवर्षसहस्राणि, कापोतलेश्या स्थितिर्जघन्यका भवति।
त्रिसागरोपमापल्योपमा, असख्येयभागाधिका चोत्कृष्टा ॥४१॥

अन्वयार्थ-काऊए-कापोतलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति, दसवाससहस्साइं-दस हजार वर्ष की, च-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, तिण्णुदही-तीन सागरोपम (और), पलिओवम-असखभाग-पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक, होइ-होती है।

भावानुवाद-(नारकियो में) कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की है।

42 बालुका प्रभा नरक मे नील लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- तिण्णुदहीपलिओवम, असखभागो जहण्णेण णीलठिई।
दसउदहीपलिओवम, असखभाग च उक्कोसा ॥४२॥

सस्कृत छाया- त्रिसागरोपमापल्योपमा-सख्यभागाधिका तु जघन्येन नीलास्थितिः।
दशसागरोपमापल्योपमा-सख्याभागाधिका चोत्कृष्टा ॥४२॥

अन्वयार्थ-णीलठिई-नील लेश्या की स्थिति, जहण्णेण-जघन्य, तिण्णदुही-तीन सागरोपम (और), पलिओवम असखभागो-पल्योपम का असख्यातवा भाग अधिक, च-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, दसउदही-दस सागरोपम, पलिओवम-पल्योपम के, असखभागं-असख्यातवे भाग अधिक (होती है)।

भावानुवाद-नील लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की है।

43 धूम प्रभा नरक में कृष्ण लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसउदहीपलिओवम, असखभाग जहण्णिया होइ।
तेत्तीससागराइं, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥४३॥

सस्कृत छाया- दशसागरोपमापल्योपमा, असख्येयभागाधिका जघन्यका भवति।
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा, उत्कृष्टा भवति कृष्णलेश्यायाः ॥४३॥

अन्वयार्थ-किण्हाए-कृष्णलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य स्थिति, दसउदही-दस सागरोपम, पलिओवम-पल्योपम

के असखभाग-असख्यातवे भाग अधिक, होइ-होती है, उक्कोसा-उत्कृष्ट, तेत्तीस-तेतीस, सागराइ-सागरोपम की, होइ-होती है।

भावानुवाद-कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक दस सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

44 उपसहार एव प्रतिपाद्य विषय का प्रस्ताव

मूल गाथा- **एसा णेरइयाण, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।**
तेण पर वोच्छामि, तिरियमणुस्साण देवाण॥४४॥

सस्कृत छाया- **एषा नैरयिकाणा, लेश्याना स्थितिस्तु वर्णिता भवति।**
तेन पर वक्ष्यामि, तिर्यङ्मनुष्याणा (च) देवानाम्॥४४॥

अन्वयार्थ-एसा-यह, णेरइयाण-नैरयिक जीवो की, लेसाण-लेश्याओं की, ठिई-स्थिति, वण्णिया होइ-वर्णन की गई है, तेण-उसके, पर-आगे, तिरिय-तिर्यंच, मणुस्साण-मनुष्य (और), देवाण-देवो की (लेश्याओ की स्थिति को), वोच्छामि-वर्णन करूगा।

भावानुवाद-नारक जीवो की लेश्याओ की स्थिति का यह वर्णन किया गया है अब तिर्यञ्च, मनुष्य एव देवो सम्बन्धी लेश्या स्थिति का वर्णन करूगा।

45 तिर्यंच एव मनुष्य गति मे प्राप्त लेश्याओ की स्थिति

मूल गाथा- **अतोमुहुत्तमद्ध, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ।**
तिरियाण नराण वा, वज्जित्ता केवल लेस॥४५॥

सस्कृत छाया- **अन्तर्मुहूर्ताद्धा, लेश्याना स्थितिर्यस्मिन् यस्मिन्यास्तु।**
तिरश्चा नराणा वा, वर्जयित्वा केवला लेश्याम्॥४५॥

अन्वयार्थ-केवल-केवली की, लेस-शुक्ल लेश्या को, वज्जित्ता-छोड कर, तिरियाण-तिर्यंच, वा-और, णराण-मनुष्यो मे, जहिं-जहा, जहिं-जहा, जाउ-जो, लेसाण-लेश्या है उन लेश्याओ की, ठिई-जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति, अतोमुहुत्तमद्ध-अन्तर्मुहूर्त है।

भावानुवाद-सभी तिर्यञ्च एव मनुष्यो की जितनी भी लेश्याए हैं उनमे शुक्ल लेश्या को छोड कर बाकी सबकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

46 शुक्ल लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- **मुहुत्तद्ध तु जहण्णा, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।**
णवहि वरिसेहिं ऊणा, णायव्वा सुक्कलेसाए॥४६॥

भावानुवाद-यह लेश्याओ की सामान्य गति आदि की अपेक्षा के बिना स्थिति कही गई है। अब चारों गतियों में लेश्याओ की स्थिति का वर्णन करूगा।

41 रत्न प्रभा नरक मे कापोत लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसवाससहस्साइ, काऊए ठिई जहण्णिया होइ।
तिण्णुदहीपलिओवम, असखभाग च उक्कोसा ॥४१॥

सस्कृत छाया- दशवर्षसहस्राणि, कापोतलेश्या स्थितिर्जघन्यका भवति।
त्रिसागरोपमापल्योपमा, असख्येयभागाधिका चोत्कृष्टा ॥४१॥

अन्वयार्थ-काऊए-कापोतलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति, दसवाससहस्साइ-दस हजार वर्ष का च-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, तिण्णुदही-तीन सागरोपम (और), पलिओवम-असखभाग-पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक, होइ-होती है।

भावानुवाद-(नारकियों में) कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की है।

42 बालुका प्रभा नरक मे नील लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- तिण्णुदहीपलिओवम, असखभागो जहण्णेण णीलठिई।
दसउदहीपलिओवम, असखभाग च उक्कोसा ॥४२॥

सस्कृत छाया- त्रिसागरोपमापल्योपमा-सख्यभागाधिका तु जघन्येन नीलास्थिति।
दससागरोपमापल्योपमा-सख्याभागाधिका चोत्कृष्टा ॥४२॥

अन्वयार्थ-णीलठिई-नील लेश्या की स्थिति, जहण्णेण-जघन्य, तिण्णदुही-तीन सागरोपम (और), पलिओवम असखभागो-पल्योपम का असख्यातवा भाग अधिक, च-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, दसउदही-दस सागरोपम, पलिओवम-पल्योपम के, असखभाग-असख्यातवे भाग अधिक (होती है)।

भावानुवाद-नील लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की है।

43 धूम प्रभा नरक में कृष्ण लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसउदहीपलिओवम, असखभाग जहण्णिया होइ।
तेत्तीससागराई, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥४३॥

सस्कृत छाया- दशसागरोपमापल्योपमा, असख्येयभागाधिका जघन्यका भवति।
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा, उत्कृष्टा भवति कृष्णलेश्याया ॥४३॥

अन्वयार्थ-किण्हाए-कृष्णलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य स्थिति, दसउदही-दस सागरोपम, पलिओवम-पल्योपम

के असखभाग-असख्यातवे भाग अधिक, होइ-होती है, उक्कोसा-उत्कृष्ट, तेत्तीस-तेतीस, सागराइ-सागरोपम की, होइ-होती है।

भावानुवाद-कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

44 उपसहार एव प्रतिपाद्य विषय का प्रस्ताव

मूल गाथा- एसा णेरइयाण, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।
तेण पर वोच्छामि, तिरियमणुस्साण देवाण॥४४॥

सस्कृत छाया- एषा नैरयिकाणा, लेश्याना स्थितिस्तु वर्णिता भवति।
तेन पर वक्ष्यामि, तिर्यङ्मनुष्याणा (च) देवानाम्॥४४॥

अन्वयार्थ-एसा-यह, णेरइयाण-नैरयिक जीवो की, लेसाण-लेश्याओ की, ठिई-स्थिति, वण्णिया होइ-वर्णन की गई है, तेण-उसके, पर-आगे, तिरिय-तिर्यंच, मणुस्साण-मनुष्य (और), देवाण-देवो की (लेश्याओ की स्थिति को), वोच्छामि-वर्णन करूगा।

भावानुवाद-नारक जीवो की लेश्याओ की स्थिति का यह वर्णन किया गया है अब तिर्यञ्च, मनुष्य एव देवो सम्बन्धी लेश्या स्थिति का वर्णन करूगा।

45 तिर्यंच एव मनुष्य गति मे प्राप्त लेश्याओ की स्थिति

मूल गाथा- अतोमुहुत्तमद्ध, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ।
तिरियाण नराण वा, वज्जित्ता केवल लेस॥४५॥

सस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्ताद्धा, लेश्याना स्थितिर्यस्मिन् यस्मिन्यास्तु।
तिरश्चा नराणा वा, वर्जयित्वा केवला लेश्याम्॥४५॥

अन्वयार्थ-केवल-केवली की, लेस-शुक्ल लेश्या को, वज्जित्ता-छोड कर, तिरियाण-तिर्यंच, वा-और, णराण-मनुष्यो मे, जहिं-जहा, जहिं-जहा, जाउ-जो, लेसाण-लेश्या है उन लेश्याओ की, ठिई-जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति, अतोमुहुत्तमद्ध-अन्तर्मुहूर्त है।

भावानुवाद-सभी तिर्यञ्च एव मनुष्यो की जितनी भी लेश्याए हैं उनमे शुक्ल लेश्या को छोड कर बाकी सबकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

46 शुक्ल लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- मुहुत्तद्ध तु जहण्णा, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।
णवहि वरिसेहिं ऊणा, णायव्वा सुक्कलेसाए॥४६॥

भावानुवाद-यह लेश्याओं की सामान्य गति आदि की अपेक्षा के बिना स्थिति कही गई है। अब चारो गतियों में लेश्याओ की स्थिति का वर्णन करुगा।

41 रत्न प्रभा नरक मे कापोत लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसवाससहस्साइ, काऊए ठिई जहण्णिया होइ।
तिण्णुदहीपलिओवम, असखभाग च उक्कोसा॥41॥

सस्कृत छाया- दशवर्षसहस्राणि, कापोतलेश्याः स्थितिर्जघन्यका भवति।
त्रिसागरोपमापल्योपमा, असख्येयभागाधिका चोत्कृष्टा॥४१॥

अन्वयार्थ-काऊए-कापोतलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति, दसवाससहस्साइ-दस हजार वर्ष का, च-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, तिण्णुदही-तीन सागरोपम (और), पलिओवम-असखभाग-पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक, होइ-होती है।

भावानुवाद-(नारकियो मे) कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की है।

42 वालुका प्रभा नरक मे नील लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- तिण्णुदहीपलिओवम, असखभागो जहण्णेण णीलठिई।
दसउदहीपलिओवम, असखभाग च उक्कोसा॥४२॥

सस्कृत छाया- त्रिसागरोपमापल्योपमा-सख्यभागाधिका तु जघन्येन नीलास्थिति।
दससागरोपमापल्योपमा-सख्याभागाधिका चोत्कृष्टा॥४२॥

अन्वयार्थ-णीलठिई-नील लेश्या की स्थिति, जहण्णेण-जघन्य, तिण्णदुही-तीन सागरोपम (और), पलिओवम असखभागो-पल्योपम का असख्यातवा भाग अधिक, च-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट, दसउदही-दस सागरोपम, पलिओवम-पल्योपम के, असंखभाग-असख्यातवें भाग अधिक (होती है)।

भावानुवाद-नील लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की है।

43 धूम प्रभा नरक मे कृष्ण लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसउदहीपलिओवम, असखभाग जहण्णिया होइ।
तेत्तीससागराइ, उक्कोसा होइ किण्हाए॥43॥

सस्कृत छाया- दशसागरोपमापल्योपमा, असख्येयभागाधिका जघन्यका भवति।
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा, उत्कृष्टा भवति कृष्णलेश्यायाः॥४३॥

अन्वयार्थ-किण्हाए-कृष्णलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य स्थिति, दसउदही-दस सागरोपम, पलिओवम-पल्योपम

के असखभाग-असख्यातवे भाग अधिक, होइ-होती है, उक्कोसा-उत्कृष्ट, तेत्तीस-तेतीस, सागराइ-सागरोपम की, होइ-होती है।

भावानुवाद-कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक दस सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

44 उपसहार एव प्रतिपाद्य विषय का प्रस्ताव

मूल गाथा- **एसा णेरइयाण, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।**
तेण पर वोच्छामि, तिरियमणुस्साण देवाण ॥४४॥

सस्कृत छाया- **एषा नैरयिकाणा, लेश्याना स्थितिस्तु वर्णिता भवति।**
तेन पर वक्ष्यामि, तिर्यङ्मनुष्याणा (च) देवानाम् ॥४४॥

अन्वयार्थ-एसा-यह, णेरइयाण-नैरयिक जीवो की, लेसाण-लेश्याओ की, ठिई-स्थिति, वण्णिया होइ-वर्णन की गई है, तेण-उसके, पर-आगे, तिरिय-तिर्यंच, मणुस्साण-मनुष्य (और), देवाण-देवो की (लेश्याओं की स्थिति को), वोच्छामि-वर्णन करूगा।

भावानुवाद-नारक जीवो की लेश्याओ की स्थिति का यह वर्णन किया गया है अब तिर्यञ्च, मनुष्य एव देवों सम्बन्धी लेश्या स्थिति का वर्णन करूगा।

45 तिर्यंच एव मनुष्य गति मे प्राप्त लेश्याओ की स्थिति

मूल गाथा- **अतोमुहुत्तमद्ध, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ।**
तिरियाण णराण वा, वज्जित्ता केवल लेस ॥४५॥

सस्कृत छाया- **अन्तर्मुहूर्ताद्धा, लेश्याना स्थितिर्यस्मिन् यस्मिन्यास्तु।**
तिरश्चा नराणा वा, वर्जयित्वा केवला लेश्याम् ॥४५॥

अन्वयार्थ-केवल-केवली की, लेस-शुक्ल लेश्या को, वज्जित्ता-छोड कर, तिरियाण-तिर्यंच, वा-और, णराणं-मनुष्यो मे, जहिं-जहा, जहिं-जहा, जाउ-जो, लेसाण-लेश्या है उन लेश्याओ की, ठिइ-जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति, अतोमुहुत्तमद्ध-अन्तर्मुहूर्त है।

भावानुवाद-सभी तिर्यञ्च एव मनुष्यो की जितनी भी लेश्याए हैं उनमे शुक्ल लेश्या को छोड कर बाकी सबकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

46 शुक्ल लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- **मुहुत्तद्ध तु जहण्णा, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।**
णवहि वरिसेहिं ऊणा, णायव्वा सुक्कलेसाए ॥४६॥

संस्कृत छाया- अन्तर्मुहूर्तं तु जघन्या, उत्कृष्टा भवति पूर्वकोटी।
नवभिर्वर्षैरूना, ज्ञातव्या शुक्ललेश्यायाः ॥४६॥

अन्वयार्थ-सुक्कलेसाए-(केवली की) शुक्ल लेश्या की, जहण्णा-जघन्य स्थिति, मुहुत्तद्धं-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, णवहि-नव, वरिसेहिं-वर्षों से, ऊणा-न्यून, पुव्वकोडी-एक करोड पूर्व की, होइ-होती है ऐसा, णायव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष न्यून एक करोड पूर्व है।

47 उपसंहार एवं प्रतिपाद्य विषय का प्रस्ताव

मूल गाथा- एसा तिरियणराण, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।
तेण पर वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाण ॥47॥

संस्कृत छाया- एषा तिर्यङ्नराणां, लेश्यानां स्थितिस्तु वर्णिता भवति।
तत: परं वक्ष्यामि, लेश्यानां स्थितिस्तु देवानाम् ॥४७॥

अन्वयार्थ-एसा-यह, तिरिय-तिर्यंच, उ-और, णराण-मनुष्यों की, लेसाणं-लेश्याओ की, ठिई-स्थिति का, वण्णिया-वर्णन, होइ-किया है, तेण-इसके, पर-आगे, देवाण-देवताओं की, लेसाण-लेश्याओ की, ठिई-स्थिति का, वोच्छामि-वर्णन करूगा।

भावानुवाद-तिर्यञ्च और मनुष्यो की लेश्याओं की स्थिति का यह उपर्युक्त वर्णन किया गया अब इससे आगे देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूगा।

48 देवगति मे प्राप्त कृष्ण लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसवाससहस्साइ, किण्हाए ठिई जहण्णिया होइ।
पलियमसखिज्जइमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥48॥

संस्कृत छाया- दशवर्षसहस्राणि, कृष्णाया स्थितिर्जघन्यका भवति।
पल्योपमासंख्येयतमभागः, उत्कृष्टा भवति कृष्णायाः ॥४८॥

अन्वयार्थ-किण्हाए-कृष्ण लेश्या की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति, दसवाससहस्साइं-दस हजार वर्ष का, होइ-होती है (और), किण्हाए-कृष्ण लेश्या की, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, पलिय-पल्योपम का, असखिज्जइमो-असख्यातवा भाग, होइ-होती है।

भावानुवाद-(देवों की लेश्याओं की स्थिति) कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असख्यातवा भाग है।

49 नील लेश्या की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेण णीलाए, पलियमसख तु उक्कोसा ॥49॥

सस्कृत छाया- या कृष्णाया स्थिति खलु, उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका।
जघन्येन नीलाया, पल्योपमासख्येयभागा योत्कृष्टा ॥४९॥

अन्वयार्थ-किण्हाए-कृष्ण लेश्या की, जा-जो, उक्कोसा-उत्कृष्ट, ठिई-स्थिति है, सा-वही, खलु-निश्चय ही, समयमब्भहिया-एक समय अधिक, णीलाए-नील लेश्या की, तु-तो, जहण्णेण-जघन्य स्थिति है, च-और, पलिय-पल्योपम के, असखं-असख्यातवे भाग अधिक, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति है।

भावानुवाद-नील लेश्या की जघन्य स्थिति, कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति से एक समय अधिक है और उसकी उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असख्यातवा भाग अधिक है।

50 कापोत लेश्या की स्थिति-भवनपति एव व्यतर देव

मूल गाथा- जा णीलाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेण काऊए, पलियमसख च उक्कोसा ॥५०॥

सस्कृत छाया- या नीलाया स्थिति खलु, उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका।
जघन्येन कापोतलेश्याया, पल्योपमासख्येयभागायोत्कृष्टा ॥५०॥

अन्वयार्थ-णीलाए-नील लेश्या की, जा-जो, उक्कोसा-उत्कृष्ट, ठिई-स्थिति है, सा-वही, खलु-निश्चय ही, समयमब्भहिया-एक समय अधिक, काऊए-कापोत लेश्या की, जहण्णेण-जघन्य स्थिति है, च-और, पलिय-पल्योपम के, असख-असख्यातवा भाग अधिक, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति है।

भावानुवाद-कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति से एक समय अधिक है और उसकी उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असख्यातवा भाग अधिक है।

51 चारो देव निकायो मे तेजोलेश्या का सम्बन्ध

मूल गाथा- तेण पर वोच्छामि, तेऊलेसा जहा सुरगणाण।
भवणवइवाणमतर, जोइसवेमाणियाण च ॥५१॥

सस्कृत छाया- तत पर वक्ष्यामि, तेजोलेश्याया यथा सुरगणानाम्।
भवनपतिवाणव्यन्तर, ज्योतिष्कवैमानिकाना च ॥५१॥

अन्वयार्थ-तेण पर-इसके आगे, भवणवइ-भवनपति, वाणमतर-वाणव्यन्तर, जोइस-ज्योतिषी, च-और, वेमाणियाण-वैमानिक, सुरगणाण-देवगणो की, तेऊलेसा-तेजोलेश्या, जहा-जैसी है उसको, वोच्छामि-कहूगा।

भावानुवाद-इससे आगे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एव वैमानिक देवो सबधी तेजो लेश्या की स्थिति का वर्णन करूगा।

52 वैमानिक देवो की अपेक्षा तेजो लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- पलिओवम जहण्णा, उक्कोसा सागरा उ दुण्णहिया।
पलियमसखेज्जेण, होइ भागेण तेऊए ॥५२॥

संस्कृत छाया- पल्योपमं जघन्या, उत्कृष्टा सागरोपमे तु द्वयधिके।
पल्योपमासंख्येयेन, भवति भागेन तैजस्या ॥५२॥

अन्वयार्थ-तेऊए-तेजोलेश्या की, जहण्णा-जघन्य स्थिति, पलिओवम-एक पल्योपम, उ-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, पलिय-पल्योपम के, असखेज्जेणं-असख्यातवें, भागेण-भाग सहित, दुण्ण-दो, सागरा-सागरोपम, अहिया-अधिक, होइ-होती है।

भावानुवाद-तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट एक पल्य के असख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की है।

53 भवनपति एवं व्यतर की अपेक्षा तेजो लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसवाससहस्साइ, तेऊए ठिई जहण्णिया होइ।
दुण्णुदही पलिओवम, असखभाग च उक्कोसा ॥५३॥

संस्कृत छाया- दशवर्षसहस्राणि, तेजोलेश्याया स्थितिर्जघन्यका भवति।
द्विसागरोपमापल्योपमा, संख्येयभागाधिका चोत्कृष्टा ॥५३॥

अन्वयार्थ-(भवनपति एव वाणव्यतर देवो की अपेक्षा) तेऊए-तेजोलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति दसवास सहस्साइ-दस हजार वर्ष की है, च-और (ईशान देवलोक की अपेक्षा), उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, पलिओवम-पल्योपम के, असखभाग-असख्यातवें भाग अधिक, दुण्णुदही-दो सागरोपम की, होइ-होती है।

भावानुवाद-(भवनपति एव व्यतर देवों की) तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की (वैमानिक की अपेक्षा से) है।

54 सनत्कुमार देवलोक की अपेक्षा पद्म लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेण पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहियाइ च उक्कोसा ॥५४॥

संस्कृत छाया- या तेजोलेश्याया स्थिति खलु, उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका।
जघन्येन पद्माया, दश तु मुहूर्ताधिकोत्कृष्टा ॥५४॥

अन्वयार्थ-तेऊए-तेजोलेश्या की, जा-जो, उक्कोसा-उत्कृष्ट, ठिई-स्थिति है, सा-वही, खलु-निश्चय ही, समयमब्भहिया-एक समय अधिक, पम्हाए-पद्मलेश्या की, जहण्णेण-जघन्य स्थिति है, च-और उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, उ-तो, मुहुत्ताहियाइ-एक मुहूर्त अधिक, दस-दस सागरोपम है।

भावानुवाद-तेजो लेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है उससे एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति है, उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है।

55 शुक्ल लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेणं सुक्काए, तेत्तीसमुहुत्तमब्भहिया॥५५॥

संस्कृत छाया- या पद्मलेश्याया स्थिति खलु, उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका।
जघन्येन शुक्ललेश्याया , त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहूर्ताभ्यधिका॥५५॥

अन्वयार्थ-जा-जो, पम्हाए-पद्मलेश्या की, उक्कोसा-उत्कृष्ट, ठिई-स्थिति है, सा-वही, खलु-निश्चय ही, समयमब्भहिया-एक समय अधिक, सुक्काए-शुक्ल लेश्या की, जहण्णेण-जघन्य स्थिति है, उ-और (उत्कृष्ट स्थिति), मुहुत्तमब्भहिया-एक मुहूर्त अधिक, तेत्तीस-तेतीस सागरोपम की है।

भावानुवाद-पद्मलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है उससे एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है।

56 अप्रशस्त लेश्याओ के गति द्वार का निरूपण

मूल गाथा- किण्हा णीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइ उववज्जई॥५६॥

संस्कृत छाया- कृष्णा नीला कापोता, तिस्रोऽप्येता अधर्मलेश्या ।
एताभिस्त्रिसृभिरपि जीव , दुर्गतिमुपपद्यते॥५६॥

अन्वयार्थ-किण्हा-कृष्णलेश्या, णीला-नीललेश्या (और), काऊ-कापोत लेश्या, एयाओ-ये, तिण्णि वि-तीन, अहम्म-अधर्म-अप्रशस्त, लेस्साओ-लेश्याए हैं, एयाहि-इन, तिहि वि-तीन से, जीवो-जीव, दुग्गइ-दुर्गति मे, उववज्जइ-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-गतिद्वार-कृष्ण, नील और कापोत ये तीनो अधर्म लेश्याए हैं, इन तीनो से जीव अनेको बार दुर्गति को प्राप्त होता है।

57 प्रशस्त लेश्याओ के गति द्वार का निरूपण

मूल गाथा- तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्णि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहिं तिहिं वि जीवो, सुग्गइ उववज्जई॥५७॥

संस्कृत छाया- तेजसी पद्मा शुक्ला, तिस्रोऽप्येता धर्मलेश्या ।
एताभिस्तिसृभिरपि जीव , सुगतिमुपपद्यते॥५७॥

अन्वयार्थ-तेऊ-तेजो लेश्या, पम्हा-पद्मलेश्या (और), सुक्का-शुक्ल लेश्या, एयाओ-ये, तिण्णि वि-तीनों, धम्मलेस्साओ-धर्म (प्रशस्त) लेश्याए हैं, एयाहि-इन, तिहि वि-तीनो (लेश्याओ) से, जीवो-जीव, सुग्गइ-सुगति मे, उववज्जइ-उत्पन्न होता है।

संस्कृत छाया- पल्योपम जघन्या, उत्कृष्टा सागरोपमे तु द्व्यधिके।
पल्योपमासंख्येयेन, भवति भागेन तैजस्या ॥५२॥

अन्वयार्थ-तेऊए-तेजोलेश्या की, जहण्णा-जघन्य स्थिति, पलिओवमं-एक पल्योपम, उ-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, पलिय-पल्योपम के, असखेज्जेण-असख्यातवे, भागेण-भाग सहित, दुण्ण-दो, सागरा-सागरोपम, अहिया-अधिक, होइ-होती है।

भावानुवाद-तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट एक पल्य के असख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की है।

53 भवनपति एवं व्यतर की अपेक्षा तेजो लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- दसवाससहस्साइ, तेऊए ठिई जहण्णिया होइ।
दुण्णुदही पलिओवम, असखभाग च उक्कोसा ॥५३॥

संस्कृत छाया- दशवर्षसहस्राणि, तेजोलेश्याया स्थितिर्जघन्यका भवति।
द्विसागरोपमापल्योपमा, सख्येयभागाधिका चोत्कृष्टा ॥५३॥

अन्वयार्थ-(भवनपति एव वाणव्यतर देवो की अपेक्षा) तेऊए-तेजोलेश्या की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति, दसवास सहस्साइ-दस हजार वर्ष की है, च-और (ईशान देवलोक की अपेक्षा), उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, पलिओवम-पल्योपम के, असखभाग-असख्यातवे भाग अधिक, दुण्णुदही-दो सागरोपम की, होइ-होती है।

भावानुवाद-(भवनपति एव व्यतर देवो की) तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के असख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की (वैमानिक की अपेक्षा से) है।

54 सनत्कुमार देवलोक की अपेक्षा पद्म लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेण पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहियाइ च उक्कोसा ॥५४॥

संस्कृत छाया- या तेजोलेश्याया स्थिति खलु, उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका।
जघन्येन पद्माया, दश तु मुहूर्ताधिकोत्कृष्टा ॥५४॥

अन्वयार्थ-तेऊए-तेजोलेश्या की, जा-जो, उक्कोसा-उत्कृष्ट, ठिई-स्थिति है, सा-वही, खलु-निश्चय ही, समयमब्भहिया-एक समय अधिक, पम्हाए-पद्मलेश्या की, जहण्णेण-जघन्य स्थिति है, च-और, उक्कोसा-उत्कृष्ट स्थिति, उ-तो, मुहुत्ताहियाइ-एक मुहूर्त अधिक, दस-दस सागरोपम है।

भावानुवाद-तेजो लेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है उससे एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति है, उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है।

55 शुक्ल लेश्या की स्थिति

मूल गाथा- जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहण्णेण सुक्काए, तेत्तीसमुहुत्तमब्भहिया॥५५॥

सस्कृत छाया- या पद्मलेश्याया स्थिति खलु, उत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका।
जघन्येन शुक्ललेश्याया , त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा मुहूर्ताभ्यधिका॥५५॥

अन्वयार्थ-जा-जो, पम्हाए-पद्मलेश्या की, उक्कोसा-उत्कृष्ट, ठिई-स्थिति है, सा-वही, खलु-निश्चय ही, समयमब्भहिया-एक समय अधिक, सुक्काए-शुक्ल लेश्या की, जहण्णेण-जघन्य स्थिति है, उ-और (उत्कृष्ट स्थिति), मुहुत्तमब्भहिया-एक मुहूर्त अधिक, तेत्तीस-तेतीस सागरोपम की है।

भावानुवाद-पद्मलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है उससे एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है।

56 अप्रशस्त लेश्याओ के गति द्वार का निरूपण

मूल गाथा- किण्हा णीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइ उववज्जई॥५६॥

सस्कृत छाया- कृष्णा नीला कापोता, तिस्रोऽप्येता अधर्मलेश्या ।
एताभिस्त्रिसृभिरपि जीव , दुर्गतिमुपपद्यते॥५६॥

अन्वयार्थ-किण्हा-कृष्णलेश्या, णीला-नीललेश्या (और), काऊ-कापोत लेश्या, एयाओ-ये, तिण्णि वि-तीन, अहम्म-अधर्म-अप्रशस्त, लेस्साओ-लेश्याए हैं, एयाहि-इन, तिहि वि-तीन से, जीवो-जीव, दुग्गइ-दुर्गति मे, उववज्जइ-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-गतिद्वार-कृष्ण, नील और कापोत ये तीनो अधर्म लेश्याए हैं, इन तीनो से जीव अनेको बार दुर्गति को प्राप्त होता है।

57 प्रशस्त लेश्याओ के गति द्वार का निरूपण

मूल गाथा- तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्णि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहिं तिहिं वि जीवो, सुग्गइ उववज्जई॥५७॥

सस्कृत छाया- तेजसी पद्मा शुक्ला, तिस्रोऽप्येता धर्मलेश्या ।
एताभिस्तिसृभिरपि जीव , सुगतिमुपपद्यते॥५७॥

अन्वयार्थ-तेऊ-तेजो लेश्या, पम्हा-पद्मलेश्या (और), सुक्का-शुक्ल लेश्या, एयाओ-ये, तिण्णि वि-तीनों, धम्मलेस्साओ-धर्म (प्रशस्त) लेश्याए हैं, एयाहि-इन, तिहि वि-तीनो (लेश्याओ) से, जीवो-जीव, सुग्गइ-सुगति मे, उववज्जइ-उत्पन्न होता है।

भावानुवाद-तेजो, पद्म और शुक्ल-ये तीनों धर्म लेश्याए हैं, इन तीनो से जीव अनेक बार सुगति को प्राप्त होता है।

58 लेश्याओ की परिणति मे प्रथम समय

मूल गाथा- लेसाहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
ण हु कस्सइ उववत्ति, परे भवे अत्थि जीवस्स॥५८॥

सस्कृत छाया- लेश्याभि सर्वाभि, प्रथमे समये परिणताभिस्तु।
न खलु कस्याप्युपपात, परे भवेऽस्ति जीवस्य॥५८॥

अन्वयार्थ-सव्वाहिं-सभी, लेसाहिं-लेश्याओ के, परिणयाहिं-परिणत होने से, पढमे-प्रथम, समयम्मि-समय में, तु-तो, कस्सइ-किसी भी, जीवस्स-जीव की, उववत्ति-उत्पत्ति, हु-निश्चय ही, परे भवे-पर भव में, ण-नहीं, अत्थि-होती है।

भावानुवाद-च्यवन द्वार मरण समय के प्रथम समय में परिणत हुई सभी लेश्याआ से किसी भी जीव की परभव मे उत्पत्ति नहीं होती है।

59 लेश्याओ की परिणति मे चरम समय

मूल गाथा- लेसाहिं सव्वाहिं, चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
ण हु कस्सइ उववत्ति, परे भवे होइ जीवस्स॥५९॥

सस्कृत छाया- लेश्याभि सर्वाभि चरमे, समये परिणताभिस्तु।
न खलु कस्याप्युपपात, परे भवे भवति जीवस्य॥५९॥

अन्वयार्थ-सव्वाहिं-सभी, लेस्साहिं-लेश्याओं के, परिणयाहिं-परिणत होने से, हु-निश्चय ही, चरमे-अन्तिम, समयम्मि-समय में, कस्सइ-किसी भी, जीवस्स-जीव की, परे भवे-पर भव मे, उववत्ति-उत्पत्ति, ण-नहीं, होइ-होती है।

भावानुवाद-मरण काल के अन्तिम समय मे परिणत हुई सभी लेश्याओ से किसी भी जीव की पर भव में उत्पत्ति नहीं होती है।

60 परलोक मे गमन की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- अतमुहुत्तम्मि गए, अतमुहुत्तम्मि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छति परलोय॥६०॥

सस्कृत छाया- अन्तमुहूर्ते गते, अन्तमुहूर्ते शेषे चैव।
लेश्याभि परिणताभि, जीवा गच्छन्ति परलोकम्॥६०॥

अन्वयार्थ-अतमुहुत्तम्मि-अन्तर्मुहूर्त, गए-बीत जाने पर, चेव-और, अतमुहुत्तम्मि-अन्तर्मुहूर्त क, सेसए-शेष रहने पर, लेस्साहिं-लेश्याओं क, परिणयाहिं-परिणत होने से, जीवा-जीव, परलोयं-परलोक में, गच्छति-जाते हैं।

भावानुवाद-अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर परिणत हुई लेश्याओ से युक्त जीव परलोक मे जाते हैं।

टिप्पणी च्यवनद्वार की उपर्युक्त तीन गाथाओ का साराश यह है कि छहो लेश्याओ मे से किसी भी लेश्या को आये हुए केवल एक समय हुआ हो, तो उस समय कोई भी जीव मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार मृत्यु के समय आगामी जन्म के लिए आत्मा का लेश्याओ मे परिवर्तन होता है, उस समय भी किसी भी लेश्या के प्रथम और अन्तिम समय मे किसी भी जीव की उत्पत्ति नहीं होती है।

जब जीव की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेष रहती है तब उस जीव में आगामी जन्म मे प्राप्त होने वाली लेश्या के परिणाम अवश्य आ जाते हैं, फिर उसी लेश्या के साथ जीव पर भव मे उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न होने के अन्तर्मुहूर्त तक उसी लेश्या के परिणाम रहते हैं।

61 उपादेय का विषय उपसहार

मूल गाथा- **तम्हा एयासि लेसाण, अणुभावे वियाणिया।**
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओऽहिट्ठिए मुणी ॥६१॥

त्ति बेमि

इति चउतीसइम लेसाज्झयण समत्त ॥३४॥

सस्कृत छाया- **तस्मादेतासा लेश्यानाम्, अनुभागान्विज्ञाय।**
अप्रशस्तास्तु वर्जयित्वा, प्रशस्ता अधितिष्ठेत् मुनि ॥६१॥

इति ब्रवीमि।

इति लेश्याध्ययन समाप्त ॥३४॥

अन्वयार्थ-तम्हा-इसलिए, एयासि-इन, लेस्साण-लेश्याओ के, अणुभावे-अनुभावो को, वियाणिया-जानकर, मुणी-मुनि (साधु), अप्पसत्थाओ-अप्रशस्त (लेश्याओ) को, वज्जित्ता-छोड कर, पसत्थाओ-प्रशस्त लेश्याओ को, अहिट्ठिए-धारण करे।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-उपसहार इसलिए इन सभी लेश्याओ के अनुभाग-परिणामो को जानकर अप्रशस्त लेश्याओ का परित्याग कर प्रशस्त लेश्याओ मे अधिष्ठित होना चाहिए।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार चौतीसवा लेश्याध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

अनगार मार्ग गति - पंचत्रिंशत् अध्ययन

उत्थानिका

साधना का मौलिक आधार है *अनगारत्व, अनगारत्व का शाब्दिक अर्थ है गृहत्यागी। किन्तु इसका लाक्षणिक* अर्थ अपने आप मे विशिष्ट कोटि का भाव छुपाए हुए है। लाक्षणिक दृष्टि से अनगार वही नहीं हो जाता, जिसने घर छोड दिया हो, अनगार वह है, जिसने अन्तरग-बाह्य सभी प्रकार का सग छोड दिया हो।

बाह्य सग का अर्थ है शरीर की सुरक्षा के साधनो एव परिजनों आदि पर आसक्ति भाव और अतरग सग का अर्थ है-आत्मा को मलिन बनाने वाले कषाय विकार-वासना आदि दूषित वृत्तियो का सद्भाव।

बहुत बार बाह्य सग का परित्याग करके व्यक्ति अपने आपको साधक मान बैठता है जो कि साधना का बाह्य परिवेश मात्र है। साधना होती है अन्तरग विकारो को नष्ट करने से, वासना और राग-द्वेष वृत्तियो को मन से उखाड फैंकने से।

जब साधना मे अनेक प्रकार के उतार चढाव उपस्थित हो तो साधक चित्त उद्वेलित होने लगता है, उस समय अपने आपको साधना की भूमि पर दृढ टिकाए रखने की क्षमता हो तब हमारा अनगारत्व प्रारम्भ या प्रकट होता है।

अनगार साधक के विविध आयामी आचार-विचार एव उसकी विशुद्ध भावात्मक साधना का चित्रण किया *गया है प्रस्तुत अध्ययन मे,* इसमें *बताया गया है कि साधक ममत्वजयी होता है,* वह मृत्यु के भय से भी मुक्त होता है, तो सयत जीवन जीने की कामना भी नहीं करता है, वह अपनी इन्द्रियों को सयमित करके समस्त इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है।

□□□

अनगार मार्ग गति - पचत्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति साराश

जीवन शक्ति का उपयोग दु खो से सर्वथा मुक्त होने के लिए करो।
जीवन दु खो को सहन करने के लिए ही नहीं,
दु खो के आत्यन्तिक क्षय के लिए प्राप्त हुआ।

किसी भी प्रकार के आकर्षण से बचो-बन्धन से बच जाओगे।
ससार के सभी आकर्षण आत्मा को बाधने वाले हैं।

कामनाओ से बचो सुखी हो जाओगे।
कामनाओ से बचने वाला दु खी नहीं होता।

मन को सुन्दरता मे मत अटकाओ, राग क्षीण होगा।
साधक साज-सज्जा युक्त निवास की मन से भी
कामना नहीं करे।

सुन्दरता का आकर्षण व्यक्ति को बेभान बना देता है।
कुरूपता जितनी घातक नहीं होती उतनी सुन्दरता विप्लवकारी बन जाती है।

नेत्रो को उत्तेजित करने वाला स्थान भी साधक को
योग भ्रष्ट कर सकता है।
साधक का आवास स्थान ऐसा होना चाहिए जो
इन्द्रियो को उत्तेजित न करे।

अधिकाश पाप इन्द्रिय-विषयो की तृप्ति के लिए होते है।
विषयो से विरक्त साधक पाप जनक अनेक प्रवृत्तियों से सहज बच जाता है।

समभाव साधना है, विषम भाव विराधना।
साधक मणि-लोष्ठ पर, शत्रु-मित्र पर समभाव रखता है।

क्रय-विक्रय जैसे कार्य साधना को दूषित कर देते है।
साधक क्रय-विक्रय जैसी व्यावसायिक वृत्ति से दूर रहता है।

साधक भिक्षा प्राप्ति या अप्राप्ति दोनो स्थितियो मे
समभावी बना रहे।
साधक का भिक्षा जीवी होना श्रेयस्कर है, पर लाभ एव अलाभ
में भी समत्व रखना आवश्यक है।

रस-स्वाद के प्रति आसक्ति साधना के पतन के द्वार खोल देती है।
भोजन के प्रति भी अलोलुप, अनासक्त, अमूर्च्छित बने रहो।
रसासक्त मत बनो।

साधक के मन मे भी यह भाव नहीं आना चाहिए कि मै वन्दनीय-पूजनीय हूं।
साधक सत्कार-पूजा-प्रतिष्ठा की कामना न करे।

ऐसा अनासक्त जीवन जीओ कि शरीर भी छूटे तो खेद न हो।
साधक निर्ममत्व-निरहकार जीवन जीता है, समय आने पर
शरीर का परित्याग करने मे भी विलय नहीं करता।

□□□

अह अणगारज्झयणं णाम पंचतीसइमं अज्झयणं

अथ अनगाराध्ययनं नाम पञ्चत्रिंशत्तममध्ययनम्

अनगार-मार्ग-गति

1 अनगार मार्ग और उसके आचरण का फल

मूल गाथा- सुणेह मे एगग्गमणा, मग्ग बुद्धेहिं देसियं।
जमायरतो भिक्खू, दुक्खाणतकरो भवे ॥१॥

संस्कृत छाया- शृणुत मे एकाग्रमनस , मार्गं बुद्धैर्देशितम्।
यमाचरन्भिक्षु , दु खानामन्तकरो भवेत् ॥१॥

अन्वयार्थ-बुद्धेहिं-बुद्धों के द्वारा, देसियं-देशित (कहे हुए), मग्ग-मार्ग को, मे-मुझसे, एगग्गमणा-एकाग्र चित्त होकर, सुणेह-सुनो, ज-जिसका आयरतो-आचरण करता हुआ, भिक्खू-भिक्षु (साधु), दुक्खाण-दु खो का, अतकरो-अन्त करने वाला, भवे-होता है।

भावानुवाद-ज्ञानियो-तीर्थंकरो द्वारा उपदिष्ट मार्ग को मुझसे एकाग्र मन से सुनो, जिसका अनुसरण-आचरण करके भिक्षु दु खो का अन्त करता है।

2 अनगार मार्ग निर्देश सूत्र प्रथम सर्व सग परित्याग

मूल गाथा- गिहवास परिच्चज्ज, पव्वज्जामस्सिए मुणी।
इमे सगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जति माणवा ॥२॥

संस्कृत छाया- गृहवास परित्यज्य, प्रव्रज्यामाश्रितो मुनि ।
इमान् सगान् विजानीयात्, यै (सगै) सज्यन्ते मानवा ॥२॥

अन्वयार्थ-गिहवास-गृहस्थवास का, परिच्चज्ज-त्याग करके, पव्वज्जा-प्रव्रज्या का, अस्सिए-आश्रय लेने वाला, मुणी-मुनि, इमे-इन, सगे-माता-पिता-पुत्र कलत्रादि के सगो को, जेहिं-जिनसे, माणवा-मनुष्य, सज्जति-आसक्तियों मे फस कर कर्म-बन्धन को प्राप्त होते हैं उन्हे, वियाणिज्जा-जान कर छोड देवे।

भावानुवाद-गृहस्थवास का परित्याग करके प्रव्रजित बना हुआ मुनि इन सगो का ठीक से परिज्ञान करे, जिनमे सामान्य मनुष्य आसक्त-प्रतिबद्ध होते हैं।

3 अनगार मार्ग निर्देश सूत्र द्वितीय पापास्त्रवो का परित्याग

मूल गाथा- तहेव हिंस अलिय, चोज्ज अबभसेवण।
इच्छा काम च लोभ च, सजओ परिवज्जए॥3॥

सस्कृत छाया- तथैव हिसामलीक चौर्यमब्रह्मसेवनम्।
इच्छाकाम च लोभ च, सयत परिवर्जयेत्॥३॥

अन्वयार्थ-हिंस-हिसा, अलिय-झूठ, चोज्ज-चौर्य (चोरी), अवभसेवण-अब्रह्मचर्य (मैथुन) सेवन, च-और इच्छाकाम-अप्राप्यवस्तु की इच्छा, तहेव-तथा, लोभ-लोभ (इन सब) का, सजओ-सयत पुरुष, परिवज्जए-त्याग कर देवे।

भावानुवाद्-सयति साधक हिसा, असत्य, चोरी अब्रह्मचर्य (मैथुन सेवन), इच्छा-काम (अप्राप्त पदार्थों की कामना) और लोभ का परित्याग कर दे।

4 अनगार मार्ग निर्देश सूत्र तृतीय निषेध निवास स्थान

मूल गाथा- मणोहर चित्तघर, मल्लधूवेण वासिय।
सकवाड पडुरुल्लोय, मणसावि ण पत्थए॥४॥

सस्कृत छाया- मनोहर चित्रगृह, माल्यधूपेन वासितम्।
सकपाट पाण्डुरोल्लोच, मनसाऽपि न प्रार्थयेत्॥४॥

अन्वयार्थ-मणोहर-मनोहर, चित्तघरं-चित्रो से सुशोभित मकान, मल्ल-पुष्प मालाओ से, धूवेण-सुगन्धित पदार्थों से, वासिय-सुवासित, सकवाड-कपाट सहित, पडुरुल्लोय-श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित (घर को), मणसावि-मन से भी, ण पत्थए-इच्छा न करे।

भावानुवाद्-मनोहर चित्रो से सुशोभित, माल्य और अगर चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से सुवासित किवाडों तथा सुन्दर श्वेत वस्त्रो के चन्दोवो द्वारा सुसज्जित ऐसे चित्त को आकर्षित करने वाले स्थान-घर की साधु मन से भी इच्छा न करे।

5 काम राग विवर्द्धक उपाश्रय से निवृत्ति

मूल गाथा- इदियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए।
दुक्कराइ णिवारेउ, कामरागविवड्ढणे॥५॥

सस्कृत छाया- इन्द्रियाणि तु भिक्षो, तादृशे उपाश्रये।
दुष्कराणि निवारयितु, कामरागविवर्धने॥५॥

अन्वयार्थ-तारिसम्मि-उपरोक्त प्रकार के, उ-और, कामरागविवड्ढणे-कामराग को बढाने वाले, उवस्सए-उपाश्रय में, भिक्खुस्स-साधु के लिए, इदियाणि-इन्द्रियो को, णिवारेउ-निवारण करना (सयम रखना), दुक्कराई-दुष्कर है।

भावानुवाद-इस प्रकार का सुसज्जित उपाश्रय काम-राग को बढाने वाला होता है अत वहा भिक्षु के लिए इन्द्रिय सयम रखना कठिन है।

6 साधु के योग्य उपयुक्त निवास स्थान

मूल गाथा- सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले व इक्कओ।
पइरिक्के परकडे वा, वास तत्थऽभिरोयए॥६॥

सस्कृत छाया- श्मशाने शून्यागारे वा, वृक्षमूले चैकक ।
प्रतिरिक्ते परकृते वा, वास तत्राभिरोचयेत्॥६॥

अन्वयार्थ-सुसाणे-श्मशान मे, वा-अथवा, सुण्णगारे-सूने घर मे, वा-अथवा, रुक्खमूले-वृक्ष के नीचे, वा-अथवा, परकडे-परकृत, पइरिक्के-एकान्त स्थान मे, इक्कओ-एकाकी (राग द्वेष रहित) होकर साधु, तत्थ-इन श्मशानादि स्थानो मे, वास-निवास करने की, अभिरोयए-अभिरुचि करे।

भावानुवाद-इसलिए भिक्षु श्मशान मे, शून्य गृह मे, वृक्ष के नीचे अथवा गृहस्थ द्वारा अपने लिए बनाए गए एकान्त स्थान मे ही एकाकी (राग-द्वेष रहित होकर) निवास करे।

7 सयमशील भिक्षु द्वारा प्रासुक निवास स्थान का सकल्प

मूल गाथा- फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ सकप्पए वास, भिक्खू परमसजए॥७॥

सस्कृत छाया- प्रासुके अनाबाधे, स्त्रीभिरनभिद्रुते।
तत्र सकल्पयेद्वास भिक्षु परमसयत ॥७॥

अन्वयार्थ-फासुयम्मि-प्रासुक (जीव रहित) स्थान मे, अणाबाहे-बाधा रहित स्थान में, इत्थीहिं-स्त्रियो से, अणभिद्दुए-अनाकीर्ण (उपद्रव से रहित), तत्थ-ऐसे स्थान मे, परमसजए-परम सयमी, भिक्खू-भिक्षु (साधु), वास-निवास का, सकप्पए-सकल्प करे।

भावानुवाद-प्रासुक अर्थात् जहा जीवो की उत्पत्ति नहीं होती हो, बाधा रहित जो स्व पर के लिए पीडाकारी न हो, स्त्रियो के आवागमन से रहित स्थान मे ही परम सयमी साधु को रहना कल्पता है।

8 अनगार मार्ग निर्देश सूत्र चतुर्थ ग्रह कर्म समारभ निषेध

मूल गाथा- ण सय गिहाइ कुव्विज्जा, णेव अण्णेहिं कारए।
गिहकम्मसमारभे, भूयाण दीसई वहो॥८॥

सस्कृत छाया- न स्वय गृहाणि कुर्यात्, नैवान्यै कारयेत्।
गृहकर्मसमारम्भे, भूताना दृश्यते वध ॥८॥

अन्वयार्थ-(साधु) सय-स्वय, गिहाइ-घर, ण कुव्विज्जा-न बनावे, णेव (और)-न, अण्णेहिं-दूसरों से, कारए-

बनवावे (उपलक्षण से अनुमोदन भी न करे) क्योंकि, गिहकम्म-गृह कर्म के, समारभे-समारम्भ में, भूयाण-भूतों (जीवो) का, वहो-वध, दीसई-देखा जाता है।

भावानुवाद-भिक्षु स्वय घर बनावे नहीं, दूसरों के द्वारा बनवावे नहीं, क्योकि गृह कर्म के समारम्भ में-घर बनाने म प्राणियो की हिसा दिखाई देती है।

9 गृहारभ के परित्याग का उपदेश

मूल गाथा- तसाणं थावराण च, सुहुमाण बायराण य।
तम्हा गिहसमारभ, सजओ परिवज्जए॥९॥

सस्कृत छाया- त्रसाना स्थावराणा च, सूक्ष्माणा बादराणा च।
तस्माद् गृहसमारम्भ, सयत परिवर्जयेत्॥९॥

अन्वयार्थ-(घर बनाने मे) तसाण-त्रस, च-और, थावराण-स्थावर, सुहुमाण-सूक्ष्म, य-और, बायराण बदर जीवो की (हिसा होती है), तम्हा-इसलिए, गिह समारभं-गृह के समारभ को, सजओ-सयमी साधु, परिवज्जए-त्याग देवे।

भावानुवाद-घर बनाने म त्रस और स्थावर तथा सूक्ष्म और बादर जीवो की हिंसा होती है, अत सयति-भिक्षु गृह कर्म के समारम्भ का परित्याग करे।

10 आहार विषयक सावद्य प्रवृत्ति का त्याग

मूल गाथा- तहेव भत्तपाणेसु, पयणे पयावणेसु य।
पाणभूयदयट्ठाए, ण पए ण पयावए॥१०॥

सस्कृत छाया- तथैव भक्तपानेषु, पचने पाचनेषु च।
प्राणभूतदयार्थं, न पचेन्न पाचयेत्॥१०॥

अन्वयार्थ-तहेव-उसी प्रकार, भत्तपाणेसु-अन्नपानी को, पयणे-पकाने मे, य-और, पयावणेसु-पकवाने में (प्राणियो की हिसा होती है अत), पाणभूय-प्राणी भूत जीवों की, दयट्ठाए-दया के लिए (साधु), ण पए-न स्वय पकावे, ण पयावए-न दूसरो से पकवावे (उपलक्षण से अनुमोदना न करे)।

भावानुवाद-इसी प्रकार भक्तपान-आहार पानी बनाने और बनवाने (पकाने-पकवाने) मे भी हिंसा होती है, अत प्राण और भूत जीवो की दया के लिए साधु स्वय अन्न न पकाए और न पकवावे।

11 अनगार मार्ग निर्देश सूत्र पचम आहार पचन पाचन निषेध

मूल गाथा- जलधण्णणिस्सिया जीवा, पुढवीकट्ठणिस्सिया।
हम्मति भत्तपाणेसु, तम्हा भिक्खू ण पयावए॥११॥

सस्कृत छाया- जलधान्यनिश्रिता जीवा, पृथिवीकाष्ठनिश्रिता।
हन्यन्ते भक्तपानेषु, तस्माद् भिक्षुर्न पाचयेत्॥११॥

अन्वयार्थ-**भत्त पाणेसु**-आहार पानी (पकाने व पकवाने) मे, **जल धण्ण**-जल (और) धान्य के, **णिस्सिया**-आश्रित, **पुढवी कट्ठ**-पृथ्वी (और) काष्ठ के, **णिस्सिया**-आश्रित, **जीवा**-अनेक जीव, **हम्मति**-मारे जाते हैं, **तम्हा**-इसलिए, **भिक्खू**-साधु (न पकावे), **ण पयावए**-न दूसरो से पकवावे (उपलक्षण से अनुमोदन न करे)।

भावानुवाद-भक्त पान पकाने मे जल, धान्य पृथ्वी और ईन्धन काष्ट के आश्रित अनेक जीव मारे जाते हैं इसलिए भिक्षु को भोजन नहीं पकाना चाहिए।

12 अग्नि के जलाने का निषेध

मूल गाथा- **विसप्पे सव्वओधारे, बहुपाणिविणासणे।**
णत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइ ण दीवए॥१२॥

सस्कृत छाया- **विसर्पत् सर्वतोधार, बहुप्राणिविनाशनम्।**
नास्ति ज्योति सम शस्त्र, तस्माज्ज्योतिर्न दीपयेत्॥१२॥

अन्वयार्थ-**सव्वओ**-सर्व प्रकार से, सर्वदिशाओ मे, **धारे**-शस्त्रधारा के समान, **विसप्पे**-फैलने वाली, **बहुपाणि**-बहुत प्राणियो का, **विणासणे**-नाश करने वाली, **जोइ समे**-ज्योति (अग्नि) के समान, **सत्थे**-शस्त्र, **णत्थि**-दूसरा कोई नहीं है, **तम्हा**-इसलिए (साधु), **जोइ**-अग्नि को, **ण दीवए**-न जलावे।

भावानुवाद-सब दिशाओ मे तीक्ष्ण शस्त्र की धार की तरह व्याप्त और असख्य प्राणियो की घात करने वाली ऐसी अग्नि के समान दूसरा कोई शस्त्र नहीं है, अत भिक्षु अग्नि कभी न जलावे।

13 अनगार मार्ग-निर्देश सूत्र छठा क्रय-विक्रय वृत्ति का निषेध

मूल गाथा- **हिरण्ण जायरुव च, मणसावि ण पत्थए।**
समलेट्ठुकचणे भिक्खू, विरए कयविक्कए॥१३॥

सस्कृत छाया- **हिरण्य च जातरूप च मनसाऽपि न प्रार्थयेत्।**
समलेष्टुकाञ्चनो भिक्षु , विरत क्रयविक्रयात्॥१३॥

अन्वयार्थ-**समलेट्ठु कचणे**-पाषाण और कचन को समान समझने वाला, **कयविक्कए**-क्रय विक्रय की क्रियाओ से, **विरए**-विरक्त हुआ, **भिक्खू**-भिक्षु, **हिरण्ण**-हिरण्य-सोना, **जायरूव**-जात रूप चादी, **च**-और (परिग्रहादि को), **मणसावि**-मन से भी, **ण पत्थए**-न चाहे।

भावानुवाद-क्रय-विक्रय से विरक्त मुनि, सुवर्ण और मिट्टी को समान समझता है, अत वह स्वर्ण और रजत-चादी की मन से भी इच्छा न करे।

14 क्रय-विक्रय के दोषो का निरूपण

मूल गाथा- **किणतो कइओ होइ, विक्किणतो य वाणिओ।**
कयविक्कयम्मि वट्टतो, भिक्खू ण भवइ तारिसो॥१४॥

संस्कृत छाया- क्रीणन् क्रायको भवति, विक्रीणानस्य वणिक्।
क्रयविक्रये वर्तमान , भिक्षुर्न भवति तादृश ॥१४॥

अन्वयार्थ-किणंतो-खरीदता हुआ, कइओ-क्रायक (ग्राहक), य-और, विक्किणतो-बेचता हुआ, वाणिओ-वणिक, होइ-होता है, कयविक्कयम्मि-खरीदने और बेचने में, वट्टंतो-वर्तता हुआ, भिक्खू-साधु, तारिसो-तादृश (सूत्रानुसार साधु), ण भवइ-नहीं होता है।

भावानुवाद-वस्तु खरीदने वाले को ग्राहक कहते हैं और बेचने वाले को वणिक (बनिया), अत क्रय-विक्रय में प्रवृत्त साधु 'साधु' नहीं होता है।

15 निर्दोष भिक्षा वृत्ति का आचरण

मूल गाथा- भिक्खियव्व ण केयव्व, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा।
कय विक्कओ महा दोसो, भिक्खवत्ती सुहावहा ॥१५॥

संस्कृत छाया- भिक्षितव्य न क्रेतव्य, भिक्षुणा भिक्षुवृत्तिना।
क्रयविक्रययोर्महान् दोष भिक्षावृत्ति सुखावहा ॥१५॥

अन्वयार्थ-भिक्खुणा-भिक्षु को, भिक्खवत्तिणा-भिक्षावृत्ति से ही, भिक्खियव्व-भिक्षा (निर्वाह) करनी चाहिए, ण केयव्व-खरीद कर वस्तु न लेनी चाहिए क्योकि, कयविक्कओ-क्रय-विक्रय मे, महा-महान्, दोसो-दोष है (और), भिक्खवत्ती-भिक्षावृत्ति, सुहावहा-सुख को देने वाली है।

भावानुवाद-जिसने भिक्षा वृत्ति स्वीकार की है, ऐसे भिक्षु को भिक्षावृत्ति से ही कोई वस्तु लेनी चाहिए, खरीद कर नहीं, क्रय-विक्रय में महान् दोष है, भिक्षा वृत्ति सुखावह-सुखप्रद है।

16 भिक्षावृत्ति के प्रकार बतलाना

मूल गाथा- समुयाण उछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिंदिय।
लाभालाभम्मि सतुट्ठे, पिंडवाय चरे मुणी ॥१६॥

संस्कृत छाया- समुदानमुञ्छमेषयेत्, यथासूत्रमनिन्दितम्।
लाभालाभयो सन्तुष्ट , पिण्डपात चरेत् मुनि ॥१६॥

अन्वयार्थ-जहासुत्त-सूत्रानुसार, अणिंदिय-अनिन्दित घरों से, उछ-स्तोकमात्र (थोडा-थोडा आहार) लेते हुए, समुयाण-समुदानी भिक्षा की, एसिज्जा-एषणा करे (और), लाभालाभम्मि-लाभ और अलाभ में सतुट्ठे-सन्तुष्ट रहता हुआ मुणी-भिक्षु, पिंडवायं-पिंडपात (आहार) के लिए, चरे-विचरे।

भावानुवाद-मुनि श्रुत निर्दिष्ट नियमानुसार अनिन्दित घरो में सामुदानिक उछ (अनेक घरों से थोडा-थोडा आहार) की एषणा करे, वह लाभ और अलाभ में सन्तुष्ट रहता हुआ पिण्डपात भिक्षाचर्या करे।

17 अनगार-मार्ग-निर्देश सूत्र सातवा स्वाद वृत्ति निषेध

मूल गाथा- अलोले ण रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
ण रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥१७॥

सस्कृत छाया- अलोलो न रसे गृद्ध , दान्तजिह्वोऽमूर्च्छित ।
न रसार्थं भुञ्जीत, यापनार्थं महामुनि ॥१७॥

अन्वयार्थ-अलोले-अलोलुपी, रसे-रसो मे, ण गिद्धे-आसक्त नहीं, जिब्भादते-जिह्वा का दमन करने वाला, अमुच्छिए-मूर्च्छा रहित, महामुणी-महामुनि, रसट्ठाए-रसार्थ, ण भुजिज्जा-आहार न करे (किन्तु) जवणट्ठाए-सयम यात्रा के निर्वाहार्थ (आहार करे)।

भावानुवाद-अलोलुप रस के प्रति अनासक्त, रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने वाला, अमूर्च्छित-गृद्धि रहित महामुनि सयमी जीवन के निर्वाह के लिए ही भोजन करे, स्वाद लेने के लिए नहीं।

18 अनगार मार्ग निर्देश सूत्र आठवा पूजा प्रतिष्ठादि का निषेध

मूल गाथा- अच्चण रयण चेव, वदण पूयण तहा।
इड्ढीसक्कारसम्माण, मणसावि ण पत्थए॥१८॥

सस्कृत छाया- अर्चन रचना चैव, वन्दन पूजन तथा।
ऋद्धिसत्कारसन्मान, मनसाऽपि न प्रार्थयेत्॥१८॥

अन्वयार्थ-अच्चण-अर्चना, चेव-और, रयण-स्वस्तिकादि की रचना, वदण-वन्दना, तहा-तथा, पूयण-पूजन, इड्ढी-ऋद्धि, सक्कार-सत्कार (और), सम्माण-सम्मान (इन बातो की), मणसावि-मन से भी, ण पत्थए-प्रार्थना न करे।

भावानुवाद-चन्दनादि से अर्चन, रचना-स्वस्तिक आदि का निर्माण, वन्दन, पूजन, ऋद्धि सत्कार और सम्मान की मुनि मन से भी प्रार्थना न करे।

19 अनगार मार्ग निर्देश सूत्र नवा मृत्यु पर्यन्त मुनि धर्म चतु सूत्री पालन

मूल गाथा- सुक्कज्झाण झियाएज्जा, अणियाणे अकिचणे।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ॥१९॥

सस्कृत छाया- शुक्लध्यान ध्यायेत्, अनिदानोऽकिञ्चन ।
व्युतसृष्टकायो विहरेत्, यावत्कालस्य पर्याय ॥१९॥

अन्वयार्थ-जाव-जब तक, कालस्स-(काल) मृत्यु का, पज्जओ-पर्याय है, अणियाणे-नियाणा रहित, अकिचणे-अकिन्चन (परिग्रह रहित), वोसट्ठकाए-शरीर के ममत्व भाव से भी रहित होकर, सुक्कज्झाण-शुक्ल ध्यान, झियाएज्जा-ध्यावे (और), विहरेज्जा-अप्रतिबद्ध विहार करे।

भावानुवाद-मुनि मरण पर्यंत अपरिग्रही रह कर शरीर के ममत्व को भी त्याग कर, निदान रहित होकर शुक्ल ध्यान आत्म ध्यान मे लीन रहे और अप्रतिबद्धरूप से विहार करे।

20 सलेखना के प्रकारो का वर्णन

मूल गाथा- णिज्जूहिऊण आहार, कालधम्मे उवट्ठिए।
जहिऊण माणुस बोंदि, पहू दुक्खे विमुच्चई॥२०॥

संस्कृत छाया- निर्हाय (परित्यज्य) आहार, कालधर्मे उपस्थिते।
त्यक्त्वा मानुषीं तनु, प्रभु दु ख्याद् विमुच्यते ॥२०॥

अन्वयार्थ-कालधम्मे-काल धर्म (मृत्यु) के, उवट्ठिए-उपस्थित होने पर, आहार-आहार का, णिज्जूहिऊण-त्याग करके, माणुस-मनुष्य सम्बन्धी, बोंदि-बोंदि (औदारिक शरीर) को, जहिऊण-छोड कर, पहू-प्रभु (समर्थ मुनि), दुक्खे-सब दु खो से, विमुच्चइ-विमुक्त हो जाता है।

भावानुवाद-काल धर्म (मरण अवसर) प्राप्त होने पर चारों प्रकार के आहार का त्याग कर वह सक्षम भिक्षु इस अतिम शरीर का छोड कर दु खो से मुक्त हो जाता है।

21 अनगार मार्गानुसार आचरण की फल श्रुति

मूल गाथा- णिमम्मो णिरहकारो, वीयरागो अणासवो।
संपत्तो केवल णाणं, सासय परिणिव्वुए ॥२१॥

त्ति बेमि।

इति अणगारज्झयण मग्गगईणाम पणतीसइम अज्झयण समत्त ॥३५॥

संस्कृत छाया- निर्ममो निरहकार, वीतरागोऽनास्रव।
सम्प्राप्त केवल ज्ञान, शाश्वत परिनिर्वृत ॥२१॥

इति ब्रवीमि।

इत्यनगाराध्ययन समाप्तम् ॥३५॥

अन्वयार्थ-णिमम्मो-निर्मम-ममत्व रहित णिरहकारो-निरहकार (अहकार रहित), वीयरागो-वीतराग, अणासवो-अनास्रव (आस्रव रहित) मुनि, केवलं णाण-केवल ज्ञान को, संपत्तो-प्राप्त करके, सासयं-शाश्वत-सदा के लिए, परिणिव्वुए-परिनिर्वृत (सुखी) हो जाता है।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-ममत्व और अहकार रहित अनास्रवी और वीतराग होकर मुनि केवल ज्ञान को प्राप्त कर शाश्वत परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार अनगार-मार्ग-गति नामक पैंतीसवा अध्ययन समाप्त हुआ।

□□□

जीवाजीव-विभक्ति - षट्त्रिंशत् अध्ययन

उत्थानिका

जैन तत्त्व ज्ञान मे पचास्तिकाय अथवा षड्द्रव्यात्मक लोक माना गया है और लोक का अर्थ वहा उस क्षेत्र विशेष से लिया जाता है जिसमे जीव-अजीव आदि दृश्यमान-अदृश्यमान पदार्थों का अस्तित्व हो। सामान्य परिभाषा के अनुसार '**लोक्यते इतिलोक** ' जो दृश्यमान है वह लोक है। जिसे हम ससार कहते हैं वह जीव और अजीव अथवा चेतन और जड दो तत्त्वो का मेल है, जो अनादि काल से चला आ रहा है। जड तत्त्व के ससर्ग अथवा उसकी आसक्ति से जब चेतन सर्वथा मुक्त हो जाता है तब उसे बन्धन मुक्त जीव अथवा ईश्वर कहा जाता है।

हमारी साधना का मूल उद्देश्य यही है कि हम जड के आकर्षण से मुक्त होकर अपने आप मे-स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जावे। किन्तु इस स्वरूप के लिए जड चेतन की भिन्नता का परिबोध आवश्यक है, यही नहीं उनके भेद-प्रभेदों एव मुक्ति के हेतुओ का ज्ञान भी आवश्यक है। उसी का विश्लेषण प्रस्तुत अन्तिम अध्ययन मे किया गया है।

सर्वप्रथम अध्ययन के उद्देश्य एव विधेय का प्रतिपादन करते हुए अजीव तत्त्व का निरूपण किया गया है। अरूपी अजीव और रूपी अजीव के रूप मे अजीव के दो विभाग करके रूपी अजीव मे वर्णादि की नियमा एव भजना का कथन किया गया है और उनके प्रभेद बताए गए हैं। अनन्तर जीव तत्त्व के निरूपण मे जीव तत्त्व को सिद्ध और ससारी के रूप मे दो भेदो मे विभक्त किया गया है। सिद्धो के वर्णन में सिद्धों के स्वरूप गृहस्थलिग सिद्धा आदि भेदो का वर्णन एव सिद्धालय सिद्धशिला का वर्णन सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूप से किया गया है।

फिर ससारी जीव के वर्णन मे उनके स्थावर और त्रस दो भेद करके स्थावर-पृथ्वीकायिकादि पञ्च स्थावरो का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार त्रस के वर्णन में उनके द्वीन्द्रियादि भेद एव उनके अवान्तर भेदो का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार गति, जाति, इन्द्रिय आदि के भेदो से जीव के विभिन्न प्रकारो को, देव नारक आदि के भेदो को अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषित किया गया है।

सक्षिप्त मे यह अध्ययन सम्पूर्ण ग्रन्थ का निष्कर्ष कहा जा सकता है, जिसमे जीव-अजीव तत्त्व का सागोपाग विवेचन करके जीव को परम मुक्ति के द्वार तक पहुचाने का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

□□□

जीवाजीव-विभक्ति - षट्त्रिंशत् अध्ययन

सूक्ति सारांश ·

जीवाजीव के परिबोध के बिना साधना हो ही नहीं सकती है।
संयमाराधना के लिए जीवाजीव का परिज्ञान आवश्यक है।

मुक्ति सुख को किसी भी प्रकार के सुख से उपमित नहीं किया जा सकता है।
साधक का एक ही परम लक्ष्य होता है-बन्धनों से मुक्ति-परम शान्ति की प्राप्ति।

जीवाजीव के ज्ञान को आचरण मे ढालो अर्थात् जीव रक्षा का प्रयास करो।
जीवाजीव का बोध हो जाने के बाद भी जो उस आस्था के साथ अनुशीलन नहीं करता उसे सुज्ञ कैसे कहा जाये?

सम्यग् ज्ञान का करुणा म रूपान्तरित होना ही सयम साधना है।
ज्ञान को आचरण में ढालने का अर्थ है सयम पथ पर पद चरण करना।

कषायो का मन्द होना ही सयम मार्ग की प्रगति मानी जाती है।
सयम पथ पर पद चरण करने का अर्थ है सलेखना-कषाया को मन्द करना, क्षीण करना।

अंतरंग से दुर्भावो का निष्कासन भी साधना ही है।
दुर्भावो को दुर्गति का द्वार समझ कर उनसे मुक्त बनने का प्रयास करो।

मृत्यु का भी सजगता पूर्वक वरण करो।
अज्ञान पूर्ण मृत्यु दुर्लभ बोधि का कारण बनती है।

मृत्यु के समय भी निष्काम बने रहो, जीवन सफल हो जाएगा।
मिथ्यात्व या सनिदान मृत्यु भव परम्परा को बढाती है।

वीतराग वचन ही भव तारक हो सकते है।
वीतराग परमात्मा के वचनो पर विश्वास रखो, उनका अनुशीलन करो, भव भमण समाप्त हो जाएगा।

जिन वचनो को जानने वाला मृत्यु का सहजता से वरण करता है।
अज्ञानी व्यक्ति अज्ञानता पूर्ण मृत्यु को प्राप्त होते हैं, जो भव परम्परा को वढा देती है।

अत्यन्त गभीर चेता व्यक्ति ही आलोचना सुन कर आलोचनाकर्ता को सन्तुष्ट कर सकता है।
किसी की आलोचना सुनना भी सामान्य कार्य नहीं है, समाधि उत्पन्न करने वाले गुणग्राही साधक ही आलोचना सुनने के अधिकारी होते हैं।

वैर मुक्त बनों, भव मुक्त वनना सरल हो जाएगा।
रोप व वैर भावना की वृद्धि व्यक्ति को असुर बना देती है।

सुन्दर भावना-सुखद जीवन का निर्माण करती है, मोक्ष तक ले जाती है।
जीवन को सुखद, सुन्दर बनाना चाहते हो तो भावनाओ को प्रशस्त बनाओ।

❑❑❑

अह जीवाजीवविभत्तीणाम छत्तीसइमं अज्झयणं

अथ जीवाजीवविभक्तिनामषट्त्रिंशत्तममध्ययनम्

जीवा-जीव विभक्ति

1 प्रतिपाद्य विषय का निर्देश एव प्रयोजन

मूल गाथा- जीवाजीवविभत्ति, सुणेह मे एगमणा इओ।
ज जाणिऊण भिक्खू, सम्म जयइ सजमे ॥1॥

सस्कृत छाया- जीवाजीवविभक्ति, शृणुत मे एकमनस इत ।
या ज्ञात्वा भिक्षु , सम्यग् यतते सयमे ॥१॥

अन्वयार्थ-जीवाजीवविभत्ति-जीव और अजीव की विभक्ति के विषय, मे-मुझसे, एगमणा-एकाग्र चित्त होकर, सुणेह-सुनो, इओ-इससे, ज-जिसको, जाणिऊण-जानकर, भिक्खू-साधु (भिक्षु), सम्म-सम्यक् प्रकार से, सजमे-सयम में, जयइ-यतना करता है।

भावानुवाद-अब जीव और अजीव के विभाग को तुम एकाग्र मन से मुझ से सुनो, जिसे जानकर भिक्षु सयम में सम्यक् प्रकार यत्नशील होता है।

2 जीवाजीवमय लोकालोक का स्वरूप

मूल गाथा- जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए।
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए ॥२॥

सस्कृत छाया- जीवाश्चैवाजीवाश्च, एष लोको व्याख्यात ।
अजीवदेश आकाश , अलोक स व्याख्यात ॥२॥

अन्वयार्थ-जीवा-जीव, चेव-और, अजीवा-अजीव रूप, एस-यह, लोए-लोक, [illegible] -कहा गया है य-और, अजीवदेसं-अजीव का देश, आगासे-[illegible] रूप है, से-वह, [illegible] वियाहिए-कहा गया है।

भावानुवाद-जिसमें जीव तथा अजीव ये दोनो [illegible] ने लोक [illegible] अजीव का एक देश केवल आकाश ही है, उसे अलोक कहा ।

3 द्रव्यादि की अपेक्षा से दोनो की प्ररूपणा

मूल गाथा- दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
परूवणा तेसि भवे, जीवाणमजीवाण य॥3॥

सस्कृत छाया- द्रव्यत क्षेत्रतश्चैव, कालतो भावतस्तथा।
प्ररूपणा तेषा भवेत्, जीवानामजीवाना च॥३॥

अन्वयार्थ-तेसि-उन, जीवाण-जीव, य-और, अजीवाण-अजीवो की, परूवणा-प्ररूपणा, दव्वओ-द्रव्य से, खेत्तओ-क्षेत्र से, चेव-और कालओ-काल से, तहा-और, भावओ-भाव से, भवे-होती है।

भावानुवाद-उन जीव और अजीव तत्त्वो की प्ररूपणा द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से होती है।

4 अजीव द्रव्य का निरूपण

मूल गाथा- रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहा भवे।
अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो य चउव्विहा॥4॥

सस्कृत छाया- रूपिणश्चारूपिणश्च, अजीवा द्विविधा भवेयु।
अरूपिणो दशधोक्ता, रूपिणश्च चतुर्विधा॥४॥

अन्वयार्थ-अजीवा-अजीव, दुविहा-दो प्रकार का, भवे-होता है, रूविणो-रूपी, चेव-और, अरूवी-अरूपी, य-और, अरूवी-अरूपी द्रव्य, दसहा-दस प्रकार का, य-और, रूविणो-रूपी द्रव्य, चउव्विहा-चार प्रकार का, वुत्ता-कहा गया है।

भावानुवाद-अजीव तत्त्व के मुख्य रूप से दो भेद हैं-(1) रूपी और (2) अरूपी। अरूपी दस प्रकार का है और रूपी चार प्रकार है।

5 अरूपी अजीव के छह भेदो का वर्णन

मूल गाथा- धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए।
अहम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए॥5॥

सस्कृत छाया- धर्मास्तिकायस्तद्देश, तत्प्रदेशश्चाख्यात।
अधर्मस्तस्य देशश्च, तत्प्रदेशश्चाख्यात॥५॥

अन्वयार्थ-धम्मत्थिकाए-धर्मास्तिकाय का (स्कन्ध), तद्देसे-उसका देश, य-और, तप्पएसे-उसका प्रदेश, आहिए-कहे गये हैं, अहम्मे-अधर्मास्तिकाय का (स्कन्ध), य-और, तस्स-उसका, देसे-देश, य-और, तप्पएसे-उसका प्रदेश, आहिए-कहे गये हैं।

भावानुवाद-धर्मास्तिकाय के 1 स्कन्ध 2 देश तथा 3 प्रदेश और अधर्मास्तिकाय के 4 स्कन्ध 5 देश 6 प्रदेश।

6 अरूपी अजीव के शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।
अद्धासमए चेव, अरुवी दसहा भवे ॥६॥

संस्कृत छाया- आकाशं तस्य देशश्च, तत्प्रदेशश्चाख्यात ।
अद्धासमयश्चैव, अरूपिणो दशधा भवेयु ॥६॥

अन्वयार्थ-आगासे-आकाशास्तिकाय का, य-और, तस्स-उसका, देसे-देश, य-और, तप्पएसे-उसका प्रदेश, आहिए-कहे गये हैं, चेव-और, अद्धासमए-अद्धासमय-काल, इस प्रकार, अरूवी-अरूपी के, दसहा-दस भेद, भवे-होते हैं।

भावानुवाद-आकाशास्तिकाय और उसका 7 स्कन्ध, 8 देश, 9 प्रदेश तथा 10 अद्धासमय-काल तत्त्व ये सब मिला कर अरूपी जीव के दस भेद हैं।

7 क्षेत्र की दृष्टि से अरूपी द्रव्यो का निरूपण

मूल गाथा- धम्माधम्मे य दो चेव, लोगमित्ता वियाहिया।
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ॥७॥

संस्कृत छाया- धर्माऽधर्मौ च द्वौ चैव, लोकमात्रौ व्याख्यातौ।
लोकेऽलोके चाकाश, समय समयक्षेत्रिक ॥७॥

अन्वयार्थ-धम्म-धर्मास्तिकाय (और) अधम्मे-अधर्मास्तिकाय, दो-चेव-दोनों ही, लोगमित्ता-लोक मात्र प्रमाण, वियाहिया-कहे गये हैं, य-और, आगासे-आकाशास्तिकाय, लोगालोगे-लोकालोक प्रमाण, समए-समय (काल द्रव्य), समयखेत्तिए-समय क्षेत्रिक (ढाई द्वीप प्रमाण) है।

भावानुवाद-(क्षेत्र की दृष्टि से) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय लोक प्रमाण है और आकाशास्तिकाय लोक और अलोक में व्याप्त है, काल केवल समय क्षेत्र (अढाई द्वीप) में व्याप्त है।

8 काल से अजीव द्रव्य के अरूपी विभाग का वर्णन

मूल गाथा- धम्माधम्मागासा, तिण्णि वि एए अणाइया।
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्ध तु वियाहिया ॥८॥

संस्कृत छाया- धर्माऽधर्माऽऽकाशानि, त्रीण्यप्येतान्यनादीनि।
अपर्यवसितानि चैव, सर्वाद्ध तु व्याख्यातानि ॥८॥

अन्वयार्थ-धम्म-धर्म, अधम्म-अधर्म, तु-और, आगासा-आकाश, एए-ये, तिण्णि वि-तीनों ही, सव्वद्ध-सर्वकाल में अणाइया-अनादि, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, अनन्त वियाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद- काल की अपेक्षा धर्म, अधम और आकाश ये तीनो द्रव्य अनादि अपर्यवसित अनन्त हैं अर्थात सदाकाल शाश्वत हैं ऐसा भगवान् ने कहा है।

9 प्रवाह की अपेक्षा से काल का वर्णन

मूल गाथा- समए वि संतइ पप्प, एवमेव वियाहिए।
आएसं पप्प साईए,सपज्जवसिए वि य॥९॥

सस्कृत छाया- समयोऽपि संतति प्राप्य, एवमेव व्याख्यात ।
आदेश प्राप्य सादिक , सपर्यवसितोऽपि च॥९॥

अन्वयार्थ-समए-समय (काल द्रव्य), वि-भी, सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा, एवमेव-इसी प्रकार, वियाहिए-कहा गया है, य-और, आएस-आदेश की, पप्प-अपेक्षा, साईए-सादि और, सपज्जवसिए-सपर्यवसित सान्त, वि-भी है।

भावानुवाद-समय-काल भी निरन्तर प्रवाह की दृष्टि से अनादि अनन्त है, किन्तु किसी कार्य विशेष की अपेक्षा से अथवा नियत भिन्न क्षण की दृष्टि से सादि सान्त है।

10 रूपी अजीव-द्रव्य का निरूपण

मूल गाथा- खधा य खधदेसा य, तप्पएसा तहेव य।
परमाणुणो य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा॥१०॥

सस्कृत छाया- स्कन्धाश्च स्कन्धदेशाश्च, तत्प्रदेशास्तथैव च।
परमाणवश्च बोद्धव्या, रूपिणश्च चतुर्विधा ॥१०॥

अन्वयार्थ-य-और, खधा-स्कन्ध, य-और, खधदेसा-स्कन्ध के देश, य-और, तप्पएसा-स्कन्ध का प्रदेश, तहेव य-और, परमाणुणो-परमाणु पुद्गल (य-पादपूर्ति), चउव्विहा-ये चार भेद, रूविणो-रूपीद्रव्य के, बोद्धव्वा-जानने चाहिए।

भावानुवाद-(1) स्कन्ध (2) स्कन्ध के देश (3) उसके प्रदेश तथा (4) परमाणु, ये चार भेद रूपी द्रव्य के हैं।

11 स्कन्ध और परमाणु का लक्षण वर्णन

मूल गाथा- एगत्तेण पुहुत्तेण, खधा य परमाणु य।
लोएगदेसे लोए य, भइयव्वा ते उ खेत्तओ॥११॥

सस्कृत छाया- एकत्वेन पृथकत्वेन, स्कन्धाश्च पमाणवश्च।
लोकैकदेशे लोके च, भजनीयास्तेतु क्षेत्रत ॥११॥

अन्वयार्थ-एगत्तेण-परमाणुओ के एकत्व (मिलन) से, खधा-स्कन्ध बनता है, य-और, पुहुत्तेण-पृथक् रहने से, परमाणु-परमाणु कहलाता है, य-और, खेत्तओ-क्षेत्र से, उ-तो, ते-वे, लोएगदेसे-लोक के एक देश मे हैं, य-और, लोए-लोकव्यापी, भइयव्वा-भजना से रहते हैं।

भावानुवाद-द्रव्य की अपेक्षा जब अनेक परमाणु इकट्ठे-एकत्र मिल जाते हैं तो स्कन्ध होता है और जब ये अलग-

6 अरूपी अजीव के शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।
अद्धासमए चेव, अरुवी दसहा भवे ॥६॥

संस्कृत छाया- आकाश तस्य देशश्च, तत्प्रदेशश्चाख्यात ।
अद्धासमयश्चैव, अरूपिणो दशधा भवेयु ॥६॥

अन्वयार्थ-आगासे-आकाशास्तिकाय का, य-और, तस्स-उसका, देसे-देश, य-और, तप्पएसे-उसका प्रदश, आहिए-कहे गये हैं, चेव-और, अद्धासमए-अद्धासमय-काल, इस प्रकार, अरूवी-अरूपी के, दसहा-दस भेद, भवे-होते हैं।

भावानुवाद-आकाशास्तिकाय और उसका 7 स्कन्ध, 8 देश, 9 प्रदेश तथा 10 अद्धासमय-काल तत्त्व ये सब मिला कर अरूपी जीव के दस भेद हैं।

7 क्षेत्र की दृष्टि से अरूपी द्रव्यो का निरूपण

मूल गाथा- धम्माधम्मे य दो चेव, लोगमित्ता वियाहिया।
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ॥७॥

संस्कृत छाया- धर्माऽधर्मो च द्वौ चैव, लोकमात्रौ व्याख्यातौ।
लोकेऽलोके चाकाश, समय समयक्षेत्रिक ॥७॥

अन्वयार्थ-धम्म-धर्मास्तिकाय (और) अधम्मे-अधर्मास्तिकाय, दो-चेव-दोनों ही, लोगमित्ता-लोक मात्र प्रमाण, वियाहिया-कहे गये हैं, य-और, आगासे-आकाशास्तिकाय, लोगालोगे-लोकालोक प्रमाण, समए-समय (काल द्रव्य), समयखेत्तिए-समय क्षेत्रिक (ढाई द्वीप प्रमाण) है।

भावानुवाद-(क्षेत्र की दृष्टि से) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय लोक प्रमाण है और आकाशास्तिकाय लोक और अलोक में व्याप्त है, काल केवल समय क्षेत्र (अढाई द्वीप) में व्याप्त है।

8 काल से अजीव द्रव्य के अरूपी विभाग का वर्णन

मूल गाथा- धम्माधम्मागासा, तिण्णि वि एए अणाइया।
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्ध तु वियाहिया ॥८॥

संस्कृत छाया- धर्माऽधर्माऽऽकाशानि, त्रीण्यप्येतान्यनादीनि।
अपर्यवसितानि चैव, सर्वाद्ध तु व्याख्यातानि ॥८॥

अन्वयार्थ-धम्म-धर्म, अधम्म-अधर्म, तु-और, आगासा-आकाश, एए-ये, तिण्णि वि-तीनों ही, सव्वद्ध-सर्वकाल में, अणाइया-अनादि, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, अनन्त वियाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद- काल की अपेक्षा धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य अनादि अपर्यवसित अनन्त हैं अर्थात् सदाकाल शाश्वत हैं ऐसा भगवान् ने कहा है।

भावानुवाद-रूपी अजीव पुद्गलो की एक ही रूप मे या स्थान मे रहने की अपेक्षा जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल तक की कही गई है।

15 पुद्गल के अन्तर द्वार का वर्णन

मूल गाथा- **अणतकालमुक्कोस, इक्क समय जहण्णय।**
अजीवाण य रुवीण, अतरेय वियाहिय ॥१५॥

सस्कृत छाया- **अनन्तकालमुत्कृष्टम्, एक समय जघन्यकम्।**
अजीवाना च रूपिणाम्, अन्तरमिद व्याख्यातम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-रूवीण-रूपी, अजीवाण-अजीवा का, जहण्णय-जघन्य, अतरेय-अन्तर, इक्क-एक, समय-समय, य-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल, वियाहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-वे रूपी अजीव पुद्गल परस्पर अलग होकर पुन मिल जाए तो उसका अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक है।

16 भाव से स्कन्ध और परमाणु का निरूपण

मूल गाथा- **वण्णओ गधओ चेव, रसओ फासओ तहा।**
सठाणओ य विण्णेओ, परिणामो तेसि पचहा ॥१६॥

सस्कृत छाया- **वर्णतो गन्धतश्चैव, रसत स्पर्शतस्तथा।**
सस्थानतश्च विज्ञेय , परिणामस्तेषा पञ्चधा ॥१६॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसओ-रस से, तहा-और, फासओ-स्पर्श, य-और, सठाणओ-सस्थान से, तेसि-उन (रूपी-अजीव द्रव्यो का), पचहा-पाच प्रकार, परिणामो-परिणाम, विण्णेओ-जानना चाहिए।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से स्कन्ध आदि का परिणमन पाच प्रकार का है।

17 वर्ण-रग के अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **वण्णओ परिणया जे उ, पचहा ते पकित्तिया।**
किण्हा णीला य लोहिया, हालिद्दा सुक्किला तहा ॥१७॥

सस्कृत छाया- **वर्णत परिणता ये तु, पञ्चधा ते प्रकीर्तिता।**
कृष्णा नीलाश्च लोहिता , हरिद्रा शुक्लास्तथा ॥१७॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, किण्हा-कृष्ण-काला, उ-और, णीला-नीला, लोहिया-लोहित (लाल), य-और, हालिद्दा-हरिद्रा-पीला, तहा-और, सुक्किला-शुक्ल-श्वेत।

अलग हो जाते हैं तो परमाणु कहलाते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा से वे लोक के एक देश से लेकर सम्पूर्ण लोक तक में भाज्य हैं-वैकल्पिक हैं।

12 पुद्गल के क्षेत्र व काल विभाग का निर्देश

मूल गाथा- सुहुमा सव्व लोगम्मि, लोग देसे य बायरा।
इत्तो कालविभाग तु, तेसिं वुच्छं चउव्विह ॥12॥

संस्कृत छाया- सूक्ष्मा सर्व लोके, लोकदेशे च बादरा।
इत काल विभाग तु, तेषां वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥१२॥

अन्वयार्थ-सुहुमा-सूक्ष्म, सव्व लोगम्मि-समस्त लोक मे हैं, य-और, बायरा-बादर, लोगदेसे-लोक के एक देश में हैं, इत्तो-इसके आगे, तेसिं-उनका, चउव्विह-चार प्रकार का, कालविभाग-काल विभाग, वुच्छं-कहूगा।

भावानुवाद-सूक्ष्म परमाणु समस्त लोक में हैं और बादर-स्कन्ध लोक के एक देश मे हैं, इसके आगे इनका चार प्रकार से काल विभाग का कथन करूगा।

13 काल की अपेक्षा स्कन्ध और परमाणु के भेद प्रभेद

मूल गाथा- सतइं पप्प तेऽणाई, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥13॥

संस्कृत छाया- सन्ततिं प्राप्य तेऽनादय, अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥१३॥

अन्वयार्थ-ते-वे (स्कन्ध और परमाणु), सतइं-सन्तति (प्रवाह) की, पप्प-अपेक्षा, अणाई-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित (अनन्त) हैं, य-और, ठिइं-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि और, सपज्जवसिया-सपर्यवसित (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-वे स्कन्ध और परमाणु प्रवाह की अपेक्षा से अनादि और अनन्त हैं तथा स्थिति की अपक्षा से सादि सान्त हैं।

14 रूपी अजीव द्रव्य की स्थिति

मूल गाथा- असंखकालमुक्कोस, इक्क समय जहण्णिया।
अजीवाण य रुवीणं, ठिई एसा वियाहिया॥14॥

संस्कृत छाया- असंख्यकालमुत्कृष्टा, एक समय जघन्यका।
अजीवाना च रूपिणां, स्थितिरेषा व्याख्याता॥१४॥

अन्वयार्थ-रूवीणं-रूपी, अजीवाण-अजीवों की, जहण्णिया-जघन्य, ठिई-स्थिति, एक्कं-एक, समयं-समय, य-और, उक्कोसं-उत्कृष्ट, असंखकालं-असख्यात काल है, एसा-यह, वियाहिया-कहा गया है।

भावानुवाद-रूपी अजीव पुद्गलो की एक ही रूप में या स्थान मे रहने की अपेक्षा जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल तक की कही गई है।

15 पुद्गल के अन्तर द्वार का वर्णन

मूल गाथा- **अणतकालमुक्कोस, इक्क समय जहण्णय।**
अजीवाण य रुवीण, अतरेय वियाहिय ॥१५॥

सस्कृत छाया- **अनन्तकालमुत्कृष्टम्, एक समय जघन्यकम्।**
अजीवाना च रूपिणाम्, अन्तरमिद व्याख्यातम् ॥१५॥

अन्वयार्थ-रूवीण-रूपी, अजीवाण-अजीवो का, जहण्णय-जघन्य, अतरेय-अन्तर, इक्क-एक, समय-समय, य-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल, वियाहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-वे रूपी अजीव पुद्गल परस्पर अलग होकर पुन मिल जाए तो उसका अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक है।

16 भाव से स्कन्ध और परमाणु का निरूपण

मूल गाथा- **वण्णओ गधओ चेव, रसओ फासओ तहा।**
सठाणओ य विण्णेओ, परिणामो तेसि पचहा ॥१६॥

सस्कृत छाया- **वर्णतो गन्धतश्चैव, रसत स्पर्शतस्तथा।**
सस्थानतश्च विज्ञेय, परिणामस्तेषा पञ्चधा ॥१६॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसओ-रस से, तहा-और, फासओ-स्पर्श, य-और, सठाणओ-सस्थान से, तेसि-उन (रूपी-अजीव द्रव्यो का), पचहा-पाच प्रकार, परिणामो-परिणाम, विण्णेओ-जानना चाहिए।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से स्कन्ध आदि का परिणमन पाच प्रकार का है।

17 वर्ण-रग के अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **वण्णओ परिणया जे उ, पचहा ते पकित्तिया।**
किण्हा णीला य लोहिया, हालिद्दा सुक्किला तहा ॥१७॥

सस्कृत छाया- **वर्णत परिणता ये तु, पञ्चधा ते प्रकीर्तिता।**
कृष्णा नीलाश्च लोहिता, हरिद्रा शुक्लास्तथा ॥१७॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, किण्हा-कृष्ण-काला, उ-और, णीला-नीला, लोहिया-लोहित (लाल), य-और, हालिद्दा-हरिद्रा-पीला, तहा-और, सुक्किला-शुक्ल-श्वेत।

भावानुवाद-वर्ण से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल पाच प्रकार के हैं-(1) कृष्ण-काला, (2) नीला, (3) लोहित-रक्त, (4) हारिद्र-पीला और (5) शुक्ल।

18 गन्ध विषयक अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- गधओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया।
सुब्भिगधपरिणामा, दुब्भिगधा तहेव य ॥१८॥

संस्कृत छाया- गन्धत परिणता ये तु, द्विविधास्ते व्याख्याताः।
सुरभिगन्धपरिणामा, दुरभिगधस्तथैव च ॥१८॥

अन्वयार्थ-गधओ-गध रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो (रूपी अजीव), ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, सुब्भिगध-सुरभि गध, परिणामा-परिणाम वाले, तहेव य-और, दुब्भिगधा-दुरभिगन्ध परिणाम वाले।

भावानुवाद-गन्ध से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल दो प्रकार के हैं-(1) सुरभिगन्ध (2) दुरभिगन्ध।

19 रस विषयक अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- रसओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
तित्त कडुय कसाया, अम्बिला महुरा तहा ॥१९॥

संस्कृत छाया- रसत परिणता ये तु, पचधा ते प्रकीर्तिता।
तिक्ता कटुका कषाया, अम्ला मधुरास्तथा ॥१९॥

अन्वयार्थ-रसओ-रस रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो (रूपी अजीव) हैं, ते-वे, पंचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, तित्त-तीखा, कडुय-कडुआ, कसाया-कषैला और, अंबिला-आम्ल (खट्टा), तहा-और, महुरा-मधुर (मीठा)।

भावानुवाद-रस से परिणत स्कन्ध पुद्गल पाच प्रकार के हैं-(1) तिक्त, (2) कटु, (3) कषाय-कषैला, (4) अम्ल-खट्टा और (5) मधुर।

20 स्पर्श विषयक चार भेदों का वर्णन

मूल गाथा- फासओ परिणया जे उ, अट्ठहा ते पकित्तिया।
कक्खडा मउया चेव, गरुया लहुया तहा ॥२०॥

संस्कृत छाया- स्पर्शत परिणता ये तु, अष्टधा ते प्रकीर्तिता।
कर्कशा मृदुकाश्चैव, गुरुका लघुकास्तथा ॥२०॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो (रूपी अजीव) हैं, ते-वे, उ-तो, अट्ठहा-अठ

प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, कक्खडा-कर्कश, मउया-मृदु (कोमल), चेव-और, गरुया-गुरु (भारी), तहा-तथा, लहुया-लघु (हल्का)।

भावानुवाद-स्पर्श से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल आठ प्रकार के हैं-(1) कर्कश, (2) मृदु, (3) गुरु, (4) लघु।

21 स्पर्श विषयक शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **सीया उण्हा य णिद्धा य, तहा लुक्खा य आहिया।**
इइ फासपरिणया एए, पुग्गला समुदाहिया॥२१॥

संस्कृत छाया- **शीता उष्णाश्च स्निग्धाश्च, तथा रूक्षाश्चाख्याता ।**
इति स्पर्शपरिणता एते, पुद्गला समुदाहृता ॥२१॥

अन्वयार्थ-य-और, सीया-शीत (ठडा), य-और, उण्हा-उष्ण (गरम), तहा-तथा, णिद्धा-स्निग्ध, य-और, लुक्खा-रूक्ष (रूखा), आहिया-कहा है, इय-इस प्रकार, फासपरिणया-स्पर्श रूप से परिणत हुए, एए-ये, पुग्गला-पुद्गल, समुदाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-(5) शीत, (6) उष्ण, (7) स्निग्ध और (8) रूक्ष, इस प्रकार स्पर्श रूप से परिणत पुद्गल कहे गये हैं।

22 सस्थान विषयक अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **सठाणओ परिणया जे उ, पचहा ते पकित्तिया।**
परिमडला य वट्टा, तसा चउरसमायया॥२२॥

सस्कृत छाया- **सस्थानत परिणता ये तु, पञ्चधा ते प्रकीर्तिता ।**
परिमण्डलाश्च वृत्ताश्च, त्र्यस्राश्चतुरस्रा आयता ॥२२॥

अन्वयार्थ-सठाणओ-सस्थान रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे उ-जो (रूपी अजीव) हैं, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, परिमडला-परिमडल, वट्टा-वृत्त, य-और, तसा-त्र्यस्र, चउरस-चतुरस्र, य-और, आयया-आयत (लम्बा)।

भावानुवाद-सस्थान से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल पाच प्रकार के हैं-(1) परिमण्डल (चूडी जैसा गोल), (2) वृत्ताकार (गेंद जैसा गोल), (3) त्रिकोणाकार, (4) चतुर्भुज और (5) आयत-समचतुर्भुजाकार।

23 कृष्ण वर्ण का अन्य वर्णादि से परस्पर सम्बन्ध

मूल गाथा- **वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गधओ।**
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओ वि य॥२३॥

सस्कृत छाया- **वर्णतो यो भवेत्कृष्ण , भाज्य स तु गन्धत ।**
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२३॥

भावानुवाद-वर्ण से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल पाच प्रकार के हैं-(1) कृष्ण-काला, (2) नीला, (3) लोहित-रक्त, (4) हारिद्र-पीला और (5) शुक्ल।

18 गन्ध विषयक अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- गंधओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया।
सुब्भिगधपरिणामा, दुब्भिगधा तहेव य॥१८॥

सस्कृत छाया- गन्धत परिणता ये तु, द्विविधास्ते व्याख्याता ।
सुरभिगन्धपरिणामा, दुरभिगधस्तथैव च॥१८॥

अन्वयार्थ-गंधओ-गध रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो (रूपी अजीव), ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, सुब्भिगध-सुरभि गध, परिणामा-परिणाम वाले, तहेव य-और, दुब्भिगधा-दुरभिगन्ध परिणाम वाले।

भावानुवाद-गन्ध से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल दो प्रकार के हैं-(1) सुरभिगन्ध (2) दुरभिगन्ध।

19 रस विषयक अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- रसओ परिणया जे उ, पचहा ते पकित्तिया।
तित्त कडुय कसाया, अम्बिला महुरा तहा॥१९॥

सस्कृत छाया- रसत परिणता ये तु, पचधा ते प्रकीर्तिता ।
तिक्ता कटुका कषाया , अम्ला मधुरास्तथा॥१९॥

अन्वयार्थ-रसओ-रस रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो (रूपी अजीव) हैं, ते-वे, पंचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, तित्त-तीखा, कडुय-कडुआ, कसाया-कषैला और, अबिला-आम्ल (खट्टा), तहा-और, महुरा-मधुर (मीठा)।

भावानुवाद-रस से परिणत स्कन्ध पुद्गल पाच प्रकार के हैं-(1) तिक्त, (2) कटु, (3) कषाय-कषैला, (4) अम्ल-खट्टा और (5) मधुर।

20 स्पर्श विषयक चार भेदो का वर्णन

मूल गाथा- फासओ परिणया जे उ, अट्ठहा ते पकित्तिया।
कक्खडा मउया चेव, गरुया लहुया तहा॥२०॥

सस्कृत छाया- स्पर्शत परिणता ये तु, अष्टधा ते प्रकीर्तिता ।
कर्कशा मृदुकाश्चैव, गुरुका लघुकास्तथा॥२०॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे-जो (रूपी अजीव) हैं, ते-वे, उ-तो, अट्ठहा-आठ

प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, कक्खडा-कर्कश, मउया-मृदु (कोमल), चेव-और, गरुया-गुरु (भारी), तहा-तथा, लहुया-लघु (हल्का)।

भावानुवाद-स्पर्श से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल आठ प्रकार के हैं-(1) कर्कश, (2) मृदु, (3) गुरु, (4) लघु।

21 स्पर्श विषयक शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **सीया उण्हा य णिद्धा य, तहा लुक्खा व आहिया।**
इइ फासपरिणया एए, पुग्गला समुदाहिया॥२१॥

सस्कृत छाया- **शीता उष्णाश्च स्निग्धाश्च, तथा रूक्षाश्चाख्याता ।**
इति स्पर्शपरिणता एते, पुद्गला समुदाहृता ॥२१॥

अन्वयार्थ-य-और, सीया-शीत (ठडा), य-और, उण्हा-उष्ण (गरम), तहा-तथा, णिद्धा-स्निग्ध, य-और, लुक्खा-रूक्ष (रूखा), आहिया-कहा है, इय-इस प्रकार, फासपरिणया स्पर्श रूप से परिणत हुए, एए-ये पुग्गला-पुद्गल, समुदाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-(5) शीत, (6) उष्ण, (7) स्निग्ध और (8) रूक्ष, इस प्रकार स्पर्श रूप से परिणत पुद्गल कहे गये हैं।

22 सस्थान विषयक अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **सठाणओ परिणया जे उ, पचहा ते पकित्तिया।**
परिमडला य वट्टा, तसा चउरसमायया॥२२॥

सस्कृत छाया- **सस्थानत परिणता ये तु, पञ्चधा ते प्रकीर्तिता ।**
परिमण्डलाश्च वृत्ताश्च, त्र्यस्राश्चतुरस्रा आयता ॥२२॥

अन्वयार्थ-सठाणओ-सस्थान रूप से, परिणया-परिणत हुए, जे उ-जो (रूपी अजीव) हैं, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, परिमडला-परिमडल, वट्टा-वृत्त, य-और, तसा-त्र्यस्र, चउरस-चतुरस्र, य-और, आयया-आयत (लम्बा)।

भावानुवाद-सस्थान से परिणत स्कन्ध आदि पुद्गल पाच प्रकार के हैं-(1) परिमण्डल (चूडी जैसा गोल), (2) वृत्ताकार (गेंद जैसा गोल), (3) त्रिकोणाकार, (4) चतुर्भुज और (5) आयत-समचतुर्भुजाकार।

23 कृष्ण वर्ण का अन्य वर्णादि से परस्पर सम्बन्ध

मूल गाथा- **वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गधओ।**
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओ वि य॥२३॥

सस्कृत छाया- **वर्णतो यो भवेत्कृष्ण , भाज्य स तु गन्धत ।**
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२३॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वण से, जे-जो, किण्हे-कृष्ण (काला), भवे-होता है, से उ-उसकी गधओ-गध म, भइए-भजना समझना, चेव-और, ठ-इसी प्रकार, रसो-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना, समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से कृष्ण है, उनम दो गन्ध, पाच रस, आठ स्पश, पाच सस्थान इस प्रकार 20 बोलो की भजना जानना चाहिए अर्थात् अनेक विकल्प जानना चाहिए।

24 नील वर्ण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सबध

मूल गाथा- वण्णओ जे भवे णीले, भइए से उ गधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२४॥

सस्कृत छाया- वर्णतो यो भवेन्नील , भाज्य स तु गन्धत ।
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२४॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, जे उ-जो, णीले-नीला, भवे-होता है, से ठ-उसकी, गधओ-गध से, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), रसो-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान स वि भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से नील है, उसम गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

25 रक्त वर्ण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२५॥

सस्कृत छाया- वर्णतो लोहितो यस्तु, भाज्य स तु गन्धत ।
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२५॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, जे उ-जो पुद्गल, लोहिए-लोहित (लाल) है, से उ-उसकी, गधओ-गन्ध से, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श स, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना, समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से लाल है, उसमें गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

26 पीत वण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२६॥

सस्कृत छाया- वर्णत पीतो यस्तु, भाज्य स तु गन्धत ।
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२६॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, जे उ-जो पुद्गल, पीयए-पीला है, से उ-उसकी, गधओ-गन्ध से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से पीत है, उसमे गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

27 शुक्ल वर्ण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गधओ।**
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२७॥

सस्कृत छाया- **वर्णत शुक्लो यस्तु, भाज्य स तु गन्धत ।**
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२७॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, जे उ-जो पुद्गल, सुक्किले-शुक्ल (श्वेत) है, से उ-उसकी, गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से शुक्ल-सफेद है, उसमे गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

28 सुगन्ध युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **गधओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ वण्णओ।**
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२८॥

सस्कृत छाया- **गन्धतो यो भवेत् सुरभि , भाज्य स तु वर्णत ।**
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२८॥

अन्वयार्थ-गधओ-गन्ध से, जे उ-जो पुद्गल, सुब्भी-सुरभि वाला, भवे-होता है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भज[illegible]झना, चेव-और (इसी प्रकार), रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-[illegible] ए-भजना समझनी चाहिए।

[illegible] -अपेक्षा सुगन्धित है उसमे वर्ण, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी

[illegible] से

[illegible], भइए से उ वण्णओ।
भइए सठाणओवि य॥२९॥

[illegible], भाज्य स तु वर्णत ।
[illegible] सस्थानतोऽपि च॥२९॥

[illegible] दुरभि (दुर्गन्ध) वाला, भवे-होता है, से उ-उसकी, वण्णओ-

अन्वयार्थ-वण्णओ-वण से, जे-जो, किण्हे-कृष्ण (काला), भवे-होता है, से उ-उसकी, गधओ-गध से, भइए-भजना समझना, चेव-और, उ-इसी प्रकार, रसो-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना, समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से कृष्ण है, उनमे दा गन्ध, पाच रस, आठ स्पर्श, पाच सस्थान इस प्रकार 20 बोलों की भजना जानना चाहिए अर्थात् अनेक विकल्प जानना चाहिए।

24 नील वर्ण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सबध

मूल गाथा- वण्णओ जे भवे णीले, भइए से उ गधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२४॥

सस्कृत छाया- वर्णतो यो भवेन्नील, भाज्य स तु गन्धत।
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२४॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण स, जे उ-जा, णीले-नीला, भवे-होता है, से उ-उसकी, गधओ-गध से, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), रसो-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण स नील है, उसम गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

25 रक्त वर्ण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२५॥

सस्कृत छाया- वर्णतो लोहितो यस्तु, भाज्य स तु गन्धत।
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२५॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण स, जे उ-जो पुद्गल, लोहिए-लोहित (लाल) है, से उ-उसकी, गंधआ-गन्ध स, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श स, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना, समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से लाल है, उसमे गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

26 पीत वण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि स सम्बन्ध

मूल गाथा- वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२६॥

सस्कृत छाया- वर्णत पीतो यस्तु, भाज्य स तु गन्धत।
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२६॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, जे उ-जो पुद्गल, पीयए-पीला है, से उ-उसकी, गधओ-गन्ध से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से पीत है, उसमे गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

27 शुक्ल वर्ण युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गधओ।**
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२७॥

सस्कृत छाया- **वर्णत शुक्लो यस्तु, भाज्य स तु गन्धत ।**
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२७॥

अन्वयार्थ-वण्णओ-वर्ण से, जे उ-जो पुद्गल, सुक्किले-शुक्ल (श्वेत) है, से उ-उसकी, गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से शुक्ल-सफेद है, उसमे गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

28 सुगन्ध युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **गधओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ वण्णओ।**
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२८॥

सस्कृत छाया- **गन्धतो यो भवेत् सुरभि , भाज्य स तु वर्णत ।**
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२८॥

अन्वयार्थ-गधओ-गन्ध से, जे उ-जो पुद्गल, सुब्भी-सुरभि वाला, भवे-होता है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल गन्ध की अपेक्षा सुगन्धित है उसमे वर्ण, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

29 दुर्गन्ध युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **गधओ जे भवे दुब्भी, भइए से उ वण्णओ।**
रसओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥२९॥

सस्कृत छाया- **गन्धतो यो भवेद्दुरभि , भाज्य स तु वर्णत ।**
रसत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥२९॥

अन्वयार्थ-गधओ-गन्ध से, जे उ-जो पुद्गल, दुब्भी-दुरभि (दुर्गन्ध) वाला, भवे-होता है, से उ-उसकी, वण्णओ-

वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इस प्रकार), रसओ-रस से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल वर्ण से शुक्ल-सफेद है, उसमे गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की भजना समझना चाहिए।

30 तिक्त रस युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- रसओ तित्तए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३०॥

सस्कृत छाया- रसतस्तिक्तो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३०॥

अन्वयार्थ-रसओ-रस से, जे उ-जो पुद्गल, तित्तए-तिक्त (तीखा) है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल रस से तिक्त-तीखा है उसमें वर्ण, गन्ध, स्पर्श और सस्थान की भजना समझना चाहिए।

31 कटुक रस युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- रसओ कडुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३१॥

सस्कृत छाया- रसत कटुको यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३१॥

अन्वयार्थ-रसओ-रस से, जे उ-जो पुद्गल, कडुए-कटुक (कडुआ) है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल रस से कटु है उसमें वर्ण, गन्ध, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

32 कषाय रस युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३२॥

सस्कृत छाया- रसत कषायो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३२॥

अन्वयार्थ-रसओ-रस से, जेउ-जो पुद्गल, कसाए-कषैला है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी,

भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल रस से कसैला है उसमे वर्ण, गन्ध, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

33 आम्ल रस युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- रसओ अम्बिले जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३३॥

सस्कृत छाया- रसत आम्लो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३३॥

अन्वयार्थ-रसओ-रस से, जे उ-जो पुद्गल, अबिले-अम्ल है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और, गधओ-गन्ध से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल रस से अम्ल-खट्टा है उसमें वर्ण, गन्ध, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

34 मधुर रस युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- रसओ महुरए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ फासओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३४॥

सस्कृत छाया- रसतो मधुरो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धत स्पर्शतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३४॥

अन्वयार्थ-रसओ-रस से, जे उ-जो पुद्गल, महुरए-मधुर है, से उ-उसका, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, फासओ-स्पर्श से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल रस से मधुर है उसमे वर्ण, गन्ध, स्पर्श और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

35 कर्कश स्पर्श युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३५॥

सस्कृत छाया- स्पर्शत कर्कशो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३५॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से, जे उ-जो पुद्गल, कक्खडे-कर्कश स्पर्श वाला है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और, गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी,

भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल स्पर्श से ककश है उसमे वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

36 मृदु स्पर्श युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३६॥

सस्कृत छाया- स्पर्शत मृदुको यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३६॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से, जे उ-जो पुद्गल, मउए-मृदु स्पर्श वाला है, सेउ-उसकी, वण्णओ-वर्ण स, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ-सस्थान स, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल स्पर्श से मृदु-कामल है, उसमे वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

37 गुरु स्पर्शयुक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३७॥

सस्कृत छाया- स्पर्शत गुरुको यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३७॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से, जे उ-जो पुद्गल, गुरुए-गुरु (भारी) स्पर्श वाला है, से उ-उसकी, वण्णओ वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और, उ-इसी प्रकार, गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जा पुद्गल स्पर्श से गुरु-भारी है उसमे वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

38 लघु स्पर्श युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३८॥

सस्कृत छाया- स्पर्शत लघुको यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३८॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से, जे उ-जा पुद्गल, लहुए-लघु है, से उ-उसकी, वण्णओ-वण से, भइए-भजना

समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल स्पर्श से लघु-हल्का है उसमे वर्ण, गन्ध, रस ओर सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

39 शीत स्पर्श युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ।**
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥३९॥

सस्कृत छाया- **स्पर्शत शीतो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।**
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥३९॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से जे उ-जो पुद्गल, सीयए-शीतल है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना, समझना चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल स्पर्श से शीत-ठण्डा है उसमे वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

40 उष्ण स्पर्श युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ।**
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥४०॥

सस्कृत छाया- **स्पर्शत उष्णो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।**
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥४०॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से, जे उ-जो पुद्गल, उण्हए-उष्ण है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल स्पर्श से उष्ण-गर्म हे उसमे वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

41 स्निग्ध स्पर्श युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- **फासओ णिद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ।**
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥४१॥

सस्कृत छाया- **स्पर्शत स्निग्धो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।**
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥४१॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से, जे उ-जो पुद्गल, णिद्धए-स्निग्ध (चिकना) है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से,

भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल स्पर्श से स्निग्ध है उसमें वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

42 रूक्ष स्पर्श युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए सठाणओवि य॥४२॥

सस्कृत छाया- स्पर्शत रूक्षो यस्तु, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य सस्थानतोऽपि च॥४२॥

अन्वयार्थ-फासओ-स्पर्श से, जे उ-जो पुद्गल, लुक्खए-लूखा है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध स, रसओ-रस से, य-और, सठाणओ-सस्थान से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल स्पर्श से रूक्ष है उसमें वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान की भजना समझनी चाहिए।

43 परिमण्डल सस्थान युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- परिमण्डलसठाणे, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए फासओवि य॥४३॥

सस्कृत छाया- परिमण्डलसस्थान , भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य स्पर्शतोऽपि च॥४३॥

अन्वयार्थ-परिमण्डल-परिमडल, सठाणे-सस्थान वाले, से उ-पुद्गल मे, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, फासओ-स्पर्श से, वि-भी, भइए भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल सस्थान से परिमण्डल है उसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की भजना समझनी चाहिए।

44 वृत्त संस्थान युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- सठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओवि य॥४४॥

सस्कृत छाया- सस्थानतो भवेद् वृत्त , भाज्य स तु वर्णतः।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य स्पर्शतोऽपि च॥४४॥

अन्वयार्थ-संठाणओ-सस्थान से, जे उ-जो पुद्गल, वट्टे-वृत्ताकार (गोलाकार), भवे-होता है, से उ-उसकी,

वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना, समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, फासओ-स्पर्श से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल सस्थान से वृत्त है उसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की भजना समझनी चाहिए।

45 त्रिकोण सस्थान युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- सठाणओ भवे तसे, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए फासओवि य ॥४५॥

सस्कृत छाया- सस्थानतो भवेत्त्र्यस्त्रो, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य स्पर्शतोऽपि च ॥४५॥

अन्वयार्थ-सठाणओ-सस्थान से, जो पुद्गल, तसे-त्र्यस्त्र (त्रिकोण), भवे-होता है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, फासओ-स्पर्श से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल सस्थान से त्रिकोण है, उसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की भजना समझनी चाहिए।

46 चतुष्कोण सस्थान युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- सठाणओ य चउरसे, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए फासओवि य ॥४६॥

सस्कृत छाया- सस्थानतो यश्चतुरस्त्र, भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य स्पर्शतोऽपि च ॥४६॥

अन्वयार्थ-सठाणओ-सस्थान से जो पुद्गल, चउरसे-चतुरस्त्र (चतुष्कोण) है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए-भजना समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, फासओ-स्पर्श से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल सस्थान से चतुष्कोण है, उसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की भजना समझनी चाहिए।

47 आयत सस्थान युक्त पुद्गल का अन्य वर्णादि से सम्बन्ध

मूल गाथा- जे आययसठाणे, भइए से उ वण्णओ।
गधओ रसओ चेव, भइए फासओवि य ॥४७॥

सस्कृत छाया- य आयतसस्थान , भाज्य स तु वर्णत ।
गन्धतो रसतश्चैव, भाज्य स्पर्शतोऽपि च ॥४७॥

अन्वयार्थ-जे-जो पुद्गल, आययसठाणे-आयत सस्थान वाला है, से उ-उसकी, वण्णओ-वर्ण से, भइए

समझना, चेव-और (इसी प्रकार), गधओ-गन्ध से, रसओ-रस से, य-और, फासओ-स्पर्श से, वि-भी, भइए-भजना समझनी चाहिए।

भावानुवाद-जो पुद्गल सस्थान से आयत है, उसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की भजना समझनी चाहिए।

48 उपसहार एव जीव द्रव्य के वर्णन का प्रस्ताव

मूल गाथा- एसा अजीवविभत्ती, समासेण वियाहिया।
इत्तो जीवविभत्ति, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥४८॥

सस्कृत छाया- एषाऽजीवविभक्ति समासेन व्याख्याता।
इतो जीवविभक्ति, वक्ष्याम्यनुपूर्व्या ॥४८॥

अन्वयार्थ-एसा-यह, अजीवविभत्ती-अजीव विभक्ति (विभाग), समासेण-सक्षेप से, वियाहिया-कहा गया है इत्तो-इससे आगे, अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, जीवविभत्ति-जीव विभक्ति को, वुच्छामि-कहूगा।

भावानुवाद-यह सक्षेप मे अजीव विभाग का प्ररूपण किया गया है अब जीव विभाग का क्रमश निरूपण करूगा।

49 जीव तत्त्व के विभाग का वर्णन

मूल गाथा- ससारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया।
सिद्धाऽणेगविहा वुत्ता, त मे कित्तयओ सुण ॥४९॥

सस्कृत छाया- ससारस्थाश्च सिद्धाश्च, द्विविधा जीवा व्याख्याता।
सिद्धा अनेकविधा उक्ता, तान् मे कीर्तयत श्रृणु ॥४९॥

अन्वयार्थ-जीवा-जीव, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, ससारत्था-ससारस्थ (ससारी), य-और, सिद्धा-सिद्ध, य-और, सिद्धा-सिद्ध, अणेगविहा-अनेक प्रकार के, वुत्ता-कहे गये हैं, त-उनको, कित्तयओ-कीर्तन करते हुए, म-मुझसे, सुण-सनो।

भावानुवाद-सर्वज्ञो ने जीव तत्त्व के प्रमुख दो भेद कहे है-ससारी और सिद्ध। उनमे से सिद्ध जीवो के अनेक भेद हैं, उनका कथन करता हू, ध्यान पूर्वक सुनो।

50 उपाधिभेद से सिद्धो मे होने वाले भेद

मूल गाथा- इत्थी पुरिससिद्धा य, तहेव य णपुसगा।
सलिगे अण्णलिगे य, गिहिलिगे तहेव य ॥५०॥

सस्कृत छाया- स्त्री पुरुषसिद्धाश्च, तथैव च नपुसका।
स्वलिगा अन्यलिगाश्च, गृहीलिगास्तथैव च ॥५०॥

अन्वयार्थ-इत्थी-स्त्रीलिग सिद्ध, य-और पुरिस सिद्धा-पुरुषलिग सिद्धा, तहेव-उसी प्रकार, णपुंसगा-नपुसक

लिग सिद्ध, य-और, सलिगे-स्वलिग सिद्ध, य-ओर, अण्णलिगे-अन्यलिग सिद्ध, गिहिलिगे-गृहस्थ लिग सिद्ध, तहेव-तीर्थादि इसी प्रकार सिद्धो के भेद ह।

भावानुवाद-स्त्री लिग सिद्ध, पुरुष लिग सिद्ध, नपुसकलिग सिद्ध तथा स्वलिग, अन्य लिग सिद्ध एव गृहलिग सिद्ध।

51 क्षेत्र सिद्धो की अवगाहना का वर्णन

मूल गाथा- **उक्कोसोगाहणाए य, जहण्णमज्झिमाइ य।**
उड्ढ अहे य तिरिय च, समुद्दम्मि जलम्मि य॥५१॥

सस्कृत छाया- **उत्कृष्टावगाहनायाच, जघन्यमध्यमयोश्च।**
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्, च समुद्रे जले च॥५१॥

अन्वयार्थ-जहण्ण-मज्झिमाइ-जघन्य-मध्यम, य-और, उक्कोसो गाहणाए-उत्कृष्ट अवगाहना मे सिद्ध हो सकते है, य-और, उड्ढ-उर्ध्वलोक मे, अहे-अधोलोक मे, य-और, तिरिय-तिर्यक् लोक मे, य-तथा, समुद्दम्मि-समुद्र मे, च-और, जलम्मि-जलाशय मे (सिद्ध हो सकते हैं)।

भावानुवाद-उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम अवगाहना मे एव ऊर्ध्वलोक मे, अधोलोक मे, तिर्यक् लोक मे तथा समुद्र एव अन्य जलाशयो मे जीव सिद्ध होते हैं।

52 एक समय मे होने वाले सिद्धो की सख्या

मूल गाथा- **दस य णपुसेसु, वीस इत्थियासु य।**
पुरिसेसु य अट्ठसय, समएणेगेण सिज्झई॥५२॥

सस्कृत छाया- **दश च नपुसेसु, विशति स्त्रीषु च।**
पुरुषेषु चाष्टाधिकशत, समये एकस्मिन् सिध्यन्ति॥५२॥

अन्वयार्थ-एगेण-एक, समएण-समय मे, दस-दस, णपुसेसु-नुपसक लिग मे, य-और, वीस-बीस, इत्थियासु-स्त्रीलिग मे, य-और, पुरिसेसु य-पुरुष लिग मे, अट्ठसय-एक सौ आठ, सिज्झई-सिद्ध हो सकते हैं।

भावानुवाद-एक समय मे अधिक से अधिक दस नपुसक, बीस स्त्रिया एव एक सौ आठ पुरुष सिद्ध हो सकते हैं।

53 गृहस्थलिगादि की एक समय मे सख्या

मूल गाथा- **चत्तारि य गिहिलिगे, अण्णलिंगे दसेव य।**
सलिगेण य अट्ठसय, समएणेगेण सिज्झई॥५३॥

सस्कृत छाया- **चत्वारश्च गृहलिगे, अन्यलिगे दशैव च।**
स्वलिगेनाष्टाधिकशत, समये एकस्मिन् सिध्यन्ति॥५३॥

अन्वयार्थ-एगेण-एक, समएण-समय में, गिहिलिगे-गृहस्थ लिग में, चत्तारि-चार, य-और, अण्णलिंगे-अन्यलिग म, दसेव-दस, य-और, सलिगेण-स्वलिग मे, अट्ठसय-एक सौ आठ, सिज्झइ-सिद्ध हो सकते हैं।

भावानुवाद-एक समय में अधिक से अधिक गृहस्थ लिग में चार, अन्य लिग मे दस, स्वलिग में एक सौ आठ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

54 अवगाहना की अपेक्षा से सिद्धो की सख्या

मूल गाथा- उक्कोसोगाहणाए, य सिज्झते जुगव दुवे।
चत्तारि जहण्णाए, मज्झेऽट्ठुत्तर सयं ॥५४॥

सस्कृत छाया- उत्कृष्टावगाहनायाय, सिध्यतो युगपद् द्वौ।
चत्वारो जघन्याया, मध्येअष्टोत्तर शतम् ॥५४॥

अन्वयार्थ-जुगव-युगपत (एक समय) में, उक्कोसोगाहणाए-उत्कृष्ट अवगाहना से, दुवे-दो, जहण्णाए-जघन्य अवगाहना से, चत्तारि-चार, य-और, मज्झे-मध्यम अवगाहना मे, अट्ठुत्तर सय-एक सौ आठ, सिज्झते-सिद्ध हो सकते हैं।

भावानुवाद-एक समय में एक साथ अधिक से अधिक उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य अवगाहना मे चार और मध्यम अवगाहना वाले एक सौ आठ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

55 क्षेत्र की अपेक्षा से सिद्धो की सख्या

मूल गाथा- चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे,
तओ जले वीसमहे तहेव य।
सय च अट्ठुत्तर तिरियलोए,
समएणेगेण उ सिज्झई धुव ॥५५॥

सस्कृत छाया- चत्वार ऊर्ध्वलोके च द्वौ समुद्रे,
त्रयो जले विशतिअधस्तथैव च।
शतचाष्टोत्तर तिर्यग्लोके,
समये एकस्मिन् सिध्यन्ति ध्रुवम् ॥५५॥

अन्वयार्थ-एगेण-एक, समएण-समय में, उड्ढलोए-ऊर्ध्वलोक में, चउर-चार, समुद्दे-समुद्र में, दुवे-दो, य-और, जले-जलाशयों आदि से, तओ-तीन, तहेव य-और, अहे-अधोलोक में, वीसं-बीस, च-और, तिरियलोए-तिर्यग्लोक में, अट्ठुत्तर सयं-एक सौ आठ, धुव-निश्चय ही, सिज्झइ-सिद्ध हो सकते हैं।

भावानुवाद-ऊर्ध्व लोक (मेरु पर्वत की चूलिका आदि पर) में चार, समुद्र में दो, नदी, जलाशय आदि के जल में तीन, अधोलोक में बीस और तिर्यक्लोक में एक सौ आठ जीव एक समय में सिद्ध हो सकते हैं।

56 सिद्ध स्थान सम्बन्धी प्रश्न

मूल गाथा- कहि पडिहया सिद्धा? कहि सिद्धा पइट्ठिया?
कहिं बोंदिं चइत्ताण? कत्थ गतूण सिज्झई॥५६॥

संस्कृत छाया- क्व प्रतिहता सिद्धा, क्व सिद्धा प्रतिष्ठिता।
क्व शरीर त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिध्यन्ति॥५६॥

अन्वयार्थ-सिद्धा-सिद्ध, कहिं-कहा पर, पडिहया-प्रतिहत (रुकते) हैं, सिद्धा-सिद्ध, कहिं-कहा पर, पइट्ठिया-प्रतिष्ठित-स्थित हैं, कहिं-कहा पर, बोंदि-शरीर को, चइत्ताण-छोड कर, कत्थ-कहा पर, गतूण-जाकर, सिज्झइ-सिद्ध होते हैं।

भावानुवाद-सिद्ध आत्माए ऊपर जाकर कहा रुकी हैं। सिद्ध कहा प्रतिष्ठित-ठहरे हुए हैं? शरीर को कहा छोड कर, कहा जाकर सिद्ध हुए हैं।

57 प्रश्नो का प्रत्युत्तर

मूल गाथा- अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इह बोंदि चइत्ताण, तत्थ गतूण सिज्झई॥५७॥

संस्कृत छाया- अलोके प्रतिहता सिद्धा, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता।
इह शरीर त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिध्यन्ति॥५७॥

अन्वयार्थ-सिद्धा-सिद्ध, अलोए-अलोक मे, पडिहया-प्रतिहत (रुकते) हैं, य-और, लोयग्गे-लोक के अग्रभाग मे, पइट्ठिया-प्रतिष्ठित-स्थित हैं, इह-इस (तिर्यग्लोक) मे, बोंदि-शरीर को, चइत्ताण-छोड कर, तत्थ-लोक के अग्रभाग में, गतूण-जाकर, सिज्झइ-सिद्ध होते हैं।

भावानुवाद-सिद्ध जीव अलोक की सीमा मे (लोक के अन्त मे) रुके हुए हैं-लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित हैं। मनुष्य लोक मे अपना शरीर छोडकर लोक के अग्रभाग में जाकर सिद्ध होते हैं।

58 प्राग्भारा पृथ्वी के सस्थान एव वर्णादि का विषय

मूल गाथा- बारसहिं जोयणेहि, सव्वट्ठस्सुवरिं भवे।
ईसिपब्भारणामा उ, पुढवी छत्तसठिया॥५८॥

संस्कृत छाया- द्वादशभिर्योजनै, सर्वार्थस्योपरि भवेत्।
ईषत्प्रागभारनाम्नी तु, पृथिवी छत्रसस्थिता॥५८॥

अन्वयार्थ-सव्वट्ठस्स-सर्वार्थ सिद्ध विमान के, बारसहिं-बारह, जोयणेहिं-योजन, उवरिं-ऊपर, छत्तसठिया-छत्र के आकार म अवस्थित, ईसिपब्भारणामा-ईषत्प्राग्भार नाम वाली, पुढवी-पृथ्वी, भवे-है।

भावानुवाद-सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर उत्ताण छत्र के आकार की ईषत् प्राग्भार नाम की एक सिद्ध शिला-पृथ्वी है।

59 स्थान की लम्बाई चौड़ाई और परिधि

मूल गाथा- पणयालसयसहस्सा, जोयणाणं तु आयया।
तावइय चेव विथिण्णा, तिगुणो तस्सेव परिरओ ॥५९॥

संस्कृत छाया- पञ्चत्वारिंशत्शतसहस्राणि, योजनानां त्वायता।
तावती चैव विस्तीर्णा, त्रिगुणस्तस्यैव परिरय ॥५९॥

अन्वयार्थ-तु-वह, पणयालसयसहस्सा-पैंतालीस लाख, जोयणाण-योजन, आयया-लम्बी है, चव-और, तावइय उतनी ही (पैंतालीस लाख योजन), वित्थिण्णा-विस्तीर्ण (चौडी) है, तस्सेव परिरओ-उसकी परिधि, तिगुणो-(साहिय-कुछ अधिक) तीन गुनी है।

भावानुवाद-यह सिद्धशिला पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी है और उतनी ही चौडी है। उसकी परिधि कुछ अधिक तीन गुनी है।

60 स्थान की स्थूलता एव सूक्ष्मता का वर्णन

मूल गाथा- अट्ठजोयणबाहल्ला, सा मज्झम्मि वियाहिया।
परिहायति चरिमते, मच्छियपत्ता उ तणुयरी ॥६०॥

संस्कृत छाया- अष्टयोजनबाहुल्या सा, मध्ये व्याख्याता ।
परिहीयमाणा चरमान्ते, मक्षिकापत्रात्तु तनुतरा ॥६०॥

अन्वयार्थ-सा-यह सिद्धशिला, मज्झम्मि-मध्य म, अट्ठजोयण-आठ योजन, बाहल्ला-मोटी, वियाहिया-कही गई है, उ-और, परिहायति-चारों ओर से कम होती हुई, चरिमते-अन्त मे, मच्छियपत्ता-मक्खी के पख से भी, तणुयरी-तनुतरी (पतली) हो गई है।

भावानुवाद-यह सिद्धशिला मध्य मे आठ योजन स्थूल (मोटी) है, फिर चारो ओर से क्रमश कम होती हुई अन्त में मक्खी के पख से भी अधिक पतली हो जाती है।

61 पृथ्वी के स्वभाव का वणन

मूल गाथा- अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी णिम्मला सहावेण।
उत्ताणगछत्तसठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥६१॥

संस्कृत छाया- अर्जुनसुवर्णकमयी, सा पृथिवी निर्मला स्वभावेन।
उत्तानकच्छत्रसस्थिता च, भणिता जिनवरै ॥६१॥

अन्वयार्थ-सा-यह पुढवी-पृथ्वी, अज्जुण-श्वेत, सुवण्णगमई-सुवणमयी (और), सहावेण-स्वभाव से ही, णिम्मला-निर्मल है, य-और, उत्ताणग-उत्तानक, छत्त-छत्रक, सठिया-सस्थान आकार वाली, जिणवरेहिं-

जिनेन्द्रो द्वारा, भणिया-कही गई है।

भावानुवाद-वह ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी अर्जुन नामक श्वेत स्वर्ण जैसी स्वभाव से अत्यन्त निर्मल हे, उत्तान छत्राकार है-ऐसा जिनेश्वरो ने कहा है।

62 पृथ्वी के गुणो की तुलना

मूल गाथा- **सखककुदसकासा, पण्डुरा णिम्मला सुहा।**
सीयाए जोयणे ततो, लोयतो उ वियाहिओ॥६२॥

सस्कृत छाया- **शखाककुन्दसकाशा, पाण्डुरा निर्मला शुभा।**
सीताया योजने तत , लोकान्तस्तु व्याख्यात ॥६२॥

अन्वयार्थ-वह, **सख**-शख **अक**-अक रत्न, **उ**-और, **कुद**-कुन्दफल के, **सकासा**-समान, **पडुरा**-पाण्डुरा-श्वेत, **णिम्मला**-निर्मल हैं, **तत्तो**-उस, **सीयाए**-सीता (ईषत्प्राग्भारा) पृथ्वी से, **जोयणे**-एक योजन ऊपर, **लोयतो**-लोक का अन्त, **वियाहिओ**-कहा गया है।

भावानुवाद-वह सिद्धशिला शख, अक, रत्न, मुकुन्द पुष्प के समान श्वेत है, अत्यन्त सुन्दर निर्मल और शुभ है। इस सीता नामक ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी से एक योजन ऊपर लोक का अन्त बतलाया है।

63 लोकान्त मे सिद्ध जीवो की स्थिति

मूल गाथा- **जोयणस्स उ जो तस्स, कोसो उवरिमो भवे।**
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे॥६३॥

सस्कृत छाया- **योजनस्य तु यस्तत्र, कोश उपरिवर्ती भवेत्।**
तस्य कोशस्य षड्भागे, सिद्धानामवगाहना भवेत्॥६३॥

अन्वयार्थ-तत्थ-वहा, **जोयणस्स**-योजन का, **जो**-जो, **उवरिमो**-ऊपर वाला, **कोसो**-कोस, **भव**-है, **तस्स**-उस, **कोसस्स**-कोस के, **छब्भाए**-छठे भाग मे, **सिद्धाणोगाहणा**-सिद्धा की अवगाहना (अवस्थित), **भवे**-है।

भावानुवाद-वहा योजन का जो ऊपर वाला अन्तिम कोस है, उस कोस के छठे भाग मे सिद्धो की अवगाहना है।

64 महाभाग सिद्ध परमात्मा

मूल गाथा- **तत्थ सिद्धा महाभागा, लोयग्गम्मि पइट्ठिया।**
भवप्पवच उम्मुका, सिद्धि वरगइ गया॥६४॥

सस्कृत छाया- **तत्र सिद्धा महाभागा , लोकाग्रे प्रतिष्ठिता ।**
भवप्रपञ्चोन्मुक्ता , सिद्धि वरगति गता ॥६४॥

अन्वयार्थ-**भवप्पवच**-ससार के प्रपच से, **उमुक्का**-मुक्त, **सिद्धि**-सिद्धि रूप, **वरगइ**-वरगति (श्रेष्ठ गति) को,

गया-प्राप्त हुए, महाभागा-महाभाग्यशाली, सिद्धा-सिद्ध भगवान्, तत्थ-वहा, लोयग्गम्मि-लोक के अग्रभाग पर, पइट्ठिया-प्रतिष्ठित (विराजमान) है।

भावानुवाद-यहा पर महाभाग सिद्ध परमात्मा भव प्रपञ्च से मुक्त होकर उत्तम सिद्धिगति को प्राप्त करके लोक के अग्रभाग पर प्रतिष्ठित हुए हैं।

65 सिद्ध जीवो की अवगाहना

मूल गाथा- उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ।
तिभागहीणा तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे॥६५॥

सस्कृत छाया- उत्सेधो यस्य यो भवति, भवे चरमे तु।
तृतीयभागहीना ततश्च, सिद्धानामवगाहना भवेत्॥६५॥

अन्वयार्थ-य-और, जस्स-जिन (जीवों) की, चरिमम्मि-चरम (अन्तिम), भवम्मि-भव मे, जो-जितनी, उस्सेहो-उत्सेध (ऊचाई), होइ-होती है, तत्तो-उससे, तिभागहीणा-तीन भाग कम, सिद्धाणोगाहणा-सिद्धो की अवगाहना, भवे-होती है।

भावानुवाद-(सिद्ध होने से पूर्व) अन्तिम भव में जिन जीवों की जितनी ऊचाई होती है उससे तीन भाग कम सिद्धों की अवगाहना होती है अर्थात् एक-तृतीयाश छोड कर दो तृतीयाश जितनी ऊचाई अन्तिम शरीर की अपेक्षा सिद्धों की होती है।

66 काल की अपेक्षा से सिद्धो का वर्णन

मूल गाथा- एगत्तेण साईया, अपज्जवसियावि य।
पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसियावि य॥६६॥

सस्कृत छाया- एकत्वेन सादिकाः, अपर्यवसिता अपि च।
पृथक्त्वेनानादिका, अपर्यवसिता अपि च॥६६॥

अन्वयार्थ-एगत्तेण-एक सिद्ध की अपेक्षा, साइया-सिद्ध (सादि), य-और, अपज्जवसियावि-अपर्यवसित (अनन्त) हैं, पुहुत्तेण-पृथक्त्व (बहुत जीवो की अपेक्षा), अणाइया-अनादि, य-और, अपज्जवसियावि-अपर्यवसित (अनन्त) हैं।

भावानुवाद-एक-एक जीव की अपेक्षा सिद्धि सादि (आदि सहित) एव अनन्त (अन्त रहित) हैं, किन्तु बहुत जीवों की अपेक्षा वह अनादि अनन्त हैं।

67 सिद्धों का स्वरूप वर्णन

मूल गाथा- अरूविणो जीवघणा, णाणदंसणसण्णिया।
अउल सुह सपत्ता, उवमा जस्स णत्थि उ॥६७॥

संस्कृत छाया- अरूपिणो जीवघना , ज्ञानदर्शनसंज्ञिता ।
अतुल सुख सम्प्राप्ता , उपमा यस्य नास्ति तु ॥६७ ॥

अन्वयार्थ-(सिद्ध जीव) अरूविणो-अरूपी, जीवघणा-जीव प्रदेशों मे सघन, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, सण्णिया-सहित है, उ-और, अउल-ऐसे अतुल, सुह-सुख को, सपत्ता-प्राप्त हुए हैं, जस्स-जिसकी, उवमा-उपमा, णत्थि-नहीं दी जा सकती है।

भावानुवाद-वे सिद्ध जीव अरूपी जीव प्रदेशो से सघन, केवल ज्ञान-केवलदर्शन से सम्पन्न हैं जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती है, ऐसा अतुल-अनुपम सुख उन्हे प्राप्त है।

68 सिद्धो के क्षेत्र सापेक्ष्य स्वरूप का वर्णन

मूल गाथा- लोगेगदेसे ते सव्वे, णाणदसणसण्णिया।
ससारपारणिच्छिण्णा, सिद्धि वरगइ गया॥६८॥

संस्कृत छाया- लोकाग्रदेशे ते सर्वे, ज्ञानदर्शनसंज्ञिता ।
ससारपारनिस्तीर्णा , सिद्धि वरगति गता ॥६८॥

अन्वयार्थ-ते-वे, सव्वे-सभी सिद्ध, लोगेगदेसे-लोक के एक देश मे है, णाण-ज्ञान, दसण-दर्शन, सण्णिया-सहित हैं, ससार-ससार के, पारणिच्छिण्णा-पार पहुचे हुए हैं, सिद्धि-सिद्धि रूप, वरगइ-वरगति (श्रेष्ठ गति) को, गया-प्राप्त हुए हैं।

भावानुवाद-वे सभी सिद्ध लोक के एक देश (लोकाग्र) मे स्थित हैं, वे ज्ञान-दर्शन से युक्त ससार के पार पहुचे हुए श्रेष्ठ सिद्धि गति को प्राप्त हुए हैं।

69 जीव के दूसरे भेदो का वर्णन

मूल गाथा- ससारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया।
तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तहिं॥६९॥

संस्कृत छाया- ससारस्थास्तु ये जीवा , द्विविधास्ते व्याख्याता ।
त्रसाश्च स्थावराश्चैव, स्थावरास्त्रिविधास्तत्र॥६९॥

अन्वयार्थ-य-और, ससारत्था-ससारस्थ (ससारी), जे-जो, जीवा-जीव हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, तसा-त्रस, चेव-और, थावरा-स्थावर, तहिं-उनमे, थावरा-स्थावर, तिविहा-तीन प्रकार के हैं।

भावानुवाद-जो ससारी जीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) त्रस और (2) स्थावर। उनमें स्थावर जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं।

70 स्थावर के भेदो का वर्णन

मूल गाथा- पुढवी आउजीवा, तहेव य वणस्सई।
इच्चेए थावरा तिविहा, तेसि भेए सुणेह मे॥७०॥

संस्कृत छाया- पृथिव्यप्‌जीवाश्च तथैव, च वनस्पतय ।
एत्येते स्थावरस्त्रिविधा , तेषा भेदान् श्रृणुत मे ॥७० ॥

अन्वयार्थ-पुढवी-पृथ्वीकाय, य-और, आउजीवा-अप्काय के जीव, तहेव य-और, वणस्सई-वनस्पति काय, इच्चेए-इस प्रकार ये, तिविहा-तीन प्रकार के, थावरा-स्थावर हैं (अब), मे-मुझसे, तेसिं-उनके, भेए-भेदों को सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-पृथ्वीकाय, जलकाय और वनस्पतिकाय ये तीन प्रकार के स्थावर हैं अब इनके भेदो को मुझसे सुनो।

71 पृथ्वी रूप स्थावर जीवो के भेद

मूल गाथा- दुविहा पुढवीजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥७१ ॥

संस्कृत छाया- द्विविधा पृथिवीजीवाश्च सूक्ष्मा बादरास्तथा।
पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, एवमेते द्विधा पुन ॥७१ ॥

अन्वयार्थ-पुढवी-पृथ्वीकाय के, जीवा-जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-और, बायरा-बादर, एवमेए इसी प्रकार (ये), पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त भेद से, पुणो-पुन , दुहा-दो प्रकार के हैं।

भावानुवाद-पृथ्वीकाय के जीवा के (1) सूक्ष्म और (2) बादर, ये दो भेद हैं, पुन दोनो के (1) पर्याप्त और (2) अपर्याप्त ये दो-दो भेद हैं।

72 पृथ्वीकाय के उत्तर भेदों का वर्णन

मूल गाथा- बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया।
सण्हा खरा य बोधव्वा, सण्हा सत्तविहा तहिं ॥७२ ॥

संस्कृत छाया- बादरा ये तु पर्याप्ता , द्विविधास्ते व्याख्याता ।
श्लक्ष्णा खराश्च बोद्धव्याः, श्लक्ष्णा सप्तविधास्तत्र ॥७२ ॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, बायरा-बादर, पज्जत्ता-पर्याप्त (पृथ्वीकाय के जीव) हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, सण्हा-श्लक्ष्ण (कोमल), य-और, खरा-खर (कठोर), तहिं-उनमें, सण्हा-श्लक्ष्ण (कोमल पृथ्वीकाय) के, सत्तविहा-सात भेद, बोधव्वा-जानने चाहिए।

भावानुवाद-बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों के दो भेद हैं-(1) श्लक्ष्ण-कोमल और (2) खर-कठोर। कोमल के सात भेद हैं।

73 श्लक्ष्णा पृथ्वी के सातो भेदों का वर्णन

मूल गाथा- किण्हा नीला य रुहिरा य, हालिद्दा सुक्किला तहा।
पंडु पणगमट्टिया, खरा छत्तीसईविहा ॥७३ ॥

संस्कृत छाया- कृष्णा नीलाश्च रुधिराश्च, हारिद्रा शुक्लास्तथा।
पाण्डुपनकमृत्तिका, खरा षट्त्रिंशद्विधा ॥७३॥

अन्वयार्थ-किण्हा-कृष्ण (काली), णीला-नीली, रुहिरा-रुधिर (लाल), हालिद्दा-हरिद्रा (पीली), सुक्किला-शुक्ल (श्वेत), य-और, पडु-पाण्डुर (चन्दन के समान श्वेत), तहा-तथा, पणगमट्टिया-पनकमृत्तिका (सूक्ष्म मिट्टी), खरा-खर पृथ्वी, छत्तीसईविहा-छत्तीस प्रकार की है।

भावानुवाद-काली, नीली, लाल, पीली, श्वेत, पाण्डुर-भूरी मिट्टी और पनक अत्यन्त बारीक रज, ये सात भेद मृदु-कोमल पृथ्वी के हैं। कर्कश-कठोर पृथ्वी छत्तीस प्रकार की है।

74 खर पृथ्वी के 14 उत्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- पुढवी य सक्करा वालुया य, उवले सिला य लोणूसे।
अय-तब-तउय-सीसग, रुप्प-सुवण्णे य वइरे य ॥७४॥

संस्कृत छाया- पृथिवी च शर्करा वालुका च, उपल शिला च लवणोषा।
अयस्ताम्रत्रपुकसीसक, रूप्यसुवर्णवज्र च ॥७४॥

अन्वयार्थ-पुढवी-शुद्ध पृथ्वी, सक्करा-शर्करा, य-और, वालुया-बालुका, उवले-उपल, सिला-शिला, य-और, लोण-लवण, उसे-उस (खारी मिट्टी), य-और, अय-लोहा, तब-ताम्बा, तउय-त्रपुक (कथीर), सीसग-सीसा, रूप्प-रूपा (चादी), सुवण्णे-सुवर्ण-सोना, य-और, वइरे-वज्र (हीरा)।

भावानुवाद-(1) शुद्ध पृथ्वी (खदान की मिट्टी), (2) शर्करा, ककरीली, (3) बालुका, (4) उपल-पत्थर, (5) शिला, (6) लवण-समुद्री खार, (7) ऊष-क्षार रूप, लौनी मिट्टी, (8) लोहा, (9) ताम्बा, (10) त्रपुक-रागा, (11) सीसा, (12) चादी, (13) सोना, (14) वज्र-हीरा।

75 खर पृथ्वी के 22 उत्तर भेदो तक का वर्णन

मूल गाथा- हरियाले हिंगुलुए, मणोसिला सासगजण-पवाले।
अब्भपडलऽब्भवालुय, बायरकाए मणिविहाणा ॥७५॥

संस्कृत छाया- हरितालो हिंगुलक, मन शीला सासकोऽञ्जनप्रवालम्।
अभ्रपटलमभ्रवालुका, बादरकाये (च) मणिविधानानि ॥७५॥

अन्वयार्थ-(15) हरियाले-हरताल, (16) हिंगुलुए-हिगलू, (17) मणोसिला-मन शिला, (18) सासग-सासग (जस्ता), (19) अजण-अजण (सूरमा), (20) पवाले-प्रवाल (मूगा), (21) अब्भपडल-अभ्रपटल (भोडल), (22) अब्भवालुय-अभवालुका (अभ्रक सहित बालुका), बायरकाए-ये बादरकाय के भेद हैं (अब) मणिविहाणा-मणियो के भेद कहे जाते हैं।

भावानुवाद-(15) हरिताल, (16) हिगुल, (17) मैनसिल-एक प्रकार की धातु, (18) जस्ता-धातु, (19) अजन, (20) प्रवाल-मूगा, (21) अभ्रक, (22) अभ्रबालुक (अभ्रक की परतो से मिश्रित धूल) और विविध मणि भी बादर पृथ्वीकाय के अन्तर्गत हैं।

76 खर पृथ्वी के 29 उत्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- गोमेज्जए य रुयगे, अके फलिहे य लोहियक्खे य।
मरगय-मसारगल्ले, भुयमोयग-इदणीले य॥७६॥

सस्कृत छाया- गोमेदकश्च रुचक अक स्फटिकश्च लोहिताक्षश्च।
मरकतमसारगल्ल , भुजगमोचक इन्द्र नीलश्च॥७६॥

अन्वयार्थ-गोमेज्जए-गोमेदक, य-और, रुयग-रुचक, अके-अक, य-और, फलिहे-स्फटिक, लोहियक्खे लोहिताक्ष, च-और, मरगय-मरकतमणि, मसारगल्ले-मसारगल्लमणि, भुयमोयग-भुज मोचक, इदणीले-इन्द्रनील य-और।

भावानुवाद-(23) गोमेदक, (24) रुचक, (25) अकरत्न, (26) स्फटिक रत्न, (27) लोहिताक्ष मणि, (28) मरकत मणि, (29) मसारगल्लमणि, (30) भुजमोचक रत्न, (31) इन्द्रनील मणि।

77 खर पृथ्वी के शेष उत्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- चदण गेरुय हसगब्भे, पुलए सोगधिए य बोधव्वे।
चदप्पहवेरुलिए, जलकंते सूरकते य॥७७॥

सस्कृत छाया- चन्दनो गैरिक हसगर्भ , पुलक सौगन्धिकश्च बोद्धव्य ।
चन्द्रप्रभो वैडूर्य , जलकान्त सूर्यकान्तश्च॥७७।

अन्वयार्थ-चदण-चन्दन रत्न, गेरुय-गेरु रत्न, हसगब्भे-हसगर्भ रत्न, पुलए-पुलक रत्न, सोगधिए-सौगधिक रत्न, य-और, चदप्पह-चन्द्रप्रभ रत्न, वेरुलिए-वैडूर्य रत्न, जलकते-जलकात मणि, य-और, सूरकते-सूर्यकान्त मणि, बोधव्वे-जानने चाहिए।

भावानुवाद-(32) चन्दन रत्न, (33) गेरु रत्न (34) हस गर्भ रत्न, (35) पुलक रत्न, (36) सौगन्धिक रत्न, (37) चन्द्रप्रभ रत्न, (38) वैडूर्य रत्न (39) जलकान्त मणि, (40) सूर्यकान्त मणि।

टिप्पणी यद्यपि यहा मणियो के 18 प्रकार बताये हैं किन्तु कुछ मणियो का एक-दूसरे में समानता की दृष्टि से अन्तर्भाव हो जाता है। अत यह सख्या 14 ही रहती है, जो पूर्वोक्त 22 म मिलाने से खर पृथ्वी के 36 भेद होते हैं।

78 सूक्ष्म पृथ्वीकाय का वर्णन

मूल गाथा- एए खरपुढवीए, भेया छत्तीसमाहिया।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया॥७८॥

सस्कृत छाया- एते खरपृथिव्या:, भेदा षट्त्रिंशदाख्याता ।
एकविधा अनानात्वा , सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता ॥७८॥

अन्वयार्थ-एए-ये, खरपुढवीए-खरपृथ्वी के, छत्तीस-छत्तीस, भेया-भेद, आहिया-कहे गये हैं, तत्थ-उनमें, सुहुमा-सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अणाणत्ता-अनानात्व (भेद रहित), एगविह-एक प्रकार की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-ये खर पृथ्वी के 36 भेद कहे गये हैं। सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीव भेद रहित एक ही प्रकार के कहे गये हैं।

79 सूक्ष्म और बादर का क्षेत्र सापेक्ष वर्णन

मूल गाथा- सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वुच्छ चउव्विह ॥७९॥

सस्कृत छाया- सूक्ष्मा सर्वलोके, लोकदेशे च बादरा।
इत कालविभाग तु, वक्ष्ये तेषा चतुर्विधम् ॥७९॥

अन्वयार्थ-सुहुमा-सूक्ष्म (पृथ्वीकाय के) जीव, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक मे व्याप्त हैं, य-और, बायरा-बादर (पृथ्वीकाय) जीव, लोग-लोक के, देसे-देश मात्र मे है, इत्तो-इसके आगे, तेसि-उनका, चउव्विह-चार प्रकार का, कालविभाग-काल विभाग, वुच्छ-कहूगा।

भावानुवाद-क्षेत्र की अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीव सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त हैं और बादर पृथ्वीकाय के जीव लोक के एक देश मे व्याप्त हैं, इससे आगे अब पृथ्वीकाय जीवो का चार प्रकार के काल विभाग का कथन करूगा।

80 प्रवाह की अपेक्षा से पृथ्वीकाय का वर्णन

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसियावि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसियावि य ॥८०॥

सस्कृत छाया- सतति प्राप्यानादिका, अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च ॥८०॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (पृथ्वीकाय), अणाइया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित हैं, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा से, वि-भी, साइया-सादि (आदि सहित), य-और, सपज्जवसिया-सपयवसित वि-भी हैं।

भावानुवाद-सभी प्रकार के पृथ्वीकाय जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अपर्यसित अनन्त हैं, स्थिति की अपेक्षा से सादि सपर्यवसित सान्त है।

81 पृथ्वीकाय के जीवो की आयु स्थिति

मूल गाथा- बावीससहस्साइ, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउठिई पुढवीण, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥८१॥

सस्कृत छाया- द्वाविशतिसहस्राणि, वर्षाणामुत्कृष्टा भवेत्।
आयु स्थिति पृथ्वीनाम् अन्तर्मुहूर्त जघन्यका ॥८१॥

अन्वयार्थ-पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवो की, आउठिई-आयुस्थिति, जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोसिया-उत्कृष्ट, बावीस-बाईस, सहस्साई-हजार, वासाण-वर्ष की, भवे-होती है।

भावानुवाद-पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति-आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

82 पृथ्वीकाय की काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असखकालमुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहण्णयं।
कायठिई पुढवीण, त काय तु अमुचओ॥८२॥

संस्कृत छाया- असख्यकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थिति पृथिवीना, त काय त्वमुञ्चताम्॥८२॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-पृथ्वीकाय को, अमुचओ-न छोडने वाले, पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवों की, कायठिई कायस्थिति, जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, असखकालं-असख्यात काल की है।

भावानुवाद-बादर पृथ्वीकाय जीवो की काय स्थिति-उस काय को नहीं छोडने-पुन -पुन उसी में उत्पन्न होने रूप अवधि जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यातकाल की है।

83 पृथ्वीकाय के जीवो के अन्तर का कथन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढंमि सए काए, पुढवीजीवाण अतरं॥८३॥

संस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, पृथिवीजीवानामन्तरम्॥८३॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, पुढवी-पृथ्वीकाय के, जीवाण-जीवों का, अतरं-अन्तर, जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकालं-अनन्तकाल का है।

भावानुवाद-पृथ्वीकाय के जीव अपनी काया को छोड देने पर पुन दुबारा उस काया में जन्म धारण करते हैं उस का अन्तराल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

84 भाव सापेक्ष का वर्णन

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥८४॥

संस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥८४॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (पृथ्वीकाय के जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रस-रस से, फासओ-स्पर्श से, वावि-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा, सहस्ससो-सहस्त्रश -हजारो, विहाणाइ-भेद होते हैं।

भावानुवाद-भाव की अपेक्षा से इन पृथ्वीकायिक जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के आदेश (अपेक्षा) से हजारो भेद होते हैं।

85 अप्काय का निरूपण

मूल गाथा- दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥८५॥

सस्कृत छाया- द्विविधा अप्जीवास्तु, सूक्ष्मा बादरास्तथा।
पर्याप्ता अपर्याप्ता , एवमेते द्विधा पुन ॥८५॥

अन्वयार्थ-आउजीवा-अप्काय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-तथा, बायरा-बादर, एवमेए-इसी प्रकार, उ-ये, पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त के भेद से, पुणो-फिर, दुहा-दो प्रकार के हैं।

भावानुवाद-अप्काय-जलीय जीव दो प्रकार के हैं-1 सूक्ष्म और 2 बादर। दोनो के पुन दो-दो भेद हैं। 1 पर्याप्त और 2 अपर्याप्त।

86 बादर अप्काय का विषय

मूल गाथा- बायरा जे उ पज्जत्ता, पचहा ते पकित्तिया।
सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे ॥८६॥

सस्कृत छाया- बादरा ये तु पर्याप्ता , पञ्चधा ते प्रकीर्तिता।
शुद्धोदकयावश्याय , हरतनुर्महिकाहिमम् ॥८६॥

अन्वयार्थ-जे उ-जे, बायरा-बादर, पज्जत्ता-पर्याप्त हैं, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये है, सुद्धोदए-शुद्धोदक, उस्से-ओस, हरतणू-हरतनु, महिया-महिका (धूअर), य-और, हिमे-हिम (बर्फ का पानी)।

भावानुवाद-बादर पर्याप्त जलकाय के जीवो के पाच भेद हैं-1 शुद्धोदक-मेघ का पानी, 2 ओस 3 हरतणु (प्रात काल तृण घास पर रही जल की बूद) 4 महिका-धूअर (कुहासा) और 5 हिम-बर्फ।

87 सूक्ष्म अप्काय का विषय

मूल गाथा- एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥८७॥

सस्कृत छाया- एकविधा अनानात्वा , सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता ।
सूक्ष्मा सर्वलोके, लोकदेशे च बादरा ॥८७॥

अन्वयार्थ-पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवो की, आउठिई-आयुस्थिति, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोसिया-उत्कृष्ट, बावीस-बाईस, सहस्साइ-हजार, वासाण-वर्ष की, भवे-होती है।

भावानुवाद-पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति-आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

82 पृथ्वीकाय की काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असखकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
कायठिई पुढवीण, त काय तु अमुचओ॥८२॥

सस्कृत छाया- असख्यकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थिति पृथिवीना, त काय त्वमुञ्चताम्॥८२॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-पृथ्वीकाय को, अमुचओ-न छोडने वाले, पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवा की, कायठिई-कायस्थिति, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, असखकाल-असख्यात काल की है।

भावानुवाद-बादर पृथ्वीकाय जीवो की काय स्थिति-उस काय को नहीं छोडने-पुन -पुन उसी मे उत्पन्न होने रूप अवधि जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यातकाल की है।

83 पृथ्वीकाय के जीवो के अन्तर का कथन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढमि सए काए, पुढवीजीवाण अतर॥८३॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, पृथिवीजीवानामन्तरम्॥८३॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, पुढवी-पृथ्वीकाय के, जीवाण-जीवों का, अतर-अन्तर, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल का है।

भावानुवाद-पृथ्वीकाय के जीव अपनी काया को छोड देने पर पुन दुबारा उस काया में जन्म धारण करने के बीच का अन्तराल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

84 भाव सापेक्ष का वर्णन

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो॥८४॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश॥८४॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (पृथ्वीकाय के जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रस-रस से, फासओ-स्पर्श से, वावि-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा, सहस्ससो-सहस्रश -हजारो, विहाणाइ-भेद होते हैं।

भावानुवाद-भाव की अपेक्षा से इन पृथ्वीकायिक जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के आदेश (अपेक्षा) से हजारो भेद होते हैं।

85 अप्काय का निरूपण

मूल गाथा- **दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।**
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥८५॥

सस्कृत छाया- **द्विविधा अब्जीवास्तु, सूक्ष्मा बादरास्तथा।**
पर्याप्ता अपर्याप्ता , एवमेते द्विधा पुन ॥८५॥

अन्वयार्थ-आउजीवा-अप्काय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-तथा, बायरा-बादर, एवमेए-इसी प्रकार, उ-ये, पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त के भेद से, पुणो-फिर, दुहा-दो प्रकार के हैं।

भावानुवाद-अप्काय-जलीय जीव दो प्रकार के हैं-1 सूक्ष्म और 2 बादर। दोना के पुन दो-दो भेद हैं। 1 पर्याप्त और 2 अपर्याप्त।

86 बादर अप्काय का विषय

मूल गाथा- **बायरा जे उ पज्जत्ता, पचहा ते पकित्तिया।**
सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे॥८६॥

सस्कृत छाया- **बादरा ये तु पर्याप्ता , पञ्चधा ते प्रकीर्तिता।**
शुद्धोदकधावश्याय , हरतनुर्महिकाहिमम्॥८६॥

अन्वयार्थ-जे उ-जे, बायरा-बादर, पज्जत्ता-पर्याप्त हैं, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, सुद्धोदए-शुद्धोदक, उस्से-ओस, हरतणू-हरतनु, महिया-महिका (धूअर), य-और, हिमे-हिम (बर्फ का पानी)।

भावानुवाद-बादर पर्याप्त जलकाय के जीवो के पाच भेद हैं-1 शुद्धोदक-मेघ का पानी, 2 ओस 3 हरतणु (प्रात काल तृण घास पर रही जल की बूद) 4 महिका-धूअर (कुहासा) और 5 हिम-बर्फ।

87 सूक्ष्म अप्काय का विषय

मूल गाथा- **एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।**
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा॥८७॥

सस्कृत छाया- **एकविधा अनानात्वा , सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता ।**
सूक्ष्मा सर्वलोके, लोकदेशे च बादरा ॥८७॥

अन्वयार्थ-पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवो की, आउठिई-आयुस्थिति, जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोसिया-उत्कृष्ट, बावीस-बाईस, सहस्साइ-हजार, वासाण-वर्ष की, भव-होती है।

भावानुवाद-पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति-आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

82 पृथ्वीकाय की काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असंखकालमुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहण्णय।
कायठिई पुढवीण, त काय तु अमुचओ॥८२॥

संस्कृत छाया- असंख्यकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थिति पृथिवीना, त काय त्वमुञ्चताम्॥८२॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-पृथ्वीकाय को, अमुचओ-न छोडने वाले, पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवो की, कायठिई-कायस्थिति, जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, असखकाल-असख्यात काल की है।

भावानुवाद-बादर पृथ्वीकाय जीवों की काय स्थिति-उस काय को नहीं छोडने-पुन -पुन उसी म उत्पन्न होने की अवधि जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यातकाल की है।

83 पृथ्वीकाय के जीवो के अन्तर का कथन

मूल गाथा- अणंतकालमुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढंमि सए काए, पुढवीजीवाण अंतर॥८३॥

संस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, पृथिवीजीवानामन्तरम्॥८३॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, पुढवी-पृथ्वीकाय के, जीवाण-जीवो का, अंतर-अन्तर, जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल का है।

भावानुवाद-पृथ्वीकाय के जीव अपनी काया को छोड देने पर पुन दुबारा उस काया में जन्म धारण करने के बीच का अन्तराल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

84 भाव सापेक्ष का वर्णन

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥८४॥

संस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥८४॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (पृथ्वीकाय के जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रस-रस से, फासओ-स्पर्श से, वावि-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा, सहस्ससो-सहस्त्रश -हजारो, विहाणाइ-भेद होते हैं।

भावानुवाद-भाव की अपेक्षा से इन पृथ्वीकायिक जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के आदेश (अपेक्षा) से हजारो भेद होते हैं।

85 अप्काय का निरूपण

मूल गाथा- दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥८५॥

सस्कृत छाया- द्विविधा अब्जीवास्तु, सूक्ष्मा बादरास्तथा।
पर्याप्ता अपर्याप्ता , एवमेते द्विधा पुन ॥८५॥

अन्वयार्थ-आउजीवा-अप्काय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-तथा, बायरा-बादर, एवमेए-इसी प्रकार, उ-ये, पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त के भेद से, पुणो-फिर, दुहा-दो प्रकार के हैं।

भावानुवाद-अप्काय-जलीय जीव दो प्रकार के हैं-1 सूक्ष्म और 2 बादर। दोनो के पुन दो-दो भेद हैं। 1 पर्याप्त और 2 अपर्याप्त।

86 बादर अप्काय का विषय

मूल गाथा- बायरा जे उ पज्जत्ता, पचहा ते पकित्तिया।
सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे ॥८६॥

सस्कृत छाया- बादरा ये तु पर्याप्ता , पञ्चधा ते प्रकीर्तिता।
शुद्धोदकश्चावश्याय , हरतनुर्महिकाहिमम् ॥८६॥

अन्वयार्थ-जे उ-जे, बायरा-बादर, पज्जत्ता-पर्याप्त हैं, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, सुद्धोदए-शुद्धोदक, उस्से-ओस, हरतणू-हरतनु, महिया-महिका (धूअर), य-और, हिमे-हिम (बर्फ का पानी)।

भावानुवाद-बादर पर्याप्त जलकाय के जीवो के पाच भेद हैं-1 शुद्धोदक-मेघ का पानी, 2 ओस 3 हरतणु (प्रात काल तृण घास पर रही जल की बूद) 4 महिका-धूअर (कुहासा) और 5 हिम-बर्फ।

87 सूक्ष्म अप्काय का विषय

मूल गाथा- एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥८७॥

सस्कृत छाया- एकविधा अनानात्वा , सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता ।
सूक्ष्मा सर्वलोके, लोकदेशे च बादरा ॥८७॥

अन्वयार्थ-पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवो की, आउठिई-आयुस्थिति, जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तमुहूर्त (और), उक्कोसिया-उत्कृष्ट, वावीस-बाईस, सहस्साइ-हजार, वासाण-वर्ष की, भवे-होती है।

भावानुवाद-पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति-आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

82 पृथ्वीकाय की काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असखकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
कायठिई पुढवीण, त काय तु अमुचओ॥८२॥

सस्कृत छाया- असख्यकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थिति पृथिवीना, त काय त्वमुञ्चताम्॥८२॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-पृथ्वीकाय को, अमुचओ-न छोडने वाले, पुढवीण-पृथ्वीकाय के जीवो की, कायठिई-कायस्थिति, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, असखकाल-असख्यात काल की है।

भावानुवाद-बादर पृथ्वीकाय जीवो की काय स्थिति-उस काय को नहीं छोडने-पुन -पुन उसी में उत्पन्न होने रूप अवधि जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यातकाल की है।

83 पृथ्वीकाय के जीवो के अन्तर का कथन

मूल गाथा- अणंतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढमि सए काए, पुढवीजीवाण अतर॥८३॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, पृथिवीजीवानामन्तरम्॥८३॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, पुढवी-पृथ्वीकाय के, जीवाण-जीवों का, अतर-अन्तर, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्त काल का है।

भावानुवाद-पृथ्वीकाय के जीव अपनी काया को छोड देने पर पुन दुबारा उस काया में जन्म धारण करने के बीच का अन्तराल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

84 भाव सापेक्ष का वर्णन

मूल गाथा- एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥८४॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥८४॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (पृथ्वीकाय के जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रस-रस से, फासओ-स्पर्श से, वावि-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा, सहस्ससो-सहस्त्रश -हजारो, विहाणाइ-भेद होते हैं।

भावानुवाद-भाव की अपेक्षा से इन पृथ्वीकायिक जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के आदेश (अपेक्षा) से हजारो भेद होते हैं।

85 अप्काय का निरूपण

मूल गाथा- दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥८५॥

सस्कृत छाया- द्विविधा अब्जीवास्तु, सूक्ष्मा बादरास्तथा।
पर्याप्ता अपर्याप्ता , एवमेते द्विधा पुन ॥८५॥

अन्वयार्थ-आउजीवा-अप्काय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-तथा, बायरा-बादर, एवमेए-इसी प्रकार, उ-ये, पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त के भेद से, पुणो-फिर, दुहा-दो प्रकार के हैं।

भावानुवाद-अप्काय-जलीय जीव दो प्रकार के हैं-1 सूक्ष्म और 2 बादर। दोनो के पुन दो-दो भेद हैं।1 पर्याप्त और 2 अपर्याप्त।

86 बादर अप्काय का विषय

मूल गाथा- बायरा जे उ पज्जत्ता, पचहा ते पकित्तिया।
सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे ॥८६॥

सस्कृत छाया- बादरा ये तु पर्याप्ता , पञ्चधा ते प्रकीर्तिता।
शुद्धोदकचावश्याय , हरतनुर्महिकाहिमम् ॥८६॥

अन्वयार्थ-जे उ-जे, बायरा-बादर, पज्जत्ता-पर्याप्त हैं, ते-वे, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, सुद्धोदए-शुद्धोदक, उस्से-ओस, हरतणू-हरतनु, महिया-महिका (धूअर), य-और, हिमे-हिम (बर्फ का पानी)।

भावानुवाद-बादर पर्याप्त जलकाय के जीवो के पाच भेद हैं-1 शुद्धोदक-मेघ का पानी, 2 ओस 3 हरतणु (प्रात काल तृण घास पर रही जल की बूद) 4 महिका-धूअर (कुहासा) और 5 हिम-बर्फ।

87 सूक्ष्म अप्काय का विषय

मूल गाथा- एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥८७॥

सस्कृत छाया- एकविधा अनानात्वा , सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता ।
सूक्ष्मा सर्वलोके, लोकदेशे च बादरा ॥८७॥

अन्वयार्थ-तत्थ-उनमे, सुहुमा-सूक्ष्म (अपकाय के) जीव, अणाणत्ता-अनानात्व (भेद रहित), एगविह-एक प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, य-और, सुहुमा-वे सूक्ष्म जीव, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक में व्याप्त हैं, बायरा-बादर, लोगदेसे-लोक के एक देश में व्याप्त हैं।

भावानुवाद-सूक्ष्म अप्काय के जीव भेद रहित एक ही प्रकार के हैं। ये सूक्ष्म जीव सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त है और बादर अप्काय के जीव लोक के एक देश मे व्याप्त हैं।

88 अप्काय का काल सापेक्ष वर्णन

मूल गाथा- संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसियावि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसियावि य॥८८॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका, अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥८८॥

अन्वयार्थ-संतइं-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (अप्काय के जीव), अणाइया-अनादि, य-और, अपज्जवसियावि अपर्यवसित हैं, ठिइं-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि, य-और, सपज्जवसियावि-सपर्यवसित हैं।

भावानुवाद-अप्कायिक जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं अर्थात् एक जीव की आयु की अपेक्षा सादि-सान्त हैं।

89 भव स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- सत्तेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउठिई आऊण, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया॥८९॥

संस्कृत छाया- सप्तैव सहस्राणि, वर्षाणामुत्कृष्टा भवेत्।
आयु-स्थितिरपाम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥८९॥

अन्वयार्थ-आऊण-अप्काय के जीवो की, आउट्ठिई-आयुस्थिति, जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोसिया-उत्कृष्ट, सत्तेव-सात, सहस्साइं-हजार, वासाण-वर्ष की है।

भावानुवाद-अप्काय के जीवो की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

90 कायस्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।
कायठिई आऊण, तं कायं तु अमुंचओ॥९०॥

संस्कृत छाया- असंख्येयकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थितिरपाम् तं कायं त्वमुञ्चताम्॥९०॥

अन्वयार्थ-तं-उस, कायं-अप्काय को, अमुंचओ-न छोड़ने वाले, आऊणं-अप्काय के जीवों की, कायट्ठिई-

कायस्थिति, जहण्णया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, असखकाल-असख्यात काल की है।

भावानुवाद-अप्काय जीवो की उस काय को न छोडने रूप काय स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्य काल की है।

91 अप्काय के अन्तर-मान का वर्णन

मूल गाथा- **अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।**
विजढमि सए काए, आऊजीवाण अतर॥९१॥

सस्कृत छाया- **अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।**
वित्यक्ते स्वके काये, अब्जीवानामन्तरम्॥९१॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढमि-छोड देने पर, आउ-अप्काय के, जीवाण-जीवो का, अतर-अन्तर, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल का है।

भावानुवाद-अप्काय को छोड कर पुन दुबारा अप्काय मे उत्पन्न होने रूप अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

92 भाव सापेक्ष वर्णन

मूल गाथा- **एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।**
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्सओ॥९२॥

सस्कृत छाया- **एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसत स्पर्शत।**
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश॥९२॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (अप्काय के जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से स्पर्श से, वावि-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्रश (हजारा), विहाणाइ-विधान (भेद) होते हैं।

भावानुवाद-(भाव की अपेक्षा से) अप्काय के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा हजारो भेद हैं।

93 वनस्पति काय का निरूपण

मूल गाथा- **दुविहा वणस्सईजीवा, सुहुमा बायरा तहा।**
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥९३॥

सस्कृत छाया- **द्विविधा वनस्पतिजीवा सूक्ष्मा बादरास्तथा।**
पर्याप्ता अपर्याप्ता, एवमेते द्विधा पुन॥९३॥

अन्वयार्थ-वणस्सई जीवा-वनस्पति काय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-और, बायरा-

अन्वयार्थ-तत्थ-उनमें, सुहुमा-सूक्ष्म (अपकाय के) जीव, अणाणत्ता-अनानात्व (भेद रहित), एगविह-एक प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, य-और, सुहुमा-वे सूक्ष्म जीव, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक में व्याप्त हैं, बायरा-बादर, लोगदेसे-लोक के एक देश में व्याप्त हैं।

भावानुवाद-सूक्ष्म अप्काय के जीव भेद रहित एक ही प्रकार के हैं। वे सूक्ष्म जीव सम्पूर्ण लोक में व्याप्त है और बादर अप्काय के जीव लोक के एक देश में व्याप्त हैं।

88 अप्काय का काल सापेक्ष वर्णन

मूल गाथा- संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसियावि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसियावि य॥८८॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका, अपर्यवसिता अपि च।
स्थिति प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥८८॥

अन्वयार्थ-संतइं-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (अप्काय के जीव), अणाइया-अनादि, य-और, अपज्जवसियावि अपर्यवसित हैं, ठिइं-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि, य-और, सपज्जवसियावि-सपर्यवसित हैं।

भावानुवाद-अप्कायिक जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं अर्थात् एक जीव की आयु की अपेक्षा सादि-सान्त हैं।

89 भव स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- सत्तेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउट्ठिई आऊणं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया॥८९॥

संस्कृत छाया- सप्तैव सहस्राणि, वर्षाणामुत्कृष्टा भवेत्।
आयु-स्थितिरपाम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥८९॥

अन्वयार्थ-आऊणं-अप्काय के जीवों की, आउट्ठिई-आयुस्थिति, जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोसिया-उत्कृष्ट, सत्तेव-सात, सहस्साइं-हजार, वासाण-वर्ष की है।

भावानुवाद-अप्काय के जीवों की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

90 कायस्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असंखकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया।
कायट्ठिई आऊणं, तं कायं तु अमुंचओ॥९०॥

संस्कृत छाया- असङ्ख्येयकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थितिरपाम् तं कायं त्वमुञ्चताम्॥९०॥

अन्वयार्थ-तं-उस, काय-अप्काय को, अमुंचओ-न छोडने वाले, आऊणं-अप्काय के जीवों की, कायट्ठिई-

कायस्थिति, जहण्णया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, तु-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, असखकाल-असख्यात काल की है।

भावानुवाद-अप्काय जीवो की उस काय को न छोडने रूप काय स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्य काल की है।

91 अप्काय के अन्तर-मान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढमि सए काए, आऊजीवाण अतर ॥९१॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, अप्जीवानामन्तरम् ॥९१॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढमि-छोड देने पर, आउ-अप्काय के, जीवाण-जीवो का, अतर-अन्तर, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल का है।

भावानुवाद-अप्काय को छोड कर पुन दुबारा अप्काय मे उत्पन्न होने रूप अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

92 भाव सापेक्ष वर्णन

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्सओ ॥९२॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसत स्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥९२॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (अप्काय के जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से स्पर्श से, वावि-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्त्रश (हजारो), विहाणाइ-विधान (भेद) होते हैं।

भावानुवाद-(भाव की अपेक्षा से) अप्काय के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा हजारो भेद हैं।

93 वनस्पति काय का निरूपण

मूल गाथा- दुविहा वणस्सईजीवा, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥९३॥

सस्कृत छाया- द्विविधा वनस्पतिजीवा सूक्ष्मा बादरास्तथा।
पर्याप्ता अपर्याप्ता , एवमेते द्विधा पुन ॥९३॥

अन्वयार्थ-वणस्सई जीवा-वनस्पति काय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-और, बायरा-

यादर, एवमेए-इसी प्रकार ये (वनस्पति काय के जीव), पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त के भेद से, पुणो-फिर, दुहा-दो प्रकार के हैं।

भावानुवाद-वनस्पतिकाय के जीव दो प्रकार के हैं-(1) सूक्ष्म और (2) यादर। पुन दोनों के दो-दो भेद हैं-(1) पर्याप्त और (2) अपर्याप्त।

94 बादर पर्याप्त वनस्पति के भेद

मूल गाथा- बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया।
साहारणसरीरा य, पत्तेगा य तहेव य॥९४॥

सस्कृत छाया- बादरा ये तु पर्याप्ता, द्विविधास्ते व्याख्याताः।
साधारणशरीराश्च, प्रत्येकाश्च तथैव च॥९४॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, यायरा-यादर, पज्जत्ता-पर्याप्त हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, साहारण सरीरा-साधारण शरीर, तहेव य-और, पत्तेगा-प्रत्येक शरीर।

भावानुवाद-जो यादर पर्याप्त वनस्पतिकाय के जीव हैं उनके दो भेद हैं-(1) साधारण शरीर और (2) प्रत्यक शरीर।

95 प्रत्येक वनस्पति के 6 भेदो का वर्णन

मूल गाथा- पत्तेगसरीरा उ, णेगहा ते पकित्तिया।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य, लया वल्ली तणा तहा॥९५॥

सस्कृत छाया- प्रत्येकशरीरा अनेकधास्ते प्रकीर्तिता।
वृक्षा गुच्छाश्च गुल्माश्च, लता वल्लयस्तृणानि तथा॥९५॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, पत्तेगसरीराउ-प्रत्येक शरीर हैं, ते-वे, णेगहा-अनेक प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं (यथा) रुक्खा-वृक्ष, गुच्छा-गुच्छ, गुम्मा-गुल्म, य-और, लया-लता, य-और, वल्ली-येल, तहा-और, तणा-तृण (घास)।

भावानुवाद-जो प्रत्येक वनस्पति जीव हैं, ये अनेक प्रकार के कहे गये हैं-1 वृक्ष [इसके भी दो भेद हैं-(1) सबीज और (2) निर्बीज] 2 गुच्छ, 3 गुल्म-वनमालती आदि, 4 लता-चम्पकलता आदि, 5 वल्ली-करेला-ककड़ी आदि की येलें, 6 तृण-घास।

96 प्रत्येक वनस्पति के शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- वलया पव्वगा कुहुणा, जलरुहा ओसही तहा।
हरियकाया य बोधव्वा, पत्तेया इइ आहिया॥९६॥

सस्कृत छाया- लता वलयानि पर्वगा कुहणा जलरुहा औषधयस्तथा।
हरितकायास्तु बोद्धव्या, प्रत्येका इति व्याख्याता॥९६॥

अन्वयार्थ-वलया-वलय, पव्वगा-पर्वक (बासादि), कुहुणा-कुहणा, जलरुहा-जलरुह, ओसही-औषधि, तहा-और, हरियकाया-हरितकाय, बोधव्वा-जानने चाहिए (ये), पत्तेया-प्रत्येक, वनस्पति के भेद, वियाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-7 लतावलय-नारियल, 8 केला आदि, 9 पर्वज-ईख, बास आदि, 9 कुहण-भूमि फोड कर निकलने वाली वनस्पति, कुक्करमुत्ता आदि, 10 जलरुह-कमल आदि, 11 औषधि-गेहूँ, जौ, चना आदि धान्य और 12 हरितकाय, ये सभी प्रत्येक शरीरी हैं-ऐसा जानना चाहिए।

97 साधारण वनस्पतिकाय का वर्णन

मूल गाथा- साहारणसरीरा उ, णेगहा ते पकित्तिया।
आलुए मूलए चेव, सिगबेरे तहेव य॥९७॥

संस्कृत छाया- साधारणशरीरास्तु, अनेकधास्ते प्रकीर्तिता।
आलूको मूलकश्चैव, श्रृगबेर तथैव च॥९७॥

अन्वयार्थ-जो, साहारणसरीरा उ-साधारण शरीरी हैं, ते-वे, णेगहा-अनेक प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं (यथा), आलुए-आलू, मूलए-मूल, चेव-और, सिगबेरे-श्रृगबेर (अदरख), तहेवय-तथा।

भावानुवाद-जो वनस्पति कायिक जीव साधारण शरीर वाले हैं, वे भी अनेक प्रकार के कहे गये हैं। 1 आलू, 2 मूली, 3 श्रृगबेर-अदरक।

98 कन्दमूल के नामो का वर्णन

मूल गाथा- हिरिली सिरिली सिरिसिरिली, जावई केय-कदली।
पलडु लसणकदे य, कदली य कुहुव्वए॥९८॥

संस्कृत छाया- हिरिली सिरिली सिरिसिरिली, यावतिकश्च कदली।
पलाण्डुकन्दो लशुनकन्दश्च, कन्दली च कुहुव्रत॥९८॥

अन्वयार्थ-हिरिली-हरिली, सिरिली-सिरिली, सिस्सरिली-सिसरिली, जावई-जावत्रीकन्द, केय कदली-केत कन्दली, पलडु-प्याज, लसणकदे-लहसुन कन्द, च-और, कदली-कन्दली, य-और, कुहुव्वए-कुहुव्रत।

भावानुवाद-4 हरिली कन्द, 5 सिरिलीकन्द, 6 सिस्सिरिली कन्द, 7 जावन्त्री कन्द, 8 केद-कन्दली कन्द, 9 पलाण्डु-प्याज, 10 लहसुन, 11 कन्दलीकन्द, 12 कुहुव्रतकन्द।

99 प्रसिद्ध साधारण वनस्पति का वर्णन

मूल गाथा- लोहि णीहू य थिहू य, कुहगा य तहेव य।
कण्हे य वज्जकदे य, कंदे सूरणए तहा॥९९॥

संस्कृत छाया- लोहि णीहूश्च स्तिभुश्च, हुत कुहकश्च तथैव च।
कृष्णश्च वज्रकन्दश्च, कन्द सूरणकस्तथा॥९९॥

अन्वयार्थ-लोहिणी-लोहिण, हूयथी-हूताक्षी, हूय-हूत, कुहगा-कुहक, य-और, तहेवय-और, कण्हे-कृष्णकन्द, य-और, वज्जकदे-वज्रकन्द, य-और, सूरणएकदे-सूरणकन्द, तहा-तथा।

भावानुवाद-13 लोहिणी कन्द, 14 हुताक्षीकन्द, 15 हूतकन्द, 16 कुहकन्द, 17 कृष्णकन्द, 18 वज्रकन्द, 19 सूरणकन्द।

100 अश्वकर्णी आदि कन्द मूल का वर्णन

मूल गाथा- अस्सकण्णी य बोधव्वा, सीहकण्णी तहेव य।
मुसुण्ढी य हलिद्दा य, ऽणेगहा एवमायओ॥१००॥

संस्कृत छाया- अश्वकर्णी च बोद्धव्या, सिंहकर्णी तथैव च।
मुसण्ढी च हरिद्रा च, अनेकधा एवमादिका ॥१००॥

अन्वयार्थ-अस्सकण्णी-अश्वकर्णी, य-और, सीहकण्णी-सिंहकर्णी, तहव य-तथा, मुसुढी-मुसुण्ढी, य-और, हलिद्दा-हरिद्रा, य-और, एवमायओ-इत्यादि, अणेगहा-अनेक प्रकार के भेद, बोधव्वा-जानने चाहिए।

भावानुवाद-20 अश्वकर्णी कन्द, 21 सिंहकर्णी कन्द, 22 मुसुण्ढी कन्द और 23 हरिद्रा-हल्दी इत्यादि अनेक प्रकार के कन्द साधारण वनस्पति कहे गये हैं।

101 सूक्ष्म वनस्पति भेद शून्य एव क्षेत्र सापेक्ष वर्णन

मूल गाथा- एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा॥१०१॥

संस्कृत छाया- एकविधा अनानात्वा, सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता।
सूक्ष्मा सर्वलोके, लोक देशे च बादरा ॥१०१॥

अन्वयार्थ-तत्थ-उनमें, सुहुमा-सूक्ष्म (वनस्पतिकाय के) जीव, अणाणत्ता-अनानात्व (भेद रहित) एगविहे-एक ही प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, सुहुमा-सूक्ष्म (वनस्पति काय के) जीव, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक में व्याप्त हैं, य-और, बायरा-बादर जीव, लोगदेसे-लोक के एक देश में व्याप्त हैं।

भावानुवाद-सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव भेद रहित एक ही प्रकार के हैं। सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं और बादर वनस्पतिकाय के जीव लोक के एक प्रदेश भाग में व्याप्त हैं।

102 काल की अपेक्षा वनस्पति काय का वर्णन

मूल गाथा- संतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसियावि य॥१०२॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका, अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥१०२॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (वनस्पति काय के जीव), अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, वि-भी, साइया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित, वि-भी है।

भावानुवाद-प्रवाह की अपेक्षा से ये सभी वनस्पति कायिक जीव अनादि-अनन्त हैं, किन्तु स्थिति-एक जीव की आयु की अपेक्षा से वे सादि-सान्त है।

103 वनस्पति की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- **दस चेव सहस्साइ, वासणुक्कोसिया भवे।**
वणस्सईण आउ तु, अतोमुहुत्त जहण्णय॥१०३॥

सस्कृत छाया- **दश चैव सहस्राणि, वर्षाणामुत्कृष्ट भवेत्।**
वनस्पतिनामायुस्तु, अन्तर्मुहूर्त जघन्यकम्॥१०३॥

अन्वयार्थ-वणस्सईण-वनस्पतिकाय के जीवो की, उक्कोसिया-उत्कृष्ट, आउ-आयु, दस-दस, सहस्साइ-हजार, वासाण-वर्ष, चेव तु-और, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की भवे-भवस्थिति होती है।

भावानुवाद-वनस्पतिकायिक जीवा की स्थिति-आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

104 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- **अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।**
कायठिई पणगाण, त काय तु अमुचओ॥१०४॥

सस्कृत छाया- **अनन्तकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्त जघन्यका।**
कायस्थिति पनकाना, त कायत्वमुञ्चताम्॥१०४॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-वनस्पतिकाय को, अमुचओ-न छोडते हुए, पणगाण-पनक की, उक्कोसा-उत्कृष्ट, कायठिई-कायस्थिति, अणतकाल-अनन्तकाल की, तु-और, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की है।

भावानुवाद-उस पनग-वनस्पतिकाय को नहीं छोडते हुए, उसी मे जन्म-मरण रूप काय स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल तक की है।

105 वनस्पति काय के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- **असखकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।**
विजढमि सए काए, पणगजीवाण अतर॥१०५॥

सस्कृत छाया- **असख्येयकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्त जघन्यका।**
वित्यक्ते स्वके काये, पनकजीवानामन्तरम्॥१०५॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढमि-छोड देने पर, पणग-पनक, जीवाण-जीवों का, उक्कोस-

उत्कृष्ट, अंतर-अन्तर असखकाल-असख्यात काल, जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त है।

भावानुवाद-पनग-वनस्पति काय को छोड कर पुन वनस्पति के शरीर में उत्पन्न होने में जो अन्तर होता है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यात काल का है।

106 वनस्पति काय के अवान्तर भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥१०६॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥१०६॥

अन्वयार्थ-एएसिं-इन (वनस्पति के जीवों) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस के स्पर्श से, वावि-और, संठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, सहस्सओ-सहस्रश (हजारो), विहाणाइं-भेद होते हैं।

भावानुवाद-भाव की अपेक्षा से वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की दृष्टि से वनस्पतिकायिक जीवो के हजारों भेद हैं।

107 त्रसकाय जीवो का निरूपण

मूल गाथा- इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया।
इत्तो उ तसे तिविहे, वुच्छामि अणुपुव्वसो॥१०७॥

सस्कृत छाया- इत्येते स्थावरास्त्रिविधा , समासेन व्याख्याता ।
इतस्तु त्रसान् त्रिविधान्, वक्ष्याम्यानुपूर्वश ॥१०७॥

अन्वयार्थ-इच्चेए-इस प्रकार, तिविहा-तीन प्रकार के, थावरा-स्थावर जीवो का, समासेण-सक्षेप में, वियाहिया-कहे गये हैं, उ-और, इत्तो-इसके आगे, तिविहे-तीन प्रकार के, तसे-त्रस जीवा का, अणुपुव्वसो-अनुक्रम से, वुच्छामि-वर्णन करूगा।

भावानुवाद-इस प्रकार तीन प्रकार के स्थावरों का सक्षेप में वर्णन किया गया है। अब इससे आगे क्रमश तीन प्रकार के त्रस जीवो का निरूपण करूगा।

108 त्रसकाय के प्रभेदो का वर्णन

मूल गाथा- तेऊ वाऊ य बोधव्वा, उराला य तसा तहा।
इच्चेए तसा तिविहा, तेसि भेए सुणेह मे॥१०८॥

सस्कृत छाया- तेजासि वायवश्च बोद्धव्या , उदाराश्च त्रसास्तथा।
इत्येते त्रसास्त्रिविधा , तेषा भेदान् श्रृणुत मे॥१०८॥

अन्वयार्थ-तेऊ-तेउकाय, य-और, वाऊ-वायुकाय, तहा-तथा, उराला-प्रधान, तसा-त्रस, य-और, इच्चेए-इस प्रकार ये, तिविहा-तीन प्रकार के, तसा-त्रस जीव हैं, वोधव्वा-जानना चाहिए, तेसि-उनके, भेए-भेदो को, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-अग्निकाय, वायुकाय और प्रधान त्रस-द्वीन्द्रियादि चलते फिरते जीव ये तीन प्रकार के त्रस जीव हैं, उनके भेदो को मुझसे सुनो।

109 तेजस्काय के भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **दुविहा तेऊजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।**
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥१०९॥

सस्कृत छाया- **द्विविधास्तेजोजीवास्तु, सूक्ष्मा वादरास्तथा।**
पर्याप्ता अपर्याप्ता , एवमेते द्विधा पुन ॥१०९॥

अन्वयार्थ-तेऊजीवा-अग्निकाय के जीव, दुविहा-दो प्रकार, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-और, वायरा-बादर, पुणो-पुन , एव-इसी प्रकार, पज्जत्त-पर्याप्त, उ-और, अपज्जत्ता-अपर्याप्त, एए-वे, दुहा-दो प्रकार के कहे गये हैं।

भावानुवाद-अग्निकाय के जीव दो प्रकार के हैं-(1) सूक्ष्म और (2) बादर। पुन दोनो के (1) पर्याप्त और (2) अपर्याप्त दो-दो भेद हैं।

110 बादर अग्निकाय के अवान्तर भेद

मूल गाथा- **बायरा जे उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया।**
इगाले मुम्मुरे अगणी, अच्चि जाला तहेव य॥११०॥

सस्कृत छाया- **बादरा ये तु पर्याप्ता , अनेकधास्ते व्याख्याता ।**
अगारो मुर्मरोऽग्नि , अर्चिर्ज्वाला तथैव च॥११०॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, बायरा-बादर, पज्जत्ता-पर्याप्त (अग्निकाय के जीव हैं), ते-वे, णेगहा-अनेक प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं (यथा), इगाले-अगार, मुम्मुरे-मुर्मुर, अगणी-अग्नि, य-और, अच्चि-अर्चि (अग्निशिखा), तहेव-और, जाला-ज्वाला-

भावानुवाद-बादर पर्याप्त अग्निकाय के अनेक भेद हैं-(1) अगारा (धूम रहित अग्नि), (2) मुर्मुर-राख मिश्रित अग्नि (3) अग्नि-तप्त-धातु की अग्नि (4) अर्चि-अग्नि शिखा और (5) ज्वाला।

111 सूक्ष्म अग्निकाय का वर्णन

मूल गाथा- **उक्का विज्जू य बोधव्वा, णेगहा एवमायओ।**
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया॥१११॥

सस्कृत छाया- **उल्काविद्युच्च योद्धव्या , अनेकधा एवमादिका ।**
एकविधा अनानात्वा , सूक्ष्मास्ते व्याख्याता ॥१११॥

अन्वयार्थ-उक्का-उल्कापात, य-और, विज्जू-विद्युत की अग्नि, एवमायओ-इस प्रकार अग्नि के, अणेगहा-अनेक भेद, बोधव्वा-जानने चाहिए, ते-वे, सुहुमा-सूक्ष्म (अग्निकाय के) जीव, अणाणत्ता-अनानात्व (भेद रहित), एगविह-एक ही प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-6 उल्का-उल्कापात-आकाशीय बिजली और 7 विद्युत प्रायोगिक बिजली आदि, अनेक भेद हैं। सूक्ष्म पर्याप्त अग्निकाय भेद रहित एक ही प्रकार की है।

112 क्षेत्र काल विभाग के वर्णन की प्रतिज्ञा

मूल गाथा- सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोग देसे य बायरा।
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वुच्छ चउव्विह॥112॥

संस्कृत छाया- सूक्ष्मा सर्वलोके, लोकदेशे च बादरा।
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम्॥११२॥

अन्वयार्थ-सुहुमा-सूक्ष्म (अग्निकाय के) जीव, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक में व्याप्त हैं, य-और, बायरा-बादर जीव, तु-तो, लोग देसे-लोक के एक देश में व्याप्त हैं, इत्तो-अब आगे, तेसि-उन जीवों का, चउव्विह-चार प्रकार का, कालविभागं-काल विभाग, वुच्छ-बताऊगा।

भावानुवाद-सूक्ष्म अग्नि के जीव सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त हैं और बादर अग्निकाय के जीव लोक के एक देश भाग में ही व्याप्त हैं। अनन्तर उन जीवों का चार प्रकार का काल विभाग का कथन करुगा।

113 अग्निकाय के चतुर्विध विभाग का वर्णन

मूल गाथा- संतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिई पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥113॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका:, अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥११३॥

अन्वयार्थ-अग्निकाय के जीव, संतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा, अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, वि-भी हैं, ठिई-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि, य-और, सपज्जवसिया-सपर्यवसित, वि-भी है।

भावानुवाद-ये अग्निकाय के जीव प्रवाह की दृष्टि से अनादि-अनन्त हैं और स्थिति-व्यक्तिश आयु की दृष्टि से सादि सान्त हैं।

114 अग्निकाय के जीवों की आयु स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
आउट्ठिई तेऊण, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया॥114॥

सस्कृत छाया- श्रीण्येवाहोरात्राणि, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयु स्थितिस्तेजसाम् अर्न्मुहूर्तं जघन्यका ॥११४॥

अन्वयार्थ-तेऊण-अग्निकाय के जीवो की, उक्कोसेण-उत्कृष्ट, आउठिई-आयु स्थिति, तिण्णेव-तीन, अहोरत्ता-अहोरात्र (और), जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-अग्निकाय के जीवो की जघन्य आयु स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट तीन अहो रात्र (रात दिन) की कही गयी है।

115 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असखकालमुक्कोसा, अतोमुहुत्त जहण्णय।
कायट्ठिई तेऊण, त काय तु अमुचओ ॥११५॥

सस्कृत छाया- असख्येय कालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थितिस्तेजसाम्, त कायत्वमुञ्चताम् ॥११५॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-अग्निकाय को, अमुचओ-न छोडते हुए, तेऊण-अग्निकाय के जीवो की, कायट्ठिई-कायस्थिति, उक्कोसा-उत्कृष्ट, असखकाल-असख्यात काल की, तु-और, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की है।

भावानुवाद-उस अग्निकाय को छोडे बिना उसी मे जन्म-मरण रूप काय स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट असख्यात काल की है।

116 अग्निकाय के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णिया।
विजढमि सए काए, तेऊजीवाण अतर ॥११६॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, तेजोजीवानामन्तरम् ॥११६॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, तेऊजीवाण-अग्निकाय के जीवों का, उक्कोस-उत्कृष्ट, अतर-अन्तर, अणतकाल-अनन्तकाल का (और), जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का है।

भावानुवाद-अग्निकाय के शरीर को छोड कर पुन अग्निकाय मे उत्पन्न होन रूप मध्य का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

117 अग्निकाय के अवान्तर भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥११७॥

अन्वयार्थ-उक्का-उल्कापात, य-और, विज्जू-विद्युत की अग्नि, एवमायओ-इस प्रकार अग्नि के, अणेगहा-अनेक भेद, बोधव्वा-जानने चाहिए, त-वे, सुहुमा-सूक्ष्म (अग्निकाय के) जीव, अणाणत्ता-अनानात्व (भेद रहित), एगविह-एक ही प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-6 उल्का-उल्कापात-आकाशीय बिजली और 7 विद्युत प्रायोगिक बिजली आदि, अनेक भेद हैं। सूक्ष्म पर्याप्त अग्निकाय भेद रहित एक ही प्रकार की है।

112 क्षेत्र काल विभाग के वर्णन की प्रतिज्ञा

मूल गाथा- सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोग देसे य बायरा।
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वुच्छ चउव्विहं॥११२॥

सस्कृत छाया- सूक्ष्मा सर्वलोके, लोकदेशे च बादरा।
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम्॥११२॥

अन्वयार्थ-सुहुमा-सूक्ष्म (अग्निकाय के) जीव, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक म व्याप्त हैं, य-और, बायरा-बादर जीव, तु-तो, लोग देसे-लोक के एक देश में व्याप्त हैं, इत्तो-अब आगे, तेसि-उन जीवों का, चउव्विह-चार प्रकार का, कालविभाग-काल विभाग, वुच्छ-बताऊगा।

भावानुवाद-सूक्ष्म अग्नि के जीव सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं और बादर अग्निकाय के जीव लोक के एक देश भाग में ही व्याप्त हैं। अनन्तर उन जीवों का चार प्रकार का काल विभाग का कथन करूगा।

113 अग्निकाय के चतुर्विध विभाग का वर्णन

मूल गाथा- संतई पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥११३॥

सस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका, अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥११३॥

अन्वयार्थ-अग्निकाय के जीव, सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा, अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, वि-भी हैं, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि, य-और, सपज्जवसिया-सपर्यवसित, वि-भी है।

भावानुवाद-ये अग्निकाय के जीव प्रवाह की दृष्टि से अनादि-अनन्त हैं और स्थिति-व्यक्तिश आयु की दृष्टि स सादि सान्त हैं।

114 अग्निकाय के जीवों की आयु स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
आउट्ठिई तेऊण, अतोमुहुत्तं जहण्णिया॥११४॥

संस्कृत छाया- त्रीण्येवाहोरात्राणि, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयु स्थितिस्तेजसाम् अर्न्मुहूर्तं जघन्यका ॥११४ ॥

अन्वयार्थ-तेऊण-अग्निकाय के जीवो की, उक्कोसेण-उत्कृष्ट, आउठिई-आयु स्थिति, तिण्णेव-तीन, अहोरत्ता-अहोरात्र (और), जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-अग्निकाय के जीवो की जघन्य आयु स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट तीन अहो रात्र (रात दिन) की कही गयी है।

115 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असखकालमुक्कोसा, अतोमुहुत्त जहण्णय।
कायट्ठिई तेऊण, त काय तु अमुचओ ॥११५॥

सस्कृत छाया- असख्येय कालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
कायस्थितिस्तेजसाम्, त कायत्वमुञ्चताम् ॥११५ ॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-अग्निकाय को, अमुचओ-न छोडते हुए, तेऊण-अग्निकाय के जीवो की, कायट्ठिई-कायस्थिति, उक्कोसा-उत्कृष्ट, असखकाल-असख्यात काल की, तु-और, जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की है।

भावानुवाद-उस अग्निकाय को छोडे बिना उसी मे जन्म-मरण रूप काय स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट असख्यात काल की है।

116 अग्निकाय के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णिया।
विजढमि सए काए, तेऊजीवाण अतर ॥११६॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तमुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, तेजोजीवानामन्तरम् ॥११६ ॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, तेऊजीवाण-अग्निकाय के जीवों का, उक्कोस-उत्कृष्ट, अतर-अन्तर, अणतकाल-अनन्तकाल का (और), जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का है।

भावानुवाद-अग्निकाय के शरीर को छोड कर पुन अग्निकाय मे उत्पन्न होने रूप मध्य का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

117 अग्निकाय के अवान्तर भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥११७॥

संस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
संस्थानादेशतोवाऽपि, विधानानि सहस्रश ॥११७॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (अग्निकाय के जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से, स्पर्श से, वा-और, सठाणादेसओ-सस्थान की अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-हजारा, विहाणाइ-विधान (भेद) होते हैं।

भावानुवाद-भाव की दृष्टि से इन अग्निकाय के जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा स हजारों भेद होते है।

118 वायुकाय के चार भेद

मूल गाथा- दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो॥११८॥

संस्कृत छाया- द्विविधा वायुजीवास्तु, सूक्ष्मा बादरास्तथा।
पर्याप्ता अपर्याप्ता , एवमेते द्विधा पुन ॥११८॥

अन्वयार्थ-वाउजीवा-वायुकाय के जीव, दुविहा-दो प्रकार के हैं, सुहुमा-सूक्ष्म, तहा-और, बायरा-बादर, पुणा-पुन , एव-इसी प्रकार, पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त के भेद से, एए-ये वायुकाय के जीव, दुहा-दो प्रकार के हैं।

भावानुवाद-वायुकाय के जीव दो प्रकार के हैं-(1) सूक्ष्म और (2) बादर। पुन दोनो के दो-दो भेद हैं (1) पयाप्त और (2) अपयाप्त।

119 बादर वायुकाय के उत्तर भेद

मूल गाथा- बायरा जे उ पज्जत्ता, पचहा ते पकित्तिया।
उक्कलिया मडलिया, घणगुजा सुद्धवाया य॥११९॥

संस्कृत छाया- बादरा ये तु पर्याप्ता , पञ्चधा ते प्रकीर्तिता ।
उत्कलिका मण्डलिका, घन गुञ्जा शुद्धवाताश्च॥११९॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, बायरा-बादर, पज्जत्ता-पर्याप्त (वायुकाय के) जीव हैं, ते-ये, पचहा-पाच प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं (यथा), उक्कलिका-उत्कलिया, मडलिया-गोलाकार बहने वाली वायु, घण-घणवायु गुजा-गुजावायु, य-और, सुद्धवाया-शुद्ध वायु।

भावानुवाद-बादर पर्याप्त वायुकाय के जीव पाच प्रकार केहैं-(1) उत्कलिकावायु-रह रह कर बहने वाली वायु, (2) मण्डलिका वायु-आन्धी या गोलाकार बहने वाली वायु, (3) घनवायु-घनोदधि के नीचे बहने वाली वायु, (4) गुञ्जावायु-स्वय गूजने वाली और (5) शुद्ध वायु।

120 सवर्तक आदि भेद एव सूक्ष्म वायुकाय भेद रहित

मूल गाथा- सवट्टगवाया य, णेगहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥१२०॥

संस्कृत छाया- सवर्तकवायवश्च, अनेकधा एवमादय ।
एकविधा अनानात्वा , सूक्ष्मास्तत्र व्याख्याता ॥१२०॥

अन्वयार्थ-सवट्टगवाया-सवर्तकवायु, एव-इस प्रकार (वायुकाय के), आयओ-आदिक (और भी), णेगहा-अनेक भेद हैं, तत्थ-उनमे, सुहुमा-सूक्ष्म वायुकाय, अणाणत्ता-अनानात्व (भेद रहित), एगविह-एक ही प्रकार की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-सवर्तकवायु, इत्यादि बादर वायु के और भी अनेक भेद हैं, किन्तु सूक्ष्म वायुकाय के जीव भेद रहित एक ही प्रकार के हैं।

121 सूक्ष्म और बादर वायुकाय का क्षेत्र विभाग

मूल गाथा- सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वुच्छ चउव्विह ॥१२१॥

संस्कृत छाया- सूक्ष्मा सर्वलोके, एकदेशे च बादरा ।
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥१२१॥

अन्वयार्थ-सुहुमा-सूक्ष्म (वायुकाय के) जीव, सव्व-सर्व, लोगम्मि-लोक मे व्याप्त हैं, य-और, बायरा-बादर, तु-तो, लोगदेसे-लोक के एक देश मे व्याप्त हैं, इत्तो-इसके आगे, तेसि-उन (वायुकाय के जीवो) के, चउव्विह-चार प्रकार के, कालविभाग-काल विभाग को, वुच्छ-बताऊगा।

भावानुवाद-सूक्ष्म वायुकाय के जीव सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त हैं और बादर वायुकाय के जीव लोक के एक देश-भाग मे व्याप्त हैं। अब इससे आगे उन वायुकायिक जीवो के चार प्रकार के काल विभाग का वर्णन करूगा।

122 काल विभाग का वर्णन

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१२२॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि य।
स्थिति प्रतीत्य सादिका , सपर्यवसिता अपि च ॥१२२॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (वायुकाय के जीव), अणाइया-अनादि य-और, अपज्जवसियावि-अपर्यवसित हैं (और), ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि, य-और, सपज्जवसिया-सान्त, वि-भी है।

भावानुवाद-ये वायुकाय के जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं और विवक्षित जीव की स्थिति की अपेक्षा

से सादि सान्त हैं।

123 आयु स्थिति का सम्बन्ध

मूल गाथा- तिण्णेव सहस्साइ, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउट्ठिई वाऊण, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥१२३॥

सस्कृत छाया- त्रीण्येव सहस्राणि, वर्षाणामुत्कृष्टा भवेत्।
आयु स्थितिर्वायूनाम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥१२३॥

अन्वयार्थ-वाऊण-वायुकाय के जीवो, की, उक्कोसिया-उत्कृष्ट, आउट्ठिई-आयुस्थिति, तिण्णेव-तीन, सहस्साइ-हजार, वासाण-वर्ष (और), जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, भवे-होती है।

भावानुवाद-वायुकाय के जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है।

124 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- असखकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णिया।
कायट्ठिई वाऊण, त काय तु अमुचओ ॥१२४॥

सस्कृत छाया- असख्येयकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तंजघन्यका।
कायस्थितिर्वायूनाम्, त कायत्वमुञ्चताम् ॥१२४॥

अन्वयार्थ-त-उन, काय-वायुकाय को, अमुचओ-न छोडते हुए, वाऊण-वायुकाय के जीवो की, उक्कोस-उत्कृष्ट, कायट्ठिई-कायस्थिति, असखकाल-असख्यात काल की, तु-और, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की है।

भावानुवाद-उस वायुकाय को नहीं छोडने रूप उनकी कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट असख्यात काल की है।

125 वायुकाय के अन्तर मान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढम्मि सए काए, वाउजीवाण अतर ॥१२५॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, वायुजीवानामन्तरम् ॥१२५॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया, विजढम्मि-छोडने पर, वाऊजीवाण-वायुकाय के जीवों का उक्कोस उत्कृष्ट, अतर-अन्तर, अणतकालं-अनन्तकाल का (और), जहण्णयं-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का है।

भावानुवाद-वायुकाय को छोड कर पुन उसी में उत्पन्न होने रूप वायुकायिक जीवो का मध्य का अन्तराल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

126 वायुकाय के अवान्तर भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाई सहस्ससो॥१२६॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतोवाऽपि, विधानानि सहस्रश ॥१२६॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (वायुकाय के), वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से, स्पर्श से, वा-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, वि-भी, सहस्सो-सहस्रश -हजारो, विहाणाइ-विधान (भेद) हा जाते है।

भावानुवाद-भाव की दृष्टि से वायुकायिक जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा हजारो भेद होते हैं।

127 उदार त्रसो का वर्णन

मूल गाथा- उराला तसा जे उ, चउहा ते पकित्तिया।
बेइदिय तेइदिय, चउरो पचिदिया चेव॥१२७॥

सस्कृत छाया- उदारा त्रसा ये तु, चतुर्विधास्ते प्रकीर्तिता ।
द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रिया , चतुरिन्द्रीया पञ्चेन्द्रियाश्चैव॥१२७॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, उराला-उदार (प्रधान), तसा-त्रस हैं, ते-वे, चउहा-चार प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं (यथा), बेइदिय-बेइन्द्रिय, तेइदिय-तेइन्द्रिय, चउरो-चतुरिन्द्रिय, चेव-और, पचिदिया-पञ्चेन्द्रिय।

भावानुवाद-उदार-प्रधान त्रस चार प्रकार के कहे गये हैं-(1) द्वीन्द्रिय (2) त्रीन्द्रिय (3) चउरिन्द्रिय और (4) पञ्चेन्द्रिय।

128 द्वीन्द्रिय जीवो के अवान्तर भेद

मूल गाथा- बेइदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसि भेए सुणेह मे॥१२८॥

सस्कृत छाया- द्विन्द्रयास्तु ये जीवा , द्विविधास्ते प्रकीर्तिता ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता , तेषा भेदाञ्छृणुत मे॥१२८॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, बेइदिया-बेइन्द्रिय, जीवा-जीव हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं (यथा), पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त, उ-अथ, तेसि-उनके, भेए-भेद, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-जो द्वीन्द्रिय त्रस जीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) पर्याप्त और (2) अपर्याप्त। उनके भेदों का मुझसे सुनो।

129 द्वीन्द्रिय जीवो के नामो का निर्देश

मूल गाथा- किमिणो सोमगला चेव, अलसा माइवाहया।
वासीमुहा य सिप्पीया, सखा सखणगा तहा॥१२९॥

सस्कृत छाया- कृमय सोमगलाश्चैव, अलसा मातृवाहका ।
वासीमुखाश्च शुक्तय, शखा शखनकास्तथा॥१२९॥

अन्वयार्थ-किमिणो-कृमि, सोमगला-सुमगल, चेव-और, अलसा-अलसिया, माइवाहया-मातृवाहक, वासीमुहा-वासीमुख, य-और, सिप्पीया-सीप, सखा-शख, सखणगा-शखानक, तहा-और।

भावानुवाद-(1) कृमि (विष्ठादि में उत्पन्न होने वाले कीडे), (2) सुमगल (3) अलसिया (वर्षा के समय उत्पन्न होने वाला जीव), (4) मातृ वाहक (काष्ठादि में लगने वाला घुन), (5) वासी मुख, (6) सीप (7) शख (8) शखानक (शखाकृति के छोटे जीव)।

130 पल्लक आदि जीवो का नामोल्लेख

मूल गाथा- पल्लोयाणुल्लया चेव, तहेव य वराडगा।
जलूगा जालगा चेव, चदणा य तहेव य॥१३०॥

सस्कृत छाया- पल्लुका अणुल्लकाश्चैव, तथैव च वराटका ।
जलुका जालकाश्चैव, चन्दनाश्च तथैव च॥१३०॥

अन्वयार्थ-पल्लोया-पल्लक, चेव-और, अणुल्लया-अनुल्लक, तहेव-तथा, वराडगा-वराटक (कौडी), य-और, जलूगा-जौंक, य-और जालगा-जालक, चेव-और, चदणा-चदणिया, तहेव य-और।

भावानुवाद-(9) पल्लक, (10), अनुल्लक, (11) वराटक-कौडी, (12) जौंक, (13) जालक और (14) चन्दनिया-

131 द्वीन्द्रिय जीवो की एक देशता

मूल गाथा- इइ बेइदिया एए, णेगहा एवमायओ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया॥१३१॥

सस्कृत छाया- इति द्वीन्द्रिया एते, अनेकधा एवमादय ।
लोकैकदेशे ते सर्वे, न सर्वत्र व्याख्याता ॥१३१॥

अन्वयार्थ-इइ-इस प्रकार, एए-ये, एवमायओ-इत्यादि, बेइदिया-द्वीन्द्रिय जीव, णेगहा-अनेक प्रकार के हैं, ते-वे, सव्वे-सभी, लोगेगदेसे-लोक के एक देश में, वियाहिया-कहे गये हैं (किन्तु), ण सव्वत्थ-सर्वत्र व्याप्त नहीं है।

भावानुवाद-इत्यादि, इस प्रकार ये अनेक प्रकार के बेइन्द्रिय जीव हैं, ये सभी लोक के एक देश-भाग में कहे गये हैं, किन्तु सर्वत्र नहीं।

132 अनादित्व और सादित्व का उल्लेख

मूल गाथा- **सतई पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।**
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१३२॥

संस्कृत छाया- **सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि च।**
स्थिति प्रतीत्य सादिका , सपर्यवसिता अपि च॥१३२॥

अन्वयार्थ-(द्वीन्द्रिय जीव), सतइ-सतति की, पप्प-अपेक्षा, अणाइया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया वि-अपर्यवसित भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साईया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित, वि-भी है।

भावानुवाद-प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि अनन्त है, किन्तु आयु स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं।

133 भव स्थिति का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **वासाइ बारसे चेव, उक्कोसेण वियाहिया।**
बेइदियआउठिई, अतोमुहुत्त जहण्णिया॥१३३॥

संस्कृत छाया- **वर्षाणि द्वादश चैव, उत्कर्षेण व्याख्याता ।**
द्वीन्द्रियायु स्थिति , अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥१३३॥

अन्वयार्थ-बेइदिय-द्वीन्द्रिय जीवो की, उक्कोसेण-उत्कृष्ट, आउठिई-आयु स्थिति, बारसे-बारह, वासाइ-वर्ष है, चेव-और, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, वियाहिया-कही गयी है।

भावानुवाद-द्वीन्द्रिय जीवो की आयु-स्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है।

134 द्वीन्द्रिय जीवो के अन्तर मान का वर्णन

मूल गाथा- **सखिज्जकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णिया।**
बेइदियकायठिई, त काय तु अमुचओ॥१३४॥

संस्कृत छाया- **सख्येयकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।**
द्वीन्द्रियकायस्थिति , त कायत्वमुचताम्॥१३४॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-काय को, अमुचओ-न छोडने वाले, बेइदिय-द्वीन्द्रिय जीवो की, कायठिई-कायस्थिति, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, तु-तो, सखिज्जकाल-सख्यात काल है।

भावानुवाद-द्वीन्द्रिय जीवो की उस काय को न छोडने रूप काय स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात काल की है।

135 द्वीन्द्रिय जीवो के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्त जहण्णयं।
बेइदियजीवाण, अतर च वियाहिय ॥१३५॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
द्वीन्द्रियजीवानाम्, अन्तर च व्याख्यातम् ॥१३५॥

अन्वयार्थ-बेइदिय-द्वीन्द्रिय, जीवाण-जीवो का, जहण्णय-जघन्य, अतर-अन्तर, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, च-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल का, वियाहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-द्वीन्द्रिय शरीर को छाड कर पुन द्वीन्द्रिय में ही उत्पन्न होने के मध्य का अन्तर काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है।

136 द्वीन्द्रिय जीवो के विशेष भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥१३६॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥१३६॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (द्वीन्द्रिय जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से स्पर्श से, वा-और, सठाणादेसओ-सस्थान की अपेक्षा, वि-भी, सहस्ससो-सहस्रश (हजारो), विहाणाइ-विधान (भेद) होते हैं।

भावानुवाद-(भाव दृष्टि से) द्वीन्द्रिय जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से हजारों भेद हैं।

137 त्रीन्द्रिय जीवो का वर्णन

मूल गाथा- तेइदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसि भेए सुणेह मे ॥१३७॥

सस्कृत छाया- त्रीन्द्रियास्तु ये जीवा, द्विविधास्ते प्रकीर्तिता।
पर्याप्ता अपर्याप्ता, तेषा भेदाञ्छृणुत मे ॥१३७॥

अन्वयार्थ-तेइदिया-त्रइन्द्रिय, जे-जो, जीवा-जीव हैं, ते-वे पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त के भेद से, दुविहा-दो प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं, उ-अब, मे-मुझसे, तेसि-उनके, भेए-भेदों को, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-जो तीन इन्द्रिय वाले जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) पर्याप्त और (2) अपर्याप्त। उनके भेदों को मुझसे सुनो।

138 त्रीन्द्रिय जीवो के भेद

मूल गाथा- कुंथु-पिवीलि-उड्डसा, उक्कलुद्देहिया तहा।
तणहार कट्ठहारा य, मालुगा पत्तहारगा॥१३८॥

सस्कृत छाया- कुन्थुपिपील्युद्दशा, उत्कलिकाउद्देहिकास्तथा।
तृणहारा काष्ठहारा, मालूका पत्रहारका ॥१३८॥

अन्वयार्थ-कुथु-कुन्थवा, पिवीलि-पिपीलिका, उड्डसा-उद्दस, उक्कल-उत्कलिक, उद्देहिया-उदई, तहा-तथा, तणहारा-तृणहारक, कट्ठहारा-काष्ठहारक, य-और, मालूगा-मालूक, पत्तहारगा-पत्रहारक।

भावानुवाद-(1) कुथु, (2) पिपीलिका-चींटी, (3) उद्दस-खटमल, (4) उकलिया-मकडी, (5) उदई-दीमक, (6) तृणहारक, (7) काष्ठाहारक-घुन, (8) मालुक (9) पत्राहारक।

139 तिन्दुक आदि जीवो का नामोल्लेख

मूल गाथा- कप्पासऽट्ठिमिंजा, तिंदुगा तउसमिंजगा।
सदावरी य गुम्मी य, बोधव्वा इंदकाइया॥१३९॥

सस्कृत छाया- कर्पासास्थिमिंजाश्च, तिन्दुका त्रपुषमिंजका ।
शतावरी च गुल्मी च, बोद्धव्या इन्द्रकायिका ॥१३९॥

अन्वयार्थ-कप्पासट्ठिमिंजा-कपास और अस्थि में उत्पन्न जीव, तिंदुगा-तिंदुक, तउसमिंजगा-त्रपूषमिंजक, सदावरी-सदावरी, य-और, गुम्मी-गुल्मी (कानखजूरा), य-और, इंदकाइया-इन्द्र कायिक, बोधव्वा-जानने चाहिए।

भावानुवाद-(10) कपास के बीज मे उत्पन्न होने वाला जीव (11) तिन्दुक, (12) त्रपूषमिंजक, (13) शतावरी, (14) गुल्मी-कानखजूरा, (15) इन्द्रकायिक।

140 त्रीन्द्रिय जीवो की एक देशता

मूल गाथा- इंदगोवगमाईया, णेगहा एवमायओ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया॥१४०॥

सस्कृत छाया- इन्द्रगोपकादिका, अनेकविधा एवमादिका ।
लोकैकदेशे ते सर्वे, न सर्वत्र व्याख्याता ॥१४०॥

अन्वयार्थ-इंदगोवग-इन्द्रगोप, आइया-आदि, एवमायओ-इस प्रकार और भी, णेगहा-अनेक प्रकार के, (तेइन्द्रिय जीव), ते-वे, सव्वे-सब, लोगेगदेसे-लोक के एक देश मे, वियाहिया-कहे गये हैं (किन्तु), ण सव्वत्थ-सर्वत्र नहीं है।

भावानुवाद-(16) इन्द्रगोपक इत्यादि त्रीन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के हैं। वे लोक के एक भाग मे व्याप्त हैं, सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त नहीं है।

141 अनादिकत्व और सादित्व का उल्लेख

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१४१॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका अपर्यवसिता अपि च।
स्थिति प्रतीत्य सादिका सपर्यवसिता अपि च॥१४१॥

अन्वयार्थ-तेइन्द्रिय जीव, सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा, अणाइया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, वि-भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साईया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित (अन्तरहित), वि-भी हैं।

भावानुवाद-त्रीन्द्रिय जीव प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनन्त हैं, व्यक्तिश आयु स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं।

142 भव स्थिति का दिग्दर्शन

मूल गाथा- एगूणपण्णहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
तेइंदियआउठिई, अंतोमुहुत्त जहण्णिया॥१४२॥

संस्कृत छाया- एकोनपञ्चाशदहोरात्राणाम्, उत्कर्षेण व्याख्याता।
त्रीन्द्रियायु स्थिति, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥१४२॥

अन्वयार्थ-तेइंदिय-तेइन्द्रिय जीवो की, उक्कोसेण-उत्कृष्ट, आउठिई-आयु स्थिति, एगूणपण्णहोरत्ता-उनपचास अहोरात्र है (और), जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-त्रीन्द्रिय जीवों की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट उनपचास (49) दिन की है।

143 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- संखिज्जकालमुक्कोसा, अंतोमुहुत्त जहण्णिया।
तेइंदियकायठिई, त काय तु अमुचओ॥१४३॥

संस्कृत छाया- सङ्ख्येय काल मुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
त्रीन्द्रिय काय स्थिति, त काय त्वमुञ्चताम्॥१४३॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-काया को, अमुचओ-न छोडे हुए, तेइंदिय-तेइन्द्रिय जीवों की, उक्कोसा-उत्कृष्ट, कायठिई-कायस्थिति, संखिज्जकाल-सख्यात काल की है, तु-और, जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की है।

भावानुवाद-त्रीन्द्रिय की काय स्थिति, उस काय का न छोडने रूप जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यातकाल की है।

144 त्रीन्द्रिय जीवो के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
तेइदियजीवाण, अतरेय वियाहिय ॥१४४॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
त्रीन्द्रियजीवानाम्, अन्तर तु व्याख्यातम् ॥१४४॥

अन्वयार्थ-तेइदिय-तेइन्द्रिय, जीवाण-जीवों का, उक्कोस-उत्कृष्ट, अतरेय-अन्तर काल, अणतकाल-अनन्तकाल का है (और), जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का, वियाहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-त्रीन्द्रिय के शरीर को छोड कर पुन त्रीन्द्रिय मे उत्पन्न होने के मध्य का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

145 त्रीन्द्रिय जीवो के विशेष भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥१४५॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्त्रश ॥१४५॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (तेइन्द्रिय जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-तथा, रसफासओ-रस से, स्पर्श से, वा-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्त्रश (हजारो), विहाणाइ-भेद होते हैं।

भावानुवाद-(भाव की दृष्टि से) त्रीन्द्रिय जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा हजारो भेद होते हैं।

146 चतुरिन्द्रिय जीवो का वर्णन

मूल गाथा- चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसि भेए सुणेह मे ॥१४६॥

सस्कृत छाया- चतुरिन्द्रियास्तु ये जीवा , द्विविधास्ते प्रकीर्तिता ।
पर्याप्ता अपर्याप्ता , तेषा भेदाञ्छृणुत मे ॥१४६॥

अन्वयार्थ-जे-जो, जीवा-जीव, चउरिंदिया-चतुरिन्द्रिय हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, पकित्तिया-कहे गये हैं (यथा), पज्जत्त-पर्याप्त (और), अपज्जत्ता-अपर्याप्त, उ-अब, मे-मुझसे, तेसि-उनके, भेए-भेद, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-चतुरिन्द्रिय त्रस के जो जीव हैं, वे दो प्रकार के हैं-(1) पर्याप्त और (2) अपयाप्त। उनके भेद तुम मुझसे सुनो।

147 चतुरिन्द्रिय जीवो के भेद

मूल गाथा- अधिया पोत्तिया चेव, मच्छिया मसगा तहा।
भमरे कीड-पयगे य, ढिंकुणे कुकुणे तहा॥१४७॥

संस्कृत छाया- अन्धिका पौत्तिकाश्चैव, मक्षिका मशकास्तथा।
भ्रमरा कीटपतंगाश्च, ढिंकुणा कुकुणास्तथा॥१४७॥

अन्वयार्थ-अधिया-अन्धिक, पोत्तिया-पौतिक, चेव-और, मच्छिया-मक्षिका (मक्खी), मसगा-मशक, तहा-तथा, भमरे-भ्रमर, कीड-कीडा, पयगे-पतंगिया, य-और, ढिंकुणे-ढिंकुण, कुकुणे-कुकण, तहा-तथा।

भावानुवाद-(1) अन्धिया, (2) पोत्तिया, (3) मक्षिका-मक्खी, (4) मच्छर, (5) भौंरा (भ्रमर), (6) कीट, (7) पतंगिया, (8) ढिकुण, (9) ककण।

148 बिच्छु आदि जीवो का उल्लेख

मूल गाथा- कुक्कुडे सिंगिरीडी य, णदावत्ते य विछिए।
डोले भिंगिरीडी य, विरली अच्छिवेहए॥१४८॥

संस्कृत छाया- कुक्कुटा श्रृंगरीटी च, नन्दावर्तश्च वृश्चिक।
डोला भृंगरीटकाश्च, विरल्योऽक्षिवेधका॥१४८॥

अन्वयार्थ-कुक्कुडे-कुक्कुट, सिंगरीडी-सिंगरिटी, य-और, णदावत्ते-नन्दावर्त्त, य-और, विछिए-बिच्छू, डोले-डोला, भिंगिरीडी-भृगरिटी (झिंगुर), य-और, विरली-विरली, अच्छिवेहए-अक्षिवेधक (आख फाडा)।

भावानुवाद-(10) कुक्कुड, (11) सिंगरीटी, (12) नन्दावृत्त, (13) बिच्छू, (14) डोला, (15) झिंगुर, (16) विरली, (17) अक्षिवधक।

149 अन्य अक्षिलादि जीवों का नाम विशेष

मूल गाथा- अच्छिले माहए अच्छिरोडए, विचित्ते चित्तपत्तए।
ओहिंजलिया जलकारी य, णीयया तवगाइया॥१४९॥

संस्कृत छाया- अक्षिला मागधा अक्षा (रोडका) विचित्राश्चित्रपत्रकाः।
उपधिजलका जलकार्यश्च, नीचकास्ताम्रकादिका॥१४९॥

अन्वयार्थ-अच्छिले-अक्षिल, माहए-आहल, अच्छिरोडए-अक्षिरोडक, विचित्ते-विचित्र, चित्तपत्तए-चित्रपत्रक, ओहिंजलिया-उपधिजलक, जलकारी-जलकारी, य-और, णीयया-नीचक, तवगाइया-ताम्रकादि।

भावानुवाद-(18) अक्षिल (19) माहल-मागध, (20) अक्षिरोडक, (21) विचित्र चित्र पत्रक-रंग बिरंगी तितलिया, (22) उपाधि जलका, (23) जलकारी, (24) नीचक और (25) ताम्रक।

150 चतुरिन्द्रिय जीवो की एक देशता

मूल गाथा- **इइ चउरिंदिया एए, णेगहा एवमायओ।**
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे परिकित्तिया॥१५०॥

सस्कृत छाया- **इति चतुरिन्द्रिया एते, अनेकधा एवमादय ।**
लोकस्यैकदेशे ते, सर्वे परिकीर्तिता ॥१५०॥

अन्वयार्थ-इइ-इस प्रकार, एवमायओ-और भी, एए-ये, चउरिंदिया-चतुरिन्द्रिय जीव, णेगहा-अनेक प्रकार के है, ते-वे, सव्वे-सब, लोगस्स एगदेसम्मि-लोक के एक देश मे व्याप्त, परिकित्तिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-इत्यादि, इस प्रकार चतुरिन्द्रिय जीव अनेक प्रकार क हैं। वे लोक के एक भाग मे व्याप्त हैं। सम्पूर्ण लोक म नहीं है।

151 चतुरिन्द्रिय जीव का अनादित्व सादित्व काल सापेक्ष वर्णन

मूल गाथा- **सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।**
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१५१॥

सस्कृत छाया- **सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि च।**
स्थिति प्रतीत्य सादिका , सपर्यवसिता अपि च॥१५१॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (चतुरिन्द्रिय जीव), अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित (अनन्त), वि-भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-ये चतुरिन्द्रिय जीव प्रवाह की दृष्टि से अनादि-अनन्त ओर आयु स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त हैं।

152 भव स्थिति का दिग्दर्शन

मूल गाथा- **छच्चेव य मासाऽऊ, उक्कोसेण वियाहिया।**
चउरिंदियआउठिई, अतोमुहुत्त जहण्णिया॥१५२॥

सस्कृत छाया- **षट् चैव च मासायु , उत्कर्षेण व्याख्याता।**
चतुरिन्द्रियायु स्थिति, अन्तर्मुहूर्त जघन्यका।।१५२॥

अन्वयार्थ-चउरिंदिय-चतुरिन्द्रिय जीवो की, उक्कोसेण-उत्कृष्ट, आउठिई-आयुस्थिति, छच्चेव-छह, मासाउ-महीने की, य-और, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-चतुरिन्द्रिय जीवो की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छह मास की कही गइ है।

153 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- सखिज्जकालमुक्कोस, अंतोमुहुत्त जहण्णय।
चउरिंदियकायठिई, त काय तु अमुचओ॥१५३॥

सस्कृत छाया- साख्येयकालमुत्कृष्टा, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका।
चतुरिन्द्रियकायस्थिति , त कायन्त्वमुञ्चताम्॥१५३॥

अन्वयार्थ-त-उस, काय-काया को, अमुचओ-न छोडने वाले, चउरिंदिय-चतुरिन्द्रिय जीवो की, उक्कोसा-उत्कृष्ट, कायठिई-कायस्थिति, सखिज्जकाल-सख्यातकाल (और), जहण्णिया-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की है।

भावानुवाद-उन चतुरिन्द्रिय जीवो की काय स्थिति, उस काय को नहीं छोडने रूप, जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात काल की है।

154 चतुरिन्द्रिय जीव के अन्तर मान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढमि सए काए, अतरेय वियाहिय॥१५४॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यक।
वित्यक्ते स्वके काये, अतरमेतद् व्याख्यातम्॥१५४॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोडने पर (चतुरिन्द्रिय जीवो का), उक्कोसं-उत्कृष्ट, अतर-अन्तर, अणत काल-अनन्तकाल का है, च-और, जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का है।

भावानुवाद-चतुरिन्द्रिय शरीर को छोड कर पुन चतुरिन्द्रिय में उत्पन्न होने के बीच का अन्तराल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

155 प्रकारान्तर से असख्य भेदो का निरूपण

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥१५५॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥१५५॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (चतुरिन्द्रिय जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गंधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ रस स्पर्श से, वा-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्रश (हजारों), विहाणाई-भेद होते हैं।

भावानुवाद-(भावदृष्टि से) चतुरिन्द्रिय जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से हजारों भेद हैं।

156 पचेन्द्रिय जीवो का वर्णन

मूल गाथा- पचिंदिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया।
णेरइया तिरिक्खा य, मणुया देवा य आहिया॥१५६॥

सस्कृत छाया- पञ्चेन्द्रियास्तु ये जीवा, चतुर्विधास्ते व्याख्याता ।
नैरयिकास्तिर्यञ्चाश्च, मनुजा देवाश्चाख्याता ॥१५६॥

अन्वयार्थ-जे-जो, जीवा-जीव, पचिदिया-पचेन्द्रिय हैं, ते-वे, उ-तो, चउव्विहा-चार प्रकार के, वियाहिया-कहे गये है, णेरइया-नैरयिक, तिरिक्खा-तिर्यञ्च, मणुया-मनुष्य, य-और, देवा-देव, आहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-जो पञ्चेन्द्रिय जीव हैं, वे चार प्रकार के कहे गये हैं-(1) नैरयिक, (2) तिर्यञ्च (3) मनुष्य और (4) देव।

157 प्रथम तीन नरको के गोत्र

मूल गाथा- णेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तसु भवे।
रयणाभा सक्कराभा, वालुयाभा य आहिया॥१५७॥

सस्कृत छाया- नैरयिका सप्तविधा (नरक), पृथिवीषु सप्तसु भवेयु ।
रत्नाभा शर्कराभा, वालुकाभा याख्याता ॥१५७॥

अन्वयार्थ-णेरइया-नैरयिक जीव, सत्तविहा-सात प्रकार के, आहिया-कहे गये हैं (जो), सत्तसु-सात, पुढवीसु-पृथ्वियो म, भवे-होते हैं, रयणाभा-रत्नप्रभा, सक्कराभा-शर्कराप्रभा, वालुयाभा-बालुका प्रभा, य-और।

भावानुवाद-नैरयिक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं, जो सात पृथ्वी मे होते हैं। (उन सात पृथ्वियो के नाम इस प्रकार हैं)- (1) रत्न प्रभा, (2) शर्करा प्रभा, (3) बालुका प्रभा,

158 शेष नरको के नाम

मूल गाथा- पकाभा धूमाभा, तमा तमतमा तहा।
इइ णेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया॥१५८॥

सस्कृत छाया- पकाभा धूमाभा तम प्रभा, तमस्तम प्रभा तथा।
इति नैरयिका एते, सप्तधा परिकीर्तिता ॥१५८॥

अन्वयार्थ-पकाभा-पकप्रभा, धूमाभा-धूमप्रभा, तमा-तमा प्रभा, तहा-और, तमतमा-तमस्तमा प्रभा, इइ-इस प्रकार, एए-ये, सत्तहा-सात प्रकार के, णेरइया-नैरयिक, परिकित्तिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-(4) पक प्रभा, (5) धूम प्रभा, (6) तम प्रभा, (7) तमस्तम प्रभा-इस प्रकार इन सात भूमियों मे रहने वाले नैरयिक सात प्रकार के बताए गए हैं।

159 सात नारकी के नाम

मूल गाथा- घम्मा वसगा सिला, तहा अजणा रिट्ठगा।
मघा माघवई चेव, णारया य वियाहिया॥१५९॥

सस्कृत छाया- घम्मा वशगा शिला, तथा अजनारिष्टगा।
मघा माघवती चैव, नारका य व्याख्याता ॥१५९॥

अन्वयार्थ-घम्मा-घम्मा, वसगा-वशा, सिला-शिला, तहा-तथा, अंजणा-अजना, रिट्ठगा-रिष्ठा, य-और, मघा-मघा, चेव-और, माघवई-माघवती (य सात), णारया-नारको के नाम, वियाहिया-कहे गय हैं।

भावानुवाद-(1) घम्मा, (2) वशा, (3) शिला, (4) अजना, (5) रिष्ठा, (6) मघा और (7) माघवती, ये सात नारकी क नाम कहे गये हैं।

160 नाम-गोत्र का विभाजन सकत

मूल गाथा- रयणाई गोत्तओ चेव, तहा घम्माई णामओ।
इइ णेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया॥१६०॥

सस्कृत छाया- रत्नादि गोत्रक चैव, तथा धम्मादि नामक ।
इति नैरयिका एते, सप्तधा परिकीर्तिता॥१६०॥

अन्वयार्थ-चेव-और, रयणाइ-रत्न प्रभा आदि तो, गोत्तओ-गोत्र हैं, तहा-तथा, घम्माइ-घम्मा आदि (नरका के), णामओ-नाम हैं, इइ-इस प्रकार, एए-ये, सत्तहा-सात प्रकार के, णेरइया-नैरयिक, परिकित्तिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-रत्न प्रभा आदि तो नारकिया के गोत्र हैं और घम्मा आदि नारकियो के नाम हैं। इस प्रकार सात प्रकार के नैरयिक कहे गये हैं।

161 नारकी जीवो की क्षेत्र स्थिति

मूल गाथा- लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे उ वियाहिया।
इत्तो कालविभाग तु, वुच्छ तेसि चउव्विह॥१६१॥

सस्कृत छाया- लोकस्यैकदेशे, ते सर्वे तु व्याख्याता:।
इत: कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम्॥१६१॥

अन्वयार्थ-ते-वे, सव्वे-सब, लोगस्स-लोक के एगदेसम्मि-एक देश में, वियाहिया-कहे गय हैं, तु-अब, उ-तो, इत्तो-इससे आगे, तेसिं-उनका, चउव्विहं-चार प्रकार का, कालविभागं-काल विभाग, वुच्छं-कहूगा।

भावानुवाद-व सब नैरयिक जीव लोक के एक देश में व्याप्त हैं। अब उनके चार प्रकार क काल विभाग का कथन करूगा।

162 सादित्व एव अनादित्व का वर्णन

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१६२॥

सस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका, अपर्यवसिता अपि च।
स्थिति प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥१६२॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (नारकीय जीव), अणाइया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित (अनन्त), वि-भी है, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित, (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-ये नारकीय जीव प्रवाह की दृष्टि से अनादि अनन्त और आयु स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त हैं।

163 पहली नरक की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- सागरोवममेग तु, उक्कोसेण वियाहिया।
पढमाए जहण्णेण, दसवाससहस्सिया॥१६३॥

सस्कृत छाया- सागरोपममेक तु उत्कर्षेण व्याख्याता।
प्रथमाया जघन्येन, दशवर्षसहस्त्रिका॥१६३॥

अन्वयार्थ-पढमाए-पहली नरक मे, तु-तो, जहण्णेण-जघन्य से स्थिति, दसवाससहस्सिया-दस हजार वर्ष (और), उक्कोसेण-उत्कृष्ट से, एग-एक, सागरोवम-सागरोपम की, वियाहिया-कही गयी है।

भावानुवाद-प्रथम पृथ्वी के नारको की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागरोपम की है।

164 द्वितीय नरक की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- तिण्णेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
दोच्चाए जहण्णेण, एग तु सागरोवम॥१६४॥

सस्कृत छाया- त्रीण्येव सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
द्वितीयाया जघन्येन, एकतु सागरोपमम्॥१६४॥

अन्वयार्थ-दोच्चाए-दूसरी नरक म, जहण्णेण-जघन्य से स्थिति, एग-एक, सागरोवम-सागरोपम, तु-और, उक्कोसेण-उत्कृष्ट से, तिण्णेव-तीन, सागरा ऊ-सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-दूसरी पृथ्वी के नैरयिक जीवों की स्थिति-आयु उत्कृष्ट तीन सागरोपम की और जघन्य एक सागरोपम की है।

165 तीसरी नरक की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- सत्तेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
तइयाए जहण्णेण, तिण्णेव उ सागरोवमा॥१६५॥

संस्कृत छाया- सप्तैव सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
तृतीयाया जघन्येन, त्रीण्येव सागरोपमाणि ॥१६५॥

अन्वयार्थ-तइयाए-तीसरी नरक मे, जहण्णेण-जघन्य से स्थिति, तिण्णेव-तीन, सागरोवमा-सागरोपम, उ-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, सत्तेव-सात, सागरा ऊ-सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-तीसरी पृथ्वी के नैरयिक जीवो की आयुस्थिति जघन्य तीन सागरोपम और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

166 चौथी नरक की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- दस सागरोवमा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
चउत्थीए जहण्णेण, सत्तेव उ सागरोवमा ॥१६६॥

संस्कृत छाया- दशसागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
चतुर्थ्यां जघन्येन, सप्तैव सागरोपमाणि ॥१६६॥

अन्वयार्थ-चउत्थीए-चौथी नरक मे, जहण्णेण-जघन्य से स्थिति, सत्तेव-सात, सागरोवमा ऊ-सागरोपम, उ-और उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, दस सागरोवमा-दश सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-चौथी पृथ्वी के नैरयिक जीवो की आयुस्थिति जघन्य सात सागरोपम और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है।

167 पाचवीं नरक की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- सत्तरस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
पचमाए जहण्णेण, दस चेव उ सागरोवमा ॥१६७॥

संस्कृत छाया- सप्तदशसागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
पञ्चम्यां जघन्येन, दश चैव सागरोपमाणि ॥१६७॥

अन्वयार्थ-पचमाए-पाचवीं नरक में, जहण्णेण-जघन्य स स्थिति, दस-दस, सागरोवमा-सागरोपम, चेव-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, उ-तो, सत्तरस-सतरह, सागराऊ-सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-पाचवी पृथ्वी क नैरयिक जीवों की आयु-स्थिति जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट सतरह सागरोपम की है।

168 छठी नरक की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- बावीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
छट्ठीए जहण्णेण, सत्तरस सागरोवमा ॥१६८॥

संस्कृत छाया- द्राविंशति सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
षष्ठ्या जघन्येन, सप्तदश सागरोपमाणि ॥१६८॥

अन्वयार्थ-छट्ठीए-छठी नरक मे, जहण्णेण-जघन्य से स्थिति, सत्तरस-सतरह, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, बावीस-बाईस, सागराऊ-सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-छठी पृथ्वी के नैरयिक जीवो की आयु-स्थिति जघन्य सतरह सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है।

169 सातवीं नरक की स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- तेत्तीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
सत्तमाए जहण्णेण, बावीस सागरोवमा ॥१६९॥

संस्कृत छाया- त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
सप्तम्या जघन्येन, द्राविंशति सागरोपमाणि ॥१६९॥

अन्वयार्थ-सत्तमाए-सातवीं नरक मे, जहण्णेण-जघन्य से स्थिति, बावीस-बाईस, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, तेत्तीस-तेतीस, सागराऊ-सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-सातवीं पृथ्वी के नैरयिक जीवो की आयु-स्थिति जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

170 नारकी जीवो की काय स्थिति

मूल गाथा- जा चेव उ आउठिई, णेरइयाण वियाहिया।
सा तेसि कायठिई, जहण्णुक्कोसिया भवे ॥१७०॥

संस्कृत छाया- या चैव तु आयु स्थिति, नैरयिकाणा व्याख्याता।
सा तेषा कायस्थिति, जघन्यकोत्कृष्टा भवेत् ॥१७०॥

अन्वयार्थ-णेरइयाण-नैरयिक जीवो की जा-जो, जहण्णुक्कोसिया-जघन्य, उ-और, उत्कृष्ट, आउठिई-आयु स्थिति, वियाहिया-कही गई है, सा चेव-वही, तेसि-उन जीवो की, (जघन्य और उत्कृष्ट), कायठिई-कायस्थिति, भवे-होती है।

भावानुवाद-नैरयिक जीवो की जो जघन्य और उत्कृष्ट आयु स्थिति है, वही उनकी जघन्य उत्कृष्ट काय स्थिति है।

171 नारकी जीवो के अन्तर मान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढमि सए काए, णेरइयाण तु अतर ॥१७१॥

संस्कृत छाया- अनन्तमकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, नैरयिकाणामन्तरम्॥१७१॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, णेरइयाण-नैरयिक जीवो का, उक्कोसं-उत्कृष्ट, अंतर-अन्तर, अणतकाल-अनन्त काल का, तु-और, जहण्णयं-जघन्य, अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त का है।

भावानुवाद-नैरयिक शरीर को छोड कर पुन नैरयिक शरीर में उत्पन्न होने में अन्तर जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

172 प्रकारान्तर के अनेकानेक भेदो का वर्णन

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥१७२॥

संस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत
संस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥१७२॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (नरक जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से, स्पर्श से, वा-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्रश (हजारों), विहाणाइं-भेद हो जाते हैं।

भावानुवाद-नैरयिक जीवो के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से हजारों भेद होते हैं।

173 तिर्यंच जीवो का वर्णन

मूल गाथा- पचिदियतिरिक्खाओ, दुविहा ते वियाहिया।
सम्मुच्छिमतिरिक्खाओ, गब्भवक्कतिया तहा॥१७३॥

संस्कृत छाया- पञ्चेन्द्रियास्तिर्यञ्च, द्विविधास्ते व्याख्याता ।
सम्मूर्च्छिमतिर्यञ्च, गर्भव्युत्क्रान्तिकास्तथा॥१७३॥

अन्वयार्थ-जो, पचिदिय-पञ्चेन्द्रिय, तिरिक्खाओ-तिर्यञ्च हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, सम्मुच्छिम-सम्मूर्च्छिम, तिरिक्खाओ-तिर्यञ्च, तहा-और, गब्भवक्कतिया-गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) तिर्यञ्च।

भावानुवाद-पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) सम्मूर्च्छिम-तिर्यञ्च और (2) गर्भज तिर्यञ्च।

174 तिर्यंच के अवान्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- दुविहावि ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तहा।
णहयरा य बोधव्वा, तेसिं भेए सुणेह मे॥१७४॥

सस्कृत छाया- द्विविधास्ते भवेयुस्त्रिविधा , जलचरा स्थलचरास्तथा।
नभश्चराश्च बोद्धव्या , तेषा भेदान् श्रृणुत मे ॥१७४॥

अन्वयार्थ-य-और, दुविहा-दो प्रकार के, वि-भी, ते-उन तिर्यञ्चो के, तिविहा-तीन-तीन भेद, बोधव्वा-जानने चाहिए (यथा), जलयरा-जलचर, च-और, थलयरा-थलचर, तहा-और, णहयरा-नभचर (खेचर) अब, तेसि-उनके, भेए-भेदो को, मे-मुझसे, सुणेह-सुनो।

भावानुवाद-इन दोनो (सम्मूर्च्छिम और गर्भज तिर्यंच) के पुन तीन-तीन भेद होते हैं-(1) जलचर, (2) स्थलचर और (3) खेचर। उनके भेद मुझसे सुनो।

175 जलचर जीवो के भेद-प्रभेद

मूल गाथा- मच्छा य कच्छभा य, गाहा य मगरा तहा।
सुसुमारा य बोधव्वा, पचहा जलयराहिया॥१७५॥

सस्कृत छाया- मत्स्याश्च कच्छपाश्च, ग्राहाश्च मकरास्तथा।
सुसमाराश्च बोद्धव्या , पञ्चधा जलचरा आख्याता ॥१७५॥

अन्वयार्थ-जलयरा-जलचर जीव, पचहा-पाच प्रकार के, आहिया-कहे गये हैं (यथा), मच्छा-मच्छ, य-और, कच्छभा-कच्छप, य-और, गाहा-ग्राह, य-और, मगरा-मकर, तहा-तथा, सुसुमारा-सुसुमार, बोधव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय पाच प्रकार के कहे गये हैं-(1) मत्स्य, (2) कच्छप-कछुआ, (3) ग्राह, (4) मकर और (5) सुसुमार।

176 क्षेत्र स्थिति एव काल विभाग का वर्णन

मूल गाथा- लोएगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया।
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वुच्छ चउव्विह॥१७६॥

सस्कृत छाया- लोकैकदेशे ते सर्वे, न सर्वत्र व्याख्याता ।
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम्॥१७६॥

अन्वयार्थ-ते-वे, सव्वे-सभी (जलचर जीव), लोएगदेसे-लोक के एक देश में, वियाहिया-कहे गये हैं, ण सव्वत्थ-वे सर्वत्र नहीं है, तु-अब, इत्तो-आगे, तेसि-उन जीवो के, चउव्विह-चार प्रकार के, कालविभाग-काल विभाग को, वुच्छ-कहूगा।

भावानुवाद-वे लोक के एक भाग मे व्याप्त हैं, सर्वत्र नहीं। अब उनके चार प्रकार के काल विभाग का निरूपण करूगा।

177 प्रवाह की अपेक्षा काल विभाग

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥१७७॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका, अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका, सपर्यवसिता अपि च॥१७७॥

अन्वयार्थ-सतई-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (जलचरजीव), अणाईया-अनादि, य-और अपज्जवसिया-अपर्यवसित, वि-भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साईया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित, वि भी हैं।

भावानुवाद-वे जलचर जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त हैं।

178 भव स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- एगा य पुव्वकोडीओ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई जलयराण, अंतोमुहुत्तं जहण्णिया॥१७८॥

संस्कृत छाया- एका च पूर्वकोटी, उत्कर्षेण व्याख्याता।
आयु स्थितिर्जलचराणाम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥१७८॥

अन्वयार्थ-जलयराण-जलचर जीवों की, जहण्णिया-जघन्य, आउठिई-आयु स्थिति, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, य-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, उ-तो, एगा-एक, पुव्वकोडी-पूर्व करोड वर्ष की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-जलचरो की आयु स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट एक करोड वर्ष पूर्व की कही गई है।

179 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- पुव्वकोडीपुहुत्तं तु, उक्कोसेण वियाहिया।
कायठिई जलयराण, अंतोमुहुत्तं जहण्णय॥१७९॥

संस्कृत छाया- पूर्वकोटिपृथक्त्वं तु, उत्कर्षेण व्याख्याता
कायस्थितिर्जलचराणाम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥१७९॥

अन्वयार्थ-जलयराण-जलचर जीवों की, जहण्णिया-जघन्य, कायठिई-काय स्थिति, अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, पुव्वकोडिपुहुत्तं-पृथक्त्व पूर्व करोड वर्ष की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-जलचर जीवों की काय-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पृथक्त्व पूर्व करोड वर्ष की कही गई है।

180 जलचर जीवों के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- अणंतकालमुक्कोस, [illegible] ।
विजढ[illegible] काए, जलयराण [illegible]०॥

संस्कृत छाया- [illegible] ।
[illegible] ८०॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोडने वाले, जलयराण-जलचर जीवो का, जहण्णय-जघन्य, अतर-अन्तर, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का, तु-और, उक्कोस-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल का है।

भावानुवाद-जलचर के शरीर को छोड कर पुन जलचर के शरीर मे उत्पन्न होने के मध्य का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

181 प्रकारान्तर से हजारो भेद

मूल गाथा- **एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।**
सठाणादेसओ वा वि, विहाणाइ सहस्ससो॥१८१॥

सस्कृत छाया- **एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।**
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥१८१॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (जलचर जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से, स्पर्श से, वा-और, सठाणा-सस्थान की, देसओ-अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्र (हजारो), विहाणाइ-विधान (भेद) हो जाते हैं।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध,रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से जलचर जीवो के हजारो भेद हैं।

182 स्थलचर जीवो का निरूपण

मूल गाथा- **चउप्पया य परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे।**
चउप्पहा चउव्विहा, ते मे कित्तयओ सुण॥१८२॥

सस्कृत छाया- **चतु पदाश्च परिसर्पा , द्विविधा स्थलचरा भवेयु ।**
चतु पदाश्चतुर्विधा , तान् मे कीर्तयत श्रृणु॥१८२॥

अन्वयार्थ-थलयरा-थलचर जीव, दुविहा-दो प्रकार के, भवे-होते हैं (यथा), चउप्पहा-चतुष्पद, य-और, परिसप्पा-परिसर्प, चउप्पया-(इनमे) चतुष्पदजीव, चउव्विहा-चार प्रकार के हैं, मे-मैं, ते-उनका, कित्तयओ-कीर्तन करता हू, सुण-(तुम) सुनो।

भावानुवाद-स्थलचर पञ्चेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) चतुष्पद और (2) परिसर्प। इनमे चतुष्पद जीव चार प्रकार के हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनो।

183 चतुष्पदो के चार भेद

मूल गाथा- **एगखुरा दुखुरा चेव, गण्डीपय-सणप्पया।**
हयमाई-गोणमाई, गयमाई-सीहमाइणो॥१८३॥

सस्कृत छाया- **एकखुरा द्विखुराश्चैव, गण्डीपदा सनखपदा ।**
हयादयो गोणादय , गजादय सिंहादय ॥१८३॥

अन्वयार्थ-एगखुरा-एक खुर वाले, हयमाई-हय-अश्व घोडे आदि, दुखुरा-दो खुर वाले, गोणमाइ-गोमहिषी आदि, गडीपया-गडीपद वाले, गयमाइ-गज हाथी आदि, चेव-और, सणप्पया-सनखपद वाले, सीहमाइणो-सिंह आदि।

भावानुवाद-(1) एक खुरा अश्व आदि, (2) द्विखुरा गाय-बैल आदि, (3) गण्डीपदा हाथी आदि और (4) सनखपदा-सिंह आदि।

184 परिसर्पों के भेद-प्रभेद

मूल गाथा- भुओरगपरिसप्पा य, परिसप्पा दुविहा भवे।
गोहाई अहिमाई य, एक्केक्का ऽणेगहा भवे ॥१८४॥

संस्कृत छाया- भुजपरिसर्पा उर , परिसर्पाश्च द्विविधा भवेयु ।
गोधादयोऽह्यादयश्च, एकैका अनेकधा भवेयु ॥१८४॥

अन्वयार्थ-परिसप्पा-परिसर्प, दुविहा-दो प्रकार के, भवे-होते हैं, भुअ-भुजपरिसर्प, गोहाई-गोह नकुल, चूहे आदि, य-और, उरगपरिसप्पा-उरपरिसप, अहिमाई-अहि-सर्पादि, य-और, एक्केक्का-इन प्रत्येक के, अणेगहा-अनेक भेद, भवे-होते हैं।

भावानुवाद-परिसर्प स्थलचर दो प्रकार के हैं-भुजपरिसर्प गोह, नकुल, चूहे आदि और उर परिसर्प साप आदि। इनके प्रत्येक के अनेक प्रकार होते हैं।

185 स्थलचर जीवों का क्षेत्र विभाग

मूल गाथा- लोएगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वोच्छं चउव्विहं ॥१८५॥

संस्कृत छाया- लोकैकदेशे ते सर्वे, न सर्वत्र व्याख्याता ।
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥१८५॥

अन्वयार्थ-ते-वे, सव्वे-सब (स्थलचर जीव), लोएगदेसे-लोक के एक देश में व्याप्त हैं, ण सव्वत्थ-सर्वत्र नहीं हैं ऐसा, वियाहिया-कहा गया है, तु-अब, इत्तो-इसके आगे, तेसिं-उन जीवों के, चउव्विहं-चार प्रकार के कालविभागं-काल विभाग का, वुच्छं-कहूंगा।

भावानुवाद-ये स्थलचर जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं सर्वत्र-सम्पूर्ण लोक में नहीं हैं। अब उनके चार प्रकार के काल-विभाग का कथन करूंगा।

186 काल विभाग का वर्णन

मूल गाथा- संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१८६॥

सस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि च।
स्थिति प्रतीत्य सादिका , सपर्यवसिता अपि च ॥१८६॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (स्थलचर जीव), अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित (अनन्त), वि-भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साईया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-वे स्थलचर जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं।

187 भव स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- पलिओवमाउ तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई थलयराण, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥१८७॥

सस्कृत छाया- पल्योपमानि त्रीणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
आयु स्थिति स्थलचराणाम्, अन्तर्मुहूर्त जघन्यका ॥१८७॥

अन्वयार्थ-थलयराण-स्थलचर जीवो का, जहण्णिया-जघन्य, आउठिई-आयु स्थिति, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, उ-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, तिण्णि-तीन, पलिओवमाइ-पल्योपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-उन स्थलचर जीवो की आयु-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

188 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- ~~पलिओवमाइ तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।~~
पुव्वकोडि पुहुत्तेण, अतोमुहुत्त जहण्णिया॥
कायठिई थलयराण, अतर तेसिम भवे ॥१८८॥

सस्कृत छाया- पल्योपमानि त्रीणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
पूर्वकोटि पृथक्त्वेन, अन्तर्मुहूर्त जघन्यका।
कायस्थिति स्थलचराणाम् अन्तर तेषामिद भवेत् ॥१८८॥

अन्वयार्थ-थलयराण-स्थलचर जीवो की, उक्कोसेण-उत्कृष्टता स, उ-तो, कायठिई-कायस्थिति, तिण्णि-तीन, पलिओवमाइ-पल्योपम सहित, पुव्वकोडि-पुहुत्तेण-पृथक्त्व कोटि पूर्व की, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया-कही गई है, तेसिम-उनका, अतर-अन्तर काल, (निम्नलिखित) भवे-है।

भावानुवाद-स्थलचर जीवो की उत्कृष्ट काय स्थिति तीन पल्योपम सहित पृथक्त्व कोटि पूर्व की और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की कही गई है। उनका अन्तर काल निम्न है-

189 स्थलचर जीवों के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकाल मुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढम्मि सए काए, थलयराण तु अतरं॥१८९॥

सस्कृत छाया- अनन्त काल मुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, स्थलचराणां त्वन्तरम्॥१८९॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोडने पर, थलयराण-स्थलचर जीवो का, उक्कोसं-उत्कृष्ट, अतर-अन्तर, अणतकाल-अनन्तकाल का, तु-और जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त का है।

भावानुवाद-अपनी स्थलचर काय को छोड कर पुन स्थलचर म आने के बीच का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

190 स्थल जीवो के अवान्तर भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥१९०॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रस स्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥१९०॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (स्थलचर जीवो) के, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस स स्पर्श से, वा-और, सठाणादेसओ-सस्थान की अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्रश (हजारो), विहाणाइ-भेद हो जाते हैं।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से स्थलचर जीवो के हजारो भेद होते हैं।

191 खचर जीवो के भेदो का वर्णन

मूल गाथा- चम्मे उ लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया।
विययपक्खी य बोधव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा॥१९१॥

सस्कृत छाया- चर्मपक्षिणस्तु रोमपक्षिणश्च, तृतीय भेद समुद्गपक्षिण ।
विततपक्षिणश्च बोद्धव्या , पक्षिणश्च चतुर्विधा ॥१९१॥

अन्वयार्थ-चम्मे-चर्म पक्षी, य-और, लोमपक्खी-रोमपक्षी, य-और, तइया-तीसरे, समुग्ग-पक्खिया-समुद्ग पक्षी, य-और विययपक्खी-विततपक्षी (इस प्रकार) चउव्विहा-चार प्रकार के, पक्खिणो-पक्षी, बोधव्वा-जानने चाहिए।

भावानुवाद-खेचर पञ्चेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं-(1) चर्म पक्षी (चमडे के पख वाले जैसे चमगादड आदि), (2) रोम पक्षी (रोम के पख वाले-तोता, राजहस आदि) (3) समुद्ग पक्षी (जिनके पख सदैव बन्द रहे हुए रहते हों) और (4) वितत पक्षी (जिनके पख सदैव खुले रहते हों)।

192 क्षेत्र विभाग का वर्णन

मूल गाथा- **लोएगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया।**
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वोच्छ चउव्विह ॥१९२॥

सस्कृत छाया- **लोकैकदेशे ते सर्वे, न सर्वत्र व्याख्याता ।**
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥१९२॥

अन्वयार्थ-ते-वे, सव्वे-सभी पक्षी, लोएगदेसे-लोक के एक देश म, वियाहिया-कहे गये हैं, ण सव्वत्थ-वे सर्वत्र नहीं है, तु-अब, इत्तो-इसके आगे, तेसि-उनका, चउव्विह-चार प्रकार का, कालविभाग-काल विभाग, वुच्छ-कहूगा।

भावानुवाद-ये सभी खेचर जीव लोक के एक भाग मे रहते हैं सम्पूर्ण लोक में नहीं। अब आगे मैं उनके चार प्रकार के काल विभाग का कथन करूगा।

193 प्रवाह की अपेक्षा काल विभाग

मूल गाथा- **सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।**
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१९३॥

सस्कृत छाया- **सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि च।**
स्थिति प्रतीत्य सादिका सपर्यवसिता अपि च ॥१९३॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति (प्रवाह) की, पप्प-अपेक्षा से (सभी), अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, वि-भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साईया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-सभी खेचर जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं।

194 खेचर जीवो की भव स्थिति

मूल गाथा- **पलिओवमस्स भागो, असखेज्जइमो भवे।**
आउठिई खहयराण, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥१९४॥

सस्कृत छाया- **पल्योपमस्य भाग , असख्येयतमो भवेत्।**
आयु स्थिति खेचराणाम् अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥१९४॥

अन्वयार्थ-खहयराण-खेचर जीवो की, आउठिई-आयुस्थिति (उत्कृष्ट), पलिओवमस्स-पल्योपम का, असखेज्जइमो-असख्यातवा, भागो-भाग है (और), जहण्णया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तमुहूर्त, भवे-होता है।

भावानुवाद-खेचर जीवो की आयु-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग है।

189 स्थलचर जीवों के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- अणंतकाल मुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहण्णयं।
विजढम्मि सए काए, थलयराणं तु अंतरं॥१८९॥

संस्कृत छाया- अनन्त कालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, स्थलचराणां त्वन्तरम्॥१८९॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया का, विजढम्मि-छोडने पर, थलयराण-स्थलचर जीवों का, उक्कोसं-उत्कृष्ट, अंतरं-अन्तर, अणंतकाल-अनन्तकाल का, तु-और जहण्णय-जघन्य, अंतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का है।

भावानुवाद-अपनी स्थलचर काय को छोड कर पुन स्थलचर में आने के बीच का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

190 स्थल जीवों के अवान्तर भेद

मूल गाथा- एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो॥१९०॥

संस्कृत छाया- एतेषां वर्णतश्चैव, गन्धतो रस स्पर्शत।
संस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश॥१९०॥

अन्वयार्थ-एएसिं-इन (स्थलचर जीवों) के, वण्णओ-वर्ण से, गंधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस म, स्पर्श से, वा-और, संठाणादेसओ-संस्थान की अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्रश (हजारों), विहाणाइं-भेद हो जाते हैं।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से स्थलचर जीवों के हजारों भेद होते हैं।

191 खेचर जीवों के भेदों का वर्णन

मूल गाथा- चम्मे उ लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया।
विययपक्खी य बोधव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा॥१९१॥

संस्कृत छाया- चर्मपक्षिणस्तु रोमपक्षिणश्च, तृतीय भेद समुद्गपक्षिण।
विततपक्षिणश्च बोद्धव्या, पक्षिणश्च चतुर्विधा॥१९१॥

अन्वयार्थ-चम्मे-चर्म पक्षी, य-और लोमपक्खी-रोमपक्षी, य-और, तइया-तीसरे, समुग्ग-पक्खिया-समुद्ग पक्षी, य-और, विययपक्खी-विततपक्षी (इस प्रकार), चउव्विहा-चार प्रकार के, पक्खिणो-पक्षी, बोधव्वा-जानने चाहिए।

भावानुवाद-खेचर पञ्चेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं-(1) चर्म पक्षी (चमडे के पंख वाले जैसे चमगादड आदि), (2) रोम पक्षी (रोम के पंख वाले-कलहंस, राजहंस आदि), (3) समुद्ग पक्षी (जिनके पंख सदैव बन्द ढके हुए रहते हों) और (4) वितत पक्षी (जिनके पंख सदैव खुले रहते हों)।

192 क्षेत्र विभाग का वर्णन

मूल गाथा- लोएगदेसे ते सव्वे, ण सव्वत्थ वियाहिया।
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वोच्छ चउव्विह ॥१९२॥

सस्कृत छाया- लोकैकदेशे ते सर्वे, न सर्वत्र व्याख्याता ।
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥१९२॥

अन्वयार्थ-ते-वे, सव्वे-सभी पक्षी, लोएगदेसे-लोक के एक देश मे, वियाहिया-कहे गये हैं, ण सव्वत्थ-वे सर्वत्र नहीं है, तु-अब, इत्तो-इसके आगे, तेसि-उनका, चउव्विह-चार प्रकार का, कालविभाग-काल विभाग वुच्छ-कहूगा।

भावानुवाद-ये सभी खेचर जीव लोक के एक भाग मे रहते हैं सम्पूर्ण लोक में नहीं। अब आगे मैं उनके चार प्रकार के काल विभाग का कथन करूगा।

193 प्रवाह की अपेक्षा काल विभाग

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१९३॥

सस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि च।
स्थिति प्रतीत्य सादिका सपर्यवसिता अपि च ॥१९३॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति (प्रवाह) की, पप्प-अपेक्षा से (सभी), अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, वि-भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साईया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-सभी खेचर जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं।

194 खेचर जीवो की भव स्थिति

मूल गाथा- पलिओवमस्स भागो, असखेज्जइमो भवे।
आउठिई खहयराण, अतोमुहुत्त जहण्णिया ॥१९४॥

सस्कृत छाया- पल्योपमस्य भाग , असख्येयतमो भवेत्।
आयु स्थिति खेचराणाम् अन्तर्मुहूर्त जघन्यका ॥१९४॥

अन्वयार्थ-खहयराण-खेचर जीवो की, आउठिई-आयुस्थिति (उत्कृष्ट), पलिओवमस्स-पल्योपम का, असखेज्जइमो-असख्यातवा, भागो-भाग है (और), जहण्णया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त, भवे-होता है।

भावानुवाद-खेचर जीवो की आयु-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग है।

195 काय स्थिति का कथन

मूल गाथा- असखभागो पलियस्स, उक्कोसेण उ साहिया।
पुव्वकोडीपुहुत्तेण, अतोमुहुत्त जहण्णिया॥१९५॥

सस्कृत छाया- असख्यभाग पल्योपमस्य, उत्कर्षेण तु साधिका।
पूर्वकोटिपृथक्त्वेन, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥१९५॥

अन्वयार्थ-उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, पलियस्स-पल्योपम का, असखभागो-असख्यातवा भाग, साहिया-अधिक, पुव्वकोडी-पुहुत्तेण-पृथक्त्व पूर्व कोटि है, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (है)।

भावानुवाद-उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग अधिक पृथक्त्व पूर्व कोटि और जघन्य अन्तर्मुहूर्त (है)।

196 खेचर जीवो का अन्तर मान

मूल गाथा- कायठिई खहयराण, अतर तेसिम भवे।
काल अणतमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय॥१९६॥

सस्कृत छाया- काय स्थिति खेचराणाम्, अन्तर तेषामिद भवेत्।
अनन्तकाल मुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्॥१९६॥

अन्वयार्थ-खहयराण-खेचर जीवो की (उक्त), कायठिई-काय स्थिति है, तेसिम-उनका, उक्कोस-उत्कृष्ट, अतर-अन्तर, अणतकाल-अनन्तकाल का (और), जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का, भवे-होता है।

भावानुवाद-खेचर जीवो की काय स्थिति उक्त है और उनका अन्तर उत्कृष्ट अनन्त काल का और जघन्य अन्तर्मुहूर्त का है।

197 खेचर जीवों के हजारो भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो॥१९७॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥१९७॥

अन्वयार्थ-एएसि-इन (पक्षियो) के, वण्णओ-वर्ण से, गंधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से, स्पर्श से, वा-और, सठाणादसओ-सस्थान की अपेक्षा से वि-भी, सहस्ससो-सहस्रश (हजारों), विहाणाइ-विधान (भेद) हो जात हैं।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से खेचर जीवो के हजारो भेद होते हैं।

198 मनुष्यो के भेद प्रभेद

मूल गाथा- मणुया दुविहभेया उ, ते मे कित्तयओ सुण।
समुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कतिया तहा॥१९८॥

सस्कृत छाया- मनुजा द्विविधभेदास्तु, तान् में कीर्तयत श्रृणु।
सम्मूर्च्छिमाश्च मनुजा , गर्भव्युत्क्रान्तिकास्तथा॥१९८॥

अन्वयार्थ-मणुया-मनुष्य, दुविह-दो, भेया-प्रकार के हैं (यथा), सम्मुच्छिमा-सम्मूर्च्छिम, तहा य-और, गब्भवक्कतिया-गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज), मणुया-मनुष्य, मे-मै, ते-उनका, कित्तयओ-कीर्तन करता हू, सुण-(तुम ध्यान से) सुनो।

भावानुवाद-मनुष्य दो प्रकार के हैं-(1) सम्मूर्च्छिम मनुष्य और (2) गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज)। मैं उनका कथन करता हू-ध्यान पूर्वक सुनो।

199 प्रथम गर्भज मनुष्य के भेद

मूल गाथा- गब्भवक्कतिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया।
अकम्म-कम्मभूमा य, अतरद्दीवया तहा॥१९९॥

सस्कृत छाया- गर्भव्युत्क्रान्तिका ये तु, त्रिविधास्ते व्याख्याता ।
कर्माकर्मभूमाश्च, अन्तरद्वीपकास्तथा॥१९९॥

अन्वयार्थ-य-और, जे उ-जो, गब्भवक्कतिया-गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) मनुष्य हैं, ते-वे, तिविहा-तीन प्रकार के वियाहिया-कहे गये हैं, कम्मभूमा-कर्म भूमिज, य-और अकम्म-अकर्म भूमिज, तहा-तथा, अतरद्दीवया-अन्तरद्वीपिक।

भावानुवाद-जो गर्भ व्युत्क्रान्तिक मनुष्य है वे तीन प्रकार के कहे गये हैं-(1) कर्म भूमिज, (2) अकर्म भूमिज और (3) अन्तरद्वीपक।

200 सख्यागत भेदो का उल्लेख

मूल गाथा- पण्णरस-तीसइ-विहा, भेया दुअट्ठवीसइ।
सखा उ कमसो तेसि, इइ एसा वियाहिया॥२००॥

सस्कृत छाया- पञ्चदशविधास्त्रिंशदविधा , भेदानाद्विहाविंशति ।
सख्या तु क्रमशस्तेषाम्, इत्येषा व्याख्याता॥२००॥

अन्वयार्थ-पण्णरस-(कर्म भूमि के) पन्द्रह, तीसइविहा-(अकर्म भूमि के) तीस, उ-और, दुअट्ठवीसइ-भेया-(अन्तरद्वीप के), छप्पन भेद, इइ-इस प्रकार, तेसि-उनकी, कमसो-क्रमश एसा-यह, सखा-सख्या वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-कर्म भूमि के पन्द्रह, अकर्म भूमि के तीस और अन्तरद्वीप के छप्पन भेद इस प्रकार उनकी क्रमश सख्या कही गई है।

201 सम्मूर्च्छिम मनुष्यो का वर्णन

मूल गाथा- सम्मुच्छिमाण एसेव, भेओ होइ आहिओ।
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया॥२०१॥

संस्कृत छाया- सम्मूर्च्छिणामेष एव, भेदो भवति व्याख्यात ।
लोकस्यैकदेशे, ते सर्वेऽपि व्याख्याता ॥२०१॥

अन्वयार्थ-एसेव-ये ही, भेओ-भेद, सम्मुच्छिमाण-सम्मूर्च्छिम मनुष्यो के, होइ-होते हैं (ऐसा), आहिओ-कहा गया है, ते-वे, सव्वे वि-सभी मनुष्य, लोगस्स-लोक क, एगदेसम्मि-एक देश मे, वियाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-सम्मूर्च्छिम जीवो के भी ये ही भेद कहे गये हैं। वे सभी मनुष्य लोक के एक देश मे कहे गये हैं।

202 काल सापेक्ष अनादिता और सादिता

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥२०२॥

संस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि च।
स्थिति प्रतीत्य सादिका , सपर्यवसिता अपि च॥२०२॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (सभी मनुष्य), अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित, वि-भी हैं, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि, य-और, सपज्जवसिया-सपर्यवसित (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-प्रवाह की अपेक्षा से सभी मनुष्य अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं।

203 आयु स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- पलिओवमाइ तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई मणुयाण, अतोमुहुत्त जहण्णिया॥२०३॥

संस्कृत छाया- पल्योपमानि त्रीणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
आयु स्थितिर्मनुजानाम् अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका॥२०३॥

अन्वयार्थ-मणुयाण-मनुष्यों की, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, आउठिई-आयु स्थिति, तिण्णि-तीन, पलिओवमाइ-पल्योपम की (और), जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूत की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-मनुष्यो की आयु-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

204 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- पलिओवमाइ तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।
पुव्वकोडिपुहुत्तेण, अतोमुहुत्त जहण्णिया॥२०४॥

सस्कृत छाया- पल्योपमानि त्रीणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
पूर्वकोटिपृथक्त्वेन, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥२०४॥

अन्वयार्थ-मणुयाण-मनुष्यो की, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, कायठिई-कायस्थिति, तिण्णि-तीन, पलिओवमाइ-पल्योपम सहित, पुव्वकोडि पुहुत्तेण-पृथक्त्व पूर्व कोटि की, उ-और, जहण्णिया-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त की, वियाहिया-कही गयी।

भावानुवाद-मनुष्यों की कायस्थिति उत्कृष्टत पृथक्त्व करोड पूर्व अधिक तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की कही गई है।

205 मनुष्यो के अन्तरमान का वर्णन

मूल गाथा- कायठिई मणुयाण, अतर तेसिम भवे।
अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय ॥२०५॥

सस्कृत छाया- काय स्थिति र्मनुजानाम, अन्तर तेषा मिद भवेत्।
अनन्त काल मुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम् ॥२०५॥

अन्वयार्थ-मणुयाण-मनुष्यो को, कायठिई-काय स्थिति कही गई है, तेसिम-उनका, उक्कोस-उत्कृष्ट, अतर-अन्तर, अणतकाल-अनन्तकाल का (और), जहण्णय-जघन्य, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त का, भवे-होता है।

भावानुवाद-मनुष्यो की काय स्थिति उक्त कही गई है। उनका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

206 प्रकारान्तर से असख्य भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणादेसओ वावि, विहाणाइ सहस्ससो ॥२०६॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्त्रश ॥२०६॥

अन्वयार्थ-एएसि-इनके, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से स्पर्श से, वा-और, सठाणादेसओ-सस्थान की अपेक्षा से, वि-भी, सहस्ससो-सहस्त्रश (हजारो), विहाणाइ-विधान (भेद) होते हैं।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से इन मनुष्या के हजारो भेद होते हैं।

207 देवताओ के विषय का वर्णन

मूल गाथा- देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण।
भोमिज्ज-वाणमतर, जोइस वेमाणिया तहा ॥२०७॥

संस्कृत छाया- देवाश्चतुर्विधा उक्ता तान् मे कीर्तयत श्रृणु।
भौमेया व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकास्तथा॥२०७॥

अन्वयार्थ-देवा-देव, चउव्विहा-चार प्रकार के, वुत्ता-कहे गये हैं (यथा), भोमिज्ज-भौमेयक-भवनपति, वाणमंतर-वाणव्यन्तर, जोइस-ज्योतिषी, तहा-तथा, वेमाणिया-वैमानिक, मे-मैं, ते-उन देवों को, कित्तयओ-वर्णन करता हू (ध्यान पूर्वक), सुण-सुनो।

भावानुवाद-चार प्रकार के देव बताये गये हैं, वे मेरे द्वारा तुम सुनो-(1) भवनपति, (2) वाणव्यन्तर, (3) ज्योतिष्क और (4) वैमानिक।

208 देवो के उत्तर भेदो का वर्णन

मूल गाथा- दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो।
पचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा॥२०८॥

संस्कृत छाया- दशधा तु भवनवासिन, अष्टधा वनचारिण।
पञ्चविधा ज्योतिष्का, द्विविधा वैमानिकास्तथा॥२०८॥

अन्वयाथ-भवणवासी-भवनवासी (भवनपति), दसहा-दस प्रकार के, वणचारिणो-वनचारी (वाणव्यन्तर), अट्ठहा-आठ प्रकार के, जोइसिया-ज्योतिषी, पचविहा-पाच प्रकार के, तहा-और, वेमाणिया-वैमानिक, उ-तो, दुविहा-दो प्रकार के (कहे गये हैं)।

भावानुवाद-भवनपति देवा के दस, वाण व्यन्तर देवा के आठ, ज्योतिष्को के पाच और वैमानिक देवा के दो भेद हैं।

209 भवनपति देवो के नामो का निर्देश

मूल गाथा- असुरा णाग-सुवण्णा, विज्जू अग्गी य आहिया।
दीवोदहि दिसा वाया, थणिया भवणवासिणो॥२०९॥

संस्कृत छाया- असुरा नागसुवर्णा, विद्युतोऽग्नयोऽव्याख्याता।
द्वीपोदधिदिशो वायव, स्तनिता भवनवासिन॥२०९॥

अन्वयार्थ-असुरा-असुर कुमार, णाग-नाग कुमार, सुवण्णा-सुवर्ण कुमार, विज्जू-विद्युत कुमार, अग्गी-अग्नि कुमार, दीव-द्वीप कुमार, उदहि-उदधि कुमार, दिसा-दिशा कुमार, वाया-वायु कुमार, य-और, थणिया-स्तनित कुमार (ये दस प्रकार के), भवणवासिणो-भवनवासी देव, आहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-(1) असुर कुमार, (2) नाग कुमार, (3) सुवर्ण कुमार, (4) विद्युत कुमार, (5) अग्नि कुमार, (6) द्वीप कुमार (7) उदधि कुमार, (8) दिशा कुमार, (9) वायु कुमार और (10) स्तनित कुमार-ये दस प्रकार के भवनपति देव कहे गये हैं।

210 व्यन्तर देवो के नामो का निर्देश

मूल गाथा- पिसाय भूय जक्खा य, रक्खसा किण्णरा य किंपुरिसा।
महोरगा य गधव्वा, अट्ठविहा वाणमतरा ॥२१०॥

सस्कृत छाया- पिशाचभूता यक्षाश्च, राक्षसा किन्नरा किंपुरुषा ।
महोरगाश्च गन्धर्वा , अष्टविधा व्यन्तरा ॥२१०॥

अन्वयार्थ-पिसाय-पिशाच, भूया-भूत, जक्खा-यक्ष, रक्खसा-राक्षस, य-और, किण्णरा-किन्नर, किपुरिसा-कि पुरुष, महोरगा-महोरग, य-और, गधव्वा-गन्धर्व, अट्ठविहा-ये आठ प्रकार के, वाणमतरा-वाणव्यन्तर देव (कहे गये है)।

भावानुवाद-(1) पिशाच, (2) भूत, (3) यक्ष, (4) राक्षस, (5) किन्नर, (6) कि पुरुष (7) महोरग और (8) गन्धर्व, ये आठ प्रकार के वाण व्यन्तर देव कहे गये हैं।

211 ज्योतिषियो के नामो का उल्लेख

मूल गाथा- चदा सूरा य णक्खत्ता, गहा तारागणा तहा।
ठियाविचारिणो चेव, पचहा जोइसालया ॥२११॥

सस्कृत छाया- चन्द्रा सूर्याश्च नक्षत्राणि, ग्रहास्तारागणास्तथा।
स्थिराविचारिणश्चैव, पञ्चधा ज्योतिरालया ॥२११॥

अन्वयार्थ-चदा-चन्द्र, सूरा-सूर्य, य-और, णक्खत्ता-नक्षत्र, गहा-ग्रह, तहा-तथा, तारागणा-तारागण, पचहा-ये पाच प्रकार के, जोइसालया-ज्योतिषालय हैं, ठिया-ये स्थिर, चेव-और, विचारिणो-विचारी चर (दो प्रकार के होते हैं)।

भावानुवाद-(1) चन्द्र, (2) सूर्य, (3) नक्षत्र, (4) ग्रह और (5) तारा, ये पाच प्रकार के ज्योतिष्क देव हैं, ये स्थिर और चर दो प्रकार के हैं। (अढाई द्वीप के बाहर के ज्योतिष्क स्थिर हैं और अढाई द्वीप के अन्दर के ज्योतिष्क देव चर हैं)।

212 वैमानिक देवो के भेद-प्रभेद

मूल गाथा- वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।
कप्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाईया तहेव य ॥२१२॥

सस्कृत छाया- वैमानिकास्तु ये देवा , द्विविधास्ते व्याख्याता ।
कल्पोपगाश्च बोद्धव्या , कल्पातीतास्तथैव च ॥२१२॥

अन्वयार्थ-य-और, जे उ-जो, वेमाणिया-वैमाकि, देवा-देव हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, कप्पोवगा-कल्पोपपन्न, तहेव य-और, कप्पाईया-कल्पातीत, बोधव्वा-जानना चाहिए।

भावानुवाद-जो वैमानिक देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) कल्पोपपन्न और (2) कल्पातीत।

213 कल्पदेव लोक के 6 भेदो-नामो का उल्लेख

मूल गाथा- **कप्पोवगा बारसहा, सोहम्मीसाणगा तहा।**
सणकुमार-माहिंदा, बंभलोगा य लंतगा॥२१३॥

संस्कृत छाया- **कल्पोपगा द्वादशधा, सौधर्मेशानगास्तथा।**
सनत्कुमारा माहेन्द्रा, ब्रह्मलोकाश्च लान्तका ॥२१३॥

अन्वयार्थ-कप्पोवगा-कल्पोपपन्न देव, बारसहा-बारह प्रकार के हैं (यथा), सोहम्म-सौधर्म, ईसाणगा-ईशान, तहा-तथा, सणकुमारा-सनत्कुमार, माहिंदा-महेन्द्र, बंभलोगा-ब्रह्मलोक, य-और, लंतगा-लान्तक।

भावानुवाद-कल्पोपपन्न देव बारह प्रकार के कहे गये हैं-(1) सौधर्म, (2) ईशान, (3) सनत्कुमार, (4) माहेन्द्र, (5) ब्रह्मलोक, (6) लान्तक-

214 शेष कल्पोपपन्न देवो के नामो का निर्देश

मूल गाथा- **महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा।**
आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा॥२१४॥

संस्कृत छाया- **महाशुक्रा सहस्त्रारा, आनता प्राणतास्तथा।**
आरणा अच्युताश्चैव, इति कल्पोपगा सुरा ॥२१४॥

अन्वयार्थ-महासुक्का-महाशुक्र, सहस्सारा-सहस्त्रार, आणया-आनत, पाणया-प्राणत, तहा-तथा, आरणा-आरण, चेव-और, अच्चुया-अच्युत, इइ-ये, कप्पोवगा-कल्पोपपन्न, सुरा-देव हैं।

भावानुवाद-(7) महाशुक्र, (8) सहस्त्रार, (9) आनत, (10) प्राणत, (11) आरण और (12) अच्युत, ये कल्पोपपन्न देव हैं।

215 कल्पातीत देवो का वर्णन

मूल गाथा- **कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।**
गेविज्जाऽणुत्तरा चेव, गेविज्जा णवविहा तहिं॥२१५॥

संस्कृत छाया- **कल्पातीतास्तु ये देवा, द्विविधास्ते व्याख्याता।**
ग्रैवेयका अनुत्तराश्चैव, ग्रैवेयका नवविधास्तत्र॥२१५॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, कप्पाईया-कल्पातीत, देवा-देव हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, गेविज्जा-ग्रैवेयक, चेव-और, अणुत्तरा-अनुत्तर, तहिं-उनमें, गेविज्जा-ग्रैवेयक, णवविहा-नौ प्रकार के हैं।

भावानुवाद-जो कल्पातीत देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) ग्रैवेयक और (2) अनुत्तर। उनमें ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के कहे गये हैं।

216 ग्रैवेयक के चार भेदों का वर्णन

मूल गाथा- **हेट्ठिमा-हेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमा-मज्झिमा तहा।**
हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमा-हेट्ठिमा तहा॥२१६॥

संस्कृत छाया- **अधस्तनाऽधस्तनाश्चैव, अधस्तनामध्यमास्तथा।**
अधस्तनोपरितनाश्चैव, मध्यमाऽधस्तनास्तथा॥२१६॥

अन्वयार्थ-हेट्ठिमा-हेट्ठिमा-अधस्तनाधस्तन, चेव-और, हेट्ठिमा मज्झिमा-अधस्तनमध्य, तहा-तथा, हेट्ठिमाउवरिमा-अधस्तनउपरितन, चेव-और, मज्झिमा हेट्ठिमा-मध्यमअधस्तन, तहा-तथा।

भावानुवाद-(1) अधस्तन-अधस्तन (नीचे की त्रिक का नीचे वाला), (2) अधस्तन मध्यम (नीचे की त्रिक का मध्यम), (3) अधस्तन-उपरितन (नीचे की त्रिक का ऊपर वाला), (4) मध्यम अधस्तन (मध्य की त्रिक का नीचे वाला)।

217 ग्रैवेयक के शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **मज्झिमा-मज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा।**
उवरिमा-हेट्ठिमा चेव, उवरिमा मज्झिमा तहा॥२१७॥

संस्कृत छाया- **मध्यममध्यमाश्चैव, मध्यमोपरितनास्तथा।**
उपरितनाऽधस्तनाश्चैव, उपरितनामध्यमास्तथा॥२१७॥

अन्वयार्थ-मज्झिमा-मज्झिमा-मध्यम मध्यम, चेव-और, मज्झिमा उवरिमा-मध्यम उपरितन, तहा-तथा, उवरिमा हेट्ठिमा-उपरितन अधस्तन, चेव-और, उवरिमा मज्झिमा-उपरितन मध्यम, तहा-तथा।

भावानुवाद-(5) मध्यम-मध्यम (मध्य की त्रिक का बीच वाला), (6) मध्यम-उपरितन (मध्य की त्रिक का ऊपर वाला), (7) उपरितन-अधस्तन (ऊपर की त्रिक का नीचे वाला), (8) उपरितन-मध्यम (ऊपर की त्रिक का बीच वाला)।

218 अनुत्तर विमानों के भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **उवरिमा-उवरिमा चेव, इय गेविज्जगा सुरा।**
विजया वेजयता य, जयता अपराजिया॥२१८॥

संस्कृत छाया- **उपरितनोपरितनाश्चैव, इति ग्रैवेयका सुरा।**
विजया वैजयन्ता, जयन्ता अपराजिता॥२१८॥

अन्वयार्थ-उवरिमा उवरिमा-उपरितन उपरितन, इय-इस प्रकार ये, गेविज्जगा-ग्रैवेयक, सुरा-देव हैं, विजया-विजय, वेजयता-वैजयत, जयता-जयत, य-और, अपराजिया-अपराजित, चेव-और।

भावानुवाद-और उपरितन-उपरितन (ऊपर की त्रिक का ऊपर वाला) ये नौ ग्रैवेयक देव हैं। (1) विजय, (2) वैजयन्त, (3) जयन्त, (4) अपराजित।

भावानुवाद-जो वैमानिक देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) कल्पोपपन्न और (2) कल्पातीत।

213 कल्पदेव लोक के 6 भेदो-नामो का उल्लेख

मूल गाथा- **कप्पोवगा बारसहा, सोहम्मीसाणगा तहा।**
सणकुमार-माहिंदा, बंभलोगा य लतगा॥२१३॥

सस्कृत छाया- **कल्पोपगा द्वादशधा, सौधर्मेशानगास्तथा।**
सनत्कुमारा माहेन्द्रा , ब्रह्मलोकाश्च लान्तका ॥२१३॥

अन्वयार्थ-कप्पोवगा-कल्पोपपन्न देव, बारसहा-बारह प्रकार के हैं (यथा), सोहम्म-सौधर्म, ईसाणगा-ईशान, तहा-तथा, सणकुमारा-सनत्कुमार, माहिंदा-महेन्द्र, बंभलोगा-ब्रह्मलोक, य-और, लतंगा-लान्तक।

भावानुवाद-कल्पोपपन्न देव बारह प्रकार के कहे गये हैं-(1) सौधर्म, (2) ईशान, (3) सनत्कुमार, (4) माहेन्द्र, (5) ब्रह्मलोक, (6) लान्तक-

214 शेष कल्पोपपन्न देवो के नामो का निर्देश

मूल गाथा- **महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा।**
आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा॥२१४॥

सस्कृत छाया- **महाशुक्रा सहस्रारा , आनता प्राणतास्तथा।**
आरणा अच्युताश्चैव, इति कल्पोपगा सुरा ॥२१४॥

अन्वयार्थ-महासुक्का-महाशुक्र, सहस्सारा-सहस्रार, आणया-आनत, पाणया-प्राणत, तहा-तथा, आरणा-आरण, चेव-और, अच्चुया-अच्युत, इइ-ये, कप्पोवगा-कल्पोपपन्न, सुरा-देव हैं।

भावानुवाद-(7) महाशुक्र, (8) सहस्रार, (9) आनत, (10) प्राणत, (11) आरण और (12) अच्युत, ये कल्पोपपन्न देव हैं।

215 कल्पातीत देवो का वर्णन

मूल गाथा- **कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।**
गेविज्जाऽणुत्तरा चेव, गेविज्जा णवविहा तहिं॥२१५॥

सस्कृत छाया- **कल्पातीतास्तु ये देवा , द्विविधास्ते व्याख्याता ।**
ग्रैवेयका अनुत्तराश्चैव, ग्रैवेयका नवविधास्तत्र॥२१५॥

अन्वयार्थ-जे उ-जो, कप्पाईया-कल्पातीत, देवा-देव हैं, ते-वे, दुविहा-दो प्रकार के, वियाहिया-कहे गये हैं, गेविज्जा-ग्रैवेयक, चेव-और, अणुत्तरा-अनुत्तर, तहिं-उनमें, गेविज्जा-ग्रैवेयक, णवविहा-नौ प्रकार के हैं।

भावानुवाद-जो कल्पातीत देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(1) ग्रैवेयक और (2) अनुत्तर। उनमें ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के कहे गये हैं।

216 ग्रैवेयक के चार भेदों का वर्णन

मूल गाथा- **हेट्ठिमा-हेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमा-मज्झिमा तहा।**
हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमा-हेट्ठिमा तहा॥२१६॥

सस्कृत छाया- **अधस्तनाऽधस्तनाश्चैव, अधस्तनामध्यमास्तथा।**
अधस्तनोपरितनाश्चचैव, मध्यमाऽधस्तनास्तथा॥२१६॥

अन्वयार्थ-हेट्ठिमा-हेट्ठिमा-अधस्तनाधस्तन, चेव-और, हेट्ठिमा मज्झिमा-अधस्तनमध्य, तहा-तथा, हेट्ठिमाउवरिमा-अधस्तनउपरितन, चेव-और, मज्झिमा हेट्ठिमा-मध्यमअधस्तन, तहा-तथा।

भावानुवाद-(1) अधस्तन-अधस्तन (नीचे की त्रिक का नीचे वाला), (2) अधस्तन मध्यम (नीचे की त्रिक का मध्यम), (3) अधस्तन-उपरितन (नीचे की त्रिक का ऊपर वाला), (4) मध्यम अधस्तन (मध्य की त्रिक का नीचे वाला)।

217 ग्रैवेयक के शेष भेदो का वर्णन

मूल गाथा- **मज्झिमा-मज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा।**
उवरिमा-हेट्ठिमा चेव, उवरिमा मज्झिमा तहा॥२१७॥

सस्कृत छाया- **मध्यमामध्यमाश्चैव, मध्यमोपरितनास्तथा।**
उपरितनाऽधस्तनाश्चैव, उपरितनामध्यमास्तथा॥२१७॥

अन्वयार्थ-मज्झिमा-मज्झिमा-मध्यम मध्यम, चेव-और, मज्झिमा उवरिमा-मध्यम उपरितन, तहा-तथा, उवरिमा हेट्ठिमा-उपरितन अधस्तन, चेव-और, उवरिमा मज्झिमा-उपरितन मध्यम, तहा-तथा।

भावानुवाद-(5) मध्यम-मध्यम (मध्य की त्रिक का बीच वाला), (6) मध्यम-उपरितन (मध्य की त्रिक का ऊपर वाला), (7) उपरितन-अधस्तन (ऊपर की त्रिक का नीचे वाला), (8) उपरितन-मध्यम (ऊपर की त्रिक का बीच वाला)।

218 अनुत्तर विमानों के भेदों का वर्णन

मूल गाथा- **उवरिमा-उवरिमा चेव, इय गेविज्जगा सुरा।**
विजया वेजयता य, जयता अपराजिया॥२१८॥

सस्कृत छाया- **उपरितनोपरितनाश्चैव, इति ग्रैवेयका सुरा।**
विजया वैजयन्ता, जयन्ता अपराजिता॥२१८॥

अन्वयार्थ-उवरिमा उवरिमा-उपरितन उपरितन, इय-इस प्रकार ये, गेविज्जगा-ग्रैवेयक, सुरा-देव हैं, विजया-विजय, वेजयता-वैजयत, जयता-जयत, य-और, अपराजिया-अपराजित, चेव-और।

भावानुवाद-और उपरितन-उपरितन (ऊपर की त्रिक का ऊपर वाला) ये नौ ग्रैवेयक देव हैं। (1) विजय, (2) वैजयन्त, (3) जयन्त, (4) अपराजित।

219 वैमानिक देवो के भेदो का वर्णन

मूल गाथा- सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पचहाऽणुत्तरा सुरा।
इइ वेमाणिया एए, णेगहा एवमायओ ॥२१९॥

सस्कृत छाया- सर्वार्थसिद्धिकाश्चैव, पञ्चधाऽनुत्तरा सुरा ।
इति वैमानिका एते, अनेकधा एवमादय ॥२१९॥

अन्वयार्थ-चेव-और, सव्वट्ठसिद्धगा-सर्वार्थसिद्ध, पचहा-ये पाच प्रकार के, अणुत्तरा-अनुत्तर, सुरा-देव हैं, इइ-इस प्रकार, एए-ये सब, वेमाणिया-वैमानिक देव हैं, एवमायओ-इस प्रकार (वैमानिक देवा के), णेगहा-अनेक भेद हैं।

भावानुवाद-और (5) सर्वार्थ-सिद्ध, ये पाच प्रकार के अनुत्तर देव हैं। इस प्रकार ये वैमानिक देव अनेक प्रकार के हैं।

220 क्षेत्र विभाग का वर्णन

मूल गाथा- *लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे परिकित्तिया।*
इत्तो कालविभाग तु, तेसि वुच्छ चउव्विह ॥२२०॥

सस्कृत छाया- *लोकस्यैकदेशे, ते सर्वेऽपि व्याख्याता ।*
इत कालविभाग तु, तेषा वक्ष्यामि चतुर्विधम् ॥२२०॥

अन्वयार्थ-ते-वे, सव्वे-सभी देव, लोगस्स-लोक के, एगदेसम्मि-एक देश मे, वियाहिया-कहे गये हैं, तु-अब इत्तो-इसके आगे, तेसि-उनका, चउव्विह-चार प्रकार का, कालविभाग-काल विभाग, वुच्छं-कहूगा।

भावानुवाद-ये सभी देवलोक के एक देश में कहे गये हैं। अब आगे उनके चार प्रकार के काल-विभाग का कथन करूगा।

221 प्रवाह की अपेक्षा काल विभाग

मूल गाथा- सतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइ पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥२२१॥

सस्कृत छाया- सन्तति प्राप्यानादिका , अपर्यवसिता अपि च।
स्थितिं प्रतीत्य सादिका , सपर्यवसिता अपि च ॥२२१॥

अन्वयार्थ-सतइ-सन्तति की, पप्प-अपेक्षा (ये सब), अणाईया-अनादि, य-और, अपज्जवसिया-अपर्यवसित (अनन्त), वि-भी हैं, य-और, ठिइ-स्थिति की, पडुच्च-अपेक्षा, साइया-सादि (और), सपज्जवसिया-सपर्यवसित (सान्त), वि-भी हैं।

भावानुवाद-ये सभी देव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं।

222 भवनपति देवो के इन्द्र की भव स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- साहिय सागर एक्क, उक्कोसेण ठिई भवे।
भोमेज्जाण जहण्णेण, दसवाससहस्सिया ॥२२२॥

सस्कृत छाया- साधिक सागरमेकम्, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
भौमेयाना जघन्येन, दशवर्षसहस्त्रिका ॥२२२॥

अन्वयार्थ-भोमेज्जाण-भौमेयक (भवनपति देवो) की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, दसवाससहस्सिया-दस हजार वर्ष (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, एक्क-एक, सागर-सागरोपम से, साहिय-साधिक (कुछ अधिक), भवे-होती है।

भावानुवाद-भवनपति देवो की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिक होती है।

223 असुरेन्द्रातिरिक्त भवनपति देवो की स्थिति

मूल गाथा- पलिओवम दोऊणा, उक्कोसेण वियाहिया।
असुरिंदवज्जेत्ताण, जहण्णा दस सहस्सगा ॥२२३॥

सस्कृत छाया- पल्योपम द्वयन्यूना, उत्कर्षेण व्याख्याता।
असुरेन्द्रवर्ज्यतेषा, जघन्या दस सहस्त्रका ॥२२३॥

अन्वयार्थ-असुरिंदवज्जेत्ताण-असुर कुमारो के इन्द्रो को छोड कर (शेष भवनपति देवो की), जहण्णा-जघन्य आयु, दस सहस्सगा-दस हजार वर्ष (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, पलिओवम-दोऊणा-देशोन दो पल्योपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-असुर कुमारो के इन्द्रो को छोड कर शेष भवनपति देवो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्त दो पल्योपम मे कुछ कम की कही गई है।

224 व्यन्तरो की भवस्थिति का वर्णन

मूल गाथा- पलिओवममेग तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
वतराण जहण्णेण, दसवाससहस्सिया ॥२२४॥

सस्कृत छाया- पल्योपममेकन्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
व्यन्तराणा जघन्येन, दशवर्षसहस्त्रिका ॥२२४॥

अन्वयार्थ-वतराण-व्यन्तर देवो की, तु-तो, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, दसवास-सहस्सिया-दस हजार वर्ष (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, एग-एक, पलिओवम-पल्योपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-व्यन्तर देवो की जघन्य आयु स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

225 ज्योतिषी देवो की भव स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- पलिओवम एग तु, वासलक्खेण साहिय।
पलिओवमऽट्ठभागो, जोइसेसु जहण्णिया॥२२५॥

सस्कृत छाया- पल्योपमगेकन्तु, वर्षलक्षेण साधिकम्।
पल्योपमस्याष्टमभाग, ज्योतिष्केषु जघन्यको॥२२५॥

अन्वयार्थ-जोइसेसु-ज्योतिषी देवों की, तु-तो, जहण्णिया-जघन्य स्थिति, पलिओवमट्ठभागो-पल्योपम के आठवें भाग (और उत्कृष्ट स्थिति), वासलक्खेण साहिय-लाख वर्ष अधिक, एग-एक, पलिओवम-पल्योपम की है।

भावानुवाद-ज्योतिषी देवो की आयुस्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है।

226 सौधर्म देवलोक के देवो की स्थिति

मूल गाथा- दो चेव सागराइं, उक्कोसेण वियाहिया।
सोहम्मम्मि जहण्णेण, एग च पलिओवम॥२२६॥

सस्कृत छाया- द्वे चैव सागरोपमे, उत्कर्षेण व्याख्याता।
सौधर्मे जघन्येन, एक च पल्योपमम्॥२२६॥

अन्वयार्थ-च-और, सोहम्मम्मि-सौधम देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य स्थिति, एग-एक, पलिओवम-पल्योपम, चेव-और, उक्कोसेण-उत्कृष्ट स्थिति, दो-दो, सागराइ-सागरोपम की, वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-सौधर्म स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट दो सागरोपम की कही गई है।

227 ईशान देवलोक के देवो की स्थिति

मूल गाथा- सागरा साहिया दुण्णि, उक्कोसेण वियाहिया।
ईसाणम्मि जहण्णेण, साहिय पलिओवम॥२२७॥

सस्कृत छाया- सागरोपमे साधिक द्वे, उत्कर्षेण व्याख्याता।
ईशाने जघन्येन, साधिक पल्योपमम्॥२२७॥

अन्वयार्थ-ईसाणम्मि-ईशान देवलोक के देवो की, जहण्णेणं-जघन्य स्थिति, साहिय पलिओवमं-कुछ अधिक एक पल्योपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्ट से स्थिति से, साहिया दुण्णि सागरा-कुछ अधिक दो सागरोपम की वियाहिया-कही गई है।

भावानुवाद-ईशान स्वर्ग के देवा की आयु-स्थिति जघन्य कुछ अधिक एक पल्योपम की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की कही गई है।

228 सनत्कुमार देवों की स्थिति

मूल गाथा- **सागराणि य सत्तेव, उक्कोसेण ठिई भवे।**
सणकुमारे जहण्णेण, दुण्णि ऊ सागरोवमा॥२२८॥

सस्कृत छाया- **सागरोपमाणि च सप्तैव, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।**
सनत्कुमारे जघन्येन, द्वे तु सागरोपमे॥२२८॥

अन्वयार्थ-सणकुमारे-सनत्कुमार देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, दुण्णि ऊ-दो, सागरोवमा-सागरोपम की है, य-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, सत्तेव-सात, सागराणि-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-सनत्कुमार स्वर्ग के देवो की आयु स्थिति जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की कही गई है।

229 माहेन्द्र देवो की स्थिति

मूल गाथा- **साहिया सागरा सत्त, उक्कोसेण ठिई भवे।**
माहिंदम्मि जहण्णेण, साहिया दुण्णि सागरा॥२२९॥

सस्कृत छाया- **साधिकानि सागराणि सप्त, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।**
माहेन्द्रे जघन्येन, साधिके द्वे सागरोपमे॥२२९॥

अन्वयार्थ-माहिंदम्मि-माहेन्द्र देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, साहिया दुण्णि सागरा-कुछ अधिक दो सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, साहिया सागरा सत्त-कुछ अधिक सात सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-माहेन्द्र स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य कुछ अधिक दो सागरोपम की और उत्कृष्ट से कुछ अधिक सात सागरोपम की कही गई है।

230 ब्रह्म देवलोक के देवो की स्थिति

मूल गाथा- **दस चेव सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।**
बम्भलोए जहण्णेण, सत्त ऊ सागरोवमा॥230॥

सस्कृत छाया- **दश चैव सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।**
ब्रह्मलोके जघन्येन, सप्त तु सागरोपमाणि॥२३०॥

अन्वयार्थ-बभलोए-ब्रह्मलोक देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, सत्त ऊ-सात, सागरोवमा-सागरोपम, चेव-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, दस-दस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-ब्रह्मलोक स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की कही गई है।

231 लान्तक देवो की आयु स्थिति

मूल गाथा- चउद्दस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
लंतगम्मि जहण्णेण, दस ऊ सागरोवमा ॥२३१॥

संस्कृत छाया- चतुर्दश सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
लान्तके जघन्येन, दश तु सागरोपमाणि ॥२३१॥

अन्वयार्थ-लंतगम्मि-लान्तक देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, दस ऊ-दस, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, चउद्दस-चौदह, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-लान्तक स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की कही गई है।

232 महाशुक्र देवलोक की भव स्थिति

मूल गाथा- सत्तरस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
महासुक्के जहण्णेण, चउद्दस सागरोवमा ॥२३२॥

संस्कृत छाया- सप्तदश सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
महाशुक्रे जघन्येन, चतुर्दश सागरोपमाणि ॥२३२॥

अन्वयार्थ-महासुक्के-महाशुक्र देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, चउद्दस-चौदह, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, सत्तरस-सतरह, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-महाशुक्र स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य चौदह सागरोपम की और उत्कृष्ट सतरह सागरोपम की कही गई है।

233 सहस्रार देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- अट्ठारस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
सहसारम्मि जहण्णेण, सत्तरस सागरोवमा ॥२३३॥

संस्कृत छाया- अष्टादश सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
सहस्रारे जघन्येन, सप्तदश सागरोपमाणि ॥२३३॥

अन्वयार्थ-सहस्सारम्मि-सहस्रार देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, सत्तरस-सतरह, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, अट्ठारस-अठारह, सागराइं-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-सहस्रार स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य सतरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की कही गई है।

234 आनत देवलोक की आयु स्थिति

मूल गाथा-

सागरा अउणवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
आणयम्मि जहण्णेण, अट्ठारस सागरोवमा॥२३४॥

संस्कृत छाया-

सागराणि एकोनविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
आनते जघन्येन, अष्टादश सागरोपमाणि॥२३४॥

अन्वयार्थ-आणयम्मि-आणत देवलोक के देवों की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, अट्ठारस-अठारह, सागरोवमा-सागरोपम, तु-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, अउणवीस-उन्नीस, सागरा-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-आनत स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की कही गई है।

235 प्राणत स्वर्ग की आयु-स्थिति

मूल गाथा-

वीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
पाणयम्मि जहण्णेण, सागरा अउणवीसई॥२३५॥

संस्कृत छाया-

विंशतिस्तु सागराणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
प्राणते जघन्येन, सागराणि एकोनविंशतिः॥२३५॥

अन्वयार्थ-पाणयम्मि-प्राणत देवलोक के देवों की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, अउणवीसई-उन्नीस, सागरा-सागरोपम, तु-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, वीस-बीस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-प्राणत स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बीस सागरोपम की कही गई है।

236 आरण देवलोक की आयु स्थिति

मूल गाथा-

सागरा इक्कवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
आरणम्मि जहण्णेण, वीसई सागरोवमा॥२३६॥

संस्कृत छाया-

सागरोपमाणा एकविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
आरणे जघन्येन, विंशतिः सागरोपमाणि॥२३६॥

अन्वयार्थ-आरणम्मि-आरण देवलोक के देवों की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, वीसई-बीस, सागरोवमा-सागरोपम, तु-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, इक्कवीस-इक्कीस, सागरा-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-आरण स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की कही गई है।

237 अच्युत देवलोक की आयु स्थिति

मूल गाथा- बावीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
अच्चुयम्मि जहण्णेण, सागरा इक्कवीसई॥२३७॥

संस्कृत छाया- द्वाविंशतिः सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
अच्युते जघन्येन, सागरोपमाणाम् एकविंशति ॥२३७॥

अन्वयार्थ-अच्चुयम्मि-अच्युत देवलोक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, इक्कवीसई-इक्कीस, सागराई-सागरोपम, उ-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, तु-तो, बावीस-बाईस, सागरा-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-अच्युत् स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की कही गई है।

238 प्रथम त्रिक के प्रथम देवलोक की आयु-स्थिति

मूल गाथा- तेवीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
पढमम्मि जहण्णेण, बावीस सागरोवमा॥२३८॥

संस्कृत छाया- त्रयोविंशति सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
प्रथमे (ग्रैवेयक) जघन्येन, द्वाविंशति सागरोपमाणि॥२३८॥

अन्वयार्थ-पढमम्मि-प्रथम ग्रैवेयक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, बावीस-बाईस, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, तेवीस-तेईस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-प्रथम ग्रैवेयक स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की होती है।

239 प्रथम त्रिक के द्वितीय देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
बिइयम्मि जहण्णेणं, तेवीसं सागरोवमा॥२३९॥

संस्कृत छाया- चतुर्विंशति सागराणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
द्वितीये जघन्येन, त्रयोविंशति सागरोपमाणि॥२३९॥

अन्वयार्थ-बिइयम्मि-दूसरे ग्रैवेयक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, तेवीस-तेईस, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, चउवीस-चौबीस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-द्वितीय ग्रैवेयक स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य तेइस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौबीस सागरोपम की होती है।

240 प्रथम त्रिक के तीसरे देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- पणवीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
तइयम्मि जहण्णेण, चउवीस सागरोवमा॥२४०॥

सस्कृत छाया- पञ्चविंशति सागराणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
तृतीये जघन्येन, चतुर्विंशति सागरोपमाणि॥२४०॥

अन्वयार्थ-तइयम्मि-तीसरे ग्रैवेयक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, चउवीस-चौवीस, सागरोवमा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, पणवीस-पच्चीस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-तृतीय ग्रैवेयक स्वर्ग के देवो की आयु स्थिति जघन्य चौबीस सागरोपम की और उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम की होती है।

241 द्वितीय त्रिक के प्रथम देव लोक की स्थिति

मूल गाथा- छव्वीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउत्थम्मि जहण्णेण, सागरा पणवीसई॥२४१॥

सस्कृत छाया- षड्विंशति सागराणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
चतुर्थे जघन्येन, सागरोपमाणि पञ्चविंशति॥२४१॥

अन्वयार्थ-चउत्थम्मि-चौथे ग्रैवेयक के देवा की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, पणवीसई-पच्चीस, सागरा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, छव्वीस-छब्बीस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-चतुर्थ ग्रैवेयक स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की होती है

242 द्वितीय त्रिक के दूसरे देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- सागरा सत्तावीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
पचमम्मि जहण्णेण, सागरा उ छवीसई॥२४२॥

सस्कृत छाया- सागराणि सप्तविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
पञ्चमे जघन्येन, सागराणि तु षड्विंशति॥२४२॥

अन्वयार्थ-पचमम्मि-पाचवें ग्रैवेयक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, छवीसई-छब्बीस सागरा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, सत्तवीस-सत्ताईस, सागरा-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-पञ्चम ग्रैवेयक स्वर्ग के देवो की आयु-स्थिति जघन्य छब्बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की होती है।

243 द्वितीय त्रिक के तीसरे देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- सागरा अट्ठवीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
छट्ठम्मि जहण्णेण, सागरा सत्तवीसई॥२४३॥

संस्कृत छाया- सागरोपमाणामष्टाविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
षष्ठे जघन्येन, सागराणि तु सप्तविंशति ॥२४३॥

अन्वयार्थ-छट्ठम्मि-छठे ग्रैवेयक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, सत्तवीसई-सत्ताईस, सागरा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, अट्ठवीस-अट्ठाईस, सागरा-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-षष्टम् ग्रैवेयक स्वर्ग के जीवो की आयु-स्थिति जघन्य सत्ताईस सागरोपम और उत्कृष्ट अट्ठाइस सागरोपम की कही गई है।

244 तृतीय त्रिक के प्रथम देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- सागरा अउणतीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
सत्तमम्मि जहण्णेण, सागरा अट्ठवीसई॥२४४॥

संस्कृत छाया- सागरोपमाणामेकोनत्रिंशत्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
सप्तमे जघन्येन, सागरोपमाणामष्टाविंशति ॥२४४॥

अन्वयार्थ-सत्तमम्मि-सातवे ग्रैवेयक के देवा की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, अट्ठवीसई-अट्ठाईस, सागरा-सागरापम (और), उक्कोसण-उत्कृष्टता से, अउणतीस-उनतीस, सागरा-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-सप्तम ग्रैवेयक स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य अट्ठाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट उनतीस सागरापम की होती है।

245 तृतीय त्रिक के द्वितीय देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- तीस तु सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
अट्ठमम्मि जहण्णेण, सागरा अउणतीसई॥२४५॥

संस्कृत छाया- त्रिंशत्तु सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
अष्टमे जघन्येन, सागरोपमाणामेकोनत्रिंशत्॥२४५॥

अन्वयार्थ-अट्ठमम्मि-आठवें ग्रैवेयक के देवों की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, अउणतीसई-उनतीस, सागरा-सागरोपम (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, तीस-तीस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-अष्टम ग्रैवेयक स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य उनतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट तीस सागरापम की होती है।

246 तृतीय त्रिक के तीसरे देवलोक की स्थिति

मूल गाथा- सागरा इक्कतीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
णवमम्मि जहण्णेण, तीसई सागरोवमा॥२४६॥

संस्कृत छाया- सागरोपमाणामेकत्रिंशत्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
नवमे जघन्येन, त्रिंशत्सागरोपमाणि॥२४६॥

अन्वयार्थ-णवमम्मि-नौवे ग्रैवेयक के देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, तीसई-तीस, सागरोवमा-सागरोपम, तु-और, उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, इक्कतीस-इकत्तीस, सागरा-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-नवम ग्रैवेयक स्वर्ग के देवों की आयु-स्थिति जघन्य तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की होती है।

247 चारो अनुत्तर विमानो की स्थिति

मूल गाथा- तेत्तीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउसुं पि विजयाईसु, जहण्णेणेक्कतीसई॥२४७॥

संस्कृत छाया- त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
चतुर्ष्वपि विजयादिषु, जघन्येनैकत्रिंशत्॥२४७॥

अन्वयार्थ-विजयाईसु-विजयादि, चउसु पि-चारो अनुत्तर विमानवासी देवो की, जहण्णेण-जघन्य, ठिई-स्थिति, इक्कतीसई-इकत्तीस (और), उक्कोसेण-उत्कृष्टता से, तेत्तीस-तेत्तीस, सागराइ-सागरोपम की, भवे-होती है।

भावानुवाद-विजयादि-विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानवासी देवा की आयु-स्थिति जघन्य इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

248 सर्वार्थ सिद्ध के देवो की स्थिति

मूल गाथा- अजहण्णमणुक्कोसा, तेत्तीस सागरोवमा।
महाविमाणे सव्वट्ठे, ठिई एसा वियाहिया॥२४८॥

संस्कृत छाया- अजघन्याऽनुत्कृष्टा, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि।
महाविमाणे सर्वार्थे, स्थितिरेषा व्याख्याता॥२४८।

अन्वयार्थ-सव्वट्ठे-सर्वार्थसिद्ध, महाविमाणे-महाविमान के देवो की, अजहण्ण-अजघन्य, अणुक्कोसा-अनुत्कृष्ट, ठिई-स्थिति, तेत्तीस-तेत्तीस, सागरोवमा-सागरोपमा की होती है, एसा-ऐसा, वियाहिया-कहा गया है।

भावानुवाद-सर्वार्थ-सिद्ध महाविमान वासी देवों की आयु-स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट अर्थात् एक जैसी तेतीस समागरोपम की होती है।

249 काय स्थिति का वर्णन

मूल गाथा- जा चेव उ आउठिई, देवाण तु वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई, जहण्णुक्कोसिया भवे ॥२४९॥

सस्कृत छाया- या चैव त्वायु स्थिति , देवानातु व्याख्याता।
सा तेषा कायस्थिति , जघन्यकोत्कृष्टा भवेत् ॥२४९॥

अन्वयार्थ-देवाण-देवों की, जा-जो, जहण्ण-जघन्य, उ-और, उक्कोसिया-उत्कृष्ट, आउठिइ-आयु स्थिति, वियाहिया-कही गई है, सा चेव-वही, तेसिं-उनकी (जघन्य और उत्कृष्ट), कायठिई-कायस्थिति, भवे-होती है।

भावानुवाद-देवो की पूर्व वर्णित जघन्य और उत्कृष्ट जो आयु स्थिति कही गई है, वही उनकी जघन्य और उत्कृष्ट काय स्थिति होती है।

250 देवो के अन्तर मान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, अतोमुहुत्त जहण्णय।
विजढम्मि सए काए, देवाणं हुज्ज अतर ॥२५०॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्टम्, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यकम्।
वित्यक्ते स्वके काये, देवाना भूयादन्तरम् ॥२५०॥

अन्वयार्थ-सए-अपनी, काए-काया को, विजढम्मि-छोड देने पर, देवाण-देवो का, जहण्णय-जघन्य, अतर-अन्तर, अतोमुहुत्त-अन्तर्मुहूर्त (और), उक्कोसं-उत्कृष्ट, अणतकाल-अनन्तकाल का, हुज्ज-होता है।

भावानुवाद-अपनी काया अर्थात् देव शरीर को छोड कर पुन देव शरीर मे उत्पन्न होने के बीच का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

251 आनत आदि एवं ग्रैवेयक देवो के अन्तर मान का वर्णन

मूल गाथा- अणतकालमुक्कोस, वासपुहुत्त जहण्णय।
आणयाईण देवाण, गेविज्जाण तु अतर ॥२५१॥

सस्कृत छाया- अनन्तकालमुत्कृष्ट, वर्षपृथक्त्व जघन्यकम्।
आनतादीना देवाना, ग्रैवेयकानान्तु अन्तरम् ॥२५१॥

अन्वयार्थ-आणयाईण-आनत आदि देवलोकों के, देवाण-देवो (और), गेविज्जाणं-ग्रैवेयक देवों का, जहण्णयं-जघन्य, अंतर-अन्तर, वासपुहुत्तं-पृथक्त्व वर्ष का (और), उक्कोसं-उत्कृष्ट, अणंतकालं-अनन्तकाल का है।

भावानुवाद-आणत आदि (आनत, प्राणत, आरण और अच्युत) देवलोकों के देवों का तथा नव ग्रैवेयक देवों का जघन्य अन्तर पृथक्त्व वर्ष का है और उत्कृष्ट अनन्त काल का है।

252 अनुत्तर विमान वासी देवो का अन्तरमान

मूल गाथा- सखेज्जसागरुक्कोस, वासपुहुत्त जहण्णय।
अणुत्तराण देवाण, अतरेय वियाहियं ॥२५२॥

सस्कृत छाया- सख्येयसागरोत्कृष्ट, वर्षपृथक्त्व जघन्यकम्।
अनुत्तराण देवानाम्, अन्तरमिद व्याख्यातम् ॥२५२॥

अन्वयार्थ-अणुत्तराण-चार अनुत्तर विमानो के, देवाण-देवो का, जहण्णय-जघन्य, अतरेय-अन्तर, वासुपुहुत्त-पृथक्त्व वर्ष (और), उक्कोस-उत्कृष्ट, सखेज्जसागर-सख्यात सागरोपमो का, वियाहिय-कहा गया है।

भावानुवाद-विजय, वैजन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानवासी देवो का जघन्य अन्तर पृथक्त्व वर्ष और उत्कृष्ट सख्यात सागरोपम का कहा गया है।

253 प्रकारान्तर से हजारो भेद

मूल गाथा- एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ।
सठाणदेसओ वा वि, विहाणाइ सहस्सओ ॥२५३॥

सस्कृत छाया- एतेषा वर्णतश्चैव, गन्धतो रसस्पर्शत ।
सस्थानादेशतो वापि, विधानानि सहस्रश ॥२५३॥

अन्वयार्थ-एएसि-इनके, वण्णओ-वर्ण से, गधओ-गन्ध से, चेव-और, रसफासओ-रस से, स्पर्श से, वा-और, सठाणादेसओ-सस्थान की अपेक्षा से, वि-भी, सहस्सओ-सहस्रश (हजारा), विहाणाइ-भेद हो जाते हैं।

भावानुवाद-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से उन देवो के हजारो भेद होते हैं।

254 जीव एव अजीव पदार्थ का उपसहार

मूल गाथा- ससारत्था य सिद्धा य, इइ जीवा वियाहिया।
रूविणो चेवऽरूवी य, अजीवा दुविहा वि य ॥२५४॥

सस्कृत छाया- ससारस्थाश्च सिद्धाश्च, इति जीवा व्याख्याता ।
रूपिणश्चैवारूपिणश्च, अजीवा द्विविधा अपि च ॥२५४॥

अन्वयार्थ-ससारत्था-ससारस्थ, य-और, सिद्धा-सिद्ध, इइ-इस प्रकार, जीवा-जीवों के दो भेद, य-तथा, अजीवा-अजीवो के, रूविणो-रूपी, चेव-और, अरूवी-अरूपी, दुविहा वि-ये दो भेद, वियाहिया-कहे गये हैं।

भावानुवाद-इस प्रकार ससारी और सिद्ध दो प्रकार से जीवों की व्याख्या की गई और अजीव के रूपी और दो भेद कहे गये हैं।

255 जीवादि के स्वरूप से सयम मे रमणता

मूल गाथा- इइ जीवमजीव य, सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वणयाणमणुमए, रमेज्ज सजमे मुणी॥२५५॥

सस्कृत छाया- इति जीवानजीवाश्च, श्रुत्वा श्रद्धाय च।
सर्वनयानामनुमते, रमेत सयमे मुनि ॥२५५॥

अन्वयार्थ-इइ-इस प्रकार, जीव-जीव, य-और, अजीव-अजीव के स्वरूप को, सोच्चा-सुन कर, य-और, सद्दहिऊण-श्रद्धा करके, मुणी-मुनि, सव्व-सर्व, णयाण-नयो से, अणुमए-अनुमत, सजम-सयम मे, रमेज्ज-रमण करे।

भावानुवाद-इस प्रकार जीव और अजीव के स्वरूप को सुन कर, उनमे सुदृढ श्रद्धा करके मुनि सर्व नय सम्मत (सम्यक् ज्ञान दर्शन युक्त) सयम मे रमण करे।

256 सलेखना और उसके काल का विधान

मूल गाथा- तओ बहूणि वासाणि, सामण्णमणुपालिया।
इमेण कम्मजोगेण, अप्पाण सलिहे मुणी॥२५६॥

सस्कृत छाया- ततो बहूनि वर्षाणि, श्रामण्यमनुपाल्या।
अनेन क्रमयोगेन, आत्मान सलिखेन्मुनि ॥२५६॥

अन्वयार्थ-तओ-तत्पश्चात, बहूणि-बहुत, वासाणि-वर्षो तक, सामण्णं-श्रमण पर्याय का, अणुपालिया-पालन करके, मुणी-मुनि, इमेण-इस, कम्मजोगेण-क्रमयोग (तप) से, अप्पाण-अपनी आत्मा को, संलिहे-सलिखित करे।

भावानुवाद-तदनन्तर अनेक वर्षो तक श्रमण पर्याय का अनुपालन करके इस आगे कहे जाने वाले क्रम से मुनि अपनी आत्मा की सलेखना करे (क्रोधादि-कषायो-विकारो को क्षीण करे)।

257 सलेखना के उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य स्वरूपो का वर्णन

मूल गाथा- बारसेव उ वासाइं, सलेहुक्कोसिया भवे।
सवच्छर मज्झिमिया, छम्मासा य जहण्णिया॥२५७॥

सस्कृत छाया- द्वादशैव तु वर्षाणि, सलखेनोत्कृष्टा भवेत्।
सवत्सर मध्यमा, षण्मासा च जघन्यका॥२५७॥

अन्वयार्थ-उक्कोसिया-उत्कृष्ट, सलेहा-सलेखना, बारसेव-बारह, वासाइं-वर्षो की, मज्झिमिया-मध्यम, सवच्छर-सवत्सर (एक वर्ष) की, य-और, जहण्णिया-जघन्य, छम्मासा-छह मास की, भवे-होती है।

भावानुवाद-उत्कृष्ट सलेखना बारह वर्ष की, मध्यम एक वर्ष की और जघन्य छह मास की होती है।

258 उत्कृष्ट सलेखना का वर्णन

मूल गाथा- पढमे वासचउक्कम्मि, विगईमणिज्जूहण करे।
बिइए वासचउक्कम्मि, विचित्त तु तव चरे ॥२५८॥

सस्कृत छाया- प्रथमे वर्षचतुष्के, विकृतिनिर्यूहण कुर्यात्।
द्वितीये वर्षचतुष्के, विचित्र तु तपश्चरेत् ॥२५८॥

अन्वयार्थ-पढमे-पहले के, वासचउक्कम्मि-चार वर्षों मे, विगइ-विगयो का, णिज्जूहण-परित्याग, करे-करे, तु-और, बिइए-दूसरे, वासचउक्कम्मि-चार वर्षों मे, विचित्त-विचित्र, तव-तप का, चरे-आचरण करे।

भावानुवाद-प्रथम चार वर्षों मे दूध, घृत आदि विगयो का त्याग करे तथा दूसरे चार वर्षों मे विचित्र-विविध प्रकार का तप करे।

259 तीसरे चार वर्षों के तप का उल्लेख

मूल गाथा- एगतरमायाम, कट्टु सवच्छरे दुवे।
तओ सवच्छरद्ध तु, णाइविगिट्ठ तव चरे ॥२५९॥

सस्कृत छाया- एकान्तरमायाम, कृत्वा सवत्सरौ द्वौ।
तत सवत्सरार्द्धन्तु, नातिविकृष्ट तपश्चरेत् ॥२५९॥

अन्वयार्थ-तत्पश्चात्, दुवे-दो, सवच्छरे-सवत्सर (वर्ष) तक, एगतर-एकान्तर तप, आयाम-आयम्बिलतप, कट्टु-करके पुन , सवच्छरद्ध-अर्द्धसवत्सर (छह माह तक), अइविगिट्ठ-अतिविकृष्ट, तव-तप, ण चरे-न करे।

भावानुवाद-तदनन्तर दो वर्षों तक एकान्तर उपवास और पारणे में आयम्बिल करे। इसके पश्चात ग्यारहवे वर्ष के प्रथम छह महीनो तक कोई विशिष्ट तप (तेला, चौला आदि) न करे।

260 आचाम्ल तप का अनुकरण

मूल गाथा- तओ सवच्छरद्ध तु, विगिट्ठ तु तव चरे।
परिमिय चेव आयाम, तमि सवच्छरे करे ॥२६०॥

सस्कृत छाया- तत सवत्सरार्द्धं तु, विकृष्टतु तपश्चरेत्।
परिमितचैवायाम्ल, तस्मिन् सवत्सरे कुर्यात् ॥२६०॥

अन्वयार्थ-तओ-इसके बाद, सवच्छरद्ध-अर्द्ध सवत्सर (छह महीन) तक, तु-तो, विगिट्ठ-विकृष्ट (उत्कृष्ट), तव-तप, चरे-करे, चेव-और फिर, तम्मि-उस ग्यारहवें, सवच्छरे-वर्ष में, तु-तो, परिमिय-परिमित, आयाम-आचाम्ल (आयम्बिल तप), करे-करे।

भावानुवाद-इसके पश्चात् छह माह तक उत्कृष्ट तप (बेला, तेला आदि) करे। इस पूरे वर्ष मे परिमित (पारण म) आयम्बिल करे।

261 बारहवे वष मे आचरण योग्य तपस्या

मूल गाथा- कोडीसहियमायाम, कट्टु सवच्छरे मुणी।
मासद्धमासिएण तु, आहारेण तव चरे ॥२६१॥

सस्कृत छाया- कोटीसहितमायाम, कृत्वा सवत्सरे मुनि ।
मासिकेनार्द्धमासिकेन तु, आहारेण तपश्चरे ॥२६१॥

अन्वयार्थ-सवच्छरे-सवत्सर-बारहवे वर्ष मे, मुणी-मुनि, कोडीसहियं-कोटि सहित, आयामं-आयम्बिल तप कट्टु-करके फिर, मासद्धमासिएण-एक या आधा मास, आहारेण-आहार का त्याग करके, तव-अनशन तप चरे-करे।

भावानुवाद-(वह सलेखना धारी) मुनि बारहवे वर्ष मे कोटि सहित अर्थात् निरन्तर आयम्बिल तप करके एक पक्ष या एक मास का आहार से तप करे अर्थात् आहार का त्याग करके अनशन करे।

262 त्यागने योग्य अशुभ भावनाओ का वर्णन

मूल गाथा- कदप्पमाभिओग, किब्बिसिय मोहमासुरत्त च।
एयाओ दुग्गईओ, मरणम्मि विराहिया होंति ॥२६२॥

सस्कृत छाया- कन्दर्प आभियोग्य च, किल्विषिक मोह आसुरत्वे च।
एता दुर्गतिहेतुका , मरणे विराधिका भवन्ति ॥२६२॥

अन्वयार्थ-कदप्प-कन्दर्प भावना, आभिओग-अभियोगिकी भावना, किव्विसिय-किल्विषी भावना, मोह-मोह भावना, च-और, आसुरत्तं-आसुरी भावना, एयाओ-ये भावनाए, दुग्गईओ-दुर्गति रूप हैं (और इससे), मरणम्मि मरण के समय (जीव), विराहिया-विराधक, होंति-हो जाते हैं।

भावानुवाद-कन्दर्प भावना, अभियोगिकी भावना, किल्विषी की भावना, मोह भावना और आसुरी भावना ये भावनाए दुर्गति की हेतु भूत हैं तथा मृत्यु के समय जीव को विराधक बना देती हैं या सयम की विराधना कर देती हैं।

263 सम्यक्त्व की दुर्लभता

मूल गाथा- मिच्छादसणरत्ता, सणियाणा हु हिंसगा।
इय जे मरति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२६३॥

सस्कृत छाया- मिथ्यादर्शनरक्ता , सनिदाना खलु हिंसका।
इति ये म्रियन्ते जीवा , तेषा पुनर्दुर्लभा बोधि ॥२६३॥

अन्वयार्थ-जे-जो, जीवा-जीव, मिच्छा दसण-मिथ्यादर्शन में, रत्ता-अनुरक्त हैं, सणियाणा-निदान सहित हिंसगा-हिसा में प्रवृत्त हैं, इय-इस प्रकार, जे-जो, जीवा-जीव, मरति-मरते हैं, तेसिं-उनको, पुण-पुन -फिर बोही-बोधि (सम्यक्त्व), प्राप्ति होना, हु-निश्चय ही, दुल्लहा-अत्यन्त दुर्लभ है।

भावानुवाद-जो जीव मृत्यु के समय मिथ्यादर्शन मे अनुरक्त होते हैं, निदान सहित क्रिया-अनुष्ठान करते हैं और हिंसक होते हैं, उनको पुन बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है।

264 सम्यग् दर्शन की प्राप्ति का वर्णन

मूल गाथा- **सम्मद्दसणरत्ता, अणियाणा सुक्कलेसमोगाढा।**
इय जे मरति जीवा, सुलहा तेसि भवे बोही॥२६४॥

संस्कृत छाया- **सम्यग्दर्शनरक्ता , अनिदाना शुक्ललेश्यामवगाढा ।**
इति ये म्रियन्ते जीवा तेषा, सुलभा भवेद् बोधि ॥२६४॥

अन्वयार्थ-सम्मद्दसण-सम्यग्दर्शन मे, रत्ता-अनुरक्त, अणियाणा-निदान रहित, सुक्कलेसमोगाढा-शुक्ल लेश्या को प्राप्त, इय-इस प्रकार, जे-जो, जीवा-जीव, मरति-मरते हैं, तेसि-उनको (परलोक में), बोही-बोधि (सम्यक्त्व) की प्राप्ति, सुलहा-सुलभ, भवे-होती है।

भावानुवाद-सम्यग्दर्शन मे अनुरक्त, निदान रहित धर्माचरण करने वाले और शुक्ल लेश्या वाले इन भावो मे जो जीव मरण को प्राप्त होते हैं, उन्हे परलोक मे बोधि बहुत सुलभ होती है।

265 दुर्लभ बोधि जीव के लक्षण का वर्णन

मूल गाथा- **मिच्छादसणरत्ता, सणियाणा कण्हलेसमोगाढा।**
इय जे मरति जीवा, तेसि पुण दुल्लहा बोही॥२६५॥

संस्कृत छाया- **मिथ्यादर्शनरक्ता , सनिदाना कृष्णलेश्यामवगाढा ।**
इति ये म्रियन्ते जीवा , तेषा पुनर्दुर्लभा बोधि ॥२६५॥

अन्वयार्थ-मिच्छादसण-मिथ्यादर्शन में, रत्ता-अनुरक्त, सणियाणा-निदान सहित, कण्हलेसमोगाढा-कृष्ण लेश्या को प्राप्त हुए, इय-इस प्रकार, जे-जो, जीवा-जीव, मरति-मरते हैं, तेसि-उनको, पुण-पुन (फिर), बोही-बोधि (सम्यक्त्व) की प्राप्ति होना, दुल्लहा-अत्यन्त दुर्लभ हो जाती है।

भावानुवाद-मिथ्या दर्शन मे अनुरक्त, निदान सहित एव कृष्ण लेश्या को प्राप्त ऐसे जीव जन्तु जब मृत्यु को प्राप्त करते हैं तो उन्हें पुन परलोक मे बोधि की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ हो जाती है।

266 सद्दर्शनादि के महत्त्व का वर्णन

मूल गाथा- **जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयण जे करेंति भावेण।**
अमला असकिलिट्ठा, ते होंति परित्तससारी॥२६६॥

संस्कृत छाया- **जिनवचनेऽनुरक्ता , जिनवचन ये कुर्वन्ति भावेन।**
अमला असक्लिष्टा , ते भवन्ति परीतससारिण ॥२६६॥

अन्वयार्थ-जे-जो जीव, जिणवयणे-जिन वचनों में, अणुरत्ता-अनुरक्त हैं (जो), जिणवयण-जिनेन्द्र द्वारा

कथित (अनुष्ठानों) का, भावेण-भावपूर्वक, करेंति-करते हैं, अमला-जो, मिथ्यात्वादि मल से रहित हैं, असंकिलिट्ठा-असंकलिष्ट परिणाम वाले हैं, ते-वे, परित्त-परित्त, संसारी-संसारी, होंति-होते हैं।

भावानुवाद-जो जिन वचनों में अनुरक्त हैं और जिन भगवान् के वचनों का भावपूर्वक आचरण करते हैं, जो मिथ्यात्व आदि भाव मल से रहित हैं तथा राग-द्वेषादि संक्लिष्ट परिणामों से मुक्त हैं, वे परित्त संसारी होते हैं।

267 जिन वचन विषयक अज्ञानता का पात्र

मूल गाथा- बालमरणाणि बहुसो, अकाममरणाणि चेव य बहूणि।
मरिहिंति ते वराया, जिणवयण जे ण जाणंति ॥२६७॥

संस्कृत छाया- बालमरणानि बहुशः, अकाममरणानि चैव बहुकानि।
मरिष्यन्ति ते वराकाः, जिनवचनं ये न जानन्ति ॥२६७॥

अन्वयार्थ-य-और, जे-जो, जिणवयण-जिन वचनों को, ण जाणंति-नहीं जानते हैं, ते-वे, वराया-बिचारे बहुसो-बहुत बार, बालमरणाणि-बाल मरण, चेव-और, बहूणि-बहुत बार, अकाममरणाणि-अकाम मरण से मरिहिंति-मृत्यु को पाते रहेंगे।

भावानुवाद-जो जिन वचनों को नहीं जानते हैं, वे बेचारे बहुत बार बाल मरण से और अनेक बार अकाम मरण से मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

268 आलोचना की आवश्यकता एवं श्रवण अधिकार

मूल गाथा- बहुआगमविण्णाणा, समाहिउप्पायगा य गुणगाही।
एएण कारणेण, अरिहा आलोयण सोउं ॥२६८॥

संस्कृत छाया- बह्वागमविज्ञानाः, समाध्युत्पादकाश्च गुणग्राहिणः।
एतेन कारणेन, अर्हा आलोचनां श्रोतुम् ॥२६८॥

अन्वयार्थ-बहु-बहुत से, आगम विण्णाणा-आगमों को जानने वाले, समाहि-समाधि के, उप्पायगा-उत्पादक, य-और, गुणगाही-गुणों को ग्रहण करने वाले, एएण-इन, कारणेणं-कारणों से, आलोयणं-आलोचना, सोउं-सुनने के, अरिहा-योग्य हैं।

भावानुवाद-(अपने दोषों की आलोचना, जिन ज्ञानी पुरुषों के समीप करनी चाहिए उनके गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं) जो अनेक आगमों के, आगम रहस्यों के ज्ञाता हों, जो आलोचना करने वाले के चित्त में समाधि-मानसिक शान्ति उत्पन्न करने वाले हों, जो गुण ग्राही होते हैं, वे इसी कारण आलोचना सुनने के योग्य होते हैं।

269 कन्दर्प भावना का उल्लेख

मूल गाथा- कंदप्प कोक्कुयाइं तह, सीलसहाव हास विगहाहिं।
विम्हावेंतो य परं, कंदप्प भावणं कुणइ ॥२६९॥

संस्कृत छाया- कन्दर्पकौत्कुच्ये तथा, शीलस्वभावहास्यविकथाभि ।
विस्मापयन् च पर, कान्दर्पी भावना कुरुते ॥२६९॥

अन्वयार्थ-कदप्प-कन्दर्प, कोक्कुयाई-कौत्कुच्य, तह-तथा, सील सहाव-शील स्वभाव, हास-हास्य, विगहाहिं-विकथाओ मे, पर-दूसरो को, विम्हावेंतो य-विस्मित करता हुआ (जीव), कदप्प-कन्दर्प, भावण-भावना को, कुणइ-करता है।

भावानुवाद-(1) जो कन्दर्प-काम कथा करता है, कौत्कुच्य-हास्योत्पादक कुचेष्टा करता है तथा शील स्वभाव-हास्य विकथादि के द्वारा दूसरो को हसाता है-विस्मित करता है वह कान्दर्पी भावना का आचरण करता है।

टिप्पणी गाथा मे प्रयुक्त 'सील सहाव हास विगहाहिं' शब्दो का अर्थ सयोजन निम्न प्रकार से समझना चाहिए-शील-निष्फल प्रवृत्ति अर्थात् हास्योत्पादक चेष्टा करने की आदत/स्वभाव-मुख द्वारा विकृत चेष्टाए करने की प्रवृत्ति, हास्य-खिलखिला कर जोरो से हसना या अट्टहास करते रहना। विकथा-विस्मयोत्पादक वचनो का प्रयोग करना अथवा ऐसी कथा करना।

270 अभियोगी भावना का स्वरूप

मूल गाथा- मता जोग काउ, भूइकम्म च जे पउजति।
साय रस इड्ढिहेउ, अभिओग भावण कुणइ॥२७०॥

संस्कृत छाया- मन्त्रयोग कृत्वा, भूतिकर्म च य प्रयुङ्क्ते।
सातरसर्द्धिहेतो , अभियोगी भावना कुरुते ॥२७०॥

अन्वयार्थ-जे-जो जीव, सायरस इड्ढिहेउ-साता रस और ऋद्धि के हेतु, मताजोगं-मत्र और योग, काउ-करके, भूइकम्म-भूतिकर्म का, पउजति-प्रयोग करते हैं, च-और (जो), अभिओग भावण-अभियोगिकी भावना, कुणइ-करते हैं।

भावानुवाद-जो जीव साता-सुख, घृतादि रस एव समृद्धि के लिए मत्र-योग (कुछ वस्तुओ को मिला कर किया जाने वाला यत्र) और भूति कर्म (भस्म आदि) का प्रयोग करते हैं, वे आभियोगिक भावना का आचरण करते हैं। (ऐसी भावना वाला जीव सेवक जाति के देवों मे उत्पन्न होता है)।

271 किल्विषिकी भावना का स्वरूप वर्णन

मूल गाथा- णाणस्स केवलीण, धम्मायरियस्स सघ-साहूण।
माई अवण्णवाई, किब्विसिय भावण कुणइ॥२७१॥

संस्कृत छाया- ज्ञानस्य केवलिना, धर्माचार्यस्य सघसाधूना।
माय्यवर्णवादी, किल्विषिकी भावना कुरुते ॥२७१॥

अन्वयार्थ-णाणस्स-ज्ञान का, केवलीण-केवली भगवान् का, धम्मायरियस्स-धर्माचार्य का, सघसाहूण-सघ (और) साधुओ का, अवण्णवाई-अवर्णवाद बोलने वाला, माई-मायावी पुरुष, किब्विसिय-किल्विषी, भावण-भावना को, कुणइ-करता है।

भावानुवाद-जो जीव, ज्ञान का, केवलज्ञानियो का, धर्माचार्यों का, संघ का एवं साधुओं का अवर्णवाद करता है-निन्दा करता है, वह मायावी पुरुष किल्विषी भावना का आचरण करता है।

272 आसुरी भावना का वर्णन

मूल गाथा- अणुबद्धरोसपसरो, तह य णिमित्तमि होइ पडिसेवी।
एएहिं कारणेहिं, आसुरियं भावणं कुणइ॥२७२॥

संस्कृत छाया- अनुबद्धरोषप्रसार , तथा च निमित्ते भवति प्रतिसेवी।
एताभ्यां कारणाभ्याम् आसुरिकां भावनां कुरुते ॥२७२॥

अन्वयार्थ-जो जीव, अणुबद्धरोसपसरो-निरन्तर रोष का प्रसार करने वाला (अत्यन्त क्रोधी), तहा-तथा, णिमित्तम्मि-निमित्त विषयक, पडिसेवी-प्रति सेवना करने वाला, होइ-होता है (वह), एएहिं-इन, कारणेहिं-कारणों से, आसुरियं-आसुरी, भावणं-भावना को, कुणइ-करता है।

भावानुवाद-जो निरन्तर क्रोध की वृद्धि करता है, निमित्त विद्या का प्रतिसेवी होता है-प्रयोग करता है, वह इन कारणों से आसुरी भावना का आचरण करता है।

273 मोह भावना के स्वरूप का दिग्दर्शन

मूल गाथा- सत्थगहणं विसभक्खणं च, जलणं च जलप्पवेसो य।
अणायार भण्डसेवी, जम्मण मरणाणि बंधंति॥२७३॥

संस्कृत छाया- शस्त्रग्रहणं विषभक्षणं च, ज्वलनंच जलप्रवेशश्च।
अनाचारभाण्डसेवी, जन्ममरणानि बध्नन्ति॥२७३॥

अन्वयार्थ-सत्थगहणं-शस्त्र का ग्रहण, च-और, विसभक्खणं-विष का भक्षण, जलणं-अग्नि में प्रवेश, च-और, जलपवेसो-जल में प्रवेश, य-और, अणायार भंडसेवी-अनाचार भाड प्रतिसेवन से, जम्मण-जन्म (और), मरणाणि-मृत्यु रूप कर्मों को, बंधंति-बांधते हैं।

भावानुवाद-जो जीव शस्त्र ग्रहण से, विष भक्षण से, अग्नि प्रवेश से तथा जल प्रवेश से आत्महत्या करता है, जो अनाचार का सेवन करता है अथवा साधु के लिए अग्राह्य भण्डोपकरण (उपधि) का सेवन करता है, वह अनेक जन्म-मरणों का-तन्निमित्तक कर्मों का बन्धन करता है।

274 प्रामाणिकता, उपयोगिता और उपसंहार

मूल गाथा- इय पाउकरे बुद्धे, णायए परिणिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धीयसमए॥२७४॥

त्ति बेमि

इति जीवाजीवविभत्ती णामं छत्तीसं अज्झयणं समत्तं॥३६॥

संस्कृत छाया- इति प्रादुष्कृत्य बुद्ध, ज्ञातज परिनिर्वृत्त ।
षट्त्रिंशदुत्तराध्ययान् भव्यसिद्धिकसम्मतान् ॥२७४॥

इति ब्रवीमि

इति जीवाजीवविभक्ति समाप्ता ॥३६॥

अन्वयार्थ-इइ-इस प्रकार, भवसिद्धियसमए-भव्य सिद्धिक जीवो के सम्मत्त (मान्य), उत्तरज्झाए-उत्तराध्ययन सूत्र के, छत्तीस-छत्तीस अध्ययनो को, पाउकरे-प्रकट करके, बुद्धे-बुद्ध (तत्त्वज्ञ), णायए-ज्ञात पुत्र भगवान् श्री महावीर स्वामी, परिणिव्वुए-निर्वाण को प्राप्त हो गए।

त्ति-इस प्रकार, बेमि-मैं कहता हू।

भावानुवाद-इस प्रकार भव्य जीवो को अभिप्रेत, ऐसे उत्तराध्ययन सूत्र के 36 अध्ययनो को-उत्तम अध्यायो को प्रकट करके तत्त्वज्ञ, ज्ञात पुत्र प्रभु महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए।

ऐसा मैं कहता हू।

इस प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र सम्पूर्ण हुआ।

□□□